आर. पी. सराफ

द्वारा सम्पादित

इन्टरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक व्यूपाइंट

(जनवरी, 1999 से अक्टूबर, 2002 तक)

का संकलन

भाग-2

Logon: www.nhcpm.org

प्रकाशक :

प्रकृति-मानव केन्द्रित जन आन्दोलन, भारत

❑ प्रकाशक :

प्रकृति-मानव केन्द्रित जन आन्दोलन

23/864, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड,
जोधपुर - 342 008 (राजस्थान) भारत
फोन : 0291-2715471, 94148-64548
E-mail: sajjan_nhcpm@rediffmail.com
ghan_demo@yahoo.co.in
Website: www.nhcpm.org

209, अशोक विहार, जानीपुर,
जम्मू सिटी (जम्मू-कश्मीर) भारत
फोन : 0191-2535354, 09419116969
E-mail: rcmakhnotra@yahoo.co.in

गाँव-भूपाल, डाक-मत्ति,
जिला-मानसा, पंजाब (भारत)
फोन : 01652-274551, 09915342232
E-mail: sukhdev.nhcpm@gmail.com

डी-13-14, आफिसर्स कॉलोनी
एस.बी.बी. ट्रेडिंग सेन्टर के सामने,
सागर रोड, बीकानेर (राजस्थान)
फोन : 09414418123

❑ **प्रथम संस्करण : अगस्त, 2014**

❑ **सहयोग राशि : 500/- (पाँच सौ) रुपये मात्र**

❑ **मुद्रक :**
जांगिड़ कम्प्यूटर्स, जोधपुर
फोन : 09414308049

R P SARAF DWARA SAMPADIT INTERNATIONALIST DEMOCRATIC VIEWPOINT KA SANKALAN PART-2

Published by : Prakriti-Manav Kendrit Jan Andolan, Bharat
First Edition : August, 2014 Contribution : Rs. 500/-

भूमिका

अत्यधिक प्रसन्नता की बात है कि आर पी सराफ की संकलित रचनाओं का पहला भाग 2010 में प्रकाशित होने के बाद दूसरा भाग हम पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस भाग में संकलित रचनाएं पूर्व में इन्टरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक व्यूपाइंट पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं, जिसके सराफ साहब शुरू से सम्पादक एवं लेखक रहे। वास्तव में ये रचनाएं उस समय की है जब प्रकृति-मानव केन्द्रित विचार अपना आकार ग्रहण कर रहा था तथा वह आधार तैयार कर रहा था जिसका चरम बिन्दु दिसम्बर, 2002 में प्रकृति-मानव केन्द्रित जन आन्दोलन का गठन था।

इस भाग में मानव समाज का उद्भव कैसे हुआ तथा यह विभिन्न चरणों से गुजरता हुआ कैसे विकसित हुआ इसको समझने के प्रयत्न का एक अध्ययन (पेज 434) शामिल है। इस लेख का नजरिया आर पी सराफ द्वारा 1974 में प्रकाशित पुस्तक 'इण्डियन सोसाइटी' में प्रस्तुत नजरिये से अलग है। इस लेख में सराफ ने पांच नये बिन्दुओं को उजागर किया जो इस अध्ययन को अन्य ऐतिहासिक नजरियों से भिन्नता प्रदान करते हैं।

पहला; उनका मानना है कि मानव समाज में परिवर्तन और विकास दो कारकों की वजह से होता है, ये दो कारक हैं प्रकृति और मानव समुदाय। ये दोनों कारक मिलकर सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया की पहल लेने और उसे आगे बढ़ाने के लिए सभी आवश्यक चीजों को मुहैया करते हैं। आर पी सराफ की यह प्रस्तावना मौजूदा प्रचलित सभी समाजशास्त्रीय विचारधाराओं से अलग विश्लेषण प्रस्तुत करती है। सभी प्रचलित समाजशास्त्रीय विचार सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के संबंध में एक स्तम्भीय आधार (मानव केन्द्रित, तकनीक केन्द्रित, पर्यावरण केन्द्रित, प्रकृति केन्द्रित या ईश्वर केन्द्रित एक ही आधार) को मूल नियम के रूप में पेश करते हैं, जबकि आर पी सराफ इसके संबंध में दो कारकों यानि एक प्रकृति तथा दूसरा मानव को सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के मूल नियम के रूप में पेश करते हैं।

द्वितीय, उनकी मान्यता है कि सामाजिक परिवर्तन और विकास दो तरफा अन्तरक्रिया–एक तरफ प्रकृति और मानव समाज के बीच तथा दूसरी तरफ समाज

में मानवीय सामाजिक इकाइयों के जरिये होता है। अन्तरक्रिया एक, दो तरफा गति है–एक तरफ एकता तथा दूसरी तरफ संघर्ष की गति–ये दोनों गतियां एक अविभाजित पूर्ण इकाई का गठन करती है, जिनमें से एक किसी समय प्राथमिक स्थान ग्रहण करती है तो दूसरी गौण भूमिका निभाती है और इसी तरह किसी दूसरे समय में बाद वाली गति प्राथमिक स्थान ग्रहण करती है, जबकि प्रथम गति गौण भूमिका निभाती है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है जब तक कि एक निश्चित प्रक्रिया आखिरकार एक नई प्रक्रिया में तब्दील नहीं हो जाती है।

तृतीय, मानव या मानव समुदाय की प्रकृति (स्वभाव) अकेली जैविक है या अकेली सामाजिक, इस दृष्टिकोण से अलग उनका मानना है कि मानव या मानव समुदाय का दोहरा चरित्र (या स्वभाव) है, यानि वह जैविक एवं सामाजिक दोनों गुण रखता है, यानि वह जैव-सामाजिक है।

चतुर्थ, ब्रह्माण्ड में मानव जाति सर्वश्रेष्ठ घटनाक्रम है, इस प्रस्तावना से अलग आर पी सराफ मानते हैं कि मानव जाति प्रकृति की क्रमिक विकास की प्रक्रिया का एक उत्पाद होने के नाते वह सर्वश्रेष्ठ घटनाक्रम नहीं है। यह केवल गैर-मानवीय चीजों से अन्तरक्रिया करती है जिसमें कभी इसकी स्थिति प्राथमिक होती है तो दूसरे क्षण इसकी स्थिति गौण होती है।

पंचम, उनका विश्वास है कि ब्रह्माण्ड में कुछ भी निरपेक्ष (या किसी पर निर्भर नहीं होना) नहीं है, प्रत्येक चीज लगातार परिवर्तन से गुजरती रहती है। एक निश्चित समय और स्थान के लिए यह (निरपेक्षता) प्रासंगिक है। यहां तक कि स्वयं मानव जाति का भी एक निश्चित काल के बाद एक अन्य घटनाक्रम में बदलना संभव है।

इस किताब की शुरूआत मार्क्सवाद, गांधीवाद, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का हिन्दुत्व तथा मण्डलवादी जातीय रूपी चार किस्म के विचारों पर आर पी सराफ के अवलोकन या पुनरमूल्यांकन से होती है। ये चारों विचार शाखाएं अन्तर्राष्ट्रीय नजरिए और वैश्विक वास्तविकता के साथ-साथ भारत में मानव समाज के विकास की उपयुक्त समझ बनाने में बाधा पैदा कर रहे हैं।

ये रचनाएं सितम्बर 1990 से नवम्बर 1995 के दौरान प्रकाशित हो चुकी थी तथा कुछ सुधार के साथ सितम्बर, 2000 में पुन: प्रकाशित हुई थी।

मार्क्सवाद के संबंध में आर पी सराफ ने कहा कि मार्क्सवाद द्वारा वास्तविकता और इसकी विभिन्न प्रक्रियाओं की व्याख्या न तो वैज्ञानिक सत्य है जैसा कि मार्क्सवादी दावा करते हैं; और ना ही मार्क्सवाद असत्य है जैसा कि मार्क्सवाद विरोधियों द्वारा तर्क दिया जाता है। सराफ का कहना है कि मार्क्सवाद एकपक्षीय है। यद्यपि उन्होंने मार्क्सवाद को आर्थिक रूढ़िवाद का एक सिद्धान्त बताया है,

तथापि उनका कहना है–''प्रकृति और समाज के बारे में उनके (मार्क्सवाद के) एकतरफा नजरिए के बावजूद मार्क्स ने एक नया आधार तथा मानव चिन्तन में कुछ उपयोगी योगदान प्रदान किया है, अत: उनकी गिनती दुनिया के महान चिन्तकों में रहेगी।''

गांधीवाद के बारे में आर पी सराफ ने उल्लेख किया कि इसके हिन्दू हितों के समर्थन ने भारत के हितों को नुकसान पहुंचाया है क्योंकि आज की दुनिया किसी धर्म के प्रतीकों, मुहावरों, लोकाचार के आधार पर पुनर्गठित नहीं की जा सकती। गांधीवाद को सुधारवादी हिन्दूवादी सिद्धान्त बताते हुए उन्होंने कहा, ''हालांकि गांधी का 'हृदय परिवर्तन' का नजरिया–सत्याग्रह या अहिंसा के जरिए बुराई को अच्छाई में बदलना–निश्चित हालात पर निर्भर करता है फिर भी गांधी की कुछ सामाजिक तकनीक बहुत लाभदायक है यदि लगातार उन नैतिक मूल्यों को अपनाया जाए–जैसे त्याग, बलिदान, शालीनता, सादगी, सहनशीलता आदि–और इन सबसे ऊपर एक निष्पक्ष और न्यायपूर्ण समाज बनाने के लिए साध्य को साधन से जोड़ने का इसका सिद्धान्त बहुत ही उपयोगी है।

आर एस एस के हिन्दुत्व के सम्बन्ध में आर पी सराफ की टिप्पणी है कि इसमें कुछ बुनियादी सिद्धान्त वैश्विक वास्तविकताओं से विरोधाभासी हैं। एक हिन्दू रूढ़िवादी सिद्धान्त का नामकरण करते हुए उन्होंने कहा, ''प्रथमत:, स्वदेशी, हिन्दुत्व कार्यक्रम का एक मूल स्तम्भ है, वह राष्ट्रों के वैश्विक एकीकरण की प्रक्रिया से मेल नहीं खाता है। द्वितीयत:, हिन्दुत्व कार्यक्रम का अन्य मूल स्तम्भ यानि, अधिनायकवादी और मनोनीत पदानुक्रमवादी तरीका 19वीं सदी के लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धान्तों का भी उल्लंघन है। तृतीयत:, हिन्दुत्व कार्यक्रम का एक और मूल स्तम्भ, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को नये या पुराने वैश्विक विकास से किसी तरह का कोई समर्थन नहीं मिला है। अधिनायकवादी एवं मनोनीत पदानुक्रमवादी तरीका आर एस एस के ढांचे में देखा जा सकता है जो नीचे से लेकर ऊपर तक मनोनयन के आधार पर चलता है और यही मनोनीत पदानुक्रम भाजपा सहित सभी संगठनों को नियंत्रण करता है जबकि यह देश में लोकतंत्र को सुनिश्चित करने का दावा करता है। जहां तक आर एस एस के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सवाल है, अभी-अभी उभरे क्षेत्रीय समुदाय, यूरोपीय कम्युनिटी, नाफ्टा, एपेक, आशियान, सार्क आदि–किसी एक अखण्डित सांस्कृतिक सिद्धान्त की बुनियाद पर आधारित नहीं है बल्कि उनकी बुनियाद आर्थिकता और सुरक्षा पर आधारित है। और एक अकेली संस्कृति, राष्ट्र-राज्य के विकास का एकमात्र या प्रभुत्वकारी तत्व नहीं रही है। 21 अरब देश जिनकी साझी भाषा, एक जैसा धर्म, एक जैसी संस्कृति है परन्तु ये सब एक महासंघीय एकता भी कायम नहीं कर सके हैं, एक इकाई में एकीकृत होना तो कहां सम्भव है।

सारा यूरोप ईसाई आस्था और एक किस्म की उदारवादी संस्कृति रखते हुए भी विभिन्न राज्यों में विभक्त है। ऐसी ही स्थिति सुदूर पूर्व तथा दक्षिण एशिया के अत्यधिक बुद्ध धर्म के अनुयायियों की जनसंख्या वाले राज्यों की है। पाकिस्तान धार्मिक संस्कृतिवाद के आधार पर अपने को एक इकाई में कायम नहीं रख सका।

मण्डलवाद के सम्बन्ध में, आर पी सराफ लिखते हैं कि जातिवादी विचारधाराएं इतिहास में मौजूद परम्परागत प्रतिशोध के दृष्टिकोण से अपनी प्रेरणा लेती है जो, नारा तो सामाजिक न्याय और समानता का बुलन्द करते हैं तथा अपने आपको गरीबों को सुरक्षा प्रदान करने वाला प्रदर्शित करते हैं; जबकि ये प्रतिशोधपूर्ण भावना से एक जाति को दूसरी जाति के या एक वर्ग को दूसरे वर्ग के या एक धार्मिक समुदाय को दूसरे धार्मिक समुदाय के विरुद्ध खड़ा करते हैं। मण्डलवाद एक जाति आधारित नकली न्याय का सिद्धान्त है। इस रूप में चरित्रित करते हुए उनका कहना है कि, ''अपने आपको घमण्ड से गरीबों के मसीहा के रूप में देखना न तो इनको सामाजिक बदलाव करने के योग्य बनाने या बदलाव के फलों का उचित उपयोग करने या अगुवा धड़ों के बीच उपलब्ध योग्यता का फायदा लेने लायक बनने में कोई सहायता नहीं करता है और उल्टे इसका परिणाम सामाजिक संकट के रूप मे निकलता है।''

अंत में, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि आर पी सराफ के संकलन को परम्परा से हटकर विपरीत कालक्रम में प्रकाशित कर रहे हैं। यानि बाद के अंकों का पहले संकलन करना। उदाहरण के लिए सन् 2010 में प्रकाशित भाग एक में नवम्बर, 2002 (अंक 177) से जून, 2009 (अंक 222) तक की पत्रिकाओं का संकलन था। वर्तमान भाग दो में जनवरी, 1999 (अंक 131) से अक्टूबर, 2002 (अंक 176) तक की पत्रिकाओं का संकलन है। इसका उद्देश्य आर पी सराफ के नवीनतम दृष्टिकोण को पाठकों के सामने पहले रखना है। यह दृष्टिकोण प्रकृति-मानव केन्द्रित दृष्टिकोण है और सांगठनिक रूप प्रकृति-मानव केन्द्रित जन आन्दोलन है जिसका समर्थन एवं प्रतिपादन सराफ द्वारा अन्तत: किया गया।

– प्रकृति-मानव केन्द्रित जन आन्दोलन, भारत

अनुक्रमणिका

क्र.	अंक सं./अवधि	विषय वस्तु	पृष्ठ सं.
		भूमिका	3
1.	150-151 सित. 2000	मार्क्सवाद-आर्थिक रूढ़िवाद का सिद्धान्त मार्क्सवादियों के लिए आत्म-अवलोकन का समय	13-24
2.	,,	गांधीवाद - संशोधित हिन्दू मानवतावाद	25-43
3.	,,	आर एस एस का हिन्दुत्व –हिन्दू रूढ़िवाद का सिद्धान्त यथार्थ संघ परिवार से अन्तरावलोकन की मांग करता है	44-72
4.	,,	मण्डलवाद - जाति आधारित झूठे न्याय का सिद्धान्त	73-78
5.	,,	जातीय समाज– अप्रासंगिक गैर-न्यायिक एवं उत्पीड़न का एक सिद्धान्त	79-87
6.	131-132 जन.-फर. 1999	भारत-पाक शिखर सम्मेलन मुद्दा स्पष्ट है : चाहे दोनों एक साथ सुन्दर भविष्य बनाओ या आपस में लड़कर बर्बाद हो जाओ	88-98
7.	,,	भारतीय बजट 1999-2000 राजकोषीय घाटे की ओर	99-117
8.	133-135 मार्च-मई 1999	भारत का 1999 का आम चुनाव अच्छे के लिए बदलो या धीरे-धीरे अस्थिरता का सामना करो	118-125
9.	,,	कारगिल संघर्ष और कटुता उत्पन्न करती जम्मू-कश्मीर समस्या भारत-पाक अन्ध राष्ट्रवाद की उपज अन्तर-निर्भर राष्ट्रीय दृष्टिकोण में इसका हल	126-131
10.	,,	मानवाधिकारों की गुणवत्ता एक सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति का प्रतिबिम्ब, मानवाधिकारों की सुनिश्चितता के लिए जन-जागृति मुख्य गारन्टी	132-139
11.	जुलाई 1999	प्रेस विज्ञप्ति	140-141
12.	136-140 अगस्त 1999	नई सहस्त्राब्दी के दहाने पर भारत को दरपेश चुनौतियां एक अनिश्चित भविष्य की तरफ बढ़ रहे भारत को राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता की नई दृष्टि की जरूरत	142-162

13.	अक्टू. 1999	आई डी पी की राजस्थान कान्फ्रेन्स	163
14.	अक्टू. 1999	नई सहस्त्राब्दी में प्रवेश कर रही मानव जाति	164-179
15.	141-142 नव.-दिस. 1999	छद्म राष्ट्रवाद की उपज परमाणु हथियार–सभी प्राणियों के लिए खतरा समयबद्ध नष्ट करने एवं अन्तरिम तौर पर संयुक्त राष्ट्र के नियन्त्रण की मांग	180-187
16.	,,	1999 का जन सन्देश अकेली कोई पार्टी शासन करने लायक नहीं	188-193
17.	,,	जे.के. समस्या धोखेबाज नीति हम सबको बर्बाद कर देगी सामूहिक समाधान जेके, पाकिस्तान एवं भारत को बचाएगा	194-203
18.	,,	ध्यान देने लायक तथ्य भूख और गरीबी का दुष्चक्र द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासचिव	204-215
19.	,,	राष्ट्रपति अभिभाषण वाजपेयी सरकार का दिग्भ्रमित कार्यक्रम	216-226
20.	143 जनवरी 2000	वर्तमान ट्रेड यूनियनवाद पर कुछ और अधिक* मुख्य मुद्दा-श्रम की अधीनता को समाप्त करना एवं श्रम-पूँजी की साझेदारी स्थापित करना	227-247
21.	144 फरवरी 2000	स्वायत्तता की प्रासंगिकता और तर्कसंगतता जम्मू-कश्मीर समस्या के सन्दर्भ में (सामाजिक सच्चाई हमेशा वास्तविकता में निहित होती है, बहुसंख्यकों की मानसिकता से तय नहीं होती)	248-258
22.	,,	बाल श्रम की समस्या–बदतरीन सामाजिक अपराध	259-267
23.	145-147 मार्च-मई 2000	जे.के. समस्या विकल्प स्पष्ट है : मेल-मिलाप और विकास या टकराव और बिखराव	268-282
24.	145-147 मार्च-मई 2000	आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेंस कार्यकारिणी को एक लेख द्वारा आप.पी.सराफ	283-289
25.	145-147 मार्च-मई 2000	हमारी पुरानी चली आ रही विकट समस्या (एक लुढ़कता पत्थर कोई भी द्रव्य एकत्रित नहीं करता)	290-296

26.	152-156 फरवरी 2001	राष्ट्रीय फार्मुले वैश्विक समस्याओं का हल नहीं पर्यावरण एवं मानव हितैषी कार्यक्रम समय की मांग	297-303
27.	,,	एकमात्र प्रकृति-हितैषी एवं मानव-हितैषी कृषि ही मानव समुदाय की सेवा कर सकती है	304-306
28.	,,	खेतीबाड़ी एवं किसान विकास फ्रंट का कार्यक्रम, पंजाब	307-322
29.	,,	राजकीय-नेतृत्व आधारित विकास मॉडल और बाजार-निर्देशित विकास मॉडल दोनों अप्रासंगिक हो चुके हैं, एक नया लोक-हितैषी और पर्यावरण-हितैषी विकास मॉडल समय की मांग विद्युत क्षेत्र की स्थित : विशेष तौर पर पंजाब के सन्दर्भ में	323-327
30.	,,	भारत में दूर संचार क्षेत्र की स्थिति कारपोरेट एवं सरकारी दोनों अपनी वैधता खो चुके हैं पर्यावरण एवं मानव आधारित मॉडल की आवश्यकता	328-332
31.	157-161 जुलाई 2001	जम्मू-कश्मीर समस्या के त्रिपक्षीय हल के मोर्चे की आधारभूत घोषणा जम्मू कश्मीर समस्या के क्रमिक विकास की प्रक्रिया तथा इसका भविष्य	333-337
32.	,,	दुनिया का आम रुझान भारत, पाकिस्तान तथा जेके के लोगों के एक साझे भविष्य की ओर इंगित करता है	338-343
33.	,,	जेके समस्या के त्रिपक्षीय समाधान के लिए मोर्चे का प्रेस वक्तव्य	344-345
34.	,,	जेके समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चे द्वारा भारत-पाक शिखर सम्मेलन को की गई अपील	346-350
35.	,,	जम्मू संभाग को एक शांति भंग क्षेत्र घोषित करना– जेके समस्या का समाधान नहीं है	351-352
36.	,,	एक न्यायपूर्ण मिशन जम्मू-कश्मीर समस्या का जन्म तथा उसके बाद घटी घटनाओं पर गुलाम नबी हंगरू	353-357
37.	,,	जेके डेमोक्रेटिक फ्रीडम पार्टी द्वारा 10 जून 2001 को आयोजित सेमीनार में विचार-विमर्श किये जाने वाले कार्यक्रम पर जेके समस्या पर त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चे द्वारा एक टिप्पणी	358-360

38.	,,	त्रिपक्षीय वार्तालाप–जेके समस्या के समाधान का वास्तविक रास्ता त्रिपक्षीय हल–जेके समस्या का सबसे अधिक उचित समाधान साझा विकास–जेके, पाक एवं भारत का एकमात्र भविष्य	361-367
39.	,,	एक पर्यावरण एवं मानव हितैषी विकास मॉडल हमारे समय की आवश्यकता	368-369
40.	,,	आगरा सम्मेलन एवं उसके बाद	370-373
41.	162-163 सित. 2001	दुनिया का निर्णायक क्षण महाशक्तिवाद और आतंकवाद दोनों सामाजिक तौर पर अवांछित	374-386
42.	162-163 अग.-सित. 2001	जम्मू-कश्मीर समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चा द्वारा 11 सितम्बर की विनाशकारी घटनाओं पर वक्तव्य	387-388
43.	164-165 अक्टू.-नव. 2001	राष्ट्रीय राज्य आतंकवाद को पैदा करने के मुख्य कारक राज्य और ग्रुप आंतकवाद दोनों ही अमानवीय सैनिक समाधान निरर्थक बन गया है आतंकवाद का जवाब एक प्रकृति-मानव हितैषी कार्यक्रम में निहित	389-400
44.	166-167 जनवरी 2002	शांति और समन्वय आज के समय की माँग आज सभी मानवीय झगड़ों को हल करने के लिए बातचीत ही केवल मात्र उचित मार्ग है सभी झगड़ों का तात्कालिक कारण सामाजिक अन्याय में निहित है सामाजिक अन्याय का आधार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान है एक प्रकृति एवं मानव समर्थक कार्यक्रम ही उचित जवाब है	401-405
45.	,,	भारत और पाकिस्तान के बीच बढ़ते तनाव और उसका हल विषय पर 6 जनवरी, 2002 को गांधी भवन जम्मू में रखे गये विचार-विमर्श के लिए सेमीनार में आर.पी. सराफ का वक्तव्य	406-413
46.	,,	भारत-पाक तनाव की वर्तमान स्थिति और जम्मू-कश्मीर समस्या पर अमेरिकी विदेश मंत्री कॉलिन पावेल को जे.के. समस्या का त्रिपक्षीय समाधान मोर्चा द्वारा प्रस्तुत खुला पत्र	414-416

6

47.	168-169 फरवरी 2002	श्रमिकों की तेजी से बढ़ती परेशानी से निकालने का रास्ता श्रम अधीनता को समाप्त करना और श्रम-पूँजी की भागीदारी स्थापित करना	417-433
48.	170-171 अप्रेल-मई 2002	मानव समाज में परिवर्तन और विकास को समझने का एक प्रयास	434-465
49.	172 जून 2002	दुनिया की गरीबी और असमानता पर विश्व आर्थिक मंच, संयुक्त राष्ट्र-विश्व शिखर सम्मेलन और विश्व सामाजिक मंच-2002 की विषय वस्तु और प्रकृति-मानव केन्द्रित वैकल्पिक मॉडल	466-481
50.	173-174 जुलाई-अग. 2002	महासचिव संयुक्त राष्ट्र संघ न्यूयार्क को प्रेषित पत्र जोहानिंसबर्ग में टिकाऊ विकास पर संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन-2002 को अपील चयन स्पष्ट है जीवित रहना या समाप्त होना तीसरा कोई विकल्प नहीं है हमारे भविष्य को सुरक्षित करने के लिए यह सम्मेलन एक मोड़ हो	482-501
51.	175-176 सित.-अक्टू. 2002	जोहान्सबर्ग यू.एन. पृथ्वी शिखर सम्मेलन-2002 ने टिकाऊ विकास के लिए कारपोरेट एजेण्डा को इंजिन के तौर पर पेश करके मानव समुदाय को खतरनाक रास्ते पर धकेला	502-520

मार्क्सवाद-आर्थिक रूढ़िवाद का सिद्धान्त
मार्क्सवादियों के लिए आत्म-अवलोकन का समय

(क) मार्क्सवाद छानबीन के दौर में

1. जैसे ही सोवियत यूनियन 74 वर्ष पुरानी राजकीय विचारधारा को विदाई दे रहा है, ऐसे में मार्क्सवाद अपने हिमायतियों व विरोधियों की छानबीन के दायरे में आ गया है। लेकिन इस समय यह बहस उस समय से कम रुचिकर है जब तीन वर्ष पहले पूर्वी यूरोपीय देश मार्क्सवाद को अलविदा कर रहे थे।

(ख) पुरानी दलीलों का दोहराया जाना

2. मार्क्सवादी और इसके विरोधी अपने-अपने पक्ष में प्राय: दोहराई गई पुरानी दलीलों को ही सामने ला रहे हैं। मार्क्सवादी उसी घिसी-पिटी शब्दावली संशोधनवाद या दु:साहसवाद को उद्धरित कर रहे हैं, जबकि मार्क्सवाद विरोधी उन्हीं दलीलों को दोहराते हैं कि मार्क्सवाद एक 'असत्य' है।

(ग) संशोधनवाद/दु:साहसवाद की मार्क्सवादी धारणा

3. यह धारणा मार्क्सवादी पार्टी या सरकार की प्रत्येक असफलता को संशोधनवाद या दु:साहसवाद की शब्दावली में व्याख्या करती है। संशोधनवाद वह है जो कभी तो सचेत पूंजीवादी एजेन्ट होता है और कभी कम्युनिस्ट पार्टी या इसकी सरकार में भेजा गया पूंजीवादी नुमायंदा होता है। दु:साहसवादी वह होता है जो ठोस हालात या मार्क्सवाद के बारे में दु:साहसवादी समझ के कारण कम्युनिस्ट पार्टी या इसकी सरकार को नुकसान पहुंचाता है। किसी भी सूरत में यह धारणा मार्क्सवादी सिद्धान्त—जैसा इसके मसीहाओं ने पेश किया, में कोई कमी नहीं देखती। चाहे वह सिद्धान्त यथार्थ से मेल न खाता हो।

4. लेकिन उपरोक्त थिसिस यह बताने में असफल है कि क्यों एक संशोधनवादी विघटनकारी (मसलन, सोवियत यूनियन में खुश्चोव) या दु:साहसी (मसलन, चीन में लिन पियाओ) तर्कसंगत कम्युनिस्ट रूप को बर्बाद करने में कामयाब हुआ, क्यों वह सचेत पार्टी और जागरुक लोगों को धोखा देने मे कामयाब हुआ, क्यों मार्क्सवादी 'ऐतिहासिक निर्धारणवाद' की ताकत उसे बाहर नहीं फेंक सकी, क्यों अमेरिका और बहुत से पश्चिमी देश विखण्डित नहीं हुए जबकि बहुत से संशोधनवादी वहां राज करते रहे हैं, क्यों 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' से लैस पार्टी उसे समय रहते नहीं पछाड़ पाई, क्यों नहीं कम्युनिस्ट राज्यों द्वारा गढ़ा गया 'नया आदमी' साम्यवादी स्वर्ग की रक्षा के लिए खड़ा हुआ, क्यों सोवियत लोग इस हद तक गैर हो गये कि उन्होंने महान मार्क्सवादी नेता लेनिन और अन्यों की मूर्तियां तक उखाड़ फेंकी, हालांकि यह एक गैर ऐतिहासिक कृत्य है।

(घ) गैर-मार्क्सवादियों की मार्क्सवादी असत्यता की धारणा

5. यह विषयवस्तु उजागर करती है कि जब ज्यादातर कम्युनिस्ट देशों ने मार्क्सवाद को त्याग दिया है, इसलिए वास्तविकता के मुताबिक इसकी स्थिति नहीं के बराबर है।

6. लेकिन इस विषयवस्तु में दो बिन्दुओं पर तार्किक अभाव है। पहला, यह मार्क्सवाद के सही और गलत दोनों पक्षों को दर्शाते हुए उसका कोई तार्किक विश्लेषण किए बगैर ही मार्क्सवाद के असत्यता का व्यापक सामान्यीकरण कर देती है। दूसरा, यह इसे असत्य करार देकर मार्क्सवाद के साथ भेदभाव करती है, जबकि बहुत से अन्य सामाजिक सिद्धान्तों (जैसे सामाजिक जनवाद, किन्सवाद, मुद्रावाद आदि) के साथ उसी तरह पेश नहीं आती जो भी सिर्फ आंशिक कारगर ही हुए या धार्मिक सिद्धान्तों को छूने तक से बचती है जिनका मुख्य सिद्धान्त प्रकृति और समाज के बारे में प्राकृतिक और सामाजिक यथार्थ के साथ बेमेल है।

(ड़) मार्क्सवाद पर विवेकपूर्ण पुनर्विचारों की आवश्यकता

7. चूंकि मार्क्सवाद को दोनों अति ने विकृत किया है—एक इसके वैज्ञानिक सत्य होने की घोषणा करता है और दूसरा इसे असत्य बताता है—अत: मार्क्सवाद के मुख्य सूत्र वास्तव में जिस स्थिति में है उन पर पुनर्विचार की जरूरत है।

(च) मार्क्सवाद की परिभाषा

8. संक्षेप में, मार्क्सवाद की मोटे तौर पर परिभाषा है कि यह प्रकृति, समाज और चिन्तन में क्रियाशील आम नियमों की एक वैचारिक प्रणाली है। इसके छह मुख्य भाग हैं—मार्क्सवादी दर्शन, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, पूंजीवाद का सिद्धान्त, राज्य और क्रांति तथा समाजवाद और कम्युनिज्म।

(छ) मार्क्सवादी दर्शन

9. संक्षेप में, मार्क्सवादी दर्शन मूल दार्शनिक सवाल का विश्लेषण करके मार्क्सवाद के केन्द्रीय थिसिस को अभिव्यक्त करता है। दर्शन के बारे में इसके प्रतिपादकों के मुताबिक यह पदार्थ और चेतना के बीच सम्बन्ध का सवाल है। इस सवाल का जवाब मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और दूसरे मार्क्सवादी नेताओं के अनुसार पदार्थ (अथवा प्रकृति) मूलभूत है और चेतना (अथवा मानव) गौण।

10. उपरोक्त थिसिस यथार्थ का एक पक्ष देखती है तथा दूसरे की उपेक्षा करती है। यह नीचे दिये गए तथ्यों से जाहिर है।

11. प्रथम, उपरोक्त सिद्धान्त पदार्थ और मानव चेतना के सम्बन्ध को स्थाई तौर पर क्रमश: मूलभूत और गौण स्थिति में रखकर मनुष्य को हमेशा के लिए अधिनस्थ हैसियत देता है, हालांकि हकीकत में प्रकृति और मनुष्य दोनों एक दूसरे का विकास करते हैं। मसलन खास हालात में, प्रकृति, हवा, पानी, भोजन, गुरुत्वाकर्षण आदि की अनेक प्रक्रियाओं के जरिये मनुष्य का विकास करती है, इसी प्रकार विशेष परिस्थितियों में मनुष्य स्टील, कांच और दूसरी भौतिक चीजें बनाकर प्रकृति में बदलाव लाता है।

12. द्वितीय, उक्त सिद्धान्त ने ज्ञान के प्रतिबिंबवादी (या फोटोग्राफिक) सिद्धान्त को जन्म दिया है (एंगेल्स और लेनिन दोनों इस सिद्धान्त के अलम्बरदार थे)। इसके मुताबिक चेतना महज पदार्थ का ही एक अक्स है। लेकिन यह बात तथ्यों से मेल नहीं खाती क्योंकि अगर चेतना महज पदार्थ का ही अक्स हो तो घनिष्ट दो व्यक्ति एक ही समय और स्थान पर एक ही चीज के बारे में विपरीत राय क्यों जाहिर करते हैं। और आगे, अगर चेतना महज घटनाक्रमों का ही प्रतिबिम्ब हो तो फिर मिथ्या चेतना (जिसे मार्क्स ने हेगेल के रहस्यवाद का नाम दिया था) कहां से पैदा हो जाती है या मिथ्या चेतना का भौतिक आधार क्या है? अगर चेतना का भौतिक आधार किसी सामाजिक वर्ग में निहित हो (जैसा कि मार्क्स का मानना है) तो सूर्य के बारे में उतने ही मत हों जितने वर्ग हैं। यही स्थिति हड़ताल के मुद्दे पर विभिन्न प्रकार के मजदूरों की होती। अगर चेतना का आधार कम्युनिस्ट पार्टी में निहित हो तो कम्युनिस्ट पार्टी के विभिन्न सदस्यों की किसी मुद्दे पर अलग-अलग राय क्यों होती। अगर चेतना आर्थिक हालात से उपजती हो तो एक संयुक्त परिवार में रह रहे दो भाई अपनी घरेलू समस्याओं के प्रति एक-सा रुख क्यों नहीं अपनाते?

13. इन तथ्यों से साफ पता चलता है कि चेतना न सिर्फ पदार्थ की वस्तुगतता पर निर्भर है, बल्कि कर्त्ता की मनोगतता पर भी निर्भर करती है। मनुष्य का दिमाग ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जुटाई सामग्री का निष्क्रिय भण्डार ही नहीं बल्कि वह उनका सक्रियता से विश्लेषण और व्याख्या भी करता है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जुटाई सूचनाएं तुरन्त दिमाग को प्रेषित की जाती है जहाँ अनेक दिमागी कोशिकाओं में जमा यादाश्त समेत पुराने अनुभव के आधार पर उनका विश्लेषण होता है। इसी से जाहिर है कि न्यूटन ने ही क्यों गिरते सेव को देखकर गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त इजाद कर लिया था। हालांकि सैकड़ों लोग पता नहीं कब से प्रकृति की यह क्रिया देखते आ रहे होंगे। इससे यह भी पता चलता है कि एक आम सामान्य आदमी और एक वनस्पति विज्ञानी पेड़ को अलग-अलग नजरिये से क्यों देखते हैं (क्योंकि दोनों का अनुभव अलग-अलग है)। इसी तरह किसी इमारत के बारे में किसी इंजीनियर और एक सामान्य आदमी का दृष्टिकोण अलग होता है तथा किसी मरीज के बारे में डॉक्टर और हकीम के नजरिये में अन्तर होता है (क्योंकि दोनों का बोधात्मक ज्ञान अलग-अलग है)।

14. तृतीय, सामाजिक अस्तित्व में पदार्थ की प्रभुत्वकारी और मानवीय चेतना की अधिनस्थ हैसियत होने के सिद्धान्त से ज्ञान पाने का दारोमदार वस्तुगत पदार्थ पर आ जाता है और मनोगत पहलू की कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं रहती। हालांकि अनुभव बताता है कि विज्ञान के बहुत से अहम सिद्धान्त (मसलन, कॉपरनिक्स सिद्धान्त, आइन्स्टीन सिद्धान्त आदि) मनुष्य ने परिकल्पना के आधार पर विकसित किए। इस तरह मानवीय चेतना अथवा मनुष्य ने इतिहास में प्रमुख प्रेरक भूमिका भी अदा की है।

15. विचारों की शुरूआत या मूल में कई बार पदार्थ या वस्तुगत चीज (मसलन रोशनी) हमारी ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क में आकर पहल करती है जबकि मनुष्य बाद में प्रतिक्रिया करता है। जब मनुष्य अपनी परिकल्पनाओं के आधार पर पहल करता है तो पदार्थ व वस्तुगत चीज प्रतिक्रिया दिखाती है।

16. चतुर्थ, पदार्थ या सामाजिक अस्तित्व की प्रभुत्वकारी और मानवीय चेतना (या व्यक्ति) के अधिनस्थ हैसियत होने की धारणा यह स्थापित करके कि अस्तित्व अथवा सामाजिक अस्तित्व मनुष्य की चेतना को निर्धारित करता है, आम को स्थाई तौर पर प्रमुख स्थिति और खास को गौण स्थिति प्रदान करता है। इसका मतलब है कि प्रकृति या समाज का विकास खुद-ब-खुद मनुष्यों में चेतना भर देता है, उसमें मनुष्य की अपनी कोई पहल नहीं होती। लेकिन अनुभव बताता है कि कोई अपने आप नहीं सीखता। यह तभी सम्भव है जब कोई लगातार अपने प्रयासों से कुछ ज्ञान प्राप्त करता है।

17. उपरोक्त तथ्य बताते हैं कि वास्तविकता का एकतरफा मूल्यांकन करने से यह धारणा पदार्थ और चेतना (या मनुष्य) के बीच सम्बन्ध की एकतरफा व्याख्या करती है।

18. फिर भी, दर्शन के बारे में एकतरफा मूल थिसिस देने के बावजूद मार्क्सवाद ने वास्तविकता के बारे में तीन सकारात्मक बातें कही हैं–जैसे कोई भी चीज निरपेक्ष या शाश्वत नहीं है; हर चीज लगातार बदलती रहती है तथा ब्रह्मांड और इसकी विभिन्न प्रक्रियाओं की जानकारी जुटाई जा सकती है।

(ज) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

19. संक्षेप में, मार्क्सवाद के अनुसार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति, समाज और चिंतन के विकास के आम नियमों को प्रकट करता है।

20. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सकारात्मक पहलू यह है कि यह यथार्थ के व्यवहार की वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या का एक प्रयास है। इसका नकारात्मक पहलू यह है कि अपने विश्लेषण को एक परिकल्पना या मॉडल के तौर पर प्रस्तुत करने के बजाय यह उसे सर्वव्यापी नियमों के रूप में सामने लाता है, हालांकि सच्चाई यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान अभी भी इतना सीमित है कि यथार्थ के बारे में किसी अन्तिम निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता।

21. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के तीन नियम है, अन्तरविरोध का नियम, परिमाण से गुण में रूपान्तरण का नियम और निषेध के निषेध का नियम। इन तीनों नियमों में प्रथम बुनियादी नियम है, जबकि दूसरे नियम पूरक नियम हैं।

(i) अन्तरविरोध का नियम

22. यह नियम सभी प्रक्रियाओं में परिवर्तन या रूपान्तरण के लिए सिर्फ अन्तरविरोध या संघर्ष को ही कारक मानता है। लेनिन ने कहा था कि 'विकास विपरीत तत्वों के संघर्ष से होता है।'

23. अन्तरविरोध या संघर्ष से, हालांकि यथार्थ की क्रियाशीलता का एक पहलू तो झलकता है, जबकि दूसरा पहलू नजर अन्दाज हो जाता है। यह प्राकृतिक विज्ञान और व्यवहार से जाहिर है। मसलन, विशेष हालात में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के परमाणुओं के बीच एकता से पानी बन जाता है जबकि दूसरे विशेष हालातों में पानी के अणुओं में एकता न रहने से वह टूटकर हाइड्रोजन और ऑक्सीजन में बदल जाता है। एक विशेष बिंदु

पर लोहे, कार्बन, निकल और क्रोमियम के परमाणुओं के बीच एकता स्टील को जन्म देती है जबकि बालू, सोढा-क्षार और चूना-पत्थर के परमाणुओं के बीच एकता से काच बनता है। प्रोटोन और न्यूट्रोन के बीच एकता न्यूक्लियस को जन्म देती है। प्रोटोन और न्यूट्रोन के 274 ऐसे संमिश्रण हैं जिन्हें स्थिर न्यूक्लाइड कहा जाता है। प्रकाश तीन मूल रंगों– लाल, नीला और हरा का संमिश्रण है। वायु भी गैसों का ही मिश्रण है। पैट्रोल हाईड्रोजन और कार्बन का संयोग है। आम नमक क्लोराइड और सोडियम की एकता का परिणाम है। रासायनिक यौगिकों की संख्या लाखों में है। सूर्य का प्रकाश और ताप एक ऐसी विलयन क्रिया द्वारा पैदा होता है, जिसमें हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित होती है। समूचा जीवन ऑक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन (जिसके संयोग से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स और फैट्स बनते हैं) के अलावा कुछ खनिज पदार्थों और विटामिनों से मिलकर बना है। अभी तक 92 अलग-अलग किस्म के परमाणु ही ज्ञात हुए हैं। विज्ञान को अभी तक ज्ञात 106 तत्व, अंतरिक्ष में विभिन्न परमाणुओं की अलग-अलग किस्मों की व्यवस्था है, वगैरह-वगैरह।

24. इसी प्रकार, समाज में, एकता और संघर्ष विशेष हालात में अपनी-अपनी भूमिका अदा करते हैं। मसलन, विशेष हालात में, कुछ व्यक्तियों की एकता से परिवार बनता है। अन्य किसी हालात में संघर्ष परिवार को बांट देता है। विशेष हालात में, प्रोग्राम पर एकता से पार्टी बन जाती है, अन्य किसी विशेष हालात में नीति या प्रोग्राम पर मतभेद पार्टी को दो या दो से ज्यादा हिस्सों में बांट देता है। विशेष परिस्थितियों में, पश्चिमी पाकिस्तान व पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) समान आधार पर एक देश में थे। अन्य विशेष परिस्थितियों में, उनके मतभेदों ने उन्हें दो देशों में विभाजित कर दिया।

25. अन्तरविरोध के मूल नियम का एक और एकतरफापन भी है। यह अंदरूनी अन्तरविरोध को ही विकास की प्रेरक शक्ति मानता है। इससे पहले, यांत्रिक भौतिकवाद का मत था कि गति का कारण कोई बाहरी शक्ति होती है। लेकिन हकीकत में अंदरूनी और बाहरी कारक दोनों (एकता और संघर्ष के जरिये) विशेष हालात में बारी-बारी से प्रक्रियाओं के विकास में अपनी-अपनी भूमिकाएं निभाते हैं (मसलन, एक बाहरी कारक, बिजली गिरने से मनुष्य की मौत होना, या मनुष्य द्वारा पत्थर को पीसकर रेत बनाना।)

(ii) परिमाण से गुण में रूपान्तरण का नियम

26. इस नियम के मुताबिक जब परिमाणात्मक परिवर्तन पर्याप्त मात्रा में जमा हो जाते हैं, तभी गुणात्मक परिर्वतन होता है। यानि गुणात्मक परिवर्तन का दारोमदार परिमाणात्मक परिवर्तनों पर है। लेकिन वैज्ञानिक तथ्य बताते हैं कि परिमाण और गुण दोनों करीबी तौर पर अन्तरसम्बन्धित है। मसलन, हर परमाणु की एक विशिष्ट संख्या और द्रव्यमान है। प्रत्येक तत्व में परमाणुओं की विशिष्ट संख्या होती है। हाइड्रोजन की एक, हीलियम की दो और कार्बन की छह परमाणु संख्या है। किसी पिंड का द्रव्यमान उसमें मौजूद ऊर्जा का पैमाना है यानि $E=mc^2$। परमाणु संख्या और उनके क्रम विन्यास में परिवर्तन से अलग-अलग रासायनिक यौगिक पैदा होते हैं। यह ऑक्सीजन अणु के दो परमाणुओं में एक परमाणु और जोड़ देने से वह ओजोन में बदल जाती है। हरेक खाद्य

पदार्थ में ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा है जिसे केलॉरी में मापा जाता है (मसलन, एक ग्राम चिकनाई में 9 केलॉरी ऊर्जा होती है)। रंगों में फर्क उनकी विद्युत चुम्बकीय तरंगों में फर्क की वजह से होता है, वगैरह-वगैरह।

(iii) निषेध के निषेध का नियम

27. यह नियम बताता है कि कोई प्रक्रिया अंतत: दूसरी प्रक्रिया द्वारा नकार दी जाती है। लेकिन यह नियम तथ्यों से मेल नहीं खाता। मसलन, पानी का बर्फ में परिवर्तन होने से पानी का निषेध नहीं होता क्योंकि बर्फ भी यथासमय पानी में बदल जाती है। भौतिक प्रक्रियाओं (मसलन वायु, गैसों आदि) में विपरीत परिवर्तन आम बात है। अमूमन किसी प्रक्रिया के विकास का अंतिम परिणाम उसका दूसरी प्रक्रिया में रूपांतरित हो जाना है। रूपान्तरण निषेध नहीं है। निषेध का मतलब है स्थान, काल, ऊर्जा, पदार्थ आदि की निरन्तरता भंग हो जाना जबकि रूपान्तरण का मतलब उनमें निरन्तरता बने रहना है। निषेध की धारणा इस वैज्ञानिक धारणा को नकारती है कि स्थान, काल, ऊर्जा और पदार्थ अविनाशी है।

28. उपरोक्त तथ्य बताते हैं कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के तीनों नियम यथार्थ की विभिन्न प्रक्रियाओं की एकतरफा व्याख्या है।

(झ) ऐतिहासिक भौतिकवाद

29. मार्क्सवाद के मुताबिक ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास का वैज्ञानिक सिद्धान्त है। इसने नीचे दिए मुख्य सूत्र प्रतिपादित किए है–

(i) भौतिक उत्पादन अथवा उत्पादन प्रणाली, सामाजिक विकास को निर्धारित करने वाला मुख्य तत्व है।

(ii) उत्पादन प्रणाली के दो घटक है–उत्पादन शक्तियां और उत्पादन सम्बन्ध। उनके बीच अन्तरविरोध से समाज में तबदीली को बल मिलता है।

(iii) उत्पादन सम्बन्ध समाज का आर्थिक आधार है। इसी आधार से ऊपरी ढांचा यानि राजनैतिक व सांस्कृतिक विचार और संस्थाएं जन्म लेती हैं।

(iv) उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों के बीच अन्तरविरोध वर्ग संघर्ष के जरिये हल होता है। यही वर्ग संघर्ष मानव समाज के विकास का स्रोत है।

(v) जनता ही इतिहास बनाती है।

(vi) मनुष्यों को दूसरे पशुओं से अलग करने वाली चीज उनका सामाजिक उत्पादन ही है।

(vii) मनुष्य सामाजिक प्राणी है।

(viii) श्रम ने मनुष्य को जन्म दिया है।

(ix) टेक्नोलॉजी तटस्थ होती है।

(I) उत्पादन प्रणाली

30. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि उत्पादन प्रणाली सामाजिक विकास को निर्धारित करने वाला तत्व है, एक सकारात्मक कथन है। लेकिन इससे यथार्थ की आंशिक व्याख्या ही होती है। यह इसलिए, क्योंकि भौतिक उत्पादन मनुष्य की तीन बायोलोजिकल इच्छाओं में से एक को संतुष्ट करता है। बाकी दो बायोलोजिकल (मूल) इच्छाएं हैं–(i) किसी भी खतरे से जीवन की सुरक्षा और (ii) मानवीय प्रजाति का प्रजनन यानि यौन इच्छा, ये तीनों बायोलोजिकल इच्छाएं समान महत्व की है। और किसी विशेष समय में इनमें से एक मूलभूत स्थिति में होती है और बाकी दो गौण भूमिका अदा करती हैं, मनुष्य की गैर-जैविक (या सामाजिक) इच्छाओं में (i) शरीर और मन की स्वतन्त्रता की इच्छा, (ii) सत्ता और यश पाने की इच्छा, (iii) किसी चीज का सृजन करने की इच्छा, (iv) हर कहीं विजयी होने की इच्छा, (v) डर से मुक्त रहने की इच्छा, (vi) दूसरों की सेवा करने की इच्छा, (vii) बदला लेने की इच्छा शामिल है। कई बार तो कोई गैर-जैविक इच्छा भी सर्वोपरि बनकर मूल भूमिका निभाती है। किसी के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नित्य घटित होती उपरोक्त इच्छाओं में से प्रत्येक के महत्व को देखा जा सकता है। मसलन, आइनस्टीन के सापेक्षता का सिद्धान्त, इंदिरा गांधी की हत्या या इंग्लैण्ड के महाराजा एडवर्ड अष्टम का अपनी प्रियसी के खातिर राजपाट का त्याग, आदि कोई आर्थिक वजह से नहीं किया था।

(II) उत्पादन शक्तियां और उत्पादन सम्बन्ध

31. मार्क्सवाद का यह मूल सूत्र कि उत्पादन शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों के बीच अन्तरविरोध से समाज में तब्दीली को बल मिलता है, यह तथ्यों से प्रमाणित नहीं होता। मार्क्सवादी यह निष्कर्ष कि पूंजीवादी देशों में ठहरे हुए पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों और वैज्ञानिक तकनीकी तरक्की के कारण लगातार पूंजीवादी चरित्र वाली उत्पादन शक्तियों का समाजवादी चरित्र में बदलने के बीच बढ़ता अन्तरविरोध पूंजीवादी व्यवस्था का खात्मा करेगा और इसे समाजवादी/साम्यवादी व्यवस्था में बदल देगा। इस निष्कर्ष की व्यावहारिकता की किसी भी पश्चिमी देश ने पुष्टि नहीं की, परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है।

(III) आर्थिक आधार और ऊपरी ढांचा

32. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि उत्पादन सम्बन्धों अथवा आर्थिक आधार पर ऊपरी ढांचा अथवा राजनैतिक व सांस्कृतिक विचार एवं संस्थाएं खड़ी होती हैं। यह भी तथ्यों से प्रमाणित नहीं होता। मसलन, पूंजीवादी आर्थिक आधार का सार 'अतिरिक्त मूल्य' मार्क्स के ही दिमाग में क्यों आया, यह सैकड़ों यूरोपीयन मजदूरों के दिमाग में क्यों नहीं आया? यदि इस धारणा की हम मार्क्सवाद के उस सिद्धान्त के आधार पर व्याख्या करें कि यूरोप के मजदूरों में स्वरूप के पीछे सार को देखने की क्षमता नहीं थी तो इससे साफ जाहिर होता है कि स्वरूप व सार को समझने की क्षमता मानव सोच में निहित होती है। आर्थिक आधार के प्रकटावे में नहीं।

33. विचारों के वर्गीय चरित्र के बारे में जहाँ तक तालुक है, अनुभव और तर्क दोनों बताते हैं कि अगर विचारों का सचमुच वर्गीय चरित्र होता तो, मार्क्सवाद अमेरिका, जापान तथा पश्चिमी देशों में आसानी से फलता-फूलता तथा मामूली तर्कबुद्धि ने विश्व सर्वहारा को अपनी क्रांति करने के लिए प्रेरित किया होता।

(IV) वर्ग संघर्ष

34. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि वर्ग संघर्ष सामाजिक विकास का स्रोत है। यह भी वर्तमान और पूर्व के तथ्यों से प्रमाणित नहीं होता। मार्क्सवाद के बाद का सारा इतिहास गवाह है कि सचमुच के सर्वहारा (मार्क्सवाद के मुताबिक सबसे ज्यादा क्रांतिकारी वर्ग) ने कभी भी पूंजीपतियों के खिलाफ कोई गम्भीर राजनैतिक लड़ाई नहीं छेड़ी। विगत ऐतिहासिक अनुभव यह भी बताता है कि किसी भी वर्ग ने अपना वर्ग संघर्ष खुद ने नहीं छेड़ा। यह इसलिए कि वर्ग कभी भी एकीकृत, संगठित, अनुशासित और वैचारिक तौर पर प्रेरित सामाजिक इकाइयां न रहे हैं और न अब हैं। पूर्व औद्योगिक काल के पहले, विशेष हालात में किसान कभी एक राजा की तरफ होते थे तो कभी दूसरे की तरफ। हमेशा राजाओं के बीच बंटे रहते थे। आधुनिक सर्वहारा वर्ग भी कमोबेश वही स्थिति अख्तियार किये हुए है–कुछ मजदूर एक ट्रेड यूनियन की तरफ है तो कुछ दूसरी तरफ झुकाव रखते हैं। मानव जाति की मुक्ति की बात छोड़िये, मजदूर वर्ग तो अपना एका करने में भी सफल नहीं हो सका और विशेषकर तीसरी दुनिया में तो उचित मजदूरी भी नहीं ले पाता। सर्वहारा के नाम से कार्यरत कम्युनिस्ट पार्टियां, मजदूरों को एक राजनैतिक इकाई के तौर पर प्रेरित और संगठित करने में कहीं भी सफल नहीं हो सकी। यहां तक कि ट्रेड यूनियन के क्षेत्र में भी वे मजदूरों में अपना वर्चस्व नहीं रखती। सिर्फ उन्हीं जगहों पर ये राजनैतिक आधार बनाने योग्य हो सकीं जहाँ उन्होंने अपनी पार्टी की राष्ट्रीय छवि दिखाई।

(V) जनता ही इतिहास की निर्माता

35. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि जनता ही इतिहास बनाती है, यह बात मार्क्सवादी ऐतिहासिक प्रक्रिया में ठीक नहीं लगती। इसके अनुसार जनता के विचार आर्थिक आधार से आते हैं, यह आधार उत्पादन शक्तियों के अनुरूप होता है जो खुद सामाजिक विकास के निर्णायक तत्व उत्पादन प्रणाली का एक भाग है।

(VI) मनुष्य को अलग करने वाला तत्व

36. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि सामाजिक उत्पादन मनुष्य को दूसरे पशुओं से अलग करने वाला तत्व है, यह आंशिक वास्तविकता ही जाहिर करता है। मनुष्य पशुओं से जैविक और सामाजिक लिहाज से अलग है। जैविक तौर पर वह पशु जगत से उस समय अलग हुआ जब उसके हाथ आजाद हुए और उसके दिमाग ने मौजूदा मानवीय रूप अख्तियार किया। यानि जब उसकी सोच (दिमाग) और अमल (हाथ) करीब-करीब आधुनिक मनुष्य जैसे हो गये। सामाजिक तौर पर वह औजार बनाने और उन्हें इस्तेमाल करने के कारण पशुओं से अलग है। इस वजह से वह सामाजिक उत्पादन करने में ही नहीं बल्कि प्रकृति की विभिन्न प्रक्रियाओं की अधिकाधिक जानकारी जुटाने में भी सक्षम है।

(VII) मनुष्य–एक सामाजिक प्राणी

37. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, यह भी आंशिक सच्चाई है। यह इसलिए, क्योंकि मनुष्य का शरीर पाचन और निकास के आम जैविक नियम के अनुसार ही अस्तित्व रखता है, हरकत करता है, बदलता है। उसके जन्म, विकास, क्षय और मौत की प्रक्रिया जैविक आधार पर होती है। इसमें शक नहीं कि मनुष्य का सामाजिक चरित्र उसके जैविक पक्ष जितना ही महत्वपूर्ण है। मसलन, सुस्पष्ट वाक अंग मनुष्य का जैविक चरित्र रखते हैं पर उसकी बोल-चाल और भाषा सामाजिक घटनाक्रम है। इस प्रकार समकालीन इतिहास वाला मनुष्य जैविक-सामाजिक है–जिसमें प्रत्येक पक्ष विशेष हालात में बारी-बारी से मूलभूत स्थिति ग्रहण करता है।

(VIII) श्रम ही मनुष्य का रचयिता

38. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि श्रम ने ही मनुष्य को जन्म दिया, यह दो बिंदुओं पर सही रास्ते से विचलित होता है। प्रथम, अकेले श्रम पर जोर देकर यह मानव चेतना की उपेक्षा करता है। चेतना और श्रम (यानि व्यवहार) मानव स्वभाव के दो अटूट पक्ष है। व्यवहार चेतना को जन्म देता है जबकि चेतना व्यवहार का मार्गदर्शन करती है। यह उनका अंतरसंबंध है जिसमें कभी व्यवहार और कभी चेतना अगुवा स्थिति में होती है। द्वितीय, मनुष्य प्रकृति से जुड़ कर ही श्रम करता है। प्रकृति के साथ उसका सिर्फ मनोगत और वस्तुगत का ही नहीं बल्कि वस्तुगत और मनोगत का भी संबंध है। अंतरक्रिया के इस सम्बन्ध में कभी मनुष्य प्रकृति को बदलता है और कभी प्रकृति मनुष्य में परिवर्तन लाती है।

(IX) टेक्नोलॉजी एक तटस्थ तत्व

39. मार्क्सवाद का यह सूत्र कि टेक्नोलॉजी निष्पक्ष होती है, यह इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि प्रत्येक टेक्नोलॉजी मनुष्य को विशेष श्रम से बांधती है। मनुष्य किसी दूसरे तरीके से नहीं बल्कि मशीन के नियमों के मुताबिक अपना व्यवहार करता है मनुष्य टेक्नोलॉजी की रचना करता है लेकिन बाद में उसके नियमों में बंध जाता है।

(X) पूंजीवाद का मार्क्सवादी सिद्धान्त

40. पूंजीवाद का मार्क्सवादी सिद्धान्त, पश्चिमी देशों में चल रही समकालीन सामाजिक व्यवस्था की एक समीक्षा है। मूल सिद्धान्त मार्क्स ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'पूंजी' (तीन खंड) में प्रतिपादित किया तथा एंगल्स और लेनिन ने इसे और आगे विकसित किया।

41. इस सिद्धान्त के मुख्य सूत्र नीचे दिये गये हैं–

* पूंजीवाद एक शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का मुख्य अन्तरविरोध उसकी उत्पादन शक्तियों के सामाजिक चरित्र और उसके उत्पादन संबंधों के निजी पूंजीवादी स्वरूप के बीच है। यह माल के उत्पादन के आधार पर संचालित होती है। किसी माल में निहित श्रम उसके मूल्य को निर्धारित करता है। पूंजीवादी माल उत्पादन का लक्ष्य और पूंजीपतियों की सम्पन्नता का स्रोत मजदूरों द्वारा अतिरिक्त मूल्य

पैदा करना और पूंजीपतियों द्वारा उसे हड़पना है। अतिरिक्त मूल्य मजदूर के श्रम से पैदा हो रहा वह मूल्य है जो उसकी श्रम शक्ति के मूल्य से फालतू है। अतिरिक्त मूल्य का पैदा होना और उसे हड़पना पूंजीवादी उत्पादन का मूल सम्बन्ध व पूंजीवाद का बुनियादी आर्थिक नियम है।

* पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया में मशीनें श्रम की जगह लेने लगती हैं और उत्पादन की अराजकता से समय-समय पर आर्थिक संकट पैदा होते हैं। इससे लोगों की भौतिक तकलीफें बढ़ती हैं, मध्यम वर्ग लुप्त होने लगता है और सर्वहारा वर्ग की संख्या में बढ़ोतरी होती है। पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ मजदूर वर्ग के शोषण की मात्रा बढ़ती जाती है, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के सभी अन्तरविरोध तेज हो जाते हैं और वर्ग संघर्ष के फैलने से उसकी प्रचण्डता बढ़ जाती है। मनोगत और वस्तुगत परिस्थितयां परिपक्व होने से सर्वहारा क्रांति पूंजीवादी व्यवस्था को उच्चतर सामाजिक व्यवस्था यानि साम्यवाद में बदल देती है।

* 20वीं सदी की शुरुआत से लेनिन (1917) ने इस सिद्धान्त में यह जोड़ दिया कि पूंजीवाद विकसित होकर साम्राज्यवाद की अवस्था में पहुच चुका है जो एक परजीवी, क्षयग्रस्त और मरणासन्न पूंजीवाद की अन्तिम अवस्था है।

* लेनिन की मृत्यु के बाद, तीसरे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने घोषित कर दिया कि पूंजीवाद अपने आम संकट की तीसरी अवस्था में दाखिल हो चुका है और ऐतिहासिक तौर पर पुराना पड़ गया है।

42. पूंजीवाद के मार्क्सवादी सिद्धान्त ने पूंजीवादी देशों में कतई काम नहीं किया। इसका कारण पूंजी के बारे में मार्क्सवादी गलत धारणाओं में निहित है। जो पूंजी को केवल पूंजीपति द्वारा मजदूरों का शोषण करके हड़पी गई श्रम की पैदावार समझती है। यह गलत धारणा, पहले तो टेक्नोलॉजी की भूमिका की उपेक्षा करती है जो सामाजिक उत्पादन में समान महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। टेक्नोलॉजी के महत्व को इस तथ्य से देखा जा सकता है कि ऑटोमेटिक उद्यम किसी भी अधिसंख्य मजदूरों वाली फैक्ट्री से ज्यादा अतिरिक्त मूल्य (या मुनाफा) कमाता है। सारी तीसरी दुनिया (समेत चीन और मार्क्सवादी पश्चिम बंगाल सरकार) अतिरिक्त श्रम के बावजूद पूंजी की तंगी से ग्रसित है और नई टेक्नोलॉजी को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा रखती है। हकीकत में तकनीकी संसाधन और मानवीय संसाधन (यानि मानसिक और शारीरिक श्रम) दोनों पूंजी के अभाज्य तत्व है। जिनमें से प्रत्येक एक वक्त मूल भूमिका निभाता है जबकि दूसरा गौण स्थिति में होता है। फिर भी, एकतरफापन के बावजूद इतिहास में पहली बार मार्क्सवादी सिद्धान्त ने पूंजी में मानव संसाधन की भूमिका को उजागर किया। दूसरे, पूंजी की मार्क्सवादी गलत धारणा मजदूर वर्ग पर ज्यादा जोर देती है (मार्क्सवाद के अनुसार केवल मजदूर वर्ग ही धन को पैदा करने वाला है) और तकनीक के रचयिताओं और प्रोत्साहित करने वालों की भूमिका को कम आंकती है।

43. ये दोनों गलत धारणाएं पश्चिमी देशों के तुलनात्मक तौर पर ज्यादा जागरुक लोगों (मजदूरों सहित) को प्रेरित करने में असफल हुई। यहां कम्युनिस्ट पार्टियों की भी

भूमिका मामूली रही। दूसरी तरफ, तकनीकी तरक्की ने समय के साथ-साथ सिर्फ सामाजिक उत्पादन को ही नहीं बढ़ाया बल्कि पश्चिम में जीवन स्तर को भी उन्नत किया।

44. तकनीकी तौर पर अल्प विकसित देशों में से कुछ देशों में ही मार्क्सवादी सिद्धान्त ने काम किया। यहां लोगों को प्रेरित करने वाला पहलू न तो पूंजीवाद का मार्क्सवादी सिद्धान्त था न ही सर्वहारा वर्ग का अन्तर्राष्ट्रीयवाद, बल्कि यह प्रेरणा उपनिवेश-विरोधी राष्ट्रवाद और आदिम समतावाद की वजह से मिली थी।

(ट) राज्य और क्रांति

45. राज्य और क्रांति का मार्क्सवादी सिद्धान्त ऐतिहासिक भौतिकवादी समझ से पैदा हुआ। यह सिद्धान्त राज्य की जन विरोधी संस्था होने की गलत समझ रखता है, इसे क्रांतिकारी हिंसा से हटाये जाने की व्याख्या करता है, सर्वहारा तानाशाही को स्थापित करने की बात कहता है और अन्ततः राज्य के खात्मे की भविष्यवाणी करता है।

46. राज्य के चरित्र का जन विरोधी होने का जहां तक ताल्लुक है कोई भी जनविरोधी संस्था हजारों सालों तक चल नहीं सकती। विगत की क्या कहनी है, यहां तक कि अभी तक की शासक कम्युनिस्ट पार्टियों ने इस संस्था को कमजोर करने के बजाय इसे और मजबूत किया। जहां तक क्रांतिकारी शक्ति के उपयोग का सवाल है यह इतिहास में हमेशा विशेष समय व स्थान से जुड़ी रही। वर्तमान समस्याओं के समाधान में शक्ति का इस्तेमाल महत्वहीन होता जा रहा है। सर्वहारा की तानाशाही का जहां तक सम्बन्ध है, राज्य को चलाने के लिए कोई स्थाई ऐतिहासिक एजेन्सी नहीं थी और न ही भविष्य में कोई ऐसी एजेन्सी हो सकती है। राज्य के खात्मे का जहां तक सम्बन्ध है राज्य के चरित्र और ढांचे के सामाजिक बदलाव के साथ-साथ लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। यहां तक कि आज भी राष्ट्रीय राज्य क्षेत्रीय महासंघीय राज्य के रूपांतरण की तरफ है–अंततः यह एक अन्तरराष्ट्रीयवादी केन्द्र की तरफ अग्रसर है। चाहे इसका चरित्र व स्वरूप कुछ भी हो, पर नजदीक भविष्य में लोगों के मसलों का प्रबंधन करने वाले प्रजातांत्रिक केन्द्र के खात्मे की कोई सम्भावना नहीं है, बहरहाल, कोई भी चीज शाश्वत नहीं है।

(ठ) समाजवाद और कम्युनिज्म

47. समाजवाद और कम्युनिज्म का मार्क्सवादी सिद्धान्त एक मनोगत सिद्धान्त है जो सर्वहारा वर्ग से मानव जाति की मुक्ति कराने मात्र की ही उम्मीद नहीं रखता बल्कि धरती पर कम्युनिस्ट स्वर्ग स्थापित करने की भी आशा रखता है। यह विशेष ऐतिहासिक सन्दर्भ में प्रत्येक चीज को जांचने के तर्कसंगत उसूलों का उल्लंघन करता है।

(ड) निष्कर्ष

48. उपरोक्त विवरण सुझाते हैं कि यथार्थ और इसकी विभिन्न प्रक्रियाओं का मार्क्सवादी विश्लेषण न तो यह 'वैज्ञानिक सत्य' है जैसा कि मार्क्सवादियों द्वारा दावा किया गया है न ही 'असत्य' है जैसा कि मार्क्सवाद विरोधियों द्वारा दलील दी गई है। यह एकतरफा है।

49. लेकिन प्रकृति और समाज के बारे में अपने एकतरफा रुख के बावजूद मार्क्स ने नई जमीन तैयार करके मानव चिंतन में अनेक लाभदायक योगदान दिए मसलन, दुनिया

में कुछ भी निरपेक्ष व शाश्वत नहीं होता। हर चीज लगातार परिवर्तन में रहती है, ब्रह्मांड और उसकी विभिन्न प्रक्रियाओं को जाना जा सकता है। अंतरविरोध परिवर्तन का एक तरीका है (एक मात्र नहीं), सामाजिक विकास में आर्थिकता एक महत्वपूर्ण पहलू है (एक मात्र नहीं), मानव संसाधन (या श्रम) पूंजी का एक तत्व है (मात्र अकेला नहीं), मनुष्य का सामाजिक स्वभाव इत्यादि। अतः उनका हमेशा दुनिया के महान विचारकों में स्थान रहेगा।

50. मार्क्सवाद की अप्रासंगिकता को स्वीकार करने से उन लोगों को भारी धक्का लगा है जो इसे 'शाश्वत सत्य' मान रहे हैं और जो समर्पित होकर मार्क्सवाद के लिए त्याग कर रहे हैं। लेकिन हकीकत को मानने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है जो हमेशा कठमुल्लावाद को रद्द करने की मांग करता है, चीजों का निर्णय तथ्यों के आधार पर करना और उन सभी धारणाओं का पुनः मूल्यांकन करना जो नये तथ्यों व अनुभवों से मेल नहीं खाती हो।

(26-9-91)

* * *

गांधीवाद - संशोधित हिन्दू मानवतावाद

I. एक अति विशिष्ट व्यक्तित्व

1. ''आने वाली संतानें हो सकता है, इस बात पर बहुत मुश्किल से यकीन करें कि हाड-माँस का पुतला ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व कभी हमारी इस धरती पर रहा था'' ये शब्द गांधी के बारे में महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन के हैं। बहुत से विख्यात गैर भारतीयों, जिनमें रोमाँ रौलाँ, ई एम फॉस्टर, आर्नोल्ड टोयन्बी, एल्डोस हक्सले, लुइ फिशर, रुजवेल्ट, चर्चिल, मेक्ऑर्थर इत्यादि ने गांधी की महानता को पहचाना था। एक पश्चिमी प्रशंसक ने गांधी को 'गौतम बुद्ध के बाद सबसे महान् भारतीय तथा ईसामसीह के बाद सबसे महान् व्यक्तित्व के रूप में वर्णित किया है।'

2. भारत में गांधी के आलोचक तथा प्रशंसकों में से एक राम मनोहर लोहिया ने कहा, 'अगर मैं गांधीजी के बारे में इस तरह (राजकोट उपवास के लिए गांधीजी की आलोचना करने के बाद) कहने का साहस करता हूँ तो मैं उन्हें 10 शताब्दियों में एक महान् व्यक्तित्व के पदार्पण के रूप में देखता हूँ।' सन् 1921 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक लेख में जहाँ गांधी के नेतृत्व में चल रहे असहयोग आन्दोलन की आलोचना की है, वहीं लिखा है–'महात्मा गांधी आये और करोड़ों लोगों की झोंपड़ियों के दरवाजे तक पहुँचे, उन्हीं जैसी पोशाक धारण की और उनसे उन्हीं की भाषा में बातचीत की.... जो इस तरह कार्यवाहियां हुई हैं वे किसी भी तरह आजादी से कम नहीं है। यह अपने आप में देश की उपलब्धि है।' 6 सितम्बर 1954 को भीमराव अम्बेडकर (जो प्राय: गांधीजी की आलोचना करते रहे हैं) ने राज्यसभा में बोलते हुए कहा, 'मैं उनकी इज्जत करता हूँ और मैं सुझाव देता हूँ कि गांधीजी के नाम पर अछूतों को बसाने या विकास करने के लिए गांधी ट्रस्ट फंड की स्थापना करनी चाहिए। आखिरकार, हम सबके मुताबिक अछूत उनके लिए सबसे अधिक नजदीकी और प्यारे थे और ऐसा कोई कारण नहीं है कि मि. गांधी स्वर्ग से भी इस परियोजना को आशीर्वाद न दें।'

II. गांधीजी की महानता का रहस्य

3. उनकी महानता का रहस्य क्या था? ऐसे व्यक्तित्व–जिसने अपना जीवन एक डरपोक लड़के की तरह शुरू किया, प्राय: लड़कों के चिढ़ाने के भय से स्कूल से भाग जाने वाले; जो 1947 से पहले हिन्दुस्तान की सबसे ज्वलन्त समस्या को हल नहीं कर पाया; यानि, हिन्दू-मुस्लिम संबंधों का सवाल जिसने आखिर भारत का विभाजन करवा दिया; भारत विभाजन के बाद जिसने स्वयं खुले में स्वीकार किया कि मैं अपने जीवन के मिशन में असफल हो चुका हूँ और जो अपने ही सहधर्मी धर्मान्ध व्यक्ति की गोली से मारा गया–की हम व्याख्या कैसे करें? इस महानता का कारण उनके असीम व्यक्तिगत गुणों–अपने उद्देश्य के प्रति अन्तहीन समर्पण, साध्य और साधन की एकता के प्रति उनका दृढ़ विश्वास और उनके आत्मत्याग के दृष्टांत, यानी अपने जीवन के तौर-तरीके में आत्म परित्याग को

अपनाने (उदाहरणतया, राजनीतिक सत्ता और सम्मान जो उन्होंने हासिल किया उसका उपयोग उन्होंने कभी भी व्यक्तिगत फायदे के लिए नहीं किया, किसी पद की लालसा नहीं रखी, गलतियों को खुले में स्वीकार किया, नम्रता, आत्म-उत्पीड़न, आत्मत्याग आदि)–के कुल योगफल में निहित है। इस प्रकार, एक मनुष्य के तौर पर उनके गुणों का भण्डार काफी बड़ा था।

III. गांधीवाद से सम्बन्धित वास्तविक मुद्दा

4. गांधी और गांधीवाद की महानता पर इस देश में काफी हद तक वाद-विवाद होता है। परन्तु यहाँ इस बात पर बहुत कम वाद-विवाद होता है कि इस सिद्धान्त का आखिरी परिणाम, यानी भारत के दो हिस्सों के साम्प्रदायिक बंटवारे के रूप में क्यों निकला। उनके इरादों–यानी, हिन्दू-मिस्लम एकता के आधार पर एक संयुक्त भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने–के बिल्कुल विपरीत नतीजा क्यों सामने आया। 1947 के पहले के भारत की ठोस वास्तविकता के अनुसार गांधी की राष्ट्रीय आन्दोलन की रणनीति प्रासंगिक क्यों नहीं बन पाई और क्यों यह लगातार 1947 के बाद की भारतीय वास्तविकता के साथ भी असंगत चली आ रही है। स्पष्टतया, इस तरह का वाद-विवाद तर्कसंगत तौर पर गांधीवाद के समस्त सिद्धान्त और व्यहवार की आलोचनात्मक पुन: व्याख्या की मांग करता है।

IV. इसकी सैद्धान्तिक प्रणाली

5. गांधीवादी विचारधारा का क्रमबद्ध वर्णन मौजूद नहीं है। गांधी ने बहुत लिखा है और लगभग सभी सामाजिक विषयों को छुआ है परन्तु उसने कभी भी अपनी सैद्धान्तिक पद्धति के आधारभूत मतों की स्थापना नहीं की है। इसके अतिरिक्त, उनके लेखन के सम्पूर्ण ग्रन्थों में एक जगह की धारणा दूसरी जगह की धारणा से अलग है यानी विचारों की स्थिरता की कमी है। विचारों की अस्थिरता के कारण की व्याख्या नहीं मिलती है, यानी कि गांधीजी के विचारों की अस्थिरता का कारण क्या उनकी धारणाओं का व्यवहार के अनुकूल नहीं होने में है अथवा सामाजिक हालातों में बदलाव के कारण उन्होंने अपने भिन्न विचार बनाए हैं; इस बात का तर्कसंगत उत्तर नहीं मिलता है।

6. उदाहरण के लिए, सत्याग्रह के प्रति उनके रुख के संबंध में स्थिति यह रही है कि उन्होंने पहले इसे एक राजनीतिक तकनीक (जिसको 'कमजोर की अहिंसा' के नाम से पुकारा गया) के रूप में, 1899 के बोएर युद्ध तथा 1906 में दक्षिण अफ्रीका के जुलू विद्रोह एवं भारत में प्रथम महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का समर्थन करने में उपयोग किया। प्रथम महायुद्ध में समर्थन के लिए भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने गांधीजी को हिन्द केसरी का मेडल पुरस्कार में प्रदान किया। 1920 के बाद सत्याग्रह को गांधीजी ने एक महान् उसूल में बदल दिया। सत्याग्रह को एक स्वीकृत मत (जिसे 'बहादुरों की अहिंसा' का नाम दे दिया) की संज्ञा दी गई तथा इसके तहत हिंसा के किसी भी रूप को समर्थन नहीं करने एवं अहिंसा को सभी जगह व्यवहार में लागू करने का सिद्धान्त अपनाया। उन्होंने सोचने और करने में तथा यहाँ तक कि विरोधी से निपटने में भी इसी सिद्धान्त को अपनाने पर जोर दिया।

7. पुन: अहिंसा के प्रति उनके और अधिक लगाव के संबंध में स्थिति यह है कि वे इसके सम्बन्ध में अन्तरविरोधी स्थितियाँ अख्तियार करते रहे हैं। जैसे कि 1928 में

उन्होंने लिखा, 'अगर यहाँ राष्ट्रीय सरकार होती तो हालांकि मैं खुद सीधे किसी युद्ध में भाग नहीं लेता, परन्तु मैं ऐसे अवसरों को पहचानता जब मेरा कर्त्तव्य बनता कि जो लोग इसके लिए फौजी ट्रेनिंग प्राप्त करना चाहते हैं मैं उनके समर्थन में वोट डालूं।'[1] जुलाई 1939 में गांधीजी ने जर्मनी में हिटलर की सरकार को युद्ध के तरीके को त्यागने की अपील की थी।[2] गांधीजी ने ब्रिटेन की चर्चिल सरकार को देश की रक्षा नहीं करने और इसका नियंत्रण हिटलर की सेना के हाथों सौंपने की सलाह दी थी। मार्च 1942 में सर स्टेफोर्ड क्रिप्स के साथ गांधीजी ने वार्ताओं में अहिंसा के मसले को नहीं उठाया। हालांकि, अगर ये वार्ताएं सफल हो जाती तो कांग्रेस ब्रिटेन और उसके सहयोगियों के पक्ष में युद्ध के अभियान में सक्रिय भागीदारी निभाती। अगस्त 1942 में भारत छोड़ो प्रस्ताव पर जोर देते देते हुए उनका विचार था कि स्वतंत्र भारत अपने सभी संसाधनों को नाजी एवं फासिस्ट हमले के खिलाफ संघर्ष में झोंककर स्वतंत्रता तथा डेमोक्रेसी की ताकतों (यानि मित्र शक्तियों) को विजय दिलाने में अधिक योगदान देगा।

8. इसी तरह 1946 के केबिनेट मिशन प्लान (जो विभाजन को टालने का अन्तिम अवसर था) के प्रति गांधी के दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, उन्होंने कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों द्वारा इसे स्वीकार कर लिए जाने के बाद भी अपनी हमेशा होने वाली प्रार्थना सभाओं में इस योजना के खिलाफ प्रचार किया।[3] परन्तु जब विभाजन की संभावना बढ़नी शुरू हुई तब उन्होंने तहेदिली से इस योजना को लागू करने की मांग की।

9. आगे, विभाजन के मसले पर उनकी भाव-भंगिमा के सम्बन्ध में स्थिति यह थी कि गांधीजी ने 3 मार्च, 1947 को बयान दिया कि अगर देश विभाजन स्वीकार करने की इच्छा रखता है तो यह मेरी लाश पर होगा। जब तक मैं जिन्दा हूँ, मैं भारत के विभाजन के लिए कभी भी सहमत नहीं हो पाऊँगा। और अगर मैं कांग्रेस पार्टी की सहायता कर सका तो इसे कभी भी विभाजन स्वीकार नहीं करने दूंगा।[4] परन्तु केवल तीन दिन बाद ही वे भारत के विभाजन की वकालात करने लगे।

10. आगे, दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश नस्ली दमन के खिलाफ गांधीजी के संघर्ष के सम्बन्ध में स्थिति यह है कि जहाँ उन्होंने भारतीय प्रवासियों के हितों की सक्रिय सेवा की वहीं काले अफ्रिकियों के सम्बन्ध में निष्क्रिय बने रहे जो ब्रिटिश नस्ली दमन के मुख्य शिकार रहे और कभी-कभी तो इस सम्बन्ध में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को सहायता भी दी।

11. यद्यपि गांधीवाद के बहुत से व्याख्याकार गांधीवादी सच्चाई को विकसित करने के नाम पर इन भिन्न भाव-भंगिमाओं की रक्षा और व्याख्या करने की कोशिश करते हैं, परन्तु सच्चाई यह है कि इन डाँवाडोल स्थितियों को किसी भी तर्कसंगत व्यवहार या सैद्धान्तिक स्तर पर सही नहीं ठहराया जा सकता है। किन्तु, इन बाधाओं के बावजूद गांधी के विभिन्न लेखों से इकट्ठा करके उसके विचारों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है–

1. यंग इंडिया, 13.9.1928
2. तेन्दुलकर, महात्मा, Vol. V, P. 197
3. 'ट्रांसफर ऑफ पावर', Vol. XI, P. 106
4. मौलाना आजाद, 'इंडिया विन्स फ्रीडम', पृ. 87

(अ) गांधी की विश्व दृष्टि

12. वास्तविकता के बारे में गांधीवादी धारणा मानती है कि ईश्वर परम सत्य है। उसकी उपासना सत्य से बढ़कर अन्य किसी भी तरीके से नहीं की जा सकती है। ईश्वर की उपासना के लिए मानव मात्र को मानव जाति की सेवा द्वारा सापेक्ष सत्य को जानने की आवश्यकता है या नैतिक जन व्यवहार के माध्यम से सापेक्ष सत्य को जानकर परम सत्य (यानि, ईश्वर) की खोज की जा सकती है। इस धारणा के मुताबिक भौतिक संसार के सम्बन्ध में वे सभी सत्य जो मनुष्य को प्राथमिक बिन्दु मानकर नहीं चलते हैं, झूठे हैं।

13. एक समर्पित हिन्दू की तरह गांधी गीता की मसीहाई सच्चाई (Gospel truth) स्वीकार करते हैं जिसने उन्हें इस मायावी संसार में अच्छे व बुरे के बीच संघर्ष को दर्शाया है। इसने निर्देश दिया कि मनुष्य के जीवन का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है, यानि, आत्म मुक्ति (मोक्ष, यानि, बार-बार जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पाकर ईश्वरीय शक्ति के साथ एकात्म हो जाना) हासिल करना है। और कि जीवन के लक्ष्य को हासिल करने के लिए मनुष्य की कोशिश में कर्म और आत्मा की अमरता के दो ईश्वरीय कानूनों का पालन करना आवश्यक है। उनके लिए ईश्वर प्राप्ति का मार्ग ईश्वर की प्रार्थना करना था।

14. गांधीजी का कर्म और पुनर्जन्म[1] में पूर्ण विश्वास था और उन्हें यह विश्वास था कि कोई भी अच्छे काम (चाहे वह छोटा ही हो) का फल अवश्य निकलेगा।

15. गांधी ने अपने आधारभूत दैवी सिद्धान्त पर चलते हुए सैद्धान्तिक और नैतिक दोनों स्तरों पर तर्कसंगतता का विरोध किया। सैद्धान्तिक तौर पर उनका मत था कि केवल विश्वास और आत्मज्ञान से ही परम वास्तविकता को जाना जा सकता है। नैतिक स्तर पर उनकी मान्यता थी कि किसी का ईश्वर में विश्वास ही केवल उसके चरित्र की शुद्धता की गारंटी होता है। उन्होंने कहा, 'प्रलोभनों के आगे तर्क एक कमजोर चीज है– केवल विश्वास जो तर्क से बढ़कर है, हमारे युगों की चट्टान है।'[2] और आगे उन्होंने कहा, 'ईश्वरीय सत्ता की विनम्र और मौन स्वीकृति जीवन को आसान बनाती है।'

16. उपरोक्त विश्व दृष्टि से यह देखा जा सकता है कि गांधीवाद दो भ्रमित सिद्धान्तों से क्रियाशील होता है। प्रथमतया, यह तीन भिन्न-भिन्न रास्तों–यानि, मानव जाति की सेवा, प्रार्थना तथा आत्मज्ञान और विश्वास–से परम सत्य या अन्तिम वास्तविकता या ईश्वर को जानने में विश्वास रखता है।

और द्वितीयत:, यह अपने स्वयं के कर्म और पुनर्जन्म के विश्वास के उलट यह धारणा भी रखता है कि मनुष्य अपनी क्रिया और इच्छा का स्वतन्त्र कारिन्दा नहीं है, और कि वह कार्यों को इसलिए कर पाता है क्योंकि ईश्वर उसके द्वारा कार्य करता है। इसका स्वाभाविक अर्थ है कि मनुष्य ईश्वर की इच्छा के औजार के अलावा कुछ नहीं है तथा बिना ईश्वरीय आज्ञा के वह कोई कार्य नहीं कर सकता और न ही बदलाव करने की कोई ताकत है; इन्सान के लिए मानवीय दुनिया बदलने की तो बात ही क्या कहें वह तो मिट्टी का कण भी नहीं बदल सकता है।

1. M.K. Gandhi, "Hindu Dharma", P. 6
2. M.K. Ganghi, "In Search of the Supreme", Vol. I, P. 377
2. M.K. Gandhi, "In Search of the Supreme", Vol. I, P. 141

17. गांधी ने लिखा–'मैं धुंधला सा जान पा रहा हूँ कि हालांकि, मेरे चारों तरफ प्रत्येक वस्तु प्रतिदिन बदल रही है और मर रही है, परन्तु यहाँ जो भी परिवर्तन हो रहा है उसके पीछे एक जीवित शक्ति है जो स्वयं परिवर्तन रहित है, जो इन सब चीजों को चला रही है, जो इन्हें पैदा करती है, समाप्त करती है और पुन: पैदा करती है। यह सब करने वाली शक्ति और आत्मा ईश्वर है। और अब तक जो भी मैंने केवल मेरी इन्द्रियों से देखा है, क्या वह विद्यमान रहेगा या रह सकता है। वह अकेला (ईश्वर) ही विद्यमान है। और चाहे यह शक्ति उदार है या दुष्ट? मैं इसे शुद्ध उदार के रूप में देखता हूँ, इसके लिए मैं यह देख सकता हूँ कि मृत्यु के साथ ही जीवन मौजूद है; झूठ के साथ सत्य मौजूद है; अंधेरे के साथ रोशनी मौजूद है। इसलिए मैं मानता हूँ कि ईश्वर जीवन है, सत्य है, और रोशनी है।[1]

उन्होंने और आगे कहा, 'बगैर उसके कुछ नहीं हो सकता, परन्तु उसकी इच्छा का इजहार होगा उसके शाश्वत, अपरिवर्तनीय कानून से, जो कि वह स्वयं है। ना तो हम उसे जानते हैं और ना ही उसके कानून को, काले काँच के टुकड़े से ऐसा ही जान पड़ता है। परन्तु इस कानून की धुंधली झलक ही मेरी खुशी, आशा और भविष्य के प्रति विश्वास के लिया पर्याप्त है।'[2]

18. जब से सोच की धार्मिक प्रणाली का उद्भव हुआ है, प्रत्येक धर्म ने ईश्वर को इस ब्रह्माण्ड में अस्तित्वमान प्रत्येक प्रक्रिया का प्रारम्भकर्ता, नियामक और नियन्त्रणकर्ता बताया है। ऐसा ही मामला गांधीवाद का भी है, इसे कुछ नया नहीं कहा जा सकता जो दुनिया को समझने और बदलने के लिए कोई फारमूला देता हो।

(ब) गांधी की कार्य पद्धति

19. गांधीवादी क्रियात्मक अवधारणा के मुताबिक केवल अहिंसा ही वैज्ञानिक तरीका है जिससे सापेक्ष सच्चाइयों को खोजा जा सकता है और इस प्रकार आत्म-मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। यह मानवीय स्वभाव के स्वाभाविक भलेपन से उत्पन्न होता है। इसका उद्देश्य बुराई पर अच्छाई से, अनैतिकता पर नैतिकता से और भौतिक ताकत (शक्ति) पर आत्मिक बल और सच्चाई से विजय हासिल करनी है।

20. गलत करने वाले को भी सार्थक प्यार दिया जाए। इसका मतलब गांधीजी उसके सामने आत्म-समर्पण करना नहीं मानते थे। उनके अनुसार उसे अहिंसक तरीके से उसके पवित्र कर्त्तव्य के बारे में सचेत करना चाहिए। इससे बुरा भी अच्छे में बदल सकता है।

21. व्यवहार में अहिंसा का अर्थ सत्याग्रह (यानि सत्य का आग्रह या सच्चाई को निरन्तर थामे रखना) है–जो न्याय प्राप्ति के लिए गांधीवादी दिशा की सूचक शब्दावली है। नागरिक अवज्ञा और असहयोग किसी गैर-न्यायिक सरकार के खिलाफ कार्यवाही के इसके जाने-पहचाने रूप हैं।

22. अन्तिम व्यक्ति की सबसे पहले सेवा करते हुए अत्यधिक संभव हद तक सभी की भलाई करने (जिसे सर्वोदय, यानि, सबके कल्याण से जाना जाता है) से ही समाज

1. M.K. Gandhi, 'In Search of the Supreme', Vol. I, pp. 5-6
2. M.K. Gandhi, Harijan, Dec. 9, 1939

की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बुराइयों को ठीक किया जा सकता है। इस प्रकार यह एक धर्म या स्वीकृत मत के साथ-साथ तरीका भी है।

23. यह सच है जैसाकि–ज्ञान के बहुत से क्षेत्रों ने दर्शाया है कि हिंसक मानवीय व्यवहार, भूख और सैक्स की तरह मूल मानवीय आवश्यकता नहीं है। परन्तु, अहिंसक व्यवहार के उसूली मानदण्ड को प्रत्येक दूसरी मानवीय क्षमताओं की तरह वास्तविकता में तभी बदला जा सकता है जब परिस्थितियां इसके अनुकूल हों। तभी इसको व्यवहार में लागू किया जा सकता है तथा उस उसूल को बढ़ावा मिल सकता है। जैसे, आज की परिस्थितियों में ही ऐसे तरीके से सार्वभौमिक (ग्लोबल) व्यवस्था कायम करने की बातें होने लगी हैं, क्योंकि दुनिया के लोगों का–वाजबियत और न्याय, कानून के राज, लोगों को अधिक अधिकार देने, सभी तरह की सामाजिक असमानताओं को हटाने, राष्ट्रीय, नस्ली और धार्मिक शत्रुताओं को समाप्त करने, असैन्यीकरण और निशस्त्रीकरण, इत्यादि मसलों पर–चेतना का स्तर पहले की तुलना में काफी हद तक बढ़ चुका है। अन्यथा अहिंसा का उसूल सीमित अर्थों में, सीमित इलाकों में या सीमित समयावधि में ही उपयोगी रहा है, जैसा कि इतिहास में होता रहा है और अभी भी दुनिया के बहुत से इलाकों में ऐसा ही हो रहा है।

(स) गांधी का समाजशास्त्र

24. गांधीवादी समाजशास्त्र मानता है कि इसकी सत्य और अहिंसा की धारणाएं एक ऐसी महान् मानवीय व्यवस्था की स्थापना कर सकती है जिससे मनुष्य और समाज दोनों की साँझी भलाई हो सकती है। इसके मुख्य सिद्धान्त, यानि, सामाजिक न्याय और मानव विकास भी जाने-पहचाने पहलू हैं। इन सराहने लायक उद्देश्यों और इनकी प्रासंगिकता के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता है। परन्तु, इन उद्देश्यों को हासिल करने के लिए उसके तरीकाकार के बारे में समस्याएं उठती हैं। गांधीजी के समाजशास्त्र के मुख्य बड़े घटक (Component) निम्न हैं–

(i) स्वदेशी दृष्टिकोण

25. स्वदेशीवाद अपने देश के प्रति प्रेम का द्योतक है। आर्थिक अर्थों में इसका अर्थ है उन वस्तुओं को अहमियत देना जो उसके नजदीकी वातावरण (इर्द-गिर्द) से सम्बन्धित हो और विदेशी सामनों की तुलना में घरेलू उत्पादों का पक्ष लेना, चाहे वे उनसे महँगे ही क्यों न हों। इस प्रकार, यह एक राजनीतिक धारणा के साथ-साथ आर्थिक धारणा भी है। औपनिवेशिक युग में इसने कुछ हद तक कार्य किया और कई बार भारतीय लोगों के उपनिवेश-विरोधी आन्दोलन को मजबूती प्रदान की। परन्तु, आज की दुनिया में–जहाँ सभी देश आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मामलों में अधिक से अधिक अन्तरनिर्भर होते जा रहे हैं; जहाँ आर्थिक प्रतियोगिता अत्यन्त तेज होती जा रही है और जहाँ दक्षता एवं क्षमता आधारित वृद्धि के साथ सामाजिक न्याय की आधुनिक विकास की धारणा पर जोर दिया जा रहा है, वहाँ यह स्वदेशीवाद की धारणा प्रासंगिक नजर नहीं आती है। इसके अतिरिक्त आयात प्रतिस्थापन की रणनीति और आत्म-निर्भरता के उसूल पर आधारित हमारी योजनाओं की प्रक्रिया की असफलता, अव्यवहारिकता और गैर टिकाऊपन, हमारे

स्वदेशीपन के अनुभव को दर्शाता है। स्वदेशीवाद के मुख्य औजार चरखे का पुराना नारा जो औपनिवेशिक शासन के समय प्रचलित था, अब अपनी प्रतिष्ठा खो चुका है।

(ii) सर्वोदय और अन्त्योदय

26. सर्वोदय का अर्थ है सभी के कल्याण को ऊंचा उठाना जिसमें दूसरों को अपने कल्याण से वंचित न किया जाए। अन्त्योदय (अन्त+उदय) अभिव्यक्त करता है कि लोगों की भलाई की प्रक्रिया में अन्तिम व्यक्ति की भलाई सबसे पहले की जाए। औपनिवेशिक युग में चरखा, घरेलू कताई और बुनाई, सर्वोदय का सामाजिक उद्देश्य प्राप्त करने के लिए मुख्य कदम थे।

27. गांधी के बाद के युग में, हरिजन उद्धार और भूदान-ग्रामदान आन्दोलन के रूप में दो सबसे महत्वपूर्ण पहल कदमियाँ विनोबा भावे के नेतृत्व में सर्वोदय आन्दोलन ने उठाई। हरजिन उद्धार कार्यक्रम का अन्त शक्तिहीन होने में निकला, जिससे दलित जातिवादी खाड़कूपन के शिकंजे में धकेले गए। भूदान-ग्रामदान आन्दोलन, अपनी प्रारम्भिक तेजी के बाद एक दम बन्द हो गया। इसके बाद विनोबा भावे ने अपने आपको आत्म मौन के द्वारा रिटायर कर लिया और जय प्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति का रास्ता अख्तियार कर लिया।

28. इस आन्दोलन की असफलता का कारण है कि यह इस व्यवस्था के एक भाग के तौर पर क्रियाशील था जिसमें इस व्यवस्था ने अपने भ्रष्टाचार और अपराध को छुपाने के लिए इसे एक औजार के रूप में उपयोग किया।

(iii) स्वराज

29. अक्षरश: स्वराज का अर्थ है स्व-शासन। इसके घेरे में सम्पूर्ण क्षेत्र आता है जिसमें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता शामिल हैं। यह स्वदेशी का तर्कसंगत परिणाम है जिससे कि बलिदान और राष्ट्रवाद की भावना प्रकट होती है। इसका सर्वोदय के बिना कोई अर्थ नहीं है जो सभी की भलाई को दर्शाता है। इस प्रकार स्वदेशी, सर्वोदय और स्वराज अन्तरसम्बन्धित धारणाएं हैं, जिनमें से प्रत्येक दूसरी दो पर निर्भर है। गांधीजी ने इन सब को मिलाकर राम-राज्य के रूप में चारित्रित किया जिसको छुआछूत मिटाए बगैर और हिन्दू-मुस्लिम फूट को समाप्त किए बगैर हासिल नहीं किया जा सकता। गांधी का अन्तिम उद्देश्य धार्मिक परम लक्ष्य हासिल करना था जो उसके दूसरे सभी लक्ष्यों का जोड़ है।

(iv) जनवाद की धारणा

30. जनवाद की गांधीवादी धारणा एक सर्वोत्तम लोक समूह (उच्च वर्ग) के जनवाद की धारणा है। 1924 में जब गांधी भारतीय नेशनल कांग्रेस का अध्यक्ष बने तो उन्होंने प्रौढ़ मताधिकार एवं अप्रत्यक्ष चुनाव की बजाए शिक्षितों के लिए मताधिकार का दावा पेश किया। 1934 में उन्होंने पुन: शिक्षित मताधिकार का प्रस्ताव रखा और इसी मसले पर वे अस्थाई तौर पर कांग्रेस से अलग हुए। उनका तर्क था कि भ्रष्टाचार और छल-कपट

जनवाद के आवश्यक फल नहीं होना चाहिए। ना ही अधिक संख्या जनवाद की सच्ची परीक्षा है।[1]

31. गांधी का दृष्टिकोण था कि 'यूरोपीय जनवाद मेरे दिमाग के अनुसार जनवाद का एक नकारात्मक रूप है।'[2] गांधी के नेतृत्व तले कांग्रेस जब कभी कोई संघर्ष चलाती तो उसके लिए एक तानाशाह नियुक्त करने के व्यवहार पर चलती रही, प्राय: वह डिक्टेटर गांधी होता था जिसे कोई भी निर्णय लेने के पूर्ण अधिकार होते थे, यहाँ तक कि संघर्ष को वापिस लेने के अधिकार भी होते थे।

(v) महिलाओं की प्रतिष्ठा

32. महिलाओं के सम्बन्ध में, गांधी ने पुरुष और महिलाओं के बीच जहाँ तक ईश्वरीय उद्देश्य और उसे पूरा करने के सम्बन्ध में कोई भेदभाव नहीं किया है। गांधी के अनुसार : 'महिलाएँ त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति हैं, और इसीलिए उनके सार्वजनिक जीवन में प्रवेश का परिणाम इस क्षेत्र की शुद्धि में निकलेगा। महिलाओं की नैतिक महानता उन्हें युद्धग्रस्त दुनिया को शांति की कला सिखाने के समर्थ बना देगी, शान्ति की इस अपूर्व वेला के लिए दुनिया प्यासी है, इन्तजार में है। शान्ति के मामले में महिलाओं के निश्चित स्थान को अभी तक मनुष्य ने दबा रखा है। माता के तौर पर वह हमें योग्य बनाने वाली और मौन नेता है।' हालांकि गांधी ने राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मामलों में महिलाओं के खिलाफ किए जा रहे भेदभाव के लिए कभी भी सवाल खड़ा नहीं किया।

33. उन्होंने महिलाओं के खिलाफ किए जा रहे अत्याचारों की कई बार आलोचनाएं की परन्तु कभी भी इनको समाप्त करने का ठोस प्रस्ताव नहीं रखा। उनके पास मानवता की इस आधी आबादी के उत्थान के लिए कोई विशिष्ट कार्यक्रम नहीं था। न ही उन्होंने कभी महिलाओं के भले के लिए कोई आन्दोलन शुरू किया, जैसा कि छुआछूत को हटाने के मामले में उन्होंने ऐसा किया था।

34. उन्होंने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुष और महिलाओं की समानता के सवाल को क्यों नहीं उठाया? इसका कारण उनके हिन्दू पुरातनपंथी विचारों में निहित है। यह विचार भी दूसरे सभी धार्मिक पुरातनपंथी विचारों की तरह महिला को पुरुषों के बाद स्थान देता है।

(vi) विकेन्द्रित आर्थिकता

35. विकेन्द्रित आर्थिकता का विचार, जैसा कि आम आदमी इस सूत्र के मुताबिक कार्य संचालन करता है, कभी लम्बे समय तक एक सकारात्मक विचार बना रहा है। परन्तु औपनिवेशिक तथा औपनिवेश के बाद वाली (यानि दोनों) आर्थिकताओं के लिए इसका कोई उपयोग नहीं रहा क्योंकि इनका अपने हालात से उत्पन्न स्वभाव केन्द्रीकृत है। अब इसकी सीमा और सीमित हो गई है क्योंकि आज दुनिया की आर्थिक प्रक्रिया का एकीकरण बढ़ता ही जा रहा है। फिर भी यह अभी तक बहुत से महत्वपूर्ण क्षेत्रों–जैसे जंगलों, भूमि, पानी, प्राथमिक शिक्षा, हस्तकलाओं, घरेलू उद्योगों, शहरीकरण को रोकने

1. पट्टाभि सीतारमैया : 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास', अंक II, बम्बई 1946, पृ. 585
2. एम.के. गांधी : 'युद्ध और शान्ति में अहिंसा', अंक I, अहमदाबाद, 1948, पृ. 292

के लिए गाँवों में रोजगार के अवसर पैदा करने वाली दूसरी रचनात्मक गतिविधियों, इत्यादि–के लिए यह प्रबन्ध प्रणाली अत्यधिक प्रासंगिक है।

36. यद्यपि, सम्पत्ति के ट्रस्टीशिप और शिक्षित वर्ग के जनवाद की गांधीवादी प्रस्तावनाएँ विकेन्द्रित आर्थिकता की धारणा से मेल नहीं खाती है।

(vii) ग्रामीण आत्म निर्भरता

37. ग्रामीण आत्मनिर्भरता का विचार जो ग्रामीण आधारित मध्यकालीन आर्थिकताओं में कार्य करता था, आज के सार्वभौमिक बाजार से सम्बन्धित तथा अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय आर्थिकताओं के मध्य कोई प्रासंगिकता नहीं रखता है।

(viii) मशीनों का उपयोग

38. गांधी ने पूंजी-अधिकता वाली तकनीकी को लगाने का विरोध किया था क्योंकि इसका रोजगार, मजदूरी, पारम्परिक उद्योगों इत्यादि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता था। इसके उलट वह श्रम-अधिकता वाली तकनीकी को लगाने का पक्ष लेते थे।

39. यद्यपि, अनुभव दर्शाता है कि वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हालात में पूंजी और श्रम अधिकता वाली दोनों तरह की टेक्नोलोजी की अपनी-अपनी उपयोगिताएं हैं। किन्तु, आज इन दोनों के बीच एक उचित संतुलन कायम करने की आवश्यकता है। टेक्नोलोजी–चाहे वह आधुनिक हो या परम्परागत–का केवल मात्र जाँच का पैमाना है कि यह पर्यावरण के लिए घातक नहीं होनी चाहिए। सभी तरह की पारिस्थितिकी समर्थक (**Pro-Ecology**) टेक्नोलोजी वांछित है, जरूरी है। किसी निश्चित टेक्नोलोजी के एक तरफा सामाजिक प्रभावों को एक कल्याणकारी राज्य द्वारा निपटा जा सकता है, निषेध किया जा सकता है।

(ix) सम्पत्ति का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त

40. सम्पत्ति के ट्रस्टीशिप की धारणा का अर्थ है कि धनवान अपनी सम्पत्ति का उपयोग अपने फायदे के लिए नहीं करें, बल्कि समाज के फायदे के लिए करें। यद्यपि, ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि किसी भी युग में चाहे भूतकाल हो या वर्तमान, ट्रस्टीशिप का विचार काम नहीं आया। एक असमान सामाजिक व्यवस्था जिसका आधार व्यक्तिगत प्राप्ति और लाभ को उच्चतम मंजिल तक ले जाना हो, ऐसी व्यवस्था में यह विचार पूर्णतया अतर्कसंगत है। अगर सम्पत्ति लोगों की है, जैसा कि गांधी स्वीकार करते हैं, तब पूँजी के प्रबन्ध का जनवादीकरण करके इसे लोगों के नियन्त्रण में क्यों नहीं किया जाए, इसके लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और दूसरी बड़ी संयुक्त कम्पनियों के प्रवर्तकों और संचालकों के विशेष अधिकारों को समाप्त करने की आवश्यकता है।

(x) सीमित इच्छा का सिद्धान्त

41. सीमित इच्छा या नियन्त्रित आवश्यकता का सिद्धान्त एक एकतरफा प्रस्ताव है जो निर्दोष और दोषी दोनों को एक स्तर पर रखता है। वस्तुत: प्राकृतिक और सामाजिक संसाधनों के दुरुपयोग और बरबादी पर प्रतिबन्ध लगाने की अति आवश्यकता है। इस वक्त छाया हुआ उपभोक्तावाद, यानि आक्रामक विज्ञापनों के जरिए इच्छाओं की बढ़ोतरी

का सिद्धान्त, जिसे बड़े विकसित देशों में तथा अन्य सभी जगह के अमीर व्यवहार में अख्तियार किए हुए हैं। इन्हीं लोगों ने गंभीर सामाजिक और प्राकृतिक असंतुलन पैदा किया है और अभी तक लगातार ऐसा कर रहे हैं, जिसका परिणाम पर्यावरणीय और विकास के संकट के रूप में सामने आ रहा है। जहाँ तक इच्छाओं और आवश्यकताओं को सीमित या विनियन्त्रित करने के एजेण्डा (कार्यक्रम) का सवाल है, इसमें विशेष अधिकार सम्पन्न और अमीर लोगों की असीमित इच्छाओं को नियन्त्रित किया जाना चाहिए, जबकि सुविधाओं से वंचित और गरीब लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रावधान की सख्त आवश्यकता है, यही समय की माँग है, न कि गांधीवादी सीमित इच्छा के व्यापार को चलाने की, जो वास्तव में गरीबों की आवश्यकताओं का गला घोंटने की राय बनती है।

(xi) शिक्षा

42. शिक्षा में गांधी ने बेसिक शिक्षा (आधारभूत, प्राथमिक, प्रारम्भिक शिक्षा) पर अधिक जोर दिया, जिससे उनका अर्थ था कि तीन आर सीखने और कुशलता को हासिल करना, जिसमें प्राथमिकता पारम्परिक पारिवारिक कामों में माहिरता हासिल करना था। व्यक्तिगत आत्मनिर्भर बनाना इसका उद्देश्य था। इसको वे रोटी कमाने वाले मजदूर को तैयार करने के व्यवहारिक कार्यक्रम के रूप में देखते थे। गांधी के अनुसार बेसिक शिक्षा 14 साल तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य करनी चाहिए थी। यह शिक्षा मातृ-भाषा में प्रदान करनी चाहिए। उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के महत्व पर भी जोर दिया तथा प्राथमिक स्वास्थ्य, सफाई और निकासी, अच्छी सड़कों इत्यादि के बारे में शिक्षित करने के लिए काफी जोर दिया। उनकी मान्यता थी कि शिक्षा प्राप्त करना जीवन पर्यन्त प्रक्रिया है और बचपन से मृत्यु तक यह रुकनी नहीं चाहिए। ये सारे उसूल बिल्कुल सकारात्मक थे जिनमें केवल एक ही कमी थी कि उन्होंने आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के अध्ययन और विकास पर बहुत कम ध्यान दिया।

(xii) मजदूरों की प्रतिष्ठा

43. मजदूरों के जीवन में सुधार के लिए गांधी ने काम के उचित हालात पैदा करने, मजदूरी का उचित स्तर कायम करने, उत्पादन में मजदूरों के अधिकारों और इन अधिकारों की पूर्ति के उपायों पर जोर दिया। परन्तु उद्यम के प्रबन्ध और पूँजी-नियन्त्रण की व्यवस्था में वे मजदूर को सलाहकारी भूमिका तक के लिए विश्वास योग्य नहीं समझते थे।

(xiii) आर्थिक समानता

44. आर्थिक समानता गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रमों में से एक है। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए गांधी ने लिखा : 'मैं विश्वास नहीं करता कि सभी वर्ग भेदों को मिटाया जा सकता है। मैं समानता के उन्हीं सिद्धान्तों में विश्वास करता हूँ जिनको भगवान कृष्ण ने गीता में सिखाया है। गीता हमें सिखाती है कि सभी चार जातियों के सदस्यों के साथ समानता के आधार पर व्यवहार करना चाहिए। इसने ब्राह्मण और भंगी जाति के लिए एक जैसे धर्म (कर्त्तव्य) की सलाह नहीं दी। परन्तु इसने आग्रह किया कि

चाहे ब्राह्मण ज्ञान में सर्वोच्च है फिर भी इन दोनों जाति के लोगों को एक समान समझा जाना चाहिए और एक जैसा सम्मान दिया जाना चाहिए।'[1]

45. इस प्रकार, गांधी गीता में भगवान कृष्ण द्वारा बताए गए उसूल का पालन करते हुए आर्थिक समानता को सुनिश्चित करना चाहते थे, जिसमें (गीता में) सार रूप में 70 प्रतिशत जनसंख्या, यानि महिलाओं और शूद्रों के लिए मानव अधिकारों तक की मनाही की गई है।

(xiv) खादी को बढ़ावा

46. गांधीवाद के पुनर-रचनात्मक कार्यक्रमों में खादी की उन्नति को सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। गांधी के शब्दों में : 'खादी अहिंसा पर आधारित जीवन पद्धति का प्रतिनिधित्व करती है और किया है। .....खादी के माध्यम से, हम ऊर्जा से चलने वाली मशीन की मनुष्य पर प्रभुत्ता के स्थान पर उलटे मनुष्य की उस पर प्रभुत्ता स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। खादी के द्वारा हम सभी पुरुषों और महिलाओं की समानता के लिए कोशिश कर रहे थे जहाँ कि आज बहुत बड़ी असमानता विद्यमान है। हम श्रम पर पूंजी के ढीठता से छा जाने के स्थान पर पूंजी को श्रम की दासी बनाने की कोशिश कर रहे थे।'[2]

47. मनुष्य की मशीन या समाज पर प्रभुत्ता केवल तभी स्थापित की जा सकती है जब लोगों को राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तौर पर अधिक अधिकार देकर शक्तिशाली बनाया जाए। लोगों के बीच असमानता को सभी तरह के भेदभावों पुरुषों-महिलाओं, गरीब-अमीर, ग्रामीण-शहरी, शिक्षित-अशिक्षित, विकसित देशों-विकासशील देशों इत्यादि के बीच–को हटाकर समाप्त किया जा सकता है। शताब्दियों तक खादी केवल लोगों को रोजगार और कपड़ा ही प्रदान कर पाई है।

(xv) रचनात्मक कार्यक्रम

48. पूर्ण स्वराज और सामाजिक परिवर्तन के लिए गांधीवादी नुस्खा उसके रचनात्मक कार्यक्रम में अन्तरनिहित था। इसमें निम्नलिखित मुख्य आइटम शामिल हैं: (क) साम्प्रदायिक सद्भावना, (ख) छुआछूत मिटाना, (ग) शराब-बन्दी, (घ) खादी आत्म निर्भरता, (ड़) अन्य ग्रामीण उद्योग, (च) गाँव की सफाई, (छ) नई या बेसिक शिक्षा, (ज) प्रौढ़ शिक्षा, (झ) महिलाओं का उत्थान, (ञ) स्वास्थ्य और सफाई के क्षेत्र की शिक्षा, (ट) राष्ट्रीय भाषा का प्रचार-प्रसार करना, (ठ) क्षेत्रीय भाषाओं का विकास, (ड) आर्थिक समानता, (ढ) किसान संगठन, (ण) मजदूरों के संगठन, (त) आदिवासियों की सेवा, (थ) कोढ के रोगियों की सेवा, (द) विद्यार्थी संगठन, (ध) प्रतिदिन ईश्वर की प्रार्थना।

49. इन रचनात्मक मुद्दों में से सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे राजनीतिक क्षेत्र में साम्प्रदायिक सद्भावना और छुआछूत मिटाना तथा आर्थिक क्षेत्र में खादी का उत्पादन, हाथों से कताई और हाथों से बुनाई ही रहे हैं।

1. एम.के. गांधी : 'रिसते घाव', पृ. 19
2. हरिजन, 1947, पृ. 470

V. व्यवहार में गांधीवाद

50. अपने विचारों को गांधी ने व्यवहार में कैसे लागू किया? अपने समय की सामाजिक वास्तविकता को गांधी ने किस तरह प्रत्युत्तर (Respond) दिया? उनका पवित्र सत्य और अहिंसा का समाज विज्ञान उस समय की सामाजिक व्यवस्था में कैसे लागू किया गया?

51. हम उस ऐतिहासिक सन्दर्भ से शुरू करें जिसमें गांधी ने काम किया और उस सन्दर्भ में उभरी समस्याओं को निपटा।

(अ) ऐतिहासिक सन्दर्भ

52. गांधीजी का जन्म 1869 में पोरबन्दर, आज के गुजरात में हुआ। वे ऐसे समय प्रकाश में आये जब विश्व में ब्रिटिश उपनिवेशवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। जब उसके साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। विश्व के विशाल क्षेत्रों में ब्रिटिश साम्राज्य फैला हुआ था। वे दक्षिण अफ्रीका में उभरे (1893 से 1914 के बीच) जहाँ श्वेत मालिक एवं गुलाम अफ्रिकियों के बीच में कुछ सैकड़ों-हजारों भारतीयों (मय गांधीजी) के साथ कुलियों जैसा व्यवहार किया जाता था। सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में ही भारतीय अप्रवासियों की रक्षार्थ गांधीवादी सत्याग्रह (अर्थात् अहिंसक जन प्रतिरोध) को गढ़ा गया। उस समय का एक भी साक्ष्य ऐसा नहीं है जो बताता है कि उन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशी उत्पीड़न के मुख्य शिकार रहे काले अफ्रिकियों के समर्थन में कभी आवाज उठाई हो।

53. गांधीजी 1915 में भारत लौटे, जब भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद की एड़ी तले कराह रहा था। कांग्रेसी नेता अंग्रेज हुक्मरानों से आजादी की भीख मांग रहे थे। चौतरफा साम्प्रदायिकता और जाति उत्पीड़न लोगों की एकता में रुकावट बन रहे थे। लक्ष्य और तरीके पर एकता नहीं थी। विभिन्न पार्टियाँ विभिन्न दिशाओं में खींच रही थी।

54. लगभग 28 वर्षों (1919-1948) तक भारतीय परिदृश्य पर गांधीजी का आधिपत्य रहा। अत: इस काल को सही तौर पर भारतीय इतिहास का 'गांधी युग' कहा जा सकता है।

55. गांधीजी ने उन तीन मुख्य समस्याओं की निशानदेही की जो राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के निर्माण में रुकावट डाल रही थी, यानि (अ) हिन्दू-मुस्लिम फूट, (ब) जाति-विभाजन, और (स) अस्पृश्यता का प्रश्न। और इनसे निपटने का तय किया।

(ब) हिन्दू-मुस्लिम फूट

56. जहाँ तक हिन्दू-मुस्लिम फूट का प्रश्न था, गांधीजी सन् 1919 में चले खिलाफत आन्दोलन के दौरान इस समस्या में शरीक हुए। इस आन्दोलन के बारे में गांधीजी ने कहा : 'मेरे लिए, यह जीवन भर काम आने वाला एक अवसर था। मैंने महसूस किया कि अगर मैं मेरे मुस्लिम भाइयों की इस परीक्षा की घड़ी में उनके लिए कुछ कर सकूं और उनके प्रति मेरा समर्थन प्रदर्शित करूं तो मैं दोनों सम्प्रदायों के बीच सदा के लिए दोस्ती सुनिश्चित कर सकूंगा।' यह समस्या का केवल मात्र अति सरलीकरण था।

57. हिन्दू-मुस्लिम फूट की समस्या धर्म से कम लेकिन राजनीति व अर्थव्यवस्था से ज्यादा सम्बन्धित थी। इसमें मुख्य प्रश्न भविष्य के सत्ता ढाँचे और आर्थिक संसाधनों में

बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक हिस्से को शामिल करने का था। पृथक मतदान प्रणाली का मुद्दा इस बुनियादी प्रश्न से सीधा जुड़ा हुआ था। इस समस्या को राजनैतिक-आर्थिक आधार पर हल करने की बजाए गांधीजी ने इसे धार्मिक तरीके से हल करने की कोशिश की। उन्होंने सोचा कि यदि दोनों समुदायों को ईश्वर-अल्लाह के एक भाव के सिद्धान्त तथा साथ ही रचनात्मक कार्यक्रम के आधार पर एकजुट किया जाए तो वे धीरे-धीरे एक साथ रहना सीख लेंगे। लेकिन गांधीजी का राम-रहीम एकता का सूत्र कार्य नहीं कर सका।

58. गांधीजी द्वारा कांग्रेस का नेतृत्व करने के दौरान कई अवसरों–यानि 1928 की भारत के भावी संविधान पर नेहरू रिपोर्ट, 1937 में यू.पी. में कांग्रेस-मुस्लिम लीग की साझा सरकार बनाने की संभावना, 1942 का क्रिप्स-मिशन, 1946 की केबिनेट मिशन योजना, इत्यादि–को गंवा दिया गया, जब कुछ लेने व देने के उसूल के मुताबिक समस्या हल की जा सकती थी। ढीले-ढाले संघ का केबिनेट मिशन प्लान का प्रस्ताव अच्छी तरह कार्यशील हो सकता था। अच्छे इरादों के साथ इसे लागू करते वक्त इसकी खामियों को दूर किया जा सकता था। लेकिन इस सापेक्षतया उचित विकल्प की बजाय बदत्तर विकल्प यानि भारत के विभाजन को देश के लिए अच्छा मान लिया गया।

59. हिन्दू-मुस्लिम फूट की समस्या के हल में मुख्य बाधक तत्व गांधीवादी कार्य सूची थी जिसने धर्म का राजनीतिकरण किया था, राजनीति में धर्म की दखलन्दाजी बढ़ाई। इस कार्यसूची ने भारत की नई सामाजिक व्यवस्था के लक्ष्य के तौर पर रामराज्य पर जोर दिया, गीता को उन्होंने मानवीय कर्म के आदर्श नैतिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया, वन्दे मातरम् का राष्ट्रीय गीत के रूप में चयन किया जो कि 'मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़ाई' के लिए उद्घोष का प्रतीक था, 'गो पूजा को मानवतावाद के विकास में हिन्दुत्व का अभूतपूर्व योगदान' चारित्रित किया, 'जाति-व्यवस्था की खोज को सत्य की अथक खोज का शानदान परिणाम' करार दिया। इसने गांधी की तस्वीर भारत में सबसे बड़े हिन्दू पुनरुत्थानवादी कारीगर के रूप में पेश की।

60. गांधी का दर्शन (गीता) आदर्श (राम राज्य) कार्यप्रणाली (उनके द्वारा पुराने हिन्दू विचारों की पुनर्व्याख्या और उन्हें तर्कसंगत व मानवतावादी धारणाओं में रूपान्तरित करना, हिन्दू शास्त्र-विधि के अनुसार दिनचर्या, हिन्दू मुहावरे, श्लोक व मंत्रोच्चार, इत्यादि) सभी हिन्दू-मुस्लिम फूट को पाटने के उलट थे। किसी विवाद में एक पक्ष की तरफदारी करने वाले व्यक्ति को न्यायाधीश अथवा पंच के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। विभिन्न समुदायों के एक साझे नेता के लिए प्रतिद्वंद्वी शक्तियों से ऊपर उठना जरूरी है। इस मामले में गांधीजी असफल रहे। उन्होंने अपने आपको बहुसंख्यक समुदाय के नेता के रूप में उभारा। इसीलिए भारतीय अल्पसंख्यकों, खास तौर पर मुसलमानों ने उन्हें समुदायों से ऊपर व निष्पक्ष नेता के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने गांधीजी को आधुनिक युग के हिन्दू सुधारवादी की तरह ही देखा।

(स) जाति-विभाजन

61. जहाँ तक जाति-विभाजन का प्रश्न है, गांधीवादी धारणा ने शनै: शनै: पूर्ववर्ती रूढ़िवादी नजरिये से उदारवादी नजरिया अख्तियार किया। सन् 1915 के आस-पास

गांधीजी ने वर्ण व्यवस्था का दृढ़ता से समर्थन किया। उनके अनुसार हिन्दू समाज इसके बिना काम नहीं चला सकता।[1] यहाँ तक कि सन् 1921 में गांधीजी, वंशानुगत और एक निश्चित कार्य पद्धति पर आधारित वर्ण व्यवस्था के धार्मिक रूढ़िवादी कानून को पकड़े हुए थे।[2]

62. 1920 के दशक के अन्तिम समय के बाद गांधीजी ने वर्ण की वंशानुगत प्रकृति को छोड़ते हुए जाति धारणा से अपनी वर्ण धारणा को पृथक कर लिया।[3] वर्ण व्यवस्था का यह बदलाव एक समतावादी ढाँचे के महत्व पर जोर देता है और हिन्दू ग्रंथों, विशेषकर गीता से इसके सन्दर्भ बिन्दु लेता है। असमानता (जो जाति व्यवस्था का मुख्य लक्षण रहा है) के विचारों को गलत सिद्ध करने में ये विचार गांधीजी के लिए बिल्कुल अनुकूल साबित हुए।

(द) अस्पृश्यता का प्रश्न

63. जहाँ तक अस्पृश्यता का प्रश्न है, गांधीजी द्वारा उसके विरुद्ध चलाये गये अभियान को जाति-व्यवस्था के ऊंच-नीच पर आधारित भद्दे लक्षणों को हटाकर हिन्दू व्यवस्था में सुधार करने के उनके आन्दोलन के एक भाग के रूप में देखा जा सकता है।

64. अस्पृश्यता की बुराइयों के दीर्घकालिक नकारात्मक परिणामों की ओर इंगित करते हुए उन्होंने सवर्ण जाति के हिन्दुओं से बुद्धिमानी का व्यवहार करने की अपेक्षा की। वे इस बात पर सहमत थे कि 'जब हिन्दओं की बहुसंख्या महसूस कर लेगी कि यह ईश्वर व इंसान के प्रति अपराधजनक और शर्मनाक है, तभी अस्पृश्यता को हटाया जा सकता है।'[4] हिन्दुओं की जाति मानसिकता को बदलने और छोटे-मोटे सुधारों जैसे मंदिरों में अछूतों का प्रवेश, उनके लिए विद्यालय तथा छात्रावास खोलने आदि को प्रोत्साहित करने के गांधीजी के प्रयास कारगर साबित नहीं हो सके। यद्यपि, अछूतों को वाजिब राजनीतिक व आर्थिक अधिकार प्रदान करने की उन्होंने कभी भी आवश्यकता महसूस नहीं की।

65. केवल परिस्थितिजन्य अनिवार्यता की वजह से ही उन्हें अछूतों को पृथक प्रतिनिधित्व देने के प्रश्न पर सहमत होना पड़ा। और उन्होंने इस प्रश्न पर आमरण अनशन तभी तोड़ा जब गांधी, अम्बेडकर और ब्रिटिश सरकार के बीच यह समझौता हुआ कि हिन्दू समुदाय के वंचित हिस्से की तरह ही अछूतों को पृथक् प्रतिनिधित्व दिया जायेगा। पुन:, अस्पृश्यता के खिलाफ गांधीजी द्वारा हिन्दुत्व में सुधार के दृष्टिकोण से ही अभियान चलाया गया था, यह ब्रिटिश प्रधानमंत्री को लिखे गये उनके पत्र से स्पष्ट होता है जिसमें गांधी ने कहा कि उसका 'आमरण अनशन' अछूतों को राजनैतिक क्षेत्र में पृथक् प्रतिनिधित्व देने के प्रस्ताव के विरुद्ध नहीं था बल्कि उसका आशय किसी उद्देश्य के लिए अछूतों को हिन्दू जाति से अलग करने का विरोध करना था।

---

1. महात्मा गांधी की संकलत रचनाएं, GOI, 1963, Vol. XIII, P. 277
2. यंग इंडिया, अक्टू. 6, 1921
3. हरिजन, सितम्बर 28, 1934, पृ. 260-61
4. एम.के. गांधी, 'छुआछूत', अहमदाबाद, NPH, 1954, P- 10

VI. क्या स्वतंत्रता के लिए सत्याग्रह मुख्य हथियार था

66. कुछ लोग मानते हैं कि भारत की स्वतंत्रता के लिए मुख्य हथियार सत्याग्रह था। अन्य इस बात को मानने से इन्कार करते हैं। नि:सन्देह उपनिवेश-विरोधी भारतीय आन्दोलन में सत्याग्रह की भूमिका रही है। लेकिन क्या उसकी भूमिका निर्णायक थी? केवल तथ्य ही वास्तविक स्थिति बता सकते हैं।

67. सन् 1921-22 में चला असहयोग आन्दोलन प्रथम उपनिवेश विरोधी बड़ा आन्दोलन था जिसमें सत्याग्रह संघर्ष का मुख्य तरीका था। इस आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बहुत से लोग गिरफ्तार हुए या उन्होंने विभिन्न तरीकों से विरोध जताया। किन्तु अन्त में चौरी-चौरा में पुलिस के विरुद्ध हिंसा शुरू हो जाने की दलील पर आन्दोलन को रोक दिया गया।

68. यद्यपि गांधीजी ने अन्य कांग्रेसी नेताओं तथा यहाँ तक कि खिलाफत नेताओं (जिन्होंने कांग्रेस के साथ उस समय गठजोड़ बना रखा था) के साथ सलाह किए बिना ही आन्दोलन को वापिस लेने का निर्णय कर लिया था। परन्तु वास्तव में तब तक आन्दोलन अपनी धारा से हट चुका था। नेहरू के शब्दों में, 'फरवरी 1922 में जन-प्रतिरोध को चौरी-चौरा की वजह से नहीं स्थगित किया गया उस समय हमारा आन्दोलन देखने में शक्तिशाली एवं भारी चौतरफा उत्साह के बावजूद टूटने की ओर जा रहा था।'[1] उसी समय असहयोग जैसे आन्दोलनों की व्यवहारिकता और उपयोगिता के सवाल खड़े करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने अपने उद्‌गार व्यक्त किए : 'चौरी-चौरा काण्ड शोचनीय घटना हो सकती है और थी तथा यह असहयोग आन्दोलन की भावना के पूर्णतया उलट थी, परन्तु क्या दूर-दराज के गाँव में किसानों की उत्तेजित भीड़ के गलत रास्ते पर भटक जाने को लेकर कोई आन्दोलन और कम से कम स्वतंत्रता के लिए हमारा राष्ट्रीय संघर्ष, क्या रोका जा सकता है? अगर यह एकदम से भड़की छुट-पुट हिंसा का ही आवश्यक परिणाम था, तब तो निश्चित ही अहिंसात्मक संघर्ष की टेक्नीक और दर्शन में कुछ कमी थी। इसके लिए हमें पता होना चाहिए कि इस तरह की अनहोनी घटनाओं को नहीं होने देने की गारन्टी कर पाना असंभव होता है।'[2]

69. पुन: 1930-32 के दौरान द्वितीय मुख्य उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष (जो नागरिक अवज्ञा आन्दोलन कहलाया) में सत्याग्रह विरोध का मुख्य रूप था। किन्तु तेजी से और बड़े पैमाने पर आन्दोलन चलने के बावजूद उसे सरकार ने दबा दिया और आन्दोलन को स्थगित करना मात्र औपचारिकता थी।

70. सन् 1940 में, तीसरे बड़े उपनिवेश विरोधी संघर्ष (निजी नागरिक अवज्ञा आन्दोलन) से कोई परिणाम प्राप्त नहीं हुआ यद्यपि इस आन्दोलन की योजना बनाना, निर्देशित करना तथा क्रियान्विती का कार्य स्वयं गांधीजी द्वारा ही किया गया। गांधीजी के नेतृत्व में सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन (भारत का सबसे बड़ा उपनिवेश विरोधी आन्दोलन) महान् बलिदानों के बावजूद भी सन् 1944 में तब नकारा साबित हो गया जब

1. जवाहरलाल नेहरू : 'एन ऑटोबायोग्राफी', 1936, पृ. 85, लन्दन
2. जवाहरलाल नेहरू : वही, पृ. 82

गांधीजी ने जिन्ना के साथ राजगोपालचारी सूत्र के तहत वार्ता करने का रास्ता अपना लिया।

71. जिस तरीके से भारत आजाद हुआ–यानि देश का साम्प्रदायिक विभाजन तथा साम्प्रदायिक बर्बादी के साथ हुआ जिसमें 10 लाख लोग मारे गये और एक करोड़ से अधिक लोगों को एक देश से दूसरे देश में विस्थापित होना पड़ा–वह सत्याग्रह अथवा अहिंसा की विजय सिद्ध नहीं करता। सन् 1947 के बाद की घटनाएं–भारत की शीत-युद्ध नीति, सैन्यीकरण, पड़ौसियों के साथ चार युद्ध, राजनीति का अपराधीकरण, भ्रष्टाचार एवं दोगले मानदंड आदि–भी वर्तमान भारत को बनाने में सत्याग्रह की भूमिका के विचारों को रद्द करती है।

72. गांधी के नेतृत्व में चल रहे जन आंदोलनों के अलावा दूसरे पहलू जो आजादी के कारक बने : भारतीय खाड़कुओं के नेतृत्व में सशस्त्र आन्दोलनों, बर्मा की सीमा पर ब्रिटिश फौजों के सामने भारतीय राष्ट्रीय फौज के संघर्ष, 1947 का जल सेना का विद्रोह, भारतीय समस्या को हल करने के लिए ब्रिटिश सरकार पर यू.एस. का दबाव, लगभग सभी उपनिवेशों में उपनिवेश विरोधी आन्दोलनों का होना, भारत की आजादी के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश उपनिवेशवाद का चौतरफा–राजनैतिक, आर्थिक, सैनिक–तौर पर कमजोर होना था, यानि महायुद्ध से ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की भारत को नियंत्रित करने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद वि-उपनिवेशीकरण का युग आ चुका था जिसमें अधिकतर देशों ने बिना किसी सशस्त्र संघर्ष या सत्याग्रह को चलाए बगैर स्वतंत्रता हासिल कर ली।

VII. सामाजिक पुनरजीवन के औजार के तौर पर सत्याग्रह

73. गांधीवादियों के मुताबिक सत्याग्रह विदेशी शासकों के खिलाफ एवं नैतिक ताकत के अलावा एक विशाल और उच्च सत्य का प्रतिनिधित्व करता है जो मानवीय परिस्थितियों में क्रांतिकारी बदलाव ला सकता है। सत्याग्रह के प्रति इस दावे की पुष्टि न तो गांधी के समय और न ही गांधी के बाद के युग में भारत या विश्व के किसी भाग में होती है।

74. सार्वजनिक और निजी नैतिकता का स्तर भी वाजिब, न्यायिक और सच्चाई की तरफ आगे नहीं बढ़ा। समाज के लोग सार्वजनिक गलतियों, यानि खुदगर्जी, लोभ, अहंकार, क्रोध, नैतिक पतन, अपराध, झगड़े, हिंसा इत्यादि में लिप्त होते जा रहे हैं।

75. भारतीय समाज अधिक असहिष्णु, क्रूर, हिंसक और अमानवीय बन गया है। स्वतंत्रता के माहौल में इसने अपने शान्ति के मसीहा की जान ले ली और उसके बाद अपने दो प्रधानमंत्रियों की हत्या की है। 20 हजार साम्प्रदायिक दंगे और 5 लाख से अधिक अनुसूचित जाति और जनजातियों के खिलाफ क्रूरता की घटनाएं घटित हुई हैं।

76. भारतीय राजनीति आज सभी तरह की सामाजिक बुराइयों का भंडार बनी हुई है। सभी स्तरों पर माफिया की एक समानान्तर सरकार चल रही है। यह स्थिति राज्य ढाँचे को अप्रासंगिकता की तरफ धकेल रही है।

77. ऐसा नजर आता है कि वाजबियत और न्याय हमारे समाज में दुर्लभ घटनाक्रम बन चुके हैं।

78. गांधीवादी सत्य और सत्याग्रह तो अभी तक ना तो गलत करने वाले और ना ही उसके पीड़ित पक्ष को बदलने में कारगर साबित हुए हैं। इस वक्त गन्दी व्यवस्था निरन्तर फलती-फूलती ही जा रही है।

VIII. गांधीवाद कारगर क्यों नहीं हो सका

79. उपरोक्त तथ्य सूचित करते हैं कि गांधीवाद ओपनिवेशिक और उपनिवेश के बाद के भारतीय समाज के लिए कारगर साबित नहीं हुआ है। इसकी मुख्य असफलता, साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक घृणा को फैलने से रोक नहीं पाना है। इसने भारत की आजादी के लिए संघर्ष किया परन्तु विभाजन हासिल किया। विभाजन की कीमत पर स्वतंत्रता हासिल करना देश के लिए एक भारी कीमत थी जो चुकाई गई। ढीले-ढाले संघीय व्यवस्था वाला प्रस्ताव काफी कम नुकसानदायक था। स्पष्ट है कि विभाजन को स्वीकृत किया जाना राष्ट्रीय हित में नहीं था।

80. भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का सम्पूर्ण व्यवहार दर्शाता है कि गांधीवाद भारतीय वास्तविकता की सही अवधारणा नहीं थी। इसीलिए इसका सिद्धान्त और व्यवहार भारत की प्रकृति के साथ मेल नहीं खाया और यही कारण था कि यह भारतीय हितों को पूरा नहीं कर पाया।

81. भारत एक बहु-धार्मिक, बहु-नस्ली, बहु-भाषाई, बहु-जातीय और बहु क्षेत्रीय देश है। इस देश को एक तर्कसंगत मानवतावादी एजेण्डा की आवश्यकता है जो सभी तरह के धार्मिक अन्धविश्वासों और चमत्कारों से मुक्त हो, जो सभी तरह के सामाजिक समुदायों को एक साझे मंच पर ला सके।

82. भारत के बहुरंगी सामाजिक चरित्र को उचित जवाब देने के बजाय गांधी ने संशोधित हिन्दू मानवतावाद का झंडा ऊंचा उठाया, जिसको उन्होंने परम्परागत हिन्दू पुनर्जागरणवादी पुरखों के सिद्धान्तों को पुन: ढालकर विकसित किया था। राम-रहीम के नए नारे को भुनाते हुए उन्होंने सभी धर्मों के सम्मान का प्रचार किया परन्तु व्यवहारिक तौर पर उन्होंने अपने ही धर्म के उद्देश्यों की वकालात की। उन्होंने ढके या खुले तौर पर सभी तरह के हिन्दू संगठनों–जैसे, गौ रक्षा समिति, गौ सेवा संघ संगठन शुद्धि, इत्यादि–का पक्ष लिया। इसके साथ ही हिन्दी-उर्दू विवाद में उनकी भूमिका भी शामिल है। पहले उन्होंने देवनागरी और परसियन लिपि में हिन्दुस्तानी का पक्ष रखा परन्तु बाद में उन्होंने हिन्दुस्तानी को नागरी लिपि में हिन्दी के साथ जोड़ना शुरू कर दिया और परसियन लिपि को लगभग भुला दिया। हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना इस परिवर्तन का एक और सबूत है। हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों पर गांधीजी की कुछ टिप्पणियों (जो हिन्दुओं के पक्ष में है) पर मुस्लिमों ने नाराजगी जताई थी। उनकी एक टिप्पणी थी कि 'मुस्लिम भारत को अपने घर की तरह सम्मान नहीं देते हैं' और 'मुसलमान स्वभाव से ही झगड़ालू होते हैं, तथा हिन्दू स्वभाव से कायर होते हैं।'[1] इस टिप्पणी के प्रति मुस्लिम हल्कों ने बहुत बड़े हद तक आलोचनात्मक रुख दिखाया।

1. यंग इंडिया, जून 19, 1924

83. यह केवल यों ही नहीं है कि एक हिन्दू धर्मान्ध द्वारा उनकी हत्या के 32 साल बाद बी जे पी (जो आर.एस.एस. का राजनैतिक पक्ष है) ने गांधीवाद को अपना निर्देशक सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। गांधीजी की धार्मिक राजनीति और बीजेपी के खाड़कू हिन्दूवाद के बीच मुख्य अन्तर यही है कि जहाँ पहले वाला अहिंसक और मूल्य आधारित है, वहाँ बाद वाला शक्ति और हिंसा की दिशा अख्तियार किए हुए है।

84. गांधीवादी धार्मिक एजेण्डे ने मुस्लिम दिमागों पर भारी नुकसानदायक प्रभाव डाले। मुस्लिम लीग ने हालात का पूरा फायदा उठाया। समय बीतने के साथ सभी किस्म का साम्प्रदायिकतावाद देश के गली-कूचे में बढ़ता चला गया।

85. इस प्रकार, विभाजन उस समय विद्यमान परिस्थितियों का तर्कसंगत परिणाम था। विभाजन से हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान नहीं किया जा सका, जैसी कि अपेक्षा की गई थी। इसने केवल इसके कुछ पहलुओं का अन्तर्राष्ट्रीयकरण अवश्य कर दिया।

86. स्पष्टत: गांधीवादी अवधारणा और प्रत्युत्तर भारतीय समाज की एकता के लिए उचित साबित नहीं हुए।

IX. गांधीवाद प्रयोग के सबक

87. गांधीवादी प्रयोग में बहुत से उपयोगी सबक मिलते हैं। उनमें मुख्य निम्नलिखित हैं–

88. इसका पहला सबक है कि आजकल की दुनिया की पुन: संरचना एक धर्म की मान्यताओं, मुहावरों और प्रतीकों के आधार पर नहीं की जा सकती है। सभी धार्मिक राज्य के नमूने दुनिया भर में भारी नुकसानदायक साबित हुए हैं। गांधी के हिन्दू हितों का पक्ष लेने से भारत के हितों को नुकसान पहुंचा है।

89. दूसरा सबक है कि गांधी के हृदय परिवर्तन वाला दृष्टिकोण–यानि बुराई को सत्याग्रह या अहिंसा से अच्छाई में बदलना–परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अच्छाई उभर नहीं सकती और बुराई मिट नहीं सकती जब तक कि वे हालात (कारण)–जिनमें बुराई उभरती है और जो अच्छाई के पनपने में बाधा पैदा करते हैं–बदल नहीं जाते। तब तक बंजर भूमि की प्रकृति बदल नहीं जाती तब तक उत्कृष्ट बीज भी इसमें उग नहीं सकता। गांधी की गलती वास्तव में इस तथ्य में निहित है कि कारण को हटाने वाला कार्यक्रम पेश किए बगैर इसने केवल प्रभाव को हटाने पर जोर दिया।

90. तीसरा सबक है कि कुछ गांधीवादी सामाजिक तकनीकी बहुत लाभदायक हो सकती है अगर उसका दृढ़ता से निरन्तर पालन किया जाए।

इसके नैतिक मूल्यों–आत्म त्याग, बलिदान, आडम्बरहीनता, सरलता, सहिष्णुता इत्यादि–का और सबसे ऊपर साध्य और साधन को जोड़ने के उसूल, एक उचित और न्यायिक समाज व्यवस्था के निर्माण में बहुत फायदेमंद साबित हो सकते हैं।

इसी तरह, इसकी सत्याग्रह की टेक्नीक–विवादों को शान्तिपूर्ण हल करने का एक तरीका–हालांकि वर्तमान दुनिया में हर कहीं लागू नहीं किया जा सकता है, परन्तु अभी भी

कुछ क्षेत्रों में दिये हुए हालातों के तहत इस तरीके से कोशिश की जा सकती है और भविष्य में हालात बदलने पर समस्त विश्व में यह तरीका लागू किया जा सकता है।

और अधिक, सर्वोदय, विकेन्द्रीकरण और स्वराज की धारणाओं को कुछ आवश्यक सुधारों के साथ लोगों को अधिक शक्ति हस्तांतरित करने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

91. हम विनम्रता एवं विश्वास के साथ सभी तरह के गांधीवादियों से अपील करते हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव जाति की सेवा में समर्पित किया है, वे इस सवाल पर सोचें कि क्यों भारतीय वास्तविकता, चाहे वह 1947 से पहले की रही हो या 1947 के बाद की, गांधीवाद की अपेक्षाओं से बिल्कुल भिन्न मोड़-घुकाव से चलती रही है।

7.11.95

* * *

''हिन्दुत्व इस राष्ट्र की मूलभूत पहचान है। हम दृढ़ता पूर्वक अन्ततोगत्वा इसकी विजय में विश्वास करते हैं। हमारे सभी प्रयास इसी दिशा में होंगे।''

(प्रो. राजेन्द्र सिंह, रा.स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक 'फ्रंट लाइन' 8 अप्रेल 1994 पृष्ठ 131)

आर एस एस का हिन्दुत्व –हिन्दू रूढ़िवाद का सिद्धान्त यथार्थ संघ परिवार से अन्तरावलोकन की मांग करता है

I. समस्या

1. एक स्व-घोषित उच्च नैतिक आधार पर टिके रहते हुए, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) परिवार ने, विशेष कर इसके राजनैतिक स्वरूप भाजपा ने, हमेशा अपने आपको एक ऐसे संगठन के रूप में चित्रित किया है, जो एक ऐसी अनूठी हिन्दुत्व विचारधारा की विशिष्टता रखता है, जो इस पृथ्वी पर विश्व इतिहास में कभी नहीं पाई गई; जिसमें एक अद्भुत कार्यक्रम की विशिष्टता है, जिसकी खोज यह देश वैदिक काल के बाद, युग-युगों से कर रहा है; जो अनुकूल एवं ऐसी युक्तियुक्त नीतियों की विशिष्टता रखता है। जो समकालीन भारतीय वास्तविकताओं के अनुरूप है तथा जिनका 1947 से ही राष्ट्र में अभाव रहा है तथा जो एक ऐसी नैतिक आचरण-संहिता की विशिष्टता रखता है जिसमें अन्य दलों की भ्रष्ट, धन एवं बाहुबल पर आधारित नीतियों के विपरीत, व्यवहार के सर्वोत्तम मानवीय नियमों का समावेश है जैसे आत्म-बलिदान, अहम पर समुचित नियन्त्रण, सिद्धान्तवादी मानदण्ड या विचार, क्रमबद्ध अनुशासन, नेतृत्व की उच्च गुणवत्ता, ईमानदारीपूर्ण सादा एवं आडम्बरहीन जीवन तथा एक ऐसी प्रणाली या शैली जो भ्रष्टाचार, गुटबाजी तथा ईर्ष्या द्वेष से मुक्त हो।

2. परन्तु सच्चाई क्या है, तथ्य क्या दशति हैं, क्या वे संघ परिवार के दावे के अनुरूप हैं या वे कोई भिन्न प्रकार की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, इस सच्चाई तक पहुँचने के लिए सबसे उचित मार्ग या तरीका है कि तथ्यों का अवलोकन कर समस्या का समाधान किया जावे। वास्तविकता को जानने का कोई और बेहतर तरीका नहीं है इसी कारण तथ्य कल्पना के बजाय अधिक विश्वसनीय है।

3. प्रासंगिक तथ्यों को देखने की प्रक्रिया में हमें उल्टे क्रम से शुरू करना होगा। वह इस प्रकार कि संघ परिवार की नैतिक आचरण संहिता से प्रारम्भ कर तथा इसकी नीतियों एवं कार्यक्रमों से गुजरते हुए, हम इसकी विचारधारा पर आते हैं तथा अन्त में इसकी प्रकृति पर आते हैं। इस प्रणाली को अपनाने में, हमारा तर्क या विवेक यह है कि नैतिक आचरण संहिता और नीतियाँ प्रारम्भिक तौर पर व्यवहार एवं संगठन से सम्बन्धित हैं और इसीलिये आसानी से देखे और समझे जा सकते हैं, तथा कार्यक्रम मुख्यत: विशिष्ट अवधारणाओं, मूलभूत सिद्धान्तों एवं विचारधारा से जुड़ा है और ये दोनों ही मुख्यत: तर्क या विवेक के क्षेत्र से जुड़े हुए हैं और इस प्रकार तुलनात्मक रूप से समझने के लिए ज्यादा मुश्किल है।

II. परिवार की नैतिक आचरण संहिता

4. संघ परिवार के एक लम्बे इतिहास के दौरान–जिसमें निहित है आर.एस.एस. की 1925 से 1995 तक की जीवन यात्रा, इसके जीवन में 1951 से 1995 का भाजपा का जीवन वृत्त (प्रारम्भ से 1951 से 1977 तक भारतीय जन संघ के रूप में तथा 1977 से 1980 तक जनता पार्टी के एक भाग के रूप में) 1964 से 1995 तक विश्व हिन्दू परिषद की प्रक्रिया तथा 1990 से 1995 तक बजरंग दल के सहभागी के रूप में–इसने कहीं भी किसी भी समय, अपने व्यवहार के दौरान कोई अनुकरणीय नैतिक मानदण्ड न तो निर्मित किया है और न ही प्रस्तुत किया है, सिवाय परम्परागत मानदण्डों की पुनरावृत्ति के। भूतकाल में इसने क्या कुछ किया इसके बारे में किसी ने कोई चिन्ता नहीं की। लेकिन पिछले चार वर्षों से, जब से इसकी राजनैतिक शाखा भाजपा ने राजनैतिक सत्ता हथियाने के लिए प्रतिक्षारत दल का स्तर हासिल कर लिया है, इसकी गतिविधियों ने व्यापक तौर पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है अत: इसकी बारीकी से जाँच की जानी चाहिए।

5. यद्यपि, पिछले कुछ वर्षों के दौरान कभी-कभी संघ परिवार की राजनैतिक हवा में कुछ तिनके व घास-फूस उड़ते रहे हैं, फिर भी येन-केन प्रकारेण इसने अपनी छवि को बिना किसी क्षति के स्वच्छ रखा है।

6. हालांकि हाल ही की कतिपय घटनाओं ने इसके नैतिकता से भरे पात्र का ढक्कन उखाड़ फैंका है अर्थात् उसे बेनकाब कर दिया है।

(अ) भ्रष्टाचार के आरोप

7. 1947 के बाद सबसे बड़े भ्रष्टाचार काण्ड में जिसने समग्र राजनैतिक क्षेत्र में एक ज्वालामुखी सा विस्फोट कर दिया है, इस गीले कीचड़ का कुछ हिस्सा, इसके अध्यक्ष एल.के. आडवाणी सहित, सर्वोच्च स्तर के भाजपा धुरन्धरों के ऊपर भी गिरा है। केन्द्रीय जांच ब्यूरो द्वारा प्रस्तुत चार्जशीट में कहा गया है कि आडवाणी तथा पूर्व वित्त मंत्री यशवंतसिंह ने जो वर्तमान में बिहार विधान सभा में भाजपा की ओर से विपक्ष के नेता हैं, रु. 81.18 लाख संदिग्ध व्यापारी एस.के. जैन से लिए हैं, जो इसी के साथ कश्मीर एवं पंजाब के उग्रवादी संगठनों को भी धन देता था। इस प्रकार धन देने का मामला मात्र भ्रष्टाचार पर ही आधारित नहीं है। स्पष्ट है कि एक ओर तो यह राजनीति के अपराधीकरण से जुड़ा है तथा दूसरी ओर राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित है। सम्भवत: यह अपराधी-राजनेता व व्यापारियों के अन्तर्राष्ट्रीय उग्रवादी गठबंधन का एक अच्छा एवं सही उदाहरण है।

8. सी.बी.आई. द्वारा प्रस्तुत चार्जशीट में यह बताया गया है कि श्री आडवाणी ने अप्रेल 1988 व अप्रेल 1991 के बीच कुल 60 लाख रुपये प्राप्त किए तथा श्री यशवंतसिंह ने मार्च 1990 व अप्रेल 1991 के बीच 21.18 लाख रुपये प्राप्त किए तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय में विचाराधीन एक जनहित याचिका के अनुसार दिल्ली की भाजपा सरकार के मुख्य मंत्री श्री एम.एल. खुराना ने अप्रेल 1988 व मार्च 1990 के मध्य 3 लाख रुपये लिए तथा दिल्ली के एक अन्य भाजपा नेता श्री विजय कुमार मल्होत्रा को भी इसी अवधि के दौरान एक लाख रुपयों का भुगतान किया गया। मध्य प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री एस.एल. पटवा सहित कुछ अन्य भाजपा नेताओं ने भी जैन बंधुओं से धन लेने की बात को

स्वीकार किया है भाजपा सांसदों में से एक श्री ब्रजभूषण शरणसिंह पर सी.बी.आई. ने दाऊद इब्राहीम गैंग के कुछ कट्टर उग्रवादियों को पनाह देने का आरोप लगाया है।

9. यद्यपि इस पार्टी ने पूरे प्रकरण को झूठ एवं राजनीति से प्रेरित होना बताया है परन्तु इसके, इस महत्वपूर्ण राजनैतिक घोटाले के प्रति संदेहास्पद उत्तरदायित्व–हमारे समक्ष एक महत्वपूर्ण प्रश्नों की शृंखला छोड़ देता है–पार्टी ने इस घोटाले को अपने भ्रष्टाचार विरोधी कार्यक्रम का भाग क्यों नहीं बनाया जबकि यह मामला लगभग चार वर्षों से समाचार पत्रों की सुर्खियों में है, अपने देहली घोषणा-पत्र (दिसम्बर 1995) में पार्टी को इस घोटाले का जिक्र करने से किसने रोका, नियंत्रित किराए वाले राजकीय आवासों के अवैध आवंटन सहित, नरसिंहराव सरकार के सभी नए पुराने गैर कानूनी कार्यों की सूची बनाई गई थी। क्या इस सबसे बड़े घोटाले के प्रश्न पर भाजपा की चुप्पी कुछ कपटपूर्ण नहीं है। पुन: यह कैसे हुआ कि विशिष्ट न्यायालय में मुकदमा प्रस्तुत करने के बाद भाजपा पार्टी ने मुकदमे में प्रतिदिन सुनवाई हेतु निवेदन करने के साथ-साथ, कुछ घंटों बाद ही पार्टी ने अपनी धारणा बदल ली तथा आडवाणी के खिलाफ इस 'झूठे' मुकदमे को उठाने की मांग की गई। इसके बाद, जब पार्टी ने प्रारम्भिक तौर पर यह विचार रखा था कि चूंकि आडवाणी इस्तीफा दे चुके हैं, अब और किसी के इस्तीफा देने की आवश्यकता नहीं है (क्योंकि पार्टी के अध्यक्ष की ओर से की गई कार्यवाही पर्याप्त है) न जाने क्यों पार्टी ने कुछ ही समय बाद अपनी विचारधारा को बदल लिया और यह घोषणा की कि सिन्हा, बिहार विधान सभा की सदस्यता से इस्तीफा देंगे तथा यदि खुराणा के विरुद्ध आरोप-पत्र पेश किया जाता है तो वे भी इस्तीफा दे देंगे। इसके अलावा, यह कैसी अजीब स्थिति है कि जब आडवाणी एवं अन्य कुछ नेताओं ने जैन बंधुओं से धन लेने से इन्कार किया है, कुछ अन्य भाजपा नेताओं जैसे एस.एल. पटवा, कैलाश जोशी आदि ने उसी स्रोत से भारी धन राशि लेने की बात स्वीकार की है।

10. अपनी परस्पर विरोधी स्थिति को पार्टी चाहे किसी भी रूप में स्पष्ट करे चाहे बहादुरीपूर्वक सिर ऊंचा उठा कर तथ्य स्वीकार करे, चाहे नरसिंह राव पर राजनैतिक षडयंत्र का आरोप लगावे, इस पार्टी का स्व-घोषित स्वच्छ आसन तो इस प्रकार प्रदूषित हो चुका है कि इसे पुन: स्वच्छ नहीं बताया जा सकता। दूसरे दलों से भिन्न या विशिष्ट होने का इस पार्टी का सिद्धान्त तो छिन्न-भिन्न हो चुका है, कमल का फूल पूर्णतया विकसित होने के पहले ही मुरझाने लग गया है।

11. इस काण्ड के तथ्य संदेह के लाभ के तर्क को भी अस्वीकार कर दिया है–यदि यह मान लें कि यह प्रसंग एक ऐसी दुर्घटना है जिसकी पकड़ में पार्टी अचानक बिना ऐसी आशा के आ गई है। श्री एल.के. आडवाणी द्वारा हवाला धन लेने के तथ्य को उचित ठहराते हुए दिल्ली के मुख्यमंत्री मदनलाल खुराना ने कहा था कि 'तथाकथित धन जो हवाला काण्ड में श्री एल.के. आडवाणी द्वारा प्राप्त किया गया वह 'राजनैतिक व्यय' शीर्षक में आता है तथा भ्रष्ट आचरण की तारीफ में नहीं आता।' (टाइम्स ऑफ इण्डिया 20.1.96 पृष्ठ सं. 18) भाजपा महामंत्री, सुषमा स्वराज ने यह टिप्पणी की थी 'मध्य प्रदेश में पार्टी के वरिष्ठ नेताओं ने एस.के. जैन से धनराशि पार्टी-कोष के लिए ली थी।' (टाइम्स ऑफ इण्डिया 30.1.96पृष्ठ 6) भाजपा के एक अन्य महासचिव प्रमोद महाजन ने यह टिप्पणी की थी–'हम विभिन्न रूपों में चन्दा प्राप्त करते हैं। जिसे आप हवाला धन कहते हैं वह तो यहाँ

के व्यापारियों व उद्योगपतियों से हमें मिलने वाला चन्दा है जो पहले विदेशों में भेजा जाता है तथा बाद में वापिस भारत में प्रेषित किया जाता है। इसमें विदेशों में वैध तरीके से कमाया हुआ धन भी शामिल हो सकता है। मूल कारण यह है कि व्यवस्था या प्रणाली में पारदर्शिता की कमी है चूंकि चन्दे की राशियाँ वैध है अत: हम इसे अपराध कह कर नहीं पुकार सकते।'

12. यद्यपि 1979 से, राजनैतिक दलों के लिए यह कानूनी प्रावधान है कि वे आयकर-विवरण प्रस्तुत करेंगे परन्तु भाजपा ने 1995 तक यह विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। यह एक तथ्य है कि आर.एस.एस. ने अपनी प्रारम्भिक स्थापना से लेकर आज तक अपने आय-व्यय के लेखे न तो जनता के समक्ष रखे हैं और न आयकर विभाग के समक्ष प्रस्तुत किए हैं, इस तथ्य के बावजूद भी कि यह कानून का उल्लंघन है तथा आर.एस.एस. के पास विपुल वित्तीय स्रोत है। यह बात याद की जा सकती है कि केवल 3 वर्ष पूर्व एक न्यायप्रिय व अन्तरात्मा की आवाज मानने वाले एक आयकर अधिकारी ने विश्व हिन्दू परिषद पर यह आरोप लगाया था कि इसने करोड़ों रुपये अवैध रूप से एकत्र किए हैं, जो अनुमानत: 1000 करोड़ तक हैं तथा इन्होंने आयकर विभाग को विवरण प्रस्तुत नहीं किया है, लेकिन इस अधिकारी को नरसिंह राव सरकार द्वारा प्रताड़ित किया गया। यह आरोप लगाते हुए कि इसने साधु-संतों के पवित्र संगठन के साथ 'दुर्व्यवहार' किया है। यहां यह उल्लेखनीय है कि केवल 6 वर्ष पूर्व (1989), जबकि भाजपा विपक्षी गठबंधन का एक अंग बनकर, राजीव सरकार को भ्रष्टाचार के बिन्दु पर गिराना चाहती थी, तत्कालीन आर.एस.एस. सरसंघ चालक बाला साहब देवरस ने कहा था कि वे यह समझ नहीं पाए हैं कि बोफोर्स सौदे पर इतना हल्ला क्यों मचाया गया है जबकि यह बात सबको पता है कि 'इस देश के समस्त रक्षा सौदों में घोटाले और कमीशन निहित होते हैं।'

13. यह एक प्रकार का नैतिक युग-परिवर्तन है (अर्थात् काल या युग का परिवर्तन), जिसकी संघ परिवार इस देश में स्थापना की आशा करता है (यह देश जो संघ परिवार के अनुसार ईश्वर का चहेता व चुनिन्दा है)।

(ब) भाजपा के भीतर मतभेद

14. सन् 1990 से, जब से संघ परिवार ने एक उच्चतर स्तर हासिल किया है, संघ परिवार के सभी 'सदस्यों में विभिन्न स्तरों पर आन्तरिक एवं पारस्परिक मतभेद बढ़ता जा रहा है। भाजपा इस बुराई का प्रमुख शिकार बनी है। इसकी सभी महत्वपूर्ण राज्य स्तरीय इकाइयां धड़ेवाद की या विवाद की समस्या से ग्रसित या बाधित है। हाल ही में जो गुजरात की विधान सभा वाले भाग में जो विवाद व संकट उत्पन्न हो गया था तथा जिसने वहां भाजपा सरकार की साख लगभग गिरा दी थी, उसने भाजपा की अत्यधिक प्रचारित प्रसारित उच्च नैतिकता की अन्दरूनी पोल या खोखली वास्तविकता को उजागर कर दिया था। उद्योगपतियों का समूह, मिलावट करने वालों व भवन-निर्माण करने वालों का समूह तथा कांग्रेसी मददगार (इन सबने ही किराये के हवाई जहाजों तथा महंगे विलासितापूर्ण होटलों का खर्चा वहन किया था), ये सब स्पष्ट तौर पर पूरे नाटक में किसी न किसी तरफ से शामिल थे (मुख्यत: बघेला के समूह का समर्थन करने में)। भाजपा के केन्द्रीय नेताओं ने फिलहाल जो एकता का फार्मूला निर्मित किया उसने घटनाक्रम को एक हल्का या अस्थाई मोड़ तो दिया पर वास्तविक संकट अभी भी बिना किसी समाधान से

पड़ा हुआ है। कुछ दिन पहले ही बघेला के पक्षधर लोगों द्वारा आडवाणी को मजबूर किया गया था तथा उन्हें गांधी नगर में आयोजित सभा को सम्बोधित करने से रोक दिया था। परिणामस्वरूप भाजपा को लोकप्रियता में गिरावट जैसा कष्ट सहन करना पड़ा है, जैसा कि हाल ही के स्थानीय निकायों के चुनावों से स्पष्ट है (पिछले वर्ष के विधान सभा चुनावों की तुलना में)।

15. उत्तर प्रदेश गहरे जातिगत विवादों के कारण छिन्न-भिन्न हो रहा है, ये विवाद संसदीय दल के नेता श्री कल्याणसिंह, जिन्हें पिछड़ी जातियों के समुदायों का समर्थन प्राप्त है तथा प्रदेश स्तर पर दल के नेता श्री कलराज मिश्र के बीच है, जिन्हें उच्च जातियों के वर्ग का समर्थन प्राप्त है। 4 माह की अवधि वाला भाजपा-बसपा गठबंधन, जिसने मायावती सरकार को समर्थन दिया (जून 1995 से सितम्बर 1995 तक), वह भाजपा व विहिप के दृष्टिकोण के बीच अन्तर के कारण तथा भाजपा के भीतर नरम व कठोर विचारधारा वाले लोगों के बीच मतभेदों के कारण टूट गया। मायावती सरकार के पतन के बाद तत्काल ही पहले तो भाजपा ने राज्य विधान सभा भंग करने तथा शीघ्र निर्वाचन कराने की मांग की, तथा मुश्किल से ही कोई 48 घंटे बाद ही कल्याणसिंह ने 216 विधायकों के समर्थन के साथ मंत्रीमंडल गठित करने का दावा प्रस्तुत किया, जिनमें से अन्य दलों के 40 विधायकों से कई गुप्त सौदों के साथ बातचीत की गई थी। जैसा कि समाचार पत्र 'पाक्षिक फ्रंटलाइन' ने 17 नवम्बर 1995 के पेज 126 पर अपने अंक में लिखा था, 'भाजपा को समर्थन देने वाले दो उद्योगपतियों ने आवश्यक सूटकेस (पर्याप्त धन) देकर अपने दो प्रतिनिधियों को लखनऊ भेजा था तथा वे एक होटल में ठहरे थे।' यह योजना इसलिए असफल हो गई थी कि बसपा से टूटे हुए 24 सदस्यों ने सूटकेसों (धन) के अलावा यह मांग भी की थी कि उन्हें लिखित में खुला आश्वासन दिया जावे कि उन्हें सभी को अगली विधान सभा चुनावों में पार्टी से टिकट भी दिया जाएगा।

16. अपनी महत्वपूर्ण राज्य इकाइयों में यथा मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान तथा पंजाब, उड़ीसा, हरियाणा एवं त्रिपुरा में भी भाजपा ने आन्तरिक कलह या भीतरघात के कारण संगठनात्मक चुनावों को टाल दिया। मध्यप्रदेश में तो सुन्दरलाल पटवा गुट व कैलाश जोशी गुट के बहुत लम्बे समय से संघर्ष विद्यमान है। राजस्थान में गैर-राजपूत गुट भैरोंसिह शेखावत के सत्ताधारी राजपूत गुट के खिलाफ संघर्षरत हैं।

17. बिहार, दिल्ली तथा आसाम में भी पार्टी के संगठनात्मक चुनावों में गुटीय संघर्ष विद्यमान था जिसने तीव्र कटुता का वातावरण निर्मित किया। बिहार में पिछड़े हुए बनिया वर्ग (गोविन्दाचार्य समर्थित) तथा खत्री वर्ग (जो मनोहरलाल जोशी के निकट है) के बीच एक चिरस्थाई अन्तर्जातीय कलह चल रही है। दिल्ली में भी वाजपेयी एवं खुराना समर्थित गुट की आडवाणी एवं जोशी समर्थित तुलनात्मक रूप से छोटे गुट द्वारा खिलाफत व विरोध किया जाता है। आसाम में भी अनुसूचित जाति व जन जाति के प्रतिनिधियों के नेतृत्व में फाड़ पैदा हो गई थी अर्थात् पार्टी में गुटबन्दी पैदा हो गई थी। महाराष्ट्र में आर.एस.एस. प्रचारक तथा मधु देवलकर के नेतृत्व वाले 12 अभिमानी नेताओं का 'जिंजर ग्रुप' दोनों ही आडवाणी समर्थित प्रमोद महाजन पर खुले तौर पर यह आरोप लगाते हैं कि उन्होंने पार्टी पर 'पांच सितारा संस्कृति' को थोपा है। हरियाणा, हिमाचल एवं जम्मू भी गुटीय संघर्ष या कलह की वेदना से ग्रसित हैं।

18. आर.एस.एस. के 'दूरस्थ नियंत्रण' (रिमोट कन्ट्रोल) के साथ, संघ परिवार एक सुगढ़ भवन की भांति प्रतीत होता है किन्तु वह इसका सही प्रतिबिंब या सही चित्रण नहीं है।

19. सर्वोच्च स्तर पर भी, भाजपा नेतृत्व, जो विभिन्न स्तरों पर सत्ता के लिए अन्तर्दलीय संघर्ष से प्रभावित है, राजनैतिक विचारधारा के आधार पर भी तीन मुख्य वर्गों में विभाजित है–नरम, मध्यम एवं उग्र या कठोर तथा तीनों का प्रतिनिधित्व क्रमश: वाजपेई, आडवाणी एवं जोशी करते हैं। वाजपेई, गांधीवादी समाजवाद में विश्वास करते हैं, जो कांग्रेस (आई) के बहुसंख्यकवादी या नेहरूवादी राष्ट्रवाद से मेल खाता है। आडवाणी पुरानी जनसंघीय विचारधारा के पक्षधर हैं जिसका प्रवर्तन श्री दीनदयाल उपाध्याय ने अपने समग्र या सम्पूर्ण मानववाद के सिद्धान्त में किया। जोशी विश्व हिन्दू परिषद् तथा शिवसेना की भांति, एक बाज की दृष्टि के सदृश विचारधारा के पोषक हैं जो समूचे विश्व को दो वर्गों में बांटती है–राष्ट्रभक्त (जिसका प्रतिनिधित्व हिन्दू करते हैं) तथा राष्ट्रद्रोही या विश्वासघाती (गैर-हिन्दुओं की ओर संकेत)–तथा इन दो के बीच कुछ नहीं। हवाला काण्ड के सार्वजनिक तौर पर भण्डाफोड़ होने तक तो आडवाणी के नेतृत्व वाली मध्यम शाखा का प्रधान वर्चस्व था। लेकिन आगे आने वाले समय में हवाला काण्ड से उत्पन्न समस्या के संकेत को देखते हुए आडवाणी ने प्रधानमंत्री पद के लिए भाजपा का उम्मीदवार वाजपेई को घोषित कर दिया। और अब सी.बी.आई. द्वारा इनके विरुद्ध न्यायालय में आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद अपनी साख पर्याप्त तौर पर गिरने के बाद तो वह अपनी स्थिति एवं इज्जत को वाजपेई के पीछे खड़े होकर ही और अधिक क्षति होने से बचा सकते हैं। इस प्रकार, फिलहाल तो वाजपेई की स्थिति सबसे अधिक मजबूत है।

20. हवाला काण्ड के भण्डाफोड़ के ठीक पहले भाजपा की गुटीय व्यूह-रचना इस प्रकार थी। मध्यम विचारधारा वाले आडवाणी को निम्नांकित का समर्थन प्राप्त है–कुशाभाऊ ठाकरे (वरिष्ठ आर.एस.एस. प्रचारक तथा भाजपा महासचिव), कल्याणसिंह (उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री), सुन्दरलाल पटवा (मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री), के.एन. गोविन्दाचार्य (महासचिव), एम.आर. मलकानी (भाजपा उपाध्यक्ष), विजयराजे सिंधिया (कार्यसमिति की सदस्या), उमा भारती (युवा मोर्चा की अध्यक्ष), प्रमोद महाजन (महासचिव), गोपीनाथ मुण्डे (महाराष्ट्र के उप-मुख्यमंत्री), केशुभाई पटेल (गुजरात के अपदस्थ मुख्यमंत्री), नरेन्द्र मोदी (गुजरात भाजपा के पूर्व महामंत्री) तथा ओमप्रकाश कोहली (दिल्ली भाजपा के पूर्व अध्यक्ष)।

21. नरम विचारधारा वाले वाजपेई को निम्नांकित का समर्थन प्राप्त है–भैरोंसिंह शेखावत (मुख्यमंत्री राजस्थान), कैलाश जोशी (मध्य प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री), जसवन्तसिंह (लोकसभा में भाजपा के उपनेता), काशीराम राणा (गुजरात प्रदेश अध्यक्ष), सिकन्दर बख्श (राज्यसभा में भाजपा नेता), मदनलाल खुराना (दिल्ली के मुख्यमंत्री)।

22. बाज की तरह उग्र जोशी के समर्थकों में निम्नांकित शामिल हैं–सुन्दरसिंह भण्डारी (भाजपा उपाध्यक्ष), विष्णुकांत शास्त्री (पश्चिम बंगाल के प्रदेशाध्यक्ष), राजनाथसिंह (उत्तर प्रदेश के पूर्व मंत्री), प्यारेलाल खण्डेलवाल (किसान प्रकोष्ठ के पूर्व

प्रभारी), एल.एन. पाण्डे (मध्य प्रदेश प्रदेशाध्यक्ष), एन.एस. फराण्डे (महाराष्ट्र के पूर्व प्रदेशाध्यक्ष), ताराकांता (बिहार के पूर्व प्रदेशाध्यक्ष)।

23. यह बात स्पष्ट नहीं है कि धन, सम्पत्ति व सत्ता के लिए गुटीय संघर्ष या षडयंत्र के परिप्रेक्ष्य में प्रतीक्षारत पार्टी, सत्ताधारी पार्टी के दूसरे विकल्प या प्रारूप के रूप में अपने आप को सिद्ध कर पा रही है अथवा नहीं?

(स) संघ परिवार में दरारें

24. आर.एस.एस. के दूरस्थ-नियंत्रण के साथ, ऐसा लगता है कि संघ परिवार एक सुगढ़ अर्थात् सुनिर्मित भवन जैसा है, लेकिन इसके बढ़ते हुए जनाधार के साथ तथा नई समस्याओं के उद्भव के बाद, न केवल भाजपा के अन्दर दरारें या फूट विकसित हुई है, बल्कि विहिप, भाजपा व आर.एस.एस. तीनों के बीच पारम्परिक मतभेद भी उभरे हैं।

25. हाल ही में संघ परिवार के कतिपय महत्वपूर्ण नेताओं द्वारा की गई टिप्पणियों एवं दिए गए वक्तव्य काफी विशिष्टता रखने वाले हैं। उदाहरण के तौर पर विहिप के नए कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक सिंघल ने हाल ही में यह टिप्पणी की थी कि उनकी मान्यता है कि शिवसेना के विचार भाजपा की तुलना में विहिप के अधिक समीप है। उन्होंने आगे कहा कि अब भी उनको भाजपा से पूरी आशाएँ हैं क्योंकि इसका राष्ट्रव्यापी संगठन है तथा इसने रामजन्म भूमि के मुद्दे पर उस समय 'अच्छी शुरूआत' की जबकि उत्तर प्रदेश में कल्याणसिंह मंत्रीमण्डल सत्ता में था। लेकिन उन्होंने विशेष तौर पर यह टिप्पणी की कि शिवसेना हमारा हिन्दू घोषणा पत्र स्वीकार करने के लिए भाजपा के मुकाबले अधिक तैयार थी। शिवसेना का केवल मात्र दोष यही है कि इसका जनाधार सीमित है। अपने 40 सूत्रीय हिन्दू घोषणापत्र को जारी करने के तुरन्त बाद विहिप ने घोषणा की थी कि वह इस घोषणापत्र को स्वीकार करने वाले किसी भी दल को समर्थन देगी।

26. विश्व हिन्दू परिषद् के आक्रामक हाव भाव या तेवर के विपरीत, भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार ने न केवल बाबरी मस्जिद गिराने से असहमति जाहिर की है बल्कि विहिप की काशी एवं मथुरा के विध्वंसकारी योजनाओं का भी विरोध किया है। हाल ही की विविध घटनाओं के प्रति वाजपेई की प्रतिक्रिया या उत्तर–जैसा कि बम्बई दंगों पर बिठाए गए जांच आयोग का समापन करना, काशी एवं मथुरा के मन्दिरों को मुक्त कराने के लिए उमा भारती का 'मृत्यु दस्ते' बनाने का नारा, बजरंग दल द्वारा गोहत्या बन्द कराने के लिए बाहुबल का प्रयोग करने की घोषणा आदि–यह प्रदर्शित करता है कि वे देश में एक उदार एवं शांत राजनैतिक वातावरण के ज्यादा पक्ष में है बजाय हिन्दू आधारभूत विचारधारा के। न केवल यही, वाजपेई, आर.एस.एस. की समग्र रूप से नियंत्रण वाली विचारधारा से भी असहमति या मतभेद रखते हैं। हाल ही में मीडिया को दिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने अनेक मुद्दों पर आर.एस.एस. से अपने मतभेद प्रकट किए हैं।

27. भाजपा एवं संघ परिवार के विभिन्न घटकों में बढ़ते घावों के लिए आर.एस.एस. नमक के समान है। हाल ही की प्रगति या घटनाओं ने–गुजरात के कुछ अन्य स्थानों पर भाजपा नेताओं की खुली अवसरवादी लड़ाई, आडवाणी को शक्तिहीन या बहिष्कृत सा करना, भाजपा द्वारा वाजपेई को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित करना, भाजपा के ढांचे में कांग्रेसी विचार के लोगों का उभरना तथा विहिप एवं भाजपा के बीच तथा भाजपा

व शिवसेना के बीच बढ़ता हुआ असन्तोष एवं मतभेद आदि–आर.एस.एस. को एक विकट स्थिति में ला खड़ा किया है, तथा एक अन्तिम रेफरी या संघ परिवार के सर्वोच्च मध्यस्थ के रूप में इसकी निर्णायक भूमिका को सीमित कर दिया है। यह स्पष्ट है कि योग्यता का आत्मरचित आदर्श, किसी अन्य राजनैतिक नेता या संगठन से किसी भांति भिन्न या बेहतर प्रमाणित नहीं हुआ है।

III. संघ परिवार की नीतियाँ

28. संघ परिवार ने भारतीय एवं विश्व की वास्तविकताओं के ठोस विश्लेषण के आधार पर अपनी नीतियों को परिभाषित नहीं किया है। अपने अस्तित्व में आने के बाद से ही समय-समय पर घटित होने वाली घटनाओं के प्रति उसने कोई प्रतिक्रिया या उत्तरदायित्व विकसित नहीं किया है। वास्तव में, वे ऐसे उपायों या विधियों की एक शृंखला निर्मित करते हैं, जो हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिए अनिवार्य हो। संघ परिवार के सभी सदस्य उनके प्रति समर्पित है। संक्षेप में, ये नीतियां इस प्रकार हैं–

(क) रक्षा नीति : संघ परिवार की प्राथमिकताओं की सूची में रक्षा नीति को सर्वोच्च स्थान प्रदान प्रदान किया गया है। यह अपने स्वयं के परमाणु अस्त्र तथा अन्य परम्परागत अस्त्र-शस्त्र विकसित करके भारत को एक सबसे बड़ी सैन्य शक्ति के रूप में निर्मित करना चाहता है, इसमें पहली प्राथमिकता तो घरेलू उत्पादन की रहेगी मगर स्थानीय उत्पादन सम्भव नहीं हो तो हथियारों का आयात भी किया जा सकेगा। यह इस विचारधारा पर जोर देता है कि भारत के समक्ष जो भयंकर एवं गहन आन्तरिक एवं बाहरी चुनौतियाँ हैं उनका मुकाबला करने का कार्य तथा भारत के हितों की रक्षा का कार्य भारत को एक सैन्य उच्च शक्ति के रूप में विकसित करके ही किया जा सकता है।

(ख) विदेशी नीति : परिवार की विदेश नीति में विश्व में सब तरफ हिन्दू प्रभाव फैलाने की बात निहित है। यह महाशक्तियों की नीतियों का विरोध करता है। पाकिस्तान की हर समय व हर स्थान पर खिलाफत करता है तथा उससे अलग रहने की बात पर जोर देता है तथा चीन से सतर्क रहने की नीति रखता है तथा भारत पाकिस्तान मामलों में तटस्थ रहने का प्रयास करता है। यह पड़ौसी देशों के प्रति कड़ा रुख अपनाने का पक्षधर है तथा भारत-विरोधी उग्रवाद के विरुद्ध कड़े से कड़े कदम उठाने के पक्ष में है, जिसका सूत्रपात एवं संचालन पाकिस्तान द्वारा किया जाता है तथा जिसका समर्थन इस्लामिक देशों (यथा ऑर्गेनाईजेशन ऑफ इस्लामिक कन्ट्रीज) तथा देशी व विदेशी मुस्लिम संगठनों द्वारा किया जाता है। संघ परिवार संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी भाषा के प्रयोग की मांग करता है। यह भारत द्वारा खो दिए गए समस्त प्रदेशों को वापिस प्राप्त करने की घोषणा करता है जैसे पाकिस्तान अधिकृत 'आजाद-कश्मीर' तथा चीन नियंत्रित अकसाई चीन इत्यादि– जिन्हें कांग्रेस शासन के अधीन भारत की कमजोर विदेश एवं रक्षा नीति के कारण खो दिया गया था। प्रारम्भ में संघ परिवार भारत की निर्गुट विदेश नीति का भी विरोध करता रहा है।

(ग) राजनैतिक नीति : संघ परिवार की राजनैतिक नीति का उद्देश्य है कि हर सम्भव तरीके से राजनैतिक ढांचे का हिन्दुकरण किया जावे। सर्वप्रथम यह शुरूआत अयोध्या, काशी व मथुरा में मस्जिदों को तोड़कर वहां हिन्दू मन्दिर बना कर खोई हुई

राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना करना चाहती है, उन मस्जिदों को तोड़ना चाहता है जो मध्यकाल के मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुओं के पवित्र स्थानों को जानबूझ कर तोड़ व भ्रष्ट करके जबरदस्ती निर्मित कराई गई थी। संघ परिवार मांग करता है कि गौ-हत्या पर तत्काल रोक लगाई जावे। (गाय जो हिन्दुओं के लिए पूजनीय माता है), हिन्दी भाषा को एक मात्र राजभाषा घोषित किया जावे तथा वर्तमान में अंग्रेजी को भी यह स्तर प्राप्त है उसे वापिस लिया जावे, शिक्षा के पाठ्यक्रम में संस्कृत (जो समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है) को अनिवार्य विषय के रूप में रखा जावे, हिन्दुओं के द्वारा मुस्लिम व ईसाई धर्म अपनाने पर रोक लगाई जावे तथा जिन्होंने धर्म परिवर्तन कर लिया है उन्हें वापिस हिन्दू धर्म में लाया जावे, देश में तुरन्त एक समान नागरिक संहिता लागू की जाये, संविधान की धारा 370 को तुरन्त समाप्त किया जावे तथा जम्मू-कश्मीर को भी अन्य भारतीय राज्यों के समान ही स्तर प्रदान किया जावे, बंगलादेशी घुसपैठियों को बलपूर्वक बाहर खदेड़ा जावे, प्रत्येक स्तर पर विकेन्द्रीकरण किया जावे, युवकों को सैन्य प्रशिक्षण दिया जावे तथा मुस्लिम जनसंख्या की उच्च दर की वृद्धि को नियंत्रित किया जावे, इत्यादि।

(घ) आर्थिक नीति : संघ परिवार की आर्थिक नीति का उद्देश्य यह है कि भारत को स्वदेशी आर्थिक नियोजन द्वारा मामलों में आत्मनिर्भर बनाया जाकर आर्थिक रूप से एक उच्च शक्ति वाला देश बनाया जावे। यह नीति अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों आदि द्वारा निर्मित व समर्थित आर्थिक व्यूह रचना के एक विकल्प के रूप में स्वदेशी आर्थिक नियोजन को पेश करती है।

(ड़) सांस्कृतिक नीति : संघ परिवार की सांस्कृतिक नीति का उद्देश्य देश में एक समान हिन्दू संस्कृति का विकास करना है, ऐसा लोगों को हिन्दू धर्म व उसकी मान्यताओं के बारे में लोगों को शिक्षित करके, साधु संतों को तीन महान हिन्दू देवियों यथा–भारत माता, गंगा माता व गोमाता के महत्व का प्रचार करने में लगा कर, इतिहास की पुस्तकों को बदल कर, वैदिक भारत को ही विश्व सभ्यता का जन्मदाता बता कर, आर्यों को भारत के मूल निवासी बता कर तथा उन्हें उस वैदिक ज्ञान का सृष्टिकर्ता बताकर जिसके समान विश्व में कहीं भी और कभी भी ज्ञान सृजित नहीं किया गया, वैदिक संस्कृति को ही राष्ट्रीय संस्कृति घोषित करके राम को राष्ट्रीय नायक घोषित करके तथा हिन्दुत्व को ही भारत का राष्ट्रवाद घोषित करके किया जाएगा।

29. स्पष्ट है कि, उपरोक्त नीतियां कभी मुश्किल से ही आम लोगों के दृष्टिकोण से कोई राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों को अपनाती होगी। इसका कारण यह है कि हिन्दुत्व की विचारधारा वाले लोग अपने आपको अल्पसंख्यक विरोधी मुद्दों की ओर प्रवृत्त करते हैं विशेषकर मुस्लिम विरोधी विषयों की ओर। इसी कारण संघ परिवार के पास कतिपय अन्य विषयों को प्राथमिकता प्रदान करने की कोई नीति नहीं है यथा– पर्यावरणीय प्रदूषण को नियंत्रित करना, जनसंख्या नियंत्रण, टिकाऊ विकास, विश्व शांति, विश्व का निशस्त्रीकरण, लिंग समानता, बच्चों के अधिकार, शिक्षा तथा स्वास्थ्य रक्षा, सामाजिक सुरक्षा, गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी उन्मूलन, मूल्य वृद्धि को रोकना, वित्तीय एवं राजस्व बजट को संतुलित करना, राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय तथा औद्योगिक एवं कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना, मानवाधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना,

अल्पसंख्यकों, शहरी एवं कृषि श्रमिकों के अधिकारों को सुनिश्चित करना तथा ग्रामीण विकास करना इत्यादि।

30. संघ परिवार की विदेश नीति युद्ध एवं शीतयुद्ध की ओर अग्रसर होती है। शीतयुद्धेत्तर इस युग में जबकि सभी राष्ट्र अपने रक्षा व्यय को कम कर रहे हैं, संघ परिवार न केवल सैन्यीकरण की बात करता है वरन् देश को परमाणु अस्त्रों से लैस करने की बात भी करता है।

31. संघ परिवार की राजनैतिक नीति देश पर 3000 वर्ष पुराने एक से जीवन जीने की बात को थोप कर, देश में अन्तर्समुदाय, अन्तर्जातीय, अन्तर्भाषाई तथा अन्तर्देशीय विवाद उत्पन्न करने की ओर अग्रसर होती है (स्त्रियों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति तथा अल्पसंख्यकों के लिए निम्न कोटि का स्तर निर्धारित करके) अर्थात् बीसवीं सदी के विविध रूपों वाले लोगों पर एक इस प्रकार की जीवन प्रणाली थोपी जा रही है जो वर्तमान समय में भारत और विश्व की वास्तविकताओं से कतई मेल नहीं खाती।

32. संघ परिवार की आर्थिक नीति एक ऐसे रास्ते की ओर बढ़ रही है जो परस्पर निर्भर देशों की इस दुनिया में भारत को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से पृथक करता है तथा सार्क संगठन में इसकी उचित भूमिका निभाने में इसको रोकता है तथा टिकाऊ विकास के ढांचे को अपनाने में बाधा उत्पन्न करता है।

33. इसकी सांस्कृतिक नीति एक ऐसा रास्ता अपनाती है जो वैदिक काल के अतिशयोक्तिपूर्ण स्वरूप को अपना कर इतिहास के सत्य को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करता है।

34. कतिपय विशेष विवादास्पद बिन्दुओं पर संघ परिवार स्पष्ट रूप से अपनी वास्तविक राय या नीति को प्रकट नहीं करता या तो चुप्पी साध लेता है अथवा भ्रामक रूप से राय देता है अथवा तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करता है।

उदाहरण के तौर पर, हिंसा के मुद्दे पर इसने शायद ही अपनी राय स्पष्ट तौर पर जाहिर की हो। लेकिन भारत के सम्पूर्ण सैन्यीकरण की इसकी प्रथम प्राथमिकता, इसकी शक्ति पूजा (अर्थात् बल या ताकत की पूजा), आर.एस.एस. की शाखाओं में लाठी व अन्य हथियारों के प्रयोग द्वारा दैनिक सैन्य तरीके का प्रशिक्षण तथा इसका हिटलर के नाजीवाद की ओर आकर्षण, ये सब इसके हिंसा की ओर झुकाव होने की बात को प्रकट करते हैं। महात्मा गांधी की हत्या के 46 वर्ष बाद भी यद्यपि संघ परिवार ने इस जघन्य कृत्य से अपने को अलग बताया है किन्तु गांधी के हत्यारे की जो एक कट्टर एवं धर्मांध हिन्दू था, कभी भर्त्सना या निन्दा नहीं की है।

सामाजिक न्याय व समानता के मुद्दे पर कभी-कभी संघ परिवार भ्रामक रूप से स्त्रियों के स्तर की पुनर्स्थापना की बात तो करता है, परन्तु इस पुनर्स्थापना की कोई रूपरेखा का वह कभी जिक्र नहीं करता। प्राचीन महिला चरित्रों जैसे सीता, सावित्री व रानी झांसी आदि का गुणगान करते हुए वह कभी भी लिंग समानता के अहम् एवं मूलभूत मुद्दे पर कभी बात नहीं करता है। स्त्री के विरुद्ध संघ परिवार का पूर्वाग्रह या विभेद इस बात से भी स्पष्ट है कि आर.एस.एस.में संगठनात्मक संरचना तथा दैनिक शाखा कार्यक्रम से महिलाओं को सदैव दूर एवं पृथक रखा गया है।

कश्मीरी उग्रवाद के मुद्दे के सम्बन्ध में, संघ परिवार वास्तविकता को तोड़ मरोड़ कर रखता है, यह कह कर कि घाटी से कश्मीरी लोगों का पलायन अल्पसंख्यकों का मुद्दा है, अथवा हिन्दू मुस्लिम युद्ध के परिणामस्वरूप यह एक जाति विशेष का सफाया करता है, लेकिन इस प्रसंग में वे इस तथ्य को छिपा लेते हैं कि एक चौथाई कश्मीरी पंडित अभी भी घाटी में रह रहे हैं तथा पिछले 6 वर्षों में कश्मीरी उग्रवादियों के हाथों जितने हिन्दू मारे गये हैं उससे 100 गुना अधिक मुस्लिम लोग मारे गए हैं तथा हजारों मुस्लिम लोग भी घाटी से विस्थापित होकर जम्मू, दिल्ली और अन्य स्थानों पर चले गऐ हैं।

देश की एकता एवं अखण्डता के खतरे के मुद्दे पर भी, संघ परिवार द्वारा इसमें विदेशी हाथ होने के सिद्धान्त को बढ़ा चढ़ा कर पेश करने की बात तथा देश में अस्थिरता फैलाने का सारा दोष पाकिस्तान पर मंढने की बात राष्ट्रीय बीमारियों को जन्म देने वाले तत्वों को छिपा कर तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर रखने के समान है। उदाहरणार्थ ये तथ्य है राजनीति का अपराधीकरण, अर्थव्यवस्था की निष्क्रियता तथा संस्कृति का ह्रास आदि। विदेशी हाथ होने की बात तो सम्पूर्ण स्थिति का एक पूरक तत्व है। आंतरिक राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मामले न तो कोई आकाश से गिरते हैं तथा न शून्य से प्रकट होते हैं। वे वास्तव में परिस्थिति विशेष में कतिपय आधारभूत कारणों से सृजित होते हैं। जब तब आधारभूत कारणों का पता नहीं लगा लेते, समस्या पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता।

प्रत्येक प्रकार के मानव समाज में तीन तत्व इसकी मौलिक या आधारभूत शक्ति का निर्माण करते हैं। वे हैं–इसकी व्यवस्था तथा व्यवस्था की कार्यकारी या नियन्त्रक सत्ता और समाज के लोग अर्थात् समाज का आधार। प्रत्येक सामाजिक बुराई के मामले में सामाजिक व्यवधान के लिए इन तीनों में एक या दूसरी शक्ति या कभी-कभी सभी शक्तियां समग्र रूप से जिम्मेदार होती हैं।

हमारे मामले में, एक समानान्तर माफिया सत्ता का अस्तित्व में होना, विश्व मानदण्डों की तुलना में भारत का आर्थिक दृष्टि से एक बौने रूप में परिवर्तित हो जाने तथा आचरण के मानदण्डों का ह्रास हो जाना इस बात का संकेत देते हैं कि रोग की जड़ें बहुत गहरी एवं गम्भीर है तथा यह रोग तीनों आधारभूत शक्तियों द्वारा गलत ढंग से काम करने के कारण उत्पन्न हुआ है।

हमारे ऐतिहासिक अनुभव से सबक लेकर हम यह पाते हैं कि हमारी प्रणाली या व्यवस्था की दोषपूर्ण गतिविधि का कारण यह है कि हमारी प्रणाली में एकात्मक राज्य एवं बहुसंख्यक राष्ट्रवाद का ध्येय निहित है, जो गम्भीर समस्याओं की उत्पत्ति के लिए संवैधानिक व वैधानिक ढांचा प्रस्तुत करता है, हम यह भी पाते हैं कि हमारी दोषपूर्ण कार्य प्रणाली भ्रष्टाचार से ओत-प्रोत दलीय तन्त्र के कारण है जो सभी तरह की समस्याओं को जन्म देती हैं, तथा यह भी पाते हैं कि आधार अर्थात् जनता की दोषपूर्ण कार्यप्रणाली जनचेतना की कमी की वजह से है जो अन्य दो शक्तियों को सुधारने या परिवर्तित करने के लिए दबाव डालने हेतु पर्याप्त तौर पर प्रभावी नहीं है।

35. यद्यपि संघ परिवार के समस्त नीतिगत बिन्दुओं पर आम सहमति नजर आती है, लेकिन नजदीक से देखें तो नीतियों की क्रियान्विती के समय एवं तरीके में काफी भिन्नताएं एवं मतभेद पाते हैं।

विदेश नीति के मुद्दे पर आर.एस.एस. का मुस्लिम देशों के साथ सम्बन्ध रखने में काफी कड़ा रुख है लेकिन भाजपा का यह मानना है कि विदेश नीति में एक निरन्तरता की आवश्यकता है तथा इसलिए एक तात्कालिक दूरगामी परिवर्तन की सम्भावना बहुत क्षीण है।

मन्दिरों के मुद्दे को लें तो आर.एस.एस. तो काशी एवं मथुरा के मन्दिरों के बाबत अभियान को तुरन्त शुरू करना चाहता है; लेकिन भाजपा की यह मान्यता है कि इनको बलपूर्वक तोड़ने से, अयोध्या प्रकरण की तरह संघ परिवार पृथक हो जाएगा तथा इसलिए भाजपा अभी सारा ध्यान अयोध्या में मन्दिर निर्माण पर ही देना चाहती है तथा अन्य दो मुद्दों पर अभी धीमी चाल से कार्यवाही करना चाहती है।

अनुच्छेद 370 के सम्बन्ध में, आर.एस.एस. तो यह चाहता है कि इसे तत्काल हटाया जावे, पर भाजपा का यह मानना है कि इस विषय पर तब तक धीमी गति से कार्यवाही करनी है जब तक कि संसद में उसका दो तिहाई बहुमत नहीं बन जाता है।

गो रक्षा के मुद्दे पर भी आर.एस.एस. तो तत्काल कार्यवाही चाहता है किन्तु भाजपा की यह धारणा है कि यह मुद्दा आगामी चुनाव में पार्टी की मदद नहीं कर सकता।

एक समान नागरिक संहिता के मुद्दे पर आर.एस.एस. तो त्वरित कदम उठाना चाहता है पर भाजपा का यह मानना है कि इस मुद्दे पर सभी दलों से विचार विमर्श एवं सभी की सहमति वांछनीय है।

हिन्दी भाषा के मुद्दे पर आर.एस.एस. तो यह चाहता है कि तत्काल ही एक शक्तिशाली व सघन अभियान चलाया जावे, परन्तु भाजपा का यह मानना है कि गैर-हिन्दी भाषी राज्यों, विशेष कर दक्षिणी राज्यों के कड़े विरोध के कारण यह मुद्दा संघ परिवार के लिए कोई लाभदायक नहीं है।

स्वदेशी विचारधारा के मामले में, आर.एस.एस. तो वैश्वीकरण को समग्र रूप में अस्वीकार करता है लेकिन भाजपा की यह मान्यता है कि विदेशी पूंजी तथा तकनीक मूलभूत आर्थिक तन्त्र के लिए आवश्यक है और इसको समग्र रूप में अस्वीकार नहीं करना चाहिए।

IV. संघ परिवार का कार्यक्रम

36. संघ परिवार का प्रमुख उद्देश्य हिन्दुत्व की पुनर्स्थापना है अर्थात् पहले भारत में तथा बाद में समूचे विश्व में हिन्दू धर्म की स्थापना करना।

37. इस उद्देश्य का प्रादुर्भाव इस मान्यता से होता है कि हिन्दू ही इस पवित्र भूमि के मौलिक निवासियों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वे ही इसकी प्राचीन एवं अद्वितीय सभ्यता एवं संस्कृति के जन्मदाता हैं, जबकि अन्य सभी धर्मावलम्बी बाहर के निवासी हैं जिन्होंने इस पवित्र धरती पर आक्रमण किया और इसकी अद्वितीय संस्कृति को नुकसान पहुंचाया था।

38. 'हिन्दुत्व' शब्द का प्रयोग हिन्दू महासभा के नेता श्री वी.डी. सावरकर द्वारा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में किया गया था। उन्होंने इस विचारधारा को भारतीय राष्ट्र अथवा हिन्दू राष्ट्र के पर्याय के रूप में स्पष्ट किया तथा हिन्दू की परिभाषा इस प्रकार दी–

'हिन्दू वह व्यक्ति है जो सिन्धु नदी से लेकर समुद्र तक फैली भारत वर्ष की भूमि को अपनी पितृभूमि तथा साथ ही पुण्यभूमि मानता है। अर्थात् अपने धर्म की जन्मदात्री भूमि मानता है।' ('हिन्दुत्व-हिन्दू कौन है'–लेखक सावरकर 1923)

39. यह परिभाषा हिन्दुत्व की सीमाओं या परिधियों की पहचान कराती है अर्थात् इसकी सीमाएं, इसकी आधारभूत शक्तियाँ, इसके मित्र एवं शत्रु, इसकी सामान्य विशेषताएं एवं प्रतीक चरित्र नायक इत्यादि को चिह्नित करती है। इस प्रकार हिन्दुत्व के दायरे में वे सभी धर्म शामिल हैं जो भारत में जन्मे व विकसित हुए जैसे–बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म तथा निश्चित रूप से हिन्दू धर्म के समस्त प्रकार जैसे सनातन धर्म, आर्य समाज, शैव, वैष्णव, तांत्रिक आदि तथा इसकी विभिन्न वर्ण शाखाएं भी जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इत्यादि भी हिन्दुत्व में शामिल है। पूजा, आरती, दशहरा, दीपावली, होली आदि मान्यताएं हिन्दुत्व की स्वाभाविक विशिष्टताएं हैं तथा राम, कृष्ण इसके राष्ट्रीय चरित्र नायक हैं। मुस्लिम एवं ईसाई इत्यादि विदेशियों की श्रेणी में आते हैं क्योंकि उनके धार्मिक पूजा स्थल या पुण्यभूमियां भारत के बाहर स्थित हैं। वे इस देश के सच्चे सपूत नहीं हो सकते इसलिए उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। मुस्लिम लोगों को तो दुश्मनों के रूप में चिह्नित किया गया है क्योंकि वे हिन्दुत्व के सर्वाधिक खतरनाक शत्रु हैं।

40. हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिए श्री सावरकर ने राजनीति के हिन्दूकरण तथा हिन्दुओं के सैन्यीकरण की व्यूह रचना अपनाने पर बल दिया। लेकिन वे इसे क्रियान्वित नहीं कर सके। यह कार्य उनके एक समकालीन महाराष्ट्र के साथी डा. के.बी. हेडगेवार के जिम्मे आया, जिन्होंने इस कार्य को अंजाम 1925 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर.एस.एस.) की स्थापना करके दिया–यह ऐसा संगठन था जो तभी से राजनीति का हिन्दुकरण एवं हिन्दुओं का सैन्यीकरण कर रहा है।

41. हिन्दुत्व का एक आदर्श रूप या सन्दर्भ 19वीं एवं 20वीं शताब्दी के सुधारकों की एक लम्बी शृंखला द्वारा उपलब्ध कराया गया।

42. राजनीति के साम्प्रदायिकरण का राजनैतिक रूप 1857 से लगातार सभी मुख्य दलों जैसे औपनिवेशिक शासकों, हिन्दू नेताओं तथा मुस्लिम उच्च वर्गों द्वारा पेश किया जाता रहा।

43. तात्कालिक सन्दर्भ कांग्रेस-खिलाफत गठबंधन के टूटने के बाद भारत में हुए साम्प्रदायिक दंगों ने तथा कट्टरवादी हिन्दू मंचों की स्थापना ने (जैसे शुद्धि एवं संगठन) तथा इनका विरोध करने वाले मुस्लिम मोर्चों (जैसे तबलीग तथा तन्जीम आदि) की साम्प्रदायिक रूप से संवेदनशील इलाकों में स्थापना के द्वारा उपलब्ध कराया गया, जबकि स्थानीय सन्दर्भ महाराष्ट्र में अम्बेडकर के नेतृत्व में प्रारम्भ हुए दलित आन्दोलन ने प्रदान किया, जो 1870 के दशक से ज्योतिबा फुले के नेतृत्व में चल रहे दलित व पिछड़ी जातियों के एक शक्तिशाली आन्दोलन का उत्तराधिकारी था।

44. संघ परिवार का एक भी कार्यक्रम समुचित रूप से सूत्रबद्ध नहीं है। हालांकि इसके विभिन्न घटकों या अंगों के विविध दस्तावेजों को देखने से निम्नांकित व्यापक तस्वीर सामने आती है–

45. राज्य : संघ परिवार एक ऐसे राज्य की स्थापना करना चाहता है, जो केवल मात्र बहुमत के शासन पर नहीं बल्कि हिन्दू धर्म पर आधारित हो। संघ परिवार के विचार में धर्म एक व्यापक सिद्धान्त या विचारधारा है जो जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित है। यह उन धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है जो समाज को जीवित रखते हैं तथा उसे स्थिरता प्रदान करते हैं। ये सभी सिद्धान्त या विधियां समाज की चिति (अर्थात् आत्मा) की संरचना करते हैं। धर्म इस बात पर जोर देता है या मार्गदर्शन देता है कि मनुष्य अपनी सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे करता है जैसे अर्थ (धन), काम तथा कैसे उसे मुक्ति (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि चार प्रकार के मानवीय प्रयास (पुरुषार्थ) की रचना करते हैं। केवल धर्म ही श्रेष्ठ या सर्वोच्च है राज्य इसके अधीन है।

46. राजनैतिक ढांचा : संघ परिवार एकात्मक राज्य की स्थापना का विकल्प देता है क्योंकि इसके अनुसार एकात्मक राज्य क्षेत्रीय प्रवृत्तियों के उत्पन्न होने पर नियंत्रण रख सकता है। संकीर्ण क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं के उत्पन्न होने की सम्भावनाओं से बचने के लिए यह आवश्यक है कि भारत का राजनैतिक ढांचा एक ऐसे एकात्मक राज्य का स्वरूप प्रदान करे, जिसके विभिन्न अंगों के रूप में विभिन्न राज्य हों। ऐसा एकात्मक राजनैतिक ढांचा शक्तिशाली सैन्य बल पर आधारित होना चाहिए।

47. आर्थिक ढांचा : संघ परिवार एक स्वदेशी एवं विकेन्द्रीकृत आर्थिक ढांचे का पक्षधर है, जो अपनी प्रथम प्राथमिकता के रूप में समुचित तकनीक, संसाधनों के समुचित प्रयोग, उत्पादन प्रक्रिया के प्रबन्धन में श्रमिकों की भागीदारी तथा रक्षा-व्यवस्था पर आधारित हो। यह भारतीय तकनीक के विकास पर जोर देता है। यह बहुत बड़ी मात्रा में उत्पादन चाहता है किन्तु छोटे एवं मध्यम उद्योगों के माध्यम से। यह नीचे के स्तर से होने वाले नियोजन का पक्ष लेता है न कि उच्च स्तर से।

48. सांस्कृतिक ढांचा : संघ परिवार यह मानता है कि हिन्दू संस्कृति, जो धर्म पर आधारित है समूचे विश्व में अद्वितीय है और सभी मनुष्यों द्वारा तथा सभी मानवीय क्रियाकलापों में इसकी पालना होनी चाहिए।

49. राज भाषा : संघ परिवार संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को ही एक मात्र राज भाषा घोषित करने की बात का समर्थन करता है।

50. भारत के विभाजन के सम्बन्ध में : संघ परिवार की यह मान्यता या धारणा है कि भारत और पाकिस्तान का दो पृथक देशों के रूप में अस्तित्व तो एक कृत्रिम स्थिति है। यह दोनों देशों का एकीकरण अखण्ड भारत के आधार पर चाहता है न कि दो संप्रभु राष्ट्रों के संघ के रूप में।

51. विश्व राज्य के सम्बन्ध में : श्री दीनदयाल उपाध्याय ने यह सिद्धान्त दिया कि राष्ट्रवाद या देशभक्ति मानवता के कल्याण के हितार्थ पहला कदम है तथा अपनी 'माता' की अनदेखी करना तथा दूसरों की सेवा करना पूर्णत: निरर्थक या मूर्खतापूर्ण है।

52. उपरोक्त कार्यक्रम को पढ़कर ऐसा देखा जा सकता है कि संघ परिवार प्रजातंत्र के उस आधारभूत सिद्धान्त को समाप्त कर देता है, जिसके आधार पर एक मुद्दे से दूसरे मुद्दे पर विचार कर बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक के प्रश्न को सुनिश्चित किया जाता है। इसके

अलावा, राज्य के साथ बहुसंख्यक धर्म एवं संस्कृति को सम्मिश्रण कर यह इस बात की चेतावनी देता है कि भारत एक ऐसे धर्म राज्य के रूप में परिवर्तित हो जाएगा जो प्रत्येक समय पर मानव सभ्यता के प्रत्येक प्रजातांत्रिक गुण या लक्षण को अस्वीकार करता है– जैसे स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय, मानवता, स्त्री तथा अल्पसंख्यक अधिकार इत्यादि–तथा जिस राज्य ने हमेशा एवं सर्वत्र हिंसा पर निर्भर किया है अर्थात् हिंसा में विश्वास किया है। इसके अतिरिक्त, इसका बहुसंख्यक हितों का पोषक होना तथा अल्पसंख्यकों को अपने अधीनस्थ के स्तर तक नीचा कर देने की नीति से सम्भव है कि आंतरिक संघर्ष बढ़ जावे तथा अल्पसंख्यकों के राष्ट्र की मुख्य धारा से अलगाव को बढ़ावा मिले इस प्रकार यह बात भारत की अखण्डता को चुनौती देने वाली है।

53. स्पष्ट रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि पूरा संघ परिवार अपने कार्यक्रमों के आधारभूत सिद्धान्तों से सहमति या मतैक्य रखता है। किन्तु अनेक बिन्दुओं पर उनके बीच कई विशेष मतभेद है। वे इस प्रकार है–

राष्ट्रवाद की प्रकृति के सम्बन्ध में आर.एस.एस. तो हिन्दुत्व की विचारधारा पर ही जोर देता है, लेकिन भाजपा प्राय:कर सकारात्मक धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्त की बात करती है तथा दूसरे राजनैतिक दलों के राष्ट्रवाद को अल्पसंख्यकवाद या मिथ्या धर्म-निरपेक्षवाद के रूप में मानती है तथा हिन्दुत्व शब्द का प्रयोग केवल औपचारिक तौर पर करती है।

राज्य की प्रकृति के बारे में, आर.एस.एस. तो 'धर्म राज्य' के सिद्धान्त में विश्वास करता है, जबकि भाजपा ने अपने घोषणापत्र (नवम्बर 93) में 'रामराज्य शब्द' का प्रयोग किया है (जैसा कि गांधीजी ने किया था)।

लिंग समानता के प्रश्न पर, आर.एस.एस. तो महिलाओं से सम्बन्धित विषयों जैसे सती, बालहत्या, बाल विवाह, दहेज, आरक्षण, समस्त बातों में पुरुषों के समान अधिकार इत्यादि पर चुप्पी साध कर अपनी महिला विरोधी विचारधारा को छिपा लेता है, जबकि भाजपा पुरुष प्रधान एवं पितृसत्तात्मक प्रणाली (जो महिलाओं को दूसरे नम्बर का दर्जा देती है) के ढांचे में महिलाओं के कतिपय अधिकारों की मांग करती है।

मुस्लिम लोगों के मुद्दे पर जबकि आर.एस.एस. तो सामन्यतया उन्हें अविश्वास की दृष्टि से देखता है, भाजपा यह घोषित करती है कि भाजपा के समर्थक मुस्लिम मतदाता इस श्रेणी से पृथक या बाहर आते हैं।

दलितों एवं पिछड़ों के आरक्षण के मुद्दे पर, आर.एस.एस. तो सभी प्रकार के आरक्षण का विरोध करती है परन्तु भाजपा ने दलितों एवं पिछड़ों के प्रति प्रेम दर्शाने के लिए अपने हिन्दुत्व का मंडलीकरण कर दिया है अर्थात् भाजपा आरक्षण की पक्षधर है।

V. परिवार का वैश्विक दृष्टिकोण

54. संघ परिवार का वैश्विक दृष्टिकोण इस मान्यता एवं विश्वास पर आधारित है कि हिन्दुत्व ही सनानत या आदि काल से चला आ रहा धर्म है तथा यही सबसे अधिक प्रबल या प्रचलित सत्य है, जो सर्वोच्च वैश्विक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। व्यवस्था शब्द की व्याख्या प्राचीन वैदिक एवं संस्कृत ग्रंथों द्वारा धर्म अथवा जीवन विधि के रूप में की गई है जो समाज तथा व्यक्ति दोनों का ही विकास करता है। यह उन धर्मों के विपरीत

या भिन्न है जो केवल मात्र अपने पूजा के विशिष्ट तरीकों का ही संकेत देते हैं, सम्पूर्ण अस्तित्व या जीवन शैली का प्रतीक है।

55. लेकिन हिन्दुत्व या हिन्दू शब्द का सन्दर्भ विश्व के इतिहास में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है। न कहीं यह वैदिक एवं महाकाव्यों के साहित्य में मिलता है, न बौद्ध और जैन साहित्य में तथा न मुस्लिम युग के पूर्व के अभिलेख में मिलता है। इसका प्रथम लिखित उल्लेख मुगल काल के साहित्य में मिलता है। बाद में उपनिवेश साम्राज्य के दौरान, यह शब्द काफी प्रचलित या लोकप्रिय रहा। इस शब्द का उद्भव, सिन्धु शब्द से हुआ प्रतीत होता है, जो सिन्धु नदी का पुराना नाम है। बाहर से आने वाले अरबों एवं तुर्कों ने सम्भवत: इस शब्द का उच्चारण हिन्दू के रूप में किया होगा तथा बाद में यह शब्द उन सब लोगों का प्रतीक बन गया जो सिन्धु नदी के आगे उस पार रहते थे।

56. यह तर्क कि हिन्दूवाद एक ऐसी विलक्षण विचारधारा है जो सर्वशक्तिमान और समझ से परे है इस तर्क की ऐतिहासिक तथ्य पुष्टि नहीं करते।

57. हिन्दूवाद का इतिहास यानि एक धर्म जो आज 75 करोड़ अनुयायी होने का दावा करता है, भारत में लगभग 3500 वर्ष पूर्व शुरू हुआ। इसके प्रारम्भिक इतिवृत्त के प्रमाण पुरातत्व शास्त्र, तुलनात्मक दर्शन तथा तुलनात्मक धर्म से प्राप्त किए जा सकते हैं।

58. हिन्दूवाद में अपने आप को हिन्दू कहने वाले लोगों की मान्यताएं या आस्थाएं, परम्पराएं तथा उनकी धार्मिक सामाजिक संस्थाएं निहित है। ये लोग प्रारम्भिक तौर पर भारत व नेपाल में रहते हैं तथा पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, भूटान, फिजी, मारीशिस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड और विश्व के अन्य कई देशों के कुछ क्षेत्रों में रहते हैं।

59. हिन्दूवाद की परिभाषा में क्लिष्टता का प्रादुर्भाव इस तथ्य से होता है कि हिन्दूवाद के विद्वानों ने जिनमें स्वयं हिन्दू भी सम्मिलित हैं, सम्पूर्ण हिन्दूवाद के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया है। कुछ ने इसे जीवन जीने के ढंग के रूप में प्रस्तुत किया है। दूसरों ने इसकी धार्मिक प्रवृत्ति को उजागर किया है। कुछ अन्य लोगों ने इसमें सामाजिक पहलू को देखा है। ऐसा इसलिए है कि यह क्रिश्चियन धर्म या इस्लाम की तरह कोई एकपक्षीय या एक ही स्तम्भ पर टिका धर्म नहीं है, बल्कि सिद्धान्तों, विश्वासों या आस्थाओं तथा जीवन विधि के गूढ़ मिश्रण का निर्माण करता है।

60. हालांकि, कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो हिन्दू धर्म की आवश्यक एवं मूलभूत बातों के रूप में की जानी जाती है। संक्षेप में निम्न है–

(क) इस शाश्वत सिद्धान्त में विश्वास करना कि वह एकमात्र वास्तविकता जो अपने आप में अस्तित्व और गैर अस्तित्व को शामिल किए हुए हैं और सभी तरह की अस्तित्वमान चीजों के भलाईकर्ता और उनके अस्तित्व का अंतिम कारण है, वही ब्रह्म है। वह हर चीज का सृजनकर्ता, रखवाला और परिवर्तन करने वाला है। यद्यपि यह सर्वोच्च शक्ति अलौकिक और विलक्षण है जिसमें कोई लौकिक विशेषता एवं गुण नहीं है, जिसे त्रिमूर्ति (यानि ब्रह्मा, विष्णु, शिव) के रूप में जाना गया है।

(ख) वैदिक साहित्य के बारे में ऐसे विश्वास को मान्यता देना जिसके अनुसार यह सम्पूर्ण या अधिकृत सन्दर्भ में मौलिक एवं अनन्त सत्य अथवा सनातन वास्तविकता का रहस्योद्घाटन करता है।

(ग) आत्मा, कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास। आत्मा जीव का बीजतत्व या सार है। कर्म मनुष्य के वे कार्य हैं जो भाग्य या दुर्भाग्य की सृष्टि करते हैं। पुनर्जन्म किसी जीव की आगामी स्थिति है जिसका निश्चय जीव के एक निश्चित जीवनकाल में किए गए कार्यों (कर्म) के आधार पर होता है। बाद वाली स्थिति यह बताती है कि कोई व्यक्ति अगले जन्म में मनुष्य योनि में जन्म लेगा या पशु योनि में (यह बताते हुए आत्मा का जन्म और मृत्यु के बीच अन्तहीन आवागमन होता है) अथवा उसे जन्म मृत्यु के चक्र से अन्तिम मुक्ति (अर्थात् मोक्ष) मिल जाएगा और उसकी आत्मा का पुन: ब्रह्मा में विलीनीकरण हो जाएगा। आत्मा की अन्तिम मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति तीनों देवों में से किसी एक की पूजा से ही प्राप्त हो सकती है।

जैसा कि भगवद्गीता में बताया है अन्तिम मुक्ति (अर्थात् मोक्ष) का रास्ता तीन मार्गों में से गुजरता है–

(i) कर्तव्य का रास्ता (अर्थात् कर्म मार्ग)

(ii) ज्ञान का रास्ता (अर्थात् ज्ञान मार्ग)

(iii) भक्ति का रास्ता (अर्थात् भक्ति मार्ग)

(घ) गाय (गौमाता) के सम्मान में आस्था।

(ड़) गंगा नदी (गंगामाता) में सर्वाधिक पवित्र नदी के रूप में सम्मान एवं आस्था रखना।

(च) भारत वर्ष (भारत माता) के बारे में यह विश्वास या आस्था कि यह देवताओं की पवित्र भूमि है।

(छ) पूजा एवं आरती में आस्था जो किसी व्यक्ति की दुष्ट आत्माओं से रक्षा करती है।

ये सात मूलभूत विश्वास या आस्थाएं हिन्दू धर्म के सिद्धान्त का निर्माण करती हैं।

61. हिन्दू धर्म के प्रमुख स्वरूपों को निम्नांकित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–(i) वैष्णव–एक ऐसा समुदाय जिसकी धार्मिक आस्था यह है कि विष्णु अथवा उसका सांसारिक अवतार ही सर्वोच्च शक्ति है; (ii) शैव–एक ऐसा समुदाय जिसकी धार्मिक आस्था या मान्यता यह है कि शिव अथवा उसके विभिन्न रूप या अवतार ही सर्वोच्च शक्ति है; (iii) तन्त्रवाद, शक्तिवाद, वशीकरण, जादू एवं समर्पण के विभिन्न धार्मिक रूपों में भक्तिवाद का विकास; (iv) लोक हिन्दू धर्म–जिसकी पालना विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में की जाती है; (v) आधुनिक हिन्दूवाद या हिन्दू धर्म जैसा कि विभिन्न हिन्दू धर्म सुधार आंदोलनों से प्रकट होता है–उदाहरणार्थ राजा राम मोहनराय (1772-1833 ई.) द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज, दयानंद सरस्वती (1824-1883 ई.) द्वारा स्थापित आर्य समाज (1875 ई.), रामकृष्ण (1836-1886 ई.) मिशन, स्वामी विवेकानंद (1862-1902 ई.), रविन्द्रनाथ टैगोर (1861-1914 ई.), बाल गंगाधर तिलक (1856 से 1920 ई.), मोहनदास करमचंद गांधी (1869-1948 ई.), अरविन्द घोष (1872-1950 ई.) इत्यादि।

62. धार्मिक संस्कार, सामाजिक रीति रिवाज एवं संस्थाएं : वैदिक संस्कारों में जन्म, विवाह, मृत्यु संस्कार आदि से सम्बन्धित व्यक्तिगत संस्कार (ग्रह्य) शामिल हैं;

और सामाजिक उत्सव (यज्ञ) शामिल हैं। वैदिक काल के बाद के तथा महाकाव्यों के बाद के संस्कार व उत्सवों में निम्नांकित बातें सम्मिलित हैं–

मन्दिरों में आराधना, पूजा के विभिन्न रूपों में दीक्षा संस्कार (दीक्षा), योग, त्यौहार, पवित्र धार्मिक अवसर एवं स्थान, तीर्थ स्थल एवं मेले, विभिन्न जातियों के भिन्न-भिन्न संस्कार एवं सामाजिक स्तर, शंकराचार्यजी द्वारा चार बड़े मठों की स्थापना इत्यादि।

63. हिन्दू मान्यताओं का सांस्कृतिक स्वरूप : विश्व की परम्परागत हिन्दू विचारधारा ने संस्कृति के सभी रूपों–साहित्य, कला, मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, नाटक, नृत्य, प्रतीक, मूर्तियां इत्यादि को प्रभावित किया।

64. हिन्दू धर्म के पवित्र धार्मिक साहित्य में कई प्रकार के ग्रंथ सम्मिलित हैं–वेद, ब्राह्मणग्रंथ, अरण्यक, उपनिषद्, रामायण और महाभारत, भगवद्गीता, पुराण, धर्मशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, प्रादेशिक भाषाओं में धार्मिक साहित्य इत्यादि।

65. ऊपर वर्णित बहुदेववादी हिन्दू धर्म तथा इसकी अनेकतावादी सांस्कृतिक विशिष्टताओं का–जिनका प्रतिनिधित्व एवं अग्रिम विकास हिन्दू ऋषियों, बौद्ध और जैन भिक्षुओं, सिक्ख गुरुओं तथा मुस्लिम सूफियों इत्यादि द्वारा किया गया–आज संघ परिवार के एक पक्षीय हिन्दुत्व द्वारा खण्डन किया जा रहा है। एम.एस. गोलवलकर के लेख में से निम्नांकित पंक्तियां संघ परिवार के हिन्दुत्व की सांस्कृतिक शिविष्टताओं पर प्रकाश डालती हैं–

'.....हिन्दुस्थान में गैर हिन्दू लोगों को या तो हिन्दू संस्कृति व भाषा अपना लेनी चाहिए, हिन्दू धर्म का आदर व सम्मान करना सीख लेना चाहिए–अन्यथा वे देश में पूर्णत: हिन्दू राष्ट्र के अधीन होकर रह सकते हैं जो किसी लाभ का दावा नहीं करेंगे, किसी विशेषाधिकार के हकदार नहीं होंगे तथा न ही प्राथमिकता वाले व्यवहार के हकदार होंगे तथा उन्हें नागरिकता का अधिकार भी नहीं होगा।' ('We or Our Nationhood Defined' Nagpur, 1938, P. 52)

VI. संघ परिवार की संरचना या संगठन

66. संघ परिवार की संरचना विभिन्न संगठनों से मिलकर होती है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है–

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर.एस.एस.)

डा. केशवराव बलिराम हेडगेवार द्वारा 1925 ई. में स्थापित राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ समूचे संघ परिवार के जनक या जन्मदाता का प्रतीक है।

आज आर.एस.एस. 30,000 से अधिक स्थानों पर दैनिक शाखा का, लगभग 10,000 स्थानों पर साप्ताहिक सभाओं का तथा अन्य 11,000 स्थानों पर मासिक बैठकों का आयोजन करता है। इन सभी सभाओं में यह अपने सदस्यों (जो स्वयंसेवक कहलाते हैं) का मस्तिष्क एवं विचारों का हिन्दूकरण करता है तथा इनके व्यवहार के ढंग का सैन्यीकरण करता है।

इसमें स्वयं के सुरचित सैनिक स्तम्भों या संगठनों के अतिरिक्त, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ऐसे कई संगठनों या मोर्चों को नियंत्रित करता है जो जनता के स्तर पर संघ परिवार के रूप में जाने जाते हैं।

भारतीय जनता पार्टी

भारतीय जनता पार्टी, जो आर.एस.एस. का एक राजनैतिक मोर्चा है, एक विशाल पार्टी है जिसके सिद्धान्त एवं संवर्ग इसके जनक संगठन के लिए किए गए हैं। संगठन या निर्माण की दृष्टि से भाजपा का इतिहास बड़ा अजीब है इसका गठन 1951 में भारतीय जनसंघ के नाम से किया गया था जिसने 1977 तक काम किया तथा बाद में यह जनता पार्टी में शामिल हो गई। जनसंघ ने हालांकि बढ़ा चढ़ा कर अपने आप को एक सर्वोच्च राष्ट्रवादी हिन्दू पार्टी कहा, लेकिन एक अखिल भारतीय इकाई के रूप में इसे थोड़ी ही सफलता मिली। हिन्दी भाषी क्षेत्र में भी इसने जो थोड़ा बहुत कार्य सफलता पूर्वक किया वह संयुक्त विपक्ष के एक भाग के रूप में ही किया (1967 व 1987 के दोनों ही निर्वाचनों में) लेकिन अपने स्वयं के सिद्धान्त या संगठन के आधार पर नहीं।

जनता पार्टी के उद्भव काल में जनसंघ के सदस्यों ने जनता पार्टी के समग्र क्रांति के सिद्धान्त को ही स्वीकार किया, जो गांधीवादी विचारधारा पर आधारित था। 1980 में यह 'दोहरी सदस्यता' के मुद्दे पर जनता पार्टी से अलग हो गई। लेकिन यह न तो अपने पुराने नाम की ओर लौटी, न अपने पुराने कड़े राजनैतिक तेवर या मुखौटे की ओर ही लौटी। वाजपेई के नेतृत्व में अपने नए नाम भारतीय जनता पार्टी के रूप में, तथा एक नई हिन्दू मानवतावादी विचारधारा, गांधीवादी समाजवाद के नीचे, इसने स्वयं भी और अधिक स्वीकृति योग्य छवि निर्मित करने की कोशिश की। इसने अपने आप को कांग्रेस (आई) की भ्रष्ट एवं सत्तावादी राजनीति तथा गैर कांग्रेसी दलों में प्रचलित अलगाववाद या गुटीयवाद के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। लेकिन 1980 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में भाजपा ने पाया कि पहले तो इन्दिरा गांधी (पंजाब, जम्मू एवं दिल्ली के चुनावों के दौरान) तथा बाद में राजीव गांधी (1984 के आम चुनावों में) ही हिन्दू राजनैतिक कार्ड को भुना पाए और भाजपा को एक किनारे कर दिया गया (1984 के लोकसभा चुनावों में केवल 2 सीटों के साथ) इसी अनुभूति ने सन् 1986 के आसपास आडवाणी के नेतृत्व में, भाजपा को अपनी पुरानी जनसंघ वाली स्थिति को पुनर्जीवित करने हेतु प्रेरित किया।

विश्व हिन्दू परिषद्

विश्व हिन्दू परिषद् जो आर.एस.एस. का एक सामाजिक मोर्चा है, सन् 1964 में इसकी स्थापना एक विशिष्ट उद्देश्य को लेकर की गई थी कि–सभी हिन्दू धार्मिक मत मतांतरों को एक छत्र के नीचे संगठित करना, साधुओं और संतों को हिन्दू धर्म के प्रचार प्रसार व उत्थान में लगाना तथा हिन्दुओं का मुस्लिम व ईसाई धर्म में धर्मान्तरण या धर्म परिवर्तन को रोकना। इसकी दो उच्च स्तरीय संस्थाएं–मार्गदर्शक मंडल तथा धर्म संसद–हिन्दू नेताओं को संगठित व एकमत करने के लिए एकता मंचों का कार्य निभाती है। इन दो उच्च स्तरीय संस्थाओं में देश की सर्वोच्च पीठों के शंकराचार्यों को भी महत्वपूर्ण भूमिका दी गई है। बजरंग दल, जो मुख्यत: गौरक्षा पर जोर देता है तथा युवा लड़कों के प्रशिक्षण की देखरेख करता है, विश्व हिन्दू परिषद् का ही एक विभाग है।

विश्व हिन्दू परिषद् अपने सभी प्रचारक आर.एस.एस. से ही प्राप्त करती है। इसका समूचा वैचारिक एवं संगठनात्मक तन्त्र आर.एस.एस. के ही नियंत्रण व पर्यवेक्षण में रहता

है। यह साम्प्रदायिक भावनाओं को लोकप्रिय बनाने अर्थात् प्रचारित करने के लिए विकसित तकनीक का प्रयोग करती है जैसे वीडियो फिल्म, ऑडियो कैसेट तथा स्टिकर्स इत्यादि।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् की स्थापना सन् 1948 में की गई। इसका उद्देश्य एवं कार्यक्रम है—अध्यापकों, छात्रों तथा कॉलेज प्रबंधकर्ताओं के मध्य पारिवारिक स्वरूप के सम्बन्धों की पुनर्रचना या स्थापना करना। अध्यापक और प्रशासक भी इसके सदस्य बन सकते हैं। इसकी प्रमुख उपयोगिता इस बात में निहित है कि आर.एस.एस. के संवर्गीय पदों पर छात्र-समुदाय से नियुक्तियां की जा सके।

आर.एस.एस. (महिला)

राष्ट्रसेविका समिति जो आर.एस.एस. का महिला मोर्चा है, 1936 में संगठित की गई। यह आर.एस.एस. के ढांचे के अनुरूप ही संगठित की गई है, जो अब भी पूर्णत: एक पुरुषों का संगठन है। यह संस्था महिलाओं को इस ओर अग्रसर होने के लिए प्रशिक्षित करती है कि आर.एस.एस. के लैंगिक सिद्धान्त के अनुसार अपने सभी कार्यों में यथा विवाह, व्यवसाय चयन आदि में परिवार का वर्चस्व होना चाहिए।

भारतीय मजदूर संघ

भारतीय मजदूर संघ जो आर.एस.एस. का श्रमिक मोर्चा है, सन् 1955 में श्रमिक आंदोलन पर वामपंथी प्रभाव से टक्कर लेने के उद्देश्य से संगठित किया गया था। इसका आदर्श वाक्य या नारा है—'उद्योगों का श्रमिकीकरण करो, राष्ट्र का औद्योगिकीकरण करो तथा श्रमिक का राष्ट्रीयकरण करो।' यह श्रमिकों की अन्तर्राष्ट्रीय एकता के सिद्धान्त को मान्यता नहीं देता।

किसान संगठन

1971 में स्थापित रैयत संघ तथा 1979 में स्थापित किसान संघ, किसानों और कृषि श्रमिकों को क्रियाशील करने तथा कृषक समुदाय से आर.एस.एस. को समर्थन जुटाने के लिए, स्थापित किए गए संगठन हैं।

67. संघ परिवार यह मानता है कि स्वतन्त्रोत्तर काल में प्रथम बार, पुन: युवा बनाए गए हिन्दू राष्ट्र के रूप में हमारे राष्ट्रीय भविष्य का एक नया रूप तेजी से प्रकट हो रहा है तथा आगे आने वाला समय इसको मूर्त रूप देने के लिए विपुल सम्भावनाएं प्रस्तुत करने जा रहा है।

VIII. संघ परिवार की सम्भावनाएं

68. स्वाभाविक रूप से, संघ परिवार के सिद्धान्त एवं व्यवहार के अध्ययन के बाद कतिपय ऐसे प्रश्न उठ खड़े होते हैं जो समुचित उत्तर की मांग करते हैं।

69. पहला प्रश्न यह है कि यदि विभिन्न धर्म संसदें, मार्ग दर्शन मण्डल, यज्ञ, यात्राएं आदि, हिन्दू समुदाय के हित में है, जैसा कि इनके आयोजक दावा करते हैं, तो हिन्दुओं को इनसे क्या-क्या लाभ प्राप्त हुए हैं।

70. तथ्य यह प्रदर्शित करते हैं कि, 1980 से ही, जब संघ परिवार ने हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के उद्देश्य से हिन्दुओं को संगठित करने एवं उन्हें सक्रिय करने के लिए साधुओं, सन्तों, महन्तों, आचार्यों और महर्षियों को नियुक्त करने का निश्चय किया तबसे राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू में तेजी से गिरावट आई है।

71. भारतीय राजनीति का अधिक से अधिक अपराधीकरण हुआ है। धन बल और भुज बल भारतीय समाज के मुख्य नियामक या नियंत्रक के रूप में उभर चुका है। हिंसा एवं उग्रवाद ने भारत के दो प्रधान मंत्रियों के प्राण ले लिए हैं। महिलाओं के विरुद्ध—जो भारत का आधा भाग है—हिंसा और अपराध के मामले वृद्धि की ओर है। भारत के सभी महत्वपूर्ण व्यक्ति कमाण्डों के सुरक्षा घेरे के बिना कहीं आ जा नहीं सकते।

72. साम्प्रदायिक दंगों ने तो सभी रिकार्ड तोड़ दिये हैं। अल्पसंख्यकों को और अधिक पृथक या अलग थलग कर दिया गया है। जिन-जिन क्षेत्रों में वे बहुमत में हैं—यथा जम्मू-कश्मीर, पंजाब, उत्तरी पूर्वी राज्य आदि वहां उन्होंने हथियार उठाये हैं।

73. जातिवाद अपूर्व ऊंचाइयों पर पहुंच चुका है। जातिगत दंगे पहले की अपेक्षा कई गुणा अधिक बढ़ चुके हैं। आज, एक तरफ तो सवर्ण हिन्दुओं तथा दूसरी तरफ दलित एवं पिछड़े वर्ग के बीच के तीव्र कलह ने हिन्दू समाज के बीच एक न पटने वाली खाई उत्पन्न कर दी है। यह वह एकता है जो, शंकराचार्यों के नेतृत्व में धर्म संसदों द्वारा हिन्दू समुदाय में सामाजिक समरसता आन्दोलन द्वारा सृजित की गई।

74. आर्थिक रूप से भी, भारत आजादी के बाद किसी भी समय की तुलना में आज अधिक मुसीबतों से जूझ रहा है। सभी आर्थिक पहलू एवं संकेतक देश की बदतर होती हालत को इंगित करते हैं जो गरीबों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रही है।

75. सांस्कृतिक तौर पर भी, भ्रष्ट एवं दोहरे रूप वाली जीवन-विधि, उच्च स्तरीय राजनेताओं, अधिकारियों, व्यापारियों तथा उन सभी की जिनका सामाजिक जीवन में महत्व है, एक सामान्य गुण या विशेषता बन चुकी है।

76. दूसरा प्रश्न यह उठता है कि, यदि सामान्य लोगों को संघ परिवार के कार्यक्रम से कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ है, तो क्या कारण है कि हाल ही के वर्षों में इसने काफी उन्नति की है।

77. इसका कारण संघ परिवार के हिन्दुत्व एजेण्डा की ओर सामान्य जनता के झुकाव में निहित नहीं है। लेकिन यह पूर्ण रूप से इस बात में निहित है कि भारत के लोगों के समक्ष एक प्रभावशाली राष्ट्रीय मॉडल के विकल्प का अभाव है। 1947 के बाद के नेहरूवादी ढांचे की असफलता ने, जिसका भारत के लोगों ने चुनाव किया, साम्प्रदायिक विभाजन की विचारधारा का प्रचार करके, भारत की राजनैतिक प्रक्रिया में शून्य की स्थिति अर्थात् रिक्तता उत्पन्न कर दी। दूसरे उपलब्ध राष्ट्रीय ढांचों के विकल्पों ने, यथा साम्यवादी ढांचा, समाजवादी ढांचा (जिसका प्रतिनिधित्व आज जनता दल के जातिवादी ढांचे द्वारा किया जाता है) तथा पश्चिम का उदारवादी ढांचा भी, जिसने विश्व के कई देशों में आघातों एवं अवनतियों का सामना किया है, इन्होंने भी भारतीय लोगों की नजर में अपनी साख या विश्वसनीयता खो दी है। हाल ही में विकसित वैश्विक ढांचे को अभी अन्तिम स्वरूप प्राप्त करना तथा अपनी उपयोगिता साबित करना बाकी है। 1989 का वर्ष एक ऐसा विशिष्ट वर्ष था जब नेहरूवादी दर्शन या ढांचे तथा विश्व के अन्य ढांचों ने गिरावट

या अवनति का सामना किया, जबकि हिन्दुत्व ढांचे ने एक विकल्प के स्तर तक बढ़ने के लिए कदम दर कदम प्रगति करना शुरू किया। लेकिन, हवाला काण्ड के भूकम्प ने इसे भीतर तक से हिला दिया।

78. ऊपर दिए गए स्पष्टीकरण की इस ऐतिहासिक तथ्य से भी पुष्टि होती है अर्थात् इसे बल मिलता है कि 1947 के बाद का हिन्दुत्व ढांचा लगभग 4 शताब्दियों तक भारतीय राजनैतिक प्रक्रिया के चारों ओर घूमता रहा। इसके सभी प्रचलित नारों या मुहावरों ने जैसे भ्रामक धर्म निरपेक्षवाद, अल्पसंख्यकों को लुभाना या प्रसन्न करना, गौ हत्या के विरुद्ध आवाज उठाना, पाक विरोधी आक्रामक रुख, समान नागरिक संहिता, संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य करना, अयोध्या में मस्जिद गिराना, राम भक्ति आदि किसी एक ने भी इसे कहीं भी सफलता नहीं दिलवाई।

79. पुन: ऊपर दिए गए स्पष्टीकरण को एक अन्य ऐतिहाहिक तथ्य से भी पूरा समर्थन मिलता है कि हिन्दुत्व दर्शन (चाहे नया हो या पुराना) में अपने असमान जातिगत ढांचे तथा शक्ति आधारित शैली के कारण, अपने पूरे इतिहास में एक सामाजिक समरसता की कमी रही है, तथा इस कारण यह अन्य देशी विदेशी सामाजिक रूप से अधिक एकतामूलक विरोधी ढांचों को गिराने या परास्त करने में अयोग्य रहा है।

80. दूसरा सवाल एक यह है कि यदि साम्प्रदायिकतावाद एक जन-विरोधी कार्यक्रम है तो यह भारतीय राजनीति का एक सशक्त पहलू क्यों बना हुआ है।

81. वैचारिक एवं भौतिक दोनों ही तत्वों ने इस प्रवृत्ति में योगदान दिया है।

82. 1947 के पूर्व जनता में वैचारिक साम्प्रदायिककरण दो मुख्य स्रोतों से उत्पन्न हुआ यथा (क) 19वीं और बीसवीं शताब्दी के दौरान हिन्दू एवं मुस्लिम समाज सुधारकों तथा ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा भी इतिहास का साम्प्रदायिक अर्थ लिया जाना, तथा (ख) गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस, जिन्ना के नेतृत्व वाली मुस्लिम लीग तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों द्वारा भी राजनीति का साम्प्रदायिककरण किया जाना। सामूहिक तौर पर साम्प्रदायिककरण में सहयोग देने वाला मुख्य घटक था राजनैतिक शक्ति के बंटवारे व नियंत्रण तथा आर्थिक स्रोतों के सम्बन्ध में हिन्दू एवं मुस्लिम उच्च वर्गों में विवाद का होना। राष्ट्रवाद का गांधीवादी सिद्धान्त तो अपने औचित्य के बारे में उदारवादी मुसलमानों को भी संतुष्ट करने में तथा उन्हें अपने पक्ष में करने में असफल रहा। इसी भांति मुस्लिम लीग का सिद्धान्त भी अपनी बात या तर्क के औचित्य को हिन्दू उच्च या कुलीन वर्ग के किसी भी भाग के समक्ष सही साबित नहीं कर पाया। इस प्रकार दोनों ही प्रकार के सम्प्रदायवादों का प्रभुत्व बढ़ता गया तथा वे एक दूसरे की क्रिया प्रतिक्रिया द्वारा मजबूत होते गये तथा अन्ततोगत्वा इसकी परिणिति 1947 के साम्प्रदायिक विभाजन के रूप में हुई।

83. 1947 के बाद के दौर में, प्रमुख राजनैतिक दलों द्वारा अपनी भ्रष्टाचार एवं अपराधीकरण की राजनीति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्प्रदायवाद का प्रयोग लगातार चल रहे परम्परागत मुस्लिम विरोधी विचारधारा तथा बढ़ते हुए भारत-पाक विवाद के सन्दर्भ में लिया जाता रहा, इसका परिणाम यह रहा है कि पुरानी साम्प्रदायिक विचारधारा शाश्वत तौर पर कायम रही है तथा कुछ नवीन सम्प्रदायवाद (मुख्यत: हिन्दू-मुस्लिम

आधार पर) लोगों के मस्तिष्क में घर कर गया है और एकात्मक शासन व्यवस्था तथा बहुसंख्यकवादी धर्म-निरपेक्षता के परिप्रेक्ष्य में अल्पसंख्यकों विशेषत: मुस्लिम लोगों के विरुद्ध भेदभावपूर्ण नीतियों को जन्म दिया है।

84. सारांशत: यह कहा जा सकता है कि सन् 1947 के पहले की एवं बाद की दोनों परिस्थितियों में, भारतीय लोगों के परम्परागत सम्प्रदाय एवं जाति आधारित दृष्टिकोण एवं लोगों में नवीन प्रजातांत्रिक चेतना की कमी ने एक ऐसा सामाजिक धरातल उपलब्ध करा दिया है जिस पर साम्प्रदायिकता की नई किस्मों के बीज बोये जा सकते हैं तथा इसकी पुरानी किस्मों को भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

85. अन्तिम प्रश्न यह है कि क्या संघ परिवार का हिन्दुत्व कार्यक्रम कामयाब होगा? अथवा क्या यह चलने योग्य है? अथवा क्या हिन्दू सांस्कृतिक राष्ट्रवाद (अथवा हिन्दू पुनर्जागरणवाद) भारतीय लोगों को एक राष्ट्रीय इकाई के रूप में बांध सकेगा जैसा कि संघ परिवार का यह सिद्धान्त दावा करता है कि 'संस्कृति जोड़ती है तथा राजनीति तोड़ती है।'

86. आज की स्थिति इतनी तरल एवं गतिमान है कि भारत के भविष्य के बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन जो भी हालात मौजूद है उनमें एक प्रबल सम्भावना इस बात की है कि संघ परिवार का हिन्दुत्व कार्यक्रम सफल नहीं होगा। इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं–राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक।

87. राष्ट्रीय तौर पर, हिन्दुत्व कार्यक्रम के सफल या कारगर होने में सबसे पहली बाधा है संघ परिवार की आंतरिक कमजोरी, जो एक ठोस या सुदृढ़ इकाई नहीं है, जैसा कि यह होने का दिखावा करता है अथवा जैसा कि कुछ पर्यवेक्षकों द्वारा इसका ऐसा विश्लेषण किया गया है। यह (संघ परिवार) तो अपने विभिन्न अंगों के बीच तथा अपने सदस्यों के बीच तेज एवं तीखे वैचारिक राजनैतिक एवं संगठनात्मक विवादों एवं मतभेदों से भरा पड़ा है।

(क) वैचारिक तौर पर संघ परिवार में 4 परस्पर विरोधी विचारधाराओं का अस्तित्व है। वे हैं–(अ) आक्रामक नव हिन्दूवाद (जो 1920 की दशाब्दी के जर्मन नाजीवाद के ढांचे पर आधारित है), जिसका प्रतिनिधित्व आर.एस.एस. समूह द्वारा किया जाता है; (ब) दीनदयाल उपाध्याय का एकात्मक हिन्दू मानववाद (जो गांधीवादी हिन्दू-मानववाद के बहुत अधिक समान है केवल एक मुख्य अंतर के साथ कि पहले वाला मुस्लिम सम्प्रदाय का कट्टर विरोधी है), जिसका समर्थन एल.के. आडवाणी गुट द्वारा किया जाता है; (स) गांधीवादी हिन्दू मानववाद (जो गांधीवादी समाजवाद कहलाता है जिसने 1980 से 1986 तक सरकारी सिद्धान्त या नीति का निर्माण किया) जिसका समर्थन अटलबिहारी वाजपेई गुट द्वारा किया जाता है; तथा (द) आक्रामक मनुवादी हिन्दुत्ववाद जिसका निर्माण विश्व हिन्दू परिषद् के भीतर संतों और महर्षियों के एक वर्ग द्वारा किया गया (जो शिव सेना के हिन्दुत्व से मेल खाता है)। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैचारिक तौर पर आर.एस.एस. तथा विश्व हिन्दू परिषद् के नेता एक तरफ है जबकि आडवाणी व वाजपेई की विचारधारा एक दूसरे समूह का निर्माण करती है।

(ख) राजनैतिक तौर पर, दोनों भिन्न-भिन्न वैचारिक पक्ष दो भिन्न-भिन्न कार्य-प्रणाली अपनाते हैं। आर.एस.एस.-विहिप पक्ष जो धार्मिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन की आवश्यकता का पक्षधर है, एक आक्रामक हिन्दुत्व कार्यक्रम अपनाता है; जबकि आडवाणी वाजपेई पक्ष, जो एक निर्वाचन की राजनीति की अनिवार्यता में विश्वास करता है, एक ऐसे गैर-हिन्दुत्व कार्यक्रम का पालन करता है, जो मुख्यत: आम जनता की समस्याओं तथा शासन से सम्बन्धित मुद्दों से सम्बन्ध रखता है तथा यह गुट हिन्दुत्व कार्यक्रम का उपयोग अपनी राजनति को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से करता है (ठीक कांग्रेस आई की तरह) न कि किसी हिन्दुत्व आंदोलन के लिए। स्वाभाविक तौर पर, इस तथ्य के कारण दोनों गुटों के बीच कई बार विवाद या मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं जो कई बार तो आर.एस.एस. की विशिष्ट कार्य शैली के कारण छिपा हुआ रह जाता है तथा कभी कभी संचार माध्यमों को बता दिया जाता है।

(ग) संगठनात्मक दृष्टिकोण से, चार परस्पर विवादाग्रस्त सिद्धान्तों के अस्तित्व के कारण तथा अपनी अपनी प्राथमिकताओं के साथ दो भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का पालन करने के कारण भाजपा के बीच तथा संघ परिवार के विभिन्न संगठनों के बीच गुटबाजी और गुटीय संघर्ष उठ खड़े हुए हैं।

(घ) संघ परिवार के प्रारम्भिक काल से ही (इसके विभिन्न संगठनों के भिन्न-भिन्न समयों पर स्थापना के साथ), आर.एस.एस. ही पूरे कार्यक्रम का नियंत्रण व संचालन करता आया है। लेकिन आज इस समग्र प्रभुत्ता या समग्र नियंत्रण में, पिछले 4 वर्षों में शक्ति के संतुलन के कारण, काफी परिवर्तन हो गया है। वह यह है कि भाजपा ने सदस्यता के रूप में अपने बढ़ते हुए जनाधार (जो अब एक करोड़), निर्वाचकों का समर्थन तथा अनेक जन संगठनों के जुड़ाव (दोनों आर.एस.एस. से सम्बन्धित अथवा स्वतंत्र), से एक नया विश्वास व नई पहचान हासिल की है–इस तथ्य के साथ कि आडवाणी-वाजपेई संयुक्त गुट ने भाजपा की अपनी दलीय व्यवस्था के प्रबन्ध के लिए एक स्वतंत्र स्थिति का दावा किया है। पिछले पखवाड़े में ही संघ परिवार के भीतर शक्ति संतुलन में एक और परिवर्तन आया है, जिसमें, हवाला काण्ड में लिप्त होने के कारण आडवाणी के प्रति अविश्वसनीयता बढ़ने तथा आडवाणी गुट द्वारा वाजपेई का पूरा समर्थन किए जाने के कारण, वाजपेई ने भाजपा नेतृत्व में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

आर.एस.एस. के नेतृत्व वाले गुट द्वारा वाजपेई प्रकरण से असंतुष्ट होने के बावजूद भी, आर.एस.एस. के पास इस समय तो इस परिवर्तन से समझौता कर लेने के सिवा कोई विकल्प नहीं है या अति सीमित विकल्प है। हो सकता है, चुनावों के बाद की स्थिति में, इस घुटन भरे संबंध में और कोई परिवर्तन आ जाए। अनुभव, हालांकि यह बताता है कि, आज चल रहे संसदीय प्रजातंत्र के बीच तथा नए उभर रहे जन सत्ता युक्त प्रजातंत्र में, आर.एस.एस. की सत्तावादी तथा वंशानुगत शासन के नियंत्रण वाली प्रणाली (चाहे राजनीति में हो या अर्थ व्यवस्था में हो या संस्कृति में हो) अधिक लम्बे समय तक नहीं टिक सकती।

88. संघ परिवार के हिन्दुत्व कार्यक्रम के सफलतापूर्वक चलने के रास्ते में दूसरी बड़ी कठिनाई या बाधा है हाल ही में उत्पन्न हुई यह जन अनुभूति या जन चेतना कि संघ

परिवार भी राजनीतिज्ञों की समग्र प्रजाति से बिल्कुल भी भिन्न नहीं है–इस प्रकार इसके नैतिक स्वरूप (अर्थात् नैतिक विश्वसनीयता) में काफी गिरावट आई है (आडवाणी के खिलाफ हवाला काण्ड में आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद तथा यह तथ्य उजागर होने के बाद कि भाजपा नेताओं ने भी संदेहास्पद स्रोतों से धन प्राप्त किया है)।

89. तीसरी बाधा यह है कि भाजपा के पास एक ऐसे राष्ट्रीय आंदोलन के मुद्दे की कमी है जो चुनाव अभियान पर हावी रहने की क्षमता रखता हो। जैसाकि नवम्बर 1993 के विधान सभा चुनावों से प्रकट होता है, भाजपा को प्राप्त उस समर्थन की चरम सीमा आ गई है जो आक्रामक हिन्दू कार्यक्रम को थोपने से मिल सकता है। और अब तो हवाला काण्ड के बाद तो सत्ताधारी दल के द्वारा राजनीति के अपराधीकरण एवं उच्च स्तरीय भ्रष्टाचार की बातों को उजागर करने का इसका कार्यक्रम भी इससे छिन गया है।

90. चौथी कठिनाई या बाधा है, भाजपा द्वारा एकात्मक शासन प्रणाली पर बहुत ज्यादा जोर देना, जो क्षेत्रीय दलों के साथ इसके चुनावी समझौते या तालमेल को सीमित कर देती है, क्योंकि सभी क्षेत्रीय पार्टियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और कार्यक्रमों से उपरोक्त धारणा मेल नहीं खाती है।

91. पांचवी रुकावट या बाधा है देश में मौजूदा शक्ति संतुलन की स्थिति, एक ऐसी स्थिति जिसमें तीनों मुख्य प्रतिद्वन्द्वी राजनैतिक शक्तियों–कांग्रेस (आई), रामो-वामो संयुक्त मोर्चा तथा भाजपा–में से कोई भी एक अपने स्वयं के बलबूते पर पूर्ण बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में नहीं है।

92. छठी रुकावट या बाधा मण्डलीकृत राजनीति का अस्तित्व है जो दलितों और पिछड़े वर्ग को उच्च वर्ग के नेतृत्व वाले संघ परिवार अथवा इसके किसी संगठन में शामिल होने से रोकती है या निरुत्साहित करती है। जिससे भाजपा को अपने हिन्दुत्व का मण्डलीकरण करने को बाध्य होना पड़ रहा है।

93. सातवीं रुकावट या बाधा है हिन्दू समुदाय का यह सामाजिक ढांचा जिसमें किसी एक भाषायी आधार की कमी है और वह सभी क्षेत्रों में भिन्नता के गुण रखने वाला है अर्थात् बहुरंगी है।

94. भाजपा के सामने आठवीं रुकावट दक्षिण के लोगों या समूचे भारत के दलितों और पिछड़ी जातियों में ऐसे किसी भी अहसास का न होना है कि उनकी सुरक्षा और राजनीतिक आर्थिक हितों को मुस्लिमों से कोई खतरा है, क्योंकि मुस्लिमों में बहुत से लोग दक्षिण भारतीय लोगों, दलितों और पिछड़े वर्गों से भी ज्यादा कंगाल है।

95. नवम् बाधा या रुकावट यह है कि संघ परिवार के मुस्लिम विरोधी कार्यक्रम के प्रति उच्च जाति के हिन्दू कुलीन लोगों में कोई आकर्षण नहीं है, क्योंकि उन्हें मुस्लिम उच्च वर्ग की ओर से उनके हितों को किसी प्रकार की चुनौती मिलने की संभावना नहीं है।

96. दसवीं बाधा या रुकावट है भारतीय संविधान में निहित बहुसंख्यकवादी धर्म निरपेक्षवाद (या राष्ट्रीयतावाद) का दृष्टिकोण, जो बहुसंख्यकवादी मुहावरों और प्रतीकों को शासकीय दर्शन का आदर्श के रूप में अपना कर हिन्दू कट्टरवादियों की आकांक्षाओं या इच्छाओं की भी स्वत: संतुष्टि कर देता है।

97. ग्यारहवीं रुकावट या बाधा राष्ट्रीय नेताओं की जीवन शैली की वास्तविकता है–वे चाहे कांग्रेसी हो, साम्यवादी या समाजवादी दलों के हो, वे उसी एक समान परम्परागत हिन्दू विधि की पालना करते हैं, जिन्हें संघ परिवार के नेताओं द्वारा अपनाया जाता है।

98. अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर, हिन्दुत्व के तीन मूलभूत सिद्धान्तों का विश्व वास्तविकताओं के साथ अन्तरविरोध है।

99. प्रथमत: स्वदेशीवाद, जो हिन्दुत्व कार्यक्रम का एक आधारभूत स्तम्भ है, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के ग्लोबल संयुक्तीकरण की प्रक्रिया से मेल नहीं खाता, जबकि यह ऐसा कार्य है जो अब प्रत्येक देश द्वारा किया जाता है (चाहे किसी समुचित विधि से या अन्यथा)। किसी ने अभी यह परिभाषा नहीं दी है कि स्वदेशी का अर्थ क्या है। किन्तु यदि इसका अर्थ है कि एनरॉन या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ हुए सौदों का विरोध किया जाए, अपने घर पर प्रतिदिन घटिया घरेलू वस्तुओं के बजाय बहुराष्ट्रीय उत्पादों का प्रयोग करना, अपने बच्चों को देश में अंग्रेजी माध्यम की स्कूलों में भेजने तथा विदेशों से डिग्रियां प्राप्त करना है तो स्वदेशीवाद का नारा लोगों के साथ दोगला खेल खेलने के अलावा कुछ भी नहीं है। यह सर्वविदित है कि नेहरू के युग में संघ परिवार उनकी स्वालम्बन की नीति का विरोधी था, जिसका भी अर्थ और कुछ भी नहीं बल्कि स्वदेशीवाद ही था।

100. दूसरे, हिन्दुत्व कार्य का दूसरा आधारभूत स्तम्भ अधिकारवादी या प्रभुत्ववादी तथा वंशानुगत शासन की प्रणाली है (जहां कि आर.एस.एस. का समूचा संगठन ऊपर से नीचे तक नियुक्ति के आधार पर चलता है तथा भाजपा सहित सभी संगठनों को वंशानुगत नियुक्ति के आधार पर नियंत्रित करता है। जो 19वीं शताब्दी के प्रजातंत्र के मूलभूत सिद्धान्त का ही उल्लंघन है, जबकि यह संगठन देश में प्रजातंत्र की सुनिश्चितता का दावा करता है। फिर लोगों के नियंत्रण एवं नेतृत्व वाली वैश्विक प्रणाली के बारे में तो क्या कहा जाए।

101. तीसरे, हिन्दुत्व कार्यक्रम के एक और आधारभूत स्तम्भ, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, को नए या पुराने किसी भी वैश्विक विकास से कोई समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। नवीन तथ्य यह है कि हाल ही में स्थापित विकसित क्षेत्रीय समुदाय यूरोपीय समुदाय (EC), नाफ्टा (NAFTA), एपेक (APEC), एशियान (ASEAN) इत्यादि, कोई भी किसी एकपक्षीय सांस्कृतिक सिद्धान्त पर आधारित नहीं है बल्कि वे आर्थिक एवं सुरक्षागत पहलुओं पर आधारित है। पुराना तथ्य यह है कि राष्ट्रों के विकास को एक मात्र या प्रभावी तत्व कभी कोई अकेला संस्कृति के रूप में नहीं रहा। उदाहरण के तौर पर, 21 अरब देश, जिनकी एक समान भाषा, एकसा धर्म व समान संस्कृति है फिर भी वे एक संघीय इकाई भी स्थापित नहीं कर पाए, किसी एक देशीय इकाई के संघ के एकीकरण की क्या बात की जाए। समूचा यूरोप भी, जो एक सरीखे ईसाई धर्म व एक ही प्रकार की उदार संस्कृति की विशिष्टता रखता है, विभिन्न देशों के बीच विभाजित ही रहा है। ऐसी ही स्थिति सुदूर पूर्व एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में रही है जहां के देश समग्र रूप से बौद्ध धर्मावलम्बी आबादी वाले हैं। आधुनिक या हाल ही का ताजा तथ्य तो यह है कि किसी देश को एक सूत्र में बांधे रखने के लिए सांस्कृतिक तत्व पूर्णत: निष्फल या बेकार साबित हो चुका है। उदाहरण के तौर पर चेकोस्लोवाकिया एक से धर्म एवं एक समान संस्कृति होने के बावजूद

भी मात्र तीन वर्ष पूर्व ही, दो गणराज्यों चैक एवं स्लोवेक के रूप में विभाजित हो चुका है। ऐसी ही घटना, इस शताब्दी के प्रारम्भ में, एक समान संस्कृति होने के बावजूद, नॉर्वे और स्वीडन में घट चुकी है। पूर्व में सोवियत संघ का विघटन भी स्लाव एवं ईसाई संस्कृति वाले तीन गणराज्यों रसिया, उक्रेन व बाइलोरसिया, द्वारा दिसम्बर 1991 में मिंस्क में अपनी बैठक करने के कारण हुआ। पाकिस्तान भी धार्मिक संस्कृतिवाद के आधार पर अपने आपको एक इकाई के रूप में कायम नहीं रख पाया है।

102. यह तर्क कि हिन्दुत्व का सिद्धान्त असाधारण एवं विशिष्ट सिद्धान्त है, अत: अन्य संस्कृतियों से इसकी तुलना नहीं की जा सकती, इसे तो हिन्दुत्व खेमे में परस्पर विनाशकारी झगड़ों व युद्धों के 3500 वर्ष पुराने इतिहास ने ही नकार दिया है।

103. ऐतिहासिक दृष्टि से दो शानदान उदाहरण ऐसे हैं जो हिन्दुत्व सिद्धान्त की प्रकृति एवं व्यावहारिकता के बारे में पर्याप्त सूचना देते हैं।

104. एक उदाहरण तो 1947 से पहले के ब्रिटिश उपनिवेशवादी साम्राज्य के विरुद्ध चलाए गए उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में आर.एस.एस. की भूमिका से सम्बन्धित है। चाहे किसी भी गोलमोल एवं वाकछलपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ, आर.एस.एस. अपनी भूमिका की विशेषताओं का बखान कर सकता है, लेकिन किसी भी मानदंड के साथ इसका औचित्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता। उस आंदोलन का मुख्य या आधारभूत मुद्दा यह नहीं था कि ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष का गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस का तरीका सही था या गलत था। उस आंदोलन का मुख्य मुद्दा यह था कि उस समय भारत में क्या उचित था तथा क्या अनुचित था। स्पष्टत: प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है तथा सही स्वीकार करना चाहिए कि उस समय ब्रिटिश उपनिवेशवादी साम्राज्य किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं था। इस तर्क या सिद्धान्त से प्रेरित होकर, भारत के प्रत्येक व्यक्ति का उस समय यही उचित कर्तव्य था कि वह ब्रिटिश उपनिवेशवादी साम्राज्य के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए भारतीय लोगों के साथ खड़ा रहे।

लेकिन आर.एस.एस. उस समय कहां खड़ा हुआ था? समूचा उपलब्ध रिकार्ड, चाहे वह लिखित हो या मौखिक, यह बताता है कि आर.एस.एस. ने हमेशा उपनिवेशवादी शासकों का पक्ष लिया है। क्या यह भारतीय लोगों के खिलाफ गद्दारी का व्यवहार नहीं था? यदि आर.एस.एस., कांग्रेस विचारधारा से मतभैद रखता था, तो इसके लिए उचित यह था कि वह स्वतंत्रता के मुद्दे को हल करने के लिए अपना कोई विकल्प प्रस्तुत करता। इसने ऐसा नहीं किया बल्कि ब्रिटिश सरकार को अपना सहयोग एवं सेवाएं उपलब्ध कराई।

अब दुखांत पहलू यह है कि अपनी 1947 के पहले की गलतियों के लिए विनम्र रहने एवं स्वयं की आलोचना करने के बजाय, संघ अविवेकपूर्ण तरीके से अपनी उस भयंकर भूल का समर्थन व बचाव करता है तथा उन लोगों पर पलट कर आक्रमण करता है जो इसे अपने हिदू देश भक्ति के उस नमूने की याद दिलाते हैं।

105. दूसरा भद्दा ऐतिहासिक तथ्य यह है कि कांग्रेस के प्रति आर.एस.एस. का दृष्टिकोण एवं व्यवहार शैली किसी भी नैतिक उसूल पर सही नहीं ठहराई जा सकती।

प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि संघ परिवार कांग्रेस के धर्म निरपेक्षतावादी सिद्धान्त को छद्म या मिथ्या धर्मनिरपेक्षवाद या अल्पसंख्यकवाद की संज्ञा देता है (अर्थात् अल्पसंख्यकों को बिना हक के प्रसन्न करना)। 1947 के पहले भी इसने गांधीवाद को मुसलमानों का समर्थक और हिन्दू विरोधी विचारधारा मानकर, इसका प्रबल विरोध किया था।

लेकिन कांग्रेस एवं गांधीवाद के प्रति आर.एस.एस. का वास्तविक व्यवहार क्या है? अधिक विस्तार में न जाकर, हम यहां कुछ थोड़े से तथ्यों का जिक्र करते हैं, जो यह बताते हें कि संघ कहता एक बात है तथा करता दूसरी बात।

एक तथ्य तो यह है कि एम.एस. गोलवलकर ने जो 1938 से 1973 तक आर.एस.एस. के प्रधान रहे तथा इसके अग्रणी सिद्धान्तवेत्ता थे, सितम्बर 1949 में तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल के साथ एक गुप्त समझौता किया कि आर.एस.एस. के सदस्यों (जिन पर गांधीजी की हत्या में सम्मिलित होने के आरोप में प्रतिबंध था) को अपने 'देशभक्तिपूर्ण' गतिविधियों एवं कार्यकलापों को जारी रखने दिया जाए बशर्ते कि वे अपनी स्वतंत्र पहचान रखने की बजाय कांग्रेस में सम्मिलित हो जाते हैं। इस समझौते की परिणिति या क्रियान्विति सरदार पटेल एवं आर.एस.एस. के महासचिव एकनाथ रानाडे के बीच की गई जो उन दिनों आर.एस.एस. की ओर से बातचीत करने में लगे हुए थे।

कांग्रेस का ऐतिहासिक रिकार्ड यह बताता है कि दिनांक 9 अक्टूबर 1949 को (जब नेहरूजी विदेश में थे), कांग्रेस कार्य समिति ने एक प्रस्ताव पास कर उसे अंगीकार किया कि आर.एस.एस. के लोगों को प्राथमिक सदस्य के रूप में कांग्रेस में शामिल होने की अनुमति दी जावे। लेकिन नेहरू के विदेश भ्रमण से लौटने के बाद, यह प्रस्ताव 17 नवम्बर 1949 को निरस्त कर दिया गया अर्थात् वापिस ले लिया गया। और इस प्रकार कांग्रेस व आर.एस.एस. का गुप्त समझौता टूट गया।

पुन: ऐसा करना निरुद्देश्य नहीं था कि 1975-77 के आपातकालीन शासन के दौरान, तत्कालीन आर.एस.एस. प्रधान, बाला साहब देवरस ने इन्दिरा गांधी को सम्बोधित करते हुए दो पत्र प्रेषित किए, जिनमें उसके प्रशासन के प्रति आर.एस.एस. की ओर से सहयोग के रुख का वादा किया तथा आर.एस.एस. पर से प्रतिबंध उठाने की याचना की (जो प्रतिबंध 1975 में घोषित आपातकाल के बाद लगाया गया था) तथा स्वयं को पैरोल पर छोड़ने की भी याचना की थी। ये दोनों पत्र 18 अक्टूबर 1977 को महाराष्ट्र विधानसभा के पटल पर रखे गए थे।

1977 में, जनसंघ जो आर.एस.एस. का तत्कालीन राजनैतिक मोर्चा था, जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व से प्रेरित होकर तथा उस समय अपने मुख्य दर्शन के रूप में गांधीवादी समाजवाद को अपनाते हुए जनता पार्टी में शामिल हो गया था।

सन् 1980 में, भाजपा ने, जनसंघ सदस्यों के जनता पार्टी से अलग होने के बाद अपने उद्घाटन सत्र में अपने मूल सिद्धान्त व विचारधारा के रूप में गांधीवादी समाजवाद को अपनाया व इसे सन् 1986 तक जारी रखा।

सन् 1983 के विधान सभा चुनावों में आर.एस.एस. ने इन्दिरा गांधी का उस समय

समर्थन किया जब उन्होंने जम्मू, पंजाब व दिल्ली में वोट प्राप्त करने के लिए अपने 'हिन्दू-कार्ड' का प्रदर्शन किया।

सन् 1992 में, आर.एस.एस. के तत्कालीन प्रधान (सरसंघचालक) बाला साहब देवरस के भाई भाउरा देवरस ने नरसिंहराव के समक्ष एक प्रस्ताव (जिसका प्रेस में व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया एवं जिसे किसी भी पक्ष द्वारा नकारा नहीं गया) रखा था कि कांग्रेस आई तथा भाजपा दोनों एक साझा सरकार का गठन कर लें अथवा कम से कम देश के समक्ष उत्पन्न जटिल समस्याओं से निपटने के लिए एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करें।

क्या कोई भी नैतिक सिद्धान्त, हिन्दुत्व व अल्पसंख्यकवाद के बीच एक समझौते की विचारधारा के औचित्य को साबित करता है या कर सकता है।

* * *

106. हम संघ परिवार के उन सभी प्रकार के सदस्यों से, जिनमें से अधिकांश ने तो हिन्दुत्व के उद्देश्य की पूर्ति में अपने समग्र जीवन को समर्पित कर दिया है, पुरजोर अपील करते हैं कि वे संघ परिवार के विचार, कथनी एवं करनी में एकरूपता के साथ-साथ संघ परिवार के उद्देश्य एवं सही भारतीय एवं वैश्विक वास्तविकताओं में तालमेल करने के बिन्दु पर गम्भीरता के साथ पुनरावलोकन करें। एक यथोचित अन्तरावलोकन किसी भी प्रक्रिया की सच्चाई को जानने में सदैव मदद करता है।

1.2.1996

* * *

मण्डलवाद - जाति आधारित झूठे न्याय का सिद्धान्त

सामाजिक व शैक्षणिक पिछड़ी जातियों के लिए केन्द्रीय सेवाओं में छ: सप्ताह पुराने मण्डलीय 27 प्रतिशत आरक्षण कोटे के आदेश ने न केवल पूरे देश में गम्भीर उपद्रव को उकसाया है बल्कि भारतीय जनता को दो विपक्षी खेमों–पक्ष और विपक्ष–में गहराई तक बांट भी दिया।

इस अत्यन्त संवेदनशील आदेश को जारी करने से पूर्व न तो मण्डल रिपोर्ट पर इसके सार्वजनिक अस्तित्व के पिछले दस सालों (1980-90) के दौरान सामाजिक तौर पर विचार-विमर्श किया गया है, ना ही इस नए आरक्षण आदेश पर किसी भी राजनीतिक या वैधानिक मंच पर सही तौर से सोच-विचार किया गया, और ना ही विभिन्न राज्य सरकारों जिन्हें यह रिपोर्ट पूर्व में अपनी टिप्पणियां देने के लिए भेजी गई थी के उत्तरों पर ध्यान दिया गया है। इस प्रकार यह प्रक्रिया प्रधानमंत्री द्वारा प्रतिदिन बखानी जाने वाली 'सर्व सम्मति' की शैली के बिल्कुल विपरीत है।

देवीलाल की रैली के ऐन मौके पर जल्दबाजी में सोचा गया यह आदेश इस बात का साफ संकेत था कि सामाजिक न्याय को निश्चित बनाने की बजाय यह जनता दल के भीतर श्री विश्वनाथप्रतापसिंह विरोधी धड़े को कमजोर करने की एक राजनैतिक चाल थी।

इसकी सबसे बड़ी खराबी यह है कि यह दोषपूर्ण आदेश यानि मण्डल रिपोर्ट यद्यपि दावा तो समतामय समाज स्थापित करने का करता है पर स्वयं तार्किक और तथ्यात्मक दोनों तौर पर विवेकहीन बुनियाद पर आधारित है।

प्रथम, मण्डल रिपोर्ट अपने कारण और उपाय के मध्य विरोधाभास की विशेषता पर आधारित है, वह यह कि एक तरफ भारत में यह जातिवाद को सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन का दोषी मानती है उसी समय दूसरी तरफ जाति को सामाजिक न्याय देने के लिए केन्द्रीय इकाई के रूप में स्वीकार करती है। दूसरे अर्थ में यह सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन को हटाने के लिए जातिवाद को मान्यता देती है।

इस जातीय विश्लेषण से हमारी सामाजिक प्रक्रिया में दो विकृतियां उत्पन्न होती हैं।

एक सामाजिक विकृति यह है कि मण्डल रिपोर्ट जातिवादी दृष्टिकोण से प्रत्येक वस्तु को देखने और अपनी अपनी जातियों के हित में तथा विपक्षी जातियों के विरोध में क्रियाशील होने को प्रेरित करती है, ठीक वैसे ही जैसे एक राष्ट्र राज्य पर आधारित सिद्धान्त प्रत्येक घटनाक्रम को राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से विचारने और अपने राष्ट्र हित में तथा अन्य राष्ट्रों के हितों के विरोध में क्रियाशील होने की दिशा देता है।

दूसरी सामाजिक विकृति है कि यह वर्तमान भारतीय सामाजिक वास्तविकता को छुपाकर पुराने जमाने से चली आ रही जातियों को आधुनिक वर्गों के समतुल्य बनाती है।

तथापि ऐतिहासिक साक्ष्य प्रकट करते हैं कि पुरानी चली आ रही जातियां और आधुनिक वर्ग दो भिन्न सामाजिक घटनाक्रम है। आधुनिक भारतीय वर्ग उन्नत वैज्ञानिक एवं तकनीकी रचनातन्त्र और इसके अन्तर्राष्ट्रीय माल के श्रम विभाजन (जो दुनिया के 5 अरब लोगों को एक अकेली आर्थिक इकाई में जोड़ रहा है) से जुड़े हुए हैं जबकि जातियां पुरातन कृषि और इसकी आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदाय के सामाजिक श्रम विभाजन से सम्बन्धित हैं। आगे, आधुनिक काल से पूर्व बहुत से भारतीय क्षेत्र जो जातीय श्रम विभाजन पर आधारित थे अपनी तत्कालीन आय पुरातन कृषि से प्राप्त करते थे, जबकि 1990 के भारत की राष्ट्रीय आय कृषि से 34 प्रतिशत तथा शेष आय शहरी औद्योगिक एवं सेवाओं की गतिविधियों से प्राप्त होती हैं। पुन: परम्परा के अनुसार जाति ईश्वर से निकलती है जबकि आधुनिक वर्ग आधुनिक समाज शास्त्र के अनुसार आर्थिक श्रम विभाजन से निकले हैं। और आगे, जाति की श्रम प्रक्रिया ताकत से संचालित थी जबकि आधुनिक वर्गों की श्रम प्रक्रिया कानून के नियम पर चलती है। इससे भी आगे जबकि जाति का पुरोहित सम्प्रदाय–जिसमें किसी को भी अपने जीवनकाल में अपनी जाति बदलने का अधिकार नहीं था–वंशानुगत और स्थायी था। वर्तमान वर्गीय पहचान एक से दूसरी श्रेणी में बदली जा सकती है। कुल मिलाकर जातीय रचनातंत्र एक परिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था थी जिसमें शासन करने वाली कार्यपालिका अफसरशाही एवं न्यायपालिका ब्राह्मण जाति, सैनिक शक्ति क्षत्रिय जाति, व्यापार एवं कृषि समुदाय वैश्य जाति तथा शारीरिक सेवा कार्य क्षुद्र जाति के सुपुर्द थी। जबकि आधुनिक वर्गों की संरचना (पूंजी, पूंजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग और मजदूर वर्ग) आर्थिक रचनातंत्र का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें राजनैतिक क्षेत्र राजनीतिक पार्टियों द्वारा और सांस्कृतिक प्रभुत्व सांस्कृतिक केन्द्रों से प्रबंधित हैं।

यद्यपि हमारे सामाजिक जीवन में जातिवाद अभी तक प्रभावशाली ताकत के रूप में अस्तित्व में है फिर भी यह एक पुरानी वास्तविकता का अवशेष मात्र है जो धीरे-धीरे समाप्ति की तरफ जा रहा है। यदि नेहरू मॉडल ठीक कार्य करता तो बची खुची जाति संस्था अब तक करीब-करीब अप्रासंगिक हो जाती।

द्वितीय, मंडल रिपोर्ट अपने उद्देश्य और कार्यशैली के मध्य विरोधाभास की विशेषता लिए हुए है। वह यह कि एक तरफ समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित समतामयी समाज स्थापित करने का दावा करती है और दूसरी तरफ अपनी कार्य योजना में अन्य पिछड़ी जातियों की श्रेणी में जहां तक सम्भव हो जातियों को शामिल करके (3743 जातियां जो भारत की कुल आबादी का 52% है) वास्तविक पिछड़े (वास्तव में कमीशन के अनुमान की आधी) ग्रुपों को बहुत से उन्नत और इसमें न शामिल करने योग्य ग्रुपों को शामिल करके (जैसे कर्नाटक में लिंगायत व वोकालिगास; बिहार में यादव, कुर्मी और बनिया; उत्तरप्रदेश में कोयरी और यादव; अजमेर में जाट; महाराष्ट्र में कुनबी; गुजरात में राजपूत आदि) डूबो देती है।

टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, बम्बई की अध्ययन रिपोर्ट जो मण्डल आयोग के लिये तैयार की गई, से जाहिर है कि वोकालिगास एक प्रभावी जमींदार जाति है तथा कुर्मी, कोयरी और यादव काफी जमीन के मालिक हैं और मजदूरों से काम लेते हैं। राजनैतिक तौर पर अन्य पिछड़ी जाति के विधायक बिहार विधानसभा में 40%, उत्तरप्रदेश

विधानसभा में 30%, कर्नाटक विधानसभा में 50% से अधिक, विश्वनाथ प्रतापसिंह के मन्त्रीमण्डल में 25%, वर्तमान लोकसभा में ग्रामीण पृष्ठभूमि के 40% संसद सदस्य हैं।

तृतीय, मण्डल रिपोर्ट संविधान की मूल आत्मा से विरोधाभास लिए हुए है यह जातीय पहचान को मान्यता देकर धर्मनिरपेक्षता को अस्वीकार करती है, अन्तरजातीय कलह पैदा कर राष्ट्रीय एकता को कमजोर करती है। यह नई जातीय विभेदीकरण को लागू कर लोकतंत्र का उल्लंघन करती है। यद्यपि भारतीय संविधान दो बुनियादी पहचानों–जैसे कि राष्ट्र और नागरिक तथा दो संक्रमणकालीन पहचान जैसे कि अनुसूचित जाति अनुसूचित जन जाति और सामाजिक व शैक्षणिक पिछड़े वर्ग को मान्यता देता है। यह एक संविधान से अलग पहचान, यानि सामाजिक व शैक्षणिक पिछड़ी जातियां स्थापित करती है।

चतुर्थ, मण्डल रिपोर्ट 1947 से पहले और बाद के भारत के जाति और धर्म आधारित आरक्षण के अनुभव की अनदेखी करती है। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन जाति के विभिन्न आयोगों की रिपोर्टें, योजना आयोग के दस्तावेज तथा सी.एस.ओ. (C.S.O.) द्वारा प्रसारित आंकड़े जिनमें 1947 के बाद के जातीय आधारित आरक्षण अनुभव संग्रहित है, जाहिर करता है कि अ.जा. व अ.ज.जा. के उन्नत भाग ने अधिकांश लाभ उठाया है जबकि उनमें से 90% लोग अभी भी उसी पुरानी दयनीय स्थिति में है। 1947 पूर्व का धर्म आधारित आरक्षण अनुभव साम्प्रदायिक द्वेष और अलगाववाद से भरा हुआ है। यह उत्थान करेन वाला मॉडल जो बुनियादी संरचनात्मक परिवर्तन की बनिस्पत आरक्षण पर आधारित है निष्प्रभावी साबित हुआ है।

पंचम्, मण्डल रिपोर्ट प्रतियोगिता को कमजोर करके आरक्षण की व्यवस्था में निहित स्वार्थ पनपाती है तथा इस प्रकार कुशलता और खोजवृत्ति में बाधा पहुंचाती है। योग्यता और कुशलता से अलग-थलग सामाजिक न्याय गैर उत्पादक है। समाजवादी देशों में एक दलीय एकाधिकारवादी शक्ति द्वारा उत्पन्न चहुंमुखी अकुशलता इसका एक नमूना है।

षष्ठम्, मण्डल रिपोर्ट दोषपूर्ण आंकड़ों पर आधारित है। अन्य पिछड़ी जातियों की अनुमानित जनसंख्या निकालने की विधि को देखिए। 1971 की जनगणना से अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन जाति तथा गैर हिन्दुओं की जनसंख्या (क्रमश: 22.56% और 16.16%) ली गई तथा 1931 की अपूर्ण जनसंख्या से सवर्ण हिन्दुओं की 17.8% जनसंख्या के आंकड़े लेकर इन सबको जोड़ लिया जो 56.3% बने। इसे 100 में से घटाने पर हिन्दुओं में अन्य पिछड़ी जातियों की अनुमानित जनसंख्या 43.7% आई। अन्त में गैर हिन्दू जनसंख्या की प्रतिशत का आधा (8.4) अन्य पिछड़ी जातियों के तौर पर और जोड़ दिया गया। इस प्रकार कुल अन्य पिछड़ी जातियों की जनसंख्या 52.1% के लगभग अनुमानित की गई। रिपोर्ट में विभिन्न समुदायों के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व शैक्षणिक स्थिति के बारे में कोई स्वतन्त्र आंकड़े अंकित नहीं है। जिनसे ही यह निर्धारित किया जा सकता है कि उनमें कौन उन्नत है व कौन पिछड़े हैं। मण्डल आयोग की सूचनाएं मुख्य तौर से इसके द्वारा कराये गये प्रत्येक जिले के चुनिन्दा दो गांवों और एक शहरी खण्ड के सर्वेक्षण से हासिल की गई है। रिपोर्ट यह स्वीकार करती है कि इसका सर्वे शैक्षणिक अनुसंधान के

एक भाग होने का वृथाभिमान नहीं करता। अन्ततोगत्वा इस रिपोर्ट में अन्य पिछड़ी जातियों की पहचान राज्यों द्वारा तैयार की गई अन्य पिछड़ी जातियों की सूचियों से जो सामाजिक वास्तविकताओं की बनिस्पत ज्यादातर राजनीतिक प्रेरणाओं से बनी हैं, निर्धारित की गई है। फलत: राष्ट्रीय स्तर पर इन दोषपूर्ण आंकड़ों को लागू करना पिछड़ेपन की सामाजिक वास्तविकताओं को मात्र भ्रमित करना होगा। दिलचस्प बात यह है कि कमीशन की कार्यपद्धति से जुड़े हुए तीनों तकीनीकी विशेषज्ञों ने खुले तौर पर मण्डल रिपोर्ट के व्यवहार, निष्कर्ष और निर्णयों को अस्वीकार किया है।

उपरोक्त अविवेकताएं इंगित करती हैं कि मण्डल रिपोर्ट न केवल सामाजिक और नैसर्गिक न्याय के लिए सार्थक है बल्कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों तौर पर एक गलत दिशा देने वाला सिद्धान्त है।

राष्ट्रीय तौर पर यह हमारी एक नम्बर की वर्तमान प्राथमिकता यानि राष्ट्रीय एकता को गौण बनाती है और जातीय रोग (विष) को साम्प्रदायिक जहर–जिसके कारण 1947 का भारत विभाजन हुआ–के साथ जोड़ता है। इसने न केवल आम लोगों में बल्कि प्रत्येक राजनीतिक पार्टी, सरकारी गठबंधन और सत्ताधारी राष्ट्रीय मोर्चे में भी अन्तरजातीय कलह उत्पन्न कर दी है और इस प्रकार हमारे सम्पूर्ण सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया है। इस फूट डालने वाले दृष्टिकोण के तहत जनता दल अध्यक्ष आरक्षण विरोधियों को खून की नदियां बह जाने की धमकी देते हैं और दो केन्द्रीय मंत्री आरक्षण समर्थकों को सड़कों पर आने और अपने विरोधियों को जैसे का तैसा जवाब देने के लिए आह्वान करते हैं। यह साफ-साफ जातीय दंगों को भड़काना है।

अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर यह हमारे समय की मुख्य धारा से टकराती है जिसके दो मौलिक सिद्धान्त–पार-राष्ट्रवाद और साझा बाजारवाद-जातिवादी राष्ट्रीय विखण्डन के सिद्धान्त और व्यवहार से बेमेल है।

सैद्धान्तिक तौर पर मंडलवाद पिछड़े समतावाद से प्रेरित होकर भारत को अगुवा और पिछड़ी जातियों के घालमेल के रूप में देखता है और पिछड़ों को अगुवा और अगुवों को पिछड़ा बनाकर समतावादी समाज स्थापित करने की सरलतम रणनीति को अख्तियार करता है।

फिर भी ऐतिहासिक अनुभव जाहिर करता है कि समतावादी मंडलीय रणनीति कहीं भी कारगर नहीं हुई है। बहुत से गरीब समर्थक आन्दोलन जैसे–इंग्लैण्ड में ओवनवाद, फ्रांस में प्रोघोवाद, चीन में ताइपिंग का स्वर्ग राज्य, पेरिस कम्यून, रूस, चीन आदि में समाजवादी राज्य–अपने उद्देश्यों को नहीं पा सके। इसका कारण इस बात में निहित है कि यह निर्धनों को अधिक प्रतियोगी बनाने और उपलब्ध प्रतिभावानों के कौशल का लाभ लेने को एक तरफ छोड़ते हुए सिर्फ निर्धनों के प्रति एक तरफा पक्षपाती व्यवहार पर जोर देता है। ऐसा एकतरफा जोर देना उनके सामाजिक विकास–जिसकी दो तरफा प्रक्रिया, एक तरफ लगातार निपुणता और अनुसंधान वृत्ति के फलने-फूलने की मांग करती है और दूसरी तरफ लगातार सामाजिक न्याय देने का तकाजा करती है–में स्वाभाविकतया बाधा उत्पन्न करता है। निपुणता और अनुसंधान–जो सामाजिक सम्पन्नता को बढ़ाने की ओर ले जाते हैं–का निरन्तर विकास किए बिना कोई सामाजिक न्याय–जो निपुणता और

अनुसंधान को विकसित करने के सामाजिक हालात तैयार करता है–नहीं दिया जा सकता है और ऐसा ही इसके विपरीत भी है। सभी एक तरफा गरीब समर्थक सिद्धान्त–जैसे कि वर्ग व वर्ग संघर्ष, जाति व जाति संघर्ष, साम्राज्यवाद व विश्व क्रांति, तीसरी दुनिया बनाम महाशक्तियां आदि–जिन्होंने केवल संघर्ष पर जोर दिया है निष्प्रभावी साबित हुए हैं। सामाजिक समानता और न्याय के आन्दोलन का सम्पूर्ण इतिहास–कन्दमूल मानव से गण, कबीला, रियासतों, राज्य, राष्ट्र राज्य और अब विश्व की ओर–एक तरफ प्रकृति और मनुष्य तथा दूसरी तरफ मनुष्य और मनुष्य के बीच एकता और संघर्ष की अन्तरक्रिया के जरिए चलने वाली दो तरफा प्रक्रिया है।

इस ऐतिहासिक अनुभव से शुरू करते हुए हमारी ऐतिहासिक गलतियों को दुरुस्त करने और पिछड़े हुए लोगों को मुख्यधारा में लाने की प्रक्रिया दो तरफा–अल्पकालीन के साथ-साथ दीर्घकालीन–क्रियाशील योजना की मांग करती है।

दीर्घकालीन योजना का तकाजा है कि सामाजिक तौर पर पिछड़े लोगों को उनकी प्राकृतिक सम्पदा और पर्यावरणीय गुणों को विकसित करने के लिए निम्न बहु आयामी सुविधाएं उपलब्ध की जायें (क) मुफ्त शिक्षा व चिकित्सा सुविधा (ख) ग्रामीण घर, जल वितरण, बिजली, परिवहन, संचार, बाजार और ऋण की सुविधाओं का विकास (ग) भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को लागू करना, बन्धुआ मजदूरों की मुक्ति, खेत मजदूरों की न्यूनतक मजदूरी को पक्के तौर पर लागू करना तथा 20% ग्रामीण जनसंख्या को कृषि से उद्योग की तरफ तुरन्त परिवर्तित करना (घ) राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय राजनीति, अर्थनीति और संस्कृति में संघीय व विकेन्द्रीकरण के लिए परिवर्तन लाना, पूंजी के स्रोतों का उचित उपयोग करना। श्रम उत्पादकता को बढ़ाना तथा गरीबी और बेकारी को दूर करना।

अल्पकालीन (कदम) ये हैं–(क) गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लगभग 40% सभी लोगों को केन्द्रीय, राज्य, सरकारी और निजी क्षेत्रों में रोजगार के लिए आरक्षण दिया जावे। (ख) 40 प्रतिशत आरक्षण में से 22.5 प्रतिशत आरक्षण अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन जाति के लिए रहे जैसा कि पहले से तय है। (ग) वर्तमान में जो विशेष अधिकार अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जन जातियों के लिए स्वीकृत हैं उन्हें केवल इन जातियों के गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों को ही दिया जाये। गरीबी की रेखा से ऊपर जाने वाले लोगों को अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन जाति की सरकारी श्रेणी से हटा दिया जाए। (घ) बाकी 18 प्रतिशत रोजगार का आरक्षण उन नागरिकों को दिया जाए, जिनकी प्रति व्यक्ति आय गरीबी की रेखा से नीचे है जो लोग गरीबी की रेखा को पार कर जाते हैं, उनको गरीबी की रेखा से नीचे की श्रेणी वाली सूची से निकाल दिया जाए। (ड़) गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की सूची जो लगभग 1988 में पूर्ण की गई थी, ज्यादातर राज्यों में उपलब्ध है। (च) सरकारी तौर पर उपलब्ध सूचियों की जांच पड़ताल करने तथा सही व्यक्तियों को गरीबी के प्रमाण-पत्र जारी करने के लिये ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित विधायक, ब्लाक प्रधान, ब्लाक विकास अधिकारी, तहसीलदार और शिक्षा अधिकारी को लेकर एक पांच सदस्यीय ब्लाक समिति गठित की जाये। इसी तरह, शहरी क्षेत्रों में ब्लाक प्रधान की जगह, वार्ड प्रतिनिधि और ब्लाक विकास अधिकारी

की जगह नगरपालिका या नगर परिषद् के अध्यक्ष को लेकर ऐसी ही समितियां गठित की जाएं।

अनुचित आरक्षण आदेश से उत्पन्न परिस्थिति–जिसकी पराकाष्ठा शक्तिशाली विद्यार्थी आन्दोलन के दौरान दी गई महान् कुर्बानियों से परिलक्षित है–दर्शाती है कि, प्रधानमंत्री का मण्डलवाद पर हठी रुख उनके अति अवसरवाद की अभिव्यक्ति है तो कांग्रेस (इ), भाजपा तथा अन्य वामपंथी दलों की दुरंगी बातें–जैसे व्यक्तिगत तौर पर नए आरक्षण आदेश का विरोघ करना, परन्तु लोगों में जाति आधार और आर्थिक नुस्खे के बीच सम्बन्ध बनाने की मांग करना–अपने संकीर्ण हितों को राष्ट्रीय हितों से ऊपर रखने का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

वर्तमान जाति आधारित ध्रुवीकरण हमारे सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव छोड़ने वाला है। एक नया राजनीतिक गठबंधन उभरता नजर आ रहा है। साम्प्रदायिक और जातीय टकराव का तीव्र होना और खराब हो रही आर्थिक स्थिति, अन्य टकरावों को उत्पन्न करने वाली है। यह उभर रही परिस्थिति यथोचित संभाली जा सकती है यदि व्यक्तित्व और मुद्दों पर आधारित राजनीतिक अवसरवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और अलगाववाद के विरुद्ध सभी अन्तर्राष्ट्रीयवादी एवं राष्ट्रीय लोकतन्त्रवादी शक्तियां एक व्यापक मोर्चा बनालें।

27.9.90

***

जातीय समाज–
अप्रासंगिक, गैर-न्यायिक एवं उत्पीड़न का एक सिद्धान्त

I

1. क्या भारत में सामाजिक पिछड़ेपन का आधार जाति प्रथा है? मंडलवादी दृष्टिकोण इस प्रश्न का उत्तर हां में देता है, जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा, सभी किस्म के भारतीय कम्युनिस्ट, लोहिया समाजवादी और जाति समूहों के तरफदारों सहित सभी जातिवादी भी ऐसा ही मानते हैं।

2. जातिवादी विचारशाखा संक्षेप में मानती है कि जाति प्रथा भारत की सबसे बड़ी वास्तविकता है जिसने लोगों के एक बहुत बड़े भाग को सम्पन्नता, विकास और साधारण मानवीय सम्मान तक से भी वंचित रखकर उन्हें सामाजिक और शैक्षणिक तौर पर पिछड़ा रखा है, इस विचार के अनुसार, जाति अभी भी व्यक्तिगत पहचान और शादी का माध्यम है, अगड़ी जातियों के लोग न तो नीची जातियों के साथ खाना खाते हैं और न ही उनमें विवाह करते हैं। वे अभी भी नीची जाति की महिलाओं के साथ छेड़छाड़ करते हैं, बेगार करवाते हैं, काश्तकार के अधिकारों को मानने से इनकार करते हैं और नीची जाति के लोगों पर गालियों की बौछार करते हैं।

जातिवादी विचारक इस हद तक चले गए हैं कि नीची और पिछड़ी जातियों को दलितों, अन्य पिछड़ी जातियों आदि जैसे जाति समूहों में बांटने को भी आधुनिक जनवादी काम करार देते हैं।

3. क्या स्थिति सचमुच वैसी है, जैसे जातिवादी विचारशाखा के समर्थक मानते हैं? इसकी सही जानकारी के लिए भारत की कुछ मूलभूत वास्तविकताओं पर नजर डालना जरूरी है।

II

4. आइए हम भारत में सामाजिक पिछड़ेपन की वास्तविकता से शुरूआत करें। संक्षेप में कहें तो सामाजिक पिछड़ेपन का मतलब है कि कोई व्यक्ति सामाजिक गतिविधि के तीन मुख्य अंगों–यानि राजनीति, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के लिहाज से पिछड़ा हुआ है। इस परिभाषा के अनुसार ऐसा कोई ठीक-ठाक अनुमान नहीं कि भारत की जनसंख्या का कितना भाग सामाजिक तौर पर पिछड़ा हुआ है। पश्चिमी देशों से तुलना करते हुए कुछ लोगों का अनुमान है कि भारत की 90 फीसदी जनसंख्या पिछड़ी है। तीसरी दुनिया के स्तर के अनुसार कुछ लोग इस आंकड़े को करीब 70 फीसदी बताते हैं। भारत की गरीबी रेखा के आधार पर कुछ लोगों का मानना है कि भारत की जनसंख्या का 2/5 हिस्सा पिछड़ा है।

5. यह पिछड़ापन कहां से पैदा हुआ है? इस प्रश्न पर काफी अस्पष्टता है। संविधान सभा में हुई बहसें भी इस बारे में स्पष्ट कुछ नहीं बतातीं। इस मामले में अदालती फैसले भी अलग-अलग हैं। कुछ फैसले इस तर्क पर आधारित हैं कि पिछड़ापन आर्थिक आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए, जबकि अन्य फैसलों के अनुसार जाति आधार इसके लिये सबसे महत्वपूर्ण है।

6. आज संपूर्ण विश्व, खासकर विकासशील देश मानते हैं कि पिछड़ापन राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कई कारणों से पैदा होता है। इनमें मुख्य वजह गरीबी है। इसका अर्थ कि सामाजिक पिछड़ेपन का सामान्य कारण लोकतांत्रिक राजनीति और संस्कृति का अभाव है जबकि इसका विशेष कारण आर्थिक यानि गरीबी।

7. अगड़ों और पिछड़ों के बीच विभाजन रेखा गरीबी ही क्यों है, इसका कारण यह है कि भारत में कानून का शासन अपनी खामियों के बावजूद प्रत्येक भारतीय नागरिक को–चाहे वह उच्च जाति का हो या निम्न जाति का–समान राजनैतिक और सांस्कृतिक अधिकार देता है। अनुसूचित जातियों और जनजातियों को छोड़ किसी को भी राजनैतिक और सांस्कृतिक तौर पर विशेषाधिकार हासिल नहीं है।

8. आर्थिक क्षेत्र में असमानता है। कुछ लोगों के पास करोड़ों की दौलत है जबकि बहुत से लोग भूखे पेट सोने को मजबूर हैं। आर्थिक तौर पर सम्पन्न लोग अपने इस प्रभाव के चलते राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों तक में ऊंचे ओहदे पाने में सफल रहते हैं।

9. जाति प्रथा सामाजिक पिछड़ेपन का मुख्य स्रोत क्यों नहीं है? वजह यह है कि जाति प्रथा हमारे राष्ट्र-राज्य के मूलभूत सिद्धान्तों–माल की अर्थव्यवस्था, संसदीय राजनीति तथा धन एवं धर्मोन्मुखी संस्कृति–के विपरीत है। अगर जातिवाद हमारे सामाजिक पिछड़ेपन का मुख्य जनक होता तो जाति प्रथा से मुक्त पाकिस्तान, बांग्लादेश या भूटान में पिछड़ापन न होता। करीब 100 विकासशील देशों में भारी पिछड़ापन यह दर्शाता है कि इस बीमारी का एक साझा कारण गरीबी ही है।

III

10. आगे, आइए हम भारत की आर्थिक वास्तविकता के बारे में कुछ सवालों यानी भारत में पेशागत प्रणाली, जायदाद की मिल्कियत, श्रम प्रक्रिया, गरीबी और बेरोजगारी आदि के सवालों पर गौर करें।

11. पेशागत प्रणाली का जहां तक ताल्लुक है, इससे अभिप्राय अमूमन विभिन्न प्रकार की उन गतिविधियों (अथवा व्यवसायों) से है जिनके जरिए लोग अपनी रोजी कमाते हैं। अब सवाल यह है कि भारत में लोग क्या करें, इस बात को कौन निर्धारित करता है। प्राचीन काल में जाति प्रथा ने प्रत्येक जाति को विशेष कार्य सौंप रखा था। मसलन, किसानों और मजदूरों की विभिन्न श्रेणियों से बनी निम्न जातियां–शूद्र और वैश्य–या तो राजा से या भूमि से बंधी हुई थी। लेकिन आज कोई भी ऐसा कानूनी या सामाजिक बंधन नहीं है और हर व्यक्ति कोई भी व्यवसाय करने के लिए स्वतंत्र है।

परंपरागत जातिगत व्यवसायों में बुनियादी परिवर्तन हो चुके हैं। इस समय वे मुख्य तौर पर बाजार व्यवस्था से निर्धारित होते हैं जिसके तहत धनी लोग अत्यधिक लाभप्रद क्षेत्रों की तरफ दौड़ते हैं जबकि गरीबों को जो कुछ उपलब्ध होता है उसे पाने की कोशिश करते हैं। मसलन, यदि जूता उत्पादन तुलनात्मक दृष्टि से अधिक लाभप्रद है तो कोई ब्राह्मण व्यापारी बिना हिचकिचाहट के उसमें अपना धन लगा देता है, हालांकि पारंपरिक तौर पर यह नीची जाति का व्यवसाय रहा है, दलित जाति के किसी सदस्य को उन्नत शिक्षण संस्थान चलाने का पूरा अधिकार है जबकि परंपरागत तौर पर यह व्यवसाय ब्राह्मण जाति के लिए सुरक्षित था। बढ़ती हुई बेरोजगारी गरीब को (चाहे वह ऊंची या निम्न जाति का हो) विवश करती है कि जो भी धंधा उपलब्ध है, वह उसे करे। ऊंची जाति के लोग आज शारीरिक श्रम करते हैं तो यह जाति नियमों के विपरीत उदाहरण है। अपनी श्रम शक्ति बेचते मजदूर इसलिए यह काम नहीं करते कि वे निम्न जाति के हैं बल्कि इसलिए कि उनके पास इतना धन नहीं होता कि वे उसे अन्य लाभप्रद गतिविधियों में लगा सकें। उद्योग, कृषि और व्यापार में सभी लेन-देन पैसे के बदले ही होता है, जो कि बाजार का मुख्य माध्यम है।

12. जहां तक संपत्ति की मिल्कियत का सवाल है, इससे अमूमन अभिप्राय किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियंत्रण की हैसियत से है। अब सवाल यह है कि भारत में उद्योग, व्यापार और कृषि क्षेत्रों को कौन नियंत्रित करता है? आधुनिक युग से पहले दो ऊंची जातियां (ब्राह्मण और क्षत्रिय) अर्थव्यवस्था पर पूरी तरह हावी थीं। आज हमारी अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा क्षेत्र–सार्वजनिक क्षेत्र–पूरी तरह सरकारी मिल्कियत है। निजी कंपनी क्षेत्र में करीब 40 फीसदी हिस्सा सरकारी वित्तीय संस्थानों की मिल्कियत है जबकि बाकी हिस्सा छोटे शेयरधारकों की मिल्कियत है। विभिन्न बड़े उद्यमों में एक से 10 फीसदी नियंत्रण बड़े औद्योगिक घरानों का है। व्यापार और कृषि क्षेत्रों में पिछड़ी जातियों (जैसे यादव, अहीर, गूजर, कुर्मी, कोइरी, लिंगायत, बोक्कालिंगा, कम्मा, बनिया, रामगढ़िया आदि) के कुछ मालिकों सहित विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तिगत और साझेदारियों की मिल्कियत का स्वरूप हावी है।

आज भारत का सबसे बड़ा उद्योगपति टाटा घराना परंपरा से पारसी है जिसका जाति व्यवस्था से कोई लेना-देना नहीं है। और फिर, भारत के दस बड़े उद्योगपतियों में से कोई घराना भी दो बड़ी जातियों में से नहीं है बल्कि वे सभी बनिया जाति के हैं, जिसे बिहार में मंडल आयोग ने पिछड़ी जाति माना है। कुछ साल पहले भारत का सबसे धनी व्यक्ति किसी ऊंची जाति का नहीं बल्कि हैदराबाद का पूर्व निजाम था। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सभी शाखाओं का नियंत्रण भारत की उच्च जातियों के नहीं बल्कि विदेशी मालिकों के हाथ में है और उनमें लगभग सभी ईसाई समुदाय के हैं।

13. जहां तक श्रम प्रक्रिया का सवाल है, इससे अमूमन अभिप्राय निश्चित आर्थिक, राजनैतिक या सांस्कृतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए काम की प्रक्रिया से है। अब सवाल यह है कि भारत में इस प्रक्रिया पर कौन हावी है? प्राचीन समय में इसका संचालन दो ऊंची

जातियों–ब्राह्मण और क्षत्रिय–के हाथ में था। इसमें वैश्य उद्यमी ताकत तथा शूद्र इन सबकी सेवा करने वाले थे। आज कुल मिलाकर इसका संचालन सरकार के हाथों में है जबकि निजी उद्यमी और भूपति अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों में इसका संचालन करते हैं। सभी निजी उद्यमों की देखरेख उनके अपने-अपने मालिक करते हैं। प्रबंध में मजदूरों की भागीदारी का कानून अगर बन गया तो मजदूर (जो आम तौर पर निम्न जाति के होते हैं) अपनी श्रम प्रक्रिया के संचालन में भी साझेदार बन जाएंगे।

14. जहां तक गरीबी और बेरोजगारी का सवाल है, इससे अमूमन अभिप्राय समग्र गरीबी और बेरोजगारी तथा उसकी विकास दर से है। अब सवाल यह है कि भारत में गरीबी और बेरोजगारी का जिम्मेदार कौन है? आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के दौर में हरेक जाति को कुछ विशेष और अपरिवर्तनशील काम करने होते थे और उसे जाति व्यवस्था में अपनी हैसियत के अनुसार हिस्सा मिला करता था। इस प्रकार, उस स्थायी और वंशानुगत व्यवस्था में असीम गरीबी और बेरोजगारी का सवाल ही नहीं था, हालांकि ऊंची जातियों का जीवन स्तर भी घटिया किस्म का ही था। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने जब अपने दो मूल औजारों–मंडी और मुद्रा–सहित माल के उत्पादन और विनिमय की आर्थिक पद्धति शुरू की तो आत्मनिर्भर ग्रामीण श्रम विभाजन ने अपना महत्व खोना शुरू कर दिया। कालांतर में इसने नई वर्ग संरचना को जन्म दिया जिसमें राजा, भूपति, व्यापारी (बाद में उद्योगपति भी), सरकारी अफसर आदि उच्च वर्ग बन गए जबकि काश्तकार, भूमिहीन और मजदूर श्रमिक वर्ग बने और छोटे व्यापारी, छोटे भूपति तथा बाबू लोग मध्यम वर्ग के रूप में सामने आए। जाति व्यवस्था के स्वर्ण काल में जहां प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा उसकी जाति की हैसियत के आधार पर निश्चित था, वहीं असमान बाजार विनिमय ने एक तरफ चंद हाथों में पैसा जमा होने की प्रक्रिया को जन्म दिया और दूसरी तरफ बाकियों को गरीब और मध्यम श्रेणियों में बदल दिया। नतीजतन, गरीबी और बेरोजगारी के सवाल हमारे सामने आए। सन् 1947 के बाद के काल में भारतीय अर्थव्यवस्था में संसाधनों के दुरुपयोग की वजह से गरीबी और बेरोजगारी की स्थिति नहीं सुधर सकी। और आज, गरीबी का सवाल बहुत ही महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या बन गया है जिसने न केवल आर्थिक क्षेत्र में बल्कि राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी असमानता और पिछड़ेपन को जन्म दिया है।

IV

15. आगे, आइए हम भारत की राजनैतिक वास्तविकता के कुछ सवालों यानी कानून का शासन, संसदीय लोकतंत्र, प्रशासकीय कार्यप्रणाली आदि पर विचार करें।

16. कानून का शासन से अमूमन अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था से है जिसमें कानून की नजर में हर व्यक्ति हरेक सामाजिक गतिविधि में बराबर माना जाता है। भारत में कानून के शासन मे हालांकि कुछ खामियां हैं, फिर भी इसके मूलभूत और सामान्य कानून उन जातिवादी कानूनों के प्रतिकूल है जो जाति प्रथा को दैवी संस्था के रूप में उचित ठहराते हैं, ऊंची जातियों को विशेषाधिकार प्रदान करते हैं और महिलाओं सहित नीची जातियों को मानव अधिकार मुहैया करने तक से इनकार करते हैं। कानून का शासन और जाति प्रथा एक दूसरे के उलट हैं।

17. संसदीय लोकतंत्र से अमूमन अभिप्राय जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए शासन से है–ऐसा शासन जो व्यस्क मताधिकार और प्रतियोगी राजनीति पर आधारित होता है, लोकतांत्रिक पार्टियों के प्रबंध से चलता है और जिसमें चुनावी जनादेश के मुताबिक सरकारों में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। जाहिर है, खामियों के बावजूद भारत में संसदीय लोकतंत्र उस जाति के विपरीत है जो अपना प्राधिकार जनता से नहीं बल्कि ईश्वर से प्राप्त करती है तथा हर देश-काल में शाश्वत बनी रहती है। चुनाव प्रक्रिया में नामांकन पत्र भरने से लेकर वोट खरीदने और मतदान केन्द्रों पर कब्जा करने तक सभी गतिविधियां धन शक्ति पर निर्भर करती है और जाति व धर्म पूरक भूमिका निभाते हैं।

18. प्रशासकीय कार्यप्रणाली से अमूमन अभिप्राय स्थायी प्रशासकीय मशीनरी के कामकाज से है। अपनी संवैधानिक और कानूनी जिम्मेदारियों के बावजूद भारतीय प्रशासन में किसी भी प्रकार की सामाजिक प्रेरणा का अभाव है और इस प्रकार यह कुछ बीमारियों से ग्रसित है जिनमें मुख्य भ्रष्टाचार है। घूस देकर कोई भी व्यक्ति प्रशासन से अपना कोई भी काम निकलवा सकता है, चाहे वह काम बड़ा हो (जैसे लाइसेंस, परमिट आदि) या छोटा (जैसे गिरदावरी चढ़वाना, थाने में रपट दर्ज कराना, अदालतों में फैसलों की नकल हासिल करना आदि)। ऐसे मामलों में जाति से कोई फर्क नहीं पड़ता।

V

19. और आगे, आइए हम भारत की सांस्कृतिक वास्तविकता से संबंधित कुछ सवालों–मसलन मौजूदा मूल्यों एवं रीति-रिवाजों पर विचार करें।

20. सांस्कृतिक मूल्यों और रीति-रिवाजों से अमूमन अभिप्राय आचरण के प्रचलित मानदंडों से है। अब सवाल यह है कि भारत में आचरण के मानदंडों को कौन निर्धारित करता है? क्या यह काम जाति व्यवस्था का है? धन और सत्ता के सामने कोई भी व्यक्ति जाति की परवाह नहीं करता।

अमूमन सत्ताधारी गुट द्वारा पोषित और खास तौर पर निजी हितों को संतुष्ट करते धन और सत्ता के जुड़वां मानदंड अधिकांश भारतीय लोगों के लिए सामाजिक जीवन के लक्ष्य बन गए हैं। पैसा काला हो या सफेद, जीवन के हर पहलू से सम्मान पाने लगा है। आज ब्राह्मण वैदिक ज्ञान की तुलना में पैसे को ज्यादा अहमियत देते हैं और क्षत्रिय पैसे को हथियारों की तुलना में ज्यादा अहम समझते हैं। सत्ता चाहे सही ढंग से हासिल की गई हो या गलत ढंग से, सामाजिक हैसियत का एक और प्रतीक है। पिता-पुत्र, भाई-भाई और भाई-बहन जैसे पारिवारिक रिश्तों का आधार भी पैसा बन गया है। विवाह संस्था भी एक सौदा बन गई है, जिसके तहत ऊंचे और मध्यम वर्ग में वधू पक्ष को निर्धारित दहेज वर पक्ष को देना पड़ता है। पर गरीब वर्गों में मामला उलटा है, जहां दूल्हे का परिवार दुल्हन के अभिभावकों को तयशुदा रकम अदा करता है।

सत्ता के दलाल और काला धंधा करने वाले लोग भारतीय समाज में प्रमुख हैसियत रखते हैं। ऐसी सामाजिक दिशा के तहत तिकड़मबाजी और दोगला व्यवहार सामान्य मानदंड हो गए हैं। तस्करी, नशीली दवाओं का व्यापार, विदेशी मुद्रा के घोटाले, विदेशी बैंकों में काले धन को जमा करना, कर चोरी, जाली नोट, खाद्य पदार्थों में मिलावट वगैरह अशोभनीय काम नहीं माने जाते।

VI

21. उपरोक्त तथ्य बताते हैं कि भारत के बारे में जातिवादी समर्थक विचारशाखा की धारणा भारतीय वास्तविकता के विपरीत है।

इसकी मूलभूत धारणा; कि भारत की जातियां आधुनिक वर्ग ही है, भारतीय वास्तविकता के बारे में गलत समझ पर आधारित है।

भारत का इतिहास बताता है कि जाति औद्योगिक श्रम विभाजन के पूर्व काल से संबंध रखती है। उस काल का श्रम विभाजन आदिम कृषि और इसके आत्मनिर्भर ग्राम समुदाय से पैदा हुआ था। इसके विपरीत भारत में आधुनिक वर्ग–औद्योगिक उद्यमी, व्यापारी, बड़ा और छोटा किसान, काश्तकार, औद्योगिक और कृषि मजदूर, असंगठित मजदूर आदि–माल के उस श्रम विभाजन से पैदा हुए हैं जो मुख्यत- उद्योग से जुड़ा हुआ है और जिसमें कृषि पूरक भूमिका निभाती है। मोटे तौर पर 18वीं सदी के अंत में ब्रिटिश उपनिवेशी शासन की शुरूआत के साथ ही भारत में पैदा हुआ माल का श्रम विभाजन आज उस अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन पर अंतरनिर्भर हो चुका है जो खुद दुनिया में 1945 के बाद हुई वैज्ञानिक-टेक्नोलॉजिकल क्रांति से जन्मा है।

जातियों में बंटी आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में समूची आय आदिम कृषि से होती थी लेकिन 1990 के भारत में महज 34 फीसदी राष्ट्रीय आय कृषि से होती है जबकि बाकी आय शहरी उद्योगों और सेवा उद्योगों से होती है।

जाति प्रथा अपनी दैवी उत्पत्ति में विश्वास रखती है पर आधुनिक वर्ग अपनी उत्पत्ति आर्थिक श्रम विभाजन से मानते हैं।

जाति प्रथा की श्रम प्रक्रिया बल प्रयोग से चलती थी जबकि आधुनिक वर्गों की श्रम प्रक्रिया का संचालन नियम-कायदों से होता है।

जाति प्रथा पुश्तैनी और स्थायी हुआ करती थी जिसके तहत किसी को भी अपने जीवन काल में अपनी जाति बदलने का अधिकार नहीं था। लेकिन आधुनिक समाज में किसी को भी वर्ग परिवर्तन का अधिकार है।

कुल मिलाकर, जाति व्यवस्था एक संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था थी जिसके तहत ब्राह्मण जाति कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका का, क्षत्रिय जाति सैन्य बल का, वैश्य जाति व्यापारी और खेतीहर समुदाय का प्रतिनिधित्व किया करती थी, तथा शूद्र जाति इन सब की सेवा का काम अंजाम देती थी। लेकिन आधुनिक वर्ग (यानी उद्योगपति, व्यापारी, जमीदार, मध्यम वर्ग और मजदूर वर्ग) आर्थिक आधार पर विकसित हुए हैं। इस वर्ग संरचना में राजनैतिक क्षेत्र का प्रबंध राजनैतिक दल और सांस्कृतिक क्षेत्र का प्रबंध सांस्कृतिक संस्थाएं करती हैं।

VII

22. मंडल आयोग का यह निष्कर्ष कि भारत में सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन की पहचान जाति के आधार पर की जा सकती है। बेहद भ्रामक है। यह आयोग की ओर

से पिछड़ापन निर्धारित करने के लिए अपनाए गए 11 संकेतकों* से जाहिर है।

पहली बात तो यह है कि सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन सही तौर पर तीन संकेतकों से निर्धारित किया जा सकता है। ये हैं राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) संकेतक, जो कुल मिलाकर सामाजिक धारणा को व्यक्त करते हैं। सामाजिक शब्द मनुष्यों के बीच अथवा उनके वर्गों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों यानी किसी समाज अथवा सामाजिक व्यवस्था में समग्र संबंधों को अभिव्यक्त करता है। हर सामाजिक व्यवस्था मुख्यत: राजनैतिक (जिसमें विदेश और रक्षा के मामले शामिल हैं), आर्थिक और सांस्कृतिक संघटकों से बनती है।

मंडल आयोग ने केवल आर्थिक और कुछ हद तक सांस्कृतिक (यानी शैक्षिक) पक्ष से ही सरोकार रखते हुए राजनैतिक और आधे सांस्कृतिक पक्ष को बिलकुल दरकिनार कर दिया है। अनुभव सिखाता है कि राजनीति, अर्थतंत्र और संस्कृति समाज में समान महत्व की भूमिका निभाती है। अंतर सिर्फ यह है कि एक समय में उनमें से एक पक्ष ही मूल भूमिका निभाता है जबकि बाकी दो गौण हैसियत में होती हैं। अगर कोई व्यक्ति आर्थिक रूप से विकसित लेकिन सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा हो तो उसे पिछड़ों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि आर्थिक साधन उसका पिछड़ापन हटाने में सहायक होते हैं। इसी तरह, अगर कोई व्यक्ति विधायक अथवा सांसद होते हुए भी आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से दुर्बल है तो उसे भी पिछड़ा नहीं माना जा सकता क्योंकि उसकी विधायी हैसियत उसकी आर्थिक और सांस्कृतिक कमजोरियों पर काबू पाने में सहायक होती है। तदनुसार, अगर कोई व्यक्ति बेहद सुसंस्कृत होते हुए भी राजनैतिक और आर्थिक रूप से कमजोर है तो उसकी सांस्कृतिक योग्यताओं के चलते उसे पिछड़ा नहीं माना जा सकता।

---

* ये संकेतक हैं : सामाजिक तौर पर पिछड़ी मानी जाने के लिए कोई जाति अपनी जीविका की खातिर मुख्य रूप से शारीरिक श्रम पर निर्भर हो; उस जाति की ग्रामीण क्षेत्र में सरकारी औसत से ऊपर कम से कम 25 फीसदी औरतें और 10 फीसदी मर्द तथा शहरी क्षेत्र में कम से कम 10 फीसदी औरतें और 5 फीसदी मर्द 17 साल से कम की आयु में विवाह करते हों; तथा उस जाति में औरतों की काम में भागीदारी सरकारी औसत से कम से कम 25 फीसदी अधिक हो।

शैक्षिक तौर पर पिछड़ी मानी जाने के लिए किसी जाति के 5 से 15 वर्ष की आयु वर्ग के स्कूल जा चुके बच्चों की संख्या सरकारी औसत से कम से कम 25 फीसदी नीचे हो; 5 से 15 वर्ष की आयु वर्ग के स्कूल छोड़ चुके बच्चों की दर सरकारी औसत से कम से कम 25 फीसदी अधिक हो; तथा दसवीं पास बच्चों की संख्या सरकारी औसत से कम से कम 25 फीसदी नीचे हो।

आर्थिक तौर पर पिछड़ी मानी जाने के लिए किसी जाति की औसत पारिवारिक संपत्ति सरकारी औसत से कम से कम 25 फीसदी नीचे हो; कच्चे घरों में रहने वाले परिवारों की संख्या सरकारी औसत से कम से कम 25 फीसदी नीचे हो; 50 फीसदी से अधिक परिवारों के लिए पीने के पानी का स्रोत आधा किलोमीटर से अधिक की दूरी पर हो; तथा दैनिक खर्च के लिए कर्ज ले चुके परिवारों की संख्या सरकारी औसत से कम से कम 25 फीसदी अधिक हो।

दूसरे, सामाजिक शीर्षक के तहत मंडल आयेग ने दो मामलों–शारीरिक श्रम में भागीदारी और विवाह प्रथा–पर ही विचार किया है। पहला मामला आर्थिक पक्ष से और दूसरा सांस्कृतिक पक्ष से संबंध रखता है।

तीसरे, आयोग ने सामाजिक शीर्षक के तहत रखी चार मदों में प्रत्येक के लिए तीन अंक, शिक्षा शीर्षक के तहत रखी तीन मदों में प्रत्येक के लिए दो अंक तक आर्थिक शीर्षक के तहत रखी चार मदों में प्रत्येक के लिए एक अंक निर्धारित किया है। मतलब यह कि आयोग ने शारीरिक श्रम में भागीदारी व विवाह प्रथा के दो मामलों के लिए 12 अंक; साक्षरता, स्कूल छोड़ने आदि की दर के लिए 6 अंक; तथा अधिक नहीं तो समान महत्व के चार मामलों यानी संपत्ति, कर्जदारी, आवास और पानी की उपलब्धता के लिए मात्र चार अंक निर्धारित किए हैं। इसने सामाजिक पिछड़ेपन के कारण के तौर पर आज दुनिया भर में मान्य दो सबसे महत्वूपर्ण मामलों यानी गरीबी और बेरोजगारी को बिलकुल ही नजरअंदाज कर दिया है। इसके अलावा इसने एक और आर्थिक संकेतक यानी प्रतिव्यक्ति आय को भी ध्यान में नहीं रखा है।

चौथे, पिछड़ापन आज किसी भी जाति में एक समान लक्षण नहीं है। संसदीय लोकतंत्र और बाजार ने हर जाति के भीतर बदलाव ला दिए हैं जिससे उसके विकसित और पिछड़े हिस्सों के बीच भिन्नता पैदा हुई है। मसलन, बहुत से नाइयों ने आधुनिक हैयर कटिंग सैलून, दर्जियों ने आधुनिक कटिंग इकाइयां और धोबियों ने आधुनिक लांड्रियां खोल ली है। इसी प्रकार यादव, कुर्मी, कोइरी, अहीर, गूजर, लिंगायत, बोक्कालिंगा, कम्मा, बनिया, रामगढ़िया आदि जातियों के कुछ लोग मंत्री, सांसद और विधायक बन गए हैं। उनमें से अनेक जमींदार हैं और उन्होंने शहरों में मकानों, बसों व लारियों, चावल मिलों, सिनेमाघरों आदि में पूंजी लगा रखी है। क्या इन खुशहाल लोगों को पिछड़ा कहा जा सकता है? इस तरह, पिछड़ापन आज व्यक्तिगत विशिष्टता है, किसी विशेष जाति की खासियत नहीं है। इसके चलते हर जाति अमीर और गरीब आधुनिक वर्गों की विभिन्न श्रेणियों में बंट गई है।

VIII

23. आजादी के 42 वर्ष बाद भी देश की आबादी का बड़ा भाग अभी पिछड़ा हुआ क्यों है? हमारे विचार में इसका मुख्य कारण यह है कि 1947 के बाद राष्ट्रीय विकास का हमारा मॉडल भारत को आधुनिक समाज बनाने में नाकाम रहा है। यह इसलिए नाकारा साबित हुआ क्योंकि यह केन्द्रीकृत राज्यतंत्र, राजकीय नौकरशाही अर्थव्यवस्था, जाति व धर्म से जुड़ी संस्कृति और प्रभुत्ववादी विदेश एवं रक्षा नीति पर आधारित है। ये नकारात्मक लक्षण न सिर्फ सत्तावादी नेहरूवादी मॉडल में ही मौजूद है बल्कि भिन्नताओं के साथ हर प्रमुख गैर-सत्तावादी किस्म यानी जनता दल के जाति अभिमुख अथवा पिछड़े समतावादी मॉडल, भाजपा के हिन्दू झुकाव वाले मॉडल और वामपंथी पार्टियों के नियंत्रण पर आधारित मॉडल में मौजूद है।

अगर कोई हमारे सामाजिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण जाति प्रथा को बताता है तो वह नेहरूवादी मॉडल को उसके घटिया कामकाज के लिए दोषमुक्त ठहराता है और इसके साथ ही जनता दल, भाजपा तथा वामपंथी मॉडलों के असंगत लक्षणों का बचाव करता है।

IX

24. पिछड़ेपन से छुटकारा पाने का रास्ता क्या है? हमारी राय में सही रास्ता यह है कि हम सबसे पहले अपने समय की धारा यानी पारराष्ट्रवाद और साझा बाजार की धारा के अनुसार काम करें। इसके लिए जरूरी है कि सभी घटनाक्रमों के मूल्यांकन के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया जाए। दूसरे, हम भारत की वास्तविकता के अनुसार काम करें जिसका तकाजा है कि एक पूर्णतया संघीय ढांचा, हर स्तर पर सत्ता का विकेन्द्रीकरण, विश्व पूंजी और विश्व बाजार की धारणा से मेल खाती एक प्रतियोगी लोकतांत्रिक अर्थव्यवस्था, जाति और धर्म से असंबद्ध धर्मनिरपेक्षता, पाकिस्तान और चीन के साथ कश्मीर समेत सभी विवादों का खात्मा तथा पहले पाकिस्तान के साथ और फिर सभी दक्षेस सदस्यों के साथ महासंघ की स्थापना हो।

X

25. सैद्धांतिक तौर पर, जातिवाद समर्थक विचारशाखा इतिहास के परंपरागत प्रतिशोधी नजरिए से प्रेरणा लेती है। यह विचारशाखा समतावाद और सामाजिक न्याय के नारे देकर और खुद को गरीबों की रक्षक जाहिर करके बदले की भावना से एक जाति को दूसरी जाति के खिलाफ या एक वर्ग को दूसरे वर्ग के खिलाफ अथवा एक धार्मिक समुदाय को दूसरे धार्मिक समुदाय के खिलाफ खड़ा करती है। गरीबों के मसीहा की भूमिका ओढ़कर यह न तो गरीबों को सामाजिक बदलाव लाने अथवा उन बदलावों के लाभ का सही इस्तेमाल करने में सहायता पहुंचाती है और न ही उनके विकसित हिस्सों में उपलब्ध प्रतिभाओं का फायदा उठाती है। नतीजतन समाज में संकट पैदा हो जाता है। प्रतिशोधी संघर्ष पर ही जोर देते बहुत से एकतरफा समतावादी आंदोलन जैसे कि चीन मे ताइपिंग दैवी राज्य, पेरिस कम्यून, रूस, चीन आदि में समाजवादी शासन अपना उद्देश्य हासिल करने में नाकाम रहे। वजह यह थी कि प्रतिशोधी समतावाद पर ही जोर देकर उन्होंने मानवीय विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया का उल्लंघन किया। इस दोतरफा प्रक्रिया का तकाजा है कि एक तरफ मनुष्य के कौशल और खोजी प्रवृत्ति का निरन्तर विकास हो (जिससे सामाजिक संपदा का विस्तार होता है) और दूसरी तरफ सामाजिक दौलत के प्रतिशोधी भावना से नहीं बल्कि निष्पक्ष वितरण के जरिए निरन्तर सामाजिक न्याय प्रदान किया जाए, मनुष्य की खोज और सामाजिक न्याय की इस दोतरफा प्रक्रिया ने मानव समूह से लेकर कुल, कबीले, क्षेत्रीय राज्य, राष्ट्र-राज्य और अब एक विश्व सरकार तक समूचे मानव इतिहास में खुद को अभिव्यक्त किया है।

XI

26. ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका सारांश यह है कि आज हमारे सामाजिक जीवन में कुछ जातिवादी लक्षणों का बने रहना इतिहास की उस प्रवृत्ति को ही जाहिर करता है जिसके तहत अपने अंतिम अवसान की ओर अग्रसर किसी बीते युग के अवशेष नई पैदा हो रही सामाजिक ताकतों के साथ-साथ ही चलते हैं। 31.10.1990

***

भारत-पाक शिखर सम्मेलन
मुद्दा स्पष्ट है : चाहे दोनों एक साथ सुन्दर भविष्य बनाओ या आपस में लड़कर बर्बाद हो जाओ

I. इसका सन्दर्भ

1. मई 1998 में परमाणु विस्फोट पर विवाद और फरवरी 1999 में वाघा में हाथ मिलाना – 9 महिने के भीतर भारत और पाकिस्तान की ये दो अन्तरविरोधी मुद्राएं चरम सीमा की द्योतक हैं। दोनों ही नाटकीय घटनाएं हैं।

2. पहली अन्धराष्ट्रवादी घटना थी जो दो देशों द्वारा 52 वर्ष तक टकरावादी लाईन को अपनाए रखने का चरम बिन्दु थी। इस टकराव की नींव 1947 से पहले के दो राष्ट्रवाद के भ्रान्त सिद्धान्तों–यानि, उदार हिन्दूवादी दिशा का गांधीवाद और मुस्लिम लीग प्रायोजित पैन-इस्लामवाद–के बीच संघर्ष ने डाल दी थी।

3. दूसरी घटना को हर एक ने आश्चर्यचकित होकर देखा। क्योंकि, इसकी सुलहकारी प्रकृति और तरीका सन् 1947 से पहले दोनों देशों द्वारा टकरावादी लाईन अख्तियार करने और दोनों देशों के अपने-अपने प्रधानमंत्रियों के विद्यमान परम्परावादी विचारों का निषेध था। जैसा कि सामान्यतया जाना जाता है, दो प्रधानमंत्रियों–अटल बिहारी बाजपेयी और नवाज शरीफ–दो देशों के दो अति वैचारिक ध्रुवों वाले नेता हैं। अटल बिहारी बाजपेयी आर एस एस का आजीवन सदस्य है जो हिन्दू रूढिवादी दृष्टिकोण वाला संगठन है, जो अखण्ड भारत की सौगन्ध खाए है और पाकिस्तान की वास्तविकता नकारता है, सन् 1947 के विभाजन को ताकत से मिटाना चाहता है, पाकिस्तान को दुश्मन नम्बर एक बताता है और भारत के मुसलमानों की देश भक्ति पर संदेह खड़े करता है। जबकि दूसरा (नवाज शरीफ) रूढिवादी राष्ट्रवादी ब्रान्ड से उभरा है जो भारत को विश्व की सभी बुराइयों की जड़ मानता है।

4. यद्यपि, इन दो अति स्थितियों में अप्रत्याशित कुछ भी नहीं था। हमेशा नई चीजें कई बार टकराव और कई बार सुलह'समझौते की प्रक्रिया के माध्यम से घटित व चरित्रित होती हैं।

II. इसकी विभिन्न व्याख्याएं

5. भारत-पाक शिखर वार्ता की विश्व में विभिन्न नजरियों से व्याख्या की गई। अन्धराष्ट्रवादियों ने जहां इसे 'बेकार की कसरत' कहकर रद्द किया है वहां उदारवादियों ने इसे अद्वितीय घटना करार दी है। जहां कुछ भले लोग इसको शांति और सद्भाव की दिशा में लिया गया एक कदम कहते हैं वहीं कुछ दोषारोपण करने वाले लोग इसको शून्य गतिविधि बताते हैं। भारत और पाकिस्तान सहित समस्त विश्व के आम आदमी इसका

दिल से स्वागत करते हैं। कुल मिलाकर सकारात्मक दृष्टिकोण नकारात्मक से ज्यादा भारी है। यह हमारे समय के मनोभाव को दर्शाता है जिसमें टकराव और विवाद के पुराने रास्तों की जगह बातचीत, दोस्ती और सहयोग के रास्तों ने जगह बना ली है।

III. इसका वास्तविक अभिप्राय

6. इस शिखर सम्मेलन का वास्तविक अभिप्राय इसके दस्तावेजों–यानि, लाहौर घोषणापत्र, आपसी समझौते का दस्तावेज (एम ओ यू) और संयुक्त बयान–में किसी तरह देखा जा सकता है, जिनमें शांति और समन्वय पर जोर दिया गया है।

7. घोषणा में मुख्य बिन्दु थे कि दोनों पक्ष आपसी विचार विमर्श को तीव्र करेंगे और कोशिश करेंगे कि जम्मू-कश्मीर समस्या, आतंकवाद को रोकने और मानवाधिकारों का सम्मान करने, आकस्मिक परमाणु टकराव टालने के लिए अपनी-अपनी परमाणु तथा मिसाइल क्षमताओं पर रणनीतिक रुकावटों के लिए कदम उठाना, आपसी सुरक्षा और स्थायित्व सुनिश्चित करने के लिए विश्वास निर्माण के सहायक तरीकों पर अर्थपूर्ण विचार-विमर्श आयोजित करके हल किया जा सके।

आपसी समझौते के दस्तावेज (एम ओ यू) में मुख्य तत्व निम्नलिखित शामिल हैं : सुरक्षा अवधारणाओं और परमाणु सिद्धान्तों पर राय-मशविरे का समझौता, परमाणु और पारम्परिक हथियारों के क्षेत्र में विश्वास निर्माण के पैमाने तय करना, मिसाइल टेस्ट की अग्रिम सूचना देने और इस विषय पर किसी समझौते पर हस्ताक्षर का निर्णय लेने, परमाणु हथियारों के आकस्मिक या अनाधिकृत उपयोग के खतरे को कम करने के कदम उठाना, आगे और टेस्ट करने पर अस्थायी प्रशासनिक रुकावट से बंधे रहना, इसमें बाधा है कि अगर नाजुक राष्ट्रीय हितों की मांग हो तो दूसरा विकल्प खुला रहेगा।

8. सच है कि शिखर सम्मेलन के दस्तावेजों में किसी भी विवादग्रस्त समस्या का समाधान पेश नहीं किया गया है। परन्तु इन दस्तावेजों ने बातचीत का आधार तैयार किया है जिससे जम्मू-कश्मीर सहित सभी भारत-पाक झगड़े हल किये जा सकते हैं। इनमें भारत-पाक अधिकारी स्तर की बातचीत के लिए नजरिया और दिशा-निर्देश प्रदान किया गया है। ये दस्तावेज नाकाफी और एक पड़ाव होने के बावजूद इनमें शांति और दोस्ती को दूसरे सभी मसलों से ऊपर रखा गया है। अगर इन पर उचित कार्य किया जाए तो भारतीय उपमहाद्वीप में एक समय के बाद हालात सामान्य करने की तरफ इनका योगदान साबित होगा। इस पर आगे की कार्यवाहियां मामले को आगे ले जा सकती है।

9. दोनों देशों ने इन दस्तावेजों को अपनी-अपनी आंखों से देखने और व्याख्या करने की कोशिश की है। पाकिस्तान मानता है कि भारतीय पक्ष ने पहली बार जम्मू-कश्मीर के मुद्दे पर विचार-विमर्श करने की इच्छा दर्शाई है और गंभीरता से माना है कि इस मसले को हल किये बगैर भारत-पाक दोस्ती और सहयोग संभव नहीं है। भारतीय पक्ष दावा करता है कि पाकिस्तान ने पहली दफा तीसरी पार्टी की दखलन्दाजी की जगह उस मुद्दे को दो पक्षीय स्वीकार किया है। प्रत्येक पक्ष यह जाहिर करने की कोशिश करता है कि उसने ज्यादा अंक हासिल किये हैं।

10. कोई किसी भी नजरिए से देखे, दस्तावेज सही दिशा में इशारा करते हैं जिसमें दोनों देशों को विवादाग्रस्त भूतकाल की बेड़ियों से बाहर आने का रास्ता मिल सकता है। भारत और पाकिस्तान दोनों ही एक अर्थपूर्ण बातचीत शुरू करने के लिए अपनी पुरानी स्थिति से बाहर आये हैं। भारत ने अपना पुराना मंत्र छोड़ दिया है कि जम्मू-कश्मीर हमारा अभिन्न अंग है, अत: इस पर बातचीत नहीं हो सकती। पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र निर्देशित जनमतसंग्रह पर जोर नहीं दिया है और जम्मू-कश्मीर समस्या के हल के लिए द्विपक्षीय तरीके को स्वीकार किया है। दोनों ने टकराव की जगह तनाव शैथिल्य को स्वीकार किया है। प्रत्येक देश की स्थिति में मूलभूत बदलाव है।

11. दस्तावेजों से यह संकेत पाना कि दोनों देशों के बीच चीजें आराम से आगे बढ़ेंगी, वास्तव में जमीनी वास्तविकता का घोर उल्लंघन होगा। दोनों देशों में अत्यधिक जटिल राजनीतिक वास्तविकताएं सभी आसान कल्पनाओं को रद्द करती हैं। दोनों देशों के लोगों और सरकारों के बीच जम्मू-कश्मीर के प्रति समान लगाव की भावना मौजूद है। दोनों देशों के बीच संदेह और अविश्वास की मोटी परत है। इनके बीच मूलभूत मुद्दे अभी तक हल किए बिना पड़े हैं। समस्या के हल की प्रक्रिया एक दो तरफा लम्बी प्रक्रिया है जिसमें एक तरफ सभी हल के पक्ष में मौजूद क्षणों को सही तरीके से उपयोग में लेना तथा दूसरी तरफ, पुराने जंग लगे विचारों और चीजों से छुटकारा पाना। दुश्मनी को दोस्ती में बदल देना रातों-रात होने वाला काम नहीं है। इसके लिए कई वास्तविक, संतुलित और नपे-तुले कदमों की जरूरत है। बस में सवार होना इस लम्बी प्रक्रिया में पहला कदम है, विश्वास निर्माण का पहला पैमाना है। वास्तविक कठिन कार्य अभी आगे आना है।

IV. शिखर सम्मेलन के पीछे कारण

12. दो प्रधानमंत्रियों–अटल बिहारी बाजपेयी और नवाज शरीफ–द्वारा बस कूटनीति अपनाने के पीछे क्या कारण है? दोस्ती और सहयोग के आपसी संबंधों को प्रोत्साहित करने की तात्कालिक आवश्यकता का उन्हें अहसास का कारण क्या है?

13. इस संबंध में विभिन्न तर्क-वितर्क दिये गये हैं।

(अ) कुछ आंशिक तर्क-वितर्क

14. एक सिद्धान्त जिसे अमेरिका सहित अन्धराष्ट्रवादी धड़े द्वारा प्रचारित किया जाता है (परमाणु के संभावित दुष्परिणामों के अहसास से युद्ध रुकने का सिद्धान्त–यानि, डीटरेन्स) कि परमाणु युद्ध की वजह से परमाणु हथियारों वाले देश आपसी विनाश के भय से युद्ध में जाने से डरते हैं, इसीलिए आपसी विवादों को गैर-सैनिक तरीकों से करने को मजबूर होते हैं। परन्तु यह बिन्दु तथ्यों पर खरा नहीं उतरता है। उदाहरण के लिए, ये परमाणु ताकतें–यानि भूतपूर्व यू एस एस आर और चीन–1960 और 1970 के दशकों में निरन्तर सीमा झड़पों में संलग्न रहे। परमाणु सम्पन्न चीन और अमेरिका ताइवान के द्वीप पर कई सालों तक आमने-सामने टकराव की स्थिति में रहे। परमाणु सम्पन्न राज्य, भूतपूर्व यू एस एस आर और अमेरिका कई बार–1962 में क्यूबा में, 1970 और 1980 के दशक में यूरोपियन मंच पर–परमाणु युद्ध के किनारे तक पहुंचे। स्पष्टतया, परमाणु युद्ध के दुष्परिणामों के भय से युद्ध रुकने का सिद्धान्त मानवजाति के लिए परमाणु हथियारों के

नुकसानदायक परिणामों को छुपाने का केवल मात्र षडयंत्र है। इसको युद्ध रोकने वाला पहलू बताना बिल्कुल गलत है।

15. दूसरा तर्क है कि अमेरिका के दबाव से भारत और पाकिस्तान समझौताकारी रास्ता अख्तियार करने के लिए तैयार हुए हैं। परन्तु अनुभव दर्शाता है कि अमेरिका का दबाव पुराने भारत-पाक टकराव को 52 वर्ष तक क्यों नहीं रोक पाया। तथा यह हाल ही में क्यूबा, इरान, लीबिया, इराक, इत्यादि में असफल क्यों हो गया।

(ब) वास्तविक कारण

16. भारत और पाकिस्तान में नई समझौताकारी मनोभावना के वास्तविक कारण निम्न हैं–

सबसे पहले, भारत और पाकिस्तान में अधिक से अधिक लोगों मे भारत-पाकिस्तान के बीच सामान्य संबंधों की सामाजिक आवश्यकता की जागरूकता बढ़ी है। लोगों के बीच यह अहसास बढ़ता जा रहा है कि अपने दोनों देशों के बीच निरन्तर दुश्मनी के 52 वर्षों में हमने बहुत नुकसान उठाया है। अब वे अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना चाहते हैं। और यह तभी हो सकता है जब भारत और पाकिस्तान के बीच संबंध तनाव-मुक्त और सामान्य हो। भारत और पाकिस्तान के लोगों के बीच यह समन्वयकारी मानसिकता मुख्य तौर पर वैश्वीकरण की प्रक्रिया–यानि, वैश्विक बाजार में विभिन्न राष्ट्रीय आर्थिकताओं के आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया, विभिन्न देशों के बीच कई तरह के द्विपक्षीय विवादों का हल राजनीतिक समझौतों से निकालने की तीव्र होती प्रक्रिया, और उभरती हुई आम वैश्विक संस्कृति–ने पैदा की है जो विभिन्न देशों में लोगों के रुख में अपने विरोधी देश के साथ राष्ट्रीय दुश्मनी के बजाए राष्ट्रीय समन्वय कायम करने का परिवर्तन ला रही है।

द्वितीय, वैश्वीकरण की प्रक्रिया भारत और पाकिस्तान के लिए अति आवश्यक बना रही है कि वे जम्मू-कश्मीर सहित अपने सभी विवादों का हल बातचीत और समझौतों के माध्यम से करें। क्योंकि यह प्रक्रिया प्रत्येक देश से दो तरफा रास्ता अपनाने की मांग करती है। वह दो तरफा रास्ता है कि एक तरफ अपनी राष्ट्रीय आर्थिकता को वैश्विक बाजार से जोड़े तो दूसरी तरफ पड़ोसी देशों के साथ एक क्षेत्रीय बाजार में संगठित हो। एक क्षेत्रीय बाजार बनाने की आर्थिक आवश्यकता जोर देती है कि भारत और पाकिस्तान खुद अपने बीच और पड़ोसी देशों के साथ सहयोग और दोस्ती के रास्ते का अनुसरण करें। अगर अब भी भारत और पाकिस्तान निरन्तर इस सामाजिक आवश्यकता को नकारते हैं तो वे अपनी औसत से नीचे स्तर की राजनीतिक और आर्थिक कारगुजारी के चलते गंभीर सामाजिक दुख-तकलीफों को निमंत्रण देंगे और अस्थिर भी हो सकते हैं। मुद्दा साफ है : या तो ये दोनों अपना सुन्दर भविष्य का निर्माण करे या एक-दूसरे से लड़कर बर्बाद हो जाएं। सार्क उन्हें रास्ता प्रदान कर रहा है।

तृतीय, दुनिया के लोगों और सरकारों का आम दबाव है कि भारत और पाकिस्तान आपसी दुश्मनी के उच्च स्तर को कम करें और जम्मू-कश्मीर समस्या को जेके के लोगों को शामिल करके द्विपक्षीय वार्तालाप से हल करके दक्षिण एशिया में शांति और स्थायित्व कायम करने में सहायता करें। वैश्विकरण का आम रुझान मांग करता है कि चाहे देशों के

बीच या किसी देश के अन्दर के विवादों का हल शांतिपूर्ण तरीके से किया जाए। आज सैनिक हल–चाहे राज्य नेतृत्व में या किसी ग्रुप द्वारा प्रायोजित हो–अपना अर्थ ज्यादातर खो चुके हैं। केवल शांतिपूर्ण हल ही उचित और दोनों पक्षों के लिए फायदेमंद हो सकते हैं। और आजकल किसी भी समस्या का एक तरफा हल दुनिया को स्वीकार नहीं होता। इसीलिए कोई भी देश (चाहे वह ताकतवर देश हो) आज नई दिल्ली के सिद्धान्त–कि जम्मू-कश्मीर हमारा अभिन्न अंग है–को समर्थन नहीं देता है। और इसी तरह कोई भी देश–इस्लामाबाद के मॉडल कि जम्मू-कश्मीर एक इस्लामिक मुद्दा है या कुछ ग्रुपों की आत्मनिर्णय की मांग या जम्मू-कश्मीर के लिए जनमतसंग्रह की मांग का–समर्थन नहीं करता है। एक स्वतंत्र जम्मू-कश्मीर के विचार का जम्मू-कश्मीर से जुड़े सभी देशों में पहले से ही विरोध इस नजरिए से है कि इससे यह क्षेत्र बड़ी शक्तियों का चारागाह बन जायेगा।

चौथा, नई दिल्ली और इस्लामाबाद दोनों के सैनिक विशेषज्ञ और उच्च नेताओं के बीच प्रभावकारी राय उभरी है कि दोनों में से कोई देश युद्ध नहीं जीत सकता और जम्मू-कश्मीर समस्या हो या अन्य कोई मुद्दा हो उसे अपनी शर्तों पर हल नहीं करवा सकता। भारत और पाकिस्तान दोनों के सैनिक मुखियाओं ने हालिया सार्वजनिक तौर पर बयान दिये हैं कि भारत और पाकिस्तान के बीच किसी युद्ध की बहुत ही कम संभावना है। यह अवधारणा आवश्यक तौर पर नये विवादित मसलों का हल गैर-सैनिक तरीकों से किये जाने की माँग करती है। यहां तक कि अपने-अपने देश के उदारवादी रूढिवादी प्रधानमंत्री नेताओं की भी यह राय बनी है।

पंचम, हमारे उप-महाद्वीप के 52 वर्ष के इतिहास ने भारत और पाकिस्तान के लोगों और शासकों को सबक सिखाया है कि टकराव की राजनीति ने हमारे लिए बहुत नुकसानदायक परिणाम पैदा किये हैं। यह रिकार्ड इतना पीड़ादायक है कि इसे किसी भी पैमाने से ठीक नहीं ठहराया जा सकता। इस व्यवस्था के संचालकों तक ने अब इस सच्चाई को माना है। इसने भारत पाक के लोगों को केवल कष्ट, दुख-तकलीफ और मुफलिसी ही दी है और खास करके कश्मीरी समुदाय इसका मुख्य शिकार हुआ है। जब तक भारत और पाकिस्तान के बीच चौतरफा गतिरोध को तोड़ नहीं दिया जाता है तब तक ना तो जम्मू-कश्मीर समस्या हल की जा सकती है और ना ही दोनों देशों की सम्पन्नता और विकास का रास्ता खोला जा सकता है।

17. उपरोक्त सभी कारण नई विश्व वास्तविकता की सामाजिक आवश्यकता और मजबूरियां हैं।

V. क्या बस कूटनीति कार्य करेगी

18. बस कूटनीति कार्य कर सकती है, शायद करेगी, बशर्ते कि दोनों देश शिखर सम्मेलन में आपसी सहमति से लिए गये निर्णयों को लागू करने के लिए सकारात्मक कदम उठाएं। वर्तमान विश्व में बहुत से उदाहरण हैं जहां दूरदृष्टि वाले नेताओं ने साहसी पहलकदमी लेकर द्विपक्षीय झगड़ों में गतिरोध को तोड़ दिया। मिश्र के राष्ट्रपति अनवर सादात ने 1977 में इजराइल के साथ संबंध सामान्य बनाने में पहलकदमी ली, जिसका परिणाम न केवल सिनाई क्षेत्र में इजराइल के पीछे हटने के रूप में निकला बल्कि अरबों

और इजरायलियों के बीच भी शांति प्रक्रिया शुरू हो गई जो आगे जाकर फिलीस्तीन-इजरायल शांति समझौते के स्तर तक पहुंची। 1980 के दशक में ब्राजील और अर्जेन्टिना ने अपने विवादित मुद्दों को हल किया और सफलता से अपने द्विपक्षीय संबंधों को सामान्य बना लिया। सन् 1987 में रीगन-गोर्बाचोव ने संयुक्त घोषणा की कि परमाणु युद्ध जीता नहीं जा सकता और इसे कभी भी नहीं लड़ा जाए, इसके बाद दोनों देशों के परमाणु भंडार को कम करने की ठोस कार्यवाही के साथ ही शीत-युद्ध की समाप्ति का नतीजा सामने आया। 1960 के दशक में इंडोनेशिया और मलेशिया के बीच कई द्वीपों पर विवाद था जो एशियान (ASEAN) बनने के बाद हल हो गया। फ्रांस और जर्मनी के बीच अलसासे लोराइने पर विवाद का हल यूरोपीय समुदाय के विकास के बाद हुआ।

VI. कुछ कल्पनाशील पहलकदमियों की आवश्यकता

19. बर्फ पिघलने के बाद, अब यह अत्यधिक आवश्यक है कि दो प्रधानमंत्री भारत-पाक के बीच सामान्य प्रक्रिया को आगे ले जाने के लिए कुछ ठोस तरीके अख्तियार करें।

20. प्रारम्भ में ही, यह आवश्यक है कि आगे बढ़ने से पहले प्रत्येक पक्ष अपने दिमाग में यह बैठा ले कि आपसी स्वीकृति वाले समझौते पर पहुंचने के लिए लेने और देने के ऐतिहासिक नियम की पालना करना जरूरी है।

21. दोनों पक्षों के सामने अगला सवाल है 'कहां से शुरू करें'। अधिकारी स्तर की वार्ताएं केवल सारहीन कसरत होंगी। कहीं से एक ठोस रास्ता निकालने की जरूरत है। अच्छा हो, अगर बस कूटनीति के बाद यह जम्मू-कश्मीर के संबंध के साथ जोड़ कर आगे बढ़े। यहां दो मुद्दों–सियाचीन और वुलर बैराज–को हल करने का बिल्कुल उपयुक्त वक्त है। इनके ऊपर एक दशक से अधिक समय से दोनों देश खुलकर विचार-विमर्श कर चुके हैं। कुछ समय पहले इन पर समझौता भी हो चुका था। परन्तु, बाद में सियाचीन समझौते पर भारत पीछे हट गया और वुलर बैराज पर पाकिस्तान पीछे हट गया।

22. पहले से विचारित समझौतों से भी आगे इन मुद्दों पर एक नये कल्पनाशील तरीके से हल निकाले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, सियाचीन ग्लेशियर में अपनी-अपनी सेना की टुकड़ियों को हटाने के 1989 के समझौते की बजाए सियाचीन ग्लेशियर को एक वैज्ञानिक अन्वेषण केन्द्र में तब्दील कर दिया जाए जिसे भारत-पाकिस्तान द्वारा संयुक्त रूप से चलाया जाए। दूसरे मामले में तकनीकी जटिलताएं शामिल हैं, जिसे राजनीतिक समझौते के माध्यम से हल किया जाए। अगले महिने, दोनों देशों के अधिकारी इस्लामाबाद में तीन मुद्दों–सियाचीन, वुलर बैराज और सरक्रीक–पर मिलने जा रहे हैं। दोनों सरकारें पहले से स्वीकृत तीनों समझौतों को अन्तिम परिणाम तक पहुंचाने के लिए प्रत्येक संभव कार्यवाही करें। बस यात्रा के बाद दक्षिणी एशिया की शांति और सद्भाव की तरफ यह दूसरा कदम बन जायेगा।

23. समझौतों के लिए कुछ दूसरे क्षेत्र हो सकते हैं–जम्मू-कश्मीर सीमा पर सेनाओं को हटाना, जिसमें दोनों तरफ की सेनाओं को वास्तविक नियंत्रण रेखा से एक किलोमीटर पीछे हटाना; दोनों देशों की सेनाओं द्वारा खाली हुई जगह की संयुक्त निगरानी रखना; खाली किये गए क्षेत्र के अन्दर चुनी हुई जगहों पर संयुक्त भारत-पाक मैत्री पार्क विकसित

करना; जम्मू-कश्मीर विशिष्ट सीमा क्षेत्रों–जैसे, जम्मू में सुचेतगढ़, कश्मीर में उड़ी, इत्यादि–में और भारत-पाक सीमा के महत्वपूर्ण स्थानों–जैसे वाघा (पंजाब), मुनावाव (राजस्थान), इत्यादि–में भारत-पाक मैत्री व्यापार केन्द्र खोलना; खोखराबाद (सिंध)-मुनावाव (राजस्थान) रेल के रास्ते को तथा मुज्जफराबाद बस मार्ग को खोलना; संस्कृति, खेल-कूद, पर्यटन, शिक्षा, इत्यादि क्षेत्रों में लोगों के बीच आदान-प्रदान को बढ़ावा देना, इत्यादि।

24. हालांकि, भारत-पाकिस्तान के बीच वार्तालाप का वातावरण बिल्कुल नया है। नये समझौताकारी कदमों (नई वास्तविकता द्वारा उत्पन्न) के लिए दोनों देशों में राजनीतिक आधार कमजोर है। दोनों देशों में एक दूसरे के बारे में दुश्मन देश की अवधारणा अभी चल रही है। जब तक यह अवधारणा रहेगी तब तक सामान्य संबंधों की प्रक्रिया किसी भी क्षण उलट सकती है। दोनों देशों में नया 'दोस्ताना दृष्टिकोण' राष्ट्रीय सहमति नहीं बना है। अब ऐसा सहमति का वातावरण निर्माण करना दोनों सरकारों का प्राथमिक कार्य है।

VII. जम्मू–कश्मीर पर

25. जम्मू-कश्मीर ('आजाद कश्मीर' सहित) के संबंध में स्थिति है कि यह भारत और पाकिस्तान दोनों के लिए जीवन और मौत का सवाल बना हुआ है। भारत के लिए यह इसके 'धर्म निरपेक्षवाद' की वैधता को सिद्ध करने वाला मुद्दा है और पाकिस्तान के दो राष्ट्र के सिद्धान्त की तर्कसंगतता को नकारता है। पाकिस्तान के लिए यह उसकी शाह रग (श्वास नली) है और 1947 के विभाजन का बचा हुआ एजेन्डा है तथा इसके दो राष्ट्र के सिद्धान्त की सच्चाई को प्रदर्शित करने का साधन है। कोई भारतीय या पाकिस्तानी सरकार इस सवाल पर एक तरफा छूट देकर अपना अस्तित्व नहीं बचा सकती।

26. इस प्रकार, जम्मू-कश्मीर भारत-पाक विवाद का केन्द्रीय मुद्दा है। यह दक्षिण एशिया में तनाव का मुख्य पहलू है। यह न केवल दक्षिण एशिया बल्कि विश्व में भी शांति और सुरक्षा के लिए चुनौती बना हुआ है। दक्षिण एशिया में स्थायी शांति केवल इसके हल के आधार पर स्थापित की जा सकती है। समस्या के प्रति आंख मूंद लेने से समस्या समाप्त नहीं हो सकती। कुछ समय गुजरने से यह पुरानी और अप्रासंगिक नहीं बनेगी।

27. जहां तक भारत और पाकिस्तान दोनों का सवाल है इनमें से प्रत्येक इस समस्या को अपनी-अपनी शर्तों पर हल करना चाहता है। इनमें से प्रत्येक देना कुछ नहीं चाहता परन्तु दूसरे को शर्तें सौंपना चाहता है। पाकिस्तान का आत्मनिर्णय या जनमतसंग्रह का जाना-पहचाना प्रस्ताव भारत को श्राप लगता है। इसी तरह भारत की तरफ से प्राय: प्रस्तुत किए जाना वाला यथास्थिति का प्रस्ताव पाकिस्तान के लिए बेइज्जती या तिरस्कार का भाव बनता है। इन पुराने पड़ चुके प्रस्तावों के आधार पर सुलह या समझौता संभव नहीं है।

28. इसी तरह, स्वतंत्र जम्मू-कश्मीर या 10 से 15 वर्ष के लिए संयुक्त राष्ट्र ट्रस्टीशिप के नीचे रखने का प्रस्ताव भारत को पूरी तरह अस्वीकृत है क्योंकि यह इसे अपनी राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती मानता है। ना ही यह प्रस्ताव जम्मू और लद्दाख क्षेत्र के ज्यादातर लोगों को स्वीकार होगा। ऐसा प्रस्ताव रूस, चीन और ईरान द्वारा भी रद्द किया जायेगा

क्योंकि ये सभी डरते हैं कि इससे यह अमेरिका का अड्डा बन सकता। पाकिस्तान ने इस प्रस्ताव के बारे में पिछले 52 वर्षों के दौरान कभी कुछ नहीं कहा है। फिर भी, यह प्राय: जम्मू-कश्मीर के लोगों के लिए तीसरे विकल्प को रद्द करता रहा है, जबकि उनके आत्मनिर्णय और जनमतसंग्रह के अधिकार को समर्थन देता रहा है।

29. साम्प्रदायिक आधार पर जम्मू-कश्मीर के विभाजन के अन्य काल्पनिक प्रस्ताव को ना तो भारत और ना ही विश्व समुदाय को स्वीकृत हो सकता है क्योंकि इस तरह के विभाजन के दुष्परिणाम भारत 1947 में और वर्तमान में बोस्निया, कोसोवो, इत्यादि में विश्व देख चुका है।

30. हकीकत मांग करती है कि अगर भारत और पाकिस्तान दोनों अपने शिखर सम्मेलन के निर्णयों के प्रति गंभीर हैं तो उन्हें जम्मू-कश्मीर पर अपने-अपने पुराने दृष्टिकोण में कुछ तब्दीली लाने के लिए तैयार होना पड़ेगा। दोनों देशों को कुछ न कुछ छोड़ना पड़ेगा और एक कदम पीछे लेना होगा। और ऐसा ही जम्मू-कश्मीर के लोगों को करना होगा। भारत जम्मू-कश्मीर में अपनी वर्तमान स्थिति से कुछ कम पर आने को तैयार हो। इसी तरीके से पाकिस्तान जनमतसंग्रह या आत्मनिर्णय की जगह कुछ और बात पर सहमत होने की तैयारी करे। दोनों देश जम्मू-कश्मीर समस्या के हल की प्रक्रिया में जम्मू-कश्मीर के लोगों को शामिल करने के इच्छुक हो तथा दोनों देशों के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों के साथ जेके के लोगों की आकांक्षाओं और हितों का समायोजन करें। दोनों देशों की अपनी-अपनी जम्मू-कश्मीर नीति के पुनरमूल्यांकन की जरूरत है। केवल हकीकत के मुताबिक मानसिकता को ढालने से ही एक न्यायिक, तर्कसंगत और व्यावहारिक समाधान की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है। ऐसी मानसिकता के साथ एक वास्तविक हल तभी उभर सकता है जब हम बीते समय से सीखते हुए, वर्तमान से प्रारम्भ करके और भविष्य की तरफ कदम बढ़ाएं। हम हमारी मानसिकता में यह बैठायें कि मनुष्य का मूलभूत स्वभाव टकरावावादी नहीं बल्कि सहकारितावादी है।

VIII. न्यायिक, तर्कसंगत और व्यवहारिक हल के लिए

31. जम्मू-कश्मीर समस्या के एक न्यायिक, तर्कसंगत और व्यवहारिक हल निकालने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों की मांग है–

(क) इस वैश्विक समझदारी से शुरू करें कि भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों का भविष्य साझा है।

(ख) जम्मू-कश्मीर को भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों के बीच त्रिपक्षीय सवाल समझा जाए।

(ग) भारत और पाकिस्तान दोनों के अपने-अपने राष्ट्रीय सम्मान की पूर्णरूपेण सुरक्षा और उनके राष्ट्रीय हितों में समन्वय कायम करना।

(घ) जम्मू-कश्मीर के लोगों, खास करके कश्मीरियों (शरणार्थियों सहित) के हितों का भारत और पाकिस्तान के लोगों के हितों में सामंजस्य बैठाना।

(ड़) जम्मू-कश्मीर में नस्ली-क्षेत्रीय पहचानों के हितों और इच्छाओं को उचित रूप से स्वीकृत करना।

(च) भारतीय, पाकिस्तानी और जम्मू-कश्मीर के लोगों को नजदीक लाने की कोशिश करना।

(छ) जम्मू-कश्मीर समस्या हल करते वक्त दक्षिण एशिया में शांति और स्थायित्व की स्थिति तथा सार्क की एकता को मजबूत करने के दृष्टिकोण को अपनाना।

32. भारत और पाकिस्तान दोनों के अपने-अपने राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए और की जा सकती है तथा उनके राष्ट्रीय हितों में सुमेल कायम करने के लिए जम्मू-कश्मीर राज्य पर भारत-पाक (या सार्क) सहराज्य (जो केवल जम्मू-कश्मीर की रक्षा, विदेश मामले और मुद्रा को सम्भालेगा) स्थापित किया जाए, जबकि जम्मू-कश्मीर के लोगों के हितों का भारत-पाकिस्तान के लोगों के हितों के साथ समन्वय जेके राज्य को अर्द्ध-स्वतंत्रता प्रदान करके कायम किया जा सकता है और किया जाना चाहिए, जबकि जेके राज्य में प्रत्येक क्षेत्रीय नस्ली पहचानों को अधिकतम संभव स्वायत्तता प्रदान की जाए।

33. जम्मू-कश्मीर की क्षेत्रीय-नस्ली पहचानों के हितों और आकांक्षाओं की सुरक्षा जेके राज्य के लिए एक संघीय संविधान अख्तियार करके पूरा कर सकता है और करना, जिसके अनुसार एक तरफ प्रत्येक नस्ली क्षेत्र को अधिकतम संभव स्वायत्तता देने के साथ-साथ जिला, ब्लाक और ग्राम समितियों को अधिक अधिकार देकर सशक्त बनाने का प्रावधान रखना तो दूसरी तरफ एक एकीकृत जम्मू-कश्मीर राज्य कायम करना जिसमें क्षेत्रीय-नस्ली परिषदों द्वारा चुनकर एक साझा राज्य का मुखिया बनाना, और एक उच्च न्यायालय, एक साझा चुनाव आयोग, एक साझा जन सेवा आयोग, एक साझा पर्यावरणीय आयोग, एक साझा मानव-संसाधन विकास आयोग, इन सभी की नियुक्ति नस्ली-क्षेत्रीय परिषदों द्वारा की जाए जिसमें प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि हो।

34. भारत-पाक सहराज्य एक ऐसे सामाजिक मॉडल का प्रतिनिधित्व करेगा कि जो भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों के साझे भविष्य को सुनिश्चित करे; जम्मू-कश्मीर को त्रिपक्षीय सवाल माने; भारत और पाकिस्तान दोनों के राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करे और उनके राष्ट्रीय हितों में मेल बैठाये; जम्मू-कश्मीर के लोगों के हितों और भारत और पाकिस्तान के लोगों के हितों में समन्वय बैठाये; जम्मू-कश्मीर में नस्ली-क्षेत्रीय पहचानों के हितों और इच्छाओं को वाजिब स्वीकृति प्रदान करे; भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों को नजदीक लाने का प्रयास करे; और सार्क की एकता मजबूत करे तथा दक्षिण एशिया में शांति और स्थायित्व कायम करे। यह एक वैश्विक दिशा आधारित विकास मॉडल का एक नया प्रयोग होगा जो प्रदर्शित करेगा कि विभिन्न राष्ट्रों के भिन्न राष्ट्रीय हितों में मेल कैसे बैठाया जाए तथा कई तरह के नस्लीय समूहों के अलग-अलग आकांक्षाओं और हितों में सामंजस्य कैसे बैठाया जाए।

IX. जम्मू–कश्मीर के लोगों का ऐतिहासिक दायित्व

35. जम्मू-कश्मीर के संबंध में त्रिपक्षीय विकल्प (या भारत-पाक सहराज्य) की सुसंगत शुरूआत तभी होगी जब इसकी पहलकदमी दोनों प्रधानमंत्रियों द्वारा संयुक्त रूप से की जाए। परन्तु यह व्यवहारिक केवल तभी बन सकता है, अगर वे इसके पक्ष में राष्ट्रीय आम सहमति उभारने में कामयाब हों और अपने देश की संसद से स्वीकृति लें तथा इसके

पक्ष में लोगों को गोलबन्द करें। हालिया क्षण यह साध्य नहीं बन सकता परन्तु इसमें सफलता के वे सभी तत्व हैं अगर इस मामले में समूचित कदम उठाये जाएं।

36. जम्मू-कश्मीर के लोगों के कंधों पर एक बड़ी जिम्मेदारी इस प्रक्रिया के शुरू करने और आगे ले जाने की आयत है जो इस वक्त भारत और पाकिस्तान के लोगों को नजदीक लाने तथा एक न्यायिक, तर्कसंगत और व्यवहारिक आधार पर जम्मू-कश्मीर समस्या को हल करने के लिए जरूरी है। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए निम्नलिखित कार्य पूरे करने की जरूरत है।

इस प्रक्रिया को शुरू करने का पहला कदम जम्मू-कश्मीर समस्या की प्रकृति और इसके विभिन्न आयामों पर भारत की तरफ से जम्मू-कश्मीर के विभिन्न नस्ली-क्षेत्रीय समूहों के प्रतिनिधियों के बीच अर्थपूर्ण शृंखलाबद्ध बातचीत करते हुए एक आम सहमति हासिल करना।

इस प्रक्रिया का दूसरा कदम एक संयुक्त मोर्चा बनाना होगा, जिसमें एक तरफ भारत की तरफ से जेके के लोगों को सहमत बिन्दुओं पर एकत्रित और संगठित करना तथा दूसरी तरफ पाकिस्तान की तरफ के आजाद कश्मीर के लोगों से विचार-विमर्श शुरू करके और वहां के नस्ली-क्षेत्रीय समूहों के प्रतिनिधियों के साथ किसी सहमति पर पहुंचने के लिए विभिन्न प्रतिनिधि समूह भेजना और बुलाना।

इस प्रक्रिया का तीसरा कदम होगा, जम्मू-कश्मीर के दोनों भागों के सभी नस्ली-क्षेत्रीय समूहों के प्रतिनिधियों का संयुक्त सम्मेलन आयोजित करना, ताकि जम्मू-कश्मीर समस्या के संबंध में आम सहमति आधारित हल का कार्यक्रम (एजेन्डा) बनाना और उस कार्यक्रम को लागू करने के लिए संयुक्त मोर्चा कायम करना। यह एजेन्डा और संयुक्त मोर्चा एक तरफ एकीकृत जम्मू-कश्मीर राज्य के अन्दर के सभी लोगों और राज्य के प्रत्येक नस्ली-क्षेत्रीय समूह की आकांक्षाओं और हितों का प्रतिनिधित्व करेगा और दूसरी तरफ भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के राष्ट्रीय सम्मान, राष्ट्रीय हितों और वहां की जनता के आवेगों को सहारा देगा। अगर सरकारी प्रतिबन्धों की वजह से जम्मू-कश्मीर के दोनों भागों के प्रतिनिधियों का संयुक्त सम्मेलन बुलाना संभव नहीं हो तो दोनों तरफ अपने-अपने सम्मेलन करें और विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से दोनों पक्ष आम सहमति पर पहुंचने की कोशिश करें।

इस दिशा में चौथा कदम भारत, पाकिस्तान और विश्व में सभी न्यायिक और ठीक सोचने वाले लोगों का समर्थन हासिल करने के लिए उन्हें संगठित करना।

पांचवां कदम होगा जम्मू-कश्मीर के लोगों का मत भारत और पाकिस्तान की सरकारों के सामने रखना और उनसे इसे स्वीकार करने की अपील करना।

37. जम्मू-कश्मीर के लोग यह कार्य सम्पन्न करके दक्षिण एशिया के इतिहास में एक ऐतिहासिक भूमिका अदा करेंगे।

X. विश्व में कुछ विवाद प्रबन्धक मॉडल

38. देशों के बीच विवाद हल करने के कुछ अनुभव विश्व भी प्रदान करता है। और वर्तमान विश्व में कई विवाद-प्रबन्धक मॉडल विद्यमान हैं। जिनमें से कुछ निम्न हैं : (1)

सन् 1921 के समझौते में फिनलैंड एवं स्वीडन के बीच आलैण्ड द्वीप समूहों पर फिनलैंड का उस पर प्रभुसत्ता का अधिकार हासिल रहा तथा स्वीडिश आबादी को अपने मामलों का प्रबन्ध करने की स्वायत्तता हासिल रही। (2) सन् 1946, 1969 के समझौते से दक्षिण टाइरोल मॉडल आस्ट्रिया व इटली के बीच स्थापित हुआ जिसके जरिए इटली को दक्षिण टाइरोल पर प्रभुसत्ता का अधिकार रहा तथा जर्मन नस्ल के लोगों को अपने मामलों का प्रबन्ध करने का अधिकार रहा। (3) सन् 1954 के समझौते से यूगोस्लाविया व इटली के बीच ट्रायस्ट मॉडल स्थापित हुआ जिसके जरिए ट्रायस्ट के इटली वाले भाग के लोग यूगोस्लाविया वाले ट्रायस्ट के भाग में स्वतंत्रतापूर्वक व्यापार व पर्यटन कर सकते हैं। (4) सन् 1998 के समझौते से इंग्लैंड व आयरलैंड के बीच स्थापित उत्तरी आयरलैंड मॉडल— जिसके जरिए उत्तरी आयरलैंड के लोगों को निर्धारित समयावधि के बाद यह तय करने का अधिकार होगा कि वे आयरिश रिपब्लिक में शामिल होना चाहेंगे या यथास्थिति रखना चाहेंगे।

39. पहले तीन पुराने मॉडलों के तहत जिस राज्य का निश्चित क्षेत्र पर अधिकार है वह कानूनी तौर पर सम्प्रभु बना रहा जबकि जिस पड़ोसी राज्य के साथ विवाद है उसके साथ द्विपक्षीय समझौते के तहत संबंधित क्षेत्र के नस्ली समुदाय को काफी हद तक स्वायत्तता हासिल हुई। इस नमूने का अनुसरण करते हुए भारत और पाकिस्तान दोनों संयुक्त राष्ट्र की गारंटी के तहत समझौता कर सकते हैं जिसमें अपने-अपने नियंत्रण वाले जम्मू-कश्मीर पर उनकी अपनी-अपनी सम्प्रभुसत्ता कायम रहे और दोनों तरफ के प्रत्येक भाग के लोगों की पूर्ण स्वायत्तता (रक्षा और विदेश मामले छोड़कर) सुनिश्चित कर दी जाए तथा वास्तविक नियंत्रण रेखा को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा की मान्यता दे दी जाए।

40. हालांकि, इस देश आधारित राष्ट्रीय सम्प्रभुसत्ता की पुरानी पद्धति की तुलना में नया भारत-पाक सहराज्य मॉडल साझी सम्प्रभुसत्ता के साथ जम्मू-कश्मीर की अच्छी सेवा करता है तथा सम्पूर्ण जम्मू-कश्मीर को एक एकल जनवादी इकाई में रखते हुए भारत और पाकिस्तान को नजदीक लाता है और दूसरी तरफ दक्षिण एशिया के लोगों और उभर रही विश्व व्यवस्था की सेवा करता है। 28-02-1999

***

भारतीय बजट 1999–2000 राजकोषीय घाटे की ओर

I. बजट क्या है?

1. बजट एक दो पक्षीय प्रक्रिया है जो खासतौर पर वित्त से और आम तौर पर आर्थिकता से संबंध रखता है। एक तरफ यह विभिन्न स्रोतों से आय तथा दूसरी तरफ विभिन्न मदों में व्यय के वित्तीय वक्तव्य को अभिव्यक्त करता है, यह एक निश्चित समय के लिए किसी व्यक्ति, समुदाय या सरकार के धन दौलत (पैसा या सामान) के उत्पादन, वितरण एवं उपभोग के बीच प्रबन्ध के बारे में आर्थिक नीति का द्योतक है।

2. यह कहा जाता है कि इसका उद्भव फ्रेंच भाषा के शब्द 'बाउजट' से हुआ है, जिसका अर्थ है घर के खर्च के लिए उपलब्ध मुद्रा से भरा एक छोटा चमड़े का थैला या सरकार के वार्षिक प्रस्तावित व्यय से संबंधित दस्तावेजों से भरा थैला जिसे संसद या विधान सभा में ले जाना है।

3. पुराने समय में बजट का (चाहे व्यक्तिगत हो या सरकार का) हर जगह और हर समय यह अन्तरनिहित सिद्धान्त रहा है कि कपड़े के नाप को देखते हुए ही कोट बनाने के लिए कटिंग की जानी चाहिए यानि किसी को अपनी जेब से अधिक खर्च नहीं करना चाहिए तथा वास्तविक तौर पर निकट भविष्य में क्या आशा की जा सकती है और कितना प्राप्त किया जा सकता है, उसी के आधार पर खर्च किया जाना चाहिए।

4. 'कपड़े और कोट' में संतुलन बनाए रखने की पुरानी कहावत ऐसी ही है जैसे 'मांग और पूर्ति' में मेल कायम करके प्रत्येक आर्थिक व वित्तीय प्रक्रिया को स्वस्थ रखा जाता है तथा 'आकर्षण और विकर्षण' को संतुलित बनाए रखने का नियम जिससे प्रत्येक प्राकृतिक घटनाक्रम में साम्यावस्था कायम रहती है। वस्तुगत हालात की तीन भिन्न श्रेणियों से संबंधित इन तीन बुनियादी सिद्धान्तों में से किसी एक का उल्लंघन होने पर, नतीजतन हमेशा संबंधित वस्तुगत हालात में विकृति आना लाजिमी है जो नकारात्मक प्रभाव डालती है।

5. भारतीय बजट द्वारा 'कपड़े और कोट' की सामान्य मूल समझ के लगातार उल्लंघन से भारतीय राज्य को गंभीर वित्तीय और आर्थिक संकट से ग्रस्त होना पड़ा है। पिछले 52 वर्षों में प्रत्येक शासकीय दल (चाहे वह केन्द्र में हो या राज्य में) ने इस आवश्यक सिद्धान्त के उल्लंघन के जरिए इस संकट को पैदा करने में कम या ज्यादा योगदान दिया है।

II. आज भारतीय वित्तीय-आर्थिक प्रक्रिया के सामने मौजूद चुनौतियां का मूल्यांकन 1999–2000 का बजट किस प्रकार करता है?

6. 24 फरवरी 1999 के संसद के समक्ष प्रस्तुत बजट पूर्व (1998-99) का आर्थिक सर्वे इस पर बेहतर रोशनी डालता है। भारतीय वित्तीय-आर्थिक वास्तविकताओं का सुस्पष्ट आंकलन किया जाए तो एक निराशाजनक तस्वीर उभरती है।

7. यह आकलन स्वीकार करता है कि 1998-99 बजट के अधिकांश उद्देश्य प्राप्त नहीं किय जा सके, जिनमें शामिल है–भारतीय आर्थिकता के स्वास्थ्य को तथा औद्योगिक विकास की गति को पुनरस्थापित करना, वृहत आर्थिकता (मैक्रो इकोनोमी) की स्थिरता को सुनिश्चित करना, विशेष तौर पर ढांचागत निवेश में बढ़ोतरी करना तथा विश्व आर्थिकता के साथ गति एवं एकीकरण के चरित्र का आकलन करने, वित्तीय सुदृढ़ीकरण एवं निम्न प्राथमिकताओं वाले व्यय को समाप्त करने के तात्कालिक मुद्दों तथा गैर लक्षित अनुदान के साथ-साथ सरकारी खर्च को कम करने की स्थिति उल्टी और खराब हुई है।

8. इस आकलन का कहना है कि 1997-98 के वर्ष की बनिस्पत 1998-99 में देश की वित्तीय स्थिति बदत्तर हुई है। केन्द्रीय सरकार की वित्तीय स्थिति लगातार दबाव में है। वित्तीय घाटा (यानि बजट घाटा+उधारी) हद से पार जा रहा है। रुपये पैसे के मोर्चे पर साल दर साल रुपये पैसे में वृद्धि (एम-3) 15 जनवरी 1995 को 19.8% रही है जो 1997-98 में पिछले साल के उसी काल में 2.9% से अधिक है। 1998 में उसी समय के दौरान सुरक्षित धन (रुपये, पैसा) में विस्तार दर 10.7% रही है जो पिछले साल के उसी काल से 4.8% से अधिक है। भारत सरकार को रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा दिये गये उधार में शुद्ध वृद्धि तेजी से हुई है। जो 1997-98 में 2.5% वृद्धि थी वह बढ़कर 1998-99 में 13.4% हो गई। जबकि धन वृद्धि के पहलू ने मुद्रा स्फीति को आगे बढ़ाया है, तो आर्थिकता में अधिक सार्मथ्य की मौजूदगी के साथ-साथ बाहर की प्रतियोगिता के दबाव ने मुद्रास्फीति को और अधिक ऊंचाई तक पहुंचाया है।

9. वित्तीय मोर्चे पर भी हालात अच्छे नहीं थे। अप्रेल-दिसम्बर 1998 में खर्च में 26% वृद्धि हुई है जबकि उसी काल में राजस्व आय में 4.7% वृद्धि हुई है जिससे वित्तीय घाटा बहुत बढ़ गया है। प्राथमिक आकलन दर्शाता है कि अप्रेल-दिसम्बर 1998 में वित्तीय घाटा 1997 में इसी काल के वित्तीय घाटे से 77.1 प्रतिशत अधिक है और 1998-99 के लिए बजट के वित्तीय घाटे का आकलन करीब 80.7% है। अपरोक्ष टैक्स वसूली में निरन्तर गिरावट के कारण वर्ष के अन्त तक बजट राशि के दायरे में वित्तीय घाटे को रोकना संभव नहीं रहा।

10. आर्थिक पहलू पर नजर डाली जाए तो 1998-99 के बजट पूर्व आर्थिक सर्वे में यह पाया है कि किसी भी गणना से पिछले दो वर्षों मे आर्थिकता की उपलब्धि कमजोर रही है। यह पिछले कई महिनों से मंदी की जकड़ में है। अप्रेल-दिसम्बर 1998 औद्योगिक उत्पादन इसी समय के पिछले साल के 6.7 प्रतिशत उत्पादन से गिरकर 3.5 प्रतिशत रह गया। ढांचागत सैक्टर में भी उपलब्धि नहीं के बराबर है। निर्यात में गिरावट हुई है। सीधा वित्तीय निवेश (एफ डी आई) कम हुआ है। अधिकांश मात्रा में विदेशी संस्थागत निवेश (एफ डी आई) वापिस खींच लिया गया है। पिछले वर्ष (1997-98) के मुकाबले विदेशी परोक्ष निवेश 38 प्रतिशत घटा है तथा एफ आई आई 700 मिलियन डालर बाहर चला गया है।

सकारात्मक पक्ष में उपरोक्त सर्वे चार क्षेत्रों का उल्लेख करता है (क) घरेलू सकल उत्पाद में 1997-98 की 5 प्रतिशत वृद्धि दर की बनिस्पत 5.8 प्रतिशत की वृद्धि दर की आशा करता है, (ख) पिछले वर्ष के 1.6 प्रतिशत के बनिस्पत 1998-99 के घरेलू सकल उत्पाद का चालू हिसाब घाटा गिरकर 1.4 प्रतिशत होगा, (ग) पूंजीगत माल के क्षेत्र में

पिछले वर्ष की उसी समय की 6.7 प्रतिशत वृद्धि दर की बनिस्पत अप्रेल-दिसम्बर 1998 के लिए वृद्धि दर 9.8 प्रतिशत रहेगी, तथा (घ) थोक कीमतों में बढ़ोतरी का रुझान मामूली रहेगा।

फिर भी, यह सब सकारात्मक रुझान अल्पकालीन प्रकृति के हैं जिनके पीछे अनियमित कारण हैं ना कि कोई रणनीतिक कारण!

गंभीर वित्तीय-आर्थिक संकट की बड़ी अभिव्यक्ति सरकार के विशाल सार्वजनिक ऋण में होती है जो करीब-करीब अवहनीय हो चुका है। 1991-92 में जब सुधार की पहल की गई थी तब उस साल सार्वजनिक ऋण केवल 8000 करोड़ रुपये था। 1998-99 में इसके 9000 करोड़ रुपये तक पहुंचने की आशा है। अब यह इस स्तर पर पहुंच रहा है (यानि आन्तरिक ऋण 7 लाख करोड़ रुपये से ऊपर तथा बाहरी ऋण करीब 1.5 लाख रुपये है) जहां देश की तमाम उधार की राशि ब्याज चुकाने में खर्च होगी। इसके मायने है कि भारत वास्तव में ऋण-जाल के निकट पहुंच चुका है। यह सब सरकार की आत्मघाती नीतियों का नतीजा है जो अपने खर्चों की पूर्ति या तो उधारी से करता है या और अधिक नोट छाप कर।

III. भारत में आर्थिक सर्वे के अनुसार वर्तमान वित्तीय-आर्थिक कुप्रबन्ध का मुख्य कारण क्या है?

पूर्व बजट सर्वे (1998-99) वर्तमान गंभीर परिस्थिति के पीछे आय से अधिक सरकार के अपव्ययी खर्चे को चिह्नित करता है। सर्वे के अनुसार इस संकट का अन्य पूरक कारण पूर्वी एशिया की आर्थिकताओं में चल रही वित्तीय उथल-पुथल है।

IV. भारत की वर्तमान वित्तीय-आर्थिक मुश्किलों से निजात पाने के लिए आर्थिक सर्वे क्या रास्ता सुझाता है?

पूर्व बजट सर्वे (1998-99) मानता है कि 'मुद्रास्फीति को रोकने, ब्याज दर में कटौती करने, वृद्धि दर एवं निवेश को प्रोत्साहित करने तथा विदेशी विनिमय बाजार एवं वित्तीय व्यवस्था में उचित स्थायित्व विकसित करने के लिए वित्तीय संचय अत्यन्त आवश्यक है।' इसकी यह मांग भी है कि निम्न प्राथमिक खर्चों तथा अलक्षित अनुदानों को समाप्त किया जाए एवं सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षा, प्रभावी सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था और आधुनिक पानी एवं मल-निकासी व्यवस्था के अपूर्ण रहे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए धन राशि उपलब्ध की जाए। यह सर्वे आगे कहता है कि पांचवें वेतन आयोग एवं इसके बाद केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय संस्थाओं के राजस्व घाटों पर पड़ने वाला असर सरकारी तंत्र को घटाने की आवश्यकता को अनिवार्य बनाता है।

सर्वे के अनुसार 'घाटे के संबंध में संवैधानिक सीमाओं के मुद्दे के साथ-साथ सरकारी तंत्र के पुनरगठन की चुनौती पर पुनरविचार करने का समय आ गया है।' सर्वे द्वारा व्यवस्था के गैर-अफसरीकरण करने की एक अन्य पहल सुझाई गई है। यह इंगित करता है कि 'आर्थिक विकृतियों की गहराई और विस्तार ने ऐसे नियंत्रणों की आवश्यकता को पैदा किया है जबकि सरकार से संबंधित सभी लोग इसके जनता पर पड़ने वाले नकारात्मक

प्रभाव से परिचित हैं परन्तु वे सभी शायद इस कदम का पूर्ण समर्थन नहीं करेंगे। कीमतों और वितरण पर शेष बचा नियंत्रण भी समाप्त किया जाना चाहिए।

निर्यात प्रोत्साहन के लिए सर्वे का सुझाव है कि और अधिक लचीली और उदार नीति अपनाई जानी चाहिए ताकि निर्यात के घटते रुझान को उल्टा जा सके। यह प्रस्तावित करता है कि सरकार को उन क्षेत्रों से हट जाना चाहिए जहां निजी पहल अधिक कुशलता से लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है तथा सरकार को अपनी जिम्मेदारियों की प्राथमिकताओं पर पुनरकेन्द्रित करना चाहिए जैसे, बुनियादी सुविधाएं, प्राथमिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाना, नागरिक समाज के मानदंडों का विकास करना तथा व्यवस्था से हिंसा और भ्रष्टाचार को मिटाना।

V. आर्थिक सर्वे में वर्णित चुनौतियों से निपटने के लिए 1999-2000 का बजट क्या प्रस्तावित करता है?

पूर्व बजट आर्थिक सर्वे (1998-99) द्वारा भारतीय आर्थिकता को जिन गंभीर चुनौतियों का सामना है उनको महसूस किये बिना इसकी तुलना में ऐसा लगता है कि वित्तमंत्री ने अपने बजट भाषण में 1998-99 की उपलब्धियों और उसके परिणामों को आगे आने वाली आर्थिक समस्याओं और उनके प्रभावों से चिन्तित हुए बिना प्रस्तावित किया है। वित्तमंत्री की टिप्पणी से यह स्पष्ट है कि 'हम तूफान से किश्ती को सुरक्षित बाहर निकाल लाये हैं।' यही छाप '2010 तक वास्तव में एक आर्थिक महाशक्ति बनने के भारत के दृष्टिकोण वाले' उनके उद्बोधन में समाहित है। ऐसी ही भावना उनके द्वारा बजट भाषण के प्रस्तुतीकरण की शैली से प्रकट होती है जिसमें किसी भी चुनौती को चिह्नित किये बिना सीधे-सीधे उन्होंने 6 पक्षीय रणनीति का बखान किया जो ना तो उसके उद्देश्य, दिशा एवं प्राथमिकताओं को स्पष्ट करता है और ना ही उससे जुड़े लक्ष्यों को स्पष्ट करता है। परन्तु यह रणनीति आग्रह करती है कि अगले साल निवेश एवं वृद्धि दर बढ़ाने की प्रेरणा देगी तथा भारत को आने वाली सहस्राब्दी में ले जायेगी।

बजट रणनीति के मुख्य बिन्दु निम्न हैं–

* राजस्व एवं वित्तीय घाटे को नौवीं योजना में इंगित किये गये रास्ते पर मध्यम दर्जे की प्रक्रिया शुरू की जाए, जो उत्पादक निवेश एवं वृद्धि दर के लिए अधिक साधनों को मुक्त करेगी तथा मुद्रास्फीति पर रोक लगायेगी।

*अपरोक्ष टैक्सों में भारी सुधार किया जाए जिससे उत्पादकता और रोजगार को प्रोत्साहित किया जा सके।

* सभी बड़े सेक्टरों में आर्थिक सुधारों को विस्तृत एवं गहन किया जाए तथा आर्थिक उदारीकरण में गति लाई लाए, जिससे हमारे किसानों, उद्यमियों, व्यापारियों एवं सेवा प्रदान करने वाले लोग में उत्पादक उर्जा एवं सृजनशीलता का उत्सर्ग हो।

* बाहरी झटकों से आर्थिकता की रक्षा की जाए। निर्यात को पुन: जीवित किया जाए तथा वृद्धि दर को पुनरजीवित करने के लिए घरेलू शक्तियों को प्रोत्साहित किया जाए।

❊ ज्ञान आधारित उद्योगों को मजबूत किया जाए और इस प्रकार नई सहस्राब्दी की चुनौतियों को सामना करने के लिए अपने आपको तैयार किया जाए।

❊ अन्तिम परन्तु खास बात यह है कि मानवीय विकास के लिए सार्वजनिक कार्यक्रमों को पुन: निर्देशित एवं पुन: चालू किये जाए जिसमें खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल, शिक्षा, रोजगार एवं मकान शामिल हैं। उनका मुख्य लक्ष्य गरीब और कमजोर तबके के सशक्तिकरण का होना चाहिए, विशेष तौर पर वे जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के हैं।

(A) 6 पक्षीय रणनीति के संबंध में यह बजट कितना गंभीर है? क्या इसके रणनीतिक उसूलों को मेल खाने वाली पहलकदमियां पुष्ट करती हैं? क्या बजट पूर्व और बजट के बाद की कार्यवाहियों के बीच कोई संतुलन है? इस तरह के कई उदाहरण हैं जो यह दर्शाते हैं कि रणनीतिक कथन और बजट से उपजी कार्यवाही के बीच कोई तालमेल नहीं है।

उदाहरण के लिए बजट का रणनीतिक छठा सिद्धान्त अपने आपको वचनबद्ध करता है कि वह मानव विकास के लिए सार्वजनिक कार्यक्रमों को पुनरनिर्देशित एवं पुन: चालू करेगा परन्तु बजट की पहलकदमियां इस वचनबद्धता से मेल नहीं खाती हैं। परन्तु बजट भाषण यह तथ्य प्रकट करता है कि कृषि एवं उससे संबंधित अन्य गतिविधियों की योजना का आकलन 34.5 प्रतिशत बढ़ाया गया है तथा सामाजिक सेवाओं का आकलन 22 प्रतिशत बढ़ाया गया है, यह बढ़ोतरी 1998-99 के संशोधित आकलन से अधिक है। जिस चीज को यह विशेष इंगित नहीं करती है वह यह है कि जब पिछले साल के बजट आकलन से इसकी तुलना की जाती है तो कृषि एवं इसकी सहायक गतिविधियों के आकलन में गिरावट देखने को मिलती है तथा सामाजिक सेवाओं के आकलन में केवल 8 प्रतिशत की बढ़ोतरी नजर आती है। यह दर्शाता है कि अपनी रणनीति की पालना करने में यह बजट कितना उदासीन है। कृषि राज्यमंत्री ने कृषि के प्रति वित्तमंत्री के भेदभावपूर्ण व्यवहार पर सार्वजनिक तौर पर एतराज उठाया है।

अन्य मानवीय विकास का मुद्दा जिसे बजट भाषण में यह साबित करने के लिए उभारा गया है कि शिक्षा और वरिष्ठ नागरिकों का भी ध्यान रखा गया है, इसके लिए दो नई योजनाएं प्रस्तुत की गई हैं–'शिक्षा गारंटी प्रोग्राम' तथा 'अन्नपूर्णा' योजना। परन्तु बजट में इन दोनों में से किसी योजना का कोई उल्लेख नहीं है बजट दस्तावेज दर्शाते हैं कि इनमें से किसी योजना के लिए कोई धनराशि आवंटित नहीं की गई है।

'शिक्षा गारंटी कार्यक्रम' प्रत्येक गांव के एक किलोमीटर दायरे में प्राथमिक स्कूल उपलब्ध करवाने के लिए है, इस योजना के तहत केन्द्र और राज्य सरकारें अध्यापन की सामग्री की कीमत में अपना-अपना अंशदान देंगी तथा आने वाले तीन सालों में कम से कम 1.8 लाख नये स्कूल खोले जायेंगे। 'अन्नपूर्णा' योजना के तहत प्रत्येक मूल निवासी वरिष्ठ नागरिक को हर महिने 10 किलो अनाज उपलब्ध करवाने के लिए बनाई गई है परन्तु वह वरिष्ठ नागरिक वृद्ध अवस्था पेन्शन प्राप्त करने का अधिकारी तो हो परन्तु प्राप्त नहीं करता हो।

आगे, बजट भाषण, जबकि सरकार की प्रथम प्राथमिकता के तौर पर जोर शोर से गरीबी एवं बेरोजगारी उन्मूलन करने की घोषणा करता है, भारतीय लोगों की योग्यता एवं क्षमता को विकसित करने के एक मॉडल के रूप में अपने मानव विकास पहल को महिमामंडित करता है और इस प्रकार भारत की ज्ञान-उर्जा का निर्माण करने का बखान करता है परन्तु इन मामलों से संबंधित कुछ क्षेत्रों के साथ बजट का अनुचित व्यवहार सरकार की अपनी वचनबद्धताओं के प्रति बेरूखी के आचरण को दर्शाता है।

उदाहरण के तौर पर ग्रामीण रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन विभाग को पिछले साल के 5933 करोड़ रुपये की बजाए 6902 करोड़ रुपये ही आवंटित किये गये हैं। विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिकता शिक्षा के प्रसार के लिए आवश्यक मिड डे मील के लिए इस साल 400 करोड़ रुपये घटाकर प्रावधान किया गया है। ग्रामीण स्वास्थ्य के मामले में केन्द्रीय सरकार केवल उन्हीं ग्राम पंचायतों को धन राशि उपलब्ध करवायेगी जो अपने सहयोग से सामुदायिक देखभाल सुविधाएं दे सकेंगी।

(B) बजट की एक अन्य असंगति यह है कि बजट सामान्यतया का सहारा लेने की शैली अपनाता है और अपने लक्ष्यों से संबंधित विशिष्टताओं में जाने से अपने को बचाता है।

उदाहरणतया, बजट की रणनीति का प्रथम सिद्धान्त चार सालों में राजस्व घाटे को पूर्णतया समाप्त करने तथा वित्तीय घाटे को 2 प्रतिशत तक लाने की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु बजट में किसी प्रस्ताव में उल्लेख नहीं है कि इसको कैसे प्राप्त किया जायेगा।

बजट वित्तीय घाटे को कम करने के लिए राजस्व संग्रह करने तथा खर्च में कटौती करने का दावा करता है लेकिन राजस्व उद्योगों की वृद्धि पर अधिकांशत: निर्भर है। उद्योगों का विस्तार जितनी तेजी से होगा, सरकार की जेब में राजस्व की उतनी ही बड़ी राशि जायेगी यानि राजस्व बढ़ेगा। मोटे तौर पर औद्योगिक उत्पादन में 1 प्रतिशत की वृद्धि से 1600 करोड़ रुपये राजस्व की वृद्धि होती है परन्तु जब तक मंदी समाप्त ना हो जाये तब तक कर के जरिए सरकार लक्षित राजस्व शायद प्राप्त ना कर सके तथा 1998-99 जैसी स्थिति वापिस ना घटित हो। सरकारी खर्चे के स्तर में भी चीजें गलत हो सकती है। यह इसलिए कि बजट खर्चे में काफी कम राशि आवंटित की गई है जो मौजूदा आर्थिक रुझानों की आवश्यकता पूर्ति नहीं करती है।

और आगे, राष्ट्रीय सर्वानुमति के बगैर राजस्व समाप्ति तथा वित्तीय घाटे में कमी का लक्ष्य प्राप्त करना असंभव है। सार्वजनिक क्षेत्र में गैर-निवेश के जरिए एकत्र किया गया कोष एक अस्थाई कदम है। यह कदम संचय की समस्या तो हल करती है परन्तु निरन्तर प्रवाह की समस्या हल नहीं करती है। निर्बाध व्यय की वजह से जब तक बजट घाटा जारी रहेगा, बजट घाटे का मुद्दा चिन्ताजनक बना रहेगा, जिससे देश का दरजा प्रभावित रहेगा और फंड एकत्रित करने की कीमत भी प्रभावित होगी। बजट इन खोजी सवालों पर कोई सफाई नहीं देता है।

आगे, बजट रणनीति के वादों का तीसरा सिद्धान्त 'सभी बड़े क्षेत्रों में आर्थिक सुधारों को गहरा और विस्तृत किया जायेगा तथा आन्तरिक उदारवाद को गति दी जायेगी' इस संबंध में बजट में कोई इशारा नहीं किया गया है।

सच यह है कि आर्थिक सुधारों को गहरा और विस्तृत करना एवं जारी रखना सही है। परन्तु क्यों, कैसे और किस उद्देश्य के लिए। किसी भी चीज का कोई स्पष्टीकरण किये बिना, ऐसा मालूम पड़ता है कि वित्तमंत्री जनता को किसी और औपचारिकता की तरफ धकेलना चाहते हैं। यह आर्थिक सुधार सब के हित में जा सकता है अगर सरकार आगे बढ़ने से पहले उक्त तीनों बिन्दुओं पर लोगों के सामने कुछ तथ्यात्मक सूचनाएं उपलब्ध करवाए।

पहला, भारत के आर्थिक सुधारों का आठ वर्षों का अनुभव क्या दर्शाता है? एक, यह कितना सकारात्मक है और कितना नकारात्मक? आगे क्या किया जाना चाहिए?

दूसरा, शीत युद्ध के बाद के काल में वैश्विक आर्थिक प्रक्रिया ने क्या अनुभव दिया है?

तीसरा, आर्थिक उदारवाद किस बात का द्योतक है? हम किस तरह का उदारवाद अपना रहे हैं? क्या यह व्यक्ति आधारित, या राज्य नियंत्रित या इन दोनों का जोड़ है? क्या यह उचित नहीं रहेगा कि हम वास्तविकता पर आधारित व्यक्ति सह-सामाजिक धारणा को अपनाएं जो दोनों में संतुलन बनाती है–यानि, व्यक्तिगत के साथ-साथ सामूहिक या मनुष्य और उसका समाज दोनों में समन्वय बैठाती है। यह उपरोक्त तीनों एक तरफा धारणाओं से भिन्न है। हमें हमेशा समाज और राज्य के बीच फर्क करना चाहिए क्योंकि राज्य समाज का मात्र एक हिस्सा है।

(C) बजट का एक अन्य खोखलापन यह है कि उसकी घोषणाएं और उन्हें वास्तविकता में लागू करने के बीच दरार है। मसलन, बजट ऋणनीति का चौथा सिद्धान्त घोषणा करता है कि 'निर्यात बढ़ाया जाए तथा वृद्धि दर बढ़ाने के लिए घरेलू आर्थिकता के इंजिनों को संवर्द्धित किया जाए', बजट ने जिन 6 क्षेत्रों को केन्द्रित किया है उनमें से यह एक है। परन्तु, बजट अपने इस उद्देश्य को प्रतिबिम्बित नहीं करता। निर्यात घाटे के बारे में यह बजट कुछ नहीं कहता, ना ही बजट के प्रस्ताव निर्यात बढ़ाने के लिए विशेष कार्य योजना के बारे में कोई सुझाव देता है। और इस तरह का हल्का-फुल्का नजरिया अनुचित है जबकि आने वाले दिनों में पुन: बहाल होती एशियन आर्थिकताओं से कड़ी प्रतियोगिता संभावित है। बजट का एकमात्र व्यवहारिक समाधान उच्च शक्ति वाली समिति गठित करने में है ताकि निर्यात के आदान-प्रदान लागत कीमत को घटा सके। ब्याज दरों को घटाने की मंशा सही दिशा में एक विशेष कदम है। अप्रत्यक्ष करों को युक्ति संगत करना एक सकारात्मक कदम है, परन्तु इससे सभी सीमा शुल्क बढ़ जायेंगे।

निर्यात क्षेत्र की बजट में व्यवहारिक तौर पर उपेक्षा की गई है जो शायद यह सोच कर की गई है कि वैश्विक आर्थिकता की पुन: बहाली बिना निर्यात में बहुत अधिक बढ़ोतरी की संभावना नहीं है तथा रुपये की कीमत में गिरावट निर्यात बढ़ाने के लिए काफी रहेगी।

सन् 1999-2000 के बजट पर भारतीय निर्यात संगठनों के महासंघ ने अपना असंतोष जाहिर किया है।

आगे, बजट रणनीति का पांचवां सिद्धान्त यह घोषणा करता है कि 'ज्ञान आधारित उद्योगों को मजबूत बनाया जाए और इस प्रकार नई सहस्राब्दी की चुनौतियों के लिए अपने आपको तैयार किया जाए।' परन्तु तात्कालिक मुद्दा औद्योगिक क्षेत्र की पुन: बहाली का है।

बजट यह तो स्वीकार करता है कि भारतीय उद्योग के सामने आर्थिक मंदी सबसे बड़ी समस्या है परन्तु बजट ने व्यवहारिक तौर पर इस समस्या से निपटने के लिए कोई प्रयास नहीं किया है। यदि यह रुझान जारी रहता है तो औद्योगिक उत्पादन और अधिक कम होगा जो हमारे सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि पर असर डालेगा। बजट में मंदी से उबरने की मांग से निपटने के लिए कोई विशेष पैकेज का प्रावधान नहीं रखा है, ना ही इस बजट में ऐसा कोई प्रभावी प्रावधान रखा गया है जो आम तौर पर निवेश को प्रोत्साहित करे तथा खास तौर पर ढांचागत सुविधाओं को प्रोत्साहित करे। घरेलू मांग उत्पन्न करने के लिए बजट में उठाए गये कदम उद्योग की आशाओं की पूर्ति नहीं करते।

आर्थिकता की पुन: बहाली को प्रोत्साहित करने के लिए बजट पांच मार्ग अपना सकता था–ढांचागत सुविधाओं को प्रोत्साहित करना, सार्वजनिक निवेश को बढ़ाना, उद्योग सह-कृषि सुधार करना, पूंजी बाजार को विकसित करना तथा निर्यात में मदद करना।

और अधिक बजट की रणनीति का दूसरा सिद्धान्त यह है कि 'उत्पादकता और निवेश को बढ़ाने के लिए अप्रत्यक्ष करों में भारी सुधार करना।'

अप्रत्यक्ष कर एक प्रतिगामि सामाजिक घटनाक्रम है क्योंकि ऐसे कर आम लोगों की जिन्दगी पर बुरा असर डालते हैं। प्रत्यक्ष कर की तुलना में अप्रत्यक्ष करों की महत्वता को घटाया जाना चाहिए। अप्रत्यक्ष करों में सुधार का उद्देश्य धीरे-धीरे उसे समाप्त करने का होना चाहिए। उनको सुधारने की बनिस्पत तमाम कर ढांचे की मांग यह है कि उसे तर्कसंगत बनाया जाए।

आगे और अधिक, 6 सूत्री बजट रणनीति ढांचागत सुधार की पूर्णतया उपेक्षा करती है, यद्यपि 1998-99 के बजट में मौजूदा वित्तमंत्री ने कहा है कि ढांचागत विकास उसकी सर्वोच्च प्राथकिता है। पिछले वर्ष, ढांचागत सुधार की परियोजना को वित्त पोषित करने हेतु अप्रवासी भारतीयों की धनराशि आकर्षित करने के लिए स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के 'भारत विकास बाँड' जारी करने की वित्तमंत्री ने घोषणा की थी। परन्तु व्यवहार में पिछले साल ढांचागत सुधार उपेक्षित ही रहा। कोयला उत्पादन वृद्धि 0.9 प्रतिशत (एक प्रतिशत से कम) गिरावट की दर पर है, कच्चे तेल की वृद्धि दर में -3.6 प्रतिशत की गिरावट है, सीमेन्ट की वृद्धि दर मात्र 2.8 प्रतिशत ही है, रेल माल भाड़ा किराया की वृद्धि दर में -2.2 प्रतिशत की गिरावट है तथा गोदियों में कारगो के आदान-प्रदान में 0.1 प्रतिशत की गिरावट है।

विकास प्रक्रिया में ढांचागत सुधार की चहुंमुखी महत्वता सर्वत्र स्वीकृत तथ्य है। परन्तु हमारे लिए आज यह सर्वाधिक प्राथमिक क्षेत्रों में से एक है जिस पर हमें तुरन्त केन्द्रित होने की आवश्यकता है और वह भी युद्ध स्तर पर।

(D) उपरोक्त तथ्य दर्शाते हैं कि यह बजट खोखली बातों से भरा हुआ है। मसलन, इसका दृष्टिकोण 'भारत 2020 तक आर्थिक तौर पर वास्तव में एक महाशक्ति होगा' यह आर्थिक तौर पर अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की विश्व की आम वास्तविकता के विपरीत है। कैसे एक अन्तरनिर्भर संबंध आर्थिक तौर पर महाशक्ति और उसके उपग्रह के बीच के संबंध बन सकते हैं?

इसी प्रकार, बजट घाटा 1998-99 के गैर निवेश के आंकड़े, वित्तीय राजस्व घाटे के अनुमान, आदि से संबंधित बजट में छलयोजित तथ्यों से इसका पारदर्शी होने का दावा नकारा हो जाता है।

VI. बजट की आम विशेषताएं

नजरिया, प्राथमिकता, मार्ग तथा संगठन के तौर पर इस बजट की करीब-करीब वैसी ही स्थिति है जैसे पहले वाले बजटों की थी। राजस्व स्रोतों तथा खर्च करने की पद्धति इस बात को साबित करती है, क्योंकि मामूली दुरुस्तियों के अलावा कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है।

अधिकांश गैर-योजना खर्च तीन क्षेत्रों में जारी है–ब्याज भुगतान, सुरक्षा, अनुदान–जो बजट व्यय का 75 प्रतिशत बनते हैं। शेष गैर-योजना खर्च मुख्य तौर पर प्रशासनिक ढांचे पर होता है। योजना का कोष मुख्यतया सार्वजनिक क्षेत्र में चला जाता है।

वित्तीय घाटे को कम करने के बारे में सभी बातें मात्र छल-कपट है। पुराने गणना के तरीके के आधार पर बजट घाटा पिछले साल के बजट और पुनरनिरीक्षित अनुमान से ज्यादा है। उन्हीं पुराने मानदंडों से बुनियादी परिवर्तन कैसे संभव है?

पूंजीगत खर्च तेजी से घटा है जबकि राजस्व खर्च लगातार बढ़ा है। उधार से होने वाले व्यय की पूर्ति राजस्व कर से प्राप्त होने वाली राशि से थोड़ी ही कम है। पूंजीगत खर्च–जिसका अधिकांश खर्च मजबूत ढांचागत निर्माण में होता है–घटाना उन सभी कदमों को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा जिसमें वृद्धि दर और विकास शामिल हैं। यह दीर्घकालीन तौर पर भारी नकारात्मक असर डालेगा।

राजस्व एवं वित्तीय घाटे को घटाने के संबंध में किसी भी वहनीय रणनीति की बुनियादी आवश्यकता यह है कि राजस्व खर्चे को कम किया जाए। यदि इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है, निवेश में बढ़ोतरी तथा साथ ही वित्तीय घाटे में विस्तार की स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था को भारी मुद्रास्फीति, आयात में वृद्धि तथा विदेशी भुगतान की दरार को और चौड़ी करने की तरफ ले जायेगी (जिसका पूरक असर यह रहेगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेशकों का विश्वास कमजोर होगा और वे अपनी पूंजी वापिस ले जायेंगे)।

आने वाले साल में बजट ने यह प्रतिबद्धता जाहिर की है कि सरकार केवल 72000 करोड़ रुपये का राजस्व खर्च बढ़ाने की स्वीकृति दे सकेगा। सन् 1998-99 में जो राजस्व खर्च 36,800 करोड़ रुपये था, उससे यह बढ़ोतरी चौथाई से भी कम है। यदि राजस्व खर्च (ब्याज कम करके) इस साल इसी राशि के बराबर बढ़ता है तो बजट की सारी गणनाएं बेकार साबित होंगी तथा वित्तीय घाटे को रोकने के लिए बजट की रणनीति असफल होगी।

तब भारत वित्तीय ध्वंस के किनारे खड़ा होगा।

VII. भारतीय वित्तीय-आर्थिक प्रक्रिया कैसे भटक गई

दो मुख्य कारण–(अ) अन्दरूनी या दीर्घकालिक, तथा (ब) तात्कालिक या अल्पकालिक–युक्तियुक्त नजर आते हैं।

(अ) अन्दरूनी कारण हमारे परम्परागत विकास के सिद्धान्तों में निहित है जिनका प्रतिनिधित्व दो परम्परागत आर्थिक मॉडल करते हैं, यानि, (क) स्वतंत्र बाजार की आर्थिकता, तथा (ख) राज्य नियंत्रित बाजार की आर्थिकता। पहली का प्रतिनिधित्व एडम स्मिथ की आर्थिक विचारधारा की विभिन्न शाखाएं करती हैं जो मनुष्य की मुख्य प्रेरक शक्ति निजी स्वार्थ को मानती है। दूसरी मार्क्सवादी आर्थिक विचारधारा के विभिन्न मतों से गठित है जो प्रधान प्रेरक शक्ति पार्टी के प्रतिनिधित्व में सामूहिक हितों को मानती है। स्पष्टतया ये दोनों धारणाएं प्रकृति (यानि, पर्यावरण या प्राकृतिक संसाधन) तथा सामाजिक एवं आर्थिक विकास में जनता की भूमिका की उपेक्षा करते हैं।

प्रकृति के संबंध में ये इसे मनुष्य द्वारा स्वतंत्र रूप से शोषित एवं उपभोग करने के लिए असीमित लाभदायक चीजों का भंडारग्रह समझते हैं और नतीजतन पर्यावरणीय पहलू के महत्वपूर्ण योगदान को अपनी आर्थिक गणना में शामिल नहीं करते। मनुष्य की जैव-सामाजिक प्रकृति को दरकिनार करते हुए स्वतंत्र बाजार की आर्थिकता मनुष्य के सामाजिक प्रकृति के पहलू को देखने में असफल रहती है। जबकि मार्क्सवादी आर्थिकता मनुष्य के व्यक्तिगत जैविक चरित्र की अनदेखी करती है।

ये दोनों विचारधाराएं उस काल में लम्बे समय तक कार्यरत रही जब मनुष्य जाति ने मानव अस्तित्व के लिए पर्यावरण की ना तो उच्च समझ ग्रहण की थी, और ना ही सामाजिक विकास में मूलभूत मानवाधिकारों (राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक) की धारणा एक आवश्यक पहलू है इस तथ्य की महत्वता को समझ पाया था। तब ना तो पर्यावरण ह्रास अस्तित्व में था और ना ही जनसंख्या विस्फोट की स्थिति थी। मनुष्य की नई समझ का आधार नये उभरे वैज्ञानिक-तकनीकी-सामाजिक ज्ञान में निहित है, जो हमारी धारणाओं, कार्यप्रणाली तथा संगठनात्मक ढांचे में परिवर्तन ला रहा है।

आज सामाजिक उन्नति में जनता और पर्यावरण की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है तथा उक्त दोनों परम्परागत विकास के सिद्धान्त अप्रासंगिक हो गये हैं तथा एक नई प्रकृति एवं मानव समर्थक वैश्विक विकास की आवश्यकता कदम-ब-कदम शक्ल अख्तियार कर रही है।

(ब) पारम्परिक आर्थिकता के अनुसार तात्कालिक कारण वित्तीय घाटे में निहित है। इसमें कोई शक नहीं है कि ऊपरी तौर पर वित्तीय घाटा एक जायज कारण नजर आता है परन्तु इस कारण के पीछे कुछ मदों में अवहनीय, अनुत्पादक खर्च छुपा हुआ है जो लगातार सरकार की प्राथमिकता बना हुआ है। किसी भी अर्थशास्त्री या विशेषज्ञ को यह अधिकार या प्राधिकार नहीं है कि वह सुघड़ आर्थिकता के नाम पर इन प्राथमिकताओं में संशोधन कर सके। इस प्रकार वास्तविकता में वित्तीय घाटा एक प्रभाव है जिसका कारण सरकार की अवास्तविक प्राथमिकताएं हैं।

इसके इतिहास की तरफ जाएं तो हरेक यह पाता है कि यह हमारी शासक पार्टियों की दो तरफा राजनीतिक उद्देश्यों की देन है। वह यह है कि एक तरफ सैनिक शक्ति के आधार पर भारत का एक महान देश के रूप में निर्माण करना तथा दूसरी तरफ राजनीतिक भ्रष्टाचार और लोक-लुभावनी आर्थिकता के जरिए संबंधित शासक पार्टियों की सत्ता को

बनाए रखना। इसके नतीजे में एक तरफ भारत के आर्थिक संसाधनों का सुरक्षा एवं आन्तरिक पुलिस पर खर्च (जिसमें सुरक्षा एवं पुलिस से संबंधित सभी संस्थाएं एवं फैक्ट्रियां शामिल हैं) के जरिए तथा दूसरी तरफ लोक-लुभावनी, अनुपात्दक स्कीमों (जैसे अलक्षित अनुदान, गैर-उत्पादक परियोजनाओं पर अपव्ययी खर्च, भारतीय शासकों की पांच सितारा जीवन पद्धति, ऋण मेले, इत्यादि) के माध्यम से भारतीय आर्थिक संसाधनों को निचोड़ लिया गया है।

रेवेन्यू सोखने के बजट में पांच मुख्य शीर्षकों–ब्याज का भुगतान, सुरक्षा और पुलिस, अनुदान, प्रशासनिक तथा नुकसान में चलने वाले सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रतिष्ठान–में यह पुलिस और सेना ही है जो शान्ति की खलनायक हैं (1951 में 168 करोड़ रुपये से बढ़कर 1999 में करीब 55,000 करोड़ रुपये सुरक्षा पर खर्च हो गये जिसमें अर्द्धसैनिक बलों एवं राज्यों में पुलिस पर होने वाला खर्च शामिल है)। सन् 1960 और 1970 में इस 'पवित्र' राष्ट्रीय 'जीवन रेखा' यानि सुरक्षा पर भारी खर्च ने भारतीय आर्थिकता को विदेशों से अधिक से अधिक उधार लेने के लिए बातचीत करने तथा देश में वित्तीय घाटे को विस्तृत करने तथा लोगों से उधार लेने के लिए मजबूर किया। आज यह कर्ज (आन्तरिक और बाह्य दोनों) खतरनाक आयाम तक पहुंच चुका है जो हमारे कुल वार्षिक खर्च का 50 प्रतिशत से अधिक हजम कर लेता है। करीब 30 प्रतिशत सुरक्षा, पुलिस, अनुदान, सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान, आदि हजम कर जाते हैं। क्या इस प्रकार की भारतीय वित्त पोषण की दुखदायी दारुण स्थिति लम्बे समय तक वहनीय रह पायेगी?

VIII. आज भारत की वित्तीय-आर्थिक प्रक्रिया की क्या मांग है?

(अ) उपरोक्त वर्णित तथ्यों को ध्यान में रखा जाए तो हमारे भविष्य का यह दृष्टिकोण होना चाहिए कि एक विश्व निर्देशित (या अन्तरनिर्भर राष्ट्र) विकास मॉडल स्थापित किया जाए जो लोकतंत्र, समता, मानवीय मूल्यों, पर्यावरण सुरक्षा तथा उत्पादकता पर आधारित हो। इस मॉडल के ये सभी पांच विशेषताएं अन्तरसंबंधित हैं, अन्तरक्रिया में हैं तथा समान महत्व के हैं।

विश्व निर्देशित विकास मॉडल का अर्थ एक सामाजिक व्यवस्था का होना है जो विभिन्न मुद्दों को वैश्वीकरण (या राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता) के तौर पर देखता है तथा वैश्विक नजरिये या तमाम मानवीय समुदाय के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य शब्दों में, सही और गलत के बीच यह तर्कसंगत मानवतावाद को निर्णायक पहलू के तौर पर अपनाने को इंगित करता है। आर्थिक सन्दर्भ में इसकी आर्थिकता विदेशी एवं घरेलू पूंजी के न्यायिक मिश्रण को मान्यता देती है।

इस मॉडल के तहत लोकतंत्र सभी सामाजिक क्षेत्रों–राजनीतिक, आर्थिक एवं संस्कृति–में लोगों के सशक्तिकरण को शामिल करेगा। सभी परम्परागत विशेषाधिकारों को समाप्त करना भी इसमें शामिल है जिसका लाभ गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में चयनित थोड़े से लोग भोगते रहे हैं, इसमें बहुराष्ट्रीय कम्पनियां और फर्में शामिल है, जहां विशेषाधिकार प्रोमोटर्स और डाइरेक्टरों में निहित है, जिन्हें समाप्त किया जायेगा तथा कम्पनी से संबंधित मामलों में अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार शेयर धारियों को रहेगा।

समता का अर्थ होगा सभी मुख्य असमानताओं को समाप्त किया जाए, जैसे, अमीर-गरीब, शहर-गांव, पढ़े-लिखे और अनपढ़ तथा पुरुष व महिला आदि के बीच असमानता समाप्त करना।

मानवीय मूल्यों का अर्थ होगा जिन्दगी के हर पहलू में लोकतांत्रिक शैली को प्रोत्साहित किया जाए तथा भ्रष्टाचार, अपराध, माफियावाद, नशीली दवाओं की तस्करी, हिंसा एवं इसी प्रकार के सभी समाज विरोधी रुझानों को जड़ से उखाड़ फेंका जाए।

सभी प्राकृतिक संसाधनों का न्यायिक उपयोग करके एवं उनको संरक्षित करके पर्यावरणीय सुरक्षा को सुनिश्चित किया जायेगा।

लोगों के ज्ञान, कौशल, सामाजिक संवेदना, मानवीय करुणा, शालीनता आदि बढ़ाकर उत्पादकता का विकास किया जायेगा।

वैश्वीकरण की ओर बढ़ते हुए यह मॉडल सबसे पहले दक्षिण एशिया राज्यों का आर्थिक समुदाय बनाने की कोशिश करेगा।

(ब) वित्तीय घाटे की तत्काल चुनौतियों से उभरने के लिए हल यह होना चाहिए कि गलत की जगह सही वित्तीय-आर्थिक प्राथमिकताओं को अपनाया जाए। मानव संसाधनों के विकास से संबंधित सभी मामलों–जैसे असमानता कम करना, गरीबी हटाना, बेरोजगारी समाप्त करना, शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल, सामाजिक सेवाएं, संस्कृति, विज्ञान, तकनीक, ढांचागत सुधार, आदि उपलब्ध करना–को सैन्यीकरण, पुलिस, अमीर और शहर निर्देशित विकास, अफसरीकरण से संबंधित मुद्दे, उच्च शैली के जीवन, आदि के बनिस्पत प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सभी अनावश्यक तथा निम्न प्राथमिकता के खर्चों को कम करके राज्य के संसाधनों का उपयोग अधिकतम उत्पादकता में लगाकर, जिसमें नये संसाधनों को पैदा करना शामिल है, तथा मांग को प्रोत्साहित किया जाए जिससे आर्थिकता पुन: बहाल हो, इन कदमों के जरिए वित्तीय और राजस्व घाटे को सहनीय स्थिति तक कायम करने का कार्य होना चाहिए।

अनावश्यक एवं निम्न प्राथमिकता वाले खर्चों को कम करने बाबत–अभी तक सरकार ने अपने अनावश्यक खर्चों को कम करने के लिए नहीं के बराबर कोशिश की है। भारत के गैर-योजना राजस्व पर मुख्य दबाव पांच मुख्य शीर्षकों से आता है–ब्याज भुगतान, सुरक्षा, अनुदान, सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठान तथा प्रशासन। यह देखना आवश्यक है कि इनमें से किस क्षेत्र पर खर्चों को कम करने की संभावना है।

(1) ब्याज भुगतान के मामले में : यहां या तो भारत इस बोझ को कम करेगा अन्यथा यह उसे थोड़े समय में इसे अस्थिर कर देगा। यह सम्भव है कि घरेलू कर्ज को माफ करके इस बोझ के थोड़े हिस्से को कम किया जा सकता है। इसके लिए निम्न पहल करने की जरूरत है।

–सरकार खाली जमीन बेचे जो लाखों हैक्टेयर्स है, जिसमें रेलवे अकेली 1 लाख हैक्टेयर से अधिक जमीन की मालिक है।

–जब्त किये गए सोने को बेचा जाए।

—सार्वजनिक क्षेत्र के 50 प्रतिशत शेयर्स को बाजार की कीमत पर क्रमबद्ध तरीके से बेचा जाए।

(2) सुरक्षा खर्च के मामले में : यहां उद्देश्य यह होना चाहिए कि विशेषतौर पर दक्षिण एशिया में तथा आम तौर पर दुनिया में शांति व स्थिरता कायम की जाए। इसके लिए निम्न कदम उठाए जाएं। पाकिस्तान और चीन के साथ दुश्मनी समाप्त करते हुए भारत अपनी विदेश एवं सुरक्षा नीति पुनरगठित करे। जम्मू-कश्मीर पर भारत व पाकिस्तान के बीच सहराज्य स्थापित करने के आधार पर पाकिस्तान के साथ एक दोस्ताना समझौता करने के लिए बातचीत की जाए, जिसमें जम्मू-कश्मीर राज्य को अर्द्ध स्वतंत्रता दी जाए तथा इसके प्रत्येक नस्लीय क्षेत्र को एक इकाई के तहत स्वायत्तता प्रदान की जाए। चीन के साथ सीमा-समझौता करने के लिए दोनों देशों के बीच वास्तविक नियंत्रण रेखा को सीमा रेखा की मान्यता दी जाए। पाकिस्तान और चीन के साथ टकराहट को हल करने के बाद पहले चरण में 20 प्रतिशत सुरक्षा खर्च कम किया जाए तथा अगले तीन सालों में 30 प्रतिशत सुरक्षा खर्च कम किया जाए।

(3) अनुदान के मामले में : यहां गरीब को राहत मिले यह उद्देश्य होना चाहिए। इसलिए साधन-सम्पन्न लोगों को फायदे पहुंचाने वाले सभी गैर-लक्षित अनुदानों को समाप्त किया जाना चाहिए।

(4) सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों के मामले में : यहां, एक तरफ पूंजी की सभी बर्बादी को समाप्त करने का उद्देश्य होना चाहिए तथा दूसरी तरफ कामगारों के हितों की रक्षा की जानी चाहिए। इसलिए काम यह किया जाना चाहिए कि सभी घाटे में चल रही फैक्ट्रियों को सबसे पहले बातचीत के जरिए संबंधित कामगारों की सहकारी समितियों को बेचा जाए। इसमें अगर असफलता मिलती है तब इन फैक्ट्रियों को बाजार में सबसे अधिक बोली लगाने वालों को बेचा जाए।

(5) प्रशासन के मामले में : यहां प्रशासन के लोकतंत्रीकरण का उद्देश्य होना चाहिए तथा निम्न कदम उठाकर लोगों का सशक्तिकरण किया जाना चाहिए : सरकार की भूमिका को कम करने के लिए जहां नीति बनाने का मामला ना हो, उन सभी प्रशासनिक कार्यकलापों को लोगों को हस्तांरित कर दिया जाए, लोगों के ये संगठन आम तौर पर लोगों, विभिन्न वर्गों, क्षेत्रीय ग्रुपों, आदि से संबंधित मुद्दों को देखें। राज्यों और पंचायतों के अपने-अपने क्षेत्र में उनके कार्यकलापों को हस्तांरित कर दिया जाए।

निर्धारित संख्या से अधिक कर्मचारियों वाले विभागों में उनकी संख्या में कमी की जाए। सभी पक्षकारों की राय से पुनरगठन आयोग गठित किया जाए जिससे सरकार के कार्यकलापों को लोकतांत्रिक बनाया जा सके, इसके लिए संबंधित मंत्रालय स्वयं अपनी संबंधित प्राथमिकताओं के आधार पर नीतियां निर्धारित करते हुए उनको लागू करने का काम प्रशासन एवं जन संगठनों को सौंप कर सम्पन्न करवाये।

राज्य के सभी संसाधनों को अधिकतम उत्पादकता के लिए उपयोग किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि (a) भारतीय आर्थिकता को विश्व की आर्थिकता से जोड़ने के लिए ढांचागत सुधार किये जाएं, (b) गैर-उत्पादक खर्च में कटौती करके वित्तीय एवं

राजस्व घाटे को कम किया जाए, परन्तु यह राजस्व पूंजी की कीमत पर नहीं होना चाहिए (वर्तमान में केन्द्रीय सरकार ऐसा कर रही है), (c) पूंजी की उत्पादकता को बढ़ाया जाए, (d) सस्ती लोकप्रियता के आधार पर अनुदान वितरण बन्द किया जाए, (e) मुद्रास्फीति पर काबू पाने के लिए निवेश में कटौती को बन्द किया जाए, (f) बजट के लक्ष्यों को क्रियान्वित के साथ जोड़ा जाए, (g) कार्यकलाप में और अधिक लोकतंत्र, पारदर्शिता और खुलेपन को शामिल किया जाए, (h) तर्कसंगत मानवतावाद के आधार पर कर्मचारियों को प्रेरित किया जाए और प्रोत्साहित करने के अन्य पूरक तरीके अपनाए जाए, (i) नई कार्य संस्कृति विकसित की जाए, व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों तरह के हितों में सामंजस्य बैठाया जाए, (j) कार्य प्रक्रिया में सभी प्रकार के भ्रष्टाचार, बर्बादी, अकुशलता आदि को समाप्त किया जाए, तथा इन सबसे ऊपर, (k) सभी बाजारों को उचित कानून के जरिए नियमित किया जाए।

नये संसाधनों को उत्पन्न करने हेतु : उसके लिए यह आवश्यक है कि (a) तमाम कर ढांचे को तर्कसंगत बनाया जाए, (b) प्रत्यक्ष कर के मुकाबले अप्रत्यक्ष कर की सापेक्ष महत्वता को कम किया जाए, (c) मूल्य वृद्धि कर (VAT) व्यवस्था को शुरू किया जाए ताकि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, राज्यों के बिक्री कर एवं स्वायत्तशासी संस्थाओं की चुंगी के दुष्प्रभाव को समाप्त किया जा सके (इससे एक एकल अखिल भारतीय बाजार के निर्माण में सहायता मिलेगी, नतीजतन उद्योग और कृषि की प्रतियोगी क्षमता में बढ़ोतरी होगी), (d) कर जाल को जनसंख्या के सभी सम्पन्न तबकों तक विस्तृत किया जाए, (e) कर वसूली के तरीकों में सुधार किया जाए जिससे प्रत्यक्ष कर की राशि को बढ़ाया जा सके तथा इसी तरह के अन्य सुधार किये जाए।

IX. सारांश

आज, जबकि भारतीय अर्थव्यवस्था अधिक से अधिक कम उत्पादन एवं असमान तथा अवहनीय वृद्धि के जाल में धंसती चली जा रही है, ऐसे समय में राष्ट्रीय आर्थिकता पर भाजपा के स्वदेशीवाद, कांग्रेस आई की आत्मनिर्भरता (कभी-कभी विदेशी निर्भरता) तथा वामपंथी भ्रमित आर्थिकवाद के प्रभुत्व से ग्रसित है। आज के दिन देश की आवश्यकता यह है कि वह अन्तरनिर्भर राष्ट्र के आर्थिक मॉडल को अपनाए। 10-3-1999

***

बजट एक नजर में

(करोड़ रुपये में)

		1997-98 वास्तविक अनुमान	1998-99 बजट अनुमान	1998-99 संशोधित अनुमान	1999-2000 बजट अनुमान
1.	राजस्व प्राप्तियां (आय)	133901	161994	157665	182840
2.	कर राजस्व (केन्द्र का सकल)	95672	116857	109537	132365
3.	गैर-कर राजस्व	38229	45137	48128	50475
4.	पूंजीगत आय	98167	105933	124247	101042
5.	ऋण वसूली	8318	9908	11504	11087
6.	अन्य आय	912	5000	9006	10000
7.	उधार एवं अन्य जिम्मेवारियां	88937	91025	103737	79955
8.	कुल आय (1+4)	232068	267927	281912	383882
9.	गैर-योजना खर्च	172991	195925	213541	206882**
10.	राजस्व लेखा पर जिसमें	145176	166301	176691	190331
11.	ब्याज भुगतान	65637	75000	77248	88000
12.	पूंजीगत लेखा पर	27815	29624	36850	1655*
13.	योजना खर्च	59077	72002	68371	77000
14.	राजस्व लेखा पर	35174	43761	41448	46656
15.	पूंजीगत लेखा पर	23903	28241	26923	30344
16.	कुल खर्च (9+13)	232068	267927	281912	283882**
17.	राजस्व खर्च (10+14)	180350	210062	218139	236987
18.	पूंजीगत खर्च (12+15)	51718	57865	63773	46895*
19.	राजस्व घाटा (1-17)	46449	48068	60474	54147
20.	वित्तीय घाटा (1+5+6-16)	88937	91025	103737	79955*
21.	प्राथमिक घाटा (20-11)	23300	16025	26489	-8045

* वित्तीय घाटे में वो शेयर जो छोटी बचत से इकट्ठा नहीं किया गया है, उन शेयरों को हस्तांतरित करना शामिल नहीं है, इस वित्तीय घाटे का भुगतान सार्वजनिक लेखे से किया जायेगा। पिछले सालों की तरह इसी आधार पर वित्तीय घाटा 104955 करोड़ रुपये है परिणामस्वरूप इसी आधार पर प्राथमिक घाटा 16955 करोड़ रुपये है।

** 1-4-99 से नई व्यवस्था शुरू की गई है जिसमें छोटी बचत से इकट्ठी की गई राशि का 75% सार्वजनिक लेखे से राज्य एवं संघीय क्षेत्र को हस्तांतरित किये जाने का प्रावधान है। परन्तु इस परिवर्तन के लिए, गैर-योजनागत पूंजी खर्च 25,000 करोड़ रुपये से अधिक होगा।

आर्थिक सर्वेक्षण : मूल सूचक

	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99
	पूर्ण मूल्य				पिछले साल के संदर्भ में प्रतिशत में परिवर्तन			
सकल राष्ट्रीय उत्पाद (1000 करोड़ रुपये)								
चालू कीमतों पर	1089.8	1272.2P	1413.2Q	NA	17.1	16.7P	11.1Q	NA
1993-94 की कीमतों पर	913.8	988.3P	1038.7Q	1099.7A	7.8	8.1P	5.1Q	5.9A
सकल घरेलू उत्पाद (1000 करोड़ रुपये)								
चालू कीमतों के आधार पर	1103.2	1285.3P	1426.7Q	NA	16.9	16.5P	11.0Q	NA
1993-94 की कीमतों के आधार पर	926.4	999.0P	1049.2Q	1110.0A	7.6	7.8P	5.0Q	5.8A
कृषि उत्पादन (1)	160.7	175.4	164.9	171.3P	-2.7	9.1	-6.0	3.9P
अनाज उत्पादन (मिलियन टन)	180.4	199.4	192.4	195.3P	-5.8	10.5	-3.5	1.5P
औद्योगिक उत्पादन (2)	122.3	129.1	137.6	139.2#	12.8	5.6	6.6	3.5%
बिजली उत्पादन (बिलियन केडब्ल्यूएच)	379.9	394.5	420.6	329.4#	8.4	3.8	6.6	6.6#
थोक कीमत सूचकांक (3)	299.5	320.1	337.1	353.9*	4.4	6.9	5.3	4.6*
औद्योगिक कामगारों के लिए उपभोक्ता कीमत सूचकांक (4)	319.0	351.0	380.0	429.0@	8.9	10.0	8.3	15.3@
धन पूर्ति (एम3) (1000 करोड़ रुपये में)	604.0	701.8	825.4	934.7(6)	13.7	16.2	17.6	13.2(6)

चालू कीमतों पर आयात (करोड़ रुपये में)	122678	138920	151553	132447#	36.4	13.2	9.0	23.2#
(यू एस डालर मिलियन में)	36678	39133	40779	31583#	28.0	6.7	4.2	7.1#
निर्यात चालू कीमतों पर (करोड़ रुपये में)	106353	118817	126286	101850#	28.6	11.7	6.3	11.7#
(यू एस डालर मिलियन में)	31797	33470	33980	24287#	20.7	5.3	1.5	-2.9#
विदेशी मुद्रा परिसम्पत्ति (7) (करोड़ रुपये में)	58446	80368	102507	116515(8)	-11.5	37.5	27.5	13.7(8)
(यू एस डालर मिलियन में)	17044	22367	25975	27429(8)	-18.1	31.2	16.1	5.6(8)
विनिमय दर (रुपया/यू एस डालर) (10)	33.45	35.50	37.16	41.99(9)	-6.1	-5.8	-4.5	-11.5(9)

नोट : सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा सकल घरेलू उत्पाद के आंकड़े फैक्टर कोस्ट पर आधारित है (नई श्रेणी जिसका आधार 1993-94 है।) (Q) क्यू का अर्थ-तात्कालिक आकलन, (A)ए अग्रिम आकलन, (PS) पीएस : अन्तरिम (NA) एन ए उपलब्ध नहीं।

1. कृषि उत्पाद की सूची (बागान सहित 46 फसलों की), जिसके त्रैमासिक आधार का अन्तिम वर्ष 1981-82=100
2. औद्योगिक उत्पादन की सूची 1993-94=100
3. वित्तीय वर्ष के अन्त में, 1981-82=100 आधार वाली सूची।
4. वित्तीय वर्ष के अन्त में, 1982=100 आधार वाली सूची।
5. जनवरी 15, 1999 को 1998-99 के लिए तथा पिछले सालों के लिए वित्तीय वर्ष के अंत का बकाया।
6. अप्रेल 1, 1998 से जनवरी 15, 1999 तक।
7. वित्तीय वर्ष के अंत में बकाया।
8. जनवरी, 1999 के अंत में।
9. अप्रेल-जनवरी, 1998-99।
10. रुपये बनाम यू एस डालर के बीच प्रतिशत परिवर्तन वृद्धि दर बढ़ने/घटने को दर्शाती है।

*जैसा कि 30-1-1999 (अन्तरिम). @ दिसम्बर 1998. # अप्रेल-दिसम्बर 1998

वार्षिक बजट के प्रमुख बिन्दु

1999-2000 के लिए वार्षिक बजट के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं–

- खर्च सुधार आयोग गठित किया जायेगा।
- शून्य आधार पर बजट बनाने की शुरूआत की जायेगी।
- सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में सरकारी इक्विटी (शेयर) को बेचकर 10,000 करो रुपये इकट्ठे किये जायेंगे।
- ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर अधिक जोर दिया जायेगा, ग्राम पंचायतों को अधिक शक्ति दी जायेगी।
- वित्तीय एवं राजस्व घाटे को कम करने के लिए अप्रत्यक्ष करों में भारी सुधार के कदम उठाए जायेंगे।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत किया जायेगा जिसमें वरिष्ठ नागरिक लक्षित अन्नपूर्णा स्कीम शामिल है।
- किसान क्रेडिट कार्ड स्कीम को 20 लाख किसानों तक विस्तार दिया जायेगा।
- ग्रामीण ढांचागत विकास कोष में 3500 करोड़ रुपये दिये जायेंगे।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पूंजी उपलब्ध करवाने के लिए 168 करोड़ रुपये दिये जायेंगे।
- ऋण देने के उद्देश्य से खाद्य एवं कृषि प्रोसेसिंग उद्योगों को प्राथमिक क्षेत्र का दर्जा दिया जाएगा।
- प्याज के लिए 4.5 लाख टन क्षमता वाले भंडारगृहों का निर्माण करवाया जायेगा।
- दवा कम्पनियों के लिए 74 प्रतिशत इक्विटी शेयर स्वचालित मार्ग से उपलब्ध करवाये जायेंगे।
- सीधे विदेशी निवेश की स्वत: अनुमोदन सूची को विस्तार दिया जायेगा।
- डिपोजिटरी मोड के तहत ऋण हस्तांतरण दस्तावेजों पर स्टाम्प ड्यूटी समाप्त की जायेगी।
- नेशनल हाउसिंग बैंक एक्ट में संशोधन किया जायेगा।
- खोज-कर्ताओं की मदद के लिए 20 करोड़ रुपये का राष्ट्रीय फाउण्डेशन कायम किया जायेगा।
- बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के अधिनियमों में ऋण वसूली के प्रावधानों को मजबूत बनाने के लिए जल्दी ही संसद में एक बिल पेश किया जायेगा।
- स्माल स्केल औद्योगिक इकाइयों की मदद हेतु निवेश ऋण उपलब्ध करवाने के लिए नई ऋण बीमा स्कीम शुरू की जायेगी।
- स्थिर स्वर्ण को गतिशील बनाने के लिए नई स्वर्ण जमा योजना लागू की जायेगी।
- म्युचुअल फंड में अप्रवासी भारतीयों के निवेश के लिए मौजूदा रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुमोदन प्रक्रिया का सरलीकरण किया जायेगा।
- बहुआयामी जल संग्रहण विकास कार्यक्रमों को एकीकृत करने के लिए राष्ट्रीय जल संग्रहण विकास अभियान शुरू किया जायेगा।
- राज्यों को भूमि सुधार करने के लिए विशेष वित्तीय सहायता दी जायेगी।
- विदेशी निवेश परिपालन प्राधिकरण (FIIA) गठित किया जायेगा।
- तकनीक संवर्द्धन कोष (TUE) योजना में बुनाई इकाइयों को शामिल किया जायेगा।
- ज्ञान आधारित उद्योगों को मजबूत करने के लिए नये तौर से जोर दिया जायेगा।

- हाउसिंग क्षेत्र में ऋण की आवक को बढ़ाया जायेगा।
- पूंजी बाजार के विश्वास की पुनर बहाली के लिए यू एस-64 को पुनरगठित किया जायेगा।
- राष्ट्रीय मानवीय विकास पहल (NHDI) ली जायेगी ताकि गरीबों के सशक्तिकरण पर भारी जोर दिया जा सके।
- निर्यात की पुनरबहाली, घरेलू वृद्धि को प्रोत्साहन तथा बाहरी धक्कों से अर्थ व्यवस्था को सुरक्षित रखा जायेगा।
- ग्राम पंचायतों के लिए कोष उपलब्ध करवाया जायेगा ताकि प्राथमिक स्वास्थ्य सहूलियतें उपलब्ध करवाई जा सके।
- राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा गारंटी स्कीम को लागू किया जायेगा। तीन सालों में 1.8 लाख नये स्कूल बनाये जायेंगे।
- 50 करोड़ रुपये का क्षतिपूर्ति गारंटी कोष निर्मित किया जायेगा।
- खर्च प्रबंधन तरफ के सरकार के चार सेक्रेटरी स्तर के पद समाप्त कर दिये जायेंगे।
- वर्तमान व्यवस्था में कमियों को जांचने के लिए राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग कायम किया जायेगा।
- म्युचुअल फंड को मजबूत बनाने तथा छोटे खुदरा निवेशकों को राहत देने वाले कर प्रस्ताव लाना।
- टीकों के लिए तकनीकी मिशन का गठन किया जायेगा।
- जैव-विविधता को संरक्षित करने के लिए राष्ट्रीय जैव-संसाधन बोर्ड बनाया जायेगा।
- नई एकीकृत हाथ-करघा प्रोन्नति स्कीम–दीनदयाल हाथ करघा प्रोत्साहन योजना बनाना।
- असाध्य बकाया ऋण मामलों को निपटाने के लिए निपटारा सलाहकार समिति गठन हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को बढ़ावा दिया जायेगा।
- ऋण महीनों के दौरान किसानों को उर्वरक उठाने के लिए छूट की स्कीम लागू की जायेगी।
- 1999-2000 के कुल बजट के खर्च का आकलन 284003 करोड़ रुपये है जिसमें योजना खर्च 77000 करोड़ रुपये है तथा 2,07,003 करोड़ रुपये गैर योजना खर्च है।
- सुरक्षा पर खर्च 45694 करोड़ रुपये है जबकि पिछले साल यह खर्च 41200 करोड़ रुपये था।
- राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को केन्द्रीय योजना सहायता 33000 करोड़ रुपये रखी गई है।
- बुनियादी न्यूनतम सेवाओं की सहायतार्थ तथा कच्ची बस्तियों के विकास के लिए स्कीमों की राशि 3684 करोड़ से बढ़ाकर 4043 करोड़ रुपये रखी गई है।
- गैर-योजना खर्च में ब्याज भुगतान के लिए 10,752 करोड़ रुपये, सुरक्षा खर्च के लिए 4494 करोड़ रुपये तथा राज्यों को अनुदान पेटे 3,621 करोड़ रुपये निर्धारित किये गये हैं।
- केन्द्र के लिए कुल राजस्व 1,09,537 करोड़ रुपये का आकलन किया गया था जबकि बजट में यह राशि 1,16,857 करोड़ रुपये रखा गया है जो आकलन से 7,320 करोड़ रुपये कम है।

***

भारत का 1999 का आम चुनाव
अच्छे के लिए बदलाव
या
धीरे-धीरे अस्थिरता का सामना करो

I. परेशान जन मानसिकता

1. मुश्किल से 12वें आम चुनाव के 13 महिने बाद ही लोगों का पुन: 13वीं लोकसभा के चुनाव के लिए आह्वान किया गया है। पिछले 10 वर्षों (1989-99) के दौरान लोगों ने 8 प्रधानमंत्री और उनकी सरकारें देखी हैं और पांच आम चुनाव (9वें से 13वें) किये हैं।

2. यह दर्शाती है कि भारत की राजनीतिक प्रक्रिया (यानि, इसके सत्ता ढांचे की प्रक्रिया) बीमार और अव्यवहारिक बन चुकी है। या दूसरे शब्दों में इसका अर्थ भारतीय लोगों का दशकों तक एक पार्टी के शासन के बाद अभी विद्यमान मुख्य धारा की सभी पार्टियों पर विश्वास उठ चुका है और इसीलिए टूटा-फूटा जनादेश देना शुरू किया है।

3. जब आज के समय के सन्दर्भ में देखें तो मामला और अधिक गंभीर हो गया है। यह घटना ऐसे क्षण हो रही है जब दुनिया के देश अपने भविष्य की आशा में तीसरी सहस्राब्दी (तीसरा मिलेनियम) में प्रवेश कर रहे हैं जबकि हमारे देश के लोगों में अपने आने वाले समय के बारे में असुरक्षा और अनिश्चितता की मानसिकता घर कर चुकी है। कुछ समय पहले तक भारतीय लोग महसूस करते थे कि हमारा विकास मॉडल यद्यपि नाकाफी और अपर्याप्त है परन्तु एक दिन यह गरीबी और घिनौनी अवस्था से हमें बाहर निकाल लेगा। आज कोई नहीं जानता कि हम किधर जा रहे हैं। यहां तक कि भारत के बड़े 'राष्ट्रवादी' राजनीतिज्ञों और उनकी मुख्य धारा की पार्टियों का साल भर चला आजादी की गोल्डन जुबिली कार्यक्रम आम आदमी में किसी भी तरह के उत्साह को जगाने में असफल रहा।

4. हमारे लागों की मानसिकता को क्या चीज परेशान कर रही है? यह एक सवाल है, आने वाले चुनावों पर हमारी राय रखने से पहले इस सवाल से निपटने की जरूरत है। हमारे विचार से इसे कुछ मूलभूत भारतीय तथ्यों पर नजरसानी करके देखा जा सकता है।

II. हमारे मानवीय संसाधनों की बहुत बुरी स्थिति

5. पहला मूलभूत तथ्य है कि लोगों की परेशान मानसिकता का हमारे मानवीय संसाधनों की मौजूदा अत्यधिक चिन्ताजनक और बुरे हालात से निकट का संबंध है।

6. संक्षेप में कहा जाए तो हमारे 62 प्रतिशत लोग गरीबी की श्रेणी में आते हैं, 40 प्रतिशत लोग निहायत गरीबी में जी रहे हैं, जिनके पास ना काम है, ना घर है, ना समुचित भोजन, ना बिजली और ना ही साफ पीने का पानी है, 40 प्रतिशत को आधारभूत स्वास्थ्य

सुविधाएं उपलब्ध नहीं है, 75 प्रतिशत के पास उचित शौचालय सुविधा नहीं है, 10 प्रतिशत लोग शहरी कच्ची बस्तियों में रहते हैं, 48 प्रतिशत लोग पूर्णतया अनपढ़ हैं, 5 प्रतिशत बेरोजगार हैं और 33 प्रतिशत अर्द्ध-बेरोजगार हैं, 33 प्रतिशत लोगों के पास अपना घर नहीं है, 10 प्रतिशत अशक्त लोग हैं जो उपेक्षित जीवन जी रहे हैं। लगभग 12 प्रतिशत भूमिहीन हैं जो हमारे समाज का सबसे गरीब वर्ग बनता है। 53 प्रतिशत से अधिक बच्चे आधारभूत और गुणवत्ता वाली शिक्षा के अधिकार से वंचित हैं। इस देश में लगभग 75 प्रतिशत महिलाएं किसी न किसी तरह के दमन की शिकार हैं। देश में दलितों, आदिवासियों और अन्य वंचित समूहों के बारे में जितना कहा जाए उतना ही कम पड़ता है।

7. टाइम्स ऑफ इंडिया के एक सर्वे के अनुसार, 80 प्रतिशत आम भारतीय बाहर जाना और वहां काम करना चाहता है। देश के अच्छे पढ़े-लिखे विद्वान और विशेषज्ञों में से प्रतिवर्ष लगभग 6000 उच्च प्रशिक्षित भारतीय, जिनमें 40 प्रतिशत इंजीनियर, 10 से 12 प्रतिशत डॉक्टर, और 15 से 20 प्रतिशत वैज्ञानिक दूसरे देशों में अधिक पैसे वाला रोजगार प्राप्त करने चले जाते हैं।

8. यू एन डी पी-1998 की रिपोर्ट (जिसमें औसत उम्र, साक्षरता और कुल मिलाकर अच्छे जीवन के आधार पर, ना कि केवल आय के पैमाने से–मानवीय विकास सूचकांक में देशों के बीच भारत की स्थिति बताई गई है) के अनुसार 174 देशों में से भारत का 139वां स्थान है जो 1997 में 138वें स्थान से नीचे गिरा है।

9. 1998 यू एन डी पी रिपोर्ट आगे चेतावनी देती है कि विकास प्रक्रिया में देश को भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है जिसका कारण इसके जलवायु गड़बड़ी एवं कई स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति जागरुक नहीं रहने और लापरवाही बरतने में है। पर्यावरण नुकसान के बारे में एक रूढिवादी आकलन के अनुसार 1992 में जी डी पी का 4.5 प्रतिशत या 10 अरब डालर से अधिक नुकसान हुआ। एक ऊंचे आकलन के अनुसार भारत के लोगों को भारतीय विकास मॉडल की वजह से हमारी जी डी पी का 6 प्रतिशत या 13.8 अरब डालर का नुकसान हुआ।

10. 1998 यू एन डी पी रिपोर्ट आगे जोड़ती है कि शहरी हवा के प्रदूषण से एक वर्ष में भारत को 1.3 अरब डालर का नुकसान होता है जबकि पानी की गिरावट से स्वास्थ्य के क्षेत्र में हमें प्रतिवर्ष 5.7 अरब डालर की कीमत चुकानी पड़ती है, यह लगभग देश के कुल पर्यावरणीय नुकसान का 3/5वां भाग है।

III. हमारे पर्यावरणीय संसाधनों की खराब होती स्थिति

11. द्वितीय मूल तथ्य है कि पर्यावरणीय संसाधनों की बिगड़ती स्थिति से जुड़कर हमारे मानवीय संसाधनों की स्थिति और खराब हो रही है।

12. हमारी कुल 14.3 करोड़ हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि का लगभग 60 प्रतिशत भूमि मृदा क्षरण, सेम समस्या और क्षारियता से खराब हो रही है। दूसरी 1.6 करोड़ हैक्टेयर भूमि नालों, खड्डों और घाटी-दर्रों से खराब हो रही है।

13. जंगलों का सबसे अधिक नुकसान हो रहा है। सन् 1864 में देश की 60 प्रतिशत जमीन पर पेड़ों की छाया थी। सन् 1952 में यह कम होकर 22 प्रतिशत तक पहुंची थी जो आज केवल मात्र 11 प्रतिशत है।

14. पानी की समस्या अधिक से अधिक गंभीर होती जा रही है। वर्षा के पानी की निरन्तर बढ़ती बर्बादी और भूमिगत जल के दुरुपयोग और अति दबाव से जल की उपलब्धता कम हो रही है। पहले से ही कस्बों और गांवों में पानी की कमी चिंता का विषय बन चुका है। पानी की गुणवत्ता (चाहे बहता पानी हो, खड़ा या भूमिगत हो) लगातार गिरती जा रही है।

15. जहरीले रसायनों के उपयोग, मोटर-गाड़ी, यातायात के साधनों एवं कोयला आधारित थर्मल प्लान्टों और कुछ अन्य उद्योगों की वजह से प्रदूषण फैल रहा है। विज्ञान और पर्यावरण केन्द्र के अनुसार भारत में वाहनों की वजह से प्रदूषण 8 गुना बढ़ गया है।

16. जंगल नष्ट होने, भूमि और पानी की गिरावट और हवा के प्रदूषण ने भारत के आनुवांशिक (जेनेटिक) संसाधनों (जो भारत के 45,000 वनस्पति की किस्मों और 75,000 जानवरों की प्रजातियों से बना है) के लिए चुनौती खड़ी कर दी है।

17. सन् 1947 की हमारी 34.2 करोड़ आबादी की जगह आज 100 करोड़ की अद्वितीय बढ़ोतरी का परिणाम गंभीर सामाजिक विकृतियों में निकल रहा है।

IV. दोगलेपन और धोखेबाजी में नये रिकार्ड

18. तीसरी मूलभूत सच्चाई है कि हमारे बहुत से उच्च राजनीतिज्ञों की बेईमान राजनीति और भ्रष्ट जीवन ने लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया से निराश कर दिया है और लोगों के दिमाग में इन राजनीतिज्ञों का प्रभाव और साख गिर चुकी है।

अभी देखिए 2 उच्च राजनीतिक रोल मॉडल्स–बाजपेयी और सोनिया–की व्यवहार पद्धति को। बाजपेयी ने सदन पटल पर 12वीं लोकसभा के पहले सत्र में घोषणा की थी कि अब के बाद मैं लोकसभा चुनाव नहीं लड़ूंगा और पुन: प्रधानमंत्री बनने की सूची में नहीं रहूंगा। परन्तु अब वह 13वीं लोकसभा चुनाव के लिए भाजपा उम्मीदवारों की सूची में सबसे ऊपर हैं। इसी तरह, अप्रेल 1999 में बाजपेयी सरकार गिरने के बाद सोनिया ने राष्ट्रपति से कहा कि वह 272 लोकसभा सदस्यों का समर्थन रखती है। परन्तु ठीक दो दिन बाद केवल 233 समर्थकों की सूची पेश की। लालू, मुलायम, कांशी, जयललिता और उन जैसे राजनीतिज्ञों की गिरगिट राजनीति का पूरे विश्व में कोई सानी नहीं है। वास्तव में, हमारे सम्पूर्ण रंग-रंगीले राजनीतिज्ञों ने बेईमानी, दोगलापन और धोखेबाजी में रिकार्ड कायम कर दिये हैं। अब लोगों को अहसास हो गया है कि इन सब राजनीतिक किस्मों के कार्यक्रमों, प्राथमिकताओं, तौर-तरीकों व रिकार्डों में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है तथा कि ये सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। सहज भाव से, इसने मुख्य धारा की सभी पार्टियों की झूठी साख को भी झकझोर दिया है।

19. जन स्तर पर, भ्रष्टाचार और बेईमानी की शासक संस्कृति ने चौतरफा अनैतिक वातावरण पैदा किया है। ठगी, रिश्वतखोरी, काला बाजारी, मिलावट, नशीली दवाइयों का व्यापार, तस्करी, पक्षपात, जातिवाद, साम्प्रदायिकतावाद, इत्यादि देश में चौतरफा फल-फूल रहे हैं–जिसने लोगों के जीवन को दुभर बना दिया है।

V. भारतीय समाज के मुख्य लक्षण

20. उपरोक्त वर्णित तीन मूलभूत तथ्य इस बात का द्योतक है कि आज भारतीय

समाज में असमानता, गैर-टिकाऊपन, अकुशलता, हिंसक और भ्रष्ट प्रकृति मुख्य पहलू बन चुके हैं।

VI. हमारी दुख-तकलीफों के स्रोत

21. चौथा मूलभूत तथ्य है कि हमारे मानवीय और पर्यावरणीय दुख-तकलीफों और गिरावट भरी राजनीति का मुख्य स्रोत देश के बाहर नहीं बल्कि अन्दर (दिल्ली में) है।

22. मुख्य गलती हमारी सामाजिक व्यवस्था (यानि, भारत के संविधान) में निहित है जिसकी केन्द्रीकृत प्रकृति ने हमारे देश की वास्तविक प्रकृति—यानि, बहुलता (या विभिन्नता) का उल्लंघन किया है। इसने केन्द्रीकृत राजनीति, आर्थिकता और संस्कृति के लिए काम किया है, इस प्रकार भारतीय लोगों की विभिन्न श्रेणियों (नस्ली, सांस्कृतिक, धार्मिक, जातीय, इत्यादि) के बीच तनाव उत्पन्न किया है। अत: आजादी के 50 साल बाद भी देश के विभिन्न सामाजिक समूहों में भावनात्मक एकता की कमी क्यों है तथा क्यों देश के सामने राष्ट्रीय एकता का सवाल निरन्तर मुद्दा बना हुआ है।

23. द्वितीयत:, चूंकि गलती हमारी केन्द्रीकृत राजनीति में निहित है अत: इसकी (केन्द्रीकृत राजनीति की) प्रकृति के अनुसार ही लोगों में इसने सत्ता और पैसे की लालसा पैदा की और इन्हें लोगों के बीच सबसे अधिक ताकतवर प्रेरणादायक पहलू बना दिया। सत्ता और पैसे के निजीकरण (सामाजिक पहलू से तोड़ते हुए) के पहलू ने राजनीति को नैतिकता (एक सामाजिक आवश्यकता) से तोड़ दिया और परिणामस्वरूप इन्हें (पैसे और सत्ता) हासिल करने के लिए सभी साधनों (जिनमें ज्यादातर गलत तरीकों) को प्रोत्साहित किया। इस अविवेकी राजनीति का आवश्यक परिणाम हमारी राजनीति में अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातिवाद और हिंसा के निरन्तर बढ़ने में निकला। ऐसे वातावरण में हमारे उच्च राजनीतिज्ञों और दूसरी राजकीय संस्थाओं ने कानून के राज का दुरुपयोग और गलत उपयोग किया।

24. तृतीयत:, हमारी राष्ट्रीय आर्थिकता में गलती निहित है जो कारपोरेट और भूमि सम्पन्न लोगों के हितों की आर्थिकता से चरित्रित है। इसीलिए हमारी आर्थिकता को समता, टिकाऊपन और उत्पादक आधार पर ढालने में असफल रहने का परिणाम हमारे मानवीय और पर्यावरणीय संसाधनों की गुणवत्ता के बर्बाद होने में निकला है।

25. चौथी गलती हमारी विदेश-सह-रक्षा नीति में चिह्नित होती है, जिसके अनुसार भारतीय लोगों की शांति और स्थायित्व की अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता की अनदेखी करके उल्टे दक्षिण एशिया क्षेत्र में बड़ी सैनिक ताकत बनने का रास्ता अख्तियार किया है। इस नीति ने हमें हमारे दो पड़ोसियों (पाकिस्तान और चीन) के साथ चार युद्धों में धकेला और पाकिस्तान के साथ हमें निरन्तर टकराव के रास्ते पर रखा। इसने हमारे कमजोर वित्तीय संसाधनों को निगलकर हमारी मानवीय और पर्यावरणीय स्थिति को बिगाड़ दिया।

26. पांचवीं गलती हमारे व्यवहार के स्तर की भी है जहां अवसरवाद, दासता, सत्ता और धन की लालसा, इत्यादि कमजोरियां सामान्य जन जीवन का हिस्सा बन चुकी हैं।

27. हमारे देश की असफलताओं के लिए विभिन्न किस्म के बेईमान और धोखाधड़ी भरे राजनीतिक नजरिए—यानि, अल्पसंख्यक-समर्थक धर्म निरपेक्षतावाद, ऊंची जाति

का दमन, विदेश से उत्पन्न तकलीफें, भारत का बड़ा आकार और जनसंख्या, इत्यादि को बताने वाली धारणाएं—हमारे देश की बहु-पक्षीय सामाजिक वास्तविकता के उलट है।

VII. मामलों को सही करने के बारे में

28. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भारत में मामलों को सही करने की मांग को पूरा करने के लिए तीन सवालों को छांटना जरूरी है : (क) एक वास्तविक कार्यक्रम जो विद्यमान सामाजिक वास्तविकताओं के अनुसार भारत की पुनर-संरचना करे; (ख) उपरोक्त कार्यक्रम को आगे ले जाने के लिए लोगों के संघीय/महासंघीय मंच बनाना; और (ग) 13वीं लोक सभा चुनावों में एक उचित प्रत्युत्तर देना।

(क) भारत का पुनर-संरचना कार्यक्रम

29. कोई पुनर-संरचना कार्यक्रम तीन उसूलों की पूरी तरह पालना की मांग करता है : (क) पिछले अनुभव से सीखना (जो दर्शाता है कि सन् 1947 के बाद भारत का राष्ट्रीय मॉडल ने ठीक काम नहीं किया अत: पुनरसंरचना की जरूरत है); (ख) विश्व भर में उभरे क्षेत्रीय समुदायों की वर्तमान वास्तविकता को ध्यान में रखा जाए, जिसकी मांग है कि भारत की पुनरसंरचना विकासशील सार्क समुदाय की रोशनी में की जाए; और (ग) एक सही भविष्य दृष्टिकोण अपनाया जाए (जिसका आज की अत्यधिक प्रभुत्वशाली सामाजिक प्रवृत्ति के साथ मेल हो, यानि, देशों की अन्तरनिर्भरता का वैश्वीकरण)।

30. इस मॉडल के मुख्य पहलू निम्न हो सकते हैं—

(i) दृष्टिकोण : लम्बे समय दौरान एक तर्कसंगत, न्यायिक और उचित वैश्विक मानव समाज की स्थापना करना और आने वाले कुछ वर्षों में दक्षिण एशिया समुदाय (सार्क) की स्थापना करना, ये दोनों मॉडल एक तरफ प्रकृति-समर्थक होंगे तो दूसरी तरफ जन-समर्थक।

(ii) उद्देश्य : तात्कालिक तौर पर मनुष्य और प्रकृति दोनों के हितों की सेवा करने वाली एक तर्कसंगत, न्यायिक और उचित सामाजिक व्यवस्था की भारत में स्थापना करना।

(iii) सामान्य दृष्टिकोण : वैज्ञानिक वास्तविकतावाद, जिसमें पर्यवेक्षण, प्रायोगिक विधि और व्यवस्थित करने की प्रक्रिया से चीजों का अध्ययन किया जाए।

(iv) सामाजिक परिप्रेक्ष्य : तर्कसंगत मानवतावाद।

(v) सच्ची विश्व शांति : महाशक्तिवाद की राजनीति और इसकी टकराववादी पद्धति को रद्द करते हुए विश्व में सच्ची शांति को सुनिश्चित करने के लिए कठिन परिश्रम करना, विभिन्न राष्ट्रों के हितों में मेल बैठाना, क्षेत्रीय तनाव बिन्दुओं को शांत करना, पूर्ण निशस्त्रीकरण की तरफ आगे बढ़ना, परमाणु हथियारों का नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र को सौंपना, इत्यादि।

(vi) सार्क सुरक्षा और विकास : सार्क तंत्र के माध्यम से सभी द्विपक्षीय विवादों को हल करना और जम्मू-कश्मीर समस्या के त्रिपक्षीय हल निकालने के लिए जेके राज्य पर संयुक्त भारत-पाक या सार्क सह-राज्य की स्थापना करना जो राज्य के सुरक्षा, विदेश मामले और मुद्रा नीति के लिए जिम्मेवार हो, जबकि जेके राज्य की अर्द्ध-स्वतंत्रता

सुनिश्चित करते हुए राज्य के अन्दर प्रत्येक नस्ली क्षेत्र को अधिकतम संभव स्वायत्तता दी जाए। यह सार्क के विकास का रास्ता खोलेगा जो समय दौरान एक स्वतंत्र व्यापार साझा बाजार क्षेत्र के रूप में उभरेगा, जिसकी एक क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्था होगी और एक महासंघीय राजनीतिक संघ होगा। भारत और पाकिस्तान दोनों के परमाणु हथियार और उससे संबंधित संचालित व्यवस्था नहीं खड़ी करने की भी प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

(vii) जनवादी व्यवस्था और जन-सशक्तिकरण : सभी आन्तरिक विवादों का हल बातचीत के माध्यम से निकालना। भारत को संघीय-महासंघीय आधार पर संगठित करना जिसमें राज्यों को अर्द्ध-स्वतंत्रता का दर्जा और पंजाब का विशेष दर्जा प्रदान करना। यह भारत के नस्ली, साम्प्रदायिक और जातीय विवादों को हल करने में सहायता करेगा। सभी संस्थाओं का पूर्ण जनवादीकरण करना, सभी स्तरों पर कानून का राज जनता के सशक्तिकरण (यानि, निर्णयकारी प्रक्रिया में जनता की भागीदारी, सभी विकास कार्यों की जनता द्वारा देखरेख, सूचना के अधिकार, सभी सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को समाप्त करना, किसी राष्ट्रीय मुद्दे पर जनमतसंग्रह करने का अधिकार, इत्यादि) के माध्यम से कायम करना और उसकी व्याख्या न्यायपालिका (जिसके पास अवमानना की कानूनी ताकत ना हो) के माध्यम से हो। किसी कानून पर न्यायपालिका और विधायिका के बीच मतभेद को जनमतसंग्रह के माध्यम से तय किया जाए। हर स्तर पर धन और बाहुबल से मुक्त चुनाव राज्य खर्च पर किये जाएं।

(viii) आर्थिकता : एक तरफ प्रकृति की व्यवस्था की रक्षा करना और दूसरी तरफ लोगों के हितों (यानि, लोगों का सशक्तिकरण, सामाजिक असमानता और भेदभाव को हटाना, धनवान-गरीब, ग्रामीण-शहरी और लिंग असमानता को मिटाना, इत्यादि) को प्रोत्साहन देना। लोगों, खासकरके महिलाओं को पर्यावरण संरक्षण और जनसंख्या नियंत्रण के कार्य में शामिल करना। एक संतुलित आर्थिक वृद्धि जिसका वैश्विक आर्थिकता के साथ निकट का एकीकरण बाजार उत्पादित वृद्धि और राजकीय संगठित सामाजिक न्याय के दो तरफा तंत्र के माध्यम से संचालित हो एवं टिकाऊपन, उत्पादकता, समता, जनवाद और पारदर्शिता के उसूलों से निर्देशित हो।

(ix) मूल्य व्यवस्था : तर्कसंगत मानवतावादी विचार एवं जनवादी व्यवस्था को प्रोत्साहित करना।

(x) विदेश-सह-सुरक्षा मामले : विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के साथ सहयोग और दोस्ती का अनुसरण करना और जम्मू-कश्मीर की समस्या का उचित हल करने के बाद रक्षा खर्च में 50 प्रतिशत कमी लाना।

31. उपरोक्त वर्णित पुनरसंरचना कार्यक्रम आवश्यक तौर पर कई घटकों से बनता है। ये सभी इतने एकीकृत हैं कि यदि किसी अकेले घटक को दूसरे घटकों से तोड़ दिया जाए तो वह घटक भी काम नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए लोगों के सशक्तिकरण के सवाल को अगर शांति की नीति के साथ जोड़ दिया जाए तो यह कारगर हो सकता है। पाकिस्तान के खिलाफ शीत युद्ध के हालात में टिकाऊ विकास का मुद्दा केवल पेपर पर ही कार्य करेगा।

32. निसंदेह, आज भारत एक संकट-मुक्त देश बन सकता है, अगर यह उपरोक्त पुनरसंरचना के मॉडल को लागू करने का फैसला करे जिससे वैश्वीकरण के नये ऐतिहासिक

युग से पैदा हो रहे सभी राष्ट्रीय और वैश्विक मुद्दों को उचित प्रत्युत्तर दिया जा सके। सन् 1947 के बाद की ज्यादातर असफलताओं का कारण इस अप्रासंगिक राष्ट्रीय मॉडल में निहित है। निश्चित ही, भारत के परम्परागत उपाय–जैसे, गांधी का राम राज्य, नेहरूवादी समाजवाद, जेपी की सम्पूर्ण क्रांति, गोलवलकर का हिन्दूवाद, लोहिया का मंडलवाद, भाजपावाद-विरोधी, कांग्रेसवाद-विरोधी, अमेरिकन राष्ट्रपतित्व व्यवस्था, इत्यादि–नये वैश्विक युग की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने लायक नहीं है। आशा के अनुरूप, विश्व मान्यता प्राप्त पुराने राष्ट्रीय सिद्धान्त–बाजार निर्देशित पश्चिमी उदारवाद और सार्वजनिक क्षेत्र संचालित कम्युनिज्म आज चौतरफा गिरावट में हैं और नयी विश्व चुनौतियां–यानि, पर्यावरणीय गिरावट, जनसंख्या विस्फोट, नस्ली दावे, इत्यादि (जो इन्हीं मॉडलों द्वारा पैदा की हुई समस्याएं हैं)–का सामना करने में असफल है। निसंदेह, नई आवश्यकता आधारित समुचित मॉडल की अनुपस्थिति में देश विभिन्न पारम्परिक नमूनों के बीच इधर से उधर झूल रहे हैं। परन्तु, कोई रास्ता नहीं मिल रहा है, इसलिए हर कोई कुछ नये रास्ते की तरफ देख रहा है।

(ख) एक लोक आधारित संघीय/महासंघीय मोर्चे की आवश्यकता

33. उपरोक्त वर्णित कार्यक्रम के संबंध में अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्या यह सवाल है कि इसे व्यवहार में कौन लागू करेगा। स्पष्टतया, इसकी मांग अधिकतम सम्भव विस्तृत संघीय-महासंघीय मोर्चा बनाने की है ताकि इस कार्यक्रम को लोगों में ले जाया जा सके। जो लोग केवल इसके पांचवें (v), छठे (vi) और सातवें (vii) बिन्दुओं से ही सहमत हों उन्हें भी इस मोर्चे में शामिल किया जा सकता है।

34. यह मोर्चा भारत के बहुलतावादी चरित्र के बिल्कुल अनुसार है जो देश की विभिन्न नस्ली और क्षेत्रीय समुदायों और उनकी आकांक्षाओं का प्रतीक है। यह मोर्चा लम्बे समय तक चलने वाले संयुक्त मोर्चा एवं गठजोड़ सरकारों के युग में भी प्रासंगिक है, खासकरके ऐसे समय में जब लोगों के बीच मुख्यधारा की केन्द्रीकृत पार्टियों के बारे में चौतरफा दोष देखने का दौर है।

35. यह किसी भी स्तर पर बनाया जा सकता है। निश्चित हालात के अनुसार, कुछ अन्य जनवादी मुद्दे भी किसी भी जगह इस कार्यक्रम के साथ जोड़े जा सकते हैं।

(ग) सिद्धान्तों के आधार पर वोट

36. 13वें लोकसभा चुनाव में एक उचित प्रत्युत्तर यही है और हो सकता है कि इसका उद्देश्य हमारी राजनीतिक प्रक्रिया को भ्रष्टाचार और अपराधीकरण से स्वतंत्र करना तथा पैसा बनाने और सत्ता हड़पने, साम्प्रदायिकतावाद और जातिवाद के तरीकाकार से मुक्ति पा लेना। परन्तु यह उद्देश्य केवल तभी हासिल किया जा सकता है जब हमारे लोगों के सामने वास्तविक जनवादी विकल्प हो।

37. ये चुनाव ऐसे वक्त में हो रहे हैं जब लोगों के सामने वास्तविक पसंद मौजूद नहीं है। किसी व्यवहारिक विकल्प की अनुपस्थिति में मुख्यधारा की पार्टियां लोगों को अपने उम्मीदवारों के पक्ष में झुकाने की समर्थता रखती हैं।

38. ऐसे विशिष्ट वस्तुगत हालात मांग करते हैं कि इस प्रचलित धन-सत्ता आधारित

चुनावी नजरिए को सैद्धान्तिक और जनवादी दिशा में तब्दील करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने की जरूरत है–

(i) भारत के पुनरसंरचना कार्यक्रम के बुनियादी सिद्धान्तों को लोकप्रिय बनाना।

(ii) मुख्यधारा की पार्टियों के कार्यक्रमों और उनके बेईमान तरीकों के नकारात्मक प्रभाव को लोगों के सामने रखना।

(iii) चुनावों में स्वार्थ आधारित उपयुक्तता की बजाए सिद्धान्तों के आधार पर भाग लेने की लोगों से अपील करना और उन्हें अपराधियों व भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को रद्द करने एवं अपने वोट देने का पैमाना–ईमानदारी, सच्चाई, सिद्धान्त पर खड़े रहने और लोगों की सेवा करने वाले तर्कसंगत मानवतावादियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं (जो विभिन्न स्वैच्छिक आन्दोलनों, यानि, पर्यावरण, शांति, मानवाधिकारों, सर्वोदय, इत्यादि से जुड़े), महिलाओं, वंचितों, अल्पसंख्यकों और विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों का चुनाव करने का बनाना चाहिए।

39. जहां कहीं भी वांछित और सम्भव हो जनवादी ताकतें उम्मीदवार खड़े कर सकती हैं और लोगों को गोलबन्द करने के लिए सैद्धान्तिक चुनाव प्रचार आयोजित करे।

VIII. चुनाव के बाद का सम्भव परिदृश्य

40. लोगों की मानसिकता और चुनावी पार्टियों के हालात पर नजरसानी करना दर्शाता है कि चुनाव के बाद का सामाजिक परिदृश्य वर्तमान परिदृश्य से कोई ज्यादा बुनियादी अन्तर वाला नहीं होगा। स्पष्टतया, 12वें लोकसभा चुनाव से अब तक लोगों की मानसिकता में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं झलकता है। और इसी तरह चुनावी पार्टियों और उनके चुनावी समझौते किसी बुनियादी बदलाव को जाहिर नहीं करते हैं।

41. इस अनुमान के मद्देनजर सत्ता की गद्दी किसी एक पार्टी द्वारा हासिल करने की संभावना मुश्किल है। हो सकता है कि भाजपा और कांग्रेस अपने-अपने स्थान बदल लें।

42. हमारे सामाजिक परिदृश्य के सूचक किसी बुनियादी या साधारण जन तकलीफों के कम होने की संभावना का कोई संकेत नहीं दे रहे हैं सिवाय कुछ यहां-वहां छोटे-मोटे सुधारों के अलावा। इस प्रकार लोगों के जीवन की गुणवत्ता में कोई बड़े बदलाव की संभावना नहीं है।

43. आने वाला समय नई संभावनाओं से भरा हुआ है। यह संभावना इस संदर्भ में प्रकट हो रही है कि एक तरफ विश्व के विभिन्न भागों (यानि, यूगोस्वलाविया, कोसोवो, इजरायल, पूर्वी तिमोर, जम्मू-कश्मीर, इत्यादि) में सैनिक दुस्साहसवाद अफसल हुआ है तो दूसरी तरफ समानता और सामाजिक न्याय, मानवाधिकारों, पर्यावरणीय संरक्षण, इत्यादि के लिए आन्दोलनों में इजाफा हुआ है। ऐसे प्रत्येक आन्दोलन के और अधिक फैलने की अत्यधिक संभावना है।

44. यह हमारे समय का आह्वान है कि सभी सच्ची शांति पसंद और जनवादी ताकतें तेजी से बदलते हुए हालात में प्रभावी क्रिया और प्रतिक्रिया के लिए तैयार हो जाएं और लोगों को उनकी तात्कालिक समस्याओं के साथ-साथ भारत की पुनरसंरचना के कार्यक्रम पर संगठित करना उच्च प्राथमिकता बनाएं। 10-6-1999

***

कारगिल संघर्ष और कटुता उत्पन्न करती जम्मू-कश्मीर समस्या
भारत-पाक अन्ध राष्ट्रवाद की उपज
अन्तर-निर्भर राष्ट्रीय दृष्टिकोण में इसका हल

I. कारगिल संघर्ष द्वारा उजागर तथ्य

1. अगर कारगिल संघर्ष ने 100 प्रतिशत कोई चीज सिद्ध की है तो वह है भारतीय सरकार की परमाणु शस्त्र आधारित सुरक्षा नीति का सम्पूर्ण दिवालियापन। पोखरन धमाके के बाद बाजपेयी सरकार ने अत्यधिक उच्च स्वर में घोषणा की कि परमाणु क्षमता भारतीय सुरक्षा व्यवस्था को किसी भी चुनौती से परे हद तक शक्ति प्रदान करेगी और अन्तर्राष्ट्रीय मसलों में देश की स्थिति मजबूत करेगी। परन्तु यह सब गलत साबित हुआ।

2. कारगिल-द्रास क्षेत्रों में घुसपैठियों द्वारा रणनीतिक मोर्चे कायम करने और पाकिस्तान द्वारा खुलेआम उनका समर्थन करने से रोकने में परमाणु बम का डर असफल हो गया। अब, यह हथियार घुसपैठियों को वापस धकेलने में अप्रभावी है। केवल विश्व जनमत की राय के दबाव में पाकिस्तान घुसपैठियों को ये पहाड़ियां खाली करने के लिए कह सकता है या आ रहा सर्दी का मौसम ही घुसपैठियों को ऊंची जगह खाली करने और वापिस जाने के लिए मजबूर कर सकता है। इस समय भारतीय सेना के लिए कब्जा किया क्षेत्र खाली करवाना असम्भव है, जिसमें मुख्य बाधा ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी क्षेत्र की टोपोग्राफी है।

3. अगर घुसपैठियों को विश्व जनमत का दबाव पीछे नहीं हटा पाता है तो ऐसी स्थिति में चौथा भारत-पाक युद्ध हो सकता है जो परमाणु आयाम लिए होगा। ऐसा युद्ध भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों को भारी बर्बादी देगा तथा विश्व के लोगों का भारी नुकसान करेगा। अगर किसी तरह भारत और पाकिस्तान की सहज बुद्धि उन्हें सम्पूर्ण युद्ध की तरफ जाने से रोक देती है तो भी चल रहा निम्न स्तरीय संघर्ष भी लगातार मानवीय और वित्तीय अर्थों में भारत को निचोड़ता रहेगा। यहां प्रतिदिन 10 मौतें और 20 करोड़ रुपया खर्च होता है जिससे दिसम्बर 99 के अन्त तक देश के 2000 लोगों की अमूल्य जान जा चुकी होंगी और लगभग 4200 करोड़ रुपये खर्च हो जायेंगे।

4. पोखरन के बाद भारतीय सरकार की अन्तर्राष्ट्रीय साख पर कम ही बोलना अच्छा रहेगा। इसकी 50 साल पुरानी शान्तिप्रिय और परमाणु विरोधी साख की जगह एक ताकत के भूखे और बड़बोले राष्ट्र की साख बनी है। अब ना तो निर्गुट राष्ट्र, ना ही जी-8 या जी-5 इसे विश्व समुदाय का जिम्मेदार सदस्य मानते। इसका अपने मुंह से सुरक्षा परिषद की सदस्यता की सिफारिश का किसी भी कोने से मुश्किल से ही कोई सकारात्मक प्रत्युत्तर मिलता है।

5. परमाणु विस्फोट के बाद अत्यधिक आश्चर्यजनक रूप से जम्मू-कश्मीर भारतीय संघ का अभिन्न अंग होने के अपने 5 दशक पुराने दृष्टिकोण को भारतीय सरकार छोड़ गई है। लाहौर घोषणा (फरवरी 1999) में इसने जम्मू-कश्मीर की विवादित प्रकृति को स्वीकार कर लिया, इस प्रकार 15 दिसम्बर 1994 में भारतीय संसद के दोनों सदनों में सर्वसम्मति से ली गई प्रतिज्ञा और घोषणा–कि जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और उस पर कोई वार्ता नहीं हो सकती है–के ठीक उलट है और उस फैसले का उल्लंघन है। खुद प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने भारतीय संविधान की धारा 370 को समाप्त करने और इस प्रकार जम्मू-कश्मीर को पूर्ण भारतीय बनाने के अपने लम्बे राजनीतिक दावे के ठीक उलट 180^0 का मोड़ काट लिया।

वास्तविकता हमेशा सभी तरह की अवास्तविक प्रतिज्ञाओं और राजनीतिक चालबाजियों को गिरा देती है। और यही हुआ है अटल बिहारी बाजपेयी के दृष्टिकोण के साथ और हमारे संसदीय प्रस्तावों के साथ।

6. कारगिल विवाद ने हमारी परमाणु सुरक्षा व्यवस्था के खूफिया तंत्र की असफलता के दूसरे सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु को उजागर किया है। भारत की विभिन्न खूफिया एजेन्सियां–रॉ, आई बी, सेना खूफिया तंत्र, बी एस एफ खूफिया तंत्र, राज्य सी आई डी, इत्यादि–सभी किसी भी घुसपैठ से अनभिज्ञ रही जबकि इस इलाके के गडरिये और आम आदमी को इसकी जानकारी हो गई थी। अब इस सुरक्षा चौकसी की कमी का खामियाजा देश को मानवीय और भौतिक रूप से बहुत अधिक मात्रा में चुकाना पड़ रहा है। इस कष्टदायक नुकसान के लिए बाजपेयी सरकार पूर्ण रूप से जिम्मेवार है। इसी प्रकार की घटना कांग्रेस के शासन में 1962 के हिन्द-चीन युद्ध के समय हुई थी। यह स्थिति सभी अति-उत्साही परमाणु समर्थकों के खोखलेपन को जाहिर करती है जो हमेशा डींगें हांकते हैं और निम्न स्तर की कारगुजारी दिखाते हैं।

7. कारगिल विवाद ने तीसरा बिन्दु सामने लाया है कि पाकिस्तान ने विभिन्न तरह के घुसपैठियों को संगठित करके वास्तविक नियंत्रण रेखा के पार भेजा है। यह सभी रूढ़िवादी ताकतों के दोगलेपन को दर्शाता है, जो हालांकि बात शांति की करते हैं लेकिन निरन्तर ढके-छुपे रूप में आग सुलगाते रहते हैं।

8. अगर इस तथ्य की प्रामाणिकता को पाकिस्तान नकारता है तो पाकिस्तान के विदेश मंत्री ने वास्तविक नियंत्रण रेखा (जो 1972 से विद्यमान है) और युद्ध विराम रेखा (जो 1948 से कायम है) की वैधता के बारे में सन्देह क्यों खड़े किये हैं।

9. अगर कोई (जैसे कि भारतीय प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री ने कहा है) कारगिल घुसपैठ के लिए सारा दोष पाकिस्तान की सेना पर मंढने की कोशिश करता है तो सवाल उठता है कि पाकिस्तानी प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री ने पाकिस्तान के लिए भारत की तरफ से किसी भी चुनौती की स्थिति में परमाणु बम का उपयोग करने की धमकी क्यों दी है।

10. कारगिल विवाद द्वारा चौथा महत्वपूर्ण स्वागत योग्य बिन्दु सामने आया है कि पाकिस्तान और भारत दोनों देशों के आम लोगों के बीच किसी तरह का युद्ध-उन्माद नहीं है। जबकि दोनों देशों में झगड़ालू ताकतें अन्धराष्ट्रवादी नारे लगाती रही हैं। समस्त तनाव भरे दौर में जन भावना में सहनशीलता और युद्ध से बचने का आम अहसास बना रहा है।

11. पांचवां, परन्तु कारगिल विवाद द्वारा उभारा गया अत्यधिक महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि किसी तरह की अनहोनी घटना को रोकने के लिए विश्व समुदाय (जिसमें जी-8, चीन, कॉमनवैल्थ और अन्य विकासशील देश शामिल हैं) ने अत्यधिक महत्वपूर्ण और सकारात्मक भूमिका अदा की है। विश्व समुदाय ने कारगिल संघर्ष को एक सम्पूर्ण भारत-पाक युद्ध के रूप मे फूट पड़ने से रोकने के लिए अपना पूर्ण दबाव कायम किया।

12. शुरूआत में, दोनों तरफ के जिम्मेवार क्षेत्रों से कुछ युद्धप्रिय और धमकी भरे बयानों ने आग में घी का काम किया। परन्तु इस तरह आवेशित विचारों और कार्यवाहियों के खिलाफ विश्वव्यापी प्रतिक्रिया से राजनीतिक तापमान कुछ गिरता नजर आया, जबकि फौजी हालात भी मैदान में ठहराव की स्थिति में आ गये। भारत ने घोषणा की कि बहुत अधिक मजबूरी की हालात के अलावा वास्तविक नियंत्रण रेखा को वह पार नहीं करेगा। पाकिस्तान ने कहा कि वह भारत के साथ युद्ध नहीं चाहता और वह केवल तभी लड़ेगा जब उसे मजबूर किया जायेगा। इसका मतलब है कि ना तो भारत और ना ही पाकिस्तान कारगिल विवाद को विस्तारित करना और युद्ध लड़ना नहीं चाहते हैं। केवल मात्र अप्रिय बिन्दु घुसपैठ का मसला है जिस पर दोनों देशों की अवधारणाएं मूलभूत रूप से अलग हैं।

13. आज, भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों (राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, इत्यादि) की मांग है कि युद्ध ना हो, परन्तु कभी-कभी कुछ मौकों पर टकरावादी राष्ट्रीय मानसिकताएं बहुत गंभीर सैनिक टकराव उत्पन्न कर देती हैं। यह स्थिति तत्काल मांग करती है कि दोनों तरफ के वस्तुगत और मनोगत हालातों के बीच की खाई को पाटा जाये।

II. कारगिल तथ्यों द्वारा प्रदान किये गए सबक

14. पूर्ववर्ती तथ्यों से पांच मुख्य सबक निकलते हैं।

(क) एक सबक यह है कि बन्दूक की राजनीति (चाहे परमाणु हो या गैर-परमाणु) किसी भी समस्या के हल के लिए प्रभावी और अन्तिम हथियार नहीं रही (यह तीन भारत-पाक युद्धों, 10 साल से जम्मू-कश्मीर के सशस्त्र संघर्ष, उत्तरी-पूर्वी भारत में चल रहे विद्रोही आन्दोलनों और सरकारी सशस्त्र कार्यवाहियों के साथ-साथ अरब-इजराइल संघर्ष, दक्षिण अफ्रीकी नस्लभेदभाव और एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के विभिन्न देशों में चल रहे संघर्षों से इजहार होता) है।

(ख) दूसरा सबक है कि जब तक जम्मू-कश्मीर समस्या भारत-पाक टकराव के बीच निरन्तर चलती रहेगी, यह हमारे उप महाद्वीप में निरन्तर कष्टदायक स्थिति पैदा करती रहेगी और हमसे बहुत ऊंची कीमत वसूलती रहेगी।

(ग) तीसरा सबक है कि पिछले 50 वर्षों से दोनों देशों द्वारा भारत-पाक टकराव की नीति अपनाना दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों के लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ है। इस नीति ने सैनिकीकरण करना अपना प्राथमिक राष्ट्रीय उद्देश्य बनाकर भारत और पाकिस्तान दोनों को कंगाल राष्ट्रों में तब्दील कर दिया है।

(घ) चौथा सबक है कि भारत और पाकिस्तान दोनों देश तीन लाहौर दस्तावेजों (फरवरी 1999) में दर्ज अपने विवादित मसलों को हल करने के समझौते (संयुक्त प्रतिबद्धता)

को व्यवहारिक कदम उठाकर पूरा करें। इस ऐतिहासिक कदम के बाद पहली जरूरत है तीन अति महत्वपूर्ण कष्टदायक मसलों (सियाचीन, वुलर बैरेज और सरक्रीक) पर द्विपक्षीय समझौतों (जिसको कुछ समय पहले दोनों पक्षों द्वारा तैयार किया गया था) पर हस्ताक्षर किये जाएं। लाहौर शिखर सम्मेलन को अपने-अपने क्षुद्र हितों को पूरा करने के लिए कवर के रूप में दोनों देशों की सरकारों द्वारा उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। लाहौर शिखर सम्मेलन से वापिस लौटते ही बाजपेयी ने पहला वक्तव्य दिया कि पाकिस्तान के साथ किसी भी समझौते में जम्मू-कश्मीर की एक इंच भूमि कभी भी नहीं दी जायेगी। और नवाज शरीफ पहले की तरह ही अपने कारगिल प्रोजेक्ट को पूर्ण करने में लगा रहा।

(ड़) पांचवां, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण सबक है कि विश्व शांति का उद्देश्य आज मानव जाति की मुख्य आवश्यकता बन चुकी है। यह आवश्यकता मांग करती है कि सभी सामाजिक विवादों–चाहे वे देशों के बीच हों या किसी देश के अन्दर–का हल शांति पूर्ण तरीके से किया जाए। यही कारण है कि क्यों विश्व समुदाय इस क्षेत्र में किसी विवाद के विस्तार को रोकने के लिए तत्काल खड़ा हो जाता है और क्यों जम्मू-कश्मीर समस्या को जल्दी से जल्दी हल करने के लिए इतना अधिक दिलचस्पी लेता है।

15. विश्व शांति का उद्देश्य मुख्य मानवीय मसला बन चुका है आज यह कोई काल्पनिक (या अमूर्त) आकर्षक नारा नहीं है। यह अभी-अभी उभरी राष्ट्रीय अन्तरनिर्भरता की विश्व वास्तविकता से आ रही है। यह अन्तरनिर्भरता की प्रक्रिया आम तौर पर विश्व के सभी देशों के बीच तथा खासतौर पर निश्चित क्षेत्रीय देशों के बीच विभिन्न मानवीय गतिविधियों (राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक) में केवल मात्र सहयोग और एकीकरण के माध्यम से ही विकसित हो सकती है। विवाद और झगड़े इस प्रक्रिया में बाधाकारी हैं। अत: शांति की राजनीति आज विश्व विकास के लिए पूर्व शर्त बन चुकी है, जबकि बन्दूक की राजनीति सामाजिक बाधा बन चुकी है।

16. अन्तरनिर्भर राष्ट्र की विश्व वास्तविकता हमारे युग की 5 मुख्य तकनीकी और उनके वैज्ञानिक सिद्धान्तों (यानि, अन्तरिक्ष, उर्जा, पदार्थ, जीव-विज्ञान और सूचना) द्वारा लाये गए एक नये जीवन के तरीके और एक नये सामाजिक श्रम विभाजन का परिणाम है।

III. एक वास्तविक हल के लिए खोज

17. उपरोक्त वर्णित लेखे-जोखे के मद्देनजर निष्कर्ष निकलता है कि आज इस स्थिति से बाहर निकलने का रास्ता केवल अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही हमें प्रदान कर सकता है। और जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि इस दृष्टिकोण का पहले कार्य में शामिल है, हर कहीं सच्ची शांति हासिल करना।

18. स्पष्टतया, हमारी वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति और मामले चार संवेदनशील क्षेत्रों–यानि, (क) कारगिल विवाद (ख) जम्मू-कश्मीर समस्या, (ग) चीन भारतीय सीमा सवाल और (घ) भारतीय सामाजिक व्यवस्था–में उचित प्रत्युत्तर देने की मांग करते हैं।

19. कारगिल विवाद के संबंध में वास्तविकता मांग करती है कि यह मसला जम्मू-कश्मीर समस्या के एक अंश के तौर पर माना जाए। इस प्रकार इसके शांतिपूर्ण हल के लिए भारत और पाकिस्तान दोनों को लाहौर भारत-पाक शिखर सम्मेलन के संदर्भ में दो ध्रुवीय प्रक्रिया चलानी होगी। वह प्रक्रिया है एक तरफ दो महिने के भीतर कारगिल-द्रास क्षेत्र में घुसपैठ समाप्त करके यथास्थिति कायम करना तथा दूसरी तरफ भारत-पाकिस्तान के बीच (i) एक निश्चित समय में जम्मू-कश्मीर के मूल मसले को हल करना, और (ii) इस मूल मसले के हल की प्रक्रिया में जम्मू-कश्मीर के लोगों को शामिल करना।

उपरोक्त प्रस्ताव तीन कारणों पर आधारित है : (i) लाहौर समझौते के बाद, जम्मू-कश्मीर के मैदानी (वास्तविक) हालात में कोई भी पक्ष सैनिक या अन्य छल कपट के तरीकों से कोई परिवर्तन नहीं कर पाया है, (ii) बातचीत की प्रक्रिया हर हालात में खुली रहनी चाहिए और उस पर किसी भी तरह की पूर्व शर्त नहीं लगाई जाए, और (iii) जम्मू-कश्मीर समस्या को भारत-पाक के बीच सभी महत्वपूर्ण समस्याओं के संदर्भ में पहले स्थान दिया जाए।

20. जम्मू-कश्मीर समस्या के संदर्भ में एक न्यायपूर्ण, तर्कसंगत और व्यवहारिक हल के लिए निम्नलिखित उसूलों की पालना करना वांछित है :

(क) इस वैश्विक समझदारी से चला जाए कि भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों का भविष्य साझा है।

(ख) जम्मू-कश्मीर को भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों का त्रिपक्षीय सवाल माना जाए।

(ग) भारत और पाकिस्तान दोनों के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों में मेल बैठाना और दोनों के अपने-अपने राष्ट्रीय सम्मान की पूर्ण सुरक्षा करना।

(घ) भारत और पाकिस्तान के लोगों के साथ जम्मू-कश्मीर के लोगों, खासकरके कश्मीरियों (शरणार्थियों सहित) के हितों में समन्वय कायम करना।

(ड़) जम्मू-कश्मीर की क्षेत्रीय-नस्ली पहचानों (ग्रुपों) की आकांक्षाओं और हितों पर उचित ध्यान देना।

(च) भारतीय, पाकिस्तानी और जम्मू-कश्मीर के लोगों को नजदीक लाना।

(छ) जम्मू-कश्मीर समस्या का समाधान करते हुए दक्षिण एशिया में शांति और स्थायित्व तथा सार्क देशों की एकता को मजबूती प्रदान करने का ध्यान रखना।

21. भारत और पाकिस्तान दोनों के अपने-अपने राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए और की जा सकती है तथा उनके राष्ट्रीय हितों में सुमेल कायम करने के लिए जम्मू-कश्मीर राज्य पर भारत-पाक (या सार्क) सहराज्य (जो केवल जम्मू-कश्मीर की रक्षा, विदेश मामले और मुद्रा को संभालेगा) स्थापित किया जाए, जबकि जम्मू-कश्मीर के लोगों के हितों का भारत-पाकिस्तान के लोगों के हितों के साथ समन्वय जेके राज्य को अर्द्ध-स्वतंत्रता प्रदान करके कायम किया जा सकता है और किया जाना चाहिए, जबकि जेके राज्य में प्रत्येक क्षेत्रीय नस्ली पहचानों को अधिकतम सम्भव स्वायत्तता प्रदान की जाए।

22. जम्मू-कश्मीर की क्षेत्रीय-नस्ली पहचानों के हितों और आकांक्षाओं की सुरक्षा जेके राज्य के लिए एक संघीय संविधान अख्तियार करके पूरा कर सकता है और करना चाहिए, जिसके अनुसार एक तरफ प्रत्येक नस्ली क्षेत्र को अधिकतम सम्भव स्वायत्तता देने के साथ-साथ जिला, ब्लाक और गांव समितियों को अधिक अधिकार देकर सशक्त बनाने का प्रावधान रखना तो दूसरी तरफ एक एकीकृत जम्मू-कश्मीर राज्य कायम करना जिसमें क्षेत्रीय-नस्ली परिषदों द्वारा चुनकर एक साझा राज्य का मुखिया बनाना, और एक साझा उच्च न्यायालय, एक साझा चुनाव आयोग, एक साझा जन सेवा आयोग, एक साझा पर्यावरणीय आयोग, एक साझा मानव-संसाधन विकास आयोग, इन सभी की नियुक्ति नस्ली-क्षेत्रीय परिषदों द्वारा की जाए जिसमें प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधित्व हो।

23. चीन-भारत सीमा के सवाल पर एक व्यवहारिक हल यह हो सकता है कि दोनों देशों के बीच वास्तविक नियंत्रण रेखा को स्थायी सीमा के तौर पर मान्यता दी जाए और चीन सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश को भारत का अंग स्वीकार करे।

24. भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संबंध में अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय दृष्टिकोण की मांग इसके पूरी तरह पुनरगठन की है।

(क) सामान्य तौर पर, इसकी मांग सभी तरह की असमानताओं को समाप्त करना और सभी क्षेत्रों में एक उचित और न्यायिक समानता को सुनिश्चित करना।

(ख) राजनीतिक प्रक्रिया में, इसकी मांग एक पूर्णतया संघीय व्यवस्था कायम करने, लोगों का अधिकतम संभव सीधा सशक्तिकरण करना, पारदर्शिता, लोगों को सूचना का अधिकार और प्रशासन को लोगों के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी बनाना।

(ग) विकास प्रक्रिया में इसकी आवश्यकता है कि सोच और व्यवहार में पर्यावरणीय निर्वाह (वहनीयता), उत्पादकता, समता, जनवाद और पारदर्शिता के मूलभूत उसूलों को अख्तियार करना।

(घ) सांस्कृतिक प्रक्रिया में हर स्तर पर जनवादी व्यवहार पद्धति और मानदंडों का विकास करने की जरूरत है।

(ड़) विदेश नीति और सुरक्षा प्रक्रिया में सभी तरह के आंतरिक और बाह्य तकलीफदेह समस्याओं का न्यायिक हल करते हुए सच्ची शांति सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

25. संक्षेप में, खासकरके दो बिन्दुओं पर विचार करना जरूरी है। पहला यह है कि हमारे देश को मुख्य खतरा इसकी अपनी आंतरिक कमजोरियों से आ रहा है तथा बाहरी खतरे केवल गौण (या द्वितीय) स्तर के हैं। दूसरा बिन्दु यह है कि हमारा राष्ट्रवाद–जो सम्पूर्ण सम्प्रभुसत्ता, अत्यधिक केन्द्रीयकृतावाद, पूर्ण आत्म निर्भरता, गुप्तता और गैर बराबरी पर आधारित है (जिनका प्रतिनिधित्व–कांग्रेस का वंशवादी राज या एक व्यक्ति निर्देशित जनवाद, भाजपा का हिन्दुत्व, वामपंथ का सर्वहारा नेतृत्व जनवाद और जातिवादी पार्टियों का मंडलवाद–करता है)–पुरानी किस्म का है जो आज की दुनिया के अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की प्रकृति (या वास्तविकता) के अनुसार नहीं है। केवल विद्यमान वास्तविकता आधारित दृष्टिकोण ही हमें आगे ले जा सकता है। 26-06-1999

***

मानवाधिकारों की गुणवत्ता एक सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति का प्रतिबिम्ब, मानवाधिकारों की सुनिश्चितता के लिए जन-जागृति मुख्य गारन्टी

I. अवधारणा

1. अवधारणा के तौर पर आसान शब्दों में मानवाधिकार को परिभाषित किया जाता है कि न्यायिक अधिकारों का ऐसा समुच्चय (या समूह) जिनको हासिल करने का मानव समुदाय के सदस्य होने के नाते प्रत्येक मानव अधिकारी है और जिनको किसी भी हालात में कोई भी सत्ता छीन नहीं सकती। ये अधिकार मुख्यतया निम्न है :

(क) जीवन के सभी क्षेत्रों–राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक (लिंग सहित)–में समानता का अधिकार। यहां, समानता का अर्थ है राजनीति और संस्कृति में पूर्ण समानता और आर्थिकता में न्यायिक एवं उचित समानता।

(ख) जीवन और सुरक्षा का अधिकार।

(ग) भूख, कपड़ा, घर और बेरोजगारी की चिन्ता से मुक्त होने का अधिकार।

(घ) शिक्षा, स्वास्थ्य-देखभाल और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार।

(ड़) व्यक्तिगत आजादी और स्वतंत्रता का अधिकार।

(च) शोषण के खिलाफ अधिकार।

(छ) सूचना का अधिकार।

(ज) अंत:करण और विश्वास की स्वतंत्रता का अधिकार।

उपरोक्त अवधारणा से यह निष्कर्ष निकलता है कि मानवाधिकार एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था के अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग होते हैं। इनकी गुणवत्ता एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था के कानून के राज, सामाजिक न्याय और व्यवहार पद्धति की प्रकृति का इजहार करती है।

II. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

2. ऐतिहासिक तौर पर, मानवाधिकारों का मसला उतना ही पुराना है जितना मानव प्रजाति का इतिहास। परन्तु भिन्न ऐतिहासिक मंजिलों में यह अलग-अलग तरह का रहा है, यह मानव जाति के प्रत्येक निश्चित सामाजिक विकास के स्तर और निश्चित मानवाधिकारों के रूपों से चरित्रित रहा है। इस प्रकार, हालांकि भोजन एकत्रित करने वाले गण समुदाय में अपने सभी सदस्यों के समान अधिकार सुनिश्चित थे परन्तु किसी गैर गण सदस्य को कोई अधिकार नहीं थे और उसकी हत्या कर दी जाती थी। हमारे समय में, यहां तक कि कैदियों को भी जीवन और सुरक्षा का अधिकार हासिल है। केवल कुछ सैकड़ों साल पहले तक शारीरिक यातना के तौर पर सबक सिखाने के लिए चोर के हाथ

काट दिये जाते थे परन्तु अब सभी तरह की शारीरिक यातना की कानूनी तौर पर मनाही है जिसका नजरिया सभी अपराधियों को उपयोगी नागरिकों में परिवर्तित कर देना है।

3. मानवाधिकारों की प्रक्रिया ने 15वीं सदी के बाद यूरोप में घटित बहुत सी जनवादी घटनाओं–जैसे यूरोपीय सुधार आन्दोलन (16वीं शताब्दी), ब्रिटेन में संसदीय व्यवस्था का प्रादुर्भाव (17वीं-18वीं शताब्दियों में), फ्रेंच और अमेरिकी क्रांतियां (18वीं शताब्दी के आखिर में), यूरोप में समाजवादी और कम्युनिस्ट विचारों का प्रादुर्भाव (19वीं शताब्दी), इत्यादि–से महान प्रोत्साहन प्राप्त किया।

4. द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद मानवाधिकारों के आधुनिक ऐतिहासिक युग का दौर शुरू हुआ, जब युद्ध से पहले की बर्बरता और युद्ध के समय नाजीवाद, फासीवाद, सैन्यवाद और अधिनायकवाद के आतंक के खिलाफ जन क्रांतियों द्वारा मानवीय संबंधों और शांति को सुनिश्चित करने के लिए एक विश्व मंच निर्माण करने की मांग की गई। जिसका परिणाम था सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र का बनना। तीन साल बाद, यू एन (संयुक्त राष्ट्र) ने 1948–मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणापत्र स्वीकृत किया जिसमें सामाजिक-राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक दोनों तरह के अधिकार शामिल थे। सन् 1966 में मानवाधिकारों पर दो कानूनी समझौतों पर सहमति कायम की गई। जिसमें से एक समता और सामाजिक न्याय के मानदंडों के संबंध में था और दूसरा नागरिक और राजनीतिक संबंधों के बारे में था। जहां तक यू एन का सवाल है उसने मानवाधिकारों के संबंध में लगभग 25 कानूनी समझौतों का अनुमोदन किया है। केवल कुछ अपवादों को छोड़कर करीब-करीब सभी देशों ने अब यू एन घोषणापत्र और बहुत से यू एन के समझौतों पर कानूनी सहमति दे दी है।

III. मानवाधिकारों की प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति

5. शीत युद्ध के समाप्त होने के साथ ही मानवाधिकारों का मुद्दा विश्व समुदाय का मुख्य सरोकार बन चुका है। और मानवाधिकारों का आन्दोलन सम्पूर्ण विश्व में नयी गति प्राप्त कर चुका है।

6. हालांकि, मानवाधिकारों के वास्तविक हालात प्रत्येक देश में राज्य और सरकार के स्तर पर अधिक संतुष्टीदायक नहीं है, फिर भी पहले से अच्छे हैं। कुछ देश (मुख्यतया विकसित देश) केवल नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर जोर देते हैं जबकि कुछ देश (मुख्यतया विकासशील देश) केवल आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर जोर देते हैं। कई देश दोनों तरह के अधिकारों की अनदेखी कर रहे हैं, वे ना तो राजनीतिक और ना ही आर्थिक अधिकारों की परवाह कर रहे हैं।

7. जन स्तर पर, मानवाधिकार आन्दोलन विश्व में सकारात्मक भमिका अदा कर रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन–जैसे एमनेस्टी इंटरनेशनल और ह्युमन राइटस वॉच–इस आन्दोलन में बड़ी भूमिका अदा कर रहे हैं और उनके साथ ही राष्ट्रीय स्तर के मानवाधिकार संगठन अपना वाजिब हिस्सा पूरा कर रहे हैं।

8. परन्तु, बावजूद उनकी सकारात्मक भूमिका के वर्तमान में चल रही मानवाधिकार आन्दोलन एक-तरफापन से भी चरित्रित हैं। ये मुख्यतया राजनीतिक और नागरिक

अधिकारों से संबंधित मसले हाथ में लेते हैं और समता तथा सामाजिक न्याय के मुद्दों की पूर्णतया अनदेखी करते हैं।

9. मानवाधिकार संगठन मुश्किल से ही कभी विश्व में विद्यमान अ-मानवीय असमानता के सवाल को उठाते हैं। वे मुश्किल से ही ध्यान देते हैं कि विश्व की लगभग 20 प्रतिशत आबादी (विश्व बैंक के मुताबिक 140 करोड़) पूर्णतया गरीब बनी हुई है और लगभग 50 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बसर कर रही है।

10. यू एन डी पी-1998 की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार, 'इस वर्ष वैश्विक उपभोग 240 खरब डालर है जो 1975 के आंकड़े का 6 गुना है। परन्तु 440 करोड़ विकासशील देशों में रहने वाले लोगों का 3/5वां भाग ऐसे समूहों में रहता है जहां मल निकासी की कोई व्यवस्था नहीं है। लगभग एक तिहाई लोगों के लिए साफ पीने का पानी नहीं है, एक चौथाई लोगों के पास घर नहीं है, 1/5वां भाग के लोगों की पहुंच में आधुनिक स्वास्थ्य सेवा नहीं है, 1/5वां भाग के लोगों के बच्चों के लिए प्राइमरी स्कूल नहीं है।

11. दुनिया के आम लोगों के उपरोक्त दयनीय जीवन हालात के उलट यू एन डी पी की 1998 की रिपोर्ट के अनुसार–''दुनिया के मात्र 20 प्रतिशत लोग कुल उपभोग के 86 प्रतिशत भाग का अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए उपभोग करते हैं। दुनिया के सबसे अधिक 225 धनवानों के पास कुल सम्पत्ति 10 खरब डालर से अधिक है, यह दुनिया के सबसे गरीब 47 प्रतिशत आबादी (जिसकी संख्या 250 करोड़ है) की कुल आय है। दुनिया के सबसे अधिक धनवान 32 व्यक्तियों की सम्पत्ति ईरान और अफगानिस्तान सहित दक्षिण एशिया के देशों (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, भूटान और मालद्वीप) के सकल घरेलू उत्पाद (जी डी पी) से अधिक है। सन् 1956 में 7 सबसे धनवान देशों की प्रति व्यक्ति आय 7 सबसे गरीब देशों की प्रति व्यक्ति आय से 20 गुना थी, जो सन् 1995 में 39 गुना हो गई। आज अफ्रीका में औसतन प्रति व्यक्ति आय का स्तर विकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय का 7 प्रतिशत मात्र है। दक्षिणी अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय का स्तर सन् 1970 के अंत में विकसित देशों के स्तर का एक तिहाई था जो आज एक चौथाई हो गया है।''

12. रिपोर्ट आगे खुलासा करती है कि 'यूरोप में 11 अरब डालर मूल्य की आईसक्रीम का उपभोग किया जाता है जबकि यूरोप और अमेरिका में लगभग 17 अरब डालर मन बहलाव के लिए पाले गये पशु-पक्षियों के भोजन पर खर्च किया जाता है। अमेरिका और यूरोप में 12 अरब डालर परफ्यूम (इत्र, तेल-फुलेल) पर खर्च किया जाता है जबकि जापान व्यापारिक मनोरंजन पर 35 अरब डालर खर्च करता है।' रिपोर्ट आगे राज खोलती है कि 'विश्व के सबसे धनवान 225 में से मात्र 3 अमीरों की सम्पत्ति 48 सबसे कम विकसित देशों की संयुक्त जी डी पी (आय) के बराबर है।'

13. तथा, मानव अधिकार संगठन विद्यमान असमान वैश्विक और राष्ट्रीय राजनीतिक ढांचे को चुनौती नहीं देते हैं, बल्कि उनके ही चौखटे में कार्यरत है। उदाहरण के लिए, किसी भी मानवाधिकार संगठन ने कभी भी विटो-आधारित विश्व के असमान ढांचे वाले सबसे बड़े संगठन–यानि संयुक्त राष्ट्र–के खिलाफ आवाज नहीं उठाई है और

ना ही आई एम एफ और विश्व बैंक के वित्तीय हैसियत के आधार पर वोट पद्धति की खिलाफत की है।

14. केवल राजनीतिक और नागरिक अधिकारों पर संकेन्द्रित रहते हुए मानवाधिकार संगठन विभिन्न समूहों के लोगों, खासकरके गरीब और वंचित लोगों की वास्तविक समस्याओं को धुंधला करते हैं। जबकि एक व्यक्ति जिसे न खाने को मिलता, ना घर और ना काम मिलता है, वह कैसे राजनीतिक और नागरिक अधिकारों का लाभ उठा सकता है।

15. इस प्रकार, मानवाधिकार संगठनों के आन्दोलन दूसरे जनवादी और सामाजिक-आर्थिक आन्दोलनों का विकल्प नहीं बन सकते हैं। वे केवल व्यवस्था परिवर्तन के लिए चल रहे जनवादी आन्दोलनों की सहायक भूमिका अदा कर सकते हैं।

IV. भारत का मानवाधिकार लेखा-जोखा

16. भारत में आजादी के बाद से अब तक मानवाधिकारों का लेखा-जोखा सरकारी और स्टेट के स्तर पर बिल्कुल धूमिल (खराब) रहा है। भारत सरकार द्वारा यू एन मानवाधिकार घोषणा और बहुत से कानूनी समझौतों पर हस्ताक्षर करने के बावजूद इस समस्त दौर में मानवाधिकार हनन की नीति का निरन्तर अनुसरण किया है।

17. भारत में सन् 1947 से अब तक निरन्तर नजरबन्दी कानूनों का चलन भारत में नागरिक आजादी की स्थिति का बयान करते हैं। सन् 1947 से 1950 तक ब्रिटिश द्वारा थोपे गये नजरबन्दी कानून निरन्तर देश में नागरिक आजादी का गला घोंटते रहे। सन् 1950 में निवारक नजरबन्दी कानून (पी डी ए) लागू कर दिया गया था। इस निर्दयी कानून के नीचे किसी साधारण पुलिस अफसर द्वारा किसी भी नागरिक को अपराध करने की संभावना मात्र—यानि कि वह (पुरुष या महिला) कानून के खिलाफ कुछ कर सकता है—पर गिरफ्तार या नजरबन्द किया जा सकता था। यह 7 बार पुन: लागू किया गया था, प्रत्येक बार इसे लागू करने का समय 3 साल रखा गया। 1971 से 1977 तक निवारक नजरबन्दी कानून (पी डी ए) की जगह रख-रखाव के लिए आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम (मीसा) के रूप में प्रतिस्थापित किया गया।

18. आपात काल के हटाने के साथ तीन साल के लिए किसी तरह के नजरबन्दी कानून से देश को दयापूर्ण मुक्त रखा गया था। उसके बाद सन् 1980 में राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (एन एस ए) देश पर थोप दिया गया जो आज दिन तक निरन्तर जारी है। एन एस ए पहले वाले नजरबन्दी कानूनों से बहुत ज्यादा कष्टदायक है जिसमें प्रावधान रखा गया है कि अपने को बेकसूर सिद्ध करने की जिम्मेवारी दोषी व्यक्ति पर आयत है।

19. एन एस ए के अलावा, दो अधिक निर्दयी कानूनों को अगले वर्षों में लागू किया गया था जो निम्न थे, (क) आतंकवाद प्रभावित क्षेत्र (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1984, और (ख) आतंकवाद और तोड़फोड़ गतिविधि (निवारक) अधिनियम, 1985, जिसे टाडा के नाम से जाना जाता है। टाडा को शासक पार्टी अपने विरोधियों को आतंकित करने के उपयोग लेती थी जिसे लगभग तीन साल पहले अनौपचारिक तौर पर रद्द कर दिया।

20. सब कानूनों में सबसे अधिक हिंसक कानून, यानि सैन्य बल (विशेष अधिकार) अधिनियम, 1958 (1972 में संशोधित), अभी तक कानून की किताब में दर्ज है जिसके अनुसार किसी सर्च या गिरफ्तारी के लिए किसी वारन्ट की जरूरत नहीं है और किसी भी सिपाही को मारने के लिए गोली चलाने का अधिकार है।

21. सच्चाई यह है कि ऐसे बर्बर कानूनों ने हमारे जनवाद के पूरे दौर में हमारी कानूनी निर्देशिका में महत्वपूर्ण स्थान बनाये रखा है, इससे हमारे कानून के राज की वास्तविक गुणवत्ता प्रतिबिम्बित होती है। यह हमारी मुख्य धारा की पार्टियों और हमारे राजनीतिज्ञों की वास्तविक प्रकृति को भी दर्शाति हैं। कुछ उल्लेखनीय अपवादों को छोड़कर न्यायपालिका का कुल मिलाकर रिकार्ड वांछनीय (अपेक्षित) सीमा से बहुत दूर है—उदाहरणतया—आपात काल का समर्थन, नजरबन्दी कानूनों के संबंध में विलम्ब करना, भोपाल दुर्घटना में दोषियों के खिलाफ मजबूत कार्यवाही में असफल रहना एवं बड़े लोगों को जो कानूनों का दुरुपयोग और अनुचित उपयोग करते हैं उन्हें ऐसा करने से रोक नहीं पाना। जांच एजेन्सियों की भूमिका, खासकरके पुलिस की भूमिका अत्यधिक शोचनीय है। ब्रिटिश शासन के पुलिस कानून-1861 के नीचे काम कर रही पुलिस ऐसे व्यवहार करती है जैसे वह अपने आप कानून हो।

22. आज, देश में मानवाधिकार का परिदृश्य अत्यधिक निराशाजनक है।

23. उदाहरण के लिए, जीने के अधिकार की संवैधानिक गारन्टी के बावजूद हमारे दशियों लाख लोग प्रतिवर्ष भूख और कुपोषण के शिकार होते हैं और दशियों लाख समय रहते दवा नहीं मिलने से मृत्यु के शिकार होते हैं। स्वतंत्र अभिव्यक्ति एवं सभा-समागम करने की संवैधानिक गारन्टी के बावजूद इस अधिकार को विभिन्न बहानों के नीचे निरन्तर प्रतिबन्ध लगाकर कुचला जाता है। समान व्यवहार के अधिकार की संवैधानिक गारन्टी के बावजूद कानून लागू करने वाली एजेन्सियां गरीबों के खिलाफ एवं अमीरों के पक्ष में, अल्पसंख्यकों के खिलाफ एवं बहुसंख्यकों के पक्ष में, खासकरके साम्प्रदायिक और जातीय झगड़ों में—भेदभावपूर्ण व्यवहार करती है। 10 वर्ष के भीतर-भीतर सभी को शिक्षा प्रदान करने वाले गैर-न्यायिक तरीके पर आधारित संवैधानिक वचनबद्धता के बावजूद दशियों लाख हमारे बच्चे स्कूल जाने का अवसर नहीं पाते हैं और करीब-करीब हमारे 45 प्रतिशत लोग आजादी के 5 दशकों के बाद भी अनपढ़ हैं।

24. अपने आप को दोषी ठहराने के खिलाफ संवैधानिक गारन्टी के बावजूद हजारों लोगों को मुकदमे और पूछताछ के दौरान अमानवीय व्यवहार (जिसमें अंधा कर देने जैसा भागलपुर केस शामिल है) और थर्ड ग्रेड तरीकों से गुजरना पड़ता है। हर साल पुलिस हिरासत में शारीरिक यातना से कई लोग जान गंवा बैठते हैं। जेलों के अन्दर कैदियों को प्राय: पीटा जाता है और यातना दी जाती है। पुलिस मुकाबले की बात केवल एक नरम शब्दावली है जो उन लोगों को मारने के लिए प्रयोग की जाती है जिन्हें पुलिस खतरनाक समझती है। अल्पसंख्यकों और कमजोर तबकों के खिलाफ अत्याचार को आम घटना के तौर पर लिया जाता है।

25. हमारे समाज के अपराधीकरण के स्तर को इस तथ्य में देखा जा सकता है कि हमारे देश में कोई वीआईपी बिना कमांडो सुरक्षा में नहीं घूम सकता।

26. लोगों में कानून लागू करने वाली एजेन्सियों के बारे में प्रचलित धारणा उन्हें कानून सम्मत संस्थाओं की बजाए कानून तोड़क ताकतें मानने की है।

27. यह सब दर्शाता है कि संविधान और कानून के मानवाधिकारों को मात्र दर्ज कर देने से उनको यथार्थ में उतारने की गारन्टी नहीं मिलती है। उनको लागू करने का सवाल बराबर महत्व रखता है।

28. हर साल, एमनेस्टी इंटरनेशनल, ह्यूमन राइटस वॉच और भारत में मानवाधिकार संगठन उत्तरी-पूर्वी राज्यों और जम्मू-कश्मीर में मानवाधिकार की चेतावनी भरी स्थिति के साथ-साथ देश भर में मानवाधिकारों की बिगड़ते हालात के बारे में रिपोर्टें छापते हैं। उनकी हालिया रिपोर्ट भारतीय सरकार की मानवाधिकार दुरुपयोग के संबंध में इसकी भयंकर दुर्दशाग्रस्त स्थिति का वर्णन करती है। यह स्थिति स्पष्ट इशारा करती है कि मानवाधिकार संगठनों द्वारा सकारात्मक कार्य अंजाम देने के बावजूद, उसमें कुछ अधिक करने की जरूरत है।

29. मानवाधिकारों की स्थिति दूसरे देशों में भी ज्यादा उत्साहवर्धक नहीं है। शायद, अमेरिका और रूस विश्व में अधिकतम अपराध दर वाले देश हैं। धार्मिक रूढ़िवाद के प्रभुत्व वाले देश (यानि, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, इत्यादि)–नस्ली झगड़ों, सामाजिक और आर्थिक असमानताओं तथा अधिनायकवादी राजनीति, पार्टियां और राजनीतिज्ञ आमतौर पर मानवाधिकार उल्लंघन ग्रस्त अवस्था में है।

V. मानवाधिकार उल्लंघन के कारण

30. मानवाधिकारों की बुरी हालात के लिए मुख्यतया निम्नलिखित कारण जिम्मेवार हो सकते हैं–

(क) आम तौर पर, पुरानी राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था जो आन्तरिक प्रबन्ध और बाह्य संबंध दोनों में महाशक्तिवादी राज्य की धारणा पर आधारित हैं, आज यही इस हालात का मुख्य कारण बनता है। क्योंकि यह व्यवस्था वास्तव में पार्टियों, राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों का सशक्तिकरण करती है और लोगों को 1 मिनट का जनवाद (वोट डालने के समय) प्रदान करती है और वह भी धन व सत्ता नियंत्रित सामाजिक पर्यावरण के तहत। यह व्यवस्था खास तौर पर लोगों के तथा सामान्य तौर पर निजी व्यक्ति के सशक्तिकरण को रोकती है एवं यहां तक कि व्यवहार में लोगों या व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों की गारन्टी को भी विकृत करती है।

(ख) पैसे और बाहुबल के प्रभुत्व और गैर-मुद्दों (जैसे, बाबरी मस्जिद, सोनिया लाओ, देश बचाओ, योग्य प्रधानमंत्री, स्वदेशी, सभी धर्मों की सेवा करने वाला धर्म-निरपेक्षतावाद, इत्यादि) वाली बेईमान राजनीति का प्रचलन इसका दूसरा कारण है।

(ग) तीसरा पहलू है गैर-जनवादी कानूनों (नये और पुराने) का अस्तित्व होना, जिनका पूर्णतया अधिनायकवादी प्रकृति के राष्ट्रीय राज्य और इसकी उप-अधिनायकवादी सरकारी सत्ता से सीधा समझौता है। हमारे देश में, इनमें शामिल है, सभी नजरबन्दी कानून और दूसरे कानून, उप-कानून तथा नियमावलियां जो कार्यपालिका, न्यायपालिका को मजबूत करते हैं एवं खासकरके कानून लागू करने वाली एजेन्सियों (पुलिस और सुरक्षा बल) को अत्यधिक ताकत–जैसे सर्च, पूछताछ और बिना वारन्ट के रोके रखने–

से लेस रखते हैं। ये कानून ऊंचे और नीचे के बीच भेदभाव करते हैं; महिला, अल्पसंख्यकों और अन्य कमजोर तबकों के प्रति ये कानून दुर्भावनाग्रस्त हैं।

(घ) चौथा तत्व है, कानून की व्याख्या करने में और कानून लागू करने वाली संस्थाओं का सड़ागलापन, यह खासकरके विकासशील देशों में अधिक है। हमारे देश में यह न्यायिक प्रक्रिया में देरी और महंगे न्याय से देखा जा सकता है; न्यायपालिका द्वारा अवमानना कानून को निरन्तर उपयोग में लेने; और लगभग बड़े राजनीतिज्ञों और पैसे वाले लोगों का दोष सिद्ध होने की दर का जीरो होना; कानून के राज की अवहेलना का आकार बढ़ते जाना; चौतरफा हिंसा और भ्रष्टाचार और कानून लागू करने की प्रक्रिया भी अलग ही पहचानी जाती है जिसमें हमारी पुलिस घूसखोरी तथा हिंसा की संस्कृति से सराबोर है।

30. पांचवां, परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है लोगों के बीच मानवाधिकारों के बारे में चेतना की कमी होना, यह हमारी बड़े स्तर की अनपढ़ता तथा मूल और गैर-मूल अधिकारों की संवैधानिक गारन्टी के बारे में विस्तृत अज्ञानता, हमारे अधिकतर लोगों के पास न्याय प्राप्त करने के लिए पैसे की कमी, शासक के प्रति ताबेदारी पर जोर देने वाले परम्परागत मानदंडों की निरन्तरता, बेईमान राजनीति के प्रति सहनशीलता, अन्याय से लड़ने में हिचकिचाहट, साम्प्रदायिक और जातीय तनाव, इत्यादि से प्रतिबिम्बित होता है।

VI. आवश्यक पहलकदमियां

31. मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एकीकृत प्रत्युत्तर की जरूरत है जिसमें कई क्षेत्रों में पहलकदमियां करना शामिल है।

प्रथमतया, इसके लिए दो तरफा पहलकदमियों के जरिए लोगों के बीच एक तर्कसंगत नजरिया और आचरण में बदलाव की आवश्यकता है, यानि, एक तरफ लागों के विभिन्न समूहों को उनके अपने-अपने हितकारी कार्यक्रमों (उनकी तात्कालिक समस्याओं के संबंध में) पर संगठित करना तथा दूसरी तरफ सभी स्तरों पर लोगों के सशक्तिकरण आधारित व्यवस्था परिवर्तन के लिए उन्हें प्रेरित करना। आवश्यक तौर पर, मानवाधिकार आन्दोलन एक व्यवस्था परिवर्तन के लिए आन्दोलन है।

द्वितीयत:, इसकी जरूरत है कि लोगों को उनके वर्तमान संवैधानिक और कानूनी अधिकारों के बारे में सूचित करते हुए उन्हें प्राप्त करने के लिए तैयार करना।

तृतीयत:, यह राजनीतिज्ञों, प्रशासन और न्यायिक मशीनरी तथा सबसे ऊपर कानून लागू करने वाली एजेन्सियों (पुलिस और सशस्त्र बलों) को अत्यधिक मूलभूत जनवादी उसूलों–यानि, एक तरफ सभी हालात में मानवाधिकारों एवं मानवीय गरिमा की रक्षा करना और दूसरी तरफ हर समय कानून के राज को कायम रखना और उनके संवैधानिक और कानूनी उत्तरदायित्व को पूरा करने के प्रति संवेदनशील करने पर जोर देता है।

चतुर्थ, यह विद्यमान कानूनों (खासकरके नजरबन्दी कानूनों और कानूनी दंड संहिता) को अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों के स्तर के अनुसार सुधार करने के लिए कहता है और सुनिश्चित करना चाहता है : (क) पुलिस हिरासत में यातना, बलात्कार, हत्या जैसे

सभी इलजामों में न्यायिक जांच को कानूनन अनिवार्य बनाया जाए और उसे उचित समय के भीतर पूरा किया जाए तथा इन जांचों को तत्काल छपवाया जाए, (ख) हिरासत की जगह ले जाने से पहले नजरबन्द कैदी की डॉक्टरी जांच की जाए और बाद में नियमित जांच हो, (ग) सभी नजरबन्दी कैदियों को गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर न्यायाधीश के सामने पेश किया जाए तथा साथ ही नजरबन्द करने के आधार के बारे में उसे पक्की सूचना दी जाए, (घ) तत्काल नजरबन्द कैदी के रिश्तेदारों को सूचित किया जाए और कैदी को वकील और रिश्तेदारों से मिलने दिया जाए, (ड़) नजरबन्दी को लम्बे समय तक पुलिस या सुरक्षा बलों की हिरासत में रखने के व्यवहार का खात्मा किया जाए, (च) हिरासत में यातना देने वालों पर मुकदमा चलाया जाए, (छ) पीड़ित को मुआवजा दिया जाए और उसके पुनर्वास की व्यवस्था की जाए तथा गुमशुदा पीड़ित के परिवार को भी ये सुविधा दी जाए, और (ज) उन सभी राजनीतिक कैदियों को रिहा किया जाए जिनके ऊपर हिंसा के दोषारोपण नहीं हैं, इत्यादि।

पंचम, यह टकराव और असहनशीलता की राजनीति से दूर रहने पर जोर देती है और आन्तरिक व बाह्य झगड़ों को बातचीत और समझौतों से हल करने की पक्षधर है।

षष्टम, यह एक वहनीय, उत्पादक, समता आधारित, पारदर्शिता और जन-नियंत्रित विकास मॉडल अपनाने पर जोर देती है जिसमें एक तरफ प्रकृति का संरक्षण किया जाए और दूसरी तरफ मानवीय गरिमा और मानव कल्याण आधारित समाज बनाया जाए।

सप्तम्, इसकी मांग है कि विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों के बीच सहयोग बढ़ाया जाए तथा जम्मू-कश्मीर सहित दुनिया के किसी भी विवादित बिन्दु तक उनको स्वतंत्र रूप से पहुंचने दिया जाए।

अन्तिम तौर पर, परन्तु महत्वपूर्ण, इस आन्दोलन की आवश्यकता है कि मानवाधिकार संगठन एक ठोस मानवाधिकार एजेन्डा अख्तियार करें, जिसमें इसकी राजनीतिक-नागरिक और सामाजिक-आर्थिक दोनों पक्ष हों। एक तरफा व्याख्या लोगों को जगाने और प्रेरित करने में काम नहीं आती। एक ठोस एजेन्डा सुझाव देता है कि मानवाधिकार संगठनों को इस आन्दोलन को विस्तृत करने के लिए प्रत्येक देश में ऐसे सभी संगठनों को एक संयुक्त मंच बनाते हुए ऐसे जनवादी संगठनों से निकट के संबंध बनाने चाहिए जो विद्यमान पर्यावरण और जन विरोधी व्यवस्था को एक लोक समर्थक और पर्यावरण समर्थक व्यवस्था में बदलना चाहते हैं।

VII. गंभीर मंथन के लिए मुद्दा

32. हमारे देश में और काफी हद तक सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में मानवाधिकारों के हालात गंभीर मंथन की मांग करते हैं। पिछले 5 दशकों के दौरान हमारे करोड़ों लोग गरीबी, बीमारी, कष्टों और अपमानपूर्ण जीवन जी रहे हैं जबकि एक छोटा अमीर समुदाय ऐसे 5-तारा एशो-आराम में जी रहा है जिसके बारे में पुराना शासक वर्ग भी सोच नहीं सकता था। यह लोगों के पूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वंचितपन की अवस्था है।

33. यह अन्यायिक व्यवस्था जो पैसे, अपराध और हिंसा पर आधारित है, आज इसे एक जन और पर्यावरण निर्देशित व्यवस्था द्वारा हटाने की आवश्यकता है। 28-06-1999

***

प्रेस विज्ञप्ति

I

जुलाई 10, 1999 को दोपहर में इन्टरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी (आई डी पी) की पंजाब इकाई वाघा बोर्डर पर एक शांति रैली का आयोजन कर रही है।

इस रैली का उद्देश्य हमारे देश के लिए सर्वोच्च महत्वपूर्ण एक वास्तविक शांति की जरूरत को उजागर करना है, इस प्रकार की शांति को खतरा कारगिल विवाद से पैदा हुआ है। एक वास्तविक शांति हरेक देश की वृद्धि और विकास की बुनियादी आवश्यकता है। क्योंकि बन्दूक की राजनीति (चाहे परमाणु हो या गैर परमाणु) कहीं भी, किसी भी समस्या, के प्रभावी और हल के लिए नाकामयाब हो गई है, चाहे हमारे विवाद बाहरी हो या घरेलू।

इस परिवर्तन का बुनियादी कारण एक नए वैश्विक युग का उभरना है जिसमें सभी राष्ट्र अन्तरनिर्भर बन गए हैं।

II

कारगिल विवाद जिसकी प्रकृति है कि यह बिगड़ रही जम्मू-कश्मीर समस्या का एक भाग है।

ये दो तात्कालिक कारणों से पैदा हुआ है। एक तथ्य कारगिल इलाके में पाकिस्तान द्वारा सशस्त्र घुसपैठ करवाना तथा दूसरा तथ्य भारतीय जासूसी तंत्र का असफल होना है, जो नाभिकीय सुरक्षा निर्देशित जासूसी प्रणाली पर आधारित है, जो महिनों से हो रही भारी घुसपैठ के बारे में बिल्कुल ही अनभिज्ञ रहा।

कारगिल विवाद का मूल कारण पांच दशकों से जम्मू-कश्मीर समस्या का लगातार बिगड़ते रहना है।

हमारी दृष्टि से कारगिल समस्या का समाधान लाहौर भारत-पाक सम्मेलन (फरवरी, 1999) के संदर्भ में किया जाना चाहिए, जो भारत और पाकिस्तान दोनों देशों को जम्मू-कश्मीर सहित, सभी आपसी समस्याओं को शांतिपूर्वक हल करने का रास्ता प्रस्तुत करता है।

III

ऊपर वर्णित तथ्यों से कारगिल विवाद को दो तरफा प्रक्रिया से हल किया जाना चाहिए। वह यह कि एक तरफ सभी तरह की घुसपैठ समाप्त करके, दो महिने में कारगिल इलाके में पूर्व की स्थिति बहाल हो तथा दूसरी तरफ भारत और पाकिस्तान के बीच बिना शर्त बातचीत प्रक्रिया शुरू हो (क) जो जम्मू-कश्मीर का मूल मुद्दा निश्चित समय-सीमा

में हल करें तथा (ख) इस बुनियादी मसले के हल की प्रक्रिया में जम्मू-कश्मीर के लोगों को शामिल करे।

जम्मू-कश्मीर समस्या की वास्तविकता और ग्लोबल आवश्यकता मांग करती है कि हमारा देश भ्रमित रास्तों या सैनिक तरीकों के बजाए जम्मू-कश्मीर पर स्पष्ट राजनीतिक लाईन अपनाए। अस्पष्ट राजनीतिक लाईन और पूर्ण सैनिक समाधान दोनों, हमारे राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुंचाते हैं। सिर्फ एक शांति की राजनीति ही हमारे देश की सर्वोच्च आवश्यकता है।

इन्टरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी (आई डी पी)

***

नई सहस्त्राब्दी के दहाने पर भारत को दरपेश चुनौतियां एक अनिश्चित भविष्य की तरफ बढ़ रहे भारत को राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता की नई दृष्टि की जरूरत

I. वस्तुस्थिति क्या है

1. दुनिया जैसे-जैसे 2000 ईस्वी की तरफ बढ़ रही है भारत में आम जनता का विश्वास और मानसिकता देश के भविष्य के प्रति अनिश्चितता और सन्देह से घिरा जा रहा है। यह अहसास भारत की 52 साल पुरानी अकुशल और निम्न औसत दर्जे वाली व्यवस्था का नतीजा है, जहां पर कुछ भी ठीक-ठाक नहीं चल रहा है, सभी चीजें ऊपर-नीचे हो रही है। पिछले एक दशक से अधिक समय से देश गंभीर राजनीतिक अस्थिरता की जकड़ में आ गया है जिसमें 8 प्रधान मंत्री बन चुके हैं और 5 आम चुनाव (9वें से 13वें) हो गए हैं। आज कोई नहीं जानता कि इस प्रक्रिया का अगला पड़ाव क्या है। तथ्य अपनी कहानी खुद कह रहे हैं।

(क) दिन-प्रतिदिन की जन समस्याएं

2. लोगों की दिन-प्रतिदिन की मूलभूत समस्याओं (ढांचागत सुविधाओं) पर नजर डालें तो शुद्ध पीने का पानी (ऑक्सीजन के बाद जीवन के लिए दूसरे नम्बर की अति-आवश्यक वस्तु) भी दुर्लभ वस्तु बन गया है। बड़े शहरों में आम आबादी के नल प्रतिदिन मुश्किल से 1 घंटा चलते हैं जबकि कस्बों में सप्ताह में प्राय: तीन बार चलते हैं। भारत के सभी गाँवों में से आधे से अधिक में पीने का सुरक्षित स्रोत नहीं है। लगभग एक चौथाई गाँव पूर्णतया भरोसे लायक जल स्रोतों से वंचित हैं। यह संभव है कि यदि सतही पानी की बर्बादी और वर्षा के पानी को काम में न ले पाने का सिलसिला चलता रहा तो वर्तमान में प्रति व्यक्ति 2000 क्यूबिक मीटर पानी उपलब्धता घट कर भविष्य में 1100 क्यूबिक मीटर (जो सामान्य आवश्यकता के स्तर से भी नीचे) के आसपास रह जायेगा। संभव है कि एक दशक बाद में देश में पानी का अकाल हो।

3. सफाई की स्थिति खासतौर पर शहरी क्षेत्रों में एक भयानक तस्वीर पेश करती है जहाँ गन्दगी का ढेर लगातार हवा में बदबू लगाते रहते हैं; नालियां अवरुद्ध होती रहती हैं और गलियाँ कई दिनों तक बिना सफाई के रहती हैं। देश भर में सार्वजनिक शौचालय (हास्पीटल, बस स्टैण्ड, रेलवे, हवाई अड्डों के शौचालयों सहित) सभी मुसाफिरों के लिए बदबू के स्रोत हैं। अभी तक हमारी तीन चौथाई जनता को उचित शौचालयों की सुविधा उपलब्ध नहीं है और उन्हें मजबूर होकर खुली जगह का उपयोग शौच के लिए करना पड़ता है।

4. देश में बिजली की स्थिति दिन-ब-दिन दुखदायी होती जा रही है। शहरी क्षेत्रों में निरन्तर बिजली कटौती और ग्रामीण क्षेत्रों में पूर्णतया अनियमित बिजली आपूर्ति ने मानवीय धैर्य की सारी हदों को पार कर दिया है। देशभर की सभी सड़कें खासतौर पर ग्रामीण इलाकों में निरन्तर जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है, केवल उन्हीं सड़कों की मरम्मत होती है जहाँ से अति महत्वपूर्ण व्यक्ति या कुछ अन्य प्रभावशाली लोगों को गुजरना होता है। नई सड़कें सार्वजनिक हित की दृष्टि के बनिस्पत केवल सत्तापक्ष की राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित होती है। ट्रेफिक जाम तथा परिवहन के मार्ग अवरोध सभी शहरों और कस्बों में नियमित लक्षण बन चुके हैं। लोक-परिवहन आम तौर पर लापरवाह परिचालन और ऊपर तले भीड़ का शिकार है। यातायात दुर्घटनाओं में दुनिया के रिकार्ड तोड़ दिए हैं।

6. रेलें आम तौर पर देरी से चलती हैं और समय पर नहीं पहुंचती हैं। रेल यातायात अपने अकुशल प्रबन्ध, कमजोर कार्यशैली और बेमिसाल दुर्घटनाओं के रिकार्ड से जाना जाता है।

7. जन शिक्षा, विश्व संगठनों (ग्लोबल कोन्सिलों) में उच्च प्राथमिक स्थान लिये हुए है। इस देश में हमेशा यह उपेक्षा का क्षेत्र रहा है। भारतीय संविधान के निर्देशक तत्वों (अनुच्छेद 45) के अनुसार 1960 तक सार्वजनिक साक्षरता का लक्ष्य हासिल करने का उद्देश्य होते हुए भी अभी तक केवल 60 प्रतिशत लक्ष्य ही प्राप्त किया गया है। नतीजतन शिक्षा को गुणात्मक व मात्रात्मक दोनों तरह से हानि उठानी पड़ी है। गुणात्मक रूप से भारतीय शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थी और अध्यापक में प्रथम प्रेरणा पैसा बनाने या सत्ता हड़पने या कम से कम शानदार धन्धे के पीछे भागने की देती है। मात्रात्मक तौर पर सभी जाँच कमेटियाँ और सर्वेक्षण शिक्षा के ढाँचे की काली तस्वीर ही पेश करते हैं। सही अध्यापकों, प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों, फर्नीचर, खेल के मैदान आदि की सभी जगह कमी है, खासतौर से ग्रामीण इलकों में। गाँव के कुछ स्कूलों में अध्यापक नहीं है। कुछ बिना इमारत के हैं, कुछ में श्यामपट्ट नहीं है, कुछ में श्यामपट्ट तो हैं पर चॉक नहीं है। स्कूल छोड़ने की दर जो खासकर लड़कियों में अधिक उच्च (लगभग 53 प्रतिशत) है। अध्यापन का स्तर भी कोई अच्छा नहीं है। रोजगार से जुड़ी शिक्षा पर तो ध्यान बहुत कम है। प्राइवेट स्कूल केवल उच्च एवं मध्यम वर्ग के बच्चों को खपाती है।

8. जन स्वास्थ्य के बारे में जितना कम कहा जाए उतना ही अच्छा है। यह दिन-ब-दिन महंगा होता जा रहा है और इस प्रकार आम आदमी की पहुंच से बाहर है। जो भी दवाइयां, अस्पताल, डिस्पेन्सरी या स्वास्थ्य केन्द्र में उपलब्ध है वे या तो विशिष्ट व्यक्तियों के या और अन्य विशेष अधिकार प्राप्त व्यक्तियों के काम आती है या कालाबाजार में प्रवेश करती है। ये दवाइयाँ मुश्किल से ही गरीब लोगों को मिलती है। ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं को डॉक्टर और दवाओं दोनों की कमी रहती है। प्रदूषण, सफाई नहीं होना, खाद्य मिलावट, निम्न स्तरीय दवाएं, अवैध शराब और नशाखोरी ये सभी लोगों के स्वास्थ्य को बिगाड़ने का साधन बनी हुई है।

9. दूर संचार और डाक सेवाओं की खराब स्थिति से सभी परिचित हैं और उस पर ज्यादा टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

(ख) जनजीवन पर अवैध भार

10. अवैध आर्थिक गतिविधियों ने जन जीवन को और अधिक बाधित कर दिया है। आम आदमी के लिए किसी सुविधा का उपयोग उठाना या अपनी आवश्यकता को सामान्य तरीके से पूरा करना बहुत कठिन हो गया है। एक राशन कार्ड या गैस सुविधा प्राप्त करना, पानी हासिल करना, विद्युत या टेलीफोन कनेक्शन लेना, हॉस्पीटलों, स्कूलों, कॉलेजों और व्यावसायिक संस्थाओं में भर्ती होना, एक दुकान या घर किराये पर लेना या देना, रेलवे में आरक्षण प्राप्त करना, किसी महत्वपूर्ण वाद-विवाद, प्रदर्शनी, टेस्ट मैच, सिनेमा, संगीत या नृत्य प्रदर्शन इत्यादि के लिए टिकट खरीदना, आदि सभी के लिए केवल गैर कानूनी (या ब्लैक) कीमत चुकाकर ही हासिल करना सुलभ है। घटिया सामान, कम नाप-तोल और अधिक कीमत वसूल करना अबाध रूप से जारी है। झूठे रोजगार कार्यालय, झूठे विश्वविद्यालयों, जाली मुद्रा, व्यापारियों, हवाला फर्मों, झूठी पासपोर्ट और वीजा एजेन्सियों, चिट फण्ड कम्पनियों इत्यादि निरन्तर अबाध रूप से चल रहे हैं। टैक्सचोरी, पैसे निचोड़ना, तस्करी, दवाओं का अवैध व्यापार, विदेश व्यापार की हेराफेरी, विदेशी बैंकों में काला धन जमा करवाना, बैंक धोखा धड़ी, प्रतिभूति घोटाले, स्टॉक बाजार, जालसाजी, हथियारों, हिरोइन और सोने की तस्करी और सुरक्षाकर्मियों से मिलीभगत करके हवाई अड्डों और सीमाओं का उल्लंघन करना, इत्यादि कार्यवाहियां अत्यधिक सुगमता से फल-फूल रही है। भ्रष्टाचार भारत में शासन संचालन का आम तरीका बन गया है। देश में गैर कानूनी पारितोषिक के बिना कोई काम नहीं होता है।

(ग) काले धन की उत्पत्ति

11. चौतरफा भ्रष्टाचार से जुड़े काले धन की उत्पत्ति का क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था में एक शक्तिशाली क्षेत्र बन गया है। काले धन की उत्पत्ति से लोगों की क्रय शक्ति का ह्रास होता है और इससे उन पर बहुत भारी वजन आ पड़ता है। हालिया छपे एक अध्ययन (जवहार लाल युनिवर्सिटी के डॉ. अरुण कुमार द्वारा लिखित भारत में कालाधन) के अनुसार इसकी मात्रा सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 40 प्रतिशत है जो लगभग 7,00,000 करोड़ रुपये के बराबर है। इसमें से 32 प्रतिशत का योगदान कानूनी क्षेत्र करता है और 8 प्रतिशत तस्करी, मादक द्रव्य और पूँजी का पलायन (Flight of Capital) जैसी गैर कानूनी गतिविधियों से आता है। इस मात्रा में काले धन की उत्पत्ति के बावजूद यह अधिकतर जनसंख्या के मात्र 3 प्रतिशत हिस्से के हाथ में केन्द्रित होता है। इस प्रकार सम्पत्ति और आय की असमानता की पराकाष्ठा प्रतिबिम्बित होती है।

12. उपरोक्त अध्ययन के अनुसार 1990-91 में कालाधन भारतीय आर्थिकता का लगभग 35 प्रतिशत भाग था जो इसके प्राथमिक या द्वितीयक क्षेत्रों की तुलना में बड़ा था। तब से काले धन की उत्पत्ति न केवल 'कानूनी' गतिविधियों के द्वारा, जैसे कि वास्तविक भू-सम्पत्तियों के सौदों और शेयर बाजार के माध्यम से बल्कि गैर कानूनी तरीके से भी (जिसमें आडम्बरपूर्ण चुनावी खर्चे, बड़ी फीस और घूस शामिल है) बढ़ी है। इस अध्ययन में उच्च कर और कर वंचना पर अत्यधिक नियंत्रण को काला धन पैदा होने का कारण बताया है। इस अध्ययन का कहना है कि काले धन के उत्पादन का परिणाम आर्थिकता और समाज में अकुशलता, बर्बादी और श्रेष्ठता के निम्नतम स्तर के रूप में

निकला है। इसका मानना है कि स्वैच्छिक धन राशि जमा करने की स्कीम (VDIS) जैसे तकनीकी सुधारों से सीमित सफलता तो हासिल की जा सकती है एवं ढांचागत सुधारों के कदमों से वास्तविक भू-सम्पत्ति की सट्टेबाजी को समाप्त और चुनाव सुधार किये जा सकते हैं। यह अध्ययन अपराधीकरण की भूमिका तथा व्यापारियों, राजनीतिज्ञों ओर नौकरशाहों के गठजोड़ द्वारा काली आर्थिकता को फैलाने की हकीकत को पहचानने पर जोर देता है।

13. इस अध्ययन ने जीडीपी का 40 प्रतिशत काले धन होने का अनुमान लगाया है उसमें दलाली आय (Factor Incomes) शामिल है परन्तु हस्तान्तरण आय (Transfer Incomes) शामिल नहीं है। दलाली आय (Factor Incomes) से तात्पर्य है मजदूरी, लाभ, ब्याज और भाड़ा। हस्तान्तरण आय वह आय है जिसमें केवल हाथ बदलते हैं जबकि उनका उत्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, उदाहरण के तौर पर यदि एक व्यक्ति सम्पत्ति खरीदता है और कुछ अंश काले धन में चुकाता है इसमें धन केवल सम्पत्ति खरीदने वाले से बेचने वाले के हाथ में जाता है जिसका उत्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इस प्रकार यह अध्ययन वास्तविक भू-सम्पत्ति के हस्तान्तरण और घूसखोरी से पैदा होने वाली हस्तान्तरित आय को काले धन की गणना में शामिल नहीं करती है। यह अध्ययन प्राईमरी, सैकेण्डरी व तृतीय क्षेत्र तथा संगठित व असंगठित प्रत्येक क्षेत्र में काला धन पैदा करने में फर्क करता है।

14. इस अध्ययन ने यह पाया है कि सबसे अधिक काले धन की पैदावार संगठित तृतीय क्षेत्रों जैसे होटल, रेस्तरां, व्यापार और अन्य सेवाओं के क्षेत्र में होती है। इसके अनुमान के अनुसार 1990-91 में प्राइमरी सेक्टर के कुल उत्पादन का 5 प्रतिशत काला धन पैदा होता है जबकि सैकेण्डरी और तृतीय क्षेत्र में यह 25 प्रतिशत और 70 प्रतिशत पैदा होता है।

(घ) भारत का मानव विकास सूचकांक

15. भारत के मानव विकास के सूचक की ओर नजर डालें तो हम पाते हैं कि अभाव का स्तर काफी विस्तृत है और लोग अमानवीय जीवन स्तर जी रहे हैं।

16. अगस्त 1999 में नेशनल काउन्सिल फार एप्लायड इकानामिक रिसर्च (NCAER) द्वारा भारत विकास रिपोर्ट प्रसारित की गई, उसके अनुसार भारत के ग्रामीण घरों के 58 प्रतिशत की सालाना आय 20,000 रुपये से कम है। उन्हें 6 रुपये प्रतिदिन अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं पर खर्च करना होता है। यह राशि वह है जो उन्हें केवल अमानवीय स्तर पर ही रख पाती है। ग्रामीण जनसंख्या की केवल 4 प्रतिशत की सालाना आय 86,000 रुपये है। रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या के सबसे गरीब लोगों से उनकी स्थिति 13 गुना अधिक अच्छी है।

17. 1999 की संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट (जो औसत आयु, साक्षरता और कुल मिलाकर जीवन हालात के तीन सूचकों के आधार पर मानव विकास नापता है) के अनुसार भारत में मानव गरीबी सूचकांक (HPI) जनसंख्या का 35.9 प्रतिशत है जो एक ऊँचा अनुपात है। क्षेत्रवार इसमें काफी अन्तर है। यह बिहार में अधिकतम है जहाँ 54

प्रतिशत है जबकि केरल में यह जनसंख्या का 23 प्रतिशत है जो निम्नतम आंकड़ा है। मानवीय विकास सूचकांक (HPI) के दो अन्य घटक भी दयनीय स्थिति प्रकट करते हैं। 40 वर्ष तक की आयु भी नहीं पाने वाले लोग जनसंख्या का 16 प्रतिशत है जबकि मध्यम HPI श्रेणी में आने वाले देशों में यह औसत 12 प्रतिशत है। प्रौढ़ निरक्षरता दर बहुत अधिक यानि 46.5 प्रतिशत है जबकि सर्वे किये जाने वाले सभी देशों की संयुक्त प्रतिशतता 26 है। 19 प्रतिशत जनसंख्या को पीने का शुद्ध पानी नहीं मिलता है। 71 प्रतिशत जनसंख्या को सेहत सफाई की सुविधा हासिल नहीं है जबकि मध्य HDI वाले देशों में सफाई सुविधा 57 प्रतिशत आबादी को उपलब्ध नहीं है। अल्प भार वाले बच्चों की भी काफी बड़ी संख्या इन देशों में है।

18. यू एन डी पी (1999) ने भी लिंग सम्बन्धी विकास सूचकांक (GDI) और लिंग सशक्तिकरण माप (GEM)–इन दो महत्वपूर्ण लिंग संवेदनशील सूचकांक में देशों को श्रेणीबद्ध किया है। बुनियादी मानव विकास के लिंग परिप्रेक्ष्य में उपलब्धियों को GDI के सन्दर्भ में मापा जाए तो प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कुल 143 देशों में से भारत का स्थान 112वें नम्बर पर है। GEM माप (जो लिंग असमानता को आर्थिक व राजनीतिक अवसरों के तौर पर मापता है) के अनुसार कुल 102 देशों में भारत का स्थान 95वें नम्बर पर है।

19. सरकारी और गैर सरकारी आधार पर एकत्रित आंकड़ों के अनुसार भारत में मानव विकास की स्थिति गरीबों की श्रेणी में आने वाले लोगों का 62 प्रतिशत से भी नीचे है। करीब 40 प्रतिशत लोग निहायत गरीबी की जिन्दगी जीते हैं। 40 प्रतिशत लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध नहीं है। 75 प्रतिशत लोगों के लिए समुचित शौच व्यवस्था नहीं है। 10 प्रतिशत लोग शहरी झुग्गी झोपड़ियों में रहते हैं। 48 प्रतिशत लोग पूर्णतया निरक्षर है। 5 प्रतिशत बेरोजगार है और 33 प्रतिशत लोग अर्द्ध बेरोजगार है। 33 प्रतिशत लोगों के पास अपने खुद के रहने के लिए घर नहीं है। 10 प्रतिशत लोग अपाहिज है। 12 प्रतिशत के लगभग लोग जो निहायत गरीबी की श्रेणी में आते हैं भूमिहीन है। 53 प्रतिशत के करीब बच्चों को बुनियादी एवं गुणात्मक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध नहीं है। करीब 75 प्रतिशत महिलाएं किसी न किसी प्रकार के दमन की शिकार है।

(ड़) भारत के पर्यावरणीय संसाधन

20. यू एन डी पी (1999) के अनुसार अपनी विकास प्रक्रिया–जिससे चिन्ताजनक पारिस्थितिक बर्बादी और अनेकों स्वास्थ्य समस्याएं पैदा हो रही है–के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। एक अनुदार अनुमान के अनुसार साल में 10 अरब डालर से अधिक या 1992 के स्तर पर GDP का 4.5 प्रतिशत पर्यावरण विनाश के कारण होता है। यदि उच्च अनुमान काम में लाया जाए तो भारतीय विकास मॉडल 13.8 अरब डालर या जी डी पी का 6 प्रतिशत नुकसान का कारण बनता है।

21. उपरोक्त रिपोर्ट आगे यह और बताती है कि शहरी वायु-प्रदूषण से भारत को 1.3 अरब डालर प्रति वर्ष की कीमत चुकानी पड़ती है। जबकि पानी के घटिया स्तर के कारण प्रति वर्ष भारत को स्वास्थ्य पर लगने वाले खर्च के रूप में 5.7 अरब डालर की कीमत चुकानी पड़ती है जो देश के कुल पर्यावरणीय बर्बादी का करीब 3/5 हिस्सा है।

22. भारत के सरकारी आंकड़ों के अनुसार कुल 143 मिलियन हैक्टेयर जोती जाने वाली भूमि में से करीब 60 प्रतिशत भूक्षरण, सेम व लवणता से ग्रसित है। अन्य 16 मिलियन हैक्टेयर जमीन घाटी-दर्रों और नदी-नालों वाली है।

23. जंगल का तो सबसे ज्यादा नुकसान हुआ है 1864 में देश की भूमि का 60 प्रतिशत पेड़ों से आच्छादित था। 1952 तक आते-आते यह कम होकर 22 प्रतिशत तक पहुंच गया और आज यह केवल 11 प्रतिशत रह गया है।

24. पानी की समस्या अधिक से अधिक गंभीर होती जा रही है। पानी की गुणवत्ता और उसकी उपलब्धता लगातार कम होती जा रही है।

25. जहरीले रसायन, ओटोमोबाइल यातायात, थर्मल प्लान्टस और कुछ अन्य उद्योगों का उपयोग प्रदूषण पैदा कर रहा है। सेण्टर फार साइंस एण्ड एन्वायरनमेण्ट के अनुसार भारत में वाहनों से उत्पन्न प्रदूषण आठ गुणा बढ़ गया है।

26. वन-विनाश, भूमि क्षरण तथा पानी और वायु प्रदूषण ने भारत के जैविक संसाधनों (जिसमें 45,000 पौधों की किस्में और 75,000 पशु प्रजातियां हैं) को खतरा पैदा कर दिया है।

(च) भारत की जनसंख्या स्थिति

27. विश्व जनसंख्या की स्थिति पर कुछ दिनों पूर्व प्रसारित यू एन रिपोर्ट का कहना है कि इस वर्ष भारत की जनसंख्या 1 अरब तक पहुँच जायेगी। रिपोर्ट भारतीय योजनाकारों से यह आग्रह करती है कि इस विस्फोटक चुनौती पर ध्यान दे और मानव समुदाय तथा उपलब्ध संसाधनों के बीच टिकाऊ, समतावादी और जीवन्त सन्तुलन बनाया जाय। यह रिपोर्ट सावधान करती है कि संभावित सिंचाई जल की कमी भारत के अनाज उत्पादन में 25 प्रतिशत की कमी ला सकती है। यह रिपोर्ट चेतावनी देती है कि सब सहारा अफ्रीका और भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ भागों में जो दोनों मिलकर दुनिया की आबादी का एक तिहाई हिस्सा बनते हैं–में जल स्रोत तथा प्रति व्यक्ति फसली भूमि कम होती जा रही है।

28. 52 वर्ष पहले जब भारत ने उपनिवेशवाद को उखाड़ फेंका था, उसकी आबादी 34 करोड़ बीस लाख थी। तब से इसकी जनसंख्या तीन गुनी हो गई है। भारत की जनसंख्या 1.6 प्रतिशत प्रति वर्ष बढ़ रही है और अगले 4 दशकों में यह सबसे अधिक जनसंख्या वाले चीन की आबादी से भी अधिक आबादी वाला देश होने की संभावना है। चीन जिसका क्षेत्रफल भारत से तीन गुना से भी अधिक है 1980 में 100 करोड़ आबादी वाला देश बन गया और अब 0.9 प्रतिशत वृद्धि दर के साथ 127 करोड़ आबादी वाला देश है।

29. सन् 2016 तक भारत जो कि यू एस ए के आकार की तुलना में एक तिहाई से कुछ ही अधिक है, आबादी में रूस को छोड़कर पूरे यूरोप और बाकी औद्योगिक दुनिया से अधिक होगा।

30. विश्व बैंक के विशेषज्ञ कहते हैं कि अन्य बहुत से विशेषज्ञ भी भारत के बारे में कोई बड़ी खुशी वाली कहानी नहीं कहते हैं। जैसे भारत में दुनिया के निरक्षरों की बड़ी बहु संख्या (करीब 50 करोड़) रहती है। यहाँ पर 32 करोड़ अत्यधिक गरीब लोग रहते हैं। जो

भोजन के लिए आवश्यक 1 डालर प्रतिदिन की आय का जुगाड़ भी नहीं कर पाते हैं। 5 करोड़ के करीब बच्चे स्कूल नहीं जा पाते हैं। विकास विशेषज्ञ और जनसांख्यिकविदों का कहना है कि भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य और कृषि उपलब्धियों का फायदा जनसंख्या वृद्धि के सामने बेअसर हो जाने का खतरा मौजूद है। 1997 की विश्व बैंक रिपोर्ट कहती है कि गरीबी भारत के विकास को दबाए रखती है विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्र में, जहाँ 4 भारतीयों में से 3 और 77% गरीब निवास करते हैं।

31. वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड वॉच संस्था का कहना है कि भारत द्वारा एक अरब जनसंख्या हो जाने का जश्न मनाने का कोई औचित्य नहीं है, जहाँ आधे से अधिक बच्चे कुपोषण और एक तिहाई जनता गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करती है। भारत की एक अरब तक जनसंख्या पहुँचने से पहले ही यह अपने प्राकृतिक संसाधनों की क्षमता को पार कर चुका है। इसे वनों के कम होने, उपजाऊ भूमि के क्षय होने तथा जल स्तर के नीचे जाने में देखा जा सकता है।

32. वर्ल्ड वॉच ने ध्यान दिया है कि भारत में अब 15 वर्ष से कम आयु के बच्चे 33.8 करोड़ से अधिक हैं जो शिक्षा के मोर्चे पर एक बहुत बड़ी समस्या पेश करता है। भारत 1 करोड़ रोजगार चाहने वाले को रोजगार नहीं दे सकता है। प्रति कृषक की कृषि भूमि 2.7 हैक्टेयर से कम होकर 1.6 हैक्टेयर रह गई है जबकि पिछले 30 सालों में किसानों की संख्या 4.8 करोड़ से बढ़कर 10.5 करोड़ हो गई है। इसका कहना है 'एक तरह से, भारत आज पूर्व में की गई असावधानियों की कीमत चुका रहा है। भारत ने अपनी गरीब अवस्था के बावजूद आणविक हथियारों के डिजाइन और उत्पादन के महँगे कार्य में निवेश किया और आणविक कल्ब का सदस्य बना। नतीजतन, अब इसके पास आणविक हथियार हैं जिनसे पृथ्वी पर अति गरीब नागरिकों की अधिकतम सघन आबादी की सुरक्षा करनी है।'

33. वर्ल्ड वॉच ने अपनी जी डी पी का 2.5 प्रतिशत सुरक्षा पर खर्च करने जबकि परिवार नियोजन सहित स्वास्थ्य पर केवल 0.7 प्रतिशत आवंटित करने के लिए भारत की आलोचना की है।

इसने निष्कर्ष निकाला है 'यह समय भारत के लिए सुरक्षा को पुन: परिभाषित करने का है, अब इसे मुख्य खतरा किसी बाहरी फौजी हमले से नहीं है, बल्कि अन्दर ही जनसंख्या वृद्धि से है।'

(छ) भारत के आर्थिक सूचकांक

34. भारत के आर्थिक विकास मॉडल की शक्ल दो सर्वमान्य औद्योगिक पूँजी सिद्धान्तों पर आधारित है यानि कि उदारवादी और साम्यवादी मॉडलों पर। आजादी के बाद के प्रथम चरण में (यानि 1947 से 1980 के मध्य तक) इसने पश्चिमी और सोवियत अनुभवों वाले उपरोक्त दो आर्थिक सिद्धान्तों को समन्वित करते हुए मिश्रित मॉडल अपनाया। बाद में (1980 के दशक के अन्त में) इसने पश्चिमी आर्थिक पद्धति पर अधिक जोर देना शुरू किया। सोवियत यूनियन (1991) के ध्वस्त होने के बाद यह पूर्णतया बाजार आधारित पश्चिमी आर्थिक नमूने की ओर खिसक गया और उस पर लगातार

चल रहा है। परन्तु इसके दोनों चरणों का पूर्ण लेखा-जोखा इतना कमजोर है कि दुनिया की आबादी का 1/6 हिस्सा होते हुए भी यह अपनी अपर्याप्त कारगुजारी के आधार पर सभी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों और विकसित देशों द्वारा अत्यन्त अल्पविकसित देशों की श्रेणी में माना जाता है। लंदन की प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका 'इकानामिस्ट' ने हाल ही में इसे दुनिया का सबसे बड़ा निम्नस्तरीय कार्य सम्पादन करने वाला देश चरित्रित किया है और यह भेद करना काफी हकीकी है।

35. उदाहरण के लिए, भारतीय आर्थिकता की प्रथम एवं प्राथमिक कमी इसके मानव विकास का निम्न स्तर होना है और वायु, जल, जैव-विविधता, जंगल और जमीन, सभी पर्यावरणीय संसाधनों का क्षय होना है। इसने आय व अवसरों का हस्तान्तरण वंचित लोगों की तरफ करने तथा प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षण देने के लिए कुछ भी नहीं किया है। इसके विपरीत इसने गरीबों को और गरीब किया है तथा अमीरों को और अमीर किया है एवं प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन किया है। यह दिन के उजाले की तरह स्पष्ट है।

36. भारतीय अर्थव्यवस्था की दूसरी गम्भीर कमी यह है कि यह ढाँचागत विकास एवं प्रासंगिक विज्ञान और तकनीकी को बढ़ावा देने में असफल रही है। यह इसकी उत्पादन प्रक्रिया जो उच्च उत्पादन लागत (यानि कि पूँजी/उत्पादन अनुपात से), श्रम उत्पादकता की निम्न दर तथा घटिया उत्पाद की खासियत से स्पष्ट होता है। इसलिए यह उत्पादन और व्यापार में विश्व और विकासशील देशों यानि दोनों की औसत से तुलना करें तो पिछड़ा हुआ है, मसलन, जहाँ दुनिया की 16 प्रतिशत आबादी यहाँ निवास करती है, विश्व व्यापार में इसका हिस्सा मात्र 0.7 प्रतिशत है जबकि पहले 1950 में यह 2.5 प्रतिशत था। विश्व के कुल उत्पादन में इसका हिस्सा मात्र 2 प्रतिशत है जबकि यह स्थिति तो 1947 में भी थी। विश्व उद्योग और कृषि में भी इसका हिस्सा कमोबेश स्थिर रहा है यानि क्रमश: 1.5 प्रतिशत और 9 प्रतिशत है।

37. भारतीय आर्थिकता की तीसरी गम्भीर कमी इसके राजस्व घाटे के रूप में है जो सरकार द्वारा अपने संसाधनों की तुलना में अधिक अपव्ययी खर्च करने से पैदा हुआ है। सरकार के अपव्ययी इतिहास को देखें तो कोई भी यह पायेगा कि विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की दुतरफा राजनीतिक उद्देश्यों का ही यह परिणाम है। यानि कि एक तरफ भारत को एक सैनिक महाशक्ति बनाना और दूसरी तरफ अपनी सत्ताधारी पार्टी का शासन लोक-लुभावन आर्थिकता और राजनीतिक भ्रष्टाचार के जरिये चलाना। परिणामत: एक तरफ सुरक्षा और आन्तरिक पुलिस (रक्षा और पुलिस सम्बन्धी संस्थाएं और फैक्ट्रियों सहित) और दूसरी तरफ लोक-लुभावनी-गैर उत्पादक स्कीमें (जैसे कि लक्ष्यहीन सब्सिडी, गैर-उत्पादक परियोजनाओं पर फिजूलखर्ची, सत्ताधारियों की पाँच सितारा जीवन शैली, ऋण मेले, इत्यादि) भारतीय आर्थिकता के संसाधनों को सोख लेती है। पाँच मुख्य राजस्व उपभोग वाले बजट शीर्षकों–यानि ब्याज भुगतान, सुरक्षा और पुलिस व्यवस्था, सब्सिडी, प्रशासन तथा घाटे वाले सार्वजनिक प्रतिष्ठान में से सुरक्षा ही है जो प्रत्येक भारतीय सरकार की मुख्य प्राथमिकता रहती है और अन्य सभी इसकी ताबेदारी में रहते हैं।

38. चौथा भारतीय आर्थिकता की गम्भीर कमी इसके ऋण रंगरेलियों के गैर टिकाऊ स्तर तक खींचने में है। सार्वजनिक ऋण जो अब 8 लाख करोड़ रुपये तक है तथा किसी बाह्य ऋण (करीब 100 अरब डालर) दोनों चेतावनी के स्तर पर पहुँच गये हैं। यह मुख्यतया विभिन्न सत्ताधारी पार्टियों की तथाकथित जीवन रेखा या पवित्र राष्ट्रीय सुरक्षा क्षेत्र के बढ़ते खर्च के कारण है जो भारतीय आर्थिकता पर 1950 से बाहर से अधिक से अधिक ऋण बटोरने और घर में वित्त घाटे की बढ़ोतरी और सार्वजनिक ऋण लेने के रास्ते पर चलने का दबाव डालता रहा है। वर्तमान में इस ऋण (बाह्य और आन्तरिक दोनों) ने गम्भीर खतरे के आयामों को छू लिया है जो हमारे कुल राष्ट्रीय खर्च के करीब 50 प्रतिशत को हजम कर जाता है। शेष 50 प्रतिशत बजट राजस्व में से करीब 30 प्रतिशत सुरक्षा, आन्तरिक पुलिस (अर्द्धसैनिक बलों), सब्सिडी, सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के घाटे आदि द्वारा हजम कर लिया जाता है। इसके अलावा बचा हुआ बजट नागरिक प्रशासन के खर्च में लग जाता है–जो विकास को सरकारी ऋण के सहारे सिसकने के लिए छोड़ देता है। क्या भारतीय वित्त की यह गम्भीर दु:खद स्थिति और लम्बे समय तक चल सकती है?

39. भारतीय आर्थिकता की पाँचवीं गम्भीर कमी समानान्तर या काले धन के प्रभुत्व में निहित है जिससे जमा राशि अवांछित आर्थिक गतिविधियों, माफियावाद, आतंकवाद, चुनावी जालसाजियों, सट्टेबाजी, तस्करी, गैर-कानूनी गतिविधि, आदि की ओर प्रवाहित हो जाती है। इस काले धन की अधिकांश राशि जिस पर अमीर इठलाते हैं वह कमीशनबाजी, घूसखोरी या अन्य गैर-कानूनी स्रोतों से अवैध रूप से इकट्ठी की जाती है।

40. छठी भारतीय आर्थिकता की गम्भीर कमी विकास प्रक्रिया के नौकरशाह प्रबंध में है जिसमें न तो लोगों की भागीदारी है और ना ही उनका नियंत्रण है। इससे निगम क्षेत्र प्रस्तावकों के आदेशों के ताबे रहता है जो वर्तमान कानूनों की मदद से कम्पनी प्रबन्ध के पूर्णतया लोकतांत्रिक होने यानि शेयर होल्डरों की राय को अन्तिम मानकर चलने की बनिस्पत हमेशा कम्पनी में तानाशाही कायम रखने में कामयाब होते हैं तथा स्टॉक और मुद्रा बाजारों को दलालों एवं सट्टेबाजों द्वारा संचालित करने की स्वीकृति देता है, बजाए इसके कि उसमें लोकतांत्रिक और पारदर्शी कानूनों के जरिए उसके संचालन को सुधारा जाए।

41. भारतीय आर्थिकता की सातवीं गम्भीर कमी अमीरों और विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के पक्ष में सभी आर्थिक प्राथमिकताओं को निर्धारित करने तथा उनके हितों की सेवा का केन्द्र बिन्दु बनाने में निहित है।

42. सम्पूर्ण मानवीय इतिहास में, लोगों के किसी भी समूह–चाहे वह गण हों या राष्ट्र, की सामाजिक स्थिरता में आर्थिक पहलू की महत्ता हमेशा निर्णायक निवेश के रूप में रही है जबकि शुरू में 'जिसके पास ताकत वही हमेशा सही है' के सोच का सामाजिक स्तर सामाजिक हैसियत को निर्धारित करता था (राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संसाधनों की ताकत गौण स्थिति में थी)। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के चरण में (या शीत युद्ध का काल 1946-1987) सामाजिक हैसियत निर्धारण करने के मापदण्डों में बदलाव आ गया, यानि उन दिनों में सामाजिक हैसियत आर्थिक और सैनिक दोनों की मिश्रित ताकत

के आधार पर निर्णित होती रही है। उदाहरणतया, सोवियत यूनियन में दुनिया का सबसे अधिक आणविक हथियारों का जखीरा होते हुए भी 1991 में अपनी खराब आर्थिक कारगुजारी के कारण खण्डित हो गया या अन्य शब्दों में सैनिक ताकत और आर्थिक मजबूती को समन्वित करने में अक्षम रहने के कारण विखण्डित हुआ। हालांकि, अभी चल रहा शीत युद्ध के बाद का राष्ट्रीय अन्तरनिर्भरता के चरण में सामाजिक हैसियत तय करने में आर्थिक हैसियत कदम ब कदम सैनिक ताकत की बनिस्पत उच्च स्थान ग्रहण कर रही है और आज आर्थिक शक्ति बनने के लिए यह जरूरी है कि अन्य देशों के साथ स्थायी शान्ति, सहयोग और मित्रता की नीति को दृढ़ता से थामे रखा जाए तथा सुरक्षा की महत्ता को गौण स्थान दिया जाए। यदि भारत और पाकिस्तान सोवियत अनुभव से उचित सबक नहीं सीखेंगे, नये युग की माँग और प्रकृति को अनदेखा करेंगे, आपसी टकराहट और शीत युद्ध के पुराने रास्ते पर चलेंगे, आणविक हथियारों और सैन्यीकरण की उच्च प्राथमिकता को जारी रखेंगे, आर्थिकता को प्रथम स्थान देने में लापरवाही बरतेंगे तो उन्हें अवश्यम्भावी नतीजों की पीड़ाओं से गुजरना होगा जिसमें इन राष्ट्रों के राष्ट्रीय अस्तित्व समाप्त होने तक का खतरा समाहित है।

(ज) भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया के मुख्य पहलू

43. भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया का प्रधान पहलू है कि यह मानवीय जीवन का एकमात्र लक्ष्य पैसा बनाने और सत्ता हथियाने को मानता है। यह लक्ष्य येन-केन-प्रकारेण और हर कीमत पर पाना है तथा बनाए रखना है। अखिल भारतीय राजनीतिक हस्तियाँ यानि राजनीतिक दल, कार्यपालिका एवं विधायिका निर्णय लेने की प्रक्रिया और क्रियान्वित करने की योजनाओं में ईमानदारी से इस लक्ष्य को अपनाती है।

44. भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया का अन्य मुख्य पहलू यह है कि इसमें दोगले व्यवहार वाले राजनीतिज्ञों, बड़े व्यापारियों तथा काले धन के मालिकों, निन्दनीय अफसरशाहों, माफिया गैंग आदि का प्रभुत्व है।

45. इसका तीसरा पहलू यह है कि इसको अपनाने वालों ने तमाम सामाजिक बुराइयों यानि सम्प्रदायवाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार, हिंसा, अपराध आदि का उपयोग कर सारी सामाजिक जिन्दगी को प्रदूषित कर दिया है तथा सभी सामाजिक क्षेत्रों में नैतिक मानदण्डों का ह्रास किया है।

46. चौथा पहलू यह है कि इसने माफियावाद को बढ़ावा दिया है तथा उन सभी उद्यमों यानि राजनीतिक दलों, विधायिका, ट्रेड यूनियनों, सांस्कृतिक केन्द्रों, स्टॉक और मुद्रा बाजार, आयात-निर्यात व्यापार, उद्योग, व्यापार, वित्त, सार्वजनिक क्षेत्र, प्रशासन, शिक्षा, स्वास्थ्य, रेलवे, मोटर वाहन, जंगल, दूरसंचार आदि में माफिया गैंगों को पैदा किया है ताकि धन और सत्ता हड़पने में इनका उपयोग किया जा सके।

47. अन्तिम परन्तु एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इस माफियावाद के उत्थान ने कानून के राज की अवहेलना करने तथा वर्तमान व्यवस्था में लोगों को जो थोड़े बहुत अधिकार प्राप्त हैं इससे भी उन्हें वंचित करने की ओर धकेला है। हालांकि, इस नकारात्मक दिशा की तीव्रता को दो सकारात्मक पहलुओं ने कुन्द किया है। इनमें से एक सकारात्मक

पहलू यह है कि विभिन्न राजनीतिक पार्टियों और राजनीतिज्ञों, बड़े व्यापारी व कालाधनधारी, निन्दनीय नौकरशाह और माफिया गैंगों के आन्तरिक व परस्पर तीव्र टकराहट प्रत्येक पक्ष को सामाजिक कानूनों को अपने हितों में तब्दील करने से या खुल्लम-खुला उसका उल्लंघन करने से रोकती है। दूसरा सकारात्मक पहलू न्यायिक व्यवस्था, मीडिया तथा लोक-राय के विपरीत हो जाने के भय की भूमिका में निहित है।

(झ) भारतीय व्यवस्थागत व्यवहार के मानदण्ड

48. भारतीय अर्थव्यवस्था के सामाजिक ढांचे द्वारा एक अत्यन्त उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ है जो निर्णय लेने में बुनियादी निवेश के तौर पर धन और सत्ता पर जोर देता है और इस बुनियादी निवेश को पाने के लिए जालसाजी तरीकों को प्रोत्साहित करता है। इसका सामान्य कार्यकारी मानदण्ड दोगली व्यवहार शैली में निहित है जो कहता कुछ है और करता कुछ है। इसने एक अनैतिक वातावरण को उत्पन्न किया है जहाँ सभी तरह की अनैतिकताओं को इनाम मिलता है।

(ञ) भारत की कूटनीति और सुरक्षा

49. भारत ने गांधीवादी अहिंसा का झंडा फहराते हुए अपने बाह्य मामलों में, चाहे वे कूटनीतिक हो या सुरक्षा से सम्बन्धित हों, हमेशा बन्दूक की राजनीति को अपनाया है। बन्दूक की राजनीति का दृष्टिकोण तार्किक तौर पर सैन्यीकरण तथा प्रभुत्ववाद की ओर ले गया है जो बन्दूक की राजनीति का सार है। यह पिछले पाँच दशकों में भारत की सुरक्षा के पहलू को देश की सर्वोच्च प्राथमिकता बनाए रखने से स्पष्ट होता है।

50. बन्दूक की राजनीति ने 1947 के बाद के समय में भारत को अपने दो पड़ौसी देशों से चार युद्धों में धकेला है यानि 3 पाकिस्तान व 1 चीन से। युद्ध के अलावा बचे समय में भी भारत और पाकिस्तान दोनों टकराहट की स्थिति में रहे हैं। शीत युद्ध समाप्त होने पर भी सैन्यीकरण देश की उच्चतम प्राथमिकता बनी हुई है। आज भारत विकासशील देशों में हथियारों का सबसे अधिक आयात करने वाला देश है और अब यह परमाणु विस्फोट से और आगे निकल गया है।

51. न केवल बाह्य विवादों में बल्कि आन्तरिक टकराहटों में भी देश ने बन्दूक का उपयोग सभी विरोधों का दमन करने में किया है। नतीजतन सभी विसम्मत समस्याएं आज भी बिना हल हुए पड़ी हैं।

52. इस प्रकार बाह्य और आन्तरिक दोनों तौर पर बन्दूक की राजनीति ने भारत के वित्त और मानवीय संसाधनों का युद्धों और आन्तरिक टकराहटों में अपव्यय करके भारत के विकास को हानि पहुँचाई है जिससे भारत दुनिया के देशों में एक अति अल्प विकसित देश बना हुआ है।

53. हालांकि बन्दूक की राजनीति, जो तर्कसंगत सिद्धान्तों से परे है, ने हमेशा बड़ी शक्तियों, मसलन अमेरिका, रूस, चीन आदि के साथ समझौतावादी व रियायतवादी दिशा अपनाई है।

54. आजादी के बाद के चरण में यदि भारत शान्ति की राजनीति पर चलता तो वह आज मध्यम विकसित देश बन जाता जिसमें लोग आज से अधिक समृद्ध व सन्तुष्ट होते।

(ट) भारत का न्यायिक प्रशासन

55. उचित न्यायिक प्रशासन की प्रथम शर्त यह है कि वह सामाजिक, न्यायपूर्ण और प्रासंगिक कानूनों से निर्देशित हो। परन्तु भारतीय विधायिका में इस गुण की कमी है जो बचाव के रास्तों से ग्रसित है। इसने उन अयोग्य तत्वों को उनके पक्ष में ऐसे अवसर प्रदान किए जिससे वो चुपके-चुपके न्यायप्रणाली और पुलिस के पदों को हासिल करने लायक हुए और कानून को अपनी सुविधाओं के अनुसार मोड़ने लगे। इसने अपराधियों और उनके सलाहकारों को बचाव के छिद्रों को अपने पक्ष में शोषण करने लायक बना दिया और इस प्रकार न्यायिक प्रक्रिया को कमजोर किया।

56. द्वितीयतः, त्रुटिपूर्ण कानूनों के अलावा, हजारों अप्रयुक्त और पुरातन कानूनों ने नियमों, विनियमों और प्रक्रियाओं का जंगल खड़ा कर दिया है। कुल 2,500 केन्द्रीय कानूनों में से 1300 कानून पुराने पड़ चुके हैं और कुल 25,000 राज्य कानूनों में से लगभग 15,000 कानून गैर उपयोगी हैं, वे कानून केन्द्र और राज्य सरकारों के आफिसों में भ्रष्टाचार के स्रोत बने हुए हैं और सार्वजनिक कामों के निष्पादन में बाधा खड़ी करते हैं।

57. तीसरी, न्याय देने की थका देने वाली न्यायिक प्रक्रिया जिसमें 3 करोड़ मुकदमे न्यायालय में अटके पड़े हैं, लोगों को न्याय नहीं प्रदान करने का एक रूप है।

58. चतुर्थ, न्याय प्राप्त करने की लम्बी प्रक्रिया जिसमें वादी/प्रतिवादी, विशेष तौर पर पीड़ितों को अन्तहीन अपीलों की सीढ़ियां थका देने वाली हैं और इस प्रक्रिया में लगने वाली अत्यधिक कीमत नागरिकों की कानून तक पहुँच को प्रतिबंधित कर देती है।

59. त्रुटिपूर्ण कानून, देरी से दिया जाने वाला न्याय, न्याय प्राप्ति में लगने वाले अत्यधिक धन की समस्या भारत के स्वतन्त्र होने के समय से है, विभिन्न आयोगों और कमेटियों ने इसमें सुधार की कई सिफारिशें की हैं, परन्तु समस्या बढ़ी है।

II
स्थिति खराब होने के कारण

(क) भारतीय राष्ट्रवाद की भ्रान्त धारणा

60. भारत की खराब हालात का बुनियादी कारण भारतीय राष्ट्रवाद (जो राष्ट्र के सोच और व्यवहार को दर्शाता है) की भ्रान्त धारणा में निहित है। इसके दो मुख्य पहलू हैं। पहला, ऐतिहासिक अन्धराष्ट्रवाद और दूसरा, बहुसंख्यक धर्मनिरपेक्षतावाद।

(i) ऐतिहासिक अन्धराष्ट्रवाद

61. ऐतिहासिक अन्धराष्ट्रवाद पारम्परिक हिन्दू आस्था को दर्शाता है जो इण्डिया (यानि भारत) को एक अद्वितीय भूमि (या ईश्वर द्वारा विशेष तौर पर रचित) मानता है और भारतीय राष्ट्रवाद (या भारतीयता) को अति प्राचीनता में तलाशता है और इस प्रकार हाल ही में क्रमिक विकास प्रक्रिया से उत्पन्न भारतीय राष्ट्रवाद की वास्तविकता को नजरअन्दाज करता है। यह विश्वास करता है कि प्राचीन समय में भारत मानवीय सभ्यता की उच्च अवस्था का प्रतिनिधित्व करता था कि इसके ऋषि (सन्त) सार्वभौम ज्ञान (जैसे अन्तरिक्ष, परमाणु, इलेक्ट्रॉन, क्वार्क, कम्प्यूटर, रोबोट, क्लोनिंग आदि-आदि) के ज्ञाता

थे और कि अब मनुष्य जाति इस अवस्था को न तो प्राप्त कर सकी है और न ही कर सकेगी। इसके अनुसार मध्य युग में भारत ने काले युग में प्रवेश किया और ब्रिटिश शासन के अन्तिम समय में पुनीर्जीवित होना शुरू किया। जिसके कारण भारत 1947 की आजादी पाने की ओर आगे बढ़ा और अब भाजपा के वित्तमंत्री द्वारा 1999-2000 के बजट भाषण के अनुसार भारत 21वीं सदी की शुरूआत में दुनिया की महान् शक्ति बनने की ओर तेजी से बढ़ रहा है। यह अन्धराष्ट्रवादी अभिव्यक्ति भारत की प्रिय सूक्तियों जैसे दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र, एशिया का सबसे बड़ा बाजार, दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा देश, परमाणु शक्ति सम्पन्न देश, सबसे प्राचीन सभ्यता वाला देश आदि से स्पष्ट होती है।

(ii) बहुसंख्यक धर्म निरपेक्षता

62. बहुसंख्यक धर्म निरपेक्षता भारत के लोगों की सामाजिक तस्वीर को इस तरह पेश करती है जिसके अनुसार बहुसंख्यक समुदाय राष्ट्र की मुख्य धारा या उसका आधार बनता है। इसकी माँग है कि सभी धार्मिक, नस्ली, सांस्कृतिक, भाषाई या क्षेत्रीय समुदाय या ग्रुप बहुसंख्यकों के विश्वासों, रीति-रिवाजों से सामंजस्य बैठाएं और इस प्रकार यह हिन्दूवाद को भारतीय धर्म निरपेक्षता की एकमात्र गारण्टी मानता है। बनिस्पत इसके कि भारत के प्रत्येक सामाजिक ग्रुप, चाहे वह बहुसंख्यक हो या अल्पसंख्यक के हितों में सामंजस्य बैठाकर इस गारण्टी को सुनिश्चित करे।

63. इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद जैसा कि एक हिन्दू सन्त गांधी द्वारा समझा गया– एक हिन्दू भारत का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और इस कारण यह 1947 के पहले के भारत में हिन्दू-मुस्लिम तालमेल स्थापित करने में असफल रहा और अन्ततोगत्वा बँटवारे की ओर अग्रसर हुआ। इसीलिए आजादी के 50 साल बाद भी भारत के विभिन्न सामाजिक ग्रुपों में भावनात्मक एकता कायम करने में यह सफल न हो सका। दुनिया में भारतीय समाज सबसे अधिक गैर तालमेल वाला बना हुआ है और आज तक भी देश के सामने राष्ट्रीय अखण्डता का प्रश्न लगातार मुद्दा बना हुआ है।

64. आज, यह राष्ट्रीय दृष्टिकोण सभी प्रकार के भारतीय राष्ट्रवाद, चाहे गांधीवाद हो, हिन्दूवाद हो या मण्डलवाद हो, सभी का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। इन तीनों में गांधीवादी किस्म शुरू से (करीब 1920 से) आज तक, अकेली राष्ट्रीय पद्धति का स्थान लिए हुए हैं क्योंकि राष्ट्रीय सिद्धान्तों की अन्य दो किस्में अपने को गांधीवाद की असली वारिस होने का दावा करती है–इन दो राष्ट्रीय सिद्धान्तों की मान्यता के अनुसार इसे कांग्रेस द्वारा अब विकृत कर दिया गया है। आगे, गांधीवादी राष्ट्रीय धारणा हिन्दुत्व के काफी समान है जो भारत को हिन्दूवादी शर्तों से परिभाषित करता है। अभी-अभी कांग्रेस ने भी इस दृष्टिकोण पर जोर दिया है कि दार्शनिक एवं जीवन पद्धति दोनों के तौर पर हिन्दुवाद धर्म निरपेक्ष रहा है और इसका आधार बहुलवादी (Plurality) है।

(ख) केन्द्रीकृत और गैर-उत्तरदायी सामाजिक व्यवस्था

65. भारत की खराब स्थिति का अन्य महत्वपूर्ण कारण भारत के संविधान में निहित है, उपरोक्त राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनाने पर एक केन्द्रीकृत और गैर-उत्तरदायी सामाजिक व्यवस्था ही बन सकती है। संवैधानिक केन्द्रीकृत दृष्टिकोण भारत के बहुलतावादी चरित्र

से मेल नहीं रखता है जिसके लिए एक पूर्ण संघीय एवं विकेन्द्रीकृत राज्य की आवश्यकता है। इस व्यवस्था के अनुसार सारी शक्ति शीर्ष पर केन्द्रीकृत हो जाती है और बाकी सभी बातें इस पर निर्भर हो जाती है।

66. यह व्यवस्था प्रत्येक आन्तरिक और बाह्य राष्ट्रीय चुनौतियों का मुकाबला केवल सशस्त्र शक्ति से ही करती है और यही इसकी मान्यता है। इसलिए यह सबसे अधिक प्राथमिकता सुरक्षा को देती है। यह भारतीय समाज की प्रेरक शक्ति भारतीय लोगों को नहीं मानती। अत: यह मानवीय विकास या सामाजिक क्षेत्र को शक्तिशाली बनाने के प्रस्थान बिन्दु को मान्यता नहीं देती और इसलिए सामाजिक क्षेत्र के बिन्दुओं को प्रान्तीय राज्य के अन्तर्गत रखती है। इसके लिए पर्यावरणीय पहलुओं की बिगड़ती स्थिति निम्नतम प्राथमिकता पर है जबकि वह मानवीय अस्तित्व का आधार है।

67. यह सम्पन्न समूहों जैसे, विधायकों (जिसे बहुत सी मुफ्त सेवाएँ उपलब्ध है और कानूनी प्रभाव क्षेत्र में कानून से बचने के लिए छूट दी हुई है), न्यायाधीशों (जिन्हें न्यायालय की अवमानना के कानून के तहत विशेषाधिकार प्राप्त है), अफसरशाहों (जिन्हें सरकारी गुप्तता अधिनियम, सेवा नियम के अधिकार प्राप्त है आदि), फौजी अधिकारियों (जिनको कोर्ट मार्शल की शक्तियां प्राप्त है), उद्योगपतियों (कम्पनी के प्रस्तावकों और निदेशकों को विशेषाधिकार है), कालाबाजारियों (जिनको स्वेच्छापूर्ण आय प्रकट करने की स्कीम की छूट है), माफिया गैंग (जिन्हें अपराधिक कानूनों में चोर गली से बच निकलने की सुविधा है), निर्यातक एवं भू-सम्पत्ति मालिकों (जिनको सब्सिडी की सुविधा है), अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों (जिन्हें कमाण्डों बल के जरिए विशेष सुरक्षा प्राप्त है), आदि को विशिष्ट विशेषाधिकार देने से इस व्यवस्था ने अति अन्यायपूर्ण और अनुचित सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया है। उच्चस्थ सामाजिक श्रेणियों को विशेषाधिकार देने के नियम ने कानून के समक्ष सभी बराबर होने के सिद्धान्त का उल्लंघन किया है और सामाजिक न्याय तथा मानव अधिकारों के मूलभूत मानदण्डों की अवहेलना की है। यह आम आदमी को कुछ भी नहीं की गिनती में रखता है। इसीलिए 52 साल की आजादी के बाद भी भारतीय लोगों का 2/5वां भाग गरीबी की रेखा के नीचे है, आधे निरक्षर है, एक तिहाई बिना घर के हैं, इत्यादि-इत्यादि। इसके उलट यह अप्रत्यक्ष कर लगाकर और घाटे के बजट के जरिये लोगों पर असहनीय बोझ लादती है, इसलिए भारत आज सबसे अधिक असमान, अन्यायपूर्ण, गैर-टिकाऊ, अकुशल, हिंसक, भ्रष्ट समाज का दुनिया में प्रतियमान बन गया है।

68. भारतीय सामाजिक व्यवस्था न तो अपनी सरकार को और ना ही अपने कर्मचारियों को लोगों के प्रति जवाबदेह बनाता है। यह लोगों को केवल मात्र एक ही लोकतांत्रिक अधिकार देता है, वह है वोट देने का अधिकार, जो उसे पाँच साल में एक बार मिलता है।

(ग) राष्ट्रीय दलों की प्रेरक शक्ति धन और सत्ता

69. सभी पारम्परिक राष्ट्रीय दलों के शीर्षस्थ राजनीतिज्ञों का दृष्टिकोण भारतीय राष्ट्रवाद का है वे धन बनाने और सत्ता हड़पने तथा जालसाजी और चालबाजी की बेईमान शैली पर चलते हैं। उनका विधायकी जीवन चुनाव में अपने-अपने झूठे चुनावी खर्च का लेखा-जोखा देने से ही शुरू होता है। उन्हें संदेहास्पद स्रोतों एवं भूमिगत माफियाओं से

गन्दे समझौते, जनता से जातिगत और धार्मिक भावनाओं पर अपील करने से, झूठे वायदे करने से, दलों को तोड़ने और नये बनाने से, आयाराम-गयाराम की राजनीति अपनाने से और कहना कुछ व करना कुछ की दोगली शैली से जरा भी परहेज नहीं है। 1947 से लोगों को अपने पीछे लामबन्द करने की यह धूर्ततापूर्ण शैली प्रत्येक परम्परागत राजनीतिक पार्टी का मुख्य तरीकाकार रहा है। परन्तु जैसी स्थिति अब है यह छलावापूर्ण शैली स्वयं सन्देह के घेरे में आ गई है। इन सभी पार्टियों और इनके शीर्षस्थ राजनीतिज्ञों की साख रोजाना गिरती जा रही है।

(घ) न्यायपालिका और मीडिया

70. न्यायपालिका और मीडिया दोनों की मिश्रित भूमिका है। जहाँ तक न्यायपालिका का प्रश्न है, ईमानदार और कानून से प्रतिबद्ध न्यायाधीश, कानून के राज और लोक हित में निरन्तर सेवा कर रहे हैं, जबकि बेईमान और अवसरवादी न्यायाधीश कानून और लोकतांत्रिक व्यवस्था को विध्वंस कर रहे हैं। जहाँ तक मीडिया का सवाल है इसकी सरकारी किस्म जो सत्ताधारी अमीर वर्ग के निर्देशन में कार्यरत है, सरकारी वास्तविकता की तस्वीर को लगातार बढ़ा-चढ़ा कर पेश कर रहा है। मीडिया की गैर सरकारी किस्म अपनी पारम्परिक समस्याओं जैसे शासन चलाना, धन और सत्ता, घोटालों और दिन-प्रतिदिन की घटनाओं में ही उलझे हुए हैं। मानवीय समुदाय से सम्बन्धित मसलों (पर्यावरण, जनसंख्या नियंत्रण, शांति आदि), भारतीय समाज (समानता, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार आदि), लोगों के वंचित हिस्से (गरीबी, बेरोजगारी, शुद्ध पानी का अभाव, स्वास्थ्य देखरेख, न्यूनतम वेतन आदि) तथा आम लोगों की समस्याएं (जैसे पानी, सफाई, बिजली, यातायात, दूरसंचार, मकान, भ्रष्टाचार, महँगाई, वस्तुओं की कमी आदि) को गौण प्राथमिकता मिलती है। आम तौर पर न्यायपालिका और मीडिया दोनों की दिशा भारतीय राष्ट्र की बहुसंख्यक अन्धराष्ट्रवादी दृष्टिकोण वाली है जो प्राय: मूल प्रश्नों जैसे सुरक्षा, जाति और धर्म के मामले, विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को प्राथमिकता आदि के बारे में सही और गलत का मूल्यांकन करने में प्रतिबिंबित होती है। इसके अलावा मीडिया बाजार के घिसे-पिटे तरीकों से प्रभावित रहता है।

(ड़) जनता की परम्परागत मानसिकता

71. जनता की परम्परागत मानसिकता पुराने चले आ रहे विश्वासों और रीति-रिवाजों (जो पीढ़ियों से चली आ रही है जैसे धन और सत्ता की शक्ति, व्यक्तिपूजा, भाग्य पर भरोसा, शक्तिशाली का डर, अन्याय को सहन करना, आदि) से अनुकूलित है, इसीलिए वह व्यवस्था की बहुआयामी कमियों को प्रभावपूर्ण तरीके से रोकने के लिए कटिबद्ध नहीं हो पाती है।

III

वास्तविकता के आधार पर मामलों का प्रबन्ध

72. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, वास्तविकता के आधार पर मामलों के प्रबन्ध की समस्या दुतरफा प्रश्नों की छँटनी करने की है। एक तरफ भारतीय सामाजिक व्यवस्था की वास्तविकता के आधार पर पुनरसंरचना का बुनियादी प्रश्न है और दूसरी

तरफ इस एजेण्डे को तर्कसंगत निष्कर्ष तक पहुँचाने में लोगों की भागीदारी और चेतना जगाने का प्रश्न है।

(क) भारत की पुनरसंरचना का बुनियादी प्रश्न

73. इस प्रश्न की महत्ता इस तथ्य में है कि भारत की पुनरसंरचना की वास्तविक समझ हमें प्रत्येक भारतीय समस्या को सही तौर पर देखने का एक सामाजिक नजरिया (सोचने और कार्य करने का तरीका) प्रदान करता है।

(i) भारतीय राष्ट्रवाद का एक नया दृष्टिकोण

74. भारत की पुनरसंरचना से सम्बन्धित पहला प्रश्न यह है कि पुराने राष्ट्रीय दृष्टिकोण (जैसे गांधीवाद, हिन्दुवाद या मण्डलवाद)–इन सबकी दिशा हिन्दुवाद या जातिवाद की तरह प्राचीन वास्तविकताओं पर आधारित है। इसके स्थान पर देश को नये राष्ट्रीय दृष्टिकोण की जरूरत है। यह आवश्यकता दो कारणों पर आधारित है। एक प्राचीन राष्ट्रवाद भारतीय राष्ट्र को बर्बादी की तरफ ले जाने वाला साबित हुआ है। इसने दो दुखान्त घटनाक्रमों को जन्म दिया है मसलन, भारत का 1947 का विभाजन और देश में मौजूदा राजनीतिक अस्थिरता–जिनको समय रहते ठीक नहीं किया गया तो वह देश को उसके अच्छे के लिए विखण्डन की ओर ले जा सकता है। दूसरा कारण यह है कि भारत की मूल वास्तविकता (वह वास्तविकता जो दिशा, गति और ढाँचे को निर्धारित करती है) में परिवर्तन आ गया है यानि यह अब अन्य देशों के साथ अन्तरनिर्भर हो गया है जबकि 1947 से 1987 तक यह देश स्वतन्त्र और सम्प्रभुता सम्पन्न देश था। यह परिवर्तन हालिया उभरी ग्लोबलाइजेशन की प्रक्रिया (एक प्रक्रिया जो नये वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान और सामाजिक ज्ञान से स्वत: उभरी है और उसने सोचने, कार्य करने और संगठित करने के नए तरीकों को जन्म दिया है) के कारण हुआ है।

इस प्रकार, भारत को अपनी नई मूल वास्तविकताओं और साथ ही दुनिया के अन्य देशों की वास्तविकताओं (यानि राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता की वास्तविकता) के अनुरूप अन्तरनिर्भर राष्ट्रीयता के नये दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के त्रिपक्षीय उद्देश्य है, यानि (अ) दीर्घकालीन उद्देश्य तर्कसंगत, न्यायपूर्ण, निष्पक्ष, वैश्विक मानवीय समाज की स्थापना करना (ब) मध्यकालीन उद्देश्य एक निष्पक्ष, समानता, भाईचारे पर आधारित एशिया समुदाय (सार्क) का निर्माण करना (स) तात्कालिक उद्देश्य भारत के अतिराष्ट्रवादी और बहुसंख्यकवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था को बदलकर पूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम करना, जो मानवीय भाईचारे, समानता, सामाजिक न्याय और मानव अधिकारों पर आधारित हो।

(ii) नये दृष्टिकोण के मूलभूत सिद्धान्त

75. नये दृष्टिकोण का मूलभूत सिद्धान्त यह होना चाहिए कि राष्ट्र की गतिविधियों का केन्द्र जनता और पर्यावरण हो। दूसरे शब्दों में हमारे राष्ट्र का उद्देश्य एक तरफ लोकहितों की सेवा करना और दूसरी तरफ पर्यावरण संरक्षण की जरूरतों की रखवाली करना। इनमें से एक समय एक प्राथमिकता अख्तियार करता है दूसरे समय दूसरा।

(iii) लोगों के बारे में दृष्टिकोण

76. लोगों के बारे में दृष्टिकोण (यानि मानवीय या सामाजिक सम्बन्ध) तर्कसंगत मानवतावाद पर आधारित होना चाहिए। जो मानवीय घटनाक्रम का अध्ययन तर्कसंगतता और वास्तविकता के आधार पर करता है। लोगों को वे सभी अधिकार मिलने चाहिए जो एक मानव समुदाय के सदस्य के नाते उनके स्वस्थ और सन्तुष्ट जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करते हों, और जिन अधिकारों को कोई भी अथारिटी किसी भी परिस्थिति में छीन न सके।

मुख्यतया ये अधिकार निम्न हैं–

(अ) जिन्दगी के हर क्षेत्र राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक (लिंग समानता सहित)–में समानता का अधिकार। यहाँ समानता का अर्थ है राजनीतिक और सांस्कृतिक तौर पर पूर्ण समानता तथा आर्थिकता में न्यायपूर्ण और निष्पक्ष समानता।

(आ) जीवन जीने और सुरक्षा का अधिकार

(इ) रोटी, कपड़ा, मकान और रोजगार की समस्याओं से मुक्त रहने का सिद्धान्त

(ई) शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार

(उ) व्यक्ति की स्वतंत्रता और आजादी का अधिकार

(ऊ) शोषण के विरुद्ध अधिकार

(ऋ) सूचना का अधिकार

(ए) अन्तरात्मा की स्वतंत्रता और विश्वास का अधिकार

चूंकि उक्त अधिकारों को सुनिश्चित करने में अभी लम्बा समय लग सकता है इसलिए यह आवश्यक है कि तेजी से इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रथमतया तीन कदम उठाने की जरूरत है यानि, (अ) गरीबों और वंचितों की न्यूनतम आवश्यकताओं की व्यवस्था करना (ब) सभी प्रकार के विशेष सुविधाओं और विशेष अधिकारों को समाप्त करना (स) उच्च और निम्न के बीच (जैसे गरीब और अमीर के मध्य) सभी प्रकार के अन्तर को हटाना।

(iv) प्रकृति के बारे में दृष्टिकोण

77. प्रकृति के बारे में दृष्टिकोण वैज्ञानिक यथार्थवाद पर आधारित होना चाहिए। जो प्राकृतिक प्रक्रिया का तीन एकीकृत तरीकाकार–यानि, पर्यवेक्षण, प्रयोग, धारणात्मक स्तर–से अध्ययन करता है। वैज्ञानिक-तकनीकी अनुसंधान पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

मानवीय विकास के साथ-साथ पर्यावरण (हवा-पानी के प्रदूषण के सम्बन्ध में, जमीन और जंगल में गिरावट, जैव-विविधता को खतरा) संरक्षण को प्रमुख प्राथमिकता इस प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी देते हुए की जानी चाहिए। पर्यावरण की माँगों और मानव विकास की आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन विकसित करने के सभी उपाय किये जाने चाहिए।

(v) विश्व शांति

78. मानवीय और पर्यावरणीय आवश्यकताएं तभी पूरी हो सकती हैं जब महाशक्तिवाद की राजनीति और टकराहटवादी पद्धति को नकारा जाए, विभिन्न देशों के हितों में सामंजस्य बैठाया जाए, क्षेत्रीय तनाव बिन्दुओं को ठण्डा किया जाए, पूर्ण निशस्त्रीकरण की ओर बढ़ते हुए, संयुक्त राष्ट्र को परमाणु हथियारों का नियंत्रण सौंप कर, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में कुछ देशों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर, विभिन्न देशों के बीच समानता के अधिकार कायम करना तथा विकसित और विकासशील देशों के बीच विकास के भारी अन्तर को कदम ब कदम समाप्त कर दुनिया में वास्तविक शांति सुनिश्चित की जाए।

(vi) दक्षिण एशिया में दूसरे तनाव बिन्दुओं सहित जम्मू-कश्मीर समस्या का समाधान करना

79. भारत पाक (या सार्क) सहराज्य स्थापित कर जम्मू-कश्मीर समस्या का त्रिपक्षीय हल निकाला जाए। यह सह राज्य जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा, विदेश मामलों और मुद्रा के प्रति जिम्मेदार होगा, साथ ही जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए अर्द्ध स्वतंत्रता सुनिश्चित की जाए तथा राज्य में प्रत्येक नस्ली क्षेत्र को अधिकतम सम्भव स्वायत्तता दी जाए। इसी प्रकार, सार्क देशों के मध्य अन्य तनाव बिन्दुओं को या तो द्विपक्षीय या सार्क रचनातंत्र के जरिये हल किया जाए।

(vii) जन आधारित राजनीतिक व्यवस्था

80. भारत में जन आधारित राजनीतिक व्यवस्था निम्न कदम उठाकर स्थापित की जाए। भारत को संघीय या महासंघीय आधार पर राज्यों को अर्द्धस्वतंत्रता का दर्जा देकर और पंजाब को विशेष दर्जा देकर–संगठित किया जाए। यह भारत में नस्ली, साम्प्रदायिक, जातिवादी और भाषाई तनावों को हल करने में मदद देगा। मौजूदा सभी टकराहटों को चाहे वे शान्तिपूर्ण हों या गैर शान्तिपूर्ण–बातचीत के जरिये हल किया जाए। सभी संस्थाओं को पूर्णतया लोकतांत्रिक बनाया जाए। लोगों का सशक्तिकरण कर कानून के राज को थामा जाए और लागू किया जाए जो धीरे-धीरे गाँव से लेकर केन्द्रीय स्तर तक विकसित हो। लोगों को सूचना का अधिकार हो और किसी भी राष्ट्रीय या प्रान्तीय स्तर के मुद्दे पर जनमत संग्रह करवाने का अधिकार हो। कानून की व्याख्या करने का अधिकार न्यायपालिका में निहित हो। न्यायपालिका और विधायिका के बीच किसी प्रकार का विवाद किसी भी कानून को लेकर होने की सूरत में उसका निर्णय जनमत संग्रह से करवाया जाए। सभी प्रकार के कानून जो लोगों के किसी समुदाय को या व्यक्ति को (उसका कोई भी दर्जा क्यों न हो) विशिष्ट अधिकार या विशेष सुविधा देते हों तो उन्हें समाप्त किया जाए। परन्तु उन कानूनों को जो कमजोर और वंचित तबकों की सहायता के लिए बनाए गए हों, उनको समाप्त नहीं किया जाए। सभी सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को समाप्त किया जाए। सभी स्तर के चुनावों को काले धन और बाहुबल से मुक्त रखा जाए तथा चुनाव खर्च राज्य वहन करे।

(viii) लोक एवं पर्यावरण समर्थक विकास

81. विकास का उद्देश्य लोक एवं पर्यावरण समर्थक होना चाहिए। यानि एक तरफ लोगों के हितों को बढ़ावा मिले और दूसरी तरफ पर्यावरण व्यवस्था को सुरक्षा मिले। जनसंख्या नियंत्रण और पर्यावरण संरक्षण के काम में लोगों (विशेष तौर पर महिलाओं) को भागीदार बनाए जाए। सन्तुलित आर्थिक वृद्धि करने के लिए वैश्विक आर्थिकता के साथ नजदीकी एकीकरण दुतरफा रचनातंत्र–बाजार से उत्पन्न वृद्धि तथा राज्य द्वारा संगठित सामाजिक न्याय (जो टिकाऊपन, उत्पादकता, समानता, लोकतंत्र और पारदर्शिता के सिद्धान्तों से निर्देशित हो)–के जरिए किया जाए।

(ix) मान्यताओं की व्यवस्था

82. तर्कसंगत मानवतावादी सोच और लोकतांत्रिक व्यवहार को बढ़ावा देना।

(x) विदेश और सुरक्षा के मामले

83. दुनिया में हर देश के साथ सहयोग और मित्रता की नीति का पालन करना चाहिए। दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सुरक्षा को संगठित करना चाहिए तथा जम्मू-कश्मीर समस्या का निराकरण करने के बाद 50 प्रतिशत सुरक्षा खर्च में कमी की जानी चाहिए।

(xi) नई वास्तविकताओं से निपटने में पारम्परिक धारणाओं की अप्रासंगिकता

84. उपरोक्त पुनरसंरचना का मॉडल सभी पारम्परिक नुस्खों से मूल रूप में भिन्न है क्योंकि पुनरसंरचना का मॉडल उभरते भूमण्डलीय युग की नई वास्तविकताओं का प्रत्युत्तर देने का प्रतिनिधित्व करता है जबकि पुराना मॉडल पहले के राष्ट्र राज्य युग की पुरानी वास्तविकताओं को प्रत्युत्तर देने तक ही सीमित था। पारम्परिक मॉडल के घटक जबकि एक असंगत तस्वीर पेश करते हैं (मसलन, सरकार की किस्म के तौर पर भाजपा संसदीय लोकतंत्र को स्वीकार करती है और साथ ही हिन्दुत्व मान्यताओं की व्यवस्था या संस्कृति के प्रति कटिबद्ध है) या कांग्रेस (आई) का एक साथ नेहरूवादी समाजवाद (एक हालिया पश्चिमी सिद्धान्त) और गांधी के राम राज्य (तीन हजार वर्ष पुराना) दोनों के प्रति समर्पित होना।

नये मॉडल के घटक इस प्रकार एकीकृत है कि उनमें से किसी भी घटक को दूसरे घटकों से अलग कर दिया जाए तो वह अकेला कार्य नहीं कर सकता। उदाहरण के तौर पर लोक सशक्तिकरण तभी काम कर सकता है जब उसे शांति की नीति के साथ जोड़े रखा जाए। पाकिस्तान के विरुद्ध शीतयुद्ध की परिस्थिति के अन्तर्गत टिकाऊ विकास का मुद्दा केवल कागजों में ही कारगर होगा।

86. भारत के 1947 के बाद की अधिकांश असफलताएं अप्रासंगिक राष्ट्रीय एजेण्डा अपनाने से हुई है। निश्चित तौर पर भारत के पारम्परिक फार्मूले जैसे गांधी का राम राज्य, नेहरूवादी समाजवाद, जेपी की सम्पूर्ण क्रांति, गोलवलकर का हिन्दुत्व, लोहिया की जाति आधारित राजनीति, वामपंथियों का भाजपा विरोधवाद, लोहिया का समाजवादी कांग्रेसी विरोधवाद, अमेरिका के तरह की राष्ट्रपति प्रणाली की माँग आदि नये वैश्विक युग की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए कतई कारगर नहीं है। इसी प्रकार

दुनिया के पुराने राष्ट्रीय सिद्धान्तों को मान्यता देती है–बाजार निर्देशित पश्चिमी उदारवाद तथा सार्वजनिक प्रतिष्ठान आधारित समाजवाद–साम्यवाद–ये दोनों चौतरफा गिरावट के शिकार हैं और नई विश्व चुनौतियों (जैसे पर्यावरण ह्रास, जनसंख्या विस्फोट, नस्ली आग्रह, बेरोजगारी की समस्या, गरीबी, असमानता, सामाजिक न्याय आदि) जो इन्हीं दोनों मॉडलों की उपज है और ये दोनों मॉडल इनका मुकाबला करने में अक्षम हैं। बिना शक नए आवश्यक उचित उदाहरण की अनुपस्थिति में देश विभिन्न परम्परागत नमूनों के बीच झूल रहे हैं। लेकिन कोई रास्ता नहीं मिल रहा है। हर एक कुछ नया पाना चाहता है।

(ख) बुनियादी कार्यक्रम को आगे ले जाने के लिए जन चेतना और भागीदारी

87. इतिहास और समाजशास्त्र दोनों इस बात पर जोर देते हैं कि कोई भी सामाजिक बदलाव कहीं भी नहीं हो सकता, जब तक कि सम्बन्धित लोग उस बदलाव की आवश्यकता के बारे में सचेत ना हों। वास्तव में प्रत्येक सामाजिक बदलाव उस समय के लोगों की मानसिक चेतना की उपज होती है, जन चेतना, भागीदारी तथा लोगों की संगठित शक्ति सामाजिक समस्याओं को हल करने का एकमात्र रास्ता है। इस प्रकार उपरोक्त बुनियादी कार्यक्रम को वास्तविकता में बदलने के लिए एकमात्र गारण्टी है कि इस बुनियादी कार्यक्रम के पक्ष में लोगों की मानसिकता बनाई जाए।

88. जन चेतना और भागीदारी की प्रक्रिया का पहला बिन्दु यह है कि लोगों को कैसे प्रेरित किया जाए। अनुभव बताता है कि इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए दो रास्ते हैं। एक रास्ता लोगों के विचार बदलने का है और दूसरा रास्ता विचार बदलने के पक्ष में लोगों की दिलचस्पी जगाने के लिए उसे उनकी तात्कालिक समस्याओं से जोड़ा जाए। इन दोनों पद्धतियों में दूसरी आसान है और जल्दी फलदायी है। क्योंकि जनता स्वभाव से ही अपनी समस्याओं में दिलचस्पी लेती है और उन समस्याओं को हल करने की गतिविधि में तुरन्त अपने को भागीदार बना लेती है। बिना जन समस्याओं से जोड़े केवल विचारों पर जोर देना उसे बंजर और सूखा विषय बना देती है जबकि जन समस्याओं से जोड़ने पर उस विचार के प्रति लोगों की दिलचस्पी बन जाती है।

89. अगला बिन्दु यह है कि शुरू कहाँ से किया जाए? आम तौर पर वास्तविक ठोस परिस्थितियों को जानकर कोई कहीं भी काम शुरू कर सकता है। विशेष तौर पर तीन प्रकार के लक्ष्य समूह हैं जैसे, विशेष क्षेत्र सम्बन्धी, विशेष समस्या सम्बन्धी तथा विशेष वर्ग या ट्रेड यूनियन सम्बन्धित समूह। इनमें से एक को चुनना ठोस हालात पर निर्भर करता है।

90. तीसरा बिन्दु यह है कि लक्ष्य ग्रुप के बारे में आम तौर पर और विशेष तौर पर उसके सचेतन और सूचित व्यक्तियों के बारे में अपने आपको जानकार बनाना है, साथ ही उनकी समस्याओं के बारे में पूर्ण समझ रखनी जरूरी है।

91. चौथा बिन्दु यह है कि लक्ष्य ग्रुप की समस्याओं के बारे में उनके सचेतन और सूचित व्यक्तियों की सहायता से उनकी समस्याओं का एजेण्डा तैयार करना है और तब उसके बारे में सम्बन्धित लोगों के बीच में पूर्ण विचार-विमर्श होना जरूरी है। कार्यक्रम

कई समस्याओं से मिलकर बना हुआ हो सकता है या कोई एक ज्वलंत समस्या हो सकती है या लक्ष्य ग्रुप अथवा उसके किसी भाग के साथ कोई अन्यायपूर्ण घटना हो सकती है।

92. पाँचवा बिन्दु यह है कि शुरूआत के लिए सम्बन्धित ग्रुप की प्रेरणा को और मजबूत करने के लिए एजेण्डे को काम में लिया जाना चाहिए। एजेण्डा के बिन्दु (या समस्याएं) और साथ ही उसके कारण, उसके निराकरण और हल करने की पद्धति का लगातार लक्ष्य ग्रुप को सामाजिक कार्यकर्ताओं की सहायता से अध्ययन किया जाना चाहिए। यह लक्ष्य ग्रुप की जागृति और सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ उनकी एकता की प्रक्रिया की शुरूआत है।

93. छठा बिन्दु यह है कि ग्रुप की समस्याओं से मिलती-जुलती क्षेत्र, राज्य, देश और विश्व की समस्याओं से जोड़कर उसकी चेतना प्रक्रिया को विकसित किया जाए।

94. सातवां बिन्दु यह है कि चेतना सम्पन्न सदस्यों, जिसे लक्ष्य ग्रुप ने चुना हो, उनकी कोर टीम बनाई जाए।

95. आठवां बिन्दु यह है कि कोर टीम सम्बन्धित लोगों को क्षेत्र या व्यवसाय के आधार पर विभिन्न इकाइयों में संगठित करे। इस तरह की कमेटियां सभी स्तर पर बनाई जाए। यह आवश्यक है कि इकाई सदस्यों के बीच नजदीकी सहयोग विकसित किया जाए तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

96. नवां बिन्दु यह है कि सम्बन्धित लोग सामाजिक कार्यकर्ता की सलाह और सहयोग के साथ अपने निर्णय को लागू करे। बार-बार की जाने वाली गतिविधियों से उनमें आत्मविश्वास पैदा होगा। अन्य जन आन्दोलनों से गठजोड़, वे चाहे विशेष ग्रुप के हों या सम्बन्धित क्षेत्र, देश या विश्व के हों–तथा विभिन्न मुद्दों पर उनके साथ संयुक्त गतिविधि करने से उनमें एकता की भावना बनेगी और वे बड़े आन्दोलन के लिए तैयार होंगे।

97. दसवाँ जो बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है वह यह है कि प्रत्येक ग्रुप विचार-विमर्श या गतिविधि में यह आवश्यक है कि इस बात पर जोर दिया जाए कि जो कुछ आज देश में या लोगों के किसी समूह के साथ हो रहा है, वह ऊपर से या बाहर से नहीं आया है, बल्कि यह देश के गलत दृष्टिकोण, कार्यक्रम, प्राथमिकताओं तथा मुख्यधारा वाली रजनीतिक पार्टियों और उनके शीर्ष राजनीतिज्ञों की भ्रष्ट और बेईमान शैली की उपज है और यदि हम इन सब बातों को ठीक करना चाहते हैं तो हमें अपने पाँवों पर खुद खड़ा होना होगा तथा इन नकारात्मक शक्तियों के विरुद्ध लगातार संघर्ष करना होगा।

98. संक्षेप में पारम्परिक जन मानसिकता जो धन, शक्ति, व्यक्तित्व, जाति और साम्प्रदायिकता से संचालित है को तर्कसंगतता, निष्पक्षता और दृढ़ विश्वास की मानसिकता में बदलने का हर तरह से प्रयास करना चाहिए।

99. निष्कर्ष के तौर पर, हर स्तर पर चीजों को व्यवस्थित करने के लिए एक ही रास्ता है कि लोगों को जागृत किया जाए, उनको भागीदार बनाया जाए और उन्हें संगठित किया जाए।

* * *

आई डी पी की राजस्थान कान्फ्रेन्स

1. इन्टरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक पाटी (आई डी पी) राजस्थान की कान्फ्रेन्स 17 से 19 अक्टूबर, 1999 को जोधपुर में आयोजित की गई। इसमें राजस्थान के 37 डेलीगेट तथा 14 पर्यवेक्षकों तथा दिल्ली एवं पंजाब के 9 पार्टी सदस्यों ने भाग लिया।

2. कान्फ्रेन्स के खुले सत्र का विषय 'नई सहस्राब्दी की दहलीज पर भारत के सामने चुनौतियां' था तथा डेलीगेट सत्र का एजेण्डा में निम्न बिन्दु थे–(1) 12वीं पार्टी कांग्रेस के निर्णयों पर किए गए कार्य की रिपोर्ट (2) पार्टी संगठन (व्यक्तिगत, पार्टी इकाइयों तथा कुल संगठन) के बारे में (3) पार्टी विस्तार के बारे में (4) पार्टी फ्रंट एवं मास फ्रंट पर योजना (5) सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक सवालों के बारे में (6) स्टेट कमेटी का चुनाव तथा (7) वो विषय जो डेलीगेट्स या मेहमानों द्वारा उठाया जाए।

3. डेलीगेट सत्र के एजेण्डा पर विचार-विमर्श के बाद कान्फ्रेन्स ने यह पाया कि हनुमानगढ़ पार्टी कांग्रेस में राजस्थान इकाई द्वारा लिये गये निर्णय–जिला कान्फ्रेन्स आयोजित करना, पर्यावरण, खान मजदूरों, पुनर्वास, कर्मचारी यूनियनों, किसान समस्याओं, विद्यार्थियों, अकाल, मानव अधिकारों, महिला उत्पीड़न तथा सामयिक विषयों (जैसे भारत-पाक सम्बन्ध, जम्मू-कश्मीर समस्या, परमाणु हथियारों) पर सभा-सेमीनार करना–आदि गतिविधियां की गईं।

पार्टी फ्रंट पर–पार्टी इकाइयों की कहीं नियमित बैठकें होती हैं, कहीं बैठकें अनियमित होती हैं लेकिन उपस्थिति पूर्ण नहीं होती। पिछली पार्टी कांग्रेसों में नए सदस्यों की भर्ती के फैसलों पर कार्य लगभग नहीं हुआ, मात्र दो जिला इकाइयों ने 6 नए प्राथमिक सदस्य बनाए हैं।

मास फ्रंट पर–पिछली पार्टी कांग्रेसों द्वारा पारित प्रस्तावों के मुताबिक जन आन्दोलन का कार्य कुछ इकाइयों एवं सदस्यों की कोशिशों के बावजूद प्रगति नहीं कर पाया है।

कान्फ्रेन्स में पुन: पार्टी एवं मास फ्रंट पर पिछली कांग्रेसों द्वारा पारित प्रस्तावों के मुताबिक कार्य करने तथा सदस्यों ने अपनी व्यक्तिगत दक्षता एवं क्षमता को ऊँचा उठाने तथा पार्टी की पूरी क्षमता लोगों की सेवा करने में लगाने का संकल्प लिया।

सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक सवालों पर विचार-विमर्श के दरम्यान कान्फ्रेन्स में निम्न बिन्दुओं पर पुन: ध्यान दिया गया कि (क) जनता के हितों एवं यूनियन के हितों में सामंजस्य बैठाते हुए ट्रेड यूनियन आन्दोलन की भूमिका तय की जानी चाहिए। (ख) निजी एवं सामाजिक हितों में सन्तुलन के लिए अहम (ego) को नियन्त्रित करने की आवश्यकता है आज इस सन्तुलन को कायम करने में अहम् मुख्य बाधा है (ग) व्यक्ति, संगठन एवं समाज के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर मूल्यांकन करना या उसे कम आंकना वास्तविकता समझने में बाधा डालते हैं और विकास प्रक्रिया को रोकते हैं।

स्टेट कमेटी के चुनाव पर विचार-विमर्श के बाद फैसला किया गया कि अगली कान्फ्रेन्स तक वर्तमान कमेटी ही कार्यरत रहेगी।

* * *

नई सहस्त्राब्दी में प्रवेश कर रही मानव जाति

I

आगे और पीछे अवलोकन का समय

1. नई सहस्त्राब्दी की शुरूआत हो रही है। इसमें मात्र 75 दिन शेष है। एक सहस्त्राब्दी काफी बड़ा समय है। मानव द्वारा इसे पूर्ण समझना असंभव है। किसी भी नजरिये से वह पीछे देखने का एक क्षण है कि 20वीं सदी ने मानवता को क्या दिया है। यह कितनी मात्रा में सकारात्मक और किस अंश तक नकारात्मक है। इसमें कितना अप्रयुक्त व पुराना और कितना नया है।

2. यह भी आभास का समय है कि गुजर रही सदी आने वाली सदी को वसीयत में क्या चुनौतियां सौंप रही हैं और नई सदी से उनका क्या प्रत्युत्तर देने की आशा है। इससे आने वाली घटनाओं की झलक मिलती है।

3. इस समय की विलक्षणता 20वीं सदी के असामान्य विकास में निहित है।

(क) बीत रही शताब्दी की महत्वत्ता

4. पिछली शताब्दी अपने तरीके से विशिष्ट स्थान रखती है। इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया पर नजर डालने से घटनाओं की एक विस्तृत शृंखला हमारे विवेक में घूम जाती है। इस शताब्दी में एक तरफ विज्ञान और तकनीकी ने अविश्वसनीय उन्नति की है और दूसरी तरफ पर्यावरण में अद्वितीय गिरावट आई है; अभाव, गरीबी और बेराजगारी के साथ-साथ उत्पादन, व्यापार और धन-सम्पत्ति में आश्चर्यजनक बढोतरी हुई है; समृद्धि और वैभव तथा अभावग्रस्तता साथ-साथ विद्यमान है; विश्व उपनिवेशवाद का शिखर और पतन इस शताब्दी में हुआ है; राजनीतिक आजादी के साथ भारी आर्थिक-सांस्कृतिक समस्याओं से वास्ता पड़ा है; विकसित और विकासशील दुनिया का आविर्भाव हुआ है; कम्युनिस्ट दुनिया का उभार और उसका पतन हुआ है; शीत युद्ध प्रभावित विश्व शांति की स्थिति; संयुक्त राष्ट्र और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सामने राष्ट्रीय राज्यों का घटता दर्जा; राष्ट्रीय राज्य बनाने के लिए नस्ली आग्रह के साथ-साथ राष्ट्रों की आपसी अन्तरनिर्भरता और आर्थिक एकीकरण बढ़ता जा रहा है; इस शताब्दी के उपरोक्त सभी मुख्य विरोधाभास हैं।

5. सब से परे, यह पाँच मूलभूत विज्ञान और तकनीकी (यानि, अन्तरिक्ष, ऊर्जा, जैव, पदार्थ और सूचना) के विकास की शताब्दी है। विज्ञान और तकनीकी की इन पाँच शाखाओं के आविर्भाव ने मनुष्य जाति को दूर-स्थान तक विचारों के आदान-प्रदान को प्रकाश की गति से कर पाना तथा व्यक्तिगत तौर पर मिलना एवं मालों का आदान-प्रदान ध्वनि से तेज गति में कर पाना संभव बनाया है। इन्होंने विश्व स्तर पर नए तरीके से सोचने, कार्य करने और संगठित करने का रास्ता हमवार किया है जो अब वैश्वीकरण

(ग्लोबलाइजेशन) कहलाता है। यह ग्लोबलाइजेशन एक अत्यधिक सकारात्मक विकास है, जिसकी बहु-आयामी समस्याओं से इस नई उभर रही शताब्दी में मानव जाति को मुकाबला करना है।

6. इसका मतलब यह नहीं है कि सब-कुछ उज्ज्वल है। गुजर रही शताब्दी भी बहुत सी अनसुलझी गंभीर समस्याओं को पीछे छोड़ रही हैं। इनमें से दो इतनी चुनौतीपूर्ण हैं कि स्वयं मानव जाति के अस्तित्व के लिए ही खतरा पैदा कर रही है। पर्यावरण गिरावट और जनसंख्या वृद्धि की समस्याएं बेकाबू हद तक पहुंच चुकी हैं। अभी तक मानव जाति जीवन और मौत का फैसला करने वाली इन समस्याओं को उचित प्रत्युत्तर नहीं दे सकी है।

(ब) गुजर रही शताब्दी की कारगुजारी और आने वाली चुनौतियां

7. वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड वॉच संस्थान की 1999 की रिपोर्ट पिछली शताब्दी और आने वाली चुनौतियों के बारे में लोमहर्षक दृश्य पेश करती है। 1900 में दुनिया की आबादी 160 करोड़ से बढ़कर इस शताब्दी के अन्त तक करीब 600 करोड़ हो गई है। ग्लोबल आर्थिकता 1900 में 2300 बिलियन डालर प्रति वर्ष वे बढ़कर 1998 में 39000 बिलियन डालर प्रति वर्ष हो गई है, जो 17 गुनी वृद्धि दर्शाती है। अकेले 1997 के वर्ष में सम्पूर्ण 17वीं शताब्दी के दौरान हुए उत्पादन से अधिक उत्पादन हुआ। 1950 में अनाज का प्रति हैक्टेयर औसत उत्पादन 1.06 टन से बढ़कर 1998 में 2.7 टन प्रति हैक्टेयर पहुंच गया है। 1900 में जहाँ कुछ हजार बैरल जीवाश्म ईंधन प्रतिदिन काम में आता था यह 1997 में प्रतिदिन 7 करोड़ 20 लाख बैरल तेल उपयोग की विस्फोटक स्थिति में पहुंच गया है। 1990 में जहाँ 3,76,000 कम्प्यूटर थे वहां 1998 में 3 करोड़ से अधिक कम्प्यूटर एक बड़ी भारी वद्धि दर्शाते हैं। औसत आयु जो शायद मानव सुख-समृद्धि का प्रहरी सूचक है, 1900 में 35 वर्ष से बढ़कर आज 66 वर्ष पहुँच चुकी है। यह शताब्दी दवा और जैव तकनीकी के क्षेत्र में काफी छलांगें लगा चुकी हैं। और आज मनुष्य सफलता से क्लोनिंग का अभ्यास करके 'ईश्वर से खेलने' की कोशिश कर रहा है।

8. फिर भी, परिदृश्य काले धब्बों से भी भरा पड़ा है। यहाँ बढ़ती हुई आय की असमानता देशों के अन्दर और देशों के बीच मौजूद है। यहाँ अनुमानित 84 करोड़ 10 लाख लोग कुपोषण के शिकार हैं और अल्प भार से ग्रसित हैं। 120 करोड़ लोगों को शुद्ध पीने का पानी उपलब्ध नहीं होता। 160 करोड़ लोग अशिक्षित हैं और 200 करोड़ लोग बिजली सुविधा से वंचित हैं। निओन लाइट की चकाचौंध में दुनिया के शहरों में अत्यधिक आबादी स्थानान्तरित हो गई है जिसके परिणामस्वरूप वहाँ भीड़-भाड़ और जीवन दुभर हो गया है।

9. ईंधन तेल और अन्य भौतिक संसाधनों का अपव्ययी उपयोग तथा उड़ाऊ आर्थिकता के दबाव में पर्यावरण बिगड़ रहा है। तथा पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग कूड़े के ढेर में बदल रहा है। वातावरणीय प्रणाली पर बढ़ रहा दबाव अनगिनत प्रतिकूल परिणामों के साथ जलवायु अस्थिरता के एक नये युग को प्रारम्भ कर रहा है। शस्त्र तकनीकी अकल्पनीय विनाशक हद के साथ भारी छलांगें लगा चुकी है।

(ग) पृथ्वी तापन

10. अन्य प्राकृतिक आपदा जो अब अपना सिर ऊंचा उठा रही है वह ग्लोबल वार्मिंग (पृथ्वी तापन) है। इस बात के वैज्ञानिक प्रमाणों में वृद्धि हो रही है कि पृथ्वी का औसत सतही तापमान हालिया वर्षों में तेज दर से बढ़ रहा है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) द्वारा 1998 में संयुक्त रूप से स्थापित जलवायु परिवत्रन पर अन्तर-सरकारी पैनल के अनुसार मौसम मॉडल प्रोजेक्ट में विश्व औसत सतही तापमान में लगभग 1 डिग्री से 3.5 डिग्री सेल्सियस तापमान 2100 तक बढोतरी होने तथा लगभग 15.95 सेमी औसत समुद्री स्तर में वृद्धि की संभावना है। तापन की औसत दर पिछले 10,000 वर्षों में किसी भी वक्त देखी गई दर से संभवत: अधिक है। अगर अभी से इसको रोकने का उपाय नहीं किया जाता तो बहुत देरी हो चुकी होगी और मानव समाज को भारी हानि उठानी पड़ सकती है।

11. पृथ्वी तापन का बड़ा कारण ग्रीन हाउस गैसों (जैसे, क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन्स (CFCS), क्लोरीन और ब्रोमीन) का उत्सर्जन है जो पर्यावरण में मौजूद ओजोन अंश का क्षय करती है और वायु में कार्बन के अंश को भी बढ़ाती है। ओजोन परत (जो पृथ्वी की सतह के ऊपर 10 से 50 किलोमीटर के बीच स्थित है) सूर्य की पराबैंगनी किरणों (लगभग 95%) के हानिप्रद प्रभाव से हमारी रक्षा करती है। इस परत में किसी कमी का अर्थ होगा, पराबैंगनी किरणों के सामने दीर्घ अनावरण का शिकार होना, जिसका परिणाम एक तरफ कई मानव बीमारियों (जैसे चमड़ी का कैन्सर, रोग प्रतिरोध क्षमता का कमजोर होने, आँखों की बीमारियों जैसे मोतियाबिन्द होना, इत्यादि) से ग्रसित होने और दूसरी तरफ ग्लोबल वार्मिंग में बढोतरी होने में निकलेगा।

12. ग्लोबल वार्मिंग की क्रूर विडम्बना यह है कि यह मानसूनी वर्षा को सुखाकर मौसमी परिवर्तन पैदा कर सकता है, यह समुद्री स्तर को बढ़ा कर द्वीपों और नीचे स्तर वाले किनारे के क्षेत्रों के लिए बर्बादी पैदा कर सकता है। मौसम परिवर्तनों से हमारी भोजन उत्पादन प्रणाली भी छिन्न-भिन्न हो सकती है, हमारा स्वास्थ्य बर्बाद हो सकता है और मानवीय जीवन असंभव बन सकता है।

(घ) दुनिया एक बड़े जल संकट की और बढ़ रही है

13. दुनिया एक बड़े जल संकट की ओर बढ़ रही है। विकासशील देशों में 120 करोड़ लोग शुद्ध पीने के पानी से वंचित है, 290 करोड़ लोगों के लिए पर्याप्त सफाई व्यवस्था नहीं है तथा एक वर्ष में 40 लाख बच्चों की जल से सम्बन्धित बीमारियों की वजह से मृत्यु होती है।

14. एमर्हस्ट (मैसाचुसेटस) में स्थित विश्व जल नीति परियोजना के निदेशक के अनुसार, विश्व अनाज उत्पादन के लिए अब एक सबसे बड़ी चुनौती पानी का अभाव है। विश्व के किसान प्रति वर्ष जलस्रोतों (कुओं) में पुन: भरे जाने वाले जल से लगभग 160 बिलियन क्यूबिक मीटर अधिक जल बाहर निकाल लेते हैं। यह मात्रा मोटे तौर पर विश्व के करीब 10% अनाज उत्पादन के लिए आवश्यक पानी के बराबर है। जैसे-जैसे भू-जल बाहर निकाला जाएगा, कुएँ सूखते चले जायेंगे। जहाँ भू-जल इसके बावजूद रहेगा वहाँ ज्यादा गहराई से पानी को निकालना और भी ज्यादा खर्चीला बन सकता है।

15. नदी और नालों में सतही जल गायब हो रहा है। बहुत सी बड़ी नदियां अब साल के बड़े हिस्से में सूखी रहती है। इनमें चीन की यलो नदी, पाकिस्तान की सिन्धु नदी, दक्षिण एशिया की गंगा नदी और दक्षिण पश्चिम अमेरिका की कोलोराडो नदी शामिल हैं। जल के अभाव में अब खेती और शहरों के बीच प्रतियोगिता हो रही है। ऐसी ही प्रतियोगिता एक नदी पर निर्भर रहने वाले पड़ौसी देशों के बीच हो रही है। यदि किसान नई जल संरक्षण तकनीकी का उपयोग नहीं करते तो जैसे-जैसे जल निकासी होती जाएगी, सिंचित भूमि रेगिस्तान में तब्दील होती चली जाएगी।

16. समस्याओं को जोड़कर देखें तो जनसंख्या वृद्धि विश्व में सबसे अधिक जलाभाव वाले कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक है। सन् 2025 तक जलाभाव वाले देशों में रहने वाली जनसंख्या 47 करोड़ से बढ़कर 300 करोड़ तक पहुंच जाएगी। अगर इन देशों में अपनी जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन उत्पन्न करने लायक जल की कमी रही तो अनाज के आयात की प्रतियोगिता बढ़ जाएगी।

17. जल संसाधन के तौर पर जनसंख्या वृद्धि, तेजी से शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और पर्यावरणीय गिरावट के तहत भारी दबाव में रहा है। जलाभाव विकास के लिए सबसे अधिक एक मात्र चरम सीमाकारी (प्रतिबन्धक) पहलू रहा है। हमने जिस तरीके से इसका उपयोग या दुरुपयोग किया है उससे न केवल प्रत्येक देश या समुदाय बल्कि दुनियाभर में आने वाली सन्तानों के लिए भी इस सबसे अधिक बहुमूल्य संसाधन की गुणवत्ता और उपलब्धता को प्रभावित किया है।

(ड़) विश्व जनसंख्या विस्फोट

18. अन्य सनसनीखेज खबर जनसंख्या की स्थिति पर सितम्बर 1999 में प्रसारित यू.एन. रिपोर्ट में है जो आने वाले समय में स्थिति की गंभीरता को दर्शाती है। यह दर्शाती है कि वर्तमान में बीत रही शताब्दी 160 करोड़ जनसंख्या लेकर शुरू हुई थी, जिसने पिछले मात्र 12 वर्षों में ही 500 करोड़ से 600 करोड़ की छलांग लगा दी है।

19. 20वीं शताब्दी में विश्व की जनसंख्या 440 करोड़ बढ़ी है यह किसी अन्य शताब्दी में बढ़ी जनसंख्या से बहुत ज्यादा है। 1900 से 1999 के बीच तीन गुना आबादी बढ़ना इस शताब्दी का परिभाषित लक्षण कहा जा सकता है। 19वीं शताब्दी में कुल 60 करोड़ की वृद्धि हुई थी।

20. आज, लगभग 98% विश्व आबादी का बढ़ना अल्प विकासशील देशों में हुआ है।

21. इससे पहले इतने लोगों का लम्बे समय तक जीना संभव नहीं हुआ। अल्प विकासशील देशों में अब औसत आयु 64 वर्ष है और विकसित देशों में 75 वर्ष से ऊपर है।

22. रिपोर्ट घटते संसाधनों का डरावना परिदृश्य पेश करती है, खासकरके विकासशील देशों में जहाँ अधिकतर जनसंख्या बढोतरी हो रही है। इसका अर्थ है कि भोजन, कृषि भूमि और स्वास्थ्य एवं पोषण सम्बन्धी प्रावधानों के अपर्याप्त संसाधनों पर भारी दबाव पड़ रहा है। संक्षेप में ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक को शानदार जीवन प्रदान करना अधिक मुश्किल होगा।

23. इन क्षेत्रों में बढ़ रही जनसंख्या का प्रभाव मछली उत्पादन के गिरने, जंगलों के सिकुड़ने, ताप के बढ़ने और पौधों व पशुओं की प्रजातियों के नुकसान से भी नजर आ रहा है। विश्व तापन (ग्लोबल वार्मिंग) जनसंख्या सम्बन्धी मसलों जैसे ईंधन के उपभोग और भोजन, भूमि तथा जल आपूर्ति से जुड़ा है।

24. दुनिया का अल्प विकसित क्षेत्र पहले से ही सभी को शिक्षा प्रदान करने और उत्कर्ष प्रजनक स्वास्थ्य रक्षा या गर्भ निरोधक की माँग को पूरा करने में असमर्थ है।

25. विकासशील देशों के सामने दूसरी चुनौती है कि आज इन देशों में करीब 200 करोड़ लोग 20 साल से कम उम्र के हैं। यह दुनिया और इन देशों के सामने एक भारी चुनौती खड़ी है। नौजवान लोगों का यह बड़ा समूह शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, पोषण और रोजगार चाहता है। यह डगमगा देने वाला कार्य है जिसको पिछले दो दशकों के दौरान विकसित और विकासशील दोनों तरह के देश करने में असमर्थ रहे हैं। इस तथ्य से एक अन्य चुनौती उभर रही है कि इस बड़ी संख्या में नौजवान पुरुषों और महिलाओं की उम्र बच्चे पैदा करने वाली उम्र में पहुँच रही है जो जनसंख्या वृद्धि की एक नई गूंज दे रही है। इस परिस्थिति से दुनिया कैसे निपटेगी?

26. अन्य समस्या जिसका विकासशील देशों को सामना करना है वह है कि ग्रामीण इलाकों में रोजगार और संसाधनों की कमी की वजह से बड़ी संख्या में आबादी गाँवों से शहरों में स्थानान्तरित हो रही है। यह अनुमानित है कि सन् 2006 तक दुनिया की आधी आबादी शहरों में निवास कर रही होगी। जिसके कारण इन इलाकों के संसाधनों पर भारी दबाव बढ़ जाएगा, परिणामस्वरूप आर्थिक उथल-पुथल और सामाजिक विघटन हो सकता है। 21वीं शताब्दी के पहले कुछ दशकों के लिए परिस्थितियां काफी मुश्किल शक्ल ले चुकी है, यहाँ तक कि विस्फोटक है, अगर अभी से इनके निराकरण के मानदण्ड नहीं तय किए गए तो स्थिति नियन्त्रण से बाहर होगी।

27. अब दुनिया के सामने असमानता की चुनौती अधिक गंभीर बन गई है। विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि की दर केवल 0.1% है और प्रति व्यक्ति आय (GNP) 20,350 डालर की ऊँचाई पर है। दूसरी तरफ विकासशील देशों की वार्षिक जनसंख्या बढोतरी 1.7% है और उनकी प्रति व्यक्ति आय (GNP) 1330 डालर की तुच्छ हद पर खड़ी है। यह अन्तर और अधिक बढ़ेगा।

28. दुनिया का परदृिश्य यह है कि 30 करोड़ से अधिक महिलाओं को गर्भनिरोधक सुविधाएं उपलब्ध नहीं है। प्रति वर्ष 6 लाख महिलाएं बच्चों को जन्म देने के समय और 70 हजार असुरक्षित गर्भपात के कारण मौत की शिकार हो जाती है। विश्व के गरीबों में महिलाओं और लड़कियों का 3/5वां भाग बनता है।

29. जनसंख्या रिपोर्ट का सन्देश स्पष्ट है—चुनने की आजादी प्रत्येक व्यक्ति के पास है। इसका अर्थ है कि वह व्यक्तिगत आवश्यकताओं, प्रजनक स्वास्थ्य, शिक्षा और महिला व पुरुष के बीच समानता पर गंभीर ध्यान दे।

(च) मानव स्वास्थ्य को नई और पुरानी चुनौतियाँ

30. सन् 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाएं हासिल करने के लक्ष्य का विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और दुनिया भर के राष्ट्रीय राज्यों ने वादा किया था। परन्तु यह

अभी तक दिवास्वप्न बना हआ है जबकि तीसरी सहस्त्राब्दी हमारे द्वार पर पहुँच गई है। आज मानव स्वास्थ्य की स्थिति है कि यह न केवल पिछली शताब्दी की बीमारियों को झेल रहा है। बल्कि एड्स, कैंसर जैसी बहुत सी अन्य नई बीमारियों का भी शिकार हो गया है।

31. कोढ और पोलियो बहुत से देशों में अभी तक स्वास्थ्य समस्या के रूप में पड़े हैं। हैजा और गैसटरोएनटेराईटिस (जठरांत्र शोथ) विश्व के बहुत से भागों में निरन्तर विद्यमान है। कुछ देशों में डेंगू बुखार का फूट पड़ना भी नित्य की घटना बन चुका है।

32. कुछ बीमारियां–जैसे मलेरिया और क्षय रोग–के बारे में पहले ही सोचा गया कि यह समाप्त हो रही है जबकि अधिकतर विकासशील देशों में अधिक जोर से पुन: उभर रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने अब मलेरिया को उच्च प्राथमिकता सूची में रखा है। यह प्रति वर्ष लगभग 30 से 50 करोड़ लोगों को प्रभावित करता है और 20 लाख लोगों को मौत का शिकार बनाता है। क्षय रोग से प्रति वर्ष 30 लाख से अधिक लोग मरते हैं। जो विकासशील देशों में रोकथाम की जा सकने वाली बालिग मौतों का 25% से अधिक है। क्षय रोग में अचानक तेजी का कारण इसका एड्स (HIV Positive) से सम्बन्ध होना है। चूंकि एड्स (HIV) से रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर पड़ जाती है जिससे एड्स प्रभावित व्यक्ति में क्षय रोग होने की संभावना सामान्य व्यक्ति से 30 गुना अधिक हो जाती है। अगर क्षय रोग पर नियंत्रण तन्त्र मजबूत नहीं किया गया तो अगले 20 वर्षों में 100 करोड़ लोगों को क्षय रोग होगा और इससे 7 करोड़ लोग मृत्यु का ग्रास बन जाएंगे।

33. एड्स की वजह से एक अनुमान के मुताबिक 1981 में इसके उद्भव से अब तक 1 करोड़ 20 लाख लोग मृत्यु के शिकार हुए हैं। पिछले दो दशकों में 20 के लगभग रोग पैदा करने वाले नये जिवाणु उभरे हैं जिनमें से एच आई वी एक है।

34. कुछ नई उभर रही बीमारियों में शामिल हैं–लेगियोनाइरस (Legionnaires) बीमारी–यह निमोनिया के तरह की है जो ऐसे बैक्टीरिया से पैदा होती है जो पानी और वातानुकूलन प्रणाली को दूषित करता है; ईबोला रक्त स्रावी बुखार (ebola haemorrhagic fever) जो उष्णकटिबंधीय अफ्रीका में सीमित है; रिफ्ट घाटी बुखार एक वायरस द्वारा पैदा होता है जिसे पहले केन्या में अलग करके देखा गया और बाद में मिश्र में पाया गया; मंकीपोक्स (Monkeypox) चेचक के समान एक बीमारी पैदा हुई है; क्रयूजफैट-जेकब (Creuzfeldt-Jakob), एक ह्रासी मानसिक हालात जिसका सम्बन्ध संक्रमित गोमांस उपभोग से जुड़ा है।

35. विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि अगली शताब्दी में नया इन्फ्लूएन्जा विश्व महामारी के रूप में आ सकता है। हैजा, वाइबरिओ कोलेराई (Vibrio Cholerae) का नया तनाव भी तेजी से उस आबादी तक में फैल सकता है जिसको उसी जिवाणु के दूसरे तनावों से बचाने के लिए रोग प्रतिकारक टीकों या दवाओं से रक्षित किया हुआ है।

36. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने भविष्यवाणी की है कि कैन्सर विश्वव्यापी मौतों का सबसे बड़ा कारण बना रहेगा। नई दवाओं के प्रबन्ध और खोज के बावजूद कैन्सर के सभी केसों में से केवल एक तिहाई का इलाज भी तभी किया जा सकता है जब

प्रभावी इलाज के साथ-साथ बीमारी का प्राथमिक अवस्था में ही पता लग जाए। मधुमेह के केस भी 1997 में 14 करोड़ 30 लाख थे जो बढ़कर 2025 में दुगने से अधिक (यानि 30 करोड़) हो जायेंगे, जिसकी मुख्य वजह खाने-पीने और अन्य जीवन जीने के पहलू हैं।

(छ) नाटो का नया सैनिक सिद्धान्त

37. एक अत्यधिक खतरनाक हालिया घटनाक्रम यू एस के नेतृत्व में नाटो का नया सैनिक सिद्धान्त है जिसके अनुसार किसी मामले को बिना संयुक्त राष्ट्र (यू एन) को सौंपे और उसकी आज्ञा प्राप्त किए बगैर मानवाधिकार के बहाने के आधार पर किसी भी देश में सैनिक दखल देने का नाटो ने अपना अधिकार घोषित किया है। इस सिद्धान्त में यहाँ तक संकेत किया गया है कि किन्हीं निश्चित हालातों में परमाणु हथियारों का उपयोग भी सम्भव है और अमेरिका की सुरक्षा के साथ यूरोप की सुरक्षा को स्थाई तौर पर बाँधने पर जोर दिया गया है। अमेरिका दुनिया में पहले से ही स्व-नियुक्त पुलिसमैन की तरह व्यवहार कर रहा है। इसका सुडान और अफगानिस्तान में क्रूज मिसाइलें दागना, प्रत्येक ग्लोबल संगठन में अपनी बात थोपने का रुख अख्तियार करना, इसकी नीति से भिन्न राय रखने वाले प्रत्येक देश को धमकी देना, इत्यादि, ताकत निर्देशित अन्धराष्ट्रवादी मानसिकता का स्पष्ट इजहार है।

38. अमेरिका के नेतृत्व में नाटो का सैनिक सिद्धान्त दुनिया के शान्तिप्रिय लोगों को एक धमकी है। आज की अन्तरनिर्भर दुनिया में यह केवल विनाशवादी धारणा का सूचक है जो विध्वंसकारी उद्देश्य से भरी हुई है। यह दर्शाती है कि इसके प्रवर्तकों ने इतिहास से कुछ भी नहीं सीखा है। इसका अर्थ है कि आखिरकार युद्ध भड़काने वाले सभी लोगों के दुश्मन अपने आप उत्पन्न की गई बदतरीन पराजयों से नष्ट हो जायेंगे।

(ज) सदैव बढ़ रही असमानता

39. आज मानव विकास का एक अत्यधिक परेशान करने वाला पहलू धनी व निर्धन के बीच बढ़ती जा रही खाई है।

40. 1999 की यू एन विकास रिपोर्ट गरीब और अमीर के बीच सदैव बढ़ रही असमानता दर्शाती है। यह बताती है कि पिछले 9 वर्षों (1991-1999) में उच्चतम पाँचवां भाग (1/5) और निचले पाँचवें भाग की आय के बीच अनुपात पहले 6:1 था जो बढ़कर 74:1 अनुपात में पहुँच गया और 80 देशों का राजस्व एक दशक पहले उनके राजस्व की तुलना में कम हुआ है। सबसे अधिक धनवान 200 लोगों की परिसम्पत्ति दुनिया की आबादी के 41% लोगों की कुल आय से अधिक है। व्यवस्था का फायदा उठाने योग्य लोगों और इसका प्रभाव भुगतने के लिए मजबूर होने वाले लोगों के बीच खतरनाक ध्रुवीकरण की निन्दा करते हुए रिपोर्ट ने ग्लोबलाइजेशन के नियमों की पुन: रचना करने पर जोर दिया है।

41. 1998 की यू एन विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि व्यक्तिगत उपभोग के लिए होने वाले खर्च का 86% भाग विश्व के मात्र 20% लोग उपभोग करते हैं।

42. इसने आगे जोड़ा कि इस वर्ष (1997-98) विश्व भर का उपभोग 24 ट्रिलियन डालर (24000 अरब डालर) है जो 1975 के आंकड़े से 6 गुना है। परन्तु विकासशील देशों के 440 करोड़ लोगों में से 3/5वां भाग ऐसी बस्तियों में रहता है जहाँ आवश्यक सफाई व

निकासी व्यवस्था नहीं है। लगभग एक तिहाई लोगों को शुद्ध पीने का पानी उपलब्ध नहीं है। एक चौथाई लोगों के पास ठीक-ठाक घर नहीं है। 1/5वां भाग आधुनिक स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित रहता है। बच्चों के 1/5वें भाग को मात्र 5वीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त नहीं होती है। इसने उद्घाटित किया है कि यूरोप में 11 बिलियन (1100 करोड़) डालर मूल्य की आइसक्रीम का उपयोग किया जाता है, जबकि यूरोप और अमेरिका में पालतू जानवरों पर 17 बिलियन डालर की सीमा में खर्च किया जाता है। यूरोप और अमेरिका में अन्य 12 बिलियन डालर सुगन्धित द्रव्यों (इत्र, तेल-फुलेल) पर खर्च किया जाता है, जबकि जापान व्यापारिक मनोरंजन पर 35 बिलियन डालर खर्च करता है। मात्र 3 विश्व के सबसे अधिक धनवान लोगों के पास 48 अल्प विकसित देशों की कुल सकल घरेलू उत्पाद (जी डी पी) के बराबर सम्पत्ति है।

43. रिपोर्ट में प्रकट किया है कि विश्व के 225 सबसे अधिक धनवान लोगों की कुल सम्पत्ति 1 ट्रिलियन डालर से अधिक है, यह विश्व के 47% गरीब लोगों–जिनकी संख्या 250 करोड़ है–की कुल सम्पत्ति के भी बराबर है। दुनिया के अधिकतम सम्पत्तिवान 32 व्यक्तियों के पास दक्षिण एशिया (भारत सहित 7 देशों) तथा ईरान व अफगानिस्तान की सम्मिलित सम्पत्ति (जी डी पी) से अधिक सम्पत्ति है। 1965 में दुनिया के 7 अधिकतम धनी देशों की औसत प्रति व्यक्ति आय 7 अधिकतम गरीब देशों की तुलना में 20 गुनी थी जो 1995 में बढ़कर 39 गुना तक पहुँच चुकी थी। अफ्रिका में औसत प्रति व्यक्ति आय का स्तर अब विकसित देशों के स्तर का केवल 7% है। 1970 में लैटिन अमेरिकी देशों का यह स्तर औद्योगिक देशों के स्तर का एक तिहाई था जो आज एक चौथाई रह गया है।

44. विश्व बैंक द्वारा 1999 विश्व विकास रिपोर्ट में विकासशील दुनिया का दृश्य फीका चित्रित किया है। इसमें कहा गया है कि 'अल्प मात्रा में आर्थिकता का नीचे जाना' (Trickle-down economics)–धनवानों के करों में कटौती करने की कार्यवाही से आशा करना कि इससे गरीबों को फायदा पहुँचेगा–काम नहीं करता। परन्तु पिछले 50 वर्षों में चाहे जो नीतियां अपनाई हो एक बात स्पष्ट है कि गरीबी निरन्तर बढ़ती गई है। आज, 150 करोड़ जनता प्रतिदिन 1 डालर से कम आय में जीवन बसर कर रही है जबकि यह संख्या 1987 में 120 करोड़ थी। यह पूर्वानुमान लगाया गया है कि 2015 तक इस निम्न स्तर के गरीबों की संख्या 190 करोड़ होगी।

45. यह धनी और निर्धन के बीच बढ़ती खाई को भी उद्घाटित करती है। 1970 और 1985 के बीच विश्व के सबसे गरीब देशों की औसत प्रति व्यक्ति आय अमीर देशों की आय का 3.1% से घटकर 1.9% तक नीचे आ गई है।

46. कुछ अन्य संयुक्त राष्ट्र एजेन्सियों द्वारा प्रदान किए गए तथ्य हमें निम्नलिखित परिदृश्य पेश करते हैं।

47. पूरे विश्व में लगभग 140 करोड़ लोग निरन्तर चरम गरीबी में जी रहे हैं (विश्व बैंक) 1 करोड़ 80 लाख लोग प्रतिवर्ष भूख और भूख से सम्बन्धित बीमारियों से मौत का शिकार होते हैं। प्रति वर्ष 5 वर्ष से कम उम्र के लगभग 1 करोड़ 30 लाख बच्चे कुपोषण से मृत्यु का शिकार होते हैं। करीब 6 लाख महिलाएं प्रतिवर्ष गर्भावस्था और बच्चे के जन्म के वक्त मौत का शिकार बनती हैं और यूनिसेफ के अनुसार इससे 30 गुना अधिक महिलाओं को रोग और जख्मों को झेलना पड़ता है जो प्राय: बिना इलाज और बिना बताए ही

भुगतती रहती है। लगभग 170 करोड़ लोगों को शुद्ध पीने के पानी की आपूर्ति नहीं होती और 300 करोड़ लोगों को सफाई की सुविधाएं उपलब्ध नहीं है। संयुक्त राष्ट्र के मानव प्रबन्धन के लिए केन्द्र (U.N. Centre for Human Settlement) के अनुसार अकेले शहरों में लगभग 60 करोड़ लोग या तो बेघर हैं या 'जीवन और स्वास्थ्य के लिए चुनौतीपूर्ण पर्यावरण' में रह रहे हैं। वर्तमान में विश्व स्तर पर 260 करोड़ लोग कार्य शक्ति वाले हैं, उनमें से 12 करोड़ बिल्कुल बेरोजगार हैं और 68 करोड़ अर्द्ध बेरोजगार हैं जो दोनों समय का भोजन पूरा नहीं कर पाते हैं जबकि दूसरी तरफ ज्यादा से ज्यादा नौजवान उम्र में प्रवेश कर रहें और उत्पादक रोजगार की तलाश कर रहे हैं। अपराध कई गुना बढ़ गया है। अकेले अमेरिका में प्रतिवर्ष औसत लगभग 1 करोड़ 50 लाख अपराधिक मामले पुलिस में दर्ज होते हैं। प्रतिवर्ष लगभग 30 लाख बच्चों से दुर्व्यवहार किया जाता है और लगभग 7000 बच्चे बन्दूक की गोली के घावों का शिकार बनते हैं। अकेली नशीली दवाओं पर वार्षिक खर्च 80 विकासशील देशों की संयुक्त आय (जी डी पी) से अधिक हैं।

48. यू एन डी पी 1999 की रिपोर्ट भी विश्व के विभिन्न देशों के बीच सभ्य समाज के तन्त्र में उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर बड़े भारी भेदभाव और अन्तर का लेखा-जोखा पेश करता है। यह कहती है–सन् 1996 में कम्बोडिया में प्रत्येक 100 व्यक्तियों के पीछे 1 से भी कम टेलीफोन उपलब्ध था, इसके उलट मोनाको में प्रत्येक 100 व्यक्तियों में से 99 को टेलीफोन सुविधा उपलब्ध है। दूर संचार के लिए प्रत्येक 100 व्यक्तियों के पीछे 1 टेलीफोन होना (यानि दूर संचार का एक घनत्व होना) एक चौतरफा स्वीकृत पैमाना है। अभी तक एक चौथाई देशों में यह आधारभूत स्तर भी हासिल नहीं किया है जबकि हम अगली शताब्दी में प्रवेश कर रहे हैं। इसमें सब-सहारा अफ्रीका और अल्प विकसित देशों में से काफी देश है। दूर संचार व्यवस्था के फैलाव की वर्तमान औसत गति के अनुसार भूटान और विश्व के कुछ अन्य देश आज की जर्मनी और सिंगापुर के दूर संचार घनत्व का स्तर सन् 2050 तक हासिल कर सकेंगे।

49. आधारभूत जमीनी तन्त्र से परे नजर डालें तो और भी अधिक सख्त अन्तर सामने आता है। 1998 के मध्य में औद्योगिक देशों में जहाँ दुनिया के 15% लोग निवास करते हैं वहाँ इंटरनेट व्यवस्था को उपयोग करने वाली आबादी का 88% हिस्सा रहता है। अकेले उत्तरी अमेरिका में जहाँ विश्व की 5% आबादी निवास करती है। जबकि वहाँ इंटरनेट व्यवस्था का उपयोग करने वाली आबादी का अनुपात 50% से अधिक बनता है। यानि विश्व में उपयोग हो रही इंटरनेट व्यवस्था का आधे से अधिक उपयोग उत्तरी अमेरिका में होता है। इसके विपरीत, दक्षिण एशिया में सम्पूर्ण मानव जाति का 20% से अधिक हिस्सा निवास करता है जबकि इंटरनेट उपयोग करने वाली आबादी 1% से भी कम है।

(झ) अब तक चल रही अनुचित विश्व व्यवस्था

50. दुनिया अब तक एक अनुचित और गैर न्यायिक व्यवस्था के तहत चल रही है जहाँ शक्तिशाली कमजोरों को दबाते हैं और धनी–निर्धनों पर सवारी करते हैं–साथ ही धन, बल और विशेषाधिकार राष्ट्रीय स्तरों के साथ-साथ विश्व स्तर पर न्याय और सच्चाई के स्वीकृत मानदण्ड बने हुए हैं।

51. यह सच्चाई है जो प्रथमतया समस्त विश्व संस्थाओं के सिद्धान्त और कार्यप्रणाली से स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र और इसकी एजेन्सियां 1945 के चार्टर द्वारा संचालित हैं जिसने दुनिया के सैनिक तौर पर सबसे अधिक शक्तिशाली 5 राज्यों (देशों) यानि अमेरिका, चीन, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस को निर्वाचित सुरक्षा परिषद् में वीटो पावर और स्थाई सदस्यता दे रखी है। स्पष्टतया, इस तरह का विशेषाधिकार पर आधारित नियम पूर्णतया भेदभावपूर्ण और गैर न्यायिक है क्योंकि यह बाकी बचे 180 संयुक्त राष्ट्र सदस्यों की भूमिका को घटाकर शून्य बना देता है। नैतिक और कानूनी तौर पर यह विश्व द्वारा स्वीकृत राजनीतिक बराबरी के उसूल को अमान्य करता है तथा एक इकाई एक वोट के सार्वत्रिक मताधिकार के मानदण्ड और प्रत्येक राष्ट्रीय राज्य के मानव अधिकार को नकारता है। जब संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों के हनन के आधार पर विभिन्न राज्यों के मामलों में दखलन्दाजी करता है तो वह संस्था अपने आपको नये युग के अनुसार प्रासंगिक बनाने के लिए तर्कसंगत आधार पर अपनी पुनरसंरचना क्यों नहीं करती है।

52. द्वितीयत:, दो अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं–आई एम एफ और विश्व बैंक–में भी ठीक उसी तरह के अतर्कसंगत और गैर जनवादी तौर तरीके हावी हैं जिनमें प्रत्येक सदस्य की वोट की ताकत का निर्धारण उसके आर्थिक वजन के अनुसार किया गया है। इस प्रकार, इन संस्थाओं को वित्तीय तौर पर विकसित देशों खास तौर पर अमेरिका जो कुल वोट देने की 17 प्रतिशत ताकत का मालिक है, द्वारा ही संचालित किया जाता है।

53. तृतीयत:, हालिया प्रतिपादित गैर न्यायिक सीटीबीटी की व्यवस्था असल में 5 बड़ी परमाणु शक्तियों को परमाणु हथियारों की इजारेदारी सौंप देती है–इस प्रकार उन्हें दुनिया के अजेय सरदार बनाती है।

54. चतुर्थ, कुछ थोड़े से विकसित देश जिनकी आबादी मुश्किल से विश्व की कुल आबादी का 15 प्रतिशत भाग है, आज विश्व के 80 प्रतिशत से अधिक भौतिक और वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं। बाकी बचे 20 प्रतिशत संसाधन 130 से अधिक विकासशील देशों में रह रही विश्व की 85 प्रतिशत आबादी के हिस्से में आते हैं।

55. पंचम्, मानव समुदाय का महिला भाग जो विश्व जनसंख्या का आधा हिस्सा है, विश्व भर में लगातार बुरे बर्ताव और दुर्व्यवहार का शिकार होता आ रहा है।

56. षष्टम्, प्रत्येक देश में राष्ट्रीय हालात भी प्रचलित विश्व व्यवस्था से ज्यादा भिन्न नहीं है। 186 देशों के बीच उनके विभिन्न भौतिक पर्यावरण, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक-आर्थिक हालातों की वजह से विभिन्नताओं के बावजूद उनमें बहुत हद तक सामाजिक जीवन की गुणवत्ता के क्षेत्र में समता है, खास करके विकासशील देशों के बीच और अधिक समता है। उदाहरण के लिए करीब-करीब प्रत्येक देश (चाहे विकसित हो या विकासशील) की राजनीतिक प्रक्रिया धन शक्ति के प्रभुत्व में चली आ रही है जो विकासशील देशों के मामलों में बाहुबल और आदिम मानदण्डों के साथ भी जुड़ी हुई है। आर्थिक प्रक्रिया आमतौर पर गला काटू प्रतियोगिता, सट्टेबाजी और काले धन के द्वारा क्रियाशील है। चालबाजी और बेईमानी के मानदण्ड हर कहीं व्यवहारिक रूप में आम बन चुके हैं।

57. करीब-करीब प्रत्येक देश में विधिकर्ता (विधायक) आम कानूनों से कुछ उन्मुक्तियां हासिल किए हैं, क्योंकि उन्हें विशिष्ट संसदीय विशेषाधिकारों वाले कानूनों के

तहत अधिकार प्राप्त हैं। विकासशील देशों में शासक समूह प्राय: कानून का दुरुपयोग करते हैं और अदण्डित रहते हैं। न्यायपालिका कहीं भी लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं है। इसके बजाए, न्यायालय की अवमानना का काननू जो सभी जगह प्रचलित है, इसके हाथ में प्रत्येक आलोचक का मुँह बन्द करने की शक्ति प्रदान किए हुए हैं। सरकारी गुप्तता अधिनियम जो करीब सभी देशों में विद्यमान है, नौकरशाही को सभी सौदों को ढकने का अधिकार प्रदान करता है और इस प्रकार लोगों पर सवारी करने व उनकी उपेक्षा करने का मौका देता है। विश्व भर में कानून लागू करने वाली एजेन्सियां चौतरफा अधिकार सम्पन्न है और उनका फायदा उठाती है। तीसरी दुनिया के देशों में ये एजेन्सियां ऐसा व्यवहार करती है जैसे वे खुद ही कानून है। अमीरों और कानून तोड़ने वालों का कानून हर कहीं पक्ष लेता है जबकि गरीबों और वंचितों के प्रति पूर्वाग्रह ग्रसित है।

58. यह ऐसी दुनिया है जहाँ बेईमान राजनीति, काला धन और हाँ श्रीमानजी (यस सर) का आचरण सबसे अधिक लाभदायक धन्धे हैं। वास्तव में, वे प्रचलित अनुचित व्यवस्था के प्राचालकों (पैमानों) के सूचक हैं।

59. उपरोक्त वर्णित सभी गम्भीर चुनौतियां और खतरनाक आशंकाएं मानव समाज के अन्दर और प्रकृति व मानव समाज के बीच गैर-सामंजस्य को प्रतिबिम्बित करते हैं। आवश्यक तौर पर, वे मानव समाज की असंतुलित अवस्था को इंगित करते हैं।

60. मामलों की यह स्थिति मांग करती है कि मानव समुदाय राष्ट्रीय के साथ-साथ साझे (यानि अन्तर्राष्ट्रीय) दोनों स्तरों पर परिस्थितियों को ठीक करने के लिए दृढ़संकल्प के साथ कोशिश करे। परन्तु इस तरह की कोई कोशिश अभी तक ना तो किसी विश्वस्तरीय कार्य योजना (चाहे संयुक्त राष्ट्र या कुछ अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा निर्मित) की प्राथमिकता में आई है और ना ही किसी देश की लालसा बन पाई है।

II

आधारभूत मानवीय चुनौतियों के कारण

61. मानव समाज अपने सामने मुँह बाए खड़ी आशंकाओं के सम्बन्ध में इतना चिन्तित क्यों नहीं है, इसके मूलभूत कारण भिन्न-भिन्न और कई हैं। जिनमें मुख्य निम्न हैं–

(क) प्रकृति के प्रति अवास्तविक मानव दृष्टिकोण

62. आधारभूत मानवीय चुनौतियों का मुख्य कारण प्रकृति के प्रति मानव दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का केन्द्र बिन्दु एक तरफ प्रकृति को अपरिमित मानने की मानवीय कल्पना और दूसरी तरफ इस अनन्त अस्तित्व में मानव जाति को केन्द्रीय स्थान देना है। सभी किस्म के प्राचीन सिद्धान्त, जिनमें अलौकिक उत्पत्ति का दावा करने वाला सिद्धान्त शामिल है, ईश्वर प्रदत्त सीमाहीन अस्तित्व के साथ मानव जाति को इसकी सर्वोच्च रचना करार देते हैं। 19वीं शताब्दी में जन्मा मार्क्सवाद भी प्रकृति को असीम अपार (जिसकी न कोई शुरूआत है और ना कोई अन्त) मानता है और लोगों को 'प्रकृति के उनके अपने विरोध' से मानव इतिहास को स्वयं पैदा करने वाले करार देता है। 19वीं और 20वीं शताब्दियों के विभिन्न पश्चिमी उदारवादी विचार शाखाओं ने भी प्रकृति की व्यवस्था में मानव जाति के अद्वितीय होने पर जोर दिया है।

63. नवीनतम वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार हकीकत (**Reality**) के अन्तहीन चरित्र पर जोर देने वाले मानवीय दृष्टिकोण और सर्जन की इस व्यवस्था में मानव अवस्थिति को प्राथमिक मानने की धारणा प्रकृति का एक अवास्तविक नजरिया मात्र है। प्रकृति पदार्थ, अन्तरिक्ष और समय में सीमित है। यह प्रकृति की विभिन्न प्रक्रियाओं (मानवीय प्रक्रिया सहित) के अपने अन्दर और आपस में एकता और संघर्ष के दो तरफा तरीकों के माध्यम से अन्तरक्रिया करने और अन्तरनिर्भर होने की विशेषता द्वारा चरित्रित है।

64. ऐसे अवास्तविक मानव दृष्टिकोण के चलते मानव के सोच, व्यवहार और संगठन में विकृतियों का आना लाजिमी था। मानव समाज की सम्पूर्ण प्रक्रिया–यानि गण, कबीला, धार्मिक समुदाय और राष्ट्र के रूप में बहुत सी मानवीय सामाजिक अवस्थाएं–दर्शाती है कि मानव जाति हमेशा प्राकृतिक संसाधनों की कीमत पर मानवीय उन्नति के उद्देश्य को हासिल करने की कोशिश करती रही है। 19वीं शताब्दी तक प्रकृति के प्रति अवास्तविक मानव दृष्टिकोण प्राकृतिक व्यवस्था को कोई बड़ा नुकसान नहीं पहुँचा सका क्योंकि तब तक मानव जाति प्रकृति के भिन्न-भिन्न हिस्सों के बारे में बहुत कम ज्ञान रखती थी और इसलिए प्रकृति का कम शोषण कर पाई। परन्तु जैसे-जैसे प्रकृति के बारे में मानवीय ज्ञान तेजी से आगे बढ़ना शुरू हुआ, मानव जाति, विशेषकर विकसित दुनिया में प्रकृति के दुरुपयोग और अति उपयोग के लिए अपने ज्ञान को लागू करना शुरू किया। इसके साथ ही प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ती हुई जनसंख्या और गरीबी के दबाव से जुड़कर (विशेषकर विकासशील देशों में) पर्यावरण गिरावट का परिणाम पैदा किया जो आज मानवता के सामने जीवित नहीं रह पाने का खतरा पेश कर रहा है।

(ख) मानव विकास के प्रति एक तरफा दृष्टिकोण

65. आधारभूत मानवीय चुनौतियों का दूसरा कारण मानव विकास (या समाज या मानव इतिहास) के प्रति मानव दृष्टिकोण में है जो मानव विकास (या मानव समाज के निर्माण में या मानव इतिहास बनाने में) में विशिष्ट प्रतिभावान व्यक्ति (हीरो) की भूमिका पर जोर देता है और उसे हर वक्त के लिए प्राथमिकता देता है जबकि लोगों की भूमिका को पीछे धकेलते हुए उन्हें हर वक्त के लिए गौण स्थान देता है। सभी तरह के परम्परागत सिद्धान्त इस विचार को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करते हैं। बहुत सी पश्चिमी उदारवादी किस्में भी इसकी वकालात करती है। मार्क्सवादी विचारशाखा हालांकि लोगों के इतिहास निर्माता होने के सिद्धान्त को आगे बढ़ाती है परन्तु उसी वक्त यह विरोधी सिद्धान्त पेश करके नकारती है कि कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका होती है जिसका नेतृत्व एक सर्वशक्तिमान नेता (जो अकेला आखिरकार लोगों का अन्तिम स्वतंत्रकर्ता बनकर उभरता है) के हाथ में होता है। लोगों के प्रति ऐसे एक तरफा दृष्टिकोण के चलते मानवीय सोच, व्यवहार और संगठन में मानव संसाधनों और उनके विकास के प्रति विकृतियां पैदा होना लाजिमी थी।

(ग) लोगों की परम्परागत मानसिकता

66. आधारभूत मानव चुनौतियों का तीसरा कारण जनता की परम्परागत मानसिकता में निहित है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी सौंपे गए सदियों पुराने विश्वासों जैसे धन

और बल की शक्ति की मान्यता, व्यक्ति पूजा, भाग्य में विश्वास, ताकतवार का भय, अन्याय को सहन करना, इत्यादि–में जकड़ी हुई है, जिसके कारण जनता राष्ट्रीय और ग्लोबल दोनों स्तरों पर किन्हीं कार्यक्रमों और उनकी प्राथमिकताओं को तय करने में बहुत कम प्रभाव उपयोग करती है।

(घ) विद्यमान विश्व तंत्र की कमजोरियां

67. आधारभूत मानव चुनौतियों का चौथा कारण विद्यमान विश्व तंत्र की कमजोरियों में निहित है। यह तंत्र–यानि, (i) संयुक्त राष्ट्र और इसकी कई एजेन्सियां और (ii) 2 विश्वस्तरीय वित्तीय संस्थान, आई एम एफ और विश्व बैंक–जिनकी स्थापना 1945 में द्वितीय महायुद्ध के बाद के हालात से निपटने के लिए की गई थी। अत: इस तंत्र वाले संस्थान जो उस समय की सामाजिक वास्तविकताओं (या शक्ति समीकरणों) को प्रतिबिम्बित करते हैं अब नये युग की समस्याओं के लिए प्रासंगिक नहीं रहे हैं।

(ड़) राष्ट्र राज्य की अपर्याप्तता

68. आधारभूत मानवीय चुनौतियों का पांचवां कारण राष्ट्र राज्य (यानि, 19वीं-20वीं शताब्दियों की उच्चतम इकाई) की अपर्याप्तता से सम्बन्धित है, जो वर्तमान समस्याओं यानि, पर्यावरण, जनसंख्या, बाजार तंत्र, तकनीकी, गरीबी, बेरोजगारी इत्यादि-इत्यादि से निपटने में दिन प्रतिदिन कम से कम प्रभावी बनता जा रहा है। ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य (जो चीजों को राष्ट्रीय नजरिये से देखता है) और राष्ट्रीय प्राथमिकताएं इन मसलों के विश्वव्यापी चरित्र से मेल नहीं खाते हैं। और आगे, कोई एक राष्ट्रीय राज्य चाहे कितना भी ताकतवर हो आज इतने संसाधन और क्षमता नहीं रखता कि अपने आप किसी एक विश्वव्यापी मसले को उचित प्रत्युत्तर दे सके। इस प्रकार कोई राष्ट्रीय राज्य इस स्थिति में नहीं है कि वह एक विश्वकर्ता (या अभिनेता) की तरह व्यवहार कर सके। अत: विश्वव्यापी सवालों का संतुष्टीदायक मुकाबला करने के लिए भिन्न-भिन्न देशों के बीच निकट सहयोग की जरूरत है। जब प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने में लगा है और बिना इस पर ध्यान दिए कि इसका दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है तो विश्व समुदाय का संकट में फँसना लाजिमी बनता है।

III
एक तर्कसंगत विकल्प

69. समस्या की पहचान और इसकी क्यों और कैसे आवश्यक तौर पर अगले सवाल की तरफ ले जाते हैं कि क्या किया जाए। एक तर्कसंगत उत्तर है कि समस्याओं का लेखा-जोखा लेने और उनके आधारभूत कारण जानने के बाद यह आवश्यक है कि विद्यमान विश्व व्यवस्था की पुनरसंरचना की जाए, जिसकी नींव लगभग 53 साल पहले डाली गई थी।

(क) अर्द्ध राष्ट्रवाद और अर्द्ध-अन्तर्राष्ट्रीयवाद की अवस्था

70. वर्तमान वास्तविकता इस तथ्य द्वारा चरित्रित है कि यद्यपि राष्ट्र राज्यों के बीच बढ़ रही अन्तरक्रिया की माँग इस प्रक्रिया को एक साझे संचालक केन्द्र से प्रबन्धित करने की है परन्तु जनता का परम्परागत सोच और निहित स्वार्थी तत्वों (जो सामान्यतया

विकासशील देशों में महत्वपूर्ण पदों पर बैठे हैं) द्वारा राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय मामलों को आगे बढ़ाने के आह्वान दिए जाते हैं। द्वितीयत:, यहाँ निरन्तर नये क्षेत्रीय आर्थिक समूह उभर रहे हैं जिनकी दिशा विश्व व्यवस्था की तरफ है। और तृतीयत:, संयुक्त राष्ट्र और राष्ट्रीय राज्यों के बीच एक स्पष्ट प्रतियोगिता आगे बढ़ रही है जिसमें संयुक्त राष्ट्र नये युग की समस्याओं से मुकाबला करने के लिए ज्यादा से ज्यादा ताकत हासिल करने की कोशिश कर रहा है, जबकि राष्ट्रीय राज्य इसे कोई भी ताकत सौंपने का प्रतिरोध कर रहे हैं। इस प्रकार यह एक ऐसी मंजिल बनती है जिसमें संयुक्त राष्ट्र और राष्ट्रीय राज्य बराबरी पर संघर्ष कर रहे हैं–इसमें कदम ब कदम संयुक्त राष्ट्र की ताकत बढ़ रही है। ये तथ्य इंगित करते हैं कि वर्तमान वास्तविकता अर्द्ध राष्ट्रवाद और अर्द्ध अन्तर्राष्ट्रीयतावाद (या अन्तर-निर्भर राष्ट्रवाद) की अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है।

(ख) एक विश्व की दृष्टि

71. अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की दुनिया की पहली आवश्यकता इसकी दृष्टि (नजरिए) की होगी। सन् 1945 का यू एन चार्टर हमें सम्प्रभुता सम्पन्न और स्वतंत्र राष्ट्रों की दृष्टि प्रदान करता है, यह ऐसी दृष्टि है जो विद्यमान वास्तविकता के उलट है। राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता (या अर्ध राष्ट्रवादी और अर्द्ध-अन्तर्राष्ट्रीयवादी राज्यों) की वास्तविकता हमें एक दुनिया की दृष्टि प्रदान करती है। ऐसी दृष्टि एक तरफ मानव समुदाय के हितों की सेवा करती है और दूसरी तरफ प्रत्येक राष्ट्र के मामलों को निपटती है।

(ग) 'एक विश्व' की दृष्टि का मूलभूत सिद्धान्त

72. उपरोक्त वर्णित दृष्टि का मूलभूत सिद्धान्त होना चाहिए, प्रथमतया, विश्वव्यापी गतिविधियों के केन्द्र में लोगों और पर्यावरण दोनों को रखना चाहिए (यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा की जाए और दूसरी तरफ पर्यावरण संरक्षण को सुनिश्चित किया जाए) इनमें से एक समय में कभी एक प्रथम प्राथमिकता ग्रहण कर रहा होगा तो दूसरा द्वितीय स्थान पर होगा तो दूसरे समय इसके विपरीत स्थिति होगी।

(घ) लोगों की ओर पहुँच

73. लोगों (यानि मानवीय या सामाजिक सम्बन्धों) की तरफ पहुँच तर्कसंगत मानवतावाद पर आधारित होनी चाहिए जिसमें मानवीय मसलों को एक तर्कसंगत और हकीकत की बुनियाद पर जाँचा जाता है। लोगों को वो सभी अधिकार (जैसाकि 1966 के दो संयुक्त राष्ट्र प्रतिज्ञापत्रों में वर्णित हैं, एक राजनीतिक-नागरिक अधिकारों और दूसरा आर्थिक सांस्कृतिक अधिकारों के सम्बन्ध में) हासिल होने चाहिए जो मानव समुदाय के सदस्यों के नाते एक निरोग और सन्तुष्ट जीवन के लिए आवश्यक है और जिनको किसी भी हालात में किसी सत्ता द्वारा छीना नहीं जा सके।

(ड़) प्रकृति की ओर पहुँच

74. प्रकृति की ओर पहुँच वैज्ञानिक यथार्थवाद पर आधारित होनी चाहिए जो प्राकृतिक प्रक्रिया का अध्ययन 3 अवस्थाओं वाले एकीकृत तरीकाकार–यानि, पर्यवेक्षण, प्रयोगात्मक और धारणात्मक–के माध्यम से करता है। वैज्ञानिक-तकनीकी अनुसंधान

पर विशेष ध्यान देना चाहिए। पर्यावरणीय (हवा और पानी के प्रदूषण, भूमि और जंगल की गिरावट और जैव-विविधता को चुनौती के सम्बन्ध में) संरक्षण के साथ-साथ मानव विकास को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए और इस प्रक्रिया को सम्पूर्ण जनता की भागीदारी द्वारा सम्पन्न किया जाए। पर्यावरण की माँग और मानव विकास की आवश्यकताओं के बीच सामंजस्य विकसित करने की सभी कोशिशें की जानी चाहिए।

(च) एक जनवादी विश्व व्यवस्था

75. एक विश्व व्यवस्था को जनवादी संरचना और कार्य प्रणाली के सिद्धान्त पर निर्मित किया जाना चाहिए। परन्तु संयुक्त राष्ट्र में इस गुण की कमी है। संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा की संरचना और कार्यप्रणाली बिल्कुल जनवादी है। परन्तु इसकी उच्च निर्णयकारी संस्था, यानि सुरक्षा परिषद् अत्यधिक अनुचित और पूर्णतया गैर-जनवादी मानदण्डों से चरित्रित है–यानि 5 सैनिक तौर पर अत्यधिक मजबूत देशों के लिए स्थाई सदस्यता का होना और उनको विशिष्ट वीटो अधिकार होना।

76. स्पष्टतया, इस संस्था के पूर्ण जनवादीकरण के किसी प्रयास का इस क्षण 5 विशेषाधिकार समूह के सदस्य देशों से कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा। इसलिए, विद्यमान विश्व शक्ति संरचना का लेखा-जोखा लेते हुए यह लगता है कि सुरक्षा परिषद् के पूर्ण जनवादीकरण में कुछ और अधिक समय लगेगा। अभी के लिए विशिष्ट वीटो शक्ति के नियम को हटा देना चाहिए जबकि स्थाई सदस्यता के मानदण्ड को कायम रखना चाहिए जब तक कि चल रहे शक्ति संतुलन में बदलाव नहीं आ जाए। सुरक्षा परिषद् में अन्य सभी सीटों को साधारण सभा द्वारा चुनाव के माध्यम से भरना चाहिए।

(छ) एक स्थाई विश्व शान्ति और सुरक्षा

77. संयुक्त राष्ट्र के निर्माताओं ने एक स्थाई विश्व शान्ति और सुरक्षा इसका मुख्य उद्देश्य रखा था। परन्तु यह शीत युद्ध की सम्पूर्ण प्रगति के दौरान खुशफहमी में ही रहा। अब, शीत युद्ध की समाप्ति ने शान्ति के लिए लालायित विश्व के लोगों के साथ मिलकर इस कार्य को व्यवहारिक बनाया है।

78. स्पष्टतया, मानवीय और पर्यावरणीय प्राथमिकताओं को विश्व में स्थाई शान्ति सुनिश्चित करके, महाशक्तिवाद की राजनीति और इसकी टकरावावादी प्रणाली को रद्द करके, क्षेत्रीय तनाव बिन्दुओं को समाप्त करके, भिन्न-भिन्न देशों के हितों में समन्वय बैठाकर, सम्पूर्ण निशस्त्रीकरण की ओर बढ़कर, परमाणु हथियारों का नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र में सौंपकर, विश्व में सभी राजनीतिक और आर्थिक असमानताओं को समाप्त करते हुए तथा कदम ब कदम विकसित और विकासशील देशों के बीच विकास के अन्तर को समाप्त करके ही पूरा किया जा सकता है।

(ज) जनसाधारण और पर्यावरण समर्थक विश्वव्यापी विकास

79. विकास का उद्देश्य जनसाधारण और पर्यावरण के अनुकूल होना चाहिए। इसका अर्थ है कि एक तरफ लोगों के हितों को संवारा जाए और दूसरी तरफ पर्यावरणीय व्यवस्था की रक्षा की जाए। जनसंख्या नियंत्रण और पर्यावरणीय संरक्षण के कार्य में लोगों को जोड़कर और विशेषकर महिलाओं को शामिल किया जाए। एक सन्तुलित आर्थिक

वृद्धि के लिए संघर्ष करना, उसका विश्व आर्थिकता के साथ निकट सम्बन्ध बनाए रखना, इसका संचालन बाजार प्रज्वलित वृद्धि और राज्य प्रबन्धित सामाजिक न्याय के दो तरफा तंत्र के माध्यम से करना और टिकाऊपन, उत्पादकता, समता, जनवाद और पारदर्शिता के सिद्धान्तों से निर्देशित आर्थिकता कायम करना।

80. यह आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र एक उच्च सक्षम और योग्य विश्व विकास परिषद् की स्थापना करे जो विभिन्न देशों में प्राकृतिक और मानव संसाधनों के विकास के लिए एक मार्गदर्शक और सलाहकार केन्द्र का कार्य करे।

(झ) एक विश्वव्यापी मूल्य व्यवस्था

81. विश्वव्यापी मूल्य व्यवस्था का उद्देश्य विश्व के लोगों के बीच तर्कसंगत मानवतावादी सोच और जनवादी व्यवहार को प्रोत्साहित करना होना चाहिए।

82. यह आवश्यक है कि यूनेस्को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय सांस्कृतिक संगठनों के साथ उचित वाद-विवाद करने के बाद विश्वव्यापी मूल्य व्यवस्था को परिभाषित करे और विश्वभर के लोगों के विचार-विमर्श के लिए इसे प्रसारित करे। उचित बहस के बाद और आवश्यक परिवर्तनों के साथ (अगर कोई हो तो) इसे एक सांस्कृतिक तौर पर ज्ञानवान व्यक्तियों की उपस्थिति वाले विश्वव्यापी सम्मेलन में विचार-विमर्श और अंगीकरण के लिए मॉडल पेपर के रूप में रखा जाए।

IV

सार-संक्षेप

83. आज, मानवीय गति की मुख्य दिशा शान्ति, जनवाद, सहयोग, समानता और भाईचारे की ओर है। परन्तु लगातार कमजोर पड़ती जा रही प्रभुत्ववादी (यानि, महाशक्तिवाद, राष्ट्रीय अन्धराष्ट्रवाद या उग्रराष्ट्रवाद इत्यादि) रूढ़िवादी (यानि, बाजार-आधारित, राजकीय नियंत्रित, धार्मिक निर्देशित, इत्यादि) और एक तरफापनवाद (यानि, व्यक्तिवाद, अतिवाद, रीतिवाद और सभी तरह के एक तरफा विचारों) की पुरानी ताकतें कदम-कदम पर इस अग्रगति के रास्ते में बाधा खड़ी कर रहे हैं। फिर भी, ऐसी पुरानी ताकतें ऐतिहासिक तौर पर नए उभर रहे अभियान को रोक नहीं सकती।

* * *

छद्म राष्ट्रवाद की उपज परमाणु हथियार सभी प्राणियों के लिए खतरा समयबद्ध नष्ट करने एवं अन्तरिम तौर पर संयुक्त राष्ट्र के नियन्त्रण की मांग

1. मानव जिन्दगी तथा जैविक अस्तित्व दोनों दृष्टिकोण से परमाणु शस्त्र का मुद्दा, अत्यधिक संगीन मुद्दा है। यदि इन हथियारों को काम में लिया जाता है तो ये सभी जीवों के अस्तित्व को गंभीर खतरा पैदा करेंगे। और अगर सी टी बी टी की योजना के अनुसार जिस पर सभी देशों के बीच लगभग आम सहमति विद्यमान है यानि इसमें विश्व समुदाय ने पांच सैन्य तौर पर बलशाली विश्व शक्तियों का एकाधिकार स्वीकार कर लिया है (इन शक्तियों को पहले से ही विश्व की उच्चतम निर्णयकारी संस्था, सुरक्षा परिषद में वीटो के अधिकार सहित स्थाई सदस्यता का विशेषाधिकार मिला हुआ है), तब तो मानवीय दुनिया को और भी अधिक गैर-न्यायिक और असमान विश्व व्यवस्था (जैसी कि आज विद्यमान है) का सामना करना पड़ेगा। इस तरह की विश्व व्यवस्था में दुनिया के अरबों वंचित भूखे, अधनंगे, बिना छत के, हमेशा की तरह जिनका कोई भविष्य नहीं है, निरन्तर दयनीय जिन्दगी जीने पर मजबूर रहेंगे। किसी भी सूरत में, इन हथियारों को हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट करना होगा। यदि जैविक जिन्दगी को इस पृथ्वी पर संरक्षित रखना है और समानता और न्यायपूर्ण आधार पर मानवीय विश्व व्यवस्था कायम करनी है तो इन हथियारों को हमेशा के लिए नष्ट करना होगा, जबकि इनको नष्ट करने के बीच के काल में इन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के कब्जे व नियंत्रण में रखा जाना चाहिए।

2. विश्व व्यवस्था की शक्ति के वर्तमान परिदृश्य पर एक नजर डालें तो कोई भी आसानी से देख सकता है कि परमाणु शस्त्रों के विनाश को क्रियान्वित किये जाने के लिए यह व्यवस्था न तो इजाजत देती है और न देगी, फिर भी ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि किसी उद्देश्य पर एक बार यदि लोग जागृत हो जाते हैं तो उस उद्देश्य को प्राप्त करने में कोई भी बाधा उन्हें रोक नहीं सकती। यह इसलिए है क्योंकि मानवीय बुद्धि सम्पन्नता और प्रवीणता नई तकनीक को बार-बार कोशिश के द्वारा लागू करने से मनुष्य इस योग्य बनता है कि वह किसी भी समस्या का सामना कर सके।

3. किसी भी मुद्दे पर जन जागृति की प्रक्रिया मुख्यत: उस मुद्दे के बाबत सही सूचनाएं उपलब्ध करने में निहित है ताकि उस विषय के सही और गलत के बारे में वे स्वयं निर्णय ले सकें और किसी मसले पर सही सूचना जानने के लिए उस मसले की तीन विशिष्टताओं को छाँटना शामिल है–यानि (अ) उसकी प्रकृति–यह दिखाना कि यह मानवीय आवश्यकता है या उसके विपरीत है। (ब) इसका कारण–इसकी सामाजिक

आवश्यकता कितनी है यह इंगित करना, और (स) इसका हल–यह प्रस्तावित करना कि इस मसले को कैसे निपटाया जाए।

(A) परमाणु हथियार की प्रकृति

4. आज यह एक सामान्य ज्ञान हो चुका है कि परमाणु हथियार आवश्यक तौर पर जीवनाशक हैं और इसलिए उनका चरित्र मानव विरोधी है। यह इसलिए है, क्योंकि परमाणु विशेषज्ञों के अनुसार, एक परमाणु विस्फोट भारी परमाणु की नाभि को दो या दो से अधिक भागों में विभाजित करता है, उस समय भारी मात्रा में विकिरण छोड़ता है (जो रेडियोधर्मी जहर लिए हुए होते हैं) जिससे सभी जैविक पदार्थ तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। पहला परमाणु बम जो हिरोशिमा में 1945 में छोड़ा गया था टी.एन.टी. की 20,000 टन की बराबर की क्षमता का (एक बहुत शक्तिशाली विस्फोटक) था। अब बड़ी परमाणु शक्तियों के हथियारों के भण्डार में सैकड़ों गुणा अधिक शक्तिशाली परमाणु हथियार मौजूद हैं। यहाँ तक कि गैर-परमाणु हथियार (विभाजन की तकनीक पर आधारित) के उपयोग भी–जैसे परमाणु परीक्षण, बिजली उत्पन्न करने के परमाणु संयंत्र और प्रयोगशाला में प्रयोग, रेडियोधर्मिता उत्पन्न करते हैं यानि धूल जो विकिरण पैदा करती है–जीव पदार्थ के लिए घातक है।

5. परमाणु हथियार की आवश्यकता न तो पहले थी न अब है। इसलिए इस हथियार को खोजने में जिन वैज्ञानिकों की भागीदारी है वे इसे युद्ध में उपयोग लेने के विरुद्ध थे। परमाणु युग में प्रवेश करवाने वाले एक वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने अपने साथी वैज्ञानिक मैक्स वार्न को 1952 के अन्त में कहा था, ''मैंने अपनी जिन्दगी में एक भारी भूल की जब मैंने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को परमाणु बम बनाने के सिफारिश पत्र पर हस्ताक्षर किये। परन्तु उसका कुछ औचित्य भी था–जर्मन जो उनके लिए खतरा पैदा कर सकते थे।'' 1955 के अप्रेल में आइंस्टीन और बरट्रेन्ड रूसेल ने एक संयुक्त घोषणा पत्र के जरिये परमाणु निशस्त्रीकरण की मांग की थी। इस घोषणा पर जाने माने वैज्ञानिकों जैसे जुलियट क्यूरी, नील्स बोहर तथा ओपन हाइमर ने हस्ताक्षर किये थे। इसने हाइड्रोजन बम के उपयोग के खतरों से पूरी दुनिया के राजनीतिज्ञों का ध्यान आकर्षित किया और यह भी इंगित किया कि युद्ध और विज्ञान का लम्बे समय तक सह-अस्तित्व नहीं रह सकता। इसने दुनिया के राजनीतिक नेताओं तथा वैज्ञानिक समुदायों के बीच मसला हाथ से निकल जाने से रोकने के लिए वार्तालाप को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से पुगवास कान्फ्रेंस बुलाना जरूरी बनाया।

6. परमाणु हथियार स्थायी शान्ति का यन्त्र है, शत्रु के साहसिक कार्यों को रोकने का अन्तिम औजार या एक तरीका है पर जोर देने वाले सिद्धान्त का कोई मूलाधार नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जैव विरोध जो विजित और पराजित में भेद नहीं कर सकता। मनुष्य समाज के लिए स्वीकार किये जाने के योग्य भी नहीं है। फिर उसके रणनीतिक उपयोग की बात कहाँ रह जाती है।

7. अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव दर्शाता है कि परमाणु हथियार ने किसी को भी एक भी युद्ध जीतने योग्य नहीं बनाया। कोरिया, वियतनाम, अफगानिस्तान, फाकलैण्ड, बालकन्स, यह सभी उसकी गैर-रणनीतिक प्रकृति को दर्शाते हैं। यह प्रभावी भय उत्पन्न करने का

उपकरण भी नहीं है। क्यूबा, ईरान, ईराक, उत्तरी कोरिया, लीबिया, सूडान, यूगोस्लाविया आदि ने प्राय: अमेरिका की नहीं मानी है। परन्तु अमेरिका अपनी आणविक विध्वसंक क्षमता को वास्तविक ताकत में नहीं बदल सका। पूर्व की महाशक्ति, सोवियत यूनियन और इसका समाजवादी गुट जिसके पास बहुत अधिक संख्या में परमाणु हथियारों का जखीरा है वह इनके विखण्डित होने को नहीं रोक सका। आणविक चीन छोटे से द्वीप ताईवान जैसे को भी भयभीत करने में असफल रहा है।

पोकरण का लेखा-जोखा भी इन्हीं तथ्यों को प्रकट करता है। विस्फोट के तुरन्त बाद परमाणु हथियार पक्ष ने यह दावा किया कि इससे दुनिया में भारत का कद ऊंचा होगा। देश की सुरक्षा बढ़ेगी, देश की स्वतंत्र रूप से विदेशी नीति बनाने की क्षमता बढ़ेगी। जम्मू-कश्मीर में सशस्त्र खाड़कुपन को रोका जा सकेगा। अमेरिका के सामने भारत की सौदेबाजी की शक्ति बढ़ेगी तथा भारत के सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य बनाने के दावे को ताकत मिलेगी।

लेकिन उपरोक्त से एक भी उद्देश्य प्राप्त करने की बनिस्पत दुनिया की नजरों में नैतिक और राजनैतिक तौर पर गिरा ही है। पहला : यह दोगला राज्य नजर आता है क्योंकि भारत पिछले 50 वर्षों में परमाणु क्लब के पाखण्डी रवैये की आलोचना करता रहा है बाद में स्वयं इसमें शामिल हो गया है। द्वितीय : यह एक असंवेदनशील राष्ट्र नजर आता है जो अपनी 2/5 जनसंख्या को पर्याप्त भोजन देने में असक्षम है। परन्तु साथ ही वैश्विक प्रभुत्ववादी आकांक्षाओं को पोषित करता है। तृतीय : इसके पड़ौसी देश इसे युद्धकारी देश मानते हैं और यह परमाणु शस्त्र देशों में जा मिलने के लिए यह दलील देता है कि उसके आस-पास का वातावरण असुरक्षित है। चतुर्थ : जब तक जम्मू-कश्मीर की समस्या उचित तौर पर हल नहीं हो जाती भारत, पाकिस्तान के परमाणु आक्रमण के घेरे में आता है इसे कारगिल संकट ने स्पष्ट उजागर किया है। पंचम : परमाणु हथियार एक बहुत खर्चीला कार्यक्रम है। एक विशेषज्ञ के अनुमान के अनुसार, चीन की तुलना में 1/5 से भी कम परमाणु जखीरे के छोटे से भाग के रख-रखाव पर देश को सालाना 50,000 करोड़ रुपये खर्च करने पड़ेंगे। यह भारत के पहले से अत्यधिक सैनिक बजट को और बढ़ा देगा। भारत अपने परमाणु काल के पूर्व के समय में भी मानवीय विकास जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा की सभी योजनाएं शामिल हैं उससे भी दुगुना सैनिक क्षेत्र पर खर्च करता था। षष्टम : भारत के परमाणु हथियार के नये कार्यक्रम में इस उपमहाद्वीप में हथियारों की होड़ बढ़ाना, आग में घी का काम किया है। जिसने हमारे इस क्षेत्र में परमाणु युद्ध की संभावनाओं को पैदा किया है दूसरे देशों को परमाणु हथियार बनाने के रास्ते पर उकसाया है तथा चारों ओर टकराहट की मानसिकता पैदा की है। इस प्रकार देश को और अधिक असुरक्षित बनाया है। सप्तम : भाजपा के नेतृत्व में सरकारी प्रायोजित परमाणु देशभक्तिवाद, अंधराष्ट्रवाद, सैनिकवाद, सांस्कृतिक पुष्टिवाद,विरोधी का मुँह बंद करना, विज्ञान और तकनीक का सैन्यकरण करना, हिंसा को जायज ठहराने को सूक्ष्म रूप से प्रोत्साहित करने की कोशिश कर रहा है।

8. मानव समाज में परमाणु हथियार का विशेष तौर पर ध्यान देने योग्य योगदान वर्तमान असमान व गैर निष्पक्ष सारभौम सह राष्ट्रीय व्यवस्था को कायम रखने के लिए

ब्लैकमेल करने का रहा है। (यानि संयुक्त राष्ट्र संघ में पाँच परमाणु हथियार राज्यों को वीटो का विशेषाधिकार होना; विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष इन दो संस्थाओं में वित्त की महत्ता आधारित वोट देने का अधिकार होना जिससे कुछ देशों को इन दो संस्थाओं को प्रभुत्व बनाए रखने का सुनिश्चित करना है। वर्तमान व्यवस्था में दुनिया की जनसंख्या की 15 प्रतिशत द्वारा दुनिया के संसाधनों के 86 प्रतिशत पर नियन्त्रण रखना और दुनिया की 85 प्रतिशत जनसंख्या का संसाधनों के 15 प्रतिशत पर जीवित रहने की स्थिति को मजबूत बनाता है।)

9. अति महत्त्व का ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि परमाणु हथियार मालिकों का यह सिद्धान्त कि यह हथियार उनके राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित रखने के लिए जरूरी है, कमजोर हो गया है। परन्तु यह स्वयं को न्यायपूर्ण ठहराने का सिद्धान्त भी नई उभर रही अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की दुनिया में तर्कसंगतता खो रहा है जिसमें मनुष्य की मुख्य समस्याएं (पर्यावरण, जनसंख्या वृद्धि, टिकाऊ विकास, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, गरीबी और असमानता, लिंग समानता, लोकशक्तिकरण आदि) वैश्विक हो गई है। संभवत:, वे वैश्विक उत्तर मांगती है। और बदले में सभी राष्ट्र राज्यों को मित्रता और सहयोग की आवश्यकता का अहसास करवाती है। सम्प्रभु सत्ता सम्पन्न राष्ट्र राज्यों की दुनिया बदल कर अन्तरनिर्भर राष्ट्र राज्यों की दुनिया हो गई है और नतीजतन उनका अंतिम औजार परमाणु हथियार अपने-अपने परमाणु हथियार राज्यों के राष्ट्रीय हितों और उनकी चहेती वर्तमान अन्यायपूर्ण वैश्विक व्यवस्था की प्रासंगिकता भी क्षीण हुई है।

(B) परमाणु हथियार बनाने के वास्तविक कारण

10. आम तौर पर परमाणु हथियार मनुष्य की जरूरतों से उत्पन्न नहीं हुए हैं। यह उपनिवेशी शक्तियों के दो गठजोड़ जिसमें एक का नेतृत्व अमेरिका और दूसरे का जर्मनी करता था, की आपसी शत्रुता से उत्पन्न हुए थे जो द्वितीय विश्व युद्ध में एक दूसरे को नष्ट करना चाहते थे। अमेरिका इसको खोजने में पहले सफल रहा। तथापि अमेरिका के नेतृत्व वाले गठजोड़ की जीत पारम्परिक हथियारों से हुई और वह करीब-करीब जीत चुका था। तब अमेरिका ने एक तरफा तौर पर दो परमाणु बम जापान के दो शहर हिरोशिमा और नागासाकी पर डाल दिये। यह दुनिया के लिए एक इशारा था जिसमें उसके सहयोगी शामिल हैं, कि अमेरिका सर्वशक्तिमान हो गया है–यह उसके अति राष्ट्रवादी इच्छा का प्रतिबिम्ब था।

11. 1950 के दशक के शुरू में अमेरिका के इस एकाधिकार को पूर्व के सोवियत संघ ने तोड़ डाला। बाद में, 1960 के दशक में ब्रिटेन, फ्रांस और चीन परमाणु हथियार के युग में प्रवेश कर गये। सोवियत संघ ने इसे इसलिए बनाया कि यह विश्व प्रभुत्व में अमेरिका से आगे निकलना चाहता था, जबकि ब्रिटेन और फ्रांस का उद्देश्य उनके विश्व की महान शक्ति बने रहने का था। चीन की मंशा इन दो महाशक्तियों की चुनौती का मुकाबला करना था। भारत ने प्रथम परमाणु बम का विस्फोट 1972 में अप्रसार संधि के हस्ताक्षर करने के बाद 1970 के दशक में किया। इस घोषणा के साथ कि उसकी परमाणु बम बनाने की कोई मंशा नहीं है। इसके बाद 1998 के मई माह में पहले भारत और फिर पाकिस्तान ने क्रमश: परमाणु हथियार परीक्षण किये ताकि परमाणु क्लब में प्रवेश पा सकें।

12. पूर्णतया यह जानते हुए कि इनका स्वभाव जीव विरोधी है परमाणु हथियारों के एकाधिकारवादियों ने इस तर्क को लोगों के मन में बिठाने की भरसक कोशिश की कि परमाणु हथियार किसी देश की व्यक्तिगत एवं सामूहिक सुरक्षा के बचाव के लिए है तथा राष्ट्र के शत्रु को हराने के लिए है, शीर्षस्थ वैज्ञानिकों और अन्य बुद्धिजीवियों के परमाणु हथियार विरोधी आन्दोलन का प्रत्युत्तर देने के लिए उन्होंने आगे यह दलील दी कि परमाणु हथियार किसी भी खतरे से सीधे-सीधे बचने का उपाय है (उसे काम लिए बिना)। यह तर्क शीतयुद्ध के समय, जब लोग विरोधी धड़े से डरते थे; के दौरान समझ में आने लायक था। परन्तु विडम्बना यह है कि शीतयुद्ध के समाप्त होने के बाद भी परमाणु हथियारों के प्रचारक उसी सोच को तोते की रट की तरह रटे जा रहे हैं। भारत और पाकिस्तानी धोखेबाजों के लिए यह बहुत ही आसान रहा कि वे अपने-अपने लोगों को एक-दूसरे के विरुद्ध उकसा सकें। दोनों देशों की दुश्मनी का हवाला देते हुए उकसा सकें।

13. दुनिया भर में परमाणु हथियारों को जो जन समर्थन मिल रहा है उसका प्राथमिक कारण परमाणु हथियारों की अति विनाशकता के बारे में लोगों को पूर्ण रूप से सूचना नहीं होने में निहित है। द्वितीय, प्रमुख राष्ट्रीय धारणाएं–यानि पश्चिमी उदारवाद, मार्क्सवाद तथा धार्मिक, नस्लीय (जातीय) लगातार राष्ट्रीय चेतना और प्रेरणा लोगों में फैलाती रहती है जो राष्ट्रीय परमाणु प्रतिरक्षा को फैलाने में सहूलियत प्रदान करता है। तृतीय, अमेरिका वैश्विक-सह-राष्ट्रीय शत्रु के तौर पर ईराक, यूगोस्लाविया, क्यूबा, उत्तरी कोरिया, अफगानिस्तान आदि को बदमाश राज्य घोषित करता है, और यह विचार फैंकता है कि ये विश्व व्यवस्था के लिए खतरा है तथा गुप्त रूप से परमाणु हथियारों का निर्माण कर सकते हैं। चतुर्थ, परमाणु हथियार समर्पित गुट इस्लामी रूढ़िवादिता को विश्व के लिए एक नई चुनौती के रूप में पहचानता है।

(C) लक्ष्य और कार्य

14. परमाणु हथियारों की प्रकृति और भूमिका को ध्यान में रखते हुए तथा उनके निर्माण के पीछे क्या कारण है उसके मद्देनजर इस मामले में बुनियादी समाजी लक्ष्य तमाम परमाणु हथियारों का पूर्ण विनाश होना चाहिए। परमाणु हथियारों के पूर्ण विनाश की प्रक्रिया में एक निश्चित अवधि की आवश्यकता है इसलिए तात्कालिक उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि सभी परमाणु हथियार रखने वाले राज्य इन हथियारों का पूर्ण नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र की महासभा को सुपुर्द कर दें।

15. उपर्युक्त वर्णित दो तरफा लक्ष्य प्राप्त करने के लिए हमारा मुख्य कार्य यह होना चाहिए कि परमाणु हथियार विरोधी आंदोलन के लिए लोगों को जागृत किया जाए और उन्हें उसमें शामिल किया जाए। इसके लिए तीन पहल कदमियां करने की आवश्यकता है।

सी टी बी टी की वास्तविकता

16. प्रथम पहल यह है कि एक तरफ तो व्यापक परीक्षण प्रतिबन्ध संधि (C.T.B.T.) जिसे परमाणु हथियार समस्या के सही वैश्विक समाधान के रूप में पेश करते हैं कि वास्तविकता को स्पष्ट करना है और दूसरी तरफ नई दिल्ली के परमाणु सिद्धान्त के

प्रारूप, जिसे इसके हिमायती परमाणु हथियारों को एक तर्कसंगत दिशा के रूप में पेश करते हैं के बारे में वास्तविक स्थिति बताना है।

जहाँ तक सी.टी.बी.टी. का सम्बन्ध है, यह संधि पाँच परमाणु हथियार राज्यों के उनके परमाणु हथियारों के जखीरे पर असीमित समय के लिए उनके पूर्ण नियंत्रण को जायज ठहराती है। द्वितीय, यह इन राज्यों को निरन्तर प्रयोगशाला के उपायों के जरिये से परमाणु हथियारों का विकास करने और उन्हें परिष्कृत करने के लिए बिना विस्फोट परीक्षण किये अधिकृत करती है। तृतीय, यह संधि सत्यापित न किये जाने योग्य है तथा परमाणु हथियार राज्यों को आपस में परमाणु हथियारों के गुणात्मक उत्पादन की श्रेष्ठता की होड़ की ओर ले जा सकती है। व्यावहारिक तौर पर यह प्रयोगशाला की तकनीक से अमेरिका को बहुत पिछड़े राष्ट्रों को पीछे धकेलने योग्य बनाता है। स्पष्टतया यह एक खतरनाक सिद्धान्त है।

भारत के परमाणु सिद्धान्त की प्रकृति

जहाँ तक नई दिल्ली के परमाणु सिद्धान्त के प्रारूप का सम्बन्ध है वह उतना ही खतरनाक है, जितना सी.टी.बी.टी.। प्रथम, एक तरफ तो यह इसका उद्देश्य परमाणु युद्ध और परमाणु हथियार खत्म करना बतलाता है। और दूसरी तरफ खुद परमाणु हथियार राज्य बनकर इन हथियारों का समानान्तर प्रसार करने की वकालात करता है और इस प्रकार दूसरों को परमाणु हथियार बनाने की ओर उकसाता है। परमाणु हथियार के समानान्तर प्रसार को न्यायोचित ठहराना एक अत्यधिक गैर-जिम्मेदाराना कार्यवाही है जो विश्व शांति के लिए खतरा उत्पन्न करता है तथा चारों तरफ अस्थिरता को बढ़ावा देता है। जिनके पास परमाणु हथियार हैं उनकी संख्या में बढ़ोतरी, मामले को और अधिक खराब करने के संयोग में वृद्धि उत्पन्न करता है। परमाणु हथियार राज्यों की संख्या में कमी होना सार्थक बातचीत के लिए अधिक संयोग उत्पन्न करता है। एक निश्चित समय सीमा में परमाणु हथियार के समाप्त करने का प्रश्न किसी भी सूरत में सारी दुनिया में परमाणु हथियार फैलाने को न्यायोचित नहीं ठहराता।

द्वितीय, यह त्रिपक्षीय यंत्र रचना (हवाई मार्ग, गतिशील भूमि आधारित मिसाइल तथा समुद्र आधारित हथियार सम्पदा) वाली न्यूनतम विश्वसनीय परमाणु हथियार का भय दिखाकर उसके रोकने के विचार को ध्वस्त करती है। यह सिद्धान्त न्यूनतम विश्वसनीय परमाणु हथियारों का भय दिखाकर उसको रोकने की धारा को परिभाषित नहीं करता। इस सिद्धान्त में एक बहुत बड़ी परमाणु हथियार शक्ति में विकसित होने की संभावनाएं छिपी हुई हैं।

तृतीय, इसका यह वादा करना कि परमाणु हथियार को पहले उपयोग में नहीं लाया जाएगा अपने आपको एक मूल्य आधारित धारणा के रूप में पेश करने का छलावा मात्र है। इसके अलावा यह पूर्णता से चलने योग्य प्रस्ताव नहीं है। जो कुछ यह अब कह रहा है, वास्तविक लड़ाई तथा सशस्त्र सेना की उस समय के रणनीतिक आवश्यकताओं के दबाव में सशस्त्र टकराहट फैल सकती है और ज्यादा गति पकड़ सकती है और परमाणु हथियारों के स्तर तक कि ज्यादा गति पकड़ सकती है। संकट के समय इसे नियंत्रित करना वास्तव में बहुत कठिन है। और आगे, कुछ परमाणु हथियार राज्यों का कहना है कि उनके परमाणु

हथियार न केवल दुश्मनों के परमाणु हथियारों के जखीरों के विरुद्ध रोधक का कार्य करते हैं बल्कि उनके जैविक और रासायनिक संग्रह के विरुद्ध भी रोधक का कार्य करते हैं। और कुछ मामलों में तो पारम्परिक हथियारों के उपयोगों के भी रोधक हैं।

परमाणु हथियारों वाले राज्य एक गैर न्यायिक व्यवस्था फैलाते हैं

17. दूसरी पहल यह है कि इस तथ्य को स्पष्ट किया जाए कि परमाणु हथियार राज्यों की अन्यायी वैश्विक सह-राष्ट्रीय व्यवस्था को बनाये रखने में उनकी लोक विरोधी भूमिका है।

इस प्रकार की वैश्विक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं हैं–पाँच परमाणु हथियार राज्यों का संयुक्त राष्ट्र संघ की सबसे उच्च निर्णय लेने वाली संस्था यानि सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्य होने और वीटो अधिकार होने का विशेषाधिकार। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं यानि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक में कुछ अत्यधिक विकसित देशों की वित्तीय हैसियत के आधार पर वोट देने का विशेष अधिकार। सुरक्षा परिषद में वीटो अधिकार रखने वाले पाँच सदस्यों को परमाणु हथियार रखने और उसे विकसित करने का एकाधिकार होना। अमीर और गरीब में बढ़ती खाई जैसे कि (सबसे धनी 200 लोगों की सम्पदा दुनिया की जनसंख्या की 41 प्रतिशत लोगों की संयुक्त आय से अधिक है।) (1999–U.N.D.P. की रिपोर्ट), दुनिया के 20 प्रतिशत लोगों का व्यक्तिगत खपत का 86 प्रतिशत खर्च तथा दुनिया के 32 सबसे धनी लोगों का संयुक्त धन सात दक्षिणी एशियाई देशों (जिसमें भारत शामिल है) तथा ईरान और अफगानिस्तान की जी डी पी से अधिक है। (1998 की U.N.D.P. की रिपोर्ट)। विकसित देशों में रह रही दुनिया की 15 प्रतिशत जनसंख्या दुनिया के वस्तुओं और वित्तीय संसाधनों के 86 प्रतिशत को नियंत्रित करती है और केवल 85 प्रतिशत लोगों के लिए 14 प्रतिशत छोड़ती है।

राष्ट्रीय स्तर पर, सम्पूर्ण सामाजिक जिन्दगी में धन और सत्ता दो सबसे बड़ी प्रेरक पहलू हैं। राजनीतिक प्रक्रिया में भ्रष्टाचार, काला धन, करिश्मा और कुछ मामलों में भुजबल शक्ति तथा प्राचीन मानदण्ड। आर्थिक प्रक्रिया में बेरोजगारी, असमानता, गरीबी, वंचितपन, गैर टिकाऊपन, पर्यावरण प्रदूषण, सट्टेबाजी तथा काली अर्थव्यवस्था तथा सांस्कृंतिक प्रक्रिया में अनैतिक मानदण्ड एवं जी हजूरी (यस सर) आचरण प्रभुत्वकारी स्थिति में है। कुल मिलाकर थोड़े से विशेषाधिकार प्राप्त गुट तथा कई मामलों में माफिया गैंग तक सामाजिक जिन्दगी पर लगातार प्रभुत्व जमाए हुए हैं।

परमाणु हथियार विरोधी आन्दोलन–एक न्यायिक व्यवस्था की प्रक्रिया

18. तीसरी पहल यह है कि मानव समाज में परमाणु हथियारों के सम्पूर्ण विनाश का आन्दोलन वास्तविक विश्व शांति स्थापित करने का जन आन्दोलन है ताकि निष्पक्ष, समतावादी तथा टिकाऊ विश्व सह राष्ट्रीय व्यवस्था कायम की जा सके। इस तथ्य को स्पष्ट किया जाए।

यह एक तरफ एक विश्व के दृष्टिकोण को अपनाती है जो मानव समुदाय के हितों की सेवा करता है तथा दूसरी तरफ प्रत्येक राष्ट्र के हित साधता (पूरे करता) है। इस दृष्टिकोण का मूल सिद्धान्त यह है कि मानव सोच, क्रिया और संगठन में लोगों और पर्यावरण को यह केन्द्र बिन्दु के तौर पर रखता है।

यह महाशक्तिवाद और प्रभुत्ववाद तथा उनके सहयोगी टकरावादी तरीकों को रद्द करते हुए पूर्ण शांति की राह पकड़ता है, यह विभिन्न राष्ट्रों में मित्रता और सहयोग के जरिए तथा सभी विवादों को (देशों के बीच या उनके अन्दरूनी मसलों में) बातचीत व समझौतों के जरिए से विवादग्रस्त पक्षों के हितों में सामंजस्य बैठाता है।

यह संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सभी विशेषाधिकारों और भेदभावपूर्ण नियमों को समाप्त करते हुए लोकतांत्रिक, समानता और पारदर्शिता के आधार पर पुनर्गठित करने की वकालात करता है।

यह लोक एवं पर्यावरण-मित्रता विकास प्रक्रिया की पैरवी करता है जो सभी असमानताओं को समाप्त करता है तथा निष्पक्ष आर्थिक समानता को स्थापित करता है। यह जीवन के हर पहलू में तर्कसंगत मानवतावादी सोच तथा लोकतांत्रिक व्यवहार को बढ़ावा देने पर जोर देता है।

राष्ट्रीय स्तर पर, कानून के राज के तहत सीधे अधिकतम संभव लोकशक्तिकरण, पारदर्शिता, लोगों को सूचना का अधिकार, सभी स्तरों पर प्रशासन को लोगों के प्रति पूर्ण जवाबदेह बनाते हुए राजनीतिक प्रक्रिया को पुनरव्यवस्थित करना। विकास प्रक्रिया में यह, टिकाऊपन, उत्पादकता, समानता, लोकतंत्र एवं पारदर्शिता के बुनियादी मानदण्डों को अपनाने के सिद्धान्त पर जोर देता है। सांस्कृतिक क्षेत्र में मूल्य आधारित व्यवहार की शैली पर जोर देता है। विदेश सह सुरक्षा मामलों में सभी प्रकार के बाह्य तनावों को बातचीत के जरिए समाप्त करने की सलाह देता है और इस प्रकार चहुँमुखी स्थायी शान्ति को सुनिश्चित करता है। अन्तिम, परन्तु सबसे अधिक प्राथमिकता लिए हुए, यह प्रभुतासम्पन्न, स्वतंत्र एवं अनन्य राष्ट्रवाद जो प्राय: अन्धराष्ट्रवाद एवं युद्धोन्माद ग्रस्त राष्ट्रवाद के स्थान पर अन्तरनिर्भर राष्ट्रवाद या राष्ट्रों की परस्पर निर्भरता के भाव को अपनाने की पुकार करता है।

19. दुनिया में परमाणु हथियार विरोधी आन्दोलन को श्रेय देने वाली कई बातें हैं। इसने घटनाओं को हाथ से नहीं निकलने दिया है और हालात बिगड़ने को रोका है। इसने अमेरिका और रूस के मध्य विभिन्न सन्धियों और समझौतों के जरिए परमाणु हथियारों में महत्त्वपूर्ण कटौती करने में भारी योगदान दिया है और वर्तमान समय में परमाणु हथियारों की संख्या में कोई बड़ी एवं प्रचण्ड बढ़ोतरी नहीं हुई है। मौजूदा वैश्विक शक्ति संतुलन में यह आन्दोलन काफी आगे बढ़ चुका है। नये वैश्विक युग में इसके कम से कम नजदीकी लक्ष्य को हासिल करने की प्रबल संभावनाएं हैं। 1-11-1999

***

1999 का जन सन्देश
अकेली कोई पार्टी शासन करने लायक नहीं

1. आशा के मुताबिक 1999 का जनादेश एक बार फिर चुनाव रुख को सुनिश्चित कर रहा है.... कि 1989 के चुनाव परिणामों द्वारा प्रारम्भ हुए बहु पार्टी शासन का उभरना लाजिमी है। तब से अब तक यह पाँचवें चुनावी सन्देश हैं कि देश में कोई अकेली पार्टी शासन करने लायक नहीं है।

I पिछले 10 वर्षों से चुनाव रुझान का आधारभूत पहलू

2. इस रुझान का आधारभूत पहलू केन्द्रीयतावाद और केन्द्रीयकृत पार्टियों का कमजोर पड़ना और उसके अनुरूप क्षेत्रीयवाद, क्षेत्रीय पार्टियों और नेताओं का उभरना है।

3. यह निष्कर्ष 3 तथ्यों द्वारा सिद्ध होता है।

(A) अखिल भारतीय पार्टियों की गिरती स्थिति

4. प्रथमतया, चुनावों में अखिल भारतीय पार्टियों–यानि कांग्रेस आई और भाजपा की स्थिति साफ तौर पर गिर गई है। कांग्रेस आई ने 1998 में 141 सीटों के बनिस्पत 1999 में 112 सीटें प्राप्त कर 29 सीटों का नुकसान उठाया है। भाजपा की वहीं 182 सीटें रही हैं जो 1998 में उसको प्राप्त थी और इनमें से केवल 108 सीटें अपने बलबूते पर जीती हैं जबकि अन्य 74 सीटों पर अपनी गठजोड़ पार्टियों के सहयोग से प्राप्त की हैं।

5. किसी भी पार्टी की विचारधारा या इनके किसी नेता की चमत्कारी हैसियत की कोई हवा लोगों में मौजूद नहीं थी। यानि सिवाय अखबारी माध्यम या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के यह हवा और कहीं नहीं थी। 24 पार्टियों के राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठजोड़ (राजग) की मुख्य सितारा और भारतीय जनता पार्टी के योग्यतम प्रधानमंत्री, जिन्हें मीडिया ने भारत का सबसे अधिक लोकमान्य नेता प्रचारित किया, उन्होंने अपने ही चुनाव क्षेत्र लखनऊ में 1998 के मुकाबले 1 लाख मत कम प्राप्त किए। इसकी तुलना में भारतीय उग्र राष्ट्रवादी धड़े द्वारा सोनिया गांधी विदेशी मूल की होने के मुद्दे पर भारी शोर-शराबा मचाने के बावजूद अमेठी से वे सबसे अधिक अन्तर (यानि 3 लाख से अधिक मतों) से विजयी हुई।

6. व्यक्तिगत निन्दा और कीचड़ उछालना कारगर साबित नहीं हुए। वाजपेयी के योग्य होने का गुण और उसकी सरकार की स्थिरता तथा सोनिया की राजनीतिक अनुभवहीनता एवं स्थानीय मूल्यों से अनभिज्ञता पूर्णतया गैर-आकर्षक साबित हुए हैं। लोगों ने इन अरोपकर्ताओं को झूठा माना है जो केवल धन जुटाने (भ्रष्टाचार और गैर कानूनी तरीकों से) तथा सत्ता हथियाने (तिकड़मबाजी, झूठे वादों और गड़बड़ साधनों से) में लिप्त हैं और जो पिछले पांच दशकों में लोगों के लिए कुछ करने में असफल रहे हैं।

7. कीचड़ उछालने के खेल में भाजपा के प्रमोद महाजन ने सोनिया की तुलना मोनिका लेविंस्की से करके गेंद उछाली (इस आरोप को बाद में मीडिया के मत्थे मंडते हुए इन्कार कर दिया) तथा राजग के जर्जा फर्नांडीस ने सोनिया पर हमला करते हुए कहा कि उसका केवल भारत को यदि कोई योगदान है तो देश की 100 करोड़ आबादी में दो लोगों की बढ़ोतरी मात्र है। कांग्रेस के प्रवक्ता कपिल सिब्बल ने प्रधानमंत्री वाजपेयी को 'आदतन झूठा' बताया जो ''शत्रु के आगमन पर न केवल सोए हुए थे बल्कि उन्होंने उनके साथ गुप्त रूप से सहयोग व मिलीभगत की है।'' अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर ने 'मोरारजी पेपर्स' के उद्धरण लेकर वितरित किए जिसमें एक आफवाह का सन्दर्भ दिया हुआ है जिसके अनुसार उनके विदेश मंत्री वाजपेयी ''अपने मंत्रालय प्रशासन के बनिस्पत शराब पीने और महिलाओं से इश्क करने में ज्यादा समय व्यतीत करते हैं।''

8. चरित्र हनन की नौबत तभी आती है जब पार्टियों के पास कोई विशेष कार्यक्रम नहीं होता लेकिन पार्टी और मीडिया व्यक्तित्व का निर्माण बाजार में उसे बेचने के लिए करते हैं।

(B) राष्ट्रीय मुद्दों की अनुपस्थिति

9. द्वितीय, चुनाव प्रक्रिया में किसी भी बड़े राष्ट्रीय मुद्दे–राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, कूटनीतिक आदि का अभाव रहा है। भाजपा तथा कांग्रेस आई ने कारगिल मुद्दे को उठाने की कोशिश की और हरेक ने इस मुद्दे को अपने पक्ष में भुनाना चाहा। लेकिन यह सारी चुनावी प्रक्रिया में भावनात्मक चुनावी मुद्दे के तौर पर हस्तान्तरित नहीं हो सका। ऐसी ही स्थिति स्वदेशी बनाम विदेशी नारे की रही। पार्टियों द्वारा उठाये गए अन्य मुद्दे भी आम आदमी को प्रेरित नहीं कर सके। पार्टियों के चुनावी घोषणा पत्र एवं उनके प्रवर्तकों व अनुगामियों की साख लोगों में गिरी है इसका इजहार लोगों का इस चुनाव में कम मतदान करने में जाहिर होता है। यह इस बात की ओर भी इशारा है कि इस व्यवस्था की विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका आदि जैसी संस्थाओं में लोगों का विश्वास कम हुआ है क्योंकि ये संस्थाएं उनके बुनियादी मुद्दों को हल करने में असफल रही है। हर कहीं मतदाताओं ने उन मुद्दों को उठाया है जो उनकी जिन्दगी को बेहतर बनाते हैं।

10. यह कहना गलत है कि जल्दी-जल्दी चुनाव होने से लोग थक चुके हैं। वास्तव में वे पार्टियों एवं उनके नेताओं जो लगातार झूठी और धोखेभरी घोषणाएं करते हैं, से निराश हो चुके हैं।

(C) मतदान में क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य हावी

11. तृतीय–सबसे बड़ा पहलू जिसने मतदाताओं की एक या दूसरी पार्टी अथवा उम्मीदवार के पक्ष में मत देने के लिए प्रेरित किया वह था उनके सामाजिक जिन्दगी में गुणात्मक सुधार का पहलू जिसमें उनकी बुनियादी समस्याएं (मसलन, विकास, भूख, असमानता, बेरोजगारी, बेघरबारता, जनसंख्या वृद्धि, पर्यावरण गिरावट आदि) उनकी तात्कालिक जरूरतें (जैसे पानी, सफाई, बिजली, महँगाई, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सेवाएं आदि) तथा गैर-न्याय के मुद्दे (जैसे भ्रष्टाचार, ठगी, धोखाधड़ी, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अराजकता, हिंसा आदि) हल होते हों। लोगों ने उनको वोट

दिया जिन्हें लोग यह समझते थे कि वे उनके कल्याण के लिए सक्रिय रहकर काम करने लायक हैं तथा जो उनकी आशाओं और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। कोई दल या उम्मीदवार उनकी आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतरता है तो लोग उन दलों व उम्मीदवारों को फेंक देते हैं और उनकी जगह नये उम्मीदवार लाने की कोशिश करते हैं चाहे वे उम्मीदवार पहले आजमाये जा चुके हों। लोगों ने किसी भी पार्टी घोषणा-पत्र या नेता को अपना मत नहीं दिया है। इसलिए स्वाभाविक तौर पर क्षेत्रीय पार्टियां उनकी मुख्य पसन्द बनी हैं क्योंकि क्षेत्रीय पार्टियां स्थानीय मुद्दों में अधिक दिलचस्पी लेती रही हैं व लेती हैं या स्थानीय मुद्दों को हल करने के लिए कम से कम कुछ न कुछ समय देती हैं।

12. 1989 से चुनावी परिणामों को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक प्रतियोगिता का केन्द्र बिन्दु राज्यों की ओर खिसका है और उसके बाद जातीय गुटों (बसपा, सपा, राजग, जद इत्यादि) की ओर खिसका है।

13. 1991 में डाले गए मतों का 14.17 प्रतिशत तथा लोकसभा की 55 सीटें क्षेत्रीय पार्टियों को मिली हैं। तेरहवीं लोकसभा के चुनाव में क्षेत्रीय पार्टियों के मतों का हिस्सा बढ़कर करीब 50 प्रतिशत तक पहुँच गया तथा उनके 243 संसद सदस्य हो गए (जिसमें माकपा के 32 व भाकपा के 4 सदस्य शामिल हैं एवं उनके मतदाता पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा व केरला में मुख्यत: सीमित हैं)।

14. भाजपा व कांग्रेस आई को लोकसभा में 537 सीटों में से 294 सीटें मिली हैं जो डाले गए मतों के 50 प्रतिशत से कुछ ही अधिक है। भाजपा ने क्षेत्रीयकरण की ओर बढ़ रहे रुझान को भाँपा और तेजी से 1999 के चुनाव पूर्व क्षेत्रीय गठबन्धन की ओर बढ़े जो बाद में 24 पार्टियों के गठबन्धन में विकसित हुआ जिसे राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन कहा गया। राजनीतिक तौर पर भाजपा कमजोरी के बावजूद यह अपनी उतनी ही सीटें कायम रख सकी। परन्तु इसे अपने राष्ट्रीय कार्यक्रम में से दो मूलभूत कार्यक्रमों यानि हिन्दुत्व व स्वदेशी को अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए अलविदा कहना पड़ा।

15. सोनिया के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने यद्यपि भारतीय वास्तविकता को ठीक से नहीं समझा और यह समझ बनाई कि भारत के लोग गठबन्धनों से तंग आ चुके हैं तथा एक ही पार्टी की स्थायी सरकार चाहते हैं। इस समझ ने कांग्रेस को भारी नुकसान पहुँचाया और जहाँ 1998 में लोकसभा में उसकी 141 सीटें थीं वह 1999 में 112 रह गई।

II 1999 जनादेश का आशय

16. राजनीति में क्षेत्रीयकरण का विकास एक असामान्य घटना नहीं है बल्कि एक सामान्य रुझान है जो 1989 से कदम ब कदम आगे बढ़ा है। यह देश की विभिन्न सामाजिक वास्तविकताओं, यानि बहुसंस्कृति, बहुजातीय, बहुधार्मिक, बहुभाषी व बहुक्षेत्रीय चरित्र की वास्तविकता को अभिव्यक्त करती है। यह सामान्य तौर पर इसलिए उभरी है क्योंकि भारतीय राज्य का केन्द्रवाद और इसकी केन्द्रवादी पार्टियां विभिन्न किस्मों के भारतीय लोगों की उचित आकांक्षाओं ओर आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असफल रहे हैं।

17. 1947 से पहले के दौर में भी गाँधीवादी बहुसंख्यकवाद एवं अन्धराष्ट्रवाद द्वारा भारत की सामाजिक विविधता को विकृत किये जाने की वजह से भारत की एकता को कायम नहीं रखा जा सका।

18. 1947 पूर्व के अनुभव से सबक लेने में नाकामयाबी से भारत उसी पुरानी बहुसंख्यकवादी अन्धराष्ट्रवादी लीक को पीटता रहा और भारत का संवैधानिकरण एक अत्यधिक केन्द्रवादी व्यवस्था के रूप में कर दिया। जिसका अब नतीजा स्पष्ट दिखाई देता है। इस व्यवस्था ने आधी शताब्दी तक क्रियान्वित रहकर जनता में मोह भंग एवं निराशा की भावना को पैदा किया है। परिणामस्वरूप, इस व्यवस्था को चलाने वाले यानि केन्द्रीय पार्टियां व उनके शीर्षस्थ नेताओं से दु:खी होकर विमुख जनता ने अब अपनी सम्बन्धित नस्ली क्षेत्रीय पार्टियों की ओर मुँह मोड़ा है ताकि उनकी बुनियादी और तात्कालिक समस्याओं का हल निकल सके।

III कुछ मन लुभावने सोच

19. हमारी चुनाव प्रक्रिया में बहु पार्टियों के उभार के बारे में विभिन्न किस्मों की सोच मौजूद है।

20. कुछ लोग यह सोचते हैं कि बहुआयामी चुनावी रुझानों के बारे में चिन्तित होने की जरूरत नहीं है क्योंकि उनके सोच के अनुसार भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कुछ अन्तर्निहित ऐसा रचनातन्त्र मौजूद है जो व्यवस्था की सभी जटिलताओं का सामना कर सकता है परन्तु यह सोच हकीकत लिए हुए नहीं है। इस व्यवस्था का 50 साला अनुभव दर्शाता है कि भारतीय संविधान द्वारा किए गए प्राय: सभी बुनियादी सार्वजनिक जरूरतों– मसलन, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा, गरीबी हटाना, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार से मुक्ति आदि– को पूरा करने के वादे खोखले साबित हुए हैं और उनमें से एक भी पिछले पांच दशकों में जनता को हासिल नहीं हुए हैं। कोई किस आधार पर यह आशा करे कि भविष्य में अच्छी कारगुजारी का प्रदर्शन हो सकेगा।

22. कुछ अन्य यह सोचते हैं कि यदि ईमानदारी से गठजोड़ की राजनीति पर चला जाए तो यह मामलों को ठीक कर सकती है।

21. कुछ अन्य सोचते हैं कि भाजपा का वर्तमान उभार तथा पारम्परिक कांग्रेस आई की निरन्तरता भारत में द्वि-दलीय व्यवस्था की शुरूआत का प्रतिनिधित्व करते हैं परन्तु अनुभव दर्शाता है कि इस तरह की व्यवस्था सामान्यतया उन देशों में उभरती है जहाँ नस्ली एकरूपता वाली आबादी निवास करती है और उच्च स्तर की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक मामलों में भावनात्मक एकता विद्यमान हो। हमारी केन्द्रवादी व्यवस्था तथा इसकी केन्द्रवादी पार्टियों का 50 साल का व्यवहार भारतीय जनता में राष्ट्रीय एकरूपता की स्थायी भावना पैदा करने में असफल रहा है। वे अब भी लोगों को जाति, धर्म, नस्ल, क्षेत्रीयता आदि के रूप में देखना जारी रखे हुए हैं। केवल एक साम्प्रदायिक या जातीय टकराहट या एक भड़काने वाली अफवाह किसी भी पल राष्ट्रीय एकता की फूँक निकाल सकती है।

22. कुछ अन्य मानते हैं कि ईमानदारी से गठजोड़ की राजनीति को लागू किया जाए तो यह मामलों को ठीक कर सकती है। परन्तु गठजोड़ की राजनीति भी निश्चित हालातों में ही क्रियान्वित होती है, इसकी प्रथम शर्त है कि जनसंख्या के चरित्र तथा संविधान की प्रकृति के बीच एक सामंजस्य होना चाहिए। यदि जनता की आकांक्षाओं और संवैधानिक सिद्धान्तों के बीच अनुरूपता न हो तो देर-सवेर राजनीतिक अस्थिरता का आना

अवश्यम्भावी है। ऐसी स्थिति में स्वयं गठजोड़ की राजनीति अस्थिर राजनीति की शिकार हो जाती है।

23. यूरोप के कुछ बहुनस्ली देशों–स्वीट्जरलैण्ड, बेल्जियम, जर्मनी आदि में उनके अपने-अपने संवैधानिक मानदण्ड तथा मूल्य आधारित राजनीतिक पार्टियों का रचनातन्त्र गठजोड़ की राजनीति को व्यावहारिक बनाता है। हमारे मामले में, एक तरफ लोगों का बहुरूपी गठन तथा क्षेत्रीय पार्टियों की क्षेत्रीय आकांक्षाएं गठजोड़ की राजनीति में विघ्न डालती है तो दूसरी ओर केन्द्रवादी संवैधानिक आधार तथा केन्द्रवादी पार्टियों का केन्द्रवादी सोच गठजोड़ में बाधा उत्पन्न करता है।

24. और अधिक, केन्द्रवादी पार्टी और कुछ क्षेत्रीय पार्टियों के बीच का गठजोड़ अस्थायी व भंगुर गठजोड़ का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि समय-समय पर यद्यपि न्यूनतम साझा कार्यक्रम बनाया जाता है परन्तु उनके परस्पर सोच व प्राथमिकताएं प्राय: अलग-अलग होती हैं जो लगातार उनके बीच में अप्रिय सम्बन्ध बने रहने का कारण बनता है। स्वाभाविकतया, इस प्रकार के गठजोड़ टिकाऊ नहीं हो सकते हैं। अत: अब तक यह केवल अल्पकालीन घटनाक्रम ही रहे हैं। आगे, भारत की दो केन्द्रवादी पार्टियों, यानि कांग्रेस आई और भाजपा के मध्य गठजोड़ की संभावना बहुत कम है।

25. उक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भारत में गठजोड़ की व्यावहारिकता में कई बाधाएं हैं। जब तक कि इन बाधाओं को हटा न दिया जाए तब तक गठजोड़ की राजनीति केवल टुकड़ों में समाधान के तौर पर क्रियाशील होगी।

26. हमारी राजनीतिक प्रक्रिया की चंचलता को रोकने के कुछ अन्य उपाय– मसलन राष्ट्रपति प्रणाली, संसद की या प्रधानमंत्री की पाँच साल की अवधि निश्चित करना आदि भी दूसरे भेष में केन्द्रवादी नमूने का ही प्रतिनिधित्व करता है। यदि इसे अपनाया जाता है तो यह भी उतने ही नुकसानदायक होंगे।

IV एक वास्तविक प्रत्युत्तर की जरूरत

27. हालात मांग करते हैं कि हमारी अस्थिर राजनीतिक प्रक्रिया को एक वास्तविक प्रत्युत्तर दिया जाए। बनिस्पत इसके कि अन्य त्रुटिपूर्ण साधनों से इसे और अधिक चरम बिन्दु पर पहुँचाया जाए। यदि हम अपनी राजनीतिक रुग्णता को ठीक करना चाहते हैं तो हमें इसके बुनियादी एवं तात्कालिक कारणों पर समुचित तरीके से ध्यान देना होगा।

राजनीतिक अस्थिरता का बुनियादी कारण तो निश्चित सामाजिक व्यवस्था में निहित है और तात्कालिक कारण जनता की समस्याओं की अनदेखी करने में निहित है, आवश्यकता इस बात की है कि इन दोनों कार्यक्रमों को उचित तरीके से संभाला जाए।

A बुनियादी कार्यक्रम

28. बुनियादी कार्यक्रम के बारे में यह है कि भारत की विविध वास्तविकताएं, आज की अन्तरनिर्भर देशों की भूमण्डलीय वास्तविकता के सन्दर्भ में, निम्न बदलाव की मांग करती है। भारतीय केन्द्रीयवादी संविधान को संघीय/ महासंघीय में बदला जाए, जनता और पर्यावरण को इसके दो भौतिक आधार माने जाएं, अधिकतम संभव लोकशक्तिकरण के साथ कानून का राज अपनाया जाए, टिकाऊ आर्थिकता, समानता और उत्पादकता के

आधार पर निर्मित की जाए, मूल्य आधारित आचरण कायम किया जाए, सभी बड़े विवादास्पद मुद्दों पर लोकतांत्रिक सहमति बनाई जाए, सभी आन्तरिक झगड़ों को बातचीत के जरिए से हल किया जाए, पड़ौसियों के साथ सभी झगड़ों को लेने-देने के सिद्धान्त के जरिए निपटाया जाए तथा एक व्यापार सह आर्थिक क्षेत्र एवं दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सुरक्षा रचनातन्त्र (अन्य सार्क सदस्यों के सहयोग से) गठित किया जाए।

B तात्कालिक कार्यक्रम

29. तात्कालिक कार्यक्रम यानि जनता के मुद्दों को संभालने के लिए अत्यधिक प्रभावकारी तरीका यह है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों को शामिल किया जाए। यहाँ लोगों को तीन रूपों में परिभाषित किया जा सकता है यानि क्षेत्र आधारित (गाँव, पंचायत, ब्लाक, वार्ड और इसी प्रकार अन्य); समस्या आधारित (गरीब, बेरोजगार, बेघर, भिखमंगे, गन्दी बस्ती में रहने वाले इत्यादि(तथा वर्ग या ट्रेड यूनियन आधारित (खेत मजदूर, असंगठित मजदूर, औद्योगिक मजदूर, कर्मचारी, व्यापारी, उद्यमी और इसी प्रकार अन्य)। कुछ कदम उठाकर लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सकता है, जैसे (क) निश्चित मसलों पर सरकारी नीति/योजनाओं के बारे में सम्बन्धित लोगों को पूर्णतया जानकारी उपलब्ध करवाकर, (ख) सरकारी नीति/योजना को बनाने एवं लागू करने में सम्बन्धित लोगों की प्रतिनिधि कमेटी को शामिल करके, (ग) स्थानीय सर्वदलीय प्रतिनिधि कमेटी (सभी प्रकार की बड़ी व छोटी पार्टियों के समान प्रतिनिधित्व सहित) के साथ सम्बन्धित लोगों की कमेटी की एसोसियेशन बनाकर। इसी प्रकार लोगों के विरुद्ध अन्याय के सभी मसलों पर (जैसे भ्रष्टाचार, धोखेबाजी, अपराध, धोखाधड़ी, अराजकता, हिंसा, साम्प्रदायिक या जातीय टकराहट आदि) सम्बन्धित लोगों एवं सभी पार्टियों को न्याय प्राप्त करने की प्रक्रिया में शामिल करने को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

30. स्पष्टतया, इन कठिनाइयों से निकलने का मार्ग एक वास्तविक दृष्टिकोण एवं क्रिया में निहित है। 4-11-99

***

जे.के. समस्या
धोखेबाज नीति हम सबको बर्बाद कर देगी
सामूहिक समाधान जेके, पाकिस्तान एवं भारत को बचाएगा

I. अब क्या होगा

1. अब क्या होगा–यह प्रश्न उन सभी को दरपेश है जो जम्मू-कश्मीर समस्या से चिन्तित है। यह प्रश्न पाकिस्तान में फौजी शासन होने के बाद उठा है।

2. नई दिल्ली ने पुन: हमेशा की तरह सशर्त वार्ता करने के उद्देश्य को अपनाते हुए वही प्रत्युत्तर दिया है। इसने पाकिस्तान को 'सीमापार के आतंकवाद' को रोकने का कहा है ताकि दोनों देशों के बीच पुन: वार्ता शुरू किये जाने का 'सही माहौल' बन सके।

3. पाकिस्तान के फौजी शासकों ने घोषणा की है कि इस्लामाबाद पूर्व सहमत 'पैकेज' कार्यक्रम, जम्मू-कश्मीर समस्या सहित–के आधार पर नई दिल्ली से पुन: बातचीत करने के लिए तैयार है। साथ में यह भी जोड़ा कि उनकी 'कश्मीरियों के आत्मनिर्णय के संघर्ष में सहायता देने की' परम्परागत नीति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। उसने दोनों देशों की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर अग्रिम चौकियों से पाकिस्तानी सेना को पीछे कर लेने की घोषणा भी की है।

4. अन्तर्राष्ट्रीय परिषदों ने वही लगातार चले आ रहे समझदारी के सन्देश को दोहराया है कि दक्षिण एशिया में स्थायी शांति स्थापित करने के लिए नई दिल्ली और इस्लामाबाद दोनों को जम्मू-कश्मीर के लोगों को शामिल करते हुए जम्मू-कश्मीर समस्या को द्विपक्षीय वार्ता के जरिये हल निकालना चाहिए।

5. जम्मू-कश्मीर में खाड़कू गतिविधियों के माहौल में बढ़ोतरी हुई है। फिलहाल यह स्पष्ट नहीं है कि यह और आगे गति पकड़ेगी या पूर्व की स्थिति बनी रहेगी। यह मुख्यतया इस बात पर निर्भर करता है कि मुशर्रफ सरकार किस दिशा में जाने का निर्णय लेती है।

6. स्पष्टतया, तथ्य उत्साहजनक तस्वीर प्रतिबिम्बित नहीं करते।

II. निरन्तर चल रहा भारत-पाक विद्वेष

7. ऐसा प्रतीत होता है कि नई दिल्ली और इस्लामाबाद दोनों के सम्बन्ध वही पूर्ववत हैं, यानि जम्मू-कश्मीर समस्या पर 50 साल से पुराना चला आ रहा परस्पर बैरभाव वहीं का वहीं खड़ा है। इस प्रक्रिया में दोनों ने भयंकर नुकसान उठाया है। जबकि भारत उसी तरह गरीब बना हुआ है तथा राजनीतिक तौर पर एक अस्थिर देश बन गया है। जिसमें कश्मीरी पूर्णतया विमुख हो चुके हैं तथा दुनिया जम्मू-कश्मीर समस्या के बारे में जल्दी हल निकालने का दबाव डाल रही है। पाकिस्तान विखण्डित हो चुका है, पूर्वी पाकिस्तान उसके हाथ से निकल चुका है और जम्मू-कश्मीर हाथ नहीं लगा है।

8. दोनों देशों का 5 दशक पुराना रिकार्ड इतना वीभत्स है कि वह हमेशा हरेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा निन्दनीय टिप्पणी को आमंत्रित करता है। केवल दो दिन पहले ही (2 नवम्बर, 1999), दक्षिण एशिया की मानव रिपोर्ट, 1999 जिसे मानव विकास केन्द्र, इस्लामाबाद (यू.एन.डी.पी. का धन सहयोग प्राप्त है) के महबूब-उल-हक द्वारा तैयार किया गया है–इसने रिपोर्ट दी है कि ''दक्षिण एशिया, भारत-पाकिस्तान सहित, दुनिया में सबसे अधिक भ्रष्ट और घटिया प्रशासित क्षेत्र है, जहाँ सम्पन्न शासक प्राय: इतने ताकतवर हैं कि उनकी कोई जवाबदेही नहीं है।''

मुम्बई में एक भवन निर्माण के लिए कम से कम 47 स्वीकृतियों की आवश्यकता है तथा लघु उद्योग संस्थानों को प्रत्येक माह में 36 इन्सपेक्टरों से वास्ता पड़ता है, यह घटिया प्रशासन का एक नमूना है।

अकेले पाकिस्तान में भ्रष्टाचार की मात्रा एक साल में 100 बिलियन (एक खरब) रुपये से या सकल घरेलु उत्पाद (G.D.P.) के 5 प्रतिशत से अधिक है।

बांग्लादेश में व्यापार स्थापित करने के लिए अप्रत्यक्ष 'निजी कर'–भ्रष्टाचार की कीमत के रूप में शुरू में अनुमानित मान्य मूल्य से 340 प्रतिशत अधिक राशि लगानी पड़ती है।

रिपोर्ट ने नई दिल्ली और इस्लामाबाद के परमाणु परीक्षणों की निन्दा की है और कहा है कि यह भारत के सुरक्षा बजट में करीब 14 प्रतिशत और पाकिस्तान में 8.5 प्रतिशत की बढ़ोतरी कर देगा।

इसके अनुमान के अनुसार 10 साल की अवधि में हथियारों के रख रखाव पर दोनों देशों का 15 बिलियन डालर खर्च आयेगा, यह राशि क्षेत्र के उपेक्षित 3 करोड़ 70 लाख बच्चों की शिक्षा, पोषण और स्वास्थ्य की देखभाल के लिए काफी है।

इस रिपोर्ट ने कहा है कि दक्षिण एशिया में पुन: गरीबी बढ़ रही है जबकि 1988 से 1993 के बीच में 8 प्रतिशत गरीबी कम हुई थी। अवसरों का अभाव जो शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी, स्वच्छता एवं उत्पादक संसाधनों तक पहुँच न होने से परिभाषित है–भारत के अलावा अन्य सभी दक्षिण एशियायी देशों में बढ़ा है।

अनियंत्रित भ्रष्टाचार ने क्षेत्र के आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रमों को गड़बड़ा दिया है और इस वजह से प्रत्येक वर्ष अरबों डालर की कीमत इस कार्यक्रम पर खर्च होती है जिसका भार गरीबतर लोग उठाते हैं जो उनकी क्षमता के परे है।

''दक्षिण एशिया का भ्रष्टाचार चार मुख्य चरित्र लिए हुए है जो इसे दुनिया के अन्य भागों के भ्रष्टाचार से कहीं अधिक खतरनाक व नुकसानदायक बनाता है–भ्रष्टाचार उच्च स्तर से शुरू होता है न कि निम्न स्तर से, जो विकास के कार्यक्रम और प्राथमिकताओं को विकृत कर देता है।''

भ्रष्टाचारी धन के पंख है, पहिए नहीं, और इसे तस्करी द्वारा विदेशों में सुरक्षित स्थानों में पहुंचा दिया जाता है जो लौट कर घरेलु अर्थव्यवस्था में नहीं आता।

भ्रष्टाचार प्राय: पदौन्नति की ओर ले जाता है, जेल की ओर नहीं तथा बड़ी मछली जब तक कि वह विपक्ष की न हो मुश्किल से ही फँसती है।

भ्रष्टाचार की वजह से 515 मिलियन (51.5 करोड़) लोग गरीबी के शिकार होते हैं और ये 2 डालर प्रति व्यक्ति आय से कम आमदनी के लोग हैं इन्हीं पर यह कहर पड़ता है। भ्रष्टाचार से मुकाबला करने के लिए यह अलग से भ्रष्टाचार निवारण अदालतें खोलने, लोक सेवकों द्वारा उनकी सम्पत्तियों की घोषणा करवाने, सूचना देने वालों को छूट का प्रावधान करने, सभी बड़े ठेकों के बारे में संसद में बहस करवाने तथा पारदर्शी वसूली कानून की सिफारिश करती है।

III. भारत-पाक अवास्तविक अवधारणाएं

9. निस्सन्देह, भारत और पाकिस्तान को पिछले पाँच दशकों में भारी मानवीय एवं भौतिक नुकसान उठाना पड़ा है। इसका मुख्य कारण इनकी अवास्तविक अवधारणाएं तथा प्रत्युत्तर है जो निम्न हैं–

प्रथम, वे एक दूसरे को (उनके अपने-अपने अन्धराष्ट्रवादी एवं बहुसंख्यक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से दिग्भ्रमित होने से) पहले नम्बर के दुश्मन के तौर पर पहचान करते हैं और इसी के अनुरूप एक दूसरे को नीचा दिखाने और नुकसान पहुँचाने की हर कोशिश करते हैं।

द्वितीय, इन्होंने जम्मू-कश्मीर के मुद्दे को अपने राष्ट्रीय अस्तित्व का सवाल बना लिया है। इसने उनकी स्थिति पूर्णतया असंगत बना दी है। वार्ता और बातचीत के सभी रास्ते अलग कर दिये हैं और जम्मू-कश्मीर समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान का प्रत्येक दरवाजा बन्द कर दिया है।

तृतीय, इन्होंने एक दूसरे से निपटने के लिए केवल मात्र टकराहट का ही रास्ता अपनाया है। स्वाभाविकत: इस रास्ते ने सैन्यीकरण को उनके अपने-अपने राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के शीर्ष पर ला पटका है जिससे भारत-पाक के मध्य तनाव बना हुआ है तथा 1947 के बाद के काल में दोनों को तीन युद्ध झेलने पड़े हैं।

10. स्पष्टतया, उनके अपने-अपने राष्ट्रीय खतरों के उक्त सभी गलत अवधारणाओं ने मानवीय व पर्यावरणीय प्राथमिकताओं को पीछे धकेल दिया है।

11. जहाँ तक उनके अपने-अपने राष्ट्रीय शत्रु और टकराहट के रास्ते की धारणाओं की व्यवहारिकता का सवाल है इन्होंने कुछ सीमा तक शीत-युद्ध (1947-1987 के दौरान) के दौर में कुछ हद तक काम किया है; जिस समय भारत सोवियत धड़े से जुड़ा हुआ था और पाकिस्तान अमेरिकी धड़े से। परन्तु इनके नव-स्वतन्त्र देश होने से टकराहट का रास्ता तथा सैन्यीकरण की प्राथमिकता ने उनकी अपनी-अपनी आर्थिकता और वित्तीय संसाधनों पर असह्य बोझा डाला और इस प्रकार उन्हें हासिये पर सीमित कर दिया।

IV. नई विश्व-वास्तविकता

12. शीत युद्ध के बाद के युग के उदय में शीत युद्ध के समय के तरीकों ने अपनी विश्वसनीयता खो दी है। वास्तव में एक बड़ी हद तक ये तरीके अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की नई विश्व वास्तविकता के सामने अनुपयुक्त हो गए। ऐसी दुनिया में मुख्य चुनौती अन्तरनिर्भर राष्ट्रों का उचित प्रबन्ध करना था। और इस चुनौती का मुकाबला आर्थिक विकास (जो टिकाऊ, उत्पादकता तथा समानता के सिद्धान्त पर आधारित हो) को वैश्विक सह राष्ट्रीय

प्राथमिकता एवं आर्थिक सहयोग के तौर पर तथा देशों के मध्य राजनीतिक सांस्कृतिक मित्रता को वैश्विक सह राष्ट्रीय ध्येय के तौर पर स्वीकार करने से किया जा सकता था। अत: प्रत्येक राष्ट्र के लिए आर्थिक विकास अति आवश्यक उत्कंठा बन गई और टिकाऊ, उत्पादक एवं समतावादी वृद्धि आम जनता की अति आवश्यक जरूरत बन गई।

13. ऐसी दुनिया में, यदि नाफ्टा, एशियान आदि से सम्बन्धित सभी देशों को परस्पर लाभ होता हो तो राष्ट्रीय प्रभुसत्ता और राष्ट्रीय सीमाएं गौण हो सकती है। आगे, विभिन्न समुदायों बशर्ते कि सभी लाभान्वित हों तो अपनी-अपनी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को भी एक अकेली इकाई में एवं साझी सीमाओं (ई.सी.) में एकबद्ध हो सकते हैं। यदि यह नुकसानदायक और अलाभप्रद हो तो एक एकीकृत समुदाय भी विभिन्न सामाजिक रूपों में विभाजित हो सकता है, मसलन पूर्व सोवियत यूनियन, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, पाकिस्तान आदि।

14. आज की दुनिया माँग करती है कि पारम्परिक राष्ट्रीय दुश्मन अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय दोस्तों में अपने आपको बदल सकते हैं और अपने साझे भविष्य का निर्माण दोस्ती और सहयोग के जरिये कर सकते हैं।

15. इस तरह की दुनिया की पहली प्राथमिकता है कि सभी झगड़ों को समाप्त किया जाए तथा द्विपक्षीय एवं साझा सम्बन्धों के तनावों को शिथिल करके और उनमें सुधार लाकर वास्तविक शान्ति स्थापित की जाए।

V. भारत का हित किधर है

16. उपरोक्त वर्णित हमारे समय के सारतत्व के मद्देनजर भारतीय राष्ट्र का हित किधर है? क्या हमारा हित मसले को नजरअन्दाज या लटकाए रखकर या जैसा कि नई दिल्ली प्राय: करता रहा है कि वार्ता शुरू करने के लिए शर्त पर जोर देकर जम्मू-कश्मीर समस्या के समाधान को आगे खिसकाते रहने में है? निश्चय ही नहीं! क्योंकि यह सभी प्रत्युत्तर शीत-युद्ध के कार्यक्रम बनते हैं जो केवल पाकिस्तान के साथ तनाव ही बढ़ा रहे हैं। हर तरह से यह एक नकारात्मक, गैर उत्पादक नजरिया है जिसने देश को भारी नुकसान पहुँचाया है। सिवाय इसके कि पाकिस्तान के साथ शीत युद्ध लगातार चालू रहे बाकी इसकी कोई तर्क संगतता नहीं है। पाकिस्तानी फौजी शासकों द्वारा ठप्प पड़े भारत-पाक वार्तालाप को फौजी शासन की गिरती हुई साख को बचाने के लिए पुन: शुरू करने के निमंत्रण को भारत द्वारा सशर्त प्रत्युत्तर देना एक राजनीतिक समस्या को केवल इसके पारम्परिक धोखेबाज नजरिए को जारी रखना ही है। जबकि देश ने अभी निकट भूतकाल में ही कई फौजी शासकों से वार्तालाप किए हैं तथा 6 गुप्त मिटिंगें कारगिल के दौरान व कारगिल संकट के बाद के दिनों में वाजपेयी के प्रतिनिधि (आर.के. मिश्रा) तथा नवाज शरीफ के नामांकित अधिकारी (नियाज ए नायक) के मध्य नई दिल्ली और इस्लामाबाद में हुई है।

17. समस्या को चकमा देने की नीति का उद्देश्य क्या है तथा इससे भारत को कैसे लाभ पहुँचता है। धोखापूर्ण दलील का स्तर इस हद का है कि पाकिस्तान एक असफल राज्य है उसे असफलता की ओर धकेला जाए ताकि वह हमेशा-हमेशा के लिए बर्बाद हो

जाए। इस दलील को देने वाले गुट के अनुसार पाकिस्तान के अप्रासंगिक होने से कश्मीरी खाड़कूपन बिखर जाएगा और बाजारू उपभोक्तावाद का तेजी से फैल रहा असर कश्मीरीयत की गति की हवा निकाल देगा। परन्तु यह मात्र एक आत्म भ्रांति है। पाकिस्तान विश्व समुदाय से इतना विलग नहीं हुआ है जैसा कि यह चालबाज गुट सोचता है। 55 सदस्यों की ओ.आई.सी. में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। विकसित देशों खासतौर पर अमेरिका की प्राथमिक सूची में अभी भी इसका स्थान बना हुआ है। विकसित देशों में भी इसने अपना असर बनाया हुआ है। इसके चीन से गहरे आन्तरिक सम्बन्ध है जो एक संसाधन युक्त देश है जो इसे युगोस्लाविया जैसे तथा अन्य देशों की तरह रसातल में नहीं जाने देगा।

18. देश में इसके असर की ओर देखे तो पाते हैं कि यह चालबाज दिशा भारत की दो गंभीर वर्तमान समस्याओं जैसे राजनीतिक अस्थिरता और वित्तीय संकट को और अधिक बिगाड़ेगी। ये दोनों समस्याएं अन्तरसम्बन्धित हैं। राजनीतिक अस्थिरता लोगों की कठिनाइयों को तुरन्त हल करने की माँग करती है। जो धन की उपलब्धता पर निर्भर है जबकि विस्तृत वित्तीय संकट सरकारी खर्च में भारी कटौती की माँग करता है। इस राष्ट्रीय दुविधा के विपरीत यह चालबाज दिशा हथियारबंद सुरक्षा को आधुनिक बनाने पर अभूतपूर्व खर्च करने को कहती है ताकि मिलिटेन्सी को कुचला जा सके और शीत युद्ध के जरिये पाकिस्तान को नीचा दिखा सके।

19. चालबाजी भरे बहाने कि–राजस्व की बेहतर वसूली तथा अधिक एफ.डी.आई. का आगमन वित्तीय संकट से देश को उभार लेगा तथा पाकिस्तान को मिटा देना राष्ट्रीय भावनाओं को पुनर्जीवित कर देगा–केवल भ्रमित विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। इसका अत्यधिक पिछड़े, अत्यधिक भ्रष्टाचार में डूबे एवं अत्यधिक संकट ग्रस्त दक्षिण एशिया की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। और जहाँ विदेशी पूँजी, प्रतिभाशाली व्यक्ति, विशेषज्ञ एवं तकनीक को यहाँ प्रवेश करने में हिचकिचाहट है जबकि उनके स्थानीय समतुल्य विदेशों की तरफ दौड़ रहे हैं।

20. इस प्रकार, पाकिस्तान को नीचा दिखाने की चालबाज दिशा का दूसरा छोर भारत की राजनीति और आर्थिकता को विखण्डित करने की दिशा है। या दूसरे शब्दों में भारत के राष्ट्रीय हितों को यह चालबाज दिशा नुकसान पहुँचाने वाली है।

VI. अब यहाँ से पाकिस्तान किधर जाएगा

21. पाकिस्तान अब यहाँ से किधर जाएगा और इसका नया फौजी शासन भारत के सख्त रवैये को किस तरह का प्रत्युत्तर देगा। पाकिस्तान के मौजूदा हालात के लेखेजोखे के तहत मुशर्रफ सरकार के सबसे पहले घरेलू कार्यक्रम पर ध्यान देने की संभावना है जिसमें आर्थिक पहलू का स्थान प्रथम है। यहाँ इसका मुख्य ध्येय लोगों में नयी जगी आशाओं को पूरा करना है। इसलिए आम आदमी की आशाओं की पूर्ति करने के लिए इसको अपने द्वारा घोषित चार बिन्दुओं के कार्यक्रम को अमल में लाने के व्यवहार को दर्शाना होगा जिसमें भी आर्थिक पहलू प्राथमिकता लिए हुए है। यदि इस इम्तिहान में यह पास हो जाता है तो सब ठीक-ठाक रहेगा।

2. द्वितीय, परन्तु इतना ही महत्वपूर्ण ध्येय यह होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के समक्ष इसकी साख की छवि साफ-सुथरी बनाई जाए, इसके लिए इसे बाह्य एवं आन्तरिक दोनों मामलों में शालीन एवं गंभीर रवैया अपनाना होगा।

23. इस सरकार के सामने जो अन्य चुनौतियां खड़ी हैं उनमें निम्न शामिल हैं (a) प्रशासनिक व्यवस्था में फौजी जनरलों एवं नागरिक सलाहकारों के मध्य संतुलन पैदा करना होगा, (b) विभिन्न मिलिटेन्ट ग्रुपों, विभिन्न रूढ़िवादियों और उदार पार्टियों को सही तौर पर प्रबन्धित करना होगा, (c) फौजी कट्टरपंथियों को वश में रखना होगा, यह कार्य बहुत कठिन और नाजुक है। यदि इनका ठीक से प्रबन्ध न किया जा सका–खास तौर पर यदि पहला उद्देश्य सही ढंग से पूरा नहीं हो पाया तो मुशर्रफ सरकार को गंभीर खतरा पैदा हो सकता है।

24. भारत के सम्बन्ध में यदि पाकिस्तान सख्त लाईन लेता है तो भी भारत को कोशिश करनी होगी कि कथनी और करनी में भड़कावों से बचे, जब तक पाकिस्तानी सरकार अपने घर के हालात ठीक न कर लें।

25. जहाँ तक जम्मू-कश्मीर का सम्बन्ध है इस सम्बन्ध में भारत जैसा रुख अपनायेगा पाकिस्तान उसी के अनुसार अपना प्रत्युत्तर देगा। यदि भारत मौजूदा सरकार से बातचीत शुरू करता है तो जम्मू-कश्मीर में मिलिटेंट गतिविधि मुख्य तौर पर सुरक्षात्मक होगी अन्यथा यह अत्यधिक आक्रामक और आत्मघाती रास्ता अपनायेगी।

VII. जम्मू-कश्मीर के हितों की सेवा कैसे हो

26. जम्मू-कश्मीर के लोगों के हितों की सेवा कैसे हो या जम्मू-कश्मीर समस्या से सम्बन्धित कौनसा विकल्प है जो उसके हितों के अनुकूल रहेगा। यहाँ जम्मू-कश्मीर के लोगों से तात्पर्य है कि वे सभी लोग जो 1947 से पूर्व के जम्मू-कश्मीर राज्य की भौगोलिक सीमाओं के दोनों ओर रहते हैं। और 'जम्मू-कश्मीर के लोगों के हितों की सेवा' की धारणा का अर्थ है वह अवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था जो उनके कल्याण एवं सम्पन्नता को सुनिश्चित कर सकती है।

27. उपरोक्त प्रश्न वर्तमान विश्व वास्तविकता से उत्पन्न हुआ है जहाँ विभिन्न देशों, जिसमें भारत भी अब शामिल हुआ है–ने यह स्वीकार किया है कि जम्मू-कश्मीर का प्रश्न लगातार अनसुलझी समस्या बना हुआ है। यद्यपि अभी दुनिया ने इस समस्या को भारत-पाक के मध्य द्विपक्षीय मुद्दा होना स्वीकार किया है फिर भी यदि ये दोनों देश उचित समय में कोई सन्तोषजनक हल नहीं निकाल पाते हैं और उल्टे आपस में टकराहट के रास्ते पर चलते रहते हैं तो विश्व समुदाय जिसका प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्र संघ करता है मुनासिब समय में दखलन्दाजी कर सकता है।

28. यह सच है कि लाहौर शिखर वार्ता के बाद भारत-पाक सम्बन्धों में जो सामान्य स्थिति बनाने की प्रक्रिया बनी उसे कारगिल संकट से धक्का लगा है। तथा कारगिल के बाद की घटनाओं के विकास में पाकिस्तानी फौज ने नवाज शरीफ को जेल के सिखंचों में बन्द करके अपने जनरल को पाकिस्तान का मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाने में सफलता पाई। परन्तु भारत-पाक के बीच चल रहा ठहराव लम्बे समय तक रुका हुआ नहीं रह

सकता। विश्व दबाव दोनों देशों की विकास की आवश्यकताओं से जुड़कर भारत-पाक की सरकारों पर दबाव डालेगा कि सामान्य हालत बनाने की प्रक्रिया को पुनः शुरू करें।

29. जम्मू-कश्मीर के लोग वर्तमान भारत-पाक गतिरोध को तोड़ने में स्वयं भी भूमिका अदा कर सकते हैं बशर्ते कि वे कुछ बुनियादी बिन्दुओं पर मोटे तौर पर आम सहमति पर पहुँचे। कुछ बुनियादी बिन्दु निम्न हैं–

(a) दुनिया शीत युद्ध के बाद नये वैश्विक युग में प्रवेश कर चुकी है जिसमें दुनिया के राष्ट्र द्वितीय विश्य युद्ध (यानि 1945) की समाप्ति के बाद और अधिक अन्तरनिर्भर हो गये हैं। इस राष्ट्रीय अन्तरनिर्भरता ने लोगों की समस्याओं की मुख्य प्रकृति को राष्ट्रीय से वैश्विक स्वरूप में बदल दिया है।

(b) दुनिया में विभिन्न देश अपने आपको विभिन्न प्रकार के क्षेत्रीय विकास समूहों में संगठित कर रहे हैं–जैसे स्वतन्त्र बाजार क्षेत्र, व्यापार जोन, आर्थिक एकीकरण और साझी सुरक्षा आधारित समुदायों और इसी प्रकार के अन्य समूह।

(c) दुनिया को बहुत गम्भीर समस्याओं से सामना है–जैसे पर्यावरण ह्रास, प्राकृतिक विनाशलीला, आदि, जिन्हें यदि समुचित तौर पर प्रबंधित नहीं किया गया तो मानव अस्तित्व को ही खतरा है।

(d) इस तरह की दुनिया को स्थायी विश्व शांति की आवश्यकता है, इसलिए विश्व समुदाय संयुक्त राष्ट्र संघ के जरिये विभिन्न संघर्षों को या तो सम्बन्धित पक्षों के बीच द्विपक्षीय वार्तालाप से या संयुक्त राष्ट्र संघ के जरिये या तीसरे पक्ष की मध्यस्थता से हल करने की कोशिश कर रहा है फिर वह संघर्ष चाहे देशों के बीच हो या देश के अन्दर हो। राष्ट्रों के एकीकरण या वैश्वीकरण की अन्य सामाजिक आवश्यकताएं ये हैं–

लोकशक्तिकरण के आधार पर कानून का राज, टिकाऊ, उत्पादक एवं समतावादी विकास, मूल्य आधारित मानदण्ड एवं व्यवहार, साझी सुरक्षा व्यवस्था तथा इन सबसे ऊपर मानव चिन्तन, व्यवहार एवं संगठन की प्रक्रिया में जनता एवं प्राकृतिक पर्यावरण को दो सन्दर्भ बिन्दुओं के तौर पर मान्यता देना।

(e) कुछ नकारात्मक ताकतें विश्व एकीकरण की प्रक्रिया को उलटने की कोशिश कर रही है परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि वैश्विक एकीकरण मानवीय विकास प्रक्रिया के हजारों सालों की एक प्राकृतिक क्रमिक विकास की प्रक्रिया है।

(f) कुछ ताकतें, जैसे अमेरिका, नाटो यद्यपि सक्रिय रूप से विश्व एकीकरण की गतिविधि में भाग ले रही है परन्तु वे इस प्रक्रिया पर स्थायी तौर पर अपना प्रभुत्व कायम करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन, यह एक संक्रमणकालीन रुझान है (जिसका आधार वर्तमान विश्व शक्ति संतुलन में है) जो बदल रहे शक्ति संतुलन तथा विश्व लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विस्तृत एवं गहन होने से सहज होता चला जायेगा।

(g) जम्मू-कश्मीर के लोगों का भविष्य दक्षिण एशिया से जुड़ा हुआ है जिसमें भारत और पाक दोनों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। जम्मू-कश्मीर का भविष्य न तो सेण्ट्रल एशिया और ना ही मध्य पूर्व एशिया या अन्य किसी क्षेत्र से सम्बन्धित है।

30. उपरोक्त वर्णित वैश्विक समझ के अनुसार जम्मू-कश्मीर समस्या का न्यायिक एवं व्यवहारिक हल का मूल सिद्धान्त भारत और पाकिस्तान को न्यायपूर्ण और निष्पक्षता के आधार पर परस्पर नजदीक लाने का होना चाहिए। हमारी सारी पहल और प्रत्युत्तर इसी सिद्धान्त की रोशनी में दिए जाने चाहिए। सभी गतिविधियां जो भारत-पाक की दुश्मनी को तीखा बनाती हैं वे जम्मू-कश्मीर के लोगों के भविष्य के प्रतिकूल है।

31. अन्य मार्गदर्शक उसूल निम्न होने चाहिए–

(a) जम्मू-कश्मीर समस्या को भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों को शामिल करते हुए त्रिपक्षीय सवाल के तौर पर लिया जाना चाहिए। इस सवाल को सभी सम्बन्धित पक्षों की भागीदारी के जरिये हल किया जा सकता है।

(b) ऐसे हल की कोशिश करना जिससे एक तरफ भारत-पाक मित्रता पैदा हो तथा दूसरी तरफ जम्मू-कश्मीर दोनों देशों–भारत और पाकिस्तान से लगातार जुड़ा रहे।

(c) जम्मू-कश्मीर की नस्ली-क्षेत्रीय पहचानों की आकांक्षाओं एवं उनके मामलों पर मुनासिब ध्यान दिया जाए।

32. यह सिद्धान्त हमारे समय की वैश्विक एवं दक्षिण एशियाई मनोभावों का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करते हैं। इन सिद्धान्तों को थामने का अर्थ है, जम्मू-कश्मीर की जनता की वर्तमान आकांक्षाओं और भविष्य की जरूरतों में सामंजस्य बैठाना। कोई भी विकल्प जो इन सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है वह जम्मू-कश्मीर के लोगों के हितों की सेवा नहीं कर सकता। ऐसा समाधान जो एक देश के पक्ष में हो और दूसरे देश के विपरीत हो अथवा एक ऐसा हल जो दोनों को एक साथ अपमानित करने वाला हो, यह दोनों हल समान तौर पर जम्मू-कश्मीर के हितों को नुकसान पहुँचाने वाले हैं।

VIII. हम सबके लिए साझा हल

33. यद्यपि विलम्बित, परन्तु अभी भी कुछ समय है कि भारत और पाकिस्तान अपनी-अपनी जम्मू-कश्मीर नीतियों के बारे में गंभीरता से पुनर्मूल्यांकन करें, जबकि जम्मू-कश्मीर समस्या ने भारत-पाक को भारी नुकसान पहुँचाया है और कश्मीरियों को भयंकर दुख-तकलीफें झेलनी पड़ी हैं। पुन: अपने-अपने राष्ट्र में सम्पूर्ण जम्मू-कश्मीर को मिलाने के 1947 के नजरिये को छोड़ कर जम्मू-कश्मीर के साझे हल तथा भारत-पाक व जम्मू-कश्मीर की जनता के मध्य साझेदारी कायम करने के लिए उन्हें अब सार्क नजरिया अपनाना चाहिए। पाकिस्तान को आत्मनिर्णय और जनमतसंग्रह के पारम्परिक नारों को छोड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए, जबकि भारत को जम्मू-कश्मीर के बारे में अपनी वर्तमान स्थिति को छोड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए। दोनों को अपने-अपने देश की जनता को जम्मू-कश्मीर विवाद का सामूहिक समाधान निकालने के लिए तैयार करना चाहिए। तीनों पक्षों की अपनी-अपनी मानसिकता में बदलाव उनके वर्तमान और भविष्य के लिए आश्चर्यजनक परिणाम ला सकता है।

34. इस समस्या के हल के लिए कई विकल्प हो सकते हैं। जिनमें से तीनों पक्षों की आपसी सहमति का समाधान छाँटा जा सकता है। हमारी नजर में निम्न बिन्दु आधारित

प्रस्ताव भी जो प्रत्येक पक्ष के सामूहिक-सह-व्यक्तिगत आकांक्षाओं को समाहित करता है, विचारणीय है–

(क) जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए भारत-पाक (या सार्क यदि तीनों पक्ष ऐसा निर्णय लें) सहराज्य स्थापित कर भारत व पाकिस्तान दोनों राष्ट्रों के अपने-अपने हितों को संतुलित किया जाना चाहिए। इस सहराज्य को जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा, विदेश मामले एवं मुद्रा का संचालन करना चाहिए और जम्मू-कश्मीर के सम्बन्ध में सम्प्रभुसत्ता की ताकत इस सहराज्य के पास होनी चाहिए।

(ख) जे.के. राज्य एक स्वतंत्र राज्य होना चाहिए जिसकी सम्प्रभुसत्ता भारत-पाक सहराज्य में निहित होनी चाहिए। राज्य को संघीय संविधान अपनाना चाहिए और पूरे राज्य के लिए एक राज्याध्यक्ष, एक उच्च न्यायालय, एक चुनाव आयोग, एक लोक सेवा आयोग और एक मानव विकास आयोग होना चाहिए। ये सभी नस्ली क्षेत्रीय परिषदों से चुने जाने चाहिए, जिसमें प्रत्येक परिषद का एक प्रतिनिधि होना चाहिए।

(ग) राज्य का संघीय संविधान राज्य में स्थित प्रत्येक नस्ली क्षेत्र को अधिकतम सम्भव स्वायत्तता प्रदान करना सुनिश्चित करेगा।

(घ) भारत-पाक सहराज्य के तहत जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा, विदेशी मामले तथा मुद्रा पर होने वाले कुल खर्च को यह सहराज्य वहन करेगा। जम्मू-कश्मीर के नागरिकों को दोनों देशों के नागरिक अधिकार प्राप्त होंगे। जम्मू-कश्मीर का भारत और पाकिस्तान के साथ व्यापार उसी तरह से नियमन किया जायेगा जैसे वह इन दोनों देशों का अपना-अपना राज्य हो। जम्मू-कश्मीर राज्य में विभिन्न परियोजनाओं की क्रियान्विति भारत-पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर राज्य की साझेदारी के आधार पर होगी–जिसमें तीन शेयर-धारक होंगे, जिनके समान अधिकार होंगे तथा समस्त निवेश एवं तकनीक का योगदान भारत-पाकिस्तान की तरफ से होगी जबकि जम्मू-कश्मीर राज्य का धन सहयोग उसके संसाधनों के मूल्यांकन के जरिये होगा।

IX. तात्कालिक कार्य

35. उपरोक्त वर्णित विकल्प को शुरू करने और आगे बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि सभी शान्तिप्रिय एवं लोकतांत्रिक शक्तियां क्रियाशील हो तथा इस निष्पक्ष और विवेकशील योजना के पक्ष में एक तरफ लोगों को संगठित करें और दूसरी तरफ दोनों देशों के बीच सामान्य स्थिति बनाने के लिए भी लोगों को संगठित करें।

यहाँ निम्न तात्कालिक कदम उठाये जाने अत्यन्त आवश्यक है–(a) यह माँग उठाई जानी चाहिए कि नई दिल्ली तुरन्त आल पार्टी हुरियत कान्फ्रेन्स के सभी नेताओं को रिहा करे और जम्मू-कश्मीर त्रिपक्षीय वार्ता की समस्या के हल के सम्बन्ध में एक त्रिपक्षीय वार्ता की प्रक्रिया शुरू करने के लिए उन्हें बातचीत के लिए बुलाएं, जिसमें पाकिस्तान को भी शामिल किया जाए।

(b) जम्मू-कश्मीर में मानव अधिकारों का उल्लंघन सभी तरफ से रोका जाए, खास तौर से नई दिल्ली द्वारा।

(c) नई दिल्ली और इस्लामाबाद से अपील की जाए कि दोनों देश एक दूसरे को दुश्मन मानने के अपने दृष्टिकोण को समाप्त करे, शियाचीन एवं वुलर-बैराज के दोनों समझौतों पर हस्ताक्षर करे जिस पर दोनों देशों में प्राथमिक तौर पर पहले ही सहमति हो चुकी है; सर क्रीक के मसले पर बातचीत शुरू की जाए और किसी समझौते पर पहुँचा जाए; जम्मू-कश्मीर सीमा की नियंत्रण रेखा से 1 किलोमीटर पीछे अपनी-अपनी फौजों को हटाया जाए, मुक्त क्षेत्र में दोनों देशों के सुरक्षा बल संयुक्त गश्त लगाये, आदि।

(d) विभिन्न नस्ली-क्षेत्रीय समूहों के मध्य त्रिपक्षीय विकल्प पर कोई आम सहमति बनाने के लिए आन्तरिक-नस्ली बातचीत की पहल की जाए ताकि कोई साझा समाधान निकाला जा सके।

36. इस युग की माँग के अनुसार, बिना किसी शक सुबा के यह कहा जा सकता है कि भारत, पाकिस्तान एवं जम्मू-कश्मीर की जनता के बीच साझेदारी उनकी और साथ ही दुनिया के हितों की हर तरह से सेवा करेगी। 6-11-99

***

ध्यान देने लायक तथ्य

भूख और गरीबी का दुष्चक्र

द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासचिव

विश्व खाद्य दिवस प्रतिवर्ष याद दिलाता है कि दुनिया में करोड़ों लोगों के पास पर्याप्त भोजन नहीं है। 1999 का वर्ष भी पुन: स्मरण करवा रहा है कि इस शताब्दी में चाहे कितनी भी तकनीकी उन्नति क्यों न की हो परन्तु हम भूखमरी को समाप्त नहीं कर पाये हैं। इसे वास्तव में उच्च प्राथमिकता दिए बगैर हल करने की बात कोई सोच भी नहीं सकता है।

आर्थिक झटकों, झगड़ों, प्राकृतिक विपदाओं और गहराती गरीबी के कारण आज लगभग 83करोड़ लोग भूखमरी के शिकार हैं। खासतौर पर बच्चों के मामले में यह संख्या बहुत डरावनी है। पाँच वर्ष से छोटी उम्र के अनुमानित 19 करोड़ 20 लाख बच्चे प्रोटीन और कैलोरी की कमी के शिकार हैं। इनमें से प्रतिदिन कुपोषण की वजह से 11000 बच्चे मौत का शिकार होते हैं। यानि भोजन की कमी से प्रति आठ सैकण्ड में 1 बच्चा मर जाता है।

बच्चे और वास्तव में पूरा समाज किसी अन्य तरीकों से भी अपर्याप्त भोजन की कीमत चुकाता रहता है। कुपोषण के शिकार बच्चों को कोई दूसरा मौका नहीं मिलता है क्योंकि बाद में अच्छा भोजन भी बचपन में हुए शारीरिक और मानसिक नुकसान की भरपाई नहीं कर पाता है। जब भोजन की कमी होती है तो शिक्षा पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि बच्चों (जिनमें ज्यादातर लड़कियां होती हैं) से स्कूल छुड़वा लिया जाता है और बाकी बच्चे भी खाली पेट ठीक से पढ़ नहीं पाते हैं। आगे शिक्षा की कमी खराब स्वास्थ्य से जुड़कर इन लोगों की अपने समाज में योगदान करने की क्षमता को कम कर देती है। भूखमरी को हटाना गरीबी से लड़ने का पहला कदम है। परन्तु गरीब जो भूखमरी के जाल में फँसे हुए हैं अपना उज्ज्वल भविष्य बनाने का कोई कदम नहीं उठा पाते हैं। लाखों लोग अपने भोजन की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऐसे तरीके अपनाते हैं जिससे उनके भोजन की दीर्घकालीन सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। साफ है ऐसा विकास जो सब लोगों के लिए भोजन की सुरक्षा नहीं करता एक कच्ची नींव पर खड़ा है। ये खाद्य दिवस जो भूखमरी की शिकार युवा पीढ़ी को समर्पित है। हमें याद दिलाता है कि आज भूखे बच्चों के लिए भोजन आपूर्ति करना न केवल हमारे लिए नैतिक दायित्व है। बल्कि समस्त देशों के विकास के लिए एक आवश्यक निवेश है।

हम भूख और गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ सकते हें। अगर ऐसा करना हमारी इच्छा शक्ति बने। आओ इसे पूरा करें और ये सुनिश्चित करें कि भविष्य में विश्व के किसी भी व्यक्ति के लिए 'भोजन नहीं मिलने का दिन' पूरे वर्ष में कभी न आये।

अक्टूबर-16 विश्व खाद्य दिवस पर दिया गया सन्देश

गरीबी को समाप्त करने की इच्छा की कितनी दफा उद्घोषणा की गई है? परन्तु

अरबों लोग अभी तक प्रतिदिन तीन डॉलर से कम में जीवन यापन करने के लिए मजबूर हैं। अरबों लोगों को पीने का पानी, स्वास्थ्य सुविधा और शिक्षा सुविधा, उनकी गरीबी दूर करने के लिए आवश्यक रोजगार की कमी है। और इस प्रकार अभी तक वे अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित हैं। इस सबका ये अर्थ नहीं है कि गरीबी हटाने का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस मामले में कुछ विकास किया गया....कुपोषण कम किया गया है। बच्चों की मृत्यु दर को घटाया गया है और स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या काफी बढ़ गई है। आने वाली शताब्दी के लिए एक योजना बनाकर हमने एक बड़ा कदम उठाया है। हालिया संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2015 तक निपट्ट गरीबी की संख्या आधी करने के लिए मुहिम शुरू की है। हमें गरीबी उन्मूलन को केवल राजनीतिक प्राथमिकता का मुद्दा नहीं बनाना चाहिए बल्कि नैतिक कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए। आज समस्त मानव जाति की प्रतिष्ठा दाँव पर लगी हुई है, यह बात न केवल गरीबी में जीवन जीने वाले लोगों के लिए नहीं है बल्कि खासतौर पर उन लोगों के लिए भी जो गरीबी से निकलने में इनकी सहायता कर सकते हैं। हम सबको मिलकर हमारी प्रत्येक कार्यवाही में यह सिद्ध करना होगा कि गरीबी दूर करने के लिए कोई कसर बाकी नहीं छोड़ेंगे और अविराम कोशिश करेंगे। अक्टूबर 17, गरीबी हटाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दिवस पर दिया गया सन्देश (एच.टी. 23-10-99, पी.13)

पर्याप्त भोजन उपलब्धि के बावजूद एक तिहाई भारत भूखा

UNFPA

भारत में भोजन उत्पादन बढ़ रहा है। और तब भी 1/3 जनसंख्या यानि लगभग 32 करोड़ (1997 में) लोग भोजन की असुरक्षा में जी रहे थे इतनी बड़ी बहुसंख्या न्यूनतम आवश्यक ऊर्जा का केवल 80 प्रतिशत से भी कम उपभोग करती है। इस कमी का कारण उत्पादन की विभिन्न मंजिलों में हानि होना तथा असमान वितरण है। स्वतंत्रता के बाद कृषि उत्पाद तेजी से बढ़ा है। अनाज उत्पादन में 3.5 गुना बढ़ोतरी हुई है। दालों में लगभग 3 गुना, प्रोटीन में 1.5 गुना बढ़ोतरी हुई है। इसके बावजूद प्रति व्यक्ति इनकी उपलब्धता बहुत कम बढ़ी है। (UNFPA की एक रिपोर्ट द्वारा उद्धृत)

यह अध्ययन देश में भोजन व जनसंख्या वृद्धि के मध्य सम्बन्ध को प्रकट करता है। भारत अगले वर्ष 1 अरब जनसंख्या का आंकड़ा पार कर लेगा। इस अध्ययन के अनुसार प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा अनाजों में 27 प्रतिशत, दालों में 35 प्रतिशत बढ़ी है। और खाद्य तेलों में लगभग दुगुनी बढ़ी है। उदाहरण के लिए आसाम, तमिलनाडू और महाराष्ट्र की ग्रामीण जनसंख्या का 80 प्रतिशत से अधिक भाग इस न्यूनतम प्रतिदिन आवश्यकता से कम उपभोग कर पाता है। और ग्रामीण गुजरात का 50 प्रतिशत भी इसी श्रेणी में आता है, यही वह समूह है जो भूखा है। (एक रिपोर्ट से)

वाणिज्यिक गोदामों, छोटी अनाज की दुकानों और घरों में अनाज का 25 प्रतिशत नुकसान रहता है। उत्पादन का 50 प्रतिशत ही मनुष्य उपभोग कर पाता है। और 20 प्रतिशत पशुओं को खिला दी जाती है। और 5 प्रतिशत का उपभोग बीजों के रूप में होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार अनाज की मांग का प्रभावी तरीके से पूरा करने के लिए जनसंख्या वृद्धि को रोकने की तत्काल आवश्यकता है।

विश्व खाद्य दिवस पर इस अध्ययन ने बतलाया है कि बढ़ती जनसंख्या तथा लाखों की संख्या में गरीब लोगों को न्यूनतम अनाज उपलब्ध करवाने की आवश्यकता उभर रही है।

हमें कोई अचम्भा नहीं है कि खाद्य और कृषि संगठन (F.A.O.) ने भारत को निम्न आय और अनाज की कमी वाला देश चिह्नित किया है। (रिपोर्ट में दर्शाया है)

इस अध्ययन ने बताया है कि योजना आयोग के मुताबिक (ग्रामीण और शहरी लोगों के लिए न्यूनतम आवश्यकता कैलोरी 2400 और 2100 है परन्तु जनसंख्या का काफी बड़ा हिस्सा इस न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पाता है। रिपोर्ट चेतावनी देती है कि बढ़ती जनसंख्या और गैर-टिकाऊ कृषि व्यवहार के चलते भारत को भविष्य में अनाज उत्पादन में गिरावट का सामना करना पड़ सकता है, अत: इस स्थिति में ज्यादा सक्रिय योजना बनाने की जरूरत है।

भारत को देश के भावी संसाधनों की उपलब्धता के मामले में अधिक सक्रिय योजना बनानी चाहिए। इसके लिए दोनों अर्थात अनाज की पूर्ति बढ़ाने और माँग में वृद्धि को कम करने की जरूरत है। (रिपोर्ट में दर्शाया है)

बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश सहित कई राज्यों में जनसंख्या में बढ़ोतरी से ग्रामीण भूमि पर दबाव बढ़ रहा है, रिपोर्ट में बताया गया है कि ग्रामीण भूमि पीढ़ी दर पीढ़ी और छोटे टुकड़ों में बँटती जा रही है। इससे हरियाणा और पंजाब जैसे अधिक उत्पादक राज्यों की उत्पादकता भी कम हो रही है।

'भारत में जनसंख्या, अनाज उत्पादन और पोषण' शीर्षक के अध्ययन में कहा गया है कि भारत की जनसंख्या में आसाम तथा बिहार में 90 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं जबकि महाराष्ट्र में 61 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं जिनमें से अधिकतर कृषि कार्य में लगे हैं जिससे ग्रामीण खण्ड पर भारी दबाव है। (TOI, 20-10-99 P11)

III. आरक्षण : अनुसूचित जाति/जनजाति के अधिकांश हिस्से की स्थिति में परिवर्तन करने में नाकामयाब–एक अध्ययन

अनुसूचित जाति व जनजाति के विद्यार्थियों ने 53 साल पुरानी आरक्षण नीति से क्या हासिल किया? बहुत थोड़ा, एक अध्ययन ने उद्घाटित किया है कि अनुसूचित जाति/जनजाति के कोटे के तहत आरक्षित सीटों से एडमीशन प्राप्त 40 प्रतिशत लड़के कॉलेज बीच में छोड़ देते हैं। इससे भी खराब स्थिति यह है कि 66 प्रतिशत लड़के अपने अध्ययन के समापन के बाद भी रोजगार प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

इस नीति के तहत कॉलेज और विश्वविद्यालयों को 15 प्रतिशत सीटें अनुसूचित जाति और 7.5 प्रतिशत अनु. जनजाति के लिए आरक्षित रखनी होती है। यह अध्ययन सामाजिक न्याय और शक्तिकरण के केन्द्रीय मंत्रालय के तत्वावधान में प्रोफेसर वाई.एल. नांगिया, निदेशक, मानव संसाधन प्रबन्ध केन्द्र, नई दिल्ली और डॉ. हरीख के. सक्सेना द्वारा किया गया। इसमें दिल्ली विश्वविद्यालय के 11 कॉलेजों के 704 अनुसूचित जाति/जनजाति विद्यार्थियों के बारे में 1989-90 से 1993-94 के दौरान अध्ययन किया गया।

एक शुरूआती उद्घाटन दिखाता है कि इनमें से कॉलेज छोड़ने वाले विद्यार्थियों की

संख्या 283 थी। जिनमें 215 आर्थिक तंगी के कारण कॉलेज छोड़कर गये। यह इस सबके बावजूद है कि अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्यार्थियों के लिए सरकार कई तरह की कॉलेज स्कालरशिप प्रदान करती है। और ज्यादातर कॉलेजों में अ.जा. और अ.जनजाति का कोटा बिना भरे ही रहता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के विद्यार्थी कल्याण के डीन प्रोफेसर ए.के. सिन्हा इसके कारणों की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि हिन्दी, संस्कृत और फारसी भाषा जैस बहुत से विषयों के लिए अ.जा./अ.जनजाति के अभ्यार्थियों की संख्या पर्याप्त नहीं होती है।

एक अन्य तथ्य है कि 705 विद्यार्थियों में से किसी भी प्रत्यर्थी ने विदेश में उच्च तकनीकी शिक्षा हासिल करने के लिए राष्ट्रीय ओवरसीज स्कालरशिप के तहत सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तीय सहायता को प्राप्त नहीं किया और ना ही आवेदन किया। संभवतया, वे इस सुविधा के बारे में जानते तक नहीं थे। रोजगार के मोर्चे पर सरकारी नौकरियों में भर्ती के विशेष रियायती नियमों के बावजूद, 279 (66 प्रतिशत) प्रत्यर्थी बेरोजगार थे। 66 प्रतिशत ने कहा कि वे अपने पाट्यक्रम से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने अध्ययन सामग्री के हिन्दी में नहीं मिलने और किताबों की कमी की शिकायत की तथा अपने प्रोफेसरों पर विलाप किया कि वे अध्यापन का माध्यम इंगलिश रखने को प्राथमिकता देते हैं। सिन्हा ने इसे नकारते हुए कहा कि ज्यादातर दिल्ली कॉलेजों में अध्यापन का माध्यम मिश्रित है और परीक्षा में इंगलिश और हिन्दी में से किसी में भी लिखने का विकल्प विद्यार्थियों के पास है। परन्तु वे इस बात पर सहमत थे कि ज्यादातर पाठ्य पुस्तकें केवल इंगलिश में ही मिलती हैं।

अध्ययन इंगित करता है कि यद्यपि अ.जाति/जनजाति के ज्यादातर विद्यार्थियों का पंजीयन रोजगार कार्यालय में था परन्तु वे सालों बेरोजगार रहे। इससे भी खराब स्थिति उनकी रही है जो स्वरोजगार करना चाहते थे परन्तु बैंकों या अन्य ऋण एजेन्सियों से ऋण प्राप्त नहीं कर सके। अध्ययन ने सिफारिश की है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में विद्यार्थी कल्याण के डीन अथवा प्रिंसिपल के निर्देशन में प्रत्येक कॉलेज में अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्यार्थियों के लिए एक रोजगार सैल होना चाहिए। कॉलेजों में एक शिकायत निवारण ऑफिसर भी होना चाहिए जो उनकी शिकायतों पर ध्यान दें।

दूसरी अन्य सिफारिशें

- अनुसूचित जाति/जनजाति के बेरोजगार युवाओं के लिए अधिक व्यवसायिक कार्यक्रमों को शुरू किया जाए।
- कॉलेज के सूचनापट्ट पर धन प्रदान करने वाली एजेन्सियों के नोटिस चस्पा किए जाएं।
- विद्यार्थी कल्याण के डीन (अध्यक्ष) के नीचे एक केन्द्रीय संचालन सेल की स्थापना की जाए जो कॉलेज छोड़ने वाले विद्यार्थियों की दर का रिकार्ड रखे और उनको उचित सलाह देने का प्रबन्ध करे।
- अध्ययन में द्विभाषा माध्यम का उपयोग किया जाए और हिन्दी में अनुवादित पाठ्य पुस्तकों को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करवाया जाए, और

- अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय आयोग में अनुसंधान और विकास विभाग की स्थापना की जाए। (TOI, 23-10-99 P-5)

IV. दक्षिण एशिया में बम बनाम रोटी

दक्षिण एशिया सम्पूर्ण दुनिया में सबसे अधिक गरीबी और बदहाली से त्रस्त क्षेत्र है। संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न एजेन्सियों के 1995 के आंकड़ों के मुताबिक दक्षिण एशिया की 36 प्रतिशत आबादी को शुद्ध पीने का पानी उपलब्ध नहीं है जबकि सभी विकासशील देशों का इस मामले में औसत 29 प्रतिशत है। सभी विकासशील देशों में अनपढ़ों की संख्या 29 प्रतिशत के मुकाबले दक्षिण एशिया में 51 प्रतिशत अनपढ़ है।

सभी विकासशील देशों में 38 प्रतिशत अनपढ़ महिलाओं की तुलना में दक्षिण एशिया में 65 प्रतिशत महिलाएं अनपढ़ है। पांचवीं कक्षा तक सभी विकासशील देशों में 31 प्रतिशत बच्चों की तुलना में इस क्षेत्र में 41 प्रतिशत बच्चे स्कूल छोड़ देते हें। दक्षिण एशिया में बच्चों को जन्म देने वाली 1 लाख माताओं में से 583 मौत का शिकार होती हैं जबकि यह संख्या सभी विकासशील देशों के लिए 384 है। सभी विकासशील देशों में 5 साल से छोटे कुपोषण के शिकार बच्चे 31 प्रतिशत है जबकि दक्षिण एशिया में ऐसे 53 प्रतिशत बच्चे हैं। पाँच वर्ष से छोटे बच्चों की मृत्यु संख्या दर 1000 के पीछे 113 है जबकि सभी विकासशील देशों में यह दर 97 है।

यह स्पष्ट है कि गरीबी व बदहाली की हालत दक्षिण एशिया में बहुत अधिक है। परन्तु आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बजट प्रावधान एवं प्रबन्ध करना असम्भव नहीं है। दक्षिण एशिया में मानव विकास रिपोर्ट, 1997 (H.D.S.A. रिपोर्ट, मानव विकास केन्द्र, पाकिस्तान द्वारा तैयार) किये गये अनुमान के मुताबिक दक्षिण एशिया में आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कार्यक्रम पर 8.6 अरब डालर प्रतिवर्ष की दर से 15 वर्षों के लिए 129 अरब डालर की आवश्यकता है।

इन आंकड़ों की तुलना दक्षिण एशिया में 1995 में सरकारी अनुमानों के मुताबिक अनुमानित सैनिक खर्च की राशि 13.3 अरब डालर से की जा सकती है। H.D.S.A. की रिपोर्ट के अनुसार वास्तविक खर्च (कुछ मद इसमें शामिल नहीं किये जाने की वजह से) इस आंकड़े से 25 प्रतिशत अधिक है। यह स्थिति 1995 की है। परन्तु इसके बाद हथियारों की दौड़ और तेज हो गई और 1997 तथा 1998 में उसमें परमाणु विस्फोट और मिसाइलों के परीक्षण भी शामिल हो गये हैं। इसने सैनिक खर्च में बहुत अधिक इजाफा कर दिया है, अभी तक 1997-98 के अनुमानित आंकड़े उपलब्ध नहीं हुए है।

यह साफ है कि अगर हम एक तिहाई सैनिक खर्च को ही कम कर दे (जो कि हासिल किया जा सकता है) तो सभी लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक धन को भी जुटाया जा सकता है।

H.D.S.A. की 1997 की रिपोर्ट में कहा गया है, ''एक सम्भव परिदृय है कि दोनों देश आपसी सहमति से वर्तमान सैनिक खर्च के अपने-अपने स्तर को रोकने या कटौती करने के लिए निश्चयपूर्वक कोशिश करे।'' इस रिपोर्ट में ऐसे तीन तरह के परिदृश्य पेश किये गये हैं। वास्तव में दौड़ को रोक देना, 2 प्रतिशत वार्षिक कटौती करना, अथवा 5 प्रतिशत वार्षिक कटौती कर देना।

अगर यह योजना को विस्तारित करके और जोड़कर देखें तो इन तीन तरह की शांति योजनाओं पर अमल करने से 1997 से 2010 के बीच क्रमश: 80 अरब डालर, 100 अरब डालर और 125 अरब डालर धन बचाया जा सकता है। इतने धन से दक्षिण एशिया की आधारभूत आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं। रिपोर्ट उद्घाटित करती है कि अगर इससे भी कम दर पर सैनिक खर्च में कटौती की जाए तो भी लोगों की काफी आधारभूत आवश्यकताओं के लिए धन जुटाया जा सकता है।

लेकिन इसके लिए भारत व पाकिस्तान के बीच तनाव कम करना तथा श्रीलंका के भीतर आन्तरिक कलह को कम करना आवश्यक है। शांति कार्यक्रम के पक्ष में एक मजबूत जन समर्थन तैयार करने से ही यह स्थिति पैदा हो सकती है जिससे सैनिक खर्चों में कटौती एक वास्तविकता बन सके। (H.T. 16-6-99, P:13)

V. अरबपति क्लब अथाह सम्पत्ति की उड़ान पर

इस दनदनाते स्टाक बाजार व नई उत्पन्न इन्टरनेट सम्पत्ति ने दुनिया के अरबपति क्लब को बढ़ाया है तथा सबसे अधिक 200 धनवानों की कुल संयुक्त सम्पत्ति को 10 खरब (1 ट्रिलियन) डालर से ऊपर पहुँचा दिया है।

आज इन्टरनेट ने जीवन की गति को तेज कर दिया है, स्टाक व्यापार से लेकर यात्रा करने की योजना तक की हर प्रक्रिया को त्वरित कर दिया है, इसने सम्पत्ति के सृजन को भी गति प्रदान की है और खास करके सबसे अधिक धनवान व्यक्तियों के बीच इसकी गति और तेज हो गई है। फार्ब्स पत्रिका के 5 जुलाई के अंक में 13वीं वार्षिक सूची में विश्व के अरबपतियों की संख्या 465 दर्ज की है। इनमें से एक नम्बर पर माइक्रोसोफ्ट क्रोप कोफाउन्डर और चैयरमैन बिल गेट्स है, जिसके नाम 90 अरब डालर की सम्पत्ति है। माइक्रोसोफ्ट ने दो अन्य को भी उच्च पाँच में स्थान दिलाया है। इनमें दूसरे नम्बर पर निवेशी वारेन बुफेट के 36 अरब डालर के बाद माइक्रोसोफ्ट के कोफाउन्डर पाउल एलन 30 अरब डालर के साथ तीसरे नम्बर पर है। माइक्रोसोफ्ट के अध्यक्ष स्टीवन बालमेर 19.5 अरब डालर के साथ चौथे नम्बर पर है।

स्विट्जरलैंड के ओएरी, हाफमैन और साचेर परिवारों के पास रोचे दवा उद्योग से एकत्रित धन 17 अरब डालर से अधिक है जो पांचवें नम्बर पर हैं। तेल, रेल और दूरसंचार में लगी फिलिप आन्सचुज और डेल कम्प्युटर कोरपोरेशन के अध्यक्ष माइकेल डेल 16.5 अरब डालर सम्पत्ति के साथ छठे नम्बर पर है, इनकी उम्र 34 वर्ष है जो अधिकतम 10 धनवानों में सबसे कम उम्र के हैं। इन्टरनेट अरबपति भी इस साल विश्वभर में उलटफेर कर रहे हैं। प्राइस-लाइन कॉम के प्रवर्तक जय वाकर, और एबे के संस्थापक पियरे ओमीडयार शून्य से उच्चतम 50 धनवानों में अपना स्थान बना चुके हैं। वाकर कुल 10.2 अरब डालर के साथ 25वें नम्बर पर हैं, जबकि ओमीडयार 10.1 अबर डालर के साथ 36वें स्थान पर हैं। इसी बीच टैक्सास विश्वविद्यालय के खोजकर्ताओं का एक अध्ययन दर्शाता है कि वाशिगंटन की एक रिपोर्ट के मुताबिक पिछले वर्ष ई-इकॉनोमी यानि इन्टरनेट पर किया गया व्यापार 48 अरब डालर था। अमेरिका में व्यापार संचालित करने का इन्टरनेट एक बड़ा माध्यम बनता जा रहा है। वहाँ इस वर्ष लगभग 301 अरब डालर का व्यापार इसी

माध्यम से होगा जबकि एक अध्ययन के अनुसार 2003 तक 1300 अरब डालर का व्यापार इन्टरनेट के माध्यम से होने की आशा है।

इन्टरनेट से प्राप्त किए आइटम आमतौर पर दुकान से खरीदे गए आइटम से सस्ता पड़ता है। यह भी सुना जा रहा है कि इन्टरनेट व्यपार में खर्चा भी कम पड़ता है और कोई बेचने वालों की बड़ी फौज की जरूरत नहीं पड़ती है। खरीददारों के अधिकतर सवालों का जवाब अपने आप उचित सॉफ्टवेयर के जरिये मिल जाता है। और अब तो इन्टरनेट की असीमित उपलब्धता और ग्राहकी भी सस्ती से सस्ती होती जा रही है।

अब स्टाक और शेयरों सहित, कम्प्यूटरों, पुस्तकों और मोटर गाड़ियों तक के आइटमों की खरीद-फरोख्त इन्टरनेट पर की जा सकती है। (T.O.I. 22-6-99, P.O. 5)

VI. वाइपरो मुखिया सबसे धनवान भारतीय – 'फोरबेस' पत्रिका

फोरबेस पत्रिका के अनुसार हालिया विश्व के अरबपतियों की सूची में कुल 465 में से 7 भारतीय अरबपति हैं। इस पत्रिका के जुलाई 5 के अंक के अनुसार दुनिया में कार्यरत धनवानों में उच्चतम 200 लोगों की सम्पत्ति 10 खरब (1ट्रिलियन) डालर से अधिक पहुँच चुकी है जो 10 वर्ष पहले के 200 अरबपतियों की 463 अरब डालर सम्पत्ति से दोगुनी से भी अधिक है।

पत्रिका के अनुसार सूचना तकनीक का धनी-मानी व्यक्ति आजिम हाशम प्रेमजी कुल 2.8 अरब डालर सम्पत्ति के साथ सबसे अधिक धनवान भारतीय है। फोरबेस पत्रिका की 13वीं वार्षिक सूची जो यूस सॉफ्टवेयर के धनी-मानी व्यक्ति बिल गेट्स के नाम (कुल सम्पत्ति 90 अरब डालर) से शुरू होती है, इस सूची में प्रेमजी का स्थान 177वां है।

प्रेमजी ने–एन लक्ष्मी मित्तल की 1.9 अरब डालर की सम्पत्ति, उद्योगपति धीरूभाई अम्बानी और सॉफ्टवेयर विकसित करने वाले शिव नादेर (1.2 अरब डालर प्रत्येक), कुमार मंगलम बिरला (1.1 अरब डालर), आदि गोदरेज और हिन्दुजा ब्रादर्स (1 अरब डालर प्रत्येक)–इन सभी से अधिक सम्पत्ति अर्जित कर ली है। (T.O.I. 22-6-99, P-15)

VII. विश्व भर में युद्धों ने भारी मानवीय कीमत वसूली, 1990 के दशक में लड़े गये युद्धों में अनुमानित मौतों की संख्या

अफगानिस्तान : 20 लाख मौतें, 1979-1992 : 1 लाख से अधिक सोवियत सैनिकों का समर्थन और सोवियत समर्थन से सत्तापलट तथा मास्को समर्थक शासक सत्ता में आये, विद्रोही ग्रुपों ने सोवियतों को खदेड़ दिया और शासन पर कब्जा जमाया तथा एक दूसरे के खिलाफ मोर्चा जमाया, तालीबान मिलिशिया और विरोधी ताकतों के बीच गृहयुद्ध निरन्तर जारी है।

अल्जीरिया : 75,000 मौतें, 1992 से 1998 तक, इस्लामिक सालवेशन मोर्चा द्वारा चुनावों में जीत हासिल करने के बाद सेना ने चुनावों को निरस्त कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप विद्रोह ने जन्म लिया। 1965 के बाद पहली बार अप्रेल में राज्य का नागरिक

मुखिया बाली सत्ता ने शासन सम्भाला है जो प्रतिबन्धित इस्लामिक मोर्चे को मुख्यधारा में लाने के कदम उठा रही है।

अंगोला : 5,00,000 मौतें, 1975-1999, अंगोला में पुर्तगाल से 1975 में आजादी के बाद से युनिटा विद्रोहियों और सरकार के बीच संघर्ष फूट पड़ा था और चार साल के युद्ध विराम के बाद दिसम्बर में पुन: फूट पड़ा है। इनके बीच 1991 में शान्ति समझौता हुआ और 1994 में दोनों ने इसे तोड़ दिया। इस वर्ष 780,000 के लगभग अंगोलावासी बेघरबार हो गए।

बोस्निया : 250,000 मौतें, 1991-1995 : यूगोस्लाविया के टूटने के बाद सैनिक झगड़े और नागरिक हत्याकांड हुए, यू.एस. मध्यस्थता से शान्ति समझौते द्वारा समस्या हल हुई।

बुरून्डी : 200,000-250,000 मौतें, 1993-1999 तुत्सी सरकार के सत्ता में आने के बाद जातीय संघर्ष भड़क उठा।

चेचन्या : 18,000 से 100,000 मौतें, 1994-1996, रूसी सेना और चेचेन विद्रोहियों के बीच युद्ध, चेचन्या अपने मामले खुद सम्भालने लगा परन्तु किसी देश ने उसकी स्वतंत्रता के दावे को मान्यता नहीं दी।

कोलम्बिया : 30,000 मौतें, 1960 के दशक से 1999 तक : ड्रग तस्करों, वामपंथी विद्रोहियों, दक्षिणपंथी अर्द्ध-सैनिक बलों और सनकी सेना के सिपाहियों ने दशकों के संघर्ष में प्रतिवर्ष हजारों नागरिकों को मौत के घाट उतारा है। देश का ओमबुडसमैन कहता है पिछले वर्ष 1200 से 16 प्रतिशत अधिक नागरिक मारे गये हैं और हिंसा से 300,000 से अधिक लोग खदेड़े गये हैं। कोलम्बिया ने हालिया समय में अत्यधिक अपहरण की घटनाएं झेली हैं परन्तु साथ ही सबसे बड़े विद्रोही ग्रुप के साथ वार्तालाप के दौर भी चलाए हैं, फार्क।

ग्वाटेमाला : 200,000 मौतें, 1960-1996 : वामपंथी विद्रोहियों और सरकार के बीच शान्ति समझौते से गृह युद्ध का अन्त हुआ।

इजरायल-पैलेस्टिनियन : 125,000 मौतें, 1948-1997 : ये इजरायल के आधुनिक राज्य (देश) बनने के बाद से रक्षा सूचना गणना करने वाले एक निजी केन्द्र द्वारा इकट्ठा किए आँकड़े हैं।

कोसोवा : पश्चिमी अधिकारियों का अंदाज है कि 5000 सर्ब सैनिक या पुलिसमैन मारे गए हैं। सर्व सूत्रों ने माना है कि लगभग 2000 नागरिक तथा कम से कम उनके 500 सुरक्षाकर्मी मारे गए हैं। नाटो द्वारा बमबारी शुरू करने से पहले कोसोवो के अल्बानियन नस्ली विद्रोहियों के खिलाफ की गई कार्यवाही में अनुमानत: 2000 लोग मारे गये। नाटो बलों के बीच उत्तरी अल्बानिया में एक हैलीकॉप्टर ट्रेनिंग मिशन के दौरान दो अमेरिकी मौत के शिकार हुए।

लाइबेरिया : 150,000, 1989-1997 : नस्ली तानाशाही को उखाड़ने के लिए विद्रोहियों ने गृहयुद्ध की चिनगारी लगाई। डेमोक्रेटिक सरकार स्थापित हुई लेकिन छुटपुट हथियारबंद झगड़े जारी है।

उत्तरी आयरलैंड : 3,250 मौतें, 1968-1998 : रोमन कैथोलिक विरोधियों और प्रोटेस्टैंट पुलिस के बीच गली-कूचों में झड़पें जो 1970 के आते-आते आइरिश रिपब्लिकन सेना द्वारा गोली और बमों के प्रयोग में बदल गई और उसके बाद प्रोटेस्टैंट ग्रुप ने निरुद्देश्य हत्याओं का सिलसिला शुरू कर दिया।

खाड़ी युद्ध : 4500 से 45,000 मौतें सन् 1991 में : अभी तक ये आंकड़े काफी विवादित हैं। यू.एस. ने मित्र देशों की बमबारी में नागरिकों के मरने के आंकड़े मात्र 2,500 बताए हैं। इराक के सरकारी आंकड़ों में यह संख्या 35,000 बताई गई है। इराकी सेना की मौतों की संख्या के अनुमान भी काफी अन्तर दर्शाते हैं जिनमें शुरूआती कम से कम आंकड़ा लगभग 1500 मौतों का है। यू.एस. अधिकारी कहते हैं डेजर्ट स्टोर्म बमबारी के दौरान सैनिक क्रियाकलापों में 147 अमेरिकन मारे गए और 289 सैनिक खाड़ी आपरेशन के पहले और दौरान हुई दुर्घटनाओं में मारे गये।

रवान्डा : 500,000 से 800,000 मौतें, 1994 : हुतु सरकार के प्रभाव के नीचे सैनिकों, मिलिशिया और अन्य सशस्त्र बलों द्वारा 90 दिनों तक तुत्सी जाति के लोगों या उदार हुतु लोगों का भारी कत्लेआम किया गया, अंत में तुत्सी नेतृत्व वाले विद्रोहियों ने सत्ता को गिरा दिया।

सियरा लिओनी : 14,000 मौतें, 1991-1999 : रिवोल्यूशनरी यूनाइटेड फ्रंट और सरकार के बीच निरन्तर युद्ध जारी है, जिसमें फ्रंट को सत्ता से बाहर हुआ फौजी धड़ा समर्थन दे रहा है जबकि नाईजीरियाई नेतृत्व वाली हस्तक्षेपकारी बलों का सरकार को समर्थन प्राप्त है। अभी हाल ही मई में शान्ति वार्ताएं शुरू हुई हैं।

स्रोत : एसोसिएटेड प्रेस, यू.एस. स्टेट डिपार्टमेंट, सेन्टर फार डिफेन्स इन्फोरमेशन, वर्ल्ड अल्मानाक (इकॉनामिक टाइम्स, 13-6-99 पी-9)

VIII. भारतीय अल्पसंख्यकों, खासकर मुस्लिमों की स्थिति

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (N.C.M.) ने इसकी वार्षिक रिपोर्ट में भारत में अल्पसंख्यकों के खराब जीवन हालात के बारे में चिन्ता जताई है। आयोग ने ईमानदारी से पर्यवेक्षण किया है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों और सुरक्षा धाराओं के संवैधानिक प्रावधानों तक का पूरा पालन नहीं किया जाता है। और दूसरी तरफ विभिन्न बहानों के तहत इसकी अवहेलना की जाती है।

14 करोड़ मुस्लिम जो जनसंख्या का 14 प्रतिशत बनते हैं निरन्तर निराशा और दरिद्रता में जी रहे हैं। हालिया इस्लामिक विद्वान रफीज जकारिया ने कुछ भयप्रद आंकड़े प्रस्तुत किये हैं जो निरन्तर चल रहे मुस्लिम विरोधी पूर्वाग्रहों को दर्शाते हैं। सरकारी नौकरियों और सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में मुस्लिमों के रोजगार की धूमिल तस्वीर पेश होती है, आज देश में मात्र 2 प्रतिशत इंजीनियर, 2.5 प्रतिशत डाक्टर, 2.86 प्रतिशत आई.ए.एस. अफसर, 2 प्रतिशत आई.पी.एस. अफसर, 3.3 प्रतिशत पहले दर्जे के अफसर, 2.18 प्रतिशत बैंक कर्मचारी, और 3.10 प्रतिशत अन्य श्रेणियों में मुस्लिम अल्पसंख्यक कार्यरत हैं। इसी तरह इनकी आय राष्ट्रीय औसत आय से काफी नीचे हैं, भारतीय समाज में मुस्लिम दरिद्रतम हिस्से से हैं।

एप्लायड आर्थिक अनुसंधान राष्ट्रीय परिषद (N.C.A.E.R.) द्वारा किए गए सर्वे के मुताबिक हिन्दू परिवारों की औसत आय 29,786 रुपये की तुलना में मुस्लिम परिवरों की औसत आय 22,807 रुपये है; वास्तव में, मुस्लिम परिवारों की आय तो 1993-94 के दौरान ग्रामीण भारत के राष्ट्रीय आय (जो 35,653 रुपये थी) से भी कम है। तब यह भी आश्चर्य नहीं है कि हिन्दुओं में 20 प्रतिशत भूमिहीनों की तुलना में मुस्लिमों में 43 प्रतिशत से अधिक लोग भूमिहीन बन गये हैं।

राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे अन्य उद्घाटित आंकड़े प्रदान करता है : 6.4 प्रतिशत हिन्दू आबादी की तुलना में 10.9 प्रतिशत मुस्लिम आबादी की मासिक आय 90 रुपये या उससे कम है; 28.43 प्रतिशत हिन्दुओं की तुलना में 41.4 प्रतिशत मुस्लिम 96 रुपये से 158.31 रुपये वाले आय समूह के सदस्य हैं; देश के उच्चतम 200 उद्योगपतियों में से मुस्लिमों का प्रतिशत केवल 3.87 है। बैंकों द्वारा किए गए ऋण वितरण में इस समुदाय ने कुल ऋण मात्र 3.7 प्रतिशत हिस्सा हासिल किया।

हालांकि देश ने लगभग सभी क्षेत्रों में काफी उन्नति की है परन्तु मुस्लिम निरन्तर वंचित तबके का हिस्सा बना हुआ है। इस समुदाय का एक बड़ा हिस्सा अपने जीवनयापन के लिए छोटे व्यापार, लघु उद्योगों और निम्न आय वाले रोजगार पर निर्भर है। इस सब हालात के साथ-साथ वे भौतिक और मनोवैज्ञानिक असुरक्षा का सामना कर रहे हैं। भाजपा सरकार के दौरान ईसाइयों को भी तकलीफें झेलनी पड़ी है।

अति आवश्यक है कि अल्पसंख्यकों के खोए हुए विश्वास को पुन: प्रतिस्थापित करने के लिए साजगार हालात बनाने होंगे। ऐसा करने से उनके बीच सुलग रहा असन्तोष हटेगा और इससे उनके पिछड़ेपन से जुड़कर सम्पूर्ण देश की उन्नति में भारी रुकावट के एक बड़े कारण को दूर किया जा सकेगा। (T.O.I. 11-6-99, P-14)

IX. दुनिया के रास्ते

पिछले 32 सालों यानि 964 और 1996 के बीच में क्रिश्चियनों के खिलाफ हिंसा के केसों की अनुमानित रिपोर्ट संख्या-38 है।

पिछले 1 वर्ष में यानि 1998 में क्रिश्चियनों के खिलाफ हिंसा के केशों की अनुमानित रिपोर्ट संख्या 136 है।

सरकार, व्यापारी और शिक्षाविदों के नेतृत्वकारी लोगों का 81 प्रतिशत हिस्सा कहता है कि उनका शहर दिल्ली रहने के हिसाब से सबसे घटिया जगह है।

नई दिल्ली में 5 बड़ी संस्थाओं के नेताओं के बीच 'पर्यावरणीय गुणवत्ता' और 'कुल मिलाकर जीवन की गुणवत्ता का दर्जा' 1 और 2 है।

सशस्त्र सेनाओं और राजनीतिज्ञों का 16 धन्धों में अधिक आदर योग्य धन्धे का दर्जा 1 और 16 के क्रम में है।

डॉक्टरों और वकीलों का 16 धन्धों में अधिक चाहत वाले धन्धे का दर्जा 1 और 16 के क्रम में है।

विश्व और भारत में जन्म लेने वाले लोगों की गैर पंजीकृत संख्या 1:3 अनुपात में है।

भारत में प्रतिदिन औसतन 53 घरेलु महिलाएं आत्महत्या करती हैं।

भारत में महिलाओं के खिलाफ अपराधों में घरेलू प्रताड़ना और यौन उत्पीड़न का दर्जा 1 और 2 नम्बर पर है।

भारत में एक महिला के 20 वर्ष की आयु से पहले मां बनने की संभावना का अनुपात 1:3 है।

1980 से अब तक भारत सरकार ने आई.एस.आई. की धमकियों से सामना करने के लिए 64,500 करोड़ रुपये की अनुमानित राशि खर्च की है।

आई.एस.आई. द्वारा पिछले 10 सालों में खरीदे गये भारतीयों की अनुमानित संख्या 19,000 है।

आई.एस.आई. द्वारा पिछले 10 सालों में भारत में भेजे गये पाकिस्तानी या विदेशी मिलिटैंटों की अनुमानित संख्या 7,125 है।

भारत में प्रत्येक 100 में से 45 बच्चे ऐसे हैं जिनका कहना है कि टेलिविजन, वीडियो या सिनेमा पर उन्हें अप्रिय या डरावना प्रोग्राम देखने को मिलता है।

भारत में प्रत्येक 100 में से 13 बच्चे ऐसे है जिनका कहना है कि टेलिवीजन पर उनकी उम्र के लायक प्रोग्राम देखने को नहीं मिलता है।

चीन में प्रत्येक 100 में से 22 बच्चे ऐसे हैं जिनका कहना है कि टेलिविजन पर उनकी उम्र के लायक प्रोग्राम देखने को नहीं मिलता। विश्व भर में इन्टरनेट का उपयोग करने वाली महिलाओं का 72 प्रतिशत भाग उस पर प्रेमी ढूंढने में लगा रहता है।

विश्व भर में इन्टरनेट का उपयोग करने वाले पुरुषों का 52 प्रतिशत भाग उस पर प्रेमिका ढूंढने में लगा रहता है। विश्व भर के 139 विकासशील देशों में से 53 देशों ने वाई टु के लिए कोआर्डिनेटर नियुक्त किए। विश्व भर में 6 बिलियन डालर के खर्च से सभी के लिए बेसिक शिक्षा का 1 वर्ष का प्रबन्ध किया जा सकता है।

अमेरिका में प्रतिवर्ष कान्तिवर्द्धक पदार्थों (कोस्मेटिक) पर 8 बिलियन डालर का खर्च किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र का जापान एक ऐसा सदस्य देश है जिसे बच्चों की जन्म दर नियंत्रण गोलियों के उपयोग की छूट दी हुई है जबकि वहाँ किसी महिला को इसके उपयोग की जरूरत नहीं पड़ती है।

जापान के सभी यानि 100 प्रतिशत पुरुषों को स्वीकृति दी हुई है कि वे यौन उत्तेजक और नपुंसकता का इलाज करने वाली वियाग्रा दवाई का उपयोग करें ताकि जापान की घटती जन्म दर को बढ़ाने में सहायता की जा सके। (H.T. 28-4-99, P-13)

X. अन्त में

40 लाख वर्ष पहले जबसे मानव जाति की शुरूआत हुई है तबसे लेकर सन् 1950 तक जितनी जनसंख्या वृद्धि हुई है उससे अधिक वृद्धि पिछली आधी शताब्दी (1950 के बाद) के दौरान देखने में आई है। और यह अनुमान लगाया जा रहा है कि अगले 50 वर्षों में पृथ्वी की वर्तमान 6 अरब आबादी में 2 से 4 अरब के बीच और इजाफा हो जायेगा।

परन्तु वास्तव में ये भयावह आंकड़े हैं क्योंकि इतनी बड़ी मानवता के लिए सीमित प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है और इससे भी अधिक भविष्य के लिए भयावह पहलू है कि इसे नियंत्रण करने के साधन क्या होंगे।

चाहे हम पसन्द करें या न करें, दो आधारभूत सच्चाइयां विद्यमान रही हैं–एक घटती जन्म दर और दूसरी बढ़ती मृत्यु दर की सच्चाई। बाद वाली सच्चाई, जहाँ जन्म में ज्यादा लोग मर जाते हैं–को डेमोग्राफिक बर्बादी के नाम से जाना जाता है। पिछले निकट के इतिहास में भी ऐसा कई बार हुआ। 14वीं शताब्दी में 2 करोड़ 50 लाख लोग या उस वक्त की यूरोप की एक चौथाई आबादी काली मौत प्लेग की शिकार हो गई; 16वीं शताब्दी में चेचक ने इन्कान, अनटेक और नई दुनिया में आदिम अमेरिकी सभ्यता के लगभग 1 करोड़ 50 लाख लोगों को मौत का शिकार बनाकर बर्बाद कर दिया था। इन्फ्लुएन्जा महामारी ने सन् 1918-19 में विश्व भर में 2 करोड़ 50 लाख से 4 करोड़ लोगों को मौत का शिकार बनाया, जिसमें से 1 करोड़ 25 लाख अकेले भारत के लोग इसका शिकार बने।

आज हालात यह है कि एड्स से सन् 1980 से अब तक 1 करोड़ 20 लाख से अधिक जानें जा चुकी हैं और 3 करोड़ 50 लाख से अधिक और लोग एच.आई.वी. वाइरस से संक्रमित हो चुके हैं। अगले 10 वर्षों या इसके आस-पास के वक्त में यदि कोई सस्ता और प्रभावी टीका/दवा विकसित नहीं की गई तो यह भी महामारी बनी रहेगी और मृत्यु का ताण्डव मचाती रहेगी। एक स्रोत के अनुसार अगर यह महामारी निरन्तर कुछ सालों तक ही जारी रहती है तो यह 21वीं शताब्दी के शुरू के वर्षों में ही द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मारे गए लोगों से अधिक लोगों को मौत का शिकार बना लेगी।

इस सारे हालात में भयप्रद स्थिति क्या है? वह यह है कि गैर-विकसित देशों में काम चलाऊ सरकारें भविष्य में जाने या अनजाने ऐसे हालात पैदा कर सकती है जिनमें अपनी बढ़ रही आबादी को डेमोग्राफिक बर्बादी के जरिये रोका जाए। आखिरकार अगर पैबन्द वाली, घूसखोरी और राजनीतिक भ्रटाचार के अन्य रूपों वाली सरकारें गरीब देशों में आर्थिक अस्थिरता को बढ़ाती चली जाती है तो स्वाभाविक तौर पर जनता के स्वास्थ्य की रक्षा नहीं की जा सकेगी। क्या यही बढ़ रही जनसंख्या के नियंत्रण का इन भ्रष्ट सरकारों का तरीका साबित होगा? (T.O.I 21-10-99, P-13)

***

राष्ट्रपति अभिभाषण
वाजपेयी सरकार का दिग्भ्रमित कार्यक्रम

1. 25 अक्टूबर 1999 को संसद के प्रथम अधिवेशन में राष्ट्रपति का भाषण नई चुनी हुई वाजपेयी सरकार का कार्यक्रम, इसकी प्राथमिकताओं, नीतियों और निर्धारित कार्यों को रेखांकित करते हुए उजागर करता है। यह दस्तावेज अपनी बात बहुत ही चतुराई से पेश करता है जो उसके भद्दे पहलुओं को विभिन्न जन समस्याओं को हल करने के वादों के तहत छुपाता है।

A. वाजपेयी सरकार का विश्व परिप्रेक्ष्य

2. यह मानता है कि आज विश्व शान्ति और स्थिरता को विश्व आतंकवाद (जो इसकी व्याख्या के अनुसार मुस्लिम रूढ़िवाद को दर्शाता है) से खतरा है अत: यह दुनिया के राष्ट्रों को आह्वान करता है कि इस वैश्विक खतरे के विरुद्ध संघर्ष करने को विश्व का मुख्य कार्य निर्धारित किया जाए तथा इस कार्य को पूरा करने के लिए वैश्विक संयुक्त मोर्चा बनाया जाए। ठीक इसी तरह 16 अक्टूबर 1999 को सरकार के प्रमुख के तौर पर वाजपेयी के प्रथम संबोधन में यही समझ मौजूद है। यहां यह उल्लेखनीय है कि पूरे विश्व में अमेरिकी कूटनीति इस्लामिक रूढ़िवाद के पत्ते (बिन लादेन किस्म) को विश्व के लिए मुख्य खतरे के रूप में आज इस्तेमाल कर रहा है।

(i) विश्व वास्तविकता और इसका वास्तविक परिप्रेक्ष्य

3. इस विश्व खतरे के परिप्रेक्ष्य के विपरीत आज की विश्व वास्तविकता दर्शाती है कि मानवता को मुख्य खतरा गैर-न्यायिक और असमान विश्व व्यवस्था के साथ-साथ ऐसी राष्ट्रीय व्यवस्थाओं से है जहाँ शक्तिशाली कमजोर की पीठ पर सवारी करता है और निर्धनों पर धनवानों का प्रभुत्व है। विश्व और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर यह क्रिया धन और विशेषाधिकार से सम्पन्न होती है, और यह सच्चाई और न्याय के स्वीकृत मानदण्ड बने हुए हैं।

4. यह दावा निम्न तथ्यों से पूर्णतया स्पष्ट है–

(a) 5 सैनिक तौर पर सबसे अधिक शक्तिशाली राज्यों का संयुक्त राष्ट्र और सुरक्षा परिषद् पर अति प्रभुत्व है तथा उनका उच्चतम निर्णयकारी संस्था में स्थायी सदस्यता एवं वीटो अधिकार जारी है।

(b) आर्थिक तौर पर सबसे अधिक शक्तिशाली कुछ राज्यों का आई.एम.एफ. और विश्व बैंक पर प्रभुत्व कायम है जो इन दो संस्थाओं में अपने आर्थिक हैसियत के आधार पर वोट देने की शक्ति रखते हैं।

(c) बड़ी परमाणु शक्तियों को वास्तविक परमाणु एकाधिकार प्राप्त है जैसा कि सी.टी.बी.टी. के तहत आश्वस्त किया गया है।

(d) दुनिया के आर्थिक एवं वित्तीय संसाधनों के 86 प्रतिशत पर मुट्ठी भर देशों (दुनिया की आबादी का करीब 15 प्रतिशत) का नियंत्रण है जबकि दुनिया के 85 प्रतिशत लोग (130 देशों में रहने वाले) दुनिया के 14 प्रतिशत संसाधनों पर गुजारा करते हैं।

(e) प्रत्येक राष्ट्र राज्य में गरीब और अमीर के बीच, विशेष तौर पर विकासशील देशों में जहाँ उनकी आबादी का 1/3 हिस्सा गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करता है, भारी असमानता है।

(ii) गैर-न्यायिक विश्व व्यवस्था के अन्तरनिहित कारण

5. इस गैर-न्यायिक और असमान विश्व व्यवस्था के साथ-साथ राष्ट्रीय व्यवस्थाओं में अन्तरनिहित कारण विभिन्न किस्मों की रूढ़िवादिता जो आज दुनिया एवं विभिन्न राष्ट्रीय राज्यों में प्रभुत्व जमाए हुए है, में निहित है। उदाहरणतया–

(a) पश्चिमी उदारवादी विकास मॉडल जो समाज के बनिस्पत व्यक्ति को प्राथमिकता देता है जिसमें उच्चतम प्रतियोगिता एवं आर्थिक असमानताओं के संतुलन को विकसित करने के लिए बाजार को स्वाभाविक तंत्र के तौर पर स्वीकार करता है और यह मॉडल प्रकृति के अति शोषण की वकालात करता है।

(b) साम्यवादी विकास मॉडल जो सामाजिक पक्ष को आगे लाता है और व्यक्ति को नजरअंदाज करता है एवं भौतिक संसाधनों के अधिकतम उपयोग पर जोर देता है।

(c) धार्मिक रूढ़िवाद जो अपनी किस्म को दिव्य मानता है एवं अन्य सभी धार्मिक आस्थाओं की निन्दा करता है।

(d) तीसरी दुनिया का मॉडल विकासशील देशों को पहली दुनिया के साथ संघर्ष करके मानवता को स्वतंत्रता दिलाने वाला मानता है।

6. उपरोक्त सभी विकास की धारणाएं एकतरफापन से चरित्रित है जबकि राष्ट्रीय दायरे में काम करते हुए आज वह वैश्विक युग के एकीकृत मानवीय समाज के अति जटिल ढांचे में कारगर नहीं रही है। तथापि सभी विकास मॉडलों में सबसे शक्तिशाली बाजारवादी मॉडल है जो आज मुख्य समस्या बना हुआ है।

(iii) आतंकवाद का सवाल

7. आतंकवाद के सम्बन्ध में, न तो यह विचारधारा है और न ही मॉडल है। यह अपने विरोधी को ताकत के जरिए कब्जे में करने की आतंककारी तकनीक है। यह किसी भी रूढ़िवाद, धार्मिक रूढ़िवाद सहित का कोई अन्तरनिहित चरित्र नहीं है। यह सामान्यतया तब उभरता है जब किसी रूढ़िवाद का विचारधारा की बजाए ताकत के जरिए मुँह बन्द किया जाता है।

(iv) विश्व विकास मॉडल का एक तर्कसंगत विकल्प

8. आज, ऊपर वर्णित विकास मॉडल का एक तर्कसंगत विकल्प यह है कि जो एक तरफ प्रकृति और मनुष्य के बीच और दूसरी तरफ सामाजिक व्यक्ति (या समूह) और सामूहिक समाज के मध्य संतुलित विकास की राह हमवार करता है। इस तरह का विकास विश्व शांति और स्थिरता, सभी प्रकार के राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, आर्थिक, राजनीतिक, नस्ली,

धार्मिक टकराहटों को बातचीत के जरिए हल करने, कानून का राज जो सभी स्तर पर लोकशक्तिकरण पर आधारित हो, एक टिकाऊ, समतावादी एवं उत्पादन वृद्धि वाला, एक मूल्य आधारित जीवन शैली, जो विभिन्न राष्ट्रों को एकीकृत मानव समुदाय बनाने की बुनियाद पर आधारित है।

(B) वाजपेयी सरकार का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

9. उसके विश्व परिप्रेक्ष्य की अनुपालना में वर्तमान वाजपेयी सरकार यह मानती है कि आम तौर पर भारतीय राष्ट्र को मुख्य खतरा वैश्विक आतंकवाद से है जबकि खासतौर पर यह खतरा पाकिस्तान राज्य द्वारा प्रायोजित आतंकवाद से है। स्पष्टतया, यह परिप्रेक्ष्य भारत के लोगों के बजाए सशस्त्र सुरक्षा को उच्चतम राष्ट्रीय प्राथमिकता के तौर पर आगे लाता है।

10. भारतीय सुरक्षा प्रबंध के 1947 के बाद के इतिहास पर नजर डालने से हम यह पाते हैं कि वाजपेयी सरकार की उक्त दिशा प्रत्येक भारतीय सरकार की मुख्य प्राथमिकता बनी रही है और प्रत्येक पारम्परिक राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टी की यह नीति राष्ट्रीय जीवन रेखा एवं 'पवित्र गाय' के समान रही है तथा बाकी सब मामले इसके अधीन रहे हैं। भारतीय संसद ने बिना सारभूत विचार-विमर्श के प्रत्येक सुरक्षा बजट को आम तौर पर पारित किया है, परिणामस्वरूप, इसके आकार में भारी वृद्धि हुई है, यानि 1950-51 में लगभग 168 करोड़ रुपये से बढ़कर (1999 के बजट के अनुसार) 55000 करोड़ रुपये हो चुकी है। यह सरपट दौड़ता हुआ सुरक्षा खर्च भारतीय आर्थिकता पर विदेशों से अधिकाधिक ऋण लेने (ताकि हथियारों के आयात से भुगतान संतुलन में जो कमी आई है उसे पूरा किया जा सके) और घरेलू तोर पर लोक-ऋण (बढ़ते हुए आन्तरिक खर्च, मुख्य तौर पर सशस्त्र बलों पर खर्च करने के लिए) लेने के लिए अधिक से अधिक ऋण समझौते करने का दबाव डाल रहा है। आज, भारतीय ऋण खतरनाक सीमा तक पहुँच चुका है। मात्र 1 वर्ष के ब्याज भुगतान की कीमत भारत के कुल वार्षिक राजस्व के 60 प्रतिशत को हजम कर जाती है, जबकि असल ऋण ज्यों का त्यों बकाया रहता है।

11. इस 'पवित्र गाय' की पूजा का परिणाम स्पष्टतया सामने है। जबकि प्रत्येक साल गुजरने के साथ भारतीय सुरक्षा का खर्च दिन-दुना रात-चौगुना बढ़ता गया है तथापि भारतीय आबादी की विस्तृत बहुसंख्या की स्थिति हर समय निम्नतर होती चली गई है और आज की दुनिया में सबसे अधिक भूखे, अधनंगे, बेघर, अनपढ़, रोगग्रस्त और परायेपन की भावना से ग्रस्त लोग भारत में हैं (विभिन्न वैश्विक एजेन्सियों, जिनमें संयुक्त राष्ट्र संघ और भारत भी शामिल है द्वारा जारी तथ्यों के अनुसार)

(i) भारतीय हकीकत और इसका वास्तविक परिप्रेक्ष्य

12. इस परिप्रेक्ष्य के उलट भारतीय वास्तविकता आज इंगित करती है कि भारतीय राष्ट्र को मुख्य खतरा इसके केन्द्रीकृत, गैर-जवाबदेह और अनुचित सामाजिक व्यवस्था और इसके बेईमान, सत्ता एवं पैसे के भूखे संचालकों (यानि पारम्परिक राष्ट्रीय पार्टियों और उनके उच्च राजनीतिज्ञों) से है। यह व्यवस्था राष्ट्र के जीवन के लिए सुरक्षा को ही सब कुछ करार देती है, निहित स्वार्थों के प्रभुत्व वाला सामाजिक ढांचा स्थापित करती है, विधायकों, बड़े उद्योगों, बड़े व्यापारियों, जजों, नौकरशाहों और धनवानों को विशेष

अधिकार और सुविधाएं प्रदान करती हैं; ईमानदार और सच्चे लोगों को दण्डित करती है, दोषियों को बचाती है और कानून के तोड़कों (माफिया) को बढ़ावा देती है। यह व्यवस्था आर्थिक विकास और वृद्धि के क्षेत्र में उत्पादन की उच्च लागत, मालों की घटिया गुणवत्ता, निम्न उत्पादकता और चेतावनी भरी अकुशलता से चरित्रित है, सांस्कृतिक तौर पर इसमें जनता को पैसे और सत्ता की तरफ प्रेरित किया है, पुराने पड़ चुके विश्वासों और रिवाजों को बढ़ावा दिया है, भाग्य में विश्वास, शक्तिशाली और धनवान से भय खाने, अन्याय को सहन करने, व्यक्ति पूजा को उत्पन्न किया है तथा कहना कुछ और करना कुछ के चालबाज तरीकों को विकसित किया है। यह व्यवस्था कूटनीति और सुरक्षा के क्षेत्र में पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्धों में बड़े भाई वाली राजनीति अपनाती है परन्तु यू एस ए, चीन, रूस जैसे सभी बड़े भाइयों के प्रति हमेशा रियायतें देने और समझौताकारी रुख लेती है। पाकिस्तान के साथ टकराव की राजनीति के चलते इसने अपने दो पड़ौसी देशों के साथ चार युद्ध (3 पाकिस्तान व 1 चीन के साथ) किए हैं। अन्दरूनी विवादों (जे.के., पंजाब और उत्तरी-पूर्वी राज्यों), में इसने बन्दूक की राजनीति को मजबूती से थामे रखा है जिससे मामले किसी सन्तुष्टीदायक हद तक हल नहीं हो सके।

13. भारतीय सामाजिक व्यवस्था का 50 साल से अधिक लम्बे व्यवहार और इसका संचालन तन्त्र आज बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है। इसका परिणाम मुख्यतया कानून का राज विकृत होने, राजनीति के अपराधीकरण, एक गैर-टिकाऊ, असमान और अकुशल आर्थिकता बनने, एक अति-उच्च सुरक्षा तन्त्र (बाह्य और अन्दरूनी दोनों) खड़ा करने, धन और सत्ता आधारित मूल्य व्यवस्था कायम होने, आम तौर पर पड़ोसियों और विशेषकर पाकिस्तान व चीन के साथ विवाद और तनाव बने रहने, मानवीय जीवन स्तर में गिरावट और इसके प्राकृतिक संसाधनों के बिगाड़ के रूप में निकला है। सबसे ऊपर इसने देशों में राजनीतिक अस्थिरता पैदा की है, जिसे यदि समय रहते नियंत्रित नहीं किया गया तो कदम-ब-कदम स्वयं देश अस्थिरता की तरफ जा सकता है।

(ii) भारत की गड़बड़ व्यवस्था के स्रोत

14. व्यवस्थागत कमी इसके बहुसंख्यक और अन्धराष्ट्रवाद में निहित है जो देश की दूसरे देशों के साथ बढ़ रही अन्तरनिर्भरता की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाती है।

(iii) एक उपयुक्त वैकल्पिक राष्ट्रीय व्यवस्था

15. आज, इस गैर-न्यायिक व्यवस्था का एक उपयुक्त विकल्प यही है कि केन्द्रीकृत भारतीय राज्य को एक संघीय/महासंघीय राज्य में तब्दील किया जाए, जिसमें लोगों और पर्यावरण को इसका केन्द्रीकृत प्रारम्भ बिन्दु स्वीकार किया जाए; लोगों को अधिक शक्तिशाली बनाने के आधार पर कानून के राज को मजबूती से पालन किया जाए, एक टिकाऊ, समतावादी और उत्पादकता के आधार पर आर्थिकता का निर्माण किया जाए, एक मूल्य आधारित जीवन पद्धति उभारी जाए, सभी विवादास्पद मसलों पर एक जनवादी आम सहमति पैदा करने की कोशिश की जाए, सभी आन्तरिक संघर्षों को बातचीत के जरिए हल किया जाए; अपने पड़ोसियों के साथ सभी मसलों को लेने ओर देने के उसूलों पर हल किया जाए और दूसरे सार्क सदस्यों के साथ सहयोग से दक्षिण एशिया में एक स्वतंत्र व्यापार आर्थिकता का क्षेत्र एवं एक क्षेत्रीय सुरक्षा तन्त्र संगठित किया जाए।

C. वाजपेयी सरकार का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

16. अपने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के अनुसार यह समझती है कि देश में चल रही निरन्तर राजनीतिक अस्थिरता त्रुटिपूर्ण चुनावी प्रक्रिया और संसदीय अविश्वास के प्रस्ताव की तकनीक से फूट रही है। हालांकि, यह सरकार लोकसभा के लिए 5 साल का समय निश्चित कर देने और साथ ही कुछ अन्य चुनावी सुधारों (रक्षा एवं सुरक्षा बलों को प्रतिनिधित्व प्रणाली से वोट देने के अधिकार सहित) का प्रस्ताव करती है और वर्तमान अविश्वास प्रस्ताव के तरीके की जगह विश्वास की रचनात्मक वोट की जर्मन प्रणाली लागू करने की राय देती है। निस्संदेह, समस्या के वास्तविक कारण से निपटने के बजाए कुछ प्रक्रियाओं में बदलाव की हेराफेरियों से भारत में राजनीतिक अस्थिरता को हटाने की चाहत एक अति सरल राजनीतिक चालाकी है।

(i) भारत में राजनीतिक अस्थिरता का आधार

17. अस्थिरता कहाँ से जन्म लेती है? निश्चित तौर पर यह लोगों के खण्डित चुनावी फैसले से उभरती है। लोग किसी भी एक पार्टी को, देश का प्रबन्ध संभालने योग्य नहीं समझते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि आजादी के 50 साल से अधिक समय बाद भी देश में अति कष्टदायक और वीभत्स स्थिति उभरी है जिससे लोगों की मानसिकता क्षुब्ध हो गई और इसका इजहार विभाजित मत आदेश से मिलता है।

18. संक्षिप्त वर्णन के अनुसार, भारत में आधे से अधिक (62 प्रतिशत) लोग गरीबी की श्रेणी में हैं, एक तिहाई से अधिक (यानि 40 प्रतिशत) भूखे सोते हैं, तीन-चौथाई (यानि 75 प्रतिशत) लोगों को समुचित शौचालय सुविधा उपलब्ध नहीं है, लगभग आधी (यानि 48 प्रतिशत) लोग पूर्ण निरक्षर हैं, एक-तिहाई (33 प्रतिशत) बेघर हैं, आधे से अधिक (यानि 53 प्रतिशत) बच्चों को बुनियादी शिक्षा का अवसर नहीं मिलता है और तीन-चौथाई (यानि 75 प्रतिशत) महिलाएं किसी न किसी रूप में दमन का शिकार होती हैं।

19. मानवीय जीवन की यह दयनीय हालात पर्यावरणीय संसाधनों (यानि वायु, पानी, भूमि, जंगल, जैव-विविधता इत्यादि) की गिरती दशा से जुड़कर और खराब हो रहे हैं। लोगों के स्वास्थ्य पर उल्टा प्रभाव डाल रहे हैं।

20. दिन-प्रतिदिन की जन समस्याएं–यानि पानी, सफाई, विद्युत, सड़कें, परिवहन, रेलवे, स्कूलों, हॉस्पिटलों, संचार और डाक सेवाओं इत्यादि एक अस्त-व्यस्त दृश्य प्रस्तुत करती है।

21. प्रदूषण, सफाई का कुप्रबन्ध, खाद्य पदार्थों में मिलावट, घटिया दवाइयाँ, अवैध शराब, नशीली दवाएँ इत्यादि सभी स्वस्थ जन जीवन को बर्बाद करने के साधन बन गए हैं।

22. सभी तरह की गैरकानूनी और अनैतिक बुराइयों, भ्रष्टाचार, काला-बाजारी, अपराधीकरण, धोखाधड़ी, छल-कपट, अराजकता, हिंसा इत्यादि ने जन-जीवन का गला घोंट रखा है।

23. यहाँ मुख्य राजनीतिक पार्टियों और उनके राजनीतिज्ञों के प्रयोजनों, आचरणों और कारगुजारियों के बारे में आम तौर पर मोह-भंग की स्थिति हावी है। लोग इनकी

धन-बल पर आधारित चालबाज राजनीति से असन्तुष्ट हो गए हैं। उन्होंने यह महसूस कर लिया है कि इन सभी किस्मों के कार्यक्रमों, प्राथमिकताओं, तरीकों और व्यावहारिक रिकार्ड में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है। स्पष्टतया, इन पार्टियों और उनके उच्च राजनीतिज्ञों की साख बेहद गिर चुकी है।

24. उपरोक्त वर्णित मामले के दुखदायी हालात ने भारतीय मतदाताओं को इन पार्टियों, राजनीतिज्ञों और चल रही व्यवस्था से अलगाव की स्थिति में धकेल दिया है। और लोगों का यह अलगाव पिछले 10 सालों से प्रत्येक प्रक्रिया में झलकता आ रहा है।

(ii) राजनीतिक अस्थिरता का इलाज

25. इसका उत्तर मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में निहित है, जन समस्याओं को हल किया जाए, सारी सामाजिक बुराइयों को हटाया जाए एवं मूल्य आधारित राजनीति को विकसित किया जाए और आखिरकार इस व्यवस्था को बदल दिया जाए।

26. इस प्रकार, निरन्तर चल रही राजनीतिक अस्थिरता, अनुपयुक्त सामाजिक व्यवस्था का फल है और जब तक इस व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों को बदल नहीं दिया जाता तब तक राजनीतिक अस्थिरता को समाप्त नहीं किया जा सकता। कानूनी बकवाद या प्रक्रियात्मक छेड़छाड़ से पहले से भंगूर जनवादी ढांचा और ज्यादा कमजोर होगा।

(D) वाजपेयी सरकार का आर्थिक कार्यक्रम

27. वाजपेयी सरकार के आर्थिक कार्यक्रम को खोलते हुए राष्ट्रपति अभिभाषण में कहा गया कि तेज आर्थिक वृद्धि को हासिल किया जायेगा, गरीबी पर गहरी चोट की जायेगी, प्रतिवर्ष 1 करोड़ धन्धे पैदा किये जायेंगे, सामाजिक क्षेत्र को प्रोत्साहित किया जाएगा और आखिरी छोर तक विकास के फल पहुँचाना सुनिश्चित किया जाएगा। परन्तु यह कैसे और किस रास्ते से किया जाएगा, इस पर चुप है।

28. तेज आर्थिक वृद्धि हासिल करने के सम्बन्ध में भारतीय आर्थिकता निर्देशन केन्द्र (CMIE) ने अपने सितम्बर 1999 के पुनरावलोकन में इस वर्ष के उत्तरार्द्ध में कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों में वृद्धि का दृश्य फीका आंका है। निर्यात में गिरावाट का रुख निरन्तर जारी है–1997-98 के 13.9 प्रतिशत से 1998-99 में 11 प्रतिशत रह गया है। इस वर्ष का आंकड़ा इससे भी कम होगा।

29. सदा की तरह, आर्थिक वृद्धि को सबसे बड़ी चुनौती वित्तीय क्षेत्र से उभर रही है जिसमें राजकर का क्षेत्र नियन्त्रण से बाहर होता जा रहा है। हालिया वित्तमंत्री ने कहा कि देश राजकर घाटे की गंभीर चुनौती का सामना कर रहा है। और देश उधार के साधनों पर जी रहा है तथा आन्तरिक ऋण जाल के किनारे पहुँच चुका है।

30. अर्थशास्त्रियों ने इंगित किया है कि वर्तमान वित्तीय वर्ष के दौरान सरकार को अपने ब्याज भुगतान के लिए 88,000 करोड़ रुपये का प्रबन्ध करना पड़ेगा, जबकि इस साल के अन्त तक बाजार का कुल उधार 1,00,000 करोड़ से पार कर जाएगा। इसमें आगे और अनुमान लगाया गया है कि अगर ब्याज बिल के साथ मूलधन के भुगतान को जोड़ दिया जाए तो वर्तमान वार्षिक कर की मात्रा का 135 प्रतिशत केवल ऋण सेवा अदायगी में

ही खर्च हो जाएगा। यह सूचित करता है कि केन्द्रीय घाटा आज सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 7 प्रतिशत है। राज्य भी खर्च के क्षेत्र में पीछे नहीं हैं। 1998-99 में 6 राज्यों का साझा राजकर घाटा 59,776 करोड़ रुपये पहुँच गया जो पिछले साल के घाटे से 17.50 प्रतिशत अधिक है। यह सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 3.70 प्रतिशत बनता है।

31. पिछले 52 सालों के दौरान कोई भी सरकार राजस्व घाटे पर नियंत्रण नहीं कर सकी है। परिणामस्वरूप, उत्तराधिकारी सरकारें अपने चल रहे खर्च, मुख्यतया सुरक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाजार से भारी उधार लेती रही है।

32. अर्थशास्त्रियों ने बताया कि 1980 के मध्य में उस वक्त के सरकारी राजस्व का आधे से अधिक सुरक्षा एवं ब्याज भुगतान के खर्च को पूरा करने में लग गया। उस समय के दौरान, सुरक्षा खर्च ब्याज भुगतान से अधिक था। धीरे-धीरे ब्याज भुगतान सुरक्षा खर्च से अधिक होना शुरू हुआ और आज ये दोनों चरम अवस्था पर पहुँच गये हैं और अभी भी सरकार कारगिल संकट के दौरान किए गए वादे के अनुसार सुरक्षा का पूर्ण आधुनिकीकरण करने का काम हाथ में लेने जा रही है। इसके लिए वर्तमान वर्ष के बजट में 55,000 करोड़ के प्रावधान से अलग 10,000 करोड़ कुल मूल्य के बराबर अनुमानित राशि की आवश्यकता है।

33. पिछली आधी शताब्दी से अधिक समय की रोशनी में साफ है कि जब तक निरन्तर सुरक्षा उच्चतम राष्ट्रीय प्राथमिकता बनी रहेगी तब तक यह सरकार की क्षमता से परे रहेगा कि वह अपने राजकोष घाटे का समुचित प्रबन्धन कर पाये। यह सब कुछ जो कर सकती है वह है कि सार्वजनिक क्षेत्र को बेचकर अपनी ऋण अदायगियों को पूरा करने में उपयोग करे। यह इसको कुछ समय के लिए प्राणदान देगा और उसके बाद वही ढर्रा निरन्तर चलेगा और इसे एक अधिक गहरे राजकोषीय संकट की तरफ ले जाएगा।

34. जब तक केन्द्र और राज्य सरकारें अपना राजकोषीय स्वास्थ्य ठीक नहीं करती हैं तब तक कोई नया निवेश, खासकरके आर्थिक ऊपरी ढाँचे और सामाजिक क्षेत्र में करने लायक स्थिति में नहीं होगी, ना ही सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक आर्थिकता को बाह्य आर्थिक दबावों से रक्षा करने योग्य होंगे।

35. अत्यधिक खर्च के लिए जिम्मेवार अन्य पहलू हैं, उच्च स्तर पर भारी प्रशासनिक खर्च और बढ़ रही सब्सिडी (मुख्यतया खाते-पीते समूहों के लिए) है। और इन खर्चों में कमी की बहुत कम संभावना है, सिवाय इसके कि निकट भविष्य में कुछ दिखावटी बदलाव किए जाएं।

36. वित्तीय क्षेत्र पर और अधिक दबाव बढ़ने जा रहा है क्योंकि कृषि क्षेत्र और निर्यात मोर्चे पर निम्न कारगुजारी की संभावनाएं मौजूद हैं।

37. वृद्धि को आगे बढ़ाने के लिए दूसरा कदम ऊपरी ढाँचे के निर्माण का है। इसके लिए अगले 15 सालों में लगभग 130 बिलियन डालर से अधिक निवेश की आवश्यकता होगी। परन्तु सरकार पहले से ही नकद राशि में भूखी है और निजी क्षेत्र इसमें निवेश करने से दूर भागते हैं क्योंकि इसमें मुनाफा कम है।

38. आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया और भी अच्छी हो सकती है अगर देश विश्व व्यापार के अपने हिस्से में बढ़ोतरी करे तथा अधिक विदेशी निवेश को आकर्षित करे। परन्तु

निर्यात निरन्तर गिर रहा है। जहाँ तक विदेशी निवेश का सवाल है उसके लिए देश में आधारभूत सुविधाओं, सेवाओं और औजारों की कमी है। यही कारण है कि वार्षिक विदेशी पूँजी बहाव की कुछ बूँदें ही हमें हासिल होती हैं।

39. जहाँ तक अतिरिक्त संसाधन जुटाने का सवाल है सरकार इस मामले में कोई भी नया प्रस्ताव लेकर सामने नहीं आ रही है।

40. भारतीय आर्थिकता की 52 वर्ष से चली आ रही विकास प्रक्रिया ने गरीबी और बेरोजगारी पर बहुत कम असर डाला है। गरीबी की समस्या कमोबेश उसी स्तर पर खड़ी है जबकि बेरोजगारी की समस्या और अधिक खराब हुई है। 1991 से 1999 के बीच सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में कुल अतिरिक्त रोजगार 19 लाख से अधिक नहीं बढ़ सके हैं, यानि प्रतिवर्ष 2 लाख से कुछ अधिक, जबकि 1998 तक ही इसी दौरान बारहवीं तक के संसाधनों से निकले नौजवानों की संख्या वृद्धि भी 60 लाख से अधिक हुई है।

41. भारतीय आर्थिकता वित्तीय घाटों और पूंजी की कमी से तब तक छुटकारा नहीं पा सकती है जब तक भारत महाशक्ति बनने के सस्ते तरीके के तौर पर सैन्यकरण की नीति को जारी रखता है तथा इसी नीति के तहत सुरक्षा को उच्चतम प्राथमिकता देते हुए सभी आर्थिक और सामाजिक प्राथमिकताओं (जैसे कि गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, वित्तीय घाटे और इसी तरह) को पीछे धकेलता है।

(E) वाजपेयी सरकार का भ्रष्टाचार विरोधी कार्यक्रम

42. भ्रष्टाचार के सवाल पर, वाजपेयी सरकार सार्वजनिक जीवन में सत्यता को सुनिश्चित करके इसको हल करना चाहती है। इस उद्देश्य के लिए लोकसभा में पहले से लाये गये लोक-पाल बिल, जिसकी सीमा में प्रधानमंत्री का आफिस भी आता है, को लाने की घोषणा करता है। आगे, सरकार जल्दी ही केन्द्रीय निगरानी आयोग बिल भी लायेगी ताकि केन्द्रीय निगरानी आयोग को कानूनी दर्जा प्रदान करके क्रियात्मक बनाया जा सके।

43. फिर भी, अनुभव दर्शाता है कि भ्रष्टाचार पर कानूनी रुकावट केवल तभी प्रभावी होती है जब उसको लागू करने का शुरूआती आधार लोगों की जागृति और भागीदारी को बनाया जाए। भ्रष्टाचार का नासूर जो राष्ट्र की जीवन्तता को खाए जा रहा है, इसको समाप्त करना कोई साधारण काम नहीं है और खास करके भारत में यह अत्यधिक मुश्किल है।

44. ट्रांसपेरेन्सी इन्टरनेशनल की 1999 की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में सबसे अधिक भ्रष्ट 99 देशों में भारत का 73वां स्थान है। केन्द्रीय निगरानी आयोग ने अपनी 1997 के लिए वार्षिक रिपोर्ट (जिसे अप्रेल 1999 में प्रसारित की गई) में स्वीकार किया कि लोक-प्रशासन में चौतरफा भ्रष्टाचार फैला हुआ है और विचार प्रकट किया है कि ''सरकारी कर्मचारियों की लोक सेवा सत्यनिष्ठा के गुण में भारी गिरावट आई है।'' इसके आविर्भाव से अब तक निगरानी (विजिलेंस) केसों की संख्या में निरन्तर बढोतरी होती गई है। निरपेक्ष आंकड़ों की भाषा में 1964-65 के दौरान 363 केस दर्ज किए गये और 1997 में 5700 ऐसे केस दर्ज किये गए जो कि 16 गुना वृद्धि दिखाते हैं। आयोग के मुख्य निगरानी

अधिकारियों की 1997 में हुए वार्षिक सम्मेलन में 15 सूत्री कार्यक्रम को तैयार किया गया। इसने ऐसे पर्यावरण निर्माण की वकालात की है जहाँ हमारी जनसंख्या के गरीब और वंचित तबके अपने आपको सबल समझने लगे और अपने अधिकारों के लिए उठ खड़े हो सके और सरकारी सेवाओं, खुली व्यवस्था का लाभ पाने और पारदर्शी प्रक्रियाओं का कुशलता से प्रबन्ध करने की माँग उठा सके।

45. इस प्रकार, सभी विद्यमान प्रमाण दर्शाते हैं कि भ्रष्टाचार इस देश में जीवन का एक तरीका बन चुका है और इस सामाजिक बुराई पर रोक लगाने के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को गोलबन्द व सक्रिय करने की आवश्यकता है (यानि भ्रष्टाचार के खिलाफ कानूनी प्रक्रिया और राजनीतिक संघर्ष में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना और संवेदनशीलता जगाना आवश्यक है।)

(F) वाजपेयी सरकार का सामाजिक कार्यक्रम (एजेण्डा)

46. राष्ट्रपति के अभिभाषण में देश में सामाजिक जीवन के सार में सुधार करने की कई स्कीमों का खाका खींचा गया।

47. इसने लोगों और विशेषकर नीचे तबके को आधारभूत सुविधाएं प्रदान करने के वादे किए हैं। इसके लिए उपेक्षित ग्रामीण इलाकों को नई आवासीय, पीने के पानी, स्कूलों, स्वास्थ्य केन्द्रों और रोजगार इत्यादि की सुविधाएं प्रदान करके इन्हें रहने लायक स्थान में तब्दील करने का वादा किया है। परन्तु इसका कोई मानचित्र तैयार नहीं किया है। सरकार में इसके लिए कोई फण्ड नहीं है और वर्तमान वार्षिक बजट में ऐसी स्कीमों के लिए कोई प्रावधान भी नहीं है।

48. इसने जाहिर किया है कि सरकार मजदूर के हितों को बढ़ावा देने के प्रति वचनबद्ध है। परन्तु इसके लिए यह इंगित नहीं करती कि यह कैसे होगा। इसकी राय में यह कार्य द्वितीय श्रम आयोग को सौंपा गया है जिसको विभिन्न श्रम कानूनों में तब्दीली करने के प्रस्तावों को शामिल करने के अधिकार भी दिये गये हैं।

49.यह अल्पसंख्यकों के हितों और अधिकारों की रक्षा का जिम्मा लेती है और पिछले दशक में साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं का सबसे कम होने का श्रेय लेती है। परन्तु यह इस तथ्य से आँख मूंदती है कि आज अल्पसंख्यक पहले से कहीं अधिक असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। जब तक असुरक्षा का वातावरण समाप्त नहीं कर दिया जाता और सुरक्षा का भाव विकसित नहीं किया जाता तब तक दंगा मुक्त भारत (जिसका आधार संयोग नहीं बल्कि सचेतन लोक मानसिकता होगी) नहीं उभर सकता।

50. यह गरीबी की व्याधि और बेरोजगारी पर काबू पाने और आर्थिक व सामाजिक बदलावों का परिचायक बनकर अपनी अलग पहचान बनाने का प्रण करती है। परन्तु वास्तविक व्यवहार में यह शीत युद्ध के एजेण्डे, परमाणु हथियार बनाने और सैनिकीकरण को अख्तियार करती है जिनमें देश के सभी वित्तीय संसाधनों को निचोड़ लिया जाता है।

51. इसके द्वारा दो बड़बोले कदमों की घोषणा की गई है, जिसके अनुसार यह दो बिल संसद में लायेगी। इनमें से एक है संसद और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का कानून बनाना और दूसरा कुछ क्षेत्रों को राज्य का दर्जा देना।

जाति आधारित आरक्षण

52. जाति आधारित आरक्षण के फार्मूले को थाम कर इसने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के आरक्षण को अगले 10 वर्षों के लिए बढ़ा देने और कुछ राज्यों की तरह आरक्षण को 50 प्रतिशत से अधिक करने को संवैधानिक मान्यता दिलाने की घोषणा की है। जाति आधारित आरक्षण के व्यवसाय में भाजपा के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनवादी गठजोड़ नया आगन्तुक है जो इन कदमों को एक महत्वपूर्ण कार्य के रूप में पेश कर रहा है। परन्तु, वास्तव में यह केवल वोट-बैंक राजनीति है जिसका इन सामाजिक समूहों के कल्याण से कोई लेना-देना नहीं है।

53. यहाँ तीन बिन्दु ध्यान देने लायक हैं–

(a) क्या आरक्षण जरूरी है, (b) क्या इसने पिछले 50 साल से अधिक अनुभव की रोशनी में अपना उद्देश्य हासिल किया है और (c) अगर इसने आवश्यक फल नहीं प्रदान किये तो इसका विकल्प क्या है और अगर इसका कार्य पूर्ण हो चुका है, तब इसे निरन्तर जारी क्यों रखा जा रहा है?

54. जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि एक दमनकारी और असमान व्यवस्था के तहत कमजोर और वंचित तबके के पक्ष में कुछ सकारात्मक कदम उठाना आवश्यक होता है। इन अर्थों में, आरक्षण का मानदण्ड एक सकारात्मक पैमाने का द्योतक है। चूंकि अभी तक गरीबी और वंचित लोगों की दृष्टि से भारतीय समाज में कोई आधारभूत बदलाव नहीं आया है अत: आरक्षण की अभी तक जरूरत है।

55. जहाँ तक दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध है, इसका 50 वर्ष का अनुभव दर्शाता है कि इसने वांछित परिणाम हासिल नहीं किया है। इसी पुस्तक के पेज 206 में एक अध्ययन छापा गया है जो दर्शाता है कि इसने केवल नाममात्र लोगों की सहायता की है। पहले से ही बहुत से सरकारी सर्वे सूचित कर चुके हैं कि मुश्किल से अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के 20 प्रतिशत लोगों को इसका फायदा मिला है। कुल मिलाकर, इसने या तो इस जाति में पहले से चले आ रहे धनवानों को या कुछ और अमीर तबका अपने दायरे में पैदा किया है। अभी तक करीब 80 प्रतिशत अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोग वंचित तबके की श्रेणी में ही हैं।

56. क्या कारण है कि आरक्षण नीति अपना लक्ष्य हासिल करने में नाकामयाब रही है? नाकामयाबी का कारण इसके गलत दृष्टिकोण में निहित है जिसमें पिछड़ेपन का आधार जाति को बनाया गया है। वर्तमान समय में लोगों के सामाजिक आर्थिक दर्जे को तय करने का पैमाना जाति नहीं रहा है। क्योंकि आज प्रत्येक वर्ग बाजार और माल के विनिमय के संचालन के कारण एक तरफ अमीर और विकसित और दूसरी तरफ गरीब और पिछड़ों के रूप में चरित्रित होता है। यह सम्भव है कि आजकल के धनवान और विकसित लोगों का 80 प्रतिशत भाग उच्च जातियों से है और केवल 20 प्रतिशत या उससे कम ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति तथा दूसरी पिछड़ी जातियों से है। आवश्यक तौर पर, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़ी जातियों के

बहुत थोड़े धनवान और विकसित तथा मध्यम दर्जे के लोगों ने आरक्षण नीति का अपनी स्थिति और मजबूत करने में उपयोग किया है। और यही सब कुछ हुआ है और कुछ नहीं।

57. सम्पूर्ण पिछला अनुभव और वर्तमान तथ्य सिद्ध करते हैं कि आरक्षण के जाति आधार की जगह गरीबी रेखा के नीचे के मानदण्ड को कसौटी पर रखा जाना चाहिए। और आगे जब किसी परिवार की स्थिति गरीबी की रेखा से ऊपर उठ जाए तो उस परिवार को गरीबी की रेखा के नीचे वाली सूची से हटा दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, आरक्षण की समस्या को 20 वर्षों के अन्दर-अन्दर समाप्त किया जा सकता है। आरक्षण नीति को एक त्रिपक्षीय विकास प्रक्रिया द्वारा लागू किया जाना चाहिए। प्रथमतया, इस नीति के तहत किसी उत्पादन कार्य के बदले जीवन के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए। द्वितीयत:, सम्बन्धित परिवारों के कार्य करने वाले सदस्यों को व्यावसायिक कौशल से लैस किया जाना चाहिए; और तृतीयत:, इसके तहत जनवादी संस्थानों में इन्हें आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

(G) वाजपेयी सरकार के प्रथम कुछ कार्य

58. प्रथम 15 दिनों के दौरान वाजपेयी सरकार ने अपने घोषित उद्देश्यों के सन्दर्भ में कैसा व्यवहार किया है? चुनावों के अन्तिम दौर के बाद दूसरे ही दिन वाजपेयी सरकार ने डीजल के मूल्यों में बढ़ोतरी कर दी, ट्रक मालिक हड़ताल में चले गए, मालों की कमी हुई और महँगाई बढ़ गई। अपने पद की सौगन्ध खाते ही स्वयं वाजपेयी ने सरकार की कार्य प्रणाली में तप का पालन करने की अपनी ही घोषणा की अवहेलना करते हुए 70 सदस्यों का विशाल मंत्रालय थोप कर जनता पर करोड़ों रुपये का अधिक बोझा लाद दिया।

आगे, इस सरकार ने कुछ नई जातियों को आरक्षण देकर जाति तुरूप खेला है।

उसके बाद, वाजपेयी के मानव संसाधन मंत्री, मुरली मनोहर जोशी ने आई.सी.एच.आर. (I.C.H.R.) और आई.सी.एस.एस.आर. (I.C.S.S.R.) जैसे दो शैक्षणिक संस्थानों में भाजपा के दिग्गजों को प्रमुख पद (हैड) सौंपकर अपने आपको सुशोभित किया है।

और आगे, संघ परिवार ने पोप और क्रिश्चियनों के प्रति निन्दापूर्ण भाषणों का सिलसिला शुरू कर दिया।

और अधिक, चुनावों के बाद दिल्ली में बिजली संकट गहरा गया। और डी.टी.सी. का किराया बढ़ा दिया।

उसके और आगे, हथियारों के आधुनिकीकरण में लगभग 8000 करोड़ रुपये की जरूरत पूरी करने के लिए सरकार ने रक्षा खर्च में बढ़ोतरी का निर्णय लिया है। रक्षा मंत्री ने यह भी घोषणा की है कि सरकार मिसाइलों का निर्यात करने पर सोच रही है।

59. स्पष्टतया, सरकार की कथनी और करनी में बहुत बड़ी खाई है।

29-11-99

***

वर्तमान ट्रेड यूनियनवाद पर कुछ और अधिक* मुख्य मुद्दा-श्रम की अधीनता को समाप्त करना एवं श्रम-पूँजी की साझेदारी स्थापित करना

I

ट्रेड यूनियन आन्दोलन का उद्‌गम

1. ट्रेड यूनियनवाद ट्रेड यूनियन आन्दोलन की आम दिशा का द्योतक है। सामान्य तौर पर ट्रेड यूनियन शब्द के मायने अपने अधिकार की रक्षा के लिए बने किसी व्यवसाय के सदस्यों के संगठन से है। 'मजदूरों के अधिकारों' से सामान्यतया निहितार्थ उन अधिकारों से है जो वे कानूनी, नैतिक या परम्परा और अन्य कारण के तौर पर पाने के अधिकारी हैं।

2. ट्रेड यूनियन आन्दोलन का उद्‌गम अभी हाल ही का है। इसकी उत्पत्ति अचानक नहीं हुई है, बल्कि पश्चिमी यूरोप में, खासतौर पर इंग्लैण्ड में, 19 वीं शताब्दी के प्रथम चातुर्थांश में औद्योगिक मजदूरों में उस समय उभरा जब मजदूरों ने बेहतर जिन्दगी व बेहतर काम की स्थिति के लिए संघर्ष किया तो उस परिस्थिति ने मजदूरों का कोई संगठन बनाने की सामाजिक आवश्यकता को जन्म दिया।

3. मजदूर वर्ग स्वयं औद्योगिक तकनीकी, उसकी कार्य संस्कृति तथा सांगठनिक उसूलों के उत्थान की उपज है। यह नया औद्योगिक तंत्र (उस समय का भाप आधारित मशीनी तकनीकी वाला तंत्र, उसका एक ही स्थान पर बहुआयामी कार्य स्वरूप तथा संगठन जो कार्य प्रक्रिया में अन्तरसंबंधित कार्यों को करने वाले मजदूरों से गठित था) माँग करने लगा था कि नये श्रम संबंधों (या औद्योगिक संबंधों) को मजदूरों और उद्योगपतियों के मध्य निर्धारित किया जाए। क्योंकि पुराने किस्म के जमींदार और अर्द्धदास के अधीनस्थता वाले कृषि श्रम संबंध (जो पशु-चालित हल तकनीक पर आधारित था, विशाल एवं भिन्न भागों की जमीन पर खेती कार्य फैला हुआ था तथा एक व्यक्ति का संगठन जमीन से जुड़ा हुआ था) नई औद्योगिक तकनीक की जरूरतों को पूरा नहीं करते थे। नतीजतन, पुराने श्रम संबंधों (जहाँ अर्द्ध कृषि-दास जमीन से बंधा हुआ था तथा अन्ततः जमींदार से बंधा हुआ था) की जगह नये श्रम संबंधों ने ले ली। ये नये श्रम संबंध फैक्ट्री मालिक और मजदूर के बीच मजदूरी से जुड़े संबंध पर आधारित थे जहाँ मजदूर कहीं भी जाने और स्वीकृत मजदूरी पर काम करने के लिए स्वतंत्र हो गया।

---

*पत्रिका नं. 64 (ए) जनवरी-मार्च, 1993 में इस लेख का पहला भाग आया हुआ है।

II

ट्रेड यूनियन आन्दोलन का ऐतिहासिक विकास

4. ट्रेड यूनियन आन्दोलन के आरम्भ से ही खासतौर पर मजदूरों और आमतौर पर मेहनतकश लोगों की जिन्दगी में उसने सकारात्मक भूमिका निभाई है। इसके विभिन्न नस्ल, धार्मिक समुदायों, संस्कृति और क्षेत्रीय समूहों आदि के मजदूरों को एक यूनियन में एकताबद्ध कर उनके मानवीय नजरिए को विस्तार देने में योगदान दिया है। इसने मेहनतकश लोगों को, विशेष तौर पर मजदूरों और कर्मचारियों तथा असंगठित मजदूरों के बहुत से अधिकारों को प्राप्त करने में भारी मदद की है। इन अधिकारों में शामिल हैं, एक यूनियन में मजदूरों के एकताबद्ध होने का अधिकार, हड़ताल करने और सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार, मजदूरी और वेतन में बढ़ोत्तरी, काम के घण्टों में कमी, बाल श्रमिकों तथा नाबालिगों के श्रम पर पांबदी, मेहनतकश महिलाओं के लिए मातृत्व अवकाश, मकान की सुविधा, बीमारी सुविधा, शिशु देखभाल केन्द्र, फैक्ट्री केण्टीन, शुद्ध हवा की व्यवस्था, सुरक्षा-प्रबन्ध, बीमा लाभ, मनोरंजन केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, श्रम कल्याण योजनाएं आदि मामलों में मेहनतकश लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की है।

5. 150 वर्ष पहले ट्रेड यूनियनों को वैधानिक संस्थाओं के रूप में मान्यता नहीं मिली थी क्योकि फैक्ट्री मालिक ट्रेड यूनियनों के गठन का विरोध करते थे। शुरूआत में मजदूरों को ट्रेड यूनियन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा तथा उसमें भारी कुर्बानी देने पड़ी और आज ट्रेड यूनियनें न केवल कानूनी मान्यता लिए हुए है बल्कि विकास प्रकिया में एक प्रबल शक्ति के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। इसी बीच ट्रेड यूनियनवाद सभी ट्रेड और धन्धों- जिसमें फैक्ट्री तथा ऑफिस जाने वाले लोग, किसान, मध्यम वर्ग, व्यापारी इत्यादि शामिल हैं- की आम कार्य प्रणाली और संगठित करने वाली इकाई बन चुकी है। इस प्रकार समाज में ट्रेड यूनियन का स्थान और भूमिका और अधिक बढ़ गई।

6. बहुत-सी उपलब्धियों के बावजूद ट्रेड यूनियन आन्दोलन भी कुछ कमजोरियों से ग्रसित है, जो निम्न हैं-

प्रथमतया, ट्रेड यूनियनें मुख्यता गैर-श्रमिक संगठनकर्त्ताओं (जो आम तौर पर राजनीतिक पार्टिया से आते हैं) के नेतृत्व और नियंत्रण में है जो उनकी यूनियन के लिए काम करते हुए अपनी पार्टी द्वारा चलाये जा रहे ट्रेड यूनियन केन्द्र से उसे सम्बद्ध करे देते हैं। ये विभिन्न केन्द्र मजदूरों को भिन्न-भिन्न राजनीतिक खण्डों में विभाजित रखते हैं और उनको अपना वोट बैंक समझते हैं। यह अन्तर यूनियन टकराव को बनाये रखता है और आपस में व्यवहार के अस्वस्थ मानदण्डों को पैदा करता है, जैसे शारीरिक झगड़े, असामयिक श्रमिक माँगे, विरोधी यूनियन के नेतृत्व वाले संघर्षों को बिखेरना इत्यादि।

द्वितीयतः पार्टी नेतृत्व वाला ट्रेड यूनियनवाद आम तौर पर श्रमिकों की सामाजिक चेतना और उनका कानून व ट्रेड यूनियन ज्ञान ऊँचा उठाने के अधिक महत्वपूर्ण काम को करने के बजाय अपने सदस्यों की व्यक्तिगत समस्याओं पर अधिक ध्यान देता है। इसका परिणाम यह है कि श्रमिक निरन्तर चेतना के अभाव में यूनियन का नेतृत्व करने की कला से वंचित है और बाहरी ट्रेड यूनियन नेता पर निर्भर है।

तृतीयत: पार्टी नेतृत्व वाला ट्रेड यूनियनवाद निरन्तर ट्रेड यूनियन आन्दोलन में कई एक तरफा अवधारणाओं को प्रचारित करके गलत दिशा देता है, यानि वामपंथी सिद्धान्त मजदूर वर्ग को वर्तमान युग में मानव जाति का एकमात्र उद्धारकर्त्ता बताता है (बजाय इसके कि जनता और उनके वास्तविक नेता विद्यमान सामाजिक वास्तविकताओं से मेल खाते हुए कार्यक्रम को पेश करके मानव जाति के विकास को आगे बढ़ाता हैं) श्रम और पूँजी को एक-दूसरे की विरोधी ताकतों के रूप में बताना (बजाय इसके कि दोनों के साझे हित अधिक है अन्तरविरोधी हित कम है) प्रबन्धमण्डल को हमेशा श्रमिक विरोधी के रूप में चित्रित करना (बजाय इसके कि उसे पूँजी के हितों को आगे बढ़ाने के लिए एकतरफा जोर देने वाला और श्रमिक के हितों की अवहेलना करके आखिरकार पूँजी के हितों को नुकसान पहुँचाना वाला साबित किया जाए); इत्यादि। मजदूर अपनी मांगों पर ही ध्यान देते हैं तथा अपनी औद्योगिक इकाई की उत्पादकता पर नहीं (बजाए इसके उसका संबंध दोनों से है)। दहाड़ेबाजों को बहादुर नेता बनाना (बजाए उसको अतर्कसंगत व्यक्ति बताना)। उसके उलट दक्षिणपंथी पार्टी नेतृत्व वाला ट्रेड यूनियनवाद मजदूरों के संकीर्ण, साम्प्रदायिक, नस्ली और धार्मिक आधार पर संगठित करता है और ट्रेड यूनियन को प्रबन्धमंडल का आज्ञाधीन बनाकर ट्रेड यूनियन आन्दोलन को गलत दिशा देता है।

7. शायद, उपरोक्त किस्म का ट्रेड यूनियनवाद पूँजी के राष्ट्रीय दौर में काफी हद तक प्रासंगिक रहा, परन्तु सार्वभौमिक (वैश्विक) पूँजी के युग में इसकी उपयोगिता समाप्त हो गई और ट्रेड यूनियन आन्दोलन की वृद्धि तथा आर्थिक प्रक्रिया के विकास, दोनों के लिए ही गैर-उत्पादक बन गया। परम्परागत ट्रेड यूनियन लाइन की अप्रासंगिकता बढ़ रही है, चाहे वह वामपंथी किस्म हो या दक्षिणपंथी किस्म हो। यह बात शीत युद्ध के बाद के समय में प्रत्येक देश के साथ-साथ दुनियाभर में निरन्तर कमजोर हो रहे ट्रेड यूनियन आन्दोलन से स्पष्ट होती है।

III

नये युग में ट्रेड यूनियन आन्दोलन का दो तरफा कार्य

8. नये उभरे वैश्विक युग में ट्रेड यूनियन आन्दोलन के सामने दो-तरफा आम कार्य हैं, यानि एक तरफ विद्यमान सामाजिक वास्तविकता को समझना और दूसरी तरफ ट्रेड यूनियन लाइन को परम्परागत अवधारणाओं, संचालन के तरीकों और संगठन के मानदण्डों की पुनरसंरचना करके इसे नई सामाजिक वास्तविकता के अनुरूप आधुनिक बनाना।

(अ) विद्यमान सामाजिक वास्तविकता का मामला

9. विद्यमान सामाजिक वास्तविकता के मसले पर नजर डाले तों आज की मानवीय दुनिया मुख्यता राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता द्वारा चरित्रित है। यह राष्ट्रीय अन्तरनिर्भरता, नये वैज्ञानिक तकनीकी बदलावों (यानि, अन्तरिक्ष, ऊर्जा, जैव, पदार्थ और सूचना तकनीकी में बदलावों) का परिणाम है। इन बदलावों के प्रभाव स्वरूप मानवीय संचार-व्यवस्था प्रकाश की गति से तथा मानवीय व्यक्तिगत मेलजोल और पदार्थों का आदान-प्रदान ध्वनि से भी तेज होने लगा है।

10. मानवीय बौद्धिक एवम् सम्पर्क सम्बन्धों में अति तीव्र गति से परिवर्तन के फलस्वरूप देशों के अन्तरनिर्भर बन जाने से एक वैश्विक सोच, कार्य प्रणाली एवम् सांगठनिक पद्धति उभर कर सामने आई है। परन्तु यह नई उभरी वैश्विक पद्धति सभी किस्म के पुराने राष्ट्रीय मॉडलों (साम्यवादी, उदारवादी, धार्मिक इत्यादि) की वजह से बाधित हो रही है। जबकि नई पद्धति की मांग है कि नई विकास रणनीति (जिसका दो तरफ उद्देश्य यह है कि एक तरफ उच्चतम प्राथमिकता लोगों को दी जाए और दूसरी तरफ पर्यावरण को) लागू की जाए। पुराने राष्ट्रीय मॉडल यद्यपि अपनी विकास रणनीति को लागू करने और संगठित करने में कुछ बदलाव कर रहे हैं, परन्तु लगातार अपने पारस्परिक उद्देश्यों (यानि, सत्ता और धन के स्वामियों के हितों को लोगों और पर्यावरण की कीमत पर तरजीह देना) से चिपके हुए हैं। खास तौर पर उपरोक्त दो तरफा उद्देश्यों क सेवा करने के लिए नई विकास रणनीति को पाँच उसूलों की पूर्ति पर ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है। ये पाँच उसूल हैं–लोकतंत्र (यानि लोकशक्ति निर्माण), सामाजिक शान्ति (जो जनता और पर्यावरण दोनों के हितपूर्ण करती है), टिकाऊपन (जो पर्यावरण संरक्षण करता है), समता या सामाजिक न्याय (जो कमजोर वर्ग के हितों को सुरक्षित करता है), तथा उत्पादकता (जो पिछले चार सिद्धान्तों के साथ सम्पूर्ण समाज के लिए लाभदायक होता है जबकि यह अकेला सिद्धान्त मुख्यतौर पर सत्ता और धन के स्वामियों के पक्ष में जाता है।) संक्षेप में वैश्विक विकास की रणनीति दो तरफा उद्देश्यों की सेवा करती है जिसमें एक तरफ मानवीय संसाधनों का विकास होता है और दूसरी तरफ भौतिक संसाधनों की उन्नति होती है।

(ब) ट्रेड यूनियन की आम दिशा को आधुनिक बनाने का सवाल

11. ट्रेड यूनियन दिशा को आधुनिक बनाने के लिए निम्न मुद्दों पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है-

12. धारणात्मक उसूलों के संबंध में दो बिन्दु, यानि ट्रेड यूनियन आन्दोलन का उद्देश्य एवं उसके मुख्य कार्य को पुनरपरिभाषित करने की आवश्यकता है।

(i) ट्रेड यूनियन के आम उद्देश्य के संबंध में वैश्विक विकास की रणनीति के अलावा और कोई उद्देश्य नहीं हो सकता (जिसका उल्लेख पैरा 10 में किया गया है)। विशेष तौर पर इसके मायने हैं कि विकास परियोजनाओं के प्रबंध में कम से कम मजदूरों की एक-तिहाई भागीदारी सुनिश्चित की जाए। (यह लोकतांत्रिक सिद्धान्त को लागू करने के बारे में हैं), न्यायिक आधार पर आन्तरिक और बाह्य तनावों या टकराहटों को संतुलित करना या कम करना तथा असमानता एवम् वंचितपन को दूर करना (यह सामाजिक शान्ति के सिद्धान्त के संबंध में है), सभी भौतिक संसाधनों की उन्नति पर जोर देना (यह टिकाऊपन के संबंध में है), आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी की माँग (यह समता के संबंध में है) तथा उद्यम की अधिकतम दक्षता, उत्पादकता एवं उत्पाद की गुणवत्ता को बढ़ाने की जिम्मेदारी उठाना (यह उत्पादकता के पाँचवे सिद्धान्त के बारे में है)। मानवीय एवम् भौतिक दोनों पहलुओं के समान महत्वपूर्ण होने पर जोर देने से पूँजी की तर्कसंगत एवम वास्तविक परिभाषा सामने आती है। पूँजी के बारे में मार्क्सवादी अर्थशास्त्रियों ने अतिरिक्त

श्रम या अतिरिक्त मूल्य की एकतरफा व्याख्या की है तथा उदारवादी अर्थशास्त्रियों ने इसकी व्याख्या उत्पादन के साधनों के रूप में की है। सामाजिक विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया दर्शाती है कि पूँजी का मानवीय एवम् भौतिक पहलू मानवीय समाज की शुरुआत से अस्तित्व में हैं।

(ii) इसके मुख्य कार्य के तौर पर ट्रेड यूनियन उद्देश्य यह आवश्यक बना देता है कि एक-दूसरे से जुड़ी हुई तीन तरफा गतिविधियाँ की जाएं, यानि (क) मजदूरों की सामाजिक चेतना को उनकी राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी (श्रम कानूनों से सम्बन्धित) एवं सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाकर बढ़ाया जाए, (ख) लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली को ट्रेड यूनियनों में अपनाने का प्रयास करना तथा (ग) तात्कालिक और दीर्घकालिक माँगों के आधार पर मजदूरों को एकबद्ध करना, जिससे एक परियोजना में एक यूनियन का मानदण्ड मजबूत होता हो।

13. कार्यप्रणाली के मानदण्डों के बारे में उपरोक्त तीन मुख्य कार्यों को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि एक नई कार्य संस्कृति को निम्न मानदण्डों के आधार पर अपनाया जाए।

(i) मजदूरों की सामाजिक चेतना को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि वैश्विक सामाजिक वास्तविकता तथा इसकी मांगे, ट्रेड यूनियन उद्देश्य एवं कार्य, ट्रेड यूनियन कार्य संस्कृति, इसके सांगठनिक मानदण्ड तथा सभी मौजूदा श्रम कानूनों का संक्षिप्त सार वैश्वीकरण-विरोधी सभी धारणाओं (जैसे उग्र राष्ट्रवाद, नस्लवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद इत्यादि का मुकाबला करने के संबंध में पर्याप्त समझ पैदा की जाए। इस संबंध में एक सरल और संक्षिप्त पाठ्यक्रम तैयार किया जाए जिसमें बातचीत करने के महत्त्वपूर्ण बिन्दु शामिल हों और उसे जुबानी व लिखित दोनों तरीकों से प्रचारित किया जाए।

(ii) ट्रेड यूनियनों की लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि सभी हालात में जनवादी सिद्धान्तों को अपनाए जाए। इसका अर्थ है कि नियमित चुनाव हों, विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति की इजाजत हो, मजदूरों के साथ निरन्तर सम्पर्क कायम रखा जाए, नीतियां बनाने, निर्णय लेने और उन्हें लागू करने में प्रत्येक मजदूर को शामिल किया जाए, इन सबके लिए प्रयास करते हुए यूनियन, मजदूरों एवं जनता के प्रति हमेशा जवाबदेही के मानदण्ड को लागू करना।

इसका यह भी अर्थ है कि श्रमिकों की प्रत्येक माँग को मनवाने के लिए कानूनी और शान्तिपूर्ण साधनों को अपनाए जाए, यानि उन सभी मुद्दों पर जो मजदूरों के दिमागों में उमड़ रहे हों, उन पर मजदूरों की आम सभा में या तो हाथ खड़ा करके या मतदान के जरिए संघर्ष के तरीकों (जिसमें बातचीत, समझौता, मध्यस्थता और आखिर में हड़ताल, जिसके केवल तभी अपनाया जाए जब अन्य सभी विकल्पों के रास्ते बन्द हो चुके हों) का निर्णय किया जाए। प्रबन्धन में वास्तविक भागीदारी के काल में हड़ताल का तरीका अप्रासंगिक बन जाता है।

इसका और आगे अर्थ यह है कि नागरिक स्वतन्त्रताओं और मानव अधिकारों पर थोपी जाने वाली सभी बाध्यताओं का विरोध किया जाए। सामाजिक न्याय, असमानताओं

को समाप्त करने, कमजोर वर्ग व अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने के सभी आन्दोलनों का समर्थन किया जाए। ट्रेड यूनियन आन्दोलन को जनता के अन्य तबकों की समस्याओं के साथ जोड़ा जाए। अन्य जन संगठनों और वर्ग संगठनों से नजदीकी सम्पर्क कायम रखा जाए तथा राष्ट्रीय ट्रेड यूनियनों को उनसे सम्बन्धित वैश्विक ट्रेड यूनियनों से सम्बद्ध किया जाए ताकि विभिन्न देशों के मजदूरों में लगातार सहयोग और एकजुटता बनाई जा सके (साथ ही साथ अन्य मेहनतकश जनता के तबको के साथ सहयोग व एकजुटता कायम की जाए)।

14. सांगठनिक स्वरूप के संबंध में, ट्रेड यूनियन आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य और कार्य संस्कृति की यह आवश्यकता है कि हर गतिविधि मजदूरों के अधिकतम संभव एकता बनाए और उसके लिए एक परियोजना में एक यूनियन के मानदण्ड की अनुपालना की जाए। इसके लिए प्रथमतया यह आवश्यक है कि प्रत्येक परियोजना में मजदूरों की भागीदारी व उनसे विचार-विमर्श करके मजदूरों का एक युक्ति-युक्त मांग-पत्र तैयार किया जाए और उसके आधार पर संबंधित मजदूरों को एक यूनियन में संगठित किया जाए। जहाँ कहीं भी एक यूनियन बनाने का मानदण्ड व्यावहारिक न हो तो मौजूदा सभी यूनियनों को न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त मोर्चे के रूप में एकताबद्ध करने की कोशिश करनी चाहिए। ट्रेड यूनियन आन्दोलन के अन्दर राजनीतिक कलह समाप्त करने और अन्तर-पार्टी दुश्मनी तथा अनावश्यक राजनीतिक दखलन्दाजी से उसको बाहर निकालने के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है कि मजदूरों और ट्रेड यूनियनों में प्रचार चलाया जाए और उन्हें सहमत किया जाए कि ट्रेड यूनियन का प्रबन्ध बाहरी पार्टी संगठनकर्त्ताओं की बजाए खुद सम्बन्धित मजदूरों द्वारा चलाने के उसूल को अपनाया जाए। इन सभी संगठनात्मक मानदण्डों को परियोजना से लेकर अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपनाने की जरूरत है।

IV

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की प्राथमिकताओं को आधुनिक बनाने की नये हालात की माँग

15. उपरोक्त वर्णित वैश्विक ट्रेड यूनियनवाद के आम उसूल से प्रस्थान करते हुए, यह माँग करना जरूरी है कि अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) नई वैश्विक समाजिक वास्तविकताओं के मद्देनजर अपनी आम नीति आधुनिक बनाए और दुनिया के विभिन्न देशों में मजदूरों को पेश आने वाले सभी मुख्य मसलों पर अपनी राय का खुलासा करे। इनमें से कुछ निम्न हो सकते हैं–

(i) सामाजिक शान्ति और सामाजिक न्याय के इसके वर्तमान दो तरफा उद्देश्य को पुन: परिभाषित करते हुए इसे सामाजिक शांति, जनता का सशक्तिकरण, पर्यावरण को बढ़ावा, सामाजिक समता (या सामाजिक न्याय) और एक तर्कसंगत मूल्य प्रणाली वाले पाँच तरफा उद्देश्य के रूप में परिभाषित किया जाए। इस परिवर्तन की तर्कसंगतता है कि नई सामाजिक वास्तविकता लोगों के सशक्तिकरण (जनवाद की वर्तमान अवस्था), पर्यावरण बढ़ोत्तरी और एक तर्कसंगत मूल्य प्रणाली की तात्कालिक तौर पर और इतने जोर से माँग करती है जितनी की सामाजिक शान्ति और सामाजिक न्याय नई सामाजिक

वास्तविकता की आवश्यकता न केवल श्रमिक के लिए सामाजिक न्याय बल्कि प्रबन्धन में समानता पर आधारित श्रम-पूँजी सहभागिता की आवश्यकता को दर्शाती है–इस प्रकार श्रम की पूँजी के नीचे युगों पुरानी ताबेदारी की समाप्ति की आवश्यकता को भी दर्शाती है।

(ii) पूँजी की इसकी अवधारणा को पुन: परिभाषित करना, जिसमें मानवीय और भौतिक दोनों पहलुओं को शामिल किया जाए।

(iii) इसके श्रम या मजदूर (मजदूर या श्रम को माल नहीं समझते हुए व्याख्या की जाए) की अवधारणा को पुन: परिभाषित किया जाए और स्पष्ट शब्दों में श्रम को मानवीय पूँजी के रूप में रखा जाए।

(iv) इसको सभी तरह के श्रमिकों का प्रवक्ता बनना चाहिए तथा खासतौर पर अत्यधिक दलित और वंचित यानि कृषि श्रम और असंगठित श्रम का प्रवक्ता बनना चाहिए, हालांकि, इसका जोर संगठित श्रम पर बना रहना चाहिए।

(v) ध्यान से जाँच की जाए कि बढ़ रही असमानता, गरीबी और ऊँचे व नीचे के बीच बढ़ रही खाई को पाटने में यह कैसे अधिक उपयोगी साबित हो सकता है।

(vi) यू.एन. और दूसरे अन्तरराष्ट्रीय इदारों के साथ-साथ सभी राष्ट्रीय राज्यों से अपील की जाए कि वे विकास प्रक्रिया के सभी क्षेत्रों में श्रम और प्रबन्ध (मजदूर और प्रबन्धमण्डल) को समान प्राथमिकता देने का समझौता करे। शुरू में प्रबन्धमण्डल के नीचे श्रम की ताबेदारी शुरुआती औद्योगिक तकनीकी से उत्पन्न हुई थी। परन्तु, बाद में दो अत्यधिक प्रभुत्वकारी आर्थिक सिद्धान्तों–बाजार निर्देशित अवधारणा और सार्वजनिक क्षेत्र आधारित प्रस्ताव–ने इस संबंध को और अधिक ठोस बना दिया। इसमें से पहले वाले सिद्धान्त ने श्रम को प्रबन्धन के नीचे केवल मात्र ताबेदार का दर्जा दिया, जबकि बाद वाले सिद्धान्त द्वारा पूँजी के साथ रिश्ते में श्रम की प्रभुत्वकारी स्थिति को एकतरफा तौर पर बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने के बावजूद, वास्तव में मजदूर आन्दोलन का उपयोग मजदूरों (श्रम) का आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सशक्तिकरण करने के बजाए अपनी राजनीतिक ताकत बढ़ाने में किया।

(vii) संयुक्त राष्ट्र से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और पार राष्ट्रीय कम्पनियों के लिए आई.एल.ओ. द्वारा 1995 में बनाई गई आचरण संहिता को मान्यता देने की जोरदार अपील की जाए और इसको लागू करने का तन्त्र यू.एन. द्वारा खड़ा किया जाए।

(viii) डब्ल्यू.टी.ओ., आई.एम.एफ., विश्व बैंक और सभी राष्ट्रीय राज्यों से अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन के उपरोक्त प्रस्ताव को समर्थन देने की अपील की जाए।

(ix) सभी देशों की सरकारों (राज्यों) से सभी तरह के मजदूरों (जैसे संगठित, छोटी फैक्ट्रियों के मजदूर, असंगठित मजदूर, खेतीहर मजदूर इत्यादि) के लिए आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम वेतन तय करने का वादा करवाया जाए।

(x) विभिन्न देशों में मजदूरों (श्रम) और कम्पनियों के लिए आचरण संहिता को आधुनिक (समयानुकुल) बनाया जाए।

V

भारत में मजदूर समस्याएं और ट्रेड यूनियन रणनीति

16. उपरोक्त वर्णित वैश्विक ट्रेड यूनियनवाद के आम असूल को भारत में उभर रहे ठोस हालात (यानि जहाँ श्रम की कई किस्में हैं, जैसे संगठित मजदूर, सरकारी कर्मचारी, दुकान एवम् वाणिज्य कर्मचारी, खेत मजदूर, असंगठित मजदूरों की विभिन्न किस्में आदि और जहाँ विभिन्न किस्मों में से प्रत्येक किस्म को अपनी विशिष्ट समस्याओं सहित, विरोधी ट्रेड यूनियनों में खासतौर से दलीय आधारित तथा कहीं-कहीं गैर दलीय व्यावसायिक नेताओं के नेतृत्व में हैं) पर लागू किया जाए तो सबसे पहले आवश्यक है कि यह विश्लेषित किया जाए कि भारतीय श्रमिक के सामने वर्तमान में मुख्य समस्याएं क्या है? और तब सभी प्रकार के मजदूरों की चेतना बढ़ाने व उनकी भागीदारी बढ़ाने तथा विभिन्न ट्रेड यूनियनों को विस्तृत संयुक्त मोर्चे में एकबद्ध करने के लिए वास्तविक ट्रेड यूनियन रणनीति (ट्रेड यूनियन परिप्रेक्ष्य, मजदूरों का एक साझा माँग-पत्र, ट्रेड यूनियन कार्य की कार्यशैली व संगठन की सूरत सहित) बनाई जाए।

(अ) वर्तमान में भारतीय मजदूरों के सामने मुख्य समस्याएं

17. भारतीय श्रमिक एवम् उसके ट्रेड यूनियन आन्दोलन के सामने मुख्य व मूल समस्या सम्पूर्ण भारतीय व्यवस्था (यानि इसका सरकारी दृष्टिकोण, इसकी अर्थव्यवस्था यानि, उद्योग, कृषि एवम् व्यापारिक क्षेत्र), राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम, इसकी कार्यशैली एवम् सांगठनिक ढाँचा तथा सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पूँजी व श्रम के संबंध में श्रम को कम प्राथमिकता देने का प्रश्न है। जब तक यह व्यवस्थागत त्रुटि नहीं हटाई जाती तब तक श्रम समाज एवम् विकास के क्षेत्र में उचित स्थान प्राप्त नहीं कर सकेगा।

यह समस्या सम्पूर्ण विश्व में मौजूद है और इसलिए इसे विश्व स्तर पर प्रत्युत्तर की भी आवश्यकता है।

18. यह समस्या मनुष्य समाज की शुरूआत से ही मौजूद है जिसका आधार निरन्तर उभर रहा वैज्ञानिक तकनीकी काम और संगठन के तरीकों (जैसे भोजन एकत्र करना, शिकार, पशुपालन व कृषि) के लगातार क्रमिक विकास में निहित है। दो सौ साल पहने औद्योगिक तरीके ने इस आधार में बड़ा परिवर्तन किया (श्रम के बन्धनों को तोड़कर) परन्तु श्रम अभी भी सभी प्रकार के प्रबन्ध मण्डलों के अधीन बना हुआ है। अब नया उभरा वैज्ञानिक तकनीकी तरीका, इसके वैश्विक आयाम तथा विकास की रणनीति की माँग है कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में एक नई लोकहित व लोक समर्थक तथा प्रकृति हितैषी व्यवस्था कायम हो, जो प्रत्येक सामाजिक क्षेत्र में उचित समानता पर आधारित हो।

19. भारतीय मजदूरों और उसके ट्रेड यूनियन आन्दोलन के सामने अन्य पुरानी व नई समस्याएं निम्न है–

(i) काम के सभी क्षेत्रों में कम मजदूरी का दिया जाना। यह इसलिए है क्योंकि कहीं भी काम की मजदूरी-मजदूरों की न्यूनतम आवश्यकता से जुड़ी हुई नहीं है। इसकी स्थिति विशेषतौर पर लघु उद्योगों, असंगठित एवम् कृषि क्षेत्र में गंभीर है।

(ii) बेरोजगारी एवम् अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या, यह राज्य के बुनियादी विकास की रणनीति से सम्बन्धित प्रश्न है, इसलिए राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इसके सामाजिक प्रभावों से निपटे। श्रमिकों और प्रबन्ध मण्डल के आमदनी में अमानवीय असमानता की समस्या।

(iii) बाल-मजदूरी की समस्या का विद्यमान रहना। यह सामाजिक तौर पर एक विकराल घटनाक्रम है जहाँ बच्चों को मानसिक एवम् शारीरिक विकास की आवश्यकता है। इसकी बनिस्पत उन्हें कठोर शारीरिक श्रम करना पड़ता है जिससे वे सामाजिक और व्यक्तिगत तौर पर अविकसित रह जाते हैं। करीब 20 करोड़ 30 लाख में से 12 करोड़ बच्चे स्कूल जाते हैं और काफी बाल श्रमिक मजदूरी करते हैं। 8 करोड़ 70 लाख बच्चों में से अधिकांश जो स्कूल नहीं जाते हैं, विभिन्न गतिविधियों जैसे घरेलू नौकर, खेत मजदूरी, चिथड़े उठाने, बीड़ी निर्माण आदि में लगे रहते हैं। हाल ही में लोकसभा में दिए गए सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1 करोड़ 12 लाख बच्चे बाल मजदूर हैं जबकि आई.एल.ओ. के अनुमानों के अनुसार 4.4 करोड़ बच्चे बाल श्रमिक हैं। गैर-सरकारी संगठन इन बच्चों की संख्या 9.5 करोड़ बताते हैं।

(iv) मजदूरी के संबंध में लिंग भेद की समस्या, उच्च संगठित क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र को छोड़कर यह समस्या सब जगह है।

(v) मजदूरों के कमजोर स्वास्थ्य और बीमारियों की समस्या, यह समस्या इसलिए हैं क्योंकि निम्न स्तर की मजदूरी, निम्न स्तर का पोषण ही उपलब्ध करा सकती है, जो मेहनतकश लोगों के विकृत स्वास्थ्य का कारण है।

(vi) मजदूरों में अनपढ़ता की समस्या, इसका कारण यह है कि मजदूरों में गरीबी छाई हुई है और सामाजिक पिछड़ेपन की मौजूदगी, गरीब तथा सामाजिक पिछड़ों के बच्चों को स्कूल जाने में रूकावट है और इसलिए कमाई में लगाना उनकी मजबूरी है।

(vii) सरकार द्वारा मुफ्त विधि सहायता के प्रावधान और मुकदमेबाजी की समस्या। इसका कारण है कि उच्च संगठित क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र को छोड़कर आम तौर पर मजदूर, मजदूरी का भुगतान न होने, मजदूरी काट दिए जाने एवम् अन्य बुनियादी सुविधाएं जो कानून द्वारा उसे प्राप्त हैं, से इन्कार करने से आमतौर पर पीड़ित होता है।

(viii) उदार या बजारोन्मुखी प्रबन्धन मजदूरों की बुनियादी समस्याओं का हल निकाले बिना श्रम उत्पादकता के एकतरफापन पर जोर देता है। इस प्रकार का एक तरफा दबाव मजदूरों पर काम का अतिरिक्त वजन डालता है। जिसके एवज में मजदूरों को कुछ नहीं दिया जाता।

(ix) इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्रोन्मुखी श्रमिक समर्थक अधिकारों पर एकतरफा जोर देते हैं जबकि श्रम उत्पादकता या परियोजना की अधिकतम वृद्धि से इन अधिकारों को नहीं जोड़ते हैं। इससे ने केवल संबंधित उद्योग के हितों को नुकसान पहुँचता है बल्कि श्रमिकों का भी अहित होता है।

(x) श्रम कानूनों के पुनरनिरीक्षण की समस्या, इस पुनरनिरीक्षण के जरिये सरकार और बड़े उद्योग चाहते हैं कि जो विधिक अधिकार श्रमिकों को इस समय उपलब्ध हैं उन्हें

कमजोर किया जाए। यहाँ मुख्य मुद्दा निर्यात नीति, स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होने की योजना तथा बीमार इकाइयों के विक्रय का है।

(xi) उद्योगों के बीमार होने की समस्या, इस समस्या के प्रथम शिकार मजदूर हैं क्योंकि इसका तुरन्त प्रभाव मजदूरों के बकाया भुगतान न होने में है। इस प्रकार, मजदूरों से यह कहा जाता है कि वे मजदूरी पंचाट लागू न करने, बोनस का भुगतान न लेने, मजदूरी दर घटाने, वार्षिक वेतन वृद्धि को स्थगित करने एवं सेवा शर्तों को बदलने की शक्ल में त्याग करें।

कपड़ा औद्योगिक क्षेत्र में यह बीमारी सबसे अधिक है। इसके बाद इंजीनियरिंग और रासायनिक क्षेत्र आते हैं। विभिन्न पुरानी और नई जाँचे यह प्रदर्शित करती हैं कि उद्योगों को बीमारी होने का मुख्य कारण संबंधित उद्योग या उद्यम का प्रबन्धन है। आर्थिक मंदी एवम् माँग और पूर्ति का पहलू उसके बीमार होने के अन्य कारण हैं। उद्योगों के बीमार होने में श्रम की भूमिका नगण्य है। मौजूदा औद्योगिक बीमारी में भी श्रम की अनुशासनहीनता की जिम्मेदारी सरकारी तथ्यों के अनुसार मात्र 10 प्रतिशत है।

(xii) यद्यपि भारतीय कानूनों के तहत सभी प्रकार के जबरदस्ती या अनिवार्य रूप से करवाये जाने वाले श्रम प्रतिबन्धित हैं फिर भी 1999 की अमेरिका के गृह विभाग की भारत पर मानवाधिकार की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 60 लाख बन्धक मजदूर हैं। इस रिपोर्ट का कहना है कि कुछ घरों में और काम करने की कुछ जगहों पर हालात बन्धुआ मजदूरों जैसी है। बन्धुआ मजदूरों की अन्य किस्मों में महिलाओं का बन्धुआ होना, जबरदस्ती वैश्वावृत्ति करवाना तथा बच्चों का वैश्यावृत्ति के लिए अवैध व्यापार करना है।

(xiii) आकस्मिक या दैनिक वेतन-भोगी मजदूरों की समस्या, इस प्रकार के लाखों मजदूर इस देश में (इनमें से कुछ इस हैसियत में 20 वर्षों से काम कर रहे हैं) सालों अनिश्चितता में झूलते रहते हैं। दिसम्बर 1999 के प्रथम सप्ताह में दिल्ली हाईकोर्ट ने एक महत्वपूर्ण निर्णय दिया है। इस निर्णय से दिल्ली-प्रशासन में काम करने वाले इस प्रकार के मजदूरों पर औद्योगिक विवाद अधिनियम लागू होना माना है। इस निर्णय का केन्द्र सरकार एवं अन्य राज्य सरकारों के लाखों दैनिक वेतनभोगी मजदूरों के कानूनी अधिकारों पर असर पड़ सकता है।

(xiv) असंगठित शहरी मजदूरों की समस्या, यह काम का एक विशाल क्षेत्र है जिसमें विभिन्न किस्मों की गतिविधियों वाले लाखों मजदूर जैसे कि निर्माण में कार्यरत मजदूर, घरों में काम करने वाले मजदूर नियोजित हैं, इस प्रकार के मजदूरों के अधिकारों और कल्याण के संबंध में अभी तक कोई कानून नहीं बना हुआ है।

(xv) खेत-मजदूरों (ग्रामीण इलाके के अन्य किस्म के मजदूरों सहित) की समस्या, भारत में यह क्षेत्र रोजगार दिलाने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र है जिसमें करीब 10 करोड़ मजदूर जो भारत की कुल श्रम शक्ति का 25 प्रतिशत हिस्सा बनता है, कार्यरत है। परन्तु भारत का यह सबसे अधिक उपेक्षित क्षेत्र है जिसमें देश के काफी तादाद में वंचित लोग है।

(ब) भारतीय ट्रेड यूनियन रणनीति

20. भारतीय ट्रेड यूनियन रणनीति की ओर मुखरित हो तो यह आवश्यक है कि चार राजनीतिक मुद्दों पर ध्यान दिया जाए:-

ट्रेड यूनियन परिप्रेक्ष्य, मजदूरों का मांग-पत्र, ट्रेड यूनियन कार्यशैली तथा संगठन का तौर-तरीका।

(i) भारतीय ट्रेड यूनियन का परिप्रेक्ष्य

21. भारतीय ट्रेड यूनियन परिप्रेक्ष्य को दो तरफा प्राथमिकता रखनी चाहिए। यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा करे तथा दूसरी तरफ पर्यावरण या (प्रकृति) के हितों की रक्षा करें। आमतौर पर इसका मतलब है कि श्रमिकों का आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक तौर पर लोकशक्तिकरण किया जाए। विशेषतौर पर इसका तात्पर्य है कि सभी प्रकार की विकास परियोजनाओं के प्रबन्ध में श्रमिकों के उचित प्रतिनिधित्व के अधिकार को सुरक्षित किया जाए, पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन किया जाए। आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी तथा अन्य आवश्यक सुविधाएं (जैसे बोनस, प्रोविडेन्ट, फंड, छुट्टियां, निश्चित काम के घण्टे, सुरक्षा-प्रबन्ध, स्वास्थ्य एवं सफाई का इंतजाम, श्रम कल्याण आदि) एवं उत्पादन, गुणवत्ता, विविधता, उपलब्धता, कम कीमत, अपशिष्ट कम करना आदि के लिए श्रम कुशलता को बढ़ाने की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करना है।

22. उपरोक्त परिप्रेक्ष्य मजदूरों में यह चेतना बढ़ाता है कि वे विकास-प्रक्रिया तथा अपने संबंधित उद्यम के प्रशासन के वे साझेदार हैं। यह इस अहसास को जगाता है कि जिस परियोजना में वे मजदूर काम कर रहे हैं वह उनका अपना है और उसकी सम्पन्नता उन पर निर्भर करती है। पूँजी या प्रबन्ध के प्रभुत्व को थामना तथा श्रम को अधीन मानने के परिप्रेक्ष्य के विपरीत श्रम-पूँजी की साझेदारी का परिप्रेक्ष्य सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया में दीर्घकाल तक कार्य संस्कृति को बढ़ाने का कार्य कर सकता है। श्रम-पूँजी साझेदारी की समझ बाजार (पूंजी) के महिमा मंडन और ट्रेड यूनियन या श्रम के लोक-लूभावनेपन को, जो कि दोनों एक तरफा नारे और क्रिया से ग्रसित हैं नतीजतन श्रम व पूँजी में टकराहट पैदा करते हैं, को भी रोकने की क्षमता रखती है।

(ii) भारतीय श्रमिकों का मांग पत्र

23. श्रमिकों के मांग-पत्र में वे सभी दावे शामिल हैं जिससे श्रमिकों या उनका ट्रेड यूनियन आंदोलन तर्कसंगत एवं मौजूद मजदूर समस्याओं का प्रासंगिक हल (जैसा कि उपरोक्त चरण संख्या 17,19 और 20 में उल्लेखित है) मानता है जो निम्न है-

(i) यह माँग की जाए की श्रम को मानवीय पूँजी माना जाए न कि माल इस प्रकार श्रम के पूँजी के अधीन होने की स्थिति को समाप्त किया जाए तथा पूँजी और श्रम को बराबरी का दर्जा दिया जाए।

(ii) उचित सरकारी श्रम नीति निर्धारित किए जाने की माँग की जाए जिसका उद्देश्य श्रम और पूँजी के संबंधों को समान दर्जा देकर तथा एक तरफ मजदूरों की सभी

जायज माँगों को मानकर और दूसरी तरफ पूँजी को उचित स्थान देकर सौहार्द्रपूर्ण बनाया जाए।

(iii) भारत के राष्ट्रीय स्तर पर श्रम की योग्यता और क्षमता को विकसित कर प्रतियोगी (तीव्र वैश्विक प्रतियोगिता के मद्देनजर भारतीय पूँजी की यह एक तुरन्त पूर्ण की जाने वाली माँग है) बनाए जाने की माँग की जाए।

यह माँग पुराने स्थापित संबंधों के तहत नहीं उठाई जा सकती है जो प्रबन्धन के प्रभुत्व और श्रम के अधीनस्थ संबंधों और इस प्रकार लगातार श्रम और पूँजी के टकराहट से ग्रसित है पर आधारित है। ये तनावपूर्ण संबंध मजदूरों की प्रेरणा को और उनकी कारगुजारियों को कुन्द करते हैं। मजदूरों की क्षमताएँ और योग्यताएँ श्रम और पूँजी की एकमात्र साझेदारी से ही बढ़ाया जा सकता है और केवल मात्र यही तरीका मजदूरों को उनकी उत्पादकता, गुणवत्ता, कीमतों में कमी, विविधता, उपलब्धता तथा अपशिष्ट कम करने की बुद्धिमत्ता का विकास करने को प्रेरित कर सकता है।

(iv) श्रम विरोधी कानून बनाकर (जैसे काम के घण्टों में बढ़ोत्तरी करना, मजदूरों में ठेकेदारी प्रथा को कानून सम्मत बनाना, सरकारी इजाजत के बिना प्रबन्धकों को तालाबन्दी व कार्यबन्धी के अधिकारों को स्वीकृति देना तथा अपनी इच्छानुसार मजदूरों के रखने का निकालने का अधिकार देना, निर्यात नीति को लागू करना, उत्पादकता से बोनस को जोड़ना, मौजूदा कानूनी तौर पर उपलब्ध लेबर इन्सेटिव को वापिस लेना) भारत में प्रतियोगिता के गुणों के विकास की सरकारी योजना को समाप्त करने की माँग करना। मजदूरों के हितों की कीमत पर श्रम कानूनों में कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए।

(v) उच्चतम व न्यूनतम के बीच (वेतन) में सभी सुविधाओं और छूटों सहित 5 गुना से अधिक अन्तर न होने की मांग करना।

(vi) प्रत्येक उद्यम एवं उद्योग या ट्रेड में गुप्त मतदान के जरिए से एक इकाई में एक यूनियन बनाए जाने की माँग करना ताकि यूनियनों की बहुलता को हटाया जा सके।

(vii) बन्धुआ मजदूर मुक्ति अधिनियम को प्रभावी ढंग से लागू किए जाने की मांग की जाए।

(viii) असंगठित मजदूरों की समस्याओं से निपटने के लिए व्यापक केन्द्रीय कानून बनाए जाने की मांग की जाए।

(ix) खेत-मजदूरों की समस्याओं विशेष तौर पर न्यूनतम वेतन, बोनस तथा वृद्धावस्था पेंशन के संबंध में व्यापक केन्द्रीय कानून बनाए जाने की मांग की जाए।

(x) बीमार सार्वजनिक राजकीय उद्यमों के जनवादी पुनरसंरचना की माँग करना, प्रथमतया; उनको बेचकर या संबंधित मजदूरों की सहकारी संस्था को (जो भी अधिक व्यवहारिक है) तथा द्वितीयत: सरकार नामांकित एवं मजदूरों के चुनिंदा प्रतिनिधियों के संयुक्त प्रबंध के तहत उसे चलाया जाए। यह इसलिए किया जाए क्योंकि इन परियोजनाओं में हानि का कारण नौकरशाही द्वारा गलत ढंग से काम किया जाता है और इस प्रकार इसका प्रत्युत्तर केवल मात्र लोकतांत्रिक हल ही है। यदि पहला और दूसरा विकल्प न लिया जा सके तब इसका विक्रय बाजार में कर दिया जाए।

(xi) निगम कम्पनियों को उनके प्रवर्तकों के मामूली कीमत पर बड़ी तादाद में अपने स्वयं के नाम, अपने रिश्तेदारों और दोस्तों के नाम शेयरों को प्राप्त करने के विशेषाधिकार को समाप्त कर लोकतांत्रिक बनाया जाए। इस प्रकार इन निगम कम्पनियों के शुरू से लेकर आखिर तक वंशानुगत नियंत्रण बनाए रखने से रोका जा सकता है। यह लोकतांत्रिक सुधार सामान्य अंशधारकों को लोकतांत्रिक तरीके से मैनेजमेंट बोर्ड को चुनने के लिए शक्तिशाली बनाएगा तथा प्रबन्धक बोर्ड (जिसमें मजदूरों के चुनिदां प्रतिनिधि भी शामिल हों) को अधिक दक्ष और अन्वेषक बनाएगा। निगम प्रबन्धन की अदक्षता इस तथ्य में देखी जा सकती है कि कुछ निगम कम्पनियों पर कुल बैंक का ऋण 55000 करोड़ रुपये हैं। सम्बन्धित निगम प्रबन्ध चाहता है कि यह ऋण वसूल योग्य न माना जाए, जबकि बैंक प्रबन्धन चाहता है कि इस ऋण की वसूली के लिए कानूनी कदम उठाने हेतु सरकार इशारा करे और सरकार है कि वह हमेशा की तरह मौन है- इस प्रकार, कुछ बैंको को दिवालिए की स्थिति में धकेल दिया है।

(xii) औद्योगिक बीमारी को लोकतांत्रिक सुधारों के जरिए समाप्त करने के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाने की माँग की जाए इस प्रावधान को उच्च प्राथमिकता देकर कि मजदूरों द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों को प्रबन्धन में शामिल किया जाए, उनकी कार्यकुशलता को समयानुकुल स्तर पर लाया जाए, मजदूरों की क्षमता और योग्यता को सुधारकर उनको प्रेरित किया जाए–इस प्रकार भारतीय उद्योग में प्रतियोगिता को बढ़ावा दिया जाए। भारत में निम्न प्रतियोगिता का एक बड़ा कारण यह है कि यहाँ श्रम और पूँजी में टकराहट के संबंध है।

(xiii) मानव संसाधन तथा पर्यावरणीय संसाधनों के विकास के जरिये नये रोजगार के अवसरों को पैदा किये जाने की माँग की जाए और इनका विकास श्रम विशेषज्ञता को विकसित कर रोजगारोन्मुखी शिक्षा उपलब्ध कर, खेत मजदूरों तथा ग्रामीण एवं शहरी बेरोजगारों को भूमि संरक्षण, रेगिस्तान तथा क्षरित भूमि को खेती योग्य क्षेत्रों में बदलकर, कृषिकारी जंगलात, पुनरनवीकरण, जल सदुपयोग, जैव-विविधता, कृषिकारी-उद्योग, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, दस्तकारी, हाथ करघे, सेवा एवं सूचना उद्योगों आदि में लगाकर किया जाए।

(xiv) भारत की सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 43ए के तहत भारतीय राज्य को यह निर्देशित करता है ''उपक्रम, वाणिज्य संस्थान या अन्य संगठन जो उद्योग में संलिप्त हों, के प्रबन्धन में मजदूरों की भागीदारी को सुनिश्चित करें''–तुरन्त कानून बनाने की माँग की जाए, जिसमें इस प्रकार के सभी उद्यमों के प्रबन्धन में उनके मजदूरों को एक-तिहाई प्रतिनिधित्व दिए जाने की माँग की जाए। इस माँग को पूरी करने से संगठित क्षेत्र में पूँजी और श्रम की साझेदारी कायम होगी तथा इस क्षेत्र की लोकतन्त्रीकरण की बुनियादी आवश्यकता भी पूरी होगी।

(xv) भारत की सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 के तहत, जिसमें भारतीय राज्य को निर्देशित किया गया है ''काम का अधिकार, शिक्षा, बेरोजगारी की स्थिति में लोक-सहायता, वृद्धावस्था, बीमारी एवम् विकलांगता के संबंध में प्रभावी

प्रावधान बनाए जाएं। सभी बेरोजगारों को काम करने का अधिकार दिलाने तथा बेरोजगारी के दौर में उचित सहायता दिलाए जाने के कानून बनाने की मांग की जाए।''

(xvi) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 43 के तहत, सभी मजदूरों को चाहे वे खेत मजदूर हों, औद्योगिक मजदूर हों या अन्य मजदूर हों–को काम मिले, जीने लायक मजदूरी, काम की ऐसी स्थिति हो, जिसमें शानदार जीवन स्तर सुनिश्चित हो तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक और पूर्ण आनन्द के अवसर सुनिश्चित हो, करने के बाबत उचित कानून बनाया जाए या आर्थिक संगठन बनाया जाए या कोई अन्य तरीका अपनाया जाए''–सभी प्रकार के मजदूरों, विशेष तौर पर कृषि और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की न्यूनतम जीने लायक मजदूरी को सुनिश्चित करने का तुरन्त कानून बनाया जाए।

(xvii) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 38 (2) के तहत निर्देश देता है कि ''आय की असमानता को न्यूनतम किया जाए तथा हैसियत, सुविधा और अवसर की असमानताओं को जो न केवल व्यक्तियों के बीच में बल्कि विभिन्न क्षेत्रों या विभिन्न धन्धों में लगे समूहों के बीच में भी मौजूद असमानताओं को हटाने की कोशिश की जाए।'' ...उद्योग, व्यापार और प्रशासकीय सेवाओं में अत्यधिक आय की असमानता को एक अनुपात पांच (1:5) के स्तर तक कम करने के लिए आवश्यक कानूनी कदम उठाए जाने की मांग की जाए।

(xviii) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (डी) के तहत जिसमें भारतीय राज्य से आह्वान किया गया है ''आदमी और औरत दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन दिए जाने को सुनिश्चित बनाने के लिए नीति निर्धारित करे–कानूनी और व्यावहारिक तौर पर समान कार्य के लिए समान वेतन, आदमी और औरत दोनों को विशेष तौर पर कृषि और असंगठित क्षेत्र में भुगतान करने को विश्वसनीय बनाने की माँग की जाए।''

(xix) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद (24) के तहत, जिसमें यह निश्चित किया गया है कि बालकों को फैक्ट्री में या किसी भी अन्य खतरनाक रोजगार देने से प्रतिबन्धित किया जाए तथा अनुच्छेद 39 (इ) व (एफ) जिसमें भारत सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित किया गया है ''बच्चों को खुशनुमा वातावरण तथा स्वतन्त्रता और गरिमा की स्थिति में विकसित होने के लिए अवसर एवम् सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएं और बचपन एवम् युवावस्था को शोषण से बचाया जाए तथा नैतिक एवम् भौतिक विकास में बाधाएं न आने दी जाए।'' सभी प्रकार के बाल मजदूरों को कानून बनाकर प्रतिबन्धित किया जाए तथा उसे प्रभावी ढंग से लागू किया जाए।

(xx) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के तहत, जिसमें भारतीय राज्य पर यह जिम्मेदारी डाली गई है कि ''भारतीय संविधान के लागू होने के 10 साल के अन्दर, सभी बच्चों को जब तक वे 14 वर्ष के नहीं हो जाएं मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करवाई जाए। भारत सरकार उन सभी को जो गरीबी की रेखा से नीचे है, विशेष तौर पर बच्चे तथा कृषि एवम् असंगठित क्षेत्रों में काम करने वालों को भी भारत सरकार मुफ्त शिक्षा दे, यह मांग की जाए।

(xxi) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 के तहत, जिसमें भारतीय राज्य को निर्देशित किया गया है कि ''वह अपने लोगों के जीवन एवम् पोषण स्तर को ऊँचा उठाने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार लाने, जो इसकी प्राथमिक जिम्मेदारियों में से है, को पूरा करे।'' उन सभी मेहनतकश लोगों को जो गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करते हैं, विशेष तौर पर कृषि एवम् असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं, उनके लिए मुफ्त स्वास्थ्य सेवाओं को उपलब्ध करवाने के प्रावधान भारत सरकार करे'' इसकी मांग की जाए।

(xxii) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (अ) के तहत, जिसमें निर्देशित किया गया है कि ''किसी भी नागरिक को जो आर्थिक या अन्य कारणों से अयोग्य हो, उसे मुफ्त कानूनी सहायता दिलाई जाए।'' कृषि एवं असंगठित मजदूरों के लिए मुफ्त कानूनी सहायता दिलाए जाने को सुनिश्चित करने की मांग की जाए।

(xxiii) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 के तहत जिसमें ''ग्राम पंचायतों के संगठन के बारे में कहा गया है–एक ग्राम पंचायत की कुल सीटों के 1/3 सीटों को उन सभी मेहनतकश लोगों जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं के लिए सुनिश्चित करने की मांग की जाए।''

(xxiv) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (4) एवं 16(4) व (5) जिसमें भारत सरकार को यह शक्ति प्रदान की गई है ''नागरिकों के किसी भी सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति एवं जनजाति की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान निर्धारित करे।'' अपनी गैर उत्पादक 5 दशक पुरानी जाति आधारित आरक्षण नीति में भारतीय संविधान के आदेशों के मुताबिक पुनरनिरीक्षण करे, जिसमें प्रथम तौर पर ''नागरिकों के पिछड़े वर्ग'' शब्दावली का उपयोग किया गया है न कि पिछड़ी जातियों का (पिछड़े वर्गों की श्रेणी में अनुसूचित जाति व जनजाति को शामिल न किए जाने की छूट दी गई है)। पिछड़ेपन को गरीबी की रेखा से परिभाषित करके जाति आधारित त्रुटिपूर्ण आरक्षण नीति को दुरुस्त किया जाए।

(iii) ट्रेड यूनियन कार्यशैली

24. ऊपर वर्णित भारतीय ट्रेड यूनियन परिप्रेक्ष्य एवं भारतीय मजदूरों के माँग-पत्र की अनुपालना में यह आवश्यक है कि लगातार पाँच तरफा एकीकृत गतिविधि की जाए। प्रथम, हमें हमेशा अपने-आपको हमारे सोच एवं क्रिया में मजदूरों एवं ट्रेड यूनियन आन्दोलन के प्रति जवाबदेह बनाना चाहिए। द्वितीय, हमें प्रत्येक परियोजना में मजदूरों की समस्या और माँगों का उनसे विचार-विमर्श करके तथा अपने आपको उनसे परिचित करवाकर युक्तियुक्त माँग-पत्र बनाना चाहिए। तृतीय, हमें रोजाना ट्रेड यूनियन कार्य चलाना चाहिए तथा मजदूरों की रोजमर्रा की समस्याओं व्यक्तिगत या सामूहिक को रोजाना ध्यान देकर मजदूरों से नजदीकी संबंध बनाना चाहिए। मजदूरों की सामाजिक व ट्रेड यूनियन चेतना को उनकी अपनी समस्याओं और माँगों को ट्रेड-यूनियन परिप्रेक्ष्य, भारतीय मजदूरों के माँग-पत्र, वैश्विक सामाजिक वास्तविकता और इनका ट्रेड यूनियन पर असर (जैसा कि

इस दस्तावमे में दर्ज किया गया है) से जोड़ते हुए, व्याख्या करके–रोजाना बढ़ाया जाना चाहिए।

चतुर्थ, हमें अपनी ट्रेड यूनियन कार्य प्रणाली में लोकतांत्रिक मानदण्डों को सख्ती से अपनाना चाहिए। धैर्यपूर्वक प्रत्येक मजदूर को सुनना चाहिए एवम् संबंधित मजदूरों से उनके जीवन, उनके उद्यम, उनके क्षेत्र, देश, राज्य एवं विश्व से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं से वाकिफ होकर एकत्व स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए।

पंचम, हमें प्रत्येक कारोबार या व्यापारिक संस्थान (जैसी भी स्थिति हो) के मजदूरों की आमसभा की मीटिंग 15 दिनों में करनी चाहिए, जिसमें संबंधित मजदूरों की साझा समस्याओं, सम्बन्धित परियोजनाओं, व्यापार या उद्योग में उन्हें उपलब्ध अधिकार तथा भारतीय कानूनों जैसे ट्रेड यूनियन एक्ट 1926, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, वेतन भुगतान अधिनियम, 1996, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1938, बोनस भुगतान अधिनियम, कान्ट्रेक्ट लेबर एक्ट 1970 तथा असंगठित मजदूरों के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित अन्य कानून व आदेश के बारे में विचार विमर्श करना चाहिए।

(iv) ट्रेड यूनियन का सांगठनिक स्वरूप

25. उपरोक्त भारतीय ट्रेड यूनियन परिप्रेक्ष्य एवं भारतीय मजदूरों का माँग पत्र तथा ट्रेड यूनियन कार्यशैली को अपनाते हुए हमें मजदूरों में अधिकतम सम्भव एकता उत्पन्न करने की कोशिश करनी चाहिए तथा एक परियोजना में एक यूनियन एक सिद्धान्त पर चलना चाहिए। जहाँ भी यह मानदण्ड लागू करने में व्यावहारिक न लगे तो सभी मौजूदा यूनियनों को साझा न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त मोर्चे में एकबद्ध करने के प्रयास करने चाहिए।

VI

विचार-विमर्श के कुछ महत्वपूर्ण मसले

26. राष्ट्रीय और विश्व स्तरीय कुछ महत्त्वपूर्ण मसलों पर विचार-विमर्श करते हुए यह आवश्यक है कि उनको तर्कसंगत और हकीकी तरीके से देखा जाए। ये मसले हैं, वैश्वीकरण, पुनरनिर्माण, उदारीकरण, और निजीकरण की धारणाएं किस बात की द्योतक है? क्या इनका व्यवहार श्रम के लिए हानिकारक है या श्रम की कीमत पर केवल पूँजी का ही फायदा करता है? विदेशी पूँजी का अर्थ क्या है? क्या इसके आयात या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आने से भारत या इसके श्रमिक के हितों को नुकसान पहुँचता है? डब्ल्यू.टी.ओ. और आई.एम.एफ. विश्व बैंक क्या दर्शाते है? क्या भारत की इनकी सदस्यता देश के राष्ट्रीय हितों के खिलाफ जाती है?

(क) ग्लोबलाइजेशन (वैश्वीकरण)

27. ग्लोबलाइजेशन की अवधारणा हालिया विकसित हुई वर्तमान मानवीय अन्तरनिर्भरता और अन्तरक्रिया या मानवीय अन्तरसंबंधों की द्योतक है। दूसरे शब्दों में, मानव विकास की चल रही अवस्था राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता या उनके आपसी निर्भरता के संबंधों की अवस्था है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आज भी सभी मनुष्य अपनी-अपनी राष्ट्रीय इकाइयों के हिस्से हैं।

28. यद्यपि मानवीय अन्तरनिर्भरता और अन्तरक्रिया मानव समाज की शुरूआत से ही कायम है और मानव विकास की विभिन्न मंजिलों—यानि, गणों, कबीलाई, कृषिकारी, राज तंत्र और राष्ट्रीय में से गुजरी और विकसित हुई है, इसकी वर्तमान ग्लोबल अवस्था ने पुरानी सभी अवस्थाओं से गुणात्मक तौर पर भिन्न बदलाव लाया है। जबकि पुरानी सभी अवस्थाओं में उस समय की बड़ी सामाजिक इकाइयों के बीच मुख्यता आपसी संघर्ष के संबंध बने रहे जबकि वर्तमान अवस्था में राष्ट्रों के बीच आपसी मानवीय अन्तरनिर्भता, मित्रता के संबंधों, सहयोग और समझ-बूझ के पहलू संघर्ष को दूसरे स्थान पर धकेलते हुए पहले नम्बर पर आ गए है।

29. इस प्रकार, आज ग्लोबलाइजेशन, वास्तव में हालिया, उभरी वैश्विक व्यवस्था के युग का प्रतीक है। यानि यह विभिन्न राष्ट्रों को एकीकृत मानव समाज में पिरोनी की एक प्रक्रिया है जो युगों पुराने—यानि नस्ली, गण, कबीलाई, राष्ट्रीय इत्यादि मानवीय विभाजनों को समाहित करने की तरफ धकेल रही है। इस एकीकृत करने वाली प्रक्रिया का प्रबन्ध मांग करता है कि विभिन्न देशों के मध्य एकता के नए पैमाने तय किए जाएं यानि उनके बीच आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संबंधों को नये नियमों से संचालित किया जाए।

30. जहाँ तक इसके उद्गम का सवाल है, ग्लोबलाइजेशन कोई अचानक नहीं फूट पड़ा है। यह नये वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान और इसके संचालन तंत्र की उपज है जो मानवीय सोच, कार्यप्रणाली और संगठन को ग्लोबल आधार पर पुनरगठित करने की मांग करता है। इस प्रकार, ग्लोबलाइजेशन मानव विकास के लिए अति आवश्यक है जिसे सभी देशों को स्वीकार करना है और उस पर अमल करना है। यह प्रक्रिया किसी एक देश द्वारा सृजित नहीं की हुई है और ना ही इसे किसी व्यक्ति के पंसद के आधार पर बनाई या रद्द की जा सकती है। कांग्रेस आई की सार्वजनिक क्षेत्र पर आधारित समाजवाद की नीति में बदलाव और भाजपा का शुद्ध स्वेदशीवाद से उदारीकरण के कार्यक्रम पर चढ़ना और वामपंथियों का सुधारवाद तथा साम्राज्यवादी तंत्र और धोखाधड़ी के नारों वाला प्रचार का मंद पड़ना नई विश्व व्यवस्था की अति शीघ्र आवश्यकता और उसकी जीवन्तता को दर्शातें हैं। कुछ संकीर्ण वामपंथियों और कट्टर उदारवादियों (जैसे मैडम थेचर) की संकीर्ण राष्ट्रीवादी सोच उनके निरुद्देश्य और निराश होने के द्योतक हैं।

31. सच है, वर्तमान ग्लोबल व्यवस्था अभी तक गैर-न्यायिक और असमान कानूनों और व्यवहार के आधार पर चल रही है और जितना जल्दी इन्हें समाप्त किया जाए उतना ही मानव विकास और इसकी ग्लोबल अवस्था के लिए अच्छा होगा। परन्तु ये चल रहे कानून और व्यवहार कोई नया सर्जन नहीं है। ये सभी ग्लोबल व्यवस्था के पहले की देन हैं और आज तक निरन्तर चल रहे हैं। इनका जाना-माना पहलू यह है और रहा है कि ये कानून और व्यवहार जनता के बहुत छोटे हिस्से के लिए काम करता है, और किया है, जबकि जनता का बहुत बड़ा हिस्सा दलित स्थिति में रहा है। अब क्या करने की आवश्यकता है ताकि निरन्तर चल रहे अनुचित पैमानों का विरोध करते हुए इन्हें व्यवहार के सामाजिक मानदंड के स्तर पर रद्द किया जाए और विश्व समुदाय के गठन और विकास में बाधा खड़ी करने से रोका जाए।

32. पुराने राष्ट्रीय राज्य प्रबन्ध को नई विश्व व्यवस्था में तब्दील करने के लिए पुनरसंरचना के तरीकाकार अपनाने की आवश्यकता है।

(ख) पुनरसंरचना

33. पुनरसंरचना की अवधारणा आम तौर पर पुराने मॉडल, आचरण या संगठन को सामयिक बनाने की द्योतक है। ग्लोबलाइजेशन के रूप में इसका निहितार्थ है, राष्ट्रीय पैमानों को पुनरव्यवस्थित करके ग्लोबल व्यवस्था के अनुसार बदलना, चाहे यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर हो या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर।

34. राष्ट्रीय स्तर पर, पुनरसंचरना में दो तरफा गतिविधि शामिल है—आन्तरिक और ब्राह्य। आन्तरिक पुनरसंचना में ग्लोबल मानदण्डों के अनुसार देश के अन्दर के नियमों-कानूनों में बदलाव आता हैं, जबकि ब्राह्य पुनरसंरचना का संबंध पुराने राष्ट्रीय सम्प्रभुसत्ता आधारित कानूनों (जिसमें दूसरे राष्ट्रों के हितों को शामिल नहीं किया जाता है) को अन्तरनिर्भर राष्ट्रों के आधार (जिसमें राष्ट्रीय हितों को दूसरे राष्ट्रों के हितों से मेल बैठाया जाता है) पर पुन: प्रबन्धन करना है।

35. अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक विश्व संस्था को राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता से उत्पन्न आवश्यकताओं के अनुसार अपने उसूलों और प्रक्रियाओं को तब्दील करना चाहिए।

36. उदारीकरण के लिए दुनिया के अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की आवश्यकता के अनुसार राष्ट्रीय राज्यों के प्रतिबन्धकारी पैमानों को बदलकर समायानुकूल बनाना।

(ग) उदारीकरण

37. उदारीकरण की अवधारणा का आम निहितार्थ है प्रतिबन्धों से छुटकारा। यह एक अकेली प्रक्रिया के जैसे ही सम्पूर्ण व्यवस्था पर लागू हो सकता है। राष्ट्रीय प्रणाली को अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय प्रणाली में तब्दील करने के मामले में यह व्यवस्था के स्तर पर क्रियारत होता है।

38. राष्ट्रीय राज्य जो अपने-अपने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यों से संचालित होते हैं, राष्ट्रीय हितों के नाम पर बहुत-सी आन्तरिक और ब्राह्य अन्तरक्रियाओं को प्रतिबन्धों के द्वारा बाधित करते हैं। अब, इन सभी बाधाओं को राष्ट्रीय अन्तरनिर्भरता के नये हालातों की आवश्यकतानुसार या तो उठा लिया जाए या कम कर दिया जाए।

39. वामपंथ शिकायत करता है कि उदारीकरण बाजार की भूमिका को बढ़ाते हुए केवल मात्र उसके हितों की सेवा करता है।

40. यद्यपि व्यापार, आन्तरिक और ब्राह्य दोनों क्षेत्रों में बाजार के माध्यम से मानवीय अन्तरक्रिया की एक बड़ी गतिविधि है, व्यापार के मामलों में उदारीकरण (जैसे विदेशी निवेश, विनिमय दरें, बैंक और इन्श्योरेन्स सुधारों, पैटेंट कानून इत्यादि) इसका बड़ा मामला नजर आता है। परन्तु, अगर चौतरफा नजर डाली जाए तो कोई देख सकता है कि मानव अधिकारों, सामाजिक न्याय, लिंग समानता, बराबरी, महिलाओं का सशक्तिकरण, महिलाओं के लिए आरक्षण, बाल-कल्याण, अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा, कमजोर तबको के अधिकारों को बढ़ावा, श्रम कानूनों में बदलाव, पर्यावरणीय सुरक्षा, प्रदूषण

विरोधी मापदण्डों, जल-प्रबन्ध, जैव विविधता, पुन: जंगल लगाना और इसी तरह के अन्य सभी कार्य उदार कदम हैं जिसका अर्थ है इन सभी क्षेत्रों में रुकावटों को कम करना। यह अलग बात है कि व्यवस्थागत खामियां और चालबाजी व भ्रष्टाचार की राजनीति वांछित परिणामों को हासिल करने में बाधाएं बनी खड़ी है।

(घ) निजीकरण

41. निजीकरण सामाजिक अन्तरक्रिया और विकास में निजी गतिविधि की भूमिका का द्योतक है। मानव समाज की शुरूआत से ही निजी प्रयत्न और साझी या सामाजिक गतिविधि दोनों ने ही समाज में अपनी-अपनी भूमिका अदा की है।

42. निजी और सामाजिक भूमिकाओं के अस्तित्व का आधार मानव समाज की स्वाभाविक प्रकृति में निहित है। जिसके निजी और सामाजिक या सामूहिक–दो पहलू बनते है। अत: जब तक समाज विद्यामान रहेगा, निजी और सामाजिक दोनों पहलू अपनी भूमिका निभाएंगे, व्यक्ति और समाज दोनों को फायदा पहुंचाते रहेंगे। दोनों ही सामाजिक पहलू है और ठोस हालात के अनुसार उन्हें उपयोग करने की जरूरत है।

43. प्राइवेट पहलकदमी निजी पर अधिक जोर देती है, जबकि सामाजिक पहलकदमी साझे पर अधिक जोर देती है। परन्तु विकास की प्रक्रिया में निजी भी सामाजिक की सेवा करता है और सामाजिक में निजी को फायदा पहुंचता है। निजीकरण को बुराई मानने वाला वामपंथी विरोध समाज के वास्तविक चरित्र और इसके ऐतिहासिक क्रमिक विकास की अवहेलना पर आधारित है। निजीकरण पर उदार-कट्टरपंथियों का अत्यधिक जोर उनकी बाजार निर्देशित फिलासफी (विचारधारा) से आ रहा है जो बाजार को ही समाज का सब कुछ मानते हैं।

44. सम्पूर्ण इतिहास में बाजार ने उत्पादकता, उत्पाद गुणवत्ता, कीमत घटाने, किस्मों, उपलब्धता, फिजूलखर्ची की रुकावट इत्यादि के विकास में प्रतियोगिता और विनिमय के आर्थिक संस्थान के रूप में महत्तवपूर्ण भूमिका अदा की है। परन्तु यह सामाजिक न्याय के क्षेत्र में असन्तुलन पैदा कर देता है, जो एक अति महत्त्वपूर्ण मामला है जिसे राज्य कहलाने वाली सामाजिक संस्था को ठीक हल करना चाहिए।

45. मानवीय समाज की निजी सह सामाजिक प्रकृति के मद्देनजर यह आवश्यक है कि सार्वजनिक उद्यमों और निजी पहलकदमियों दोनों को ही समान महत्व देना आवश्यक है और दोनों में से किसी को भी निर्णायक पहलू नहीं बनाना चाहिए। भूतपूर्व सोवियत संघ और दूसरे कम्यूनिस्ट देशों में समाजवादी मॉडल सामाजिक विकास और आर्थिक कल्याण के क्षेत्र में बड़ी उपलब्धियों के बावजूद असफल हुआ क्यों यह अपने अत्यधिक सक्षम मानव संसाधनों और भरपूर भौतिक संसाधनों का बाजार प्रतियोगिता (माँग और पूर्ति के इसके नियमों के साथ-साथ) के अभाव में और निजी प्रयत्नों (जो मानवीय स्वभाव का 50 प्रतिशत भाग बनता है) की कमी के कारण सृजनात्मक और कुशल उपयोग नहीं कर सका। पश्चिमी उदार मॉडल अभी चल रहा है क्योंकि एक तरफ समाजवादी मॉडल से प्रतियोगिता करते हुए दूसरी तरफ इसने सामाजिक सुरक्षा के कम्युनिस्ट कार्यक्रम को अपने बाजार आधारित विकास के साथ समन्वय बैठाकर अख्तियार कर लिया।

(ड़) विदेशी पूँजी और बहु राष्ट्रीय कम्पनियाँ

46. पूँजी साहित्यिक अर्थ में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण घटनाक्रम की द्योतक है। सामाजिक अर्थों में यह समाज में सबसे बहुमूल्य चीज होने का निहितार्थ लिए हुए है। शुरूआत से अभी तक मानव और प्रकृति मानवीय विकास के मुख्य पहलू रहे हैं, ये दोनों मिलकर सामाजिक पूँजी बनाते हैं यानि एक तरफ मानवीय सृजनात्मकता और दूसरी तरफ प्राकृतिक संसाधनों के दो तरफा रूपों की संकल्पना सामाजिक पूँजी बनाते हैं।

47. आर्थिक क्षेत्र में पूँजी विनिमय के माध्यम के तौर पर पैसे के एक निश्चित रूप में चलायमान रहती है। अपने संचित रूप से पैसा सम्पत्ति कहलाता है और सम्पत्ति को जब उत्पादक उपयोग में लिया जाता है उसे पूँजी कहा जाता है। संचित श्रम को पूँजी मानने वाला मार्क्सवादी सिद्धान्त और उत्पादन के पहलू को पूँजी मानने वाला उदारवादी सिद्धान्त पूँजी की दो तरफा प्रकृति (यानि मानवीय और भौतिक) की अवहेलना करते हैं।

48. पूँजी, चाहे विदेशी हो या घरेलू, विकास के लिए अत्यधिक उपयोगी है। इसकी उपयोगिता इस सवाल पर निर्भर करती है कि हम इसका उपयोग किस तरीके से करते हैं। अमेरिका, जापान और जर्मन ने अपनी आर्थिक उड़ान की तैयारी के दौरान बड़ी मात्रा में विदेशी पूँजी का उपयोग किया। केवल फिजूल खर्ची या पूँजी के दुरुपयोग से ही या तो कमजोर या नकारात्मक परिणाम निकलते हैं। यह सम्पूर्ण इतिहास का मसला रहा है।

49. पूँजी अपने ऐतिहासिक विकास में विभिन्न मंजिलों से गुजरने के बाद हालिया वक्त में विकसित देशों के गूंजे में संचित हुई। इसका मुख्य कारण उनके द्वारा इसके उचित व्यय करने में निहित है। इसी बीच उन्होंने अपने मानवीय और भौतिक संसाधनों (अपने वैज्ञानिक तकनीकी और सामाजिक ज्ञान सहित) को अत्यधिक विकसित किया। आज पूँजी मुख्यता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में है।

50. बहुराष्ट्रीय कम्पनियां आम तौर पर विकसित देशों की सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियां है, जो मुख्यतया सार्वजनिक शेयर पूंजी से गठित हुई है। इनमं से कुछ एक अभी भी बड़े व्यापारिक घरानों से नियंत्रित हो सकती है।

51. दुनिया के बहुत से देशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का गैर नियमित संचालन कई मामलों में तकलीफदेह हालात का कारण बनता है। समय आ गया है जब उनकी कार्य प्रणाली को अन्तरराष्ट्रीय आचरण संहिता के नियंत्रण में लाया जाए। आई.एल.ओ. इस तरह की आचरण संहिता पहले ही यू.एन.को. लागू करने के लिए भेज चुका है। परन्तु जहाँ तक यू.एन. का सवाल है उसने इस पर कोई निर्णय नहीं लिया है।

52. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के ऊँचे हाथों में सबसे उचित हल उनके पूर्ण जनवादीकरण में निहित है (से संभव है।) इसके लिए तीन कदमों की तात्कालिक आवश्यकता है।

(a) पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों के प्रबन्ध बोर्ड में प्रतिनिधित्व और शेयरों के संबंध में प्रोमोटर्स को प्रदान किए गए विशेष अधिकारों को समाप्त किया जाए। (b) श्रम पूँजी सहभागिता के आधार पर प्रबन्ध बोर्ड का गठन किया जाए, जिसमें दो-तिहाई सदस्य शेयरधारियों से सीधे चुनाव द्वारा लिए जाएं, जबकि संबंधित मजदूरों से एक-तिहाई सदस्यों का चुनाव किया जाए। और (c) किसी भी देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों

के निवेश की प्राथमिकताओं को तय करने का आधार संबंधित बहुराष्ट्रीय कम्पनी और संबंधित देश (जहाँ निवेश किया जाना है) की सरकार के मध्य सहमति को माना जाए।

(च) डब्ल्यू.टी.ओ., आई.एम.एफ. और विश्व बैंक

53. विश्व व्यापार को संचालित (नियमित) करने के लिए डब्ल्यू.टी.ओ. एक संगठन है। यह जनवादी संविधान के आधार पर कार्य करता है, जिसमें एक देश एक वोट का उसूल लागू है। यह बहुध्रुवीयवाद को थामे हुए है और एक ध्रुवीयवाद, संरक्षणवाद और एकाधिकारवाद को अस्वीकार करता है।

54. आई.एम.एफ. और विश्व बैंक अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थान है। सदस्य देशों को उनकी भुगतान सन्तुलन की समस्याओं को पार पाने के लिए आई.एम.एफ. लोन देता है। विभिन्न देशों में चल रही विकास परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक ऋण प्रदान करने वाला संस्थान है1 अभी कुछ वक्त के लिए, ये मुक्त बाजार परिप्रेक्ष्य द्वारा निर्देशित है और वित्तीय वजन के आधार वाली अपनी प्रभुत्वकारी वोट शक्ति के कारण यू.एस. और दूसरे विकसित देशों के नियंत्रण में है।

55. इन संस्थाओं का वाम कट्टरपंथी इनको यू.एस. का औजार चरित्रित करते हुए विरोध करते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि बावजूद उनकी कुछ कमियों के वे ग्लोबल विकास में सकारात्मक भूमिका अदा कर रहे हैं।

56. उनके बहिष्कार में रास्ता नहीं है बल्कि उनकी प्रबन्ध प्रणाली के जनवादीकरण द्वारा उनके त्रुटिपूर्ण निर्णयों के विकल्प में प्रस्ताव देकर बड़ी शक्तियों के प्रभुत्व को समाप्त करना ही रास्ता है। (24-12-1999)

***

राज्य स्वायत्तता कमेटी (एसएसी) और क्षेत्रीय स्वायत्तता कमेटी (आरएसी) की रिपोर्टों के विशेष सन्दर्भ में जम्मू विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग द्वारा 'जम्मू और कश्मीर में स्वायत्तता का मसला' विषय पर बुलाई गई सेमीनार में आर.पी. सर्राफ द्वारा प्रस्तुत किया गया लिखित नोट

स्वायत्तता की प्रासंगिकता और तर्कसंगतता जम्मू-कश्मीर समस्या के सन्दर्भ में

(सामाजिक सच्चाई हमेशा वास्तविकता में निहित होती है, बहुसंख्यकों की मानसिकता से तय नहीं होती)

I

जम्मू-कश्मीर, भारत-पाक और दुनिया के लोगों को दरपेश एक सवाल

1. आज जम्मू-कश्मीर में हमारा प्रस्थान बिन्दु क्या होना चाहिए? और यहाँ हम किस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करें? यह दो तरफा सवाल आज और कुछ समय से न केवल हमें यानि इस राज्य के निवासियों के सामने हैं बल्कि भारत-पाकिस्तान के लोगों के सामने भी है और सम्भवत: पूरी दुनिया के लोगों के लिए भी है। ऐसा क्यों है? क्योंकि, यह जेके समस्या ही है जिसने आज और कुछ दशकों से भारत और पाकिस्तान के अपने-अपने टकरावावादी एजेन्डा को तय करवाया है। इसने दक्षिण एशिया के विकास और स्थिरता (जिसमें 130 करोड़ लोगों का भाग्य निर्भर है) का गला घोंट रखा है और विश्व शांति व सुरक्षा के सामने सबसे बड़ी चुनौती खड़ी कर रखी है। अब, यह वह ज्वलनांक बिन्दु है जिसने परमाणु आयाम प्राप्त करने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सामने सबसे जटिल और मुश्किल समस्या खड़ी कर दी है। भारत की अवधारणा भिन्न होते हुए भी यू.एन. के 186 सदस्यों सहित समस्त दुनिया और मुख्य विश्व महाशक्ति अमेरिका इस वास्तविकता को स्वीकार करते हैं।

2. जेके समस्या का यह चरम अन्तर्राष्ट्रीय आयाम मांग करता है कि क्या जम्मू-कश्मीर को स्वायत्तता (भारतीय संघ के एक भाग के तौर पर) देने के मसले को जेके गुत्थी के लिए एक तर्कसंगत और प्रासंगिक प्रस्थान बिन्दु या ध्यान केन्द्रित करने वाला बिन्दु माना (जाए या) जा सकता है।

3. इतिहास सिखाता है कि हमारा एजेन्डा (जो कुछ हम सोचते हैं, विचार-विमर्श करते हैं या क्रियान्वित करते हैं) हमेशा दो तरफा वास्तविकताओं से जुड़ा होता है। यानि, यह हमेशा इसकी तात्कालिक वास्तविकता (इसका विद्यमान रूप या आयाम) से जुड़ा होगा और हमेशा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (जो इसकी उत्पत्ति के कारण और आगे के विकास के रास्ते को दर्शाता है, इस प्रकार इसकी प्रकृति या आधारभूत आयाम को इंगित

करता है) से संचालित होगा। विज्ञान बताता है कि प्रत्येक वस्तु समय से (किसी निश्चित समय पर इसके अस्तित्व के रूप या इसकी उत्पत्ति और विकास की समय के भिन्न-भिन्न दौर की प्रक्रिया) और जगह से (एक निश्चित स्थान पर इसकी उत्पत्ति, अस्तित्व, गति और विकास का तरीका, इस प्रकार इसकी प्रकृति और स्वभाव को दर्शाता है) सम्बन्धित होती है।

4. उपरोक्त सभी बातों का निहितार्थ है कि हमारा प्रस्थान बिन्दु जेके समस्या की विद्यमान सामाजिक वास्तविकता से होनी चाहिए, जबकि इसका निर्देशन समस्या की प्रकृति के ऐतिहासिक (या रणनीतिक) परिप्रेक्ष्य से होना चाहिए। केवल इसी तरीके से यह इंगित होगा कि क्या जेके स्वायत्तता का मसला जेके प्रश्न का तर्कसंगत और प्रासंगिक कारण और उत्तर बनता है।

II

आज अत्यधिक स्पष्ट जेके वास्तविकता

5. अत्यधिक स्पष्ट विद्यमान जेके वास्तविकता क्या है? यह है कि कश्मीरी खाड़कू और भारतीय राज्य की खाड़कू विरोधी ताकतें अत्यधिक मुकाबले में फँस चुकी है। निस्संदेह, स्थानीय खाड़कू आन्दोलन के युवाओं के साथ काफी बड़ी संख्या में पाकिस्तान समर्थित विदेशी तत्व इसमें शामिल हो चुके हैं। परन्तु उन्हें स्थानीय आबादी अपने उद्देश्य के समर्थक के रूप में स्वीकार कर चुकी है। यहाँ, खास करके कश्मीर घाटी में लोगों की दुख-तकलीफों और कष्टों की कोई सीमा नहीं है। आम आदमी के लिए यह नरक से भी बुरी स्थिति है। औसतन, प्रतिदिन 10 मानव जीवन (दोनों तरफ से होने वाली हानि को शामिल करते हुए) बड़ी क्रूरता और आक्रामकता के साथ मौत के घाट उतारे जाते हैं। पुलिस हिरासत में हत्याएँ, महिलाओं से बलात्कार, पूछताछ केन्द्रों में यातनाएँ, सामान्य नागरिकों से पिटाई और गाली-गलौच करने, नागरिकों के घरों, दुकानों और अन्य बिल्डिंगों को जलाने, बस्तियों की घेराबंदी और लोगों की खोजबीन इत्यादि प्रतिदिन की आम घटनाएं बन चुकी हैं। खाड़कू समर्थक स्रोतों के अनुसार पूर्णाहुति में लगभग 70,000 लोग–जिनमें अधिकतर कश्मीरी हैं–मारे जा चुके हैं। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक लगभग 25,000 मानवीय जीवन मौत के घाट उतारे जा चुके हैं। कुछ समय पहले, वर्तमान जेके मुख्यमंत्री ने स्वयं कहा था कि उनकी पत्नी जेड सुरक्षा के बावजूद कश्मीर में रहने से बचना चाहती है। यहाँ पर सम्पूर्ण अव्यवस्था है, पूरी तरह अस्थिरता है और राज्य में हर जगह चौतरफा अराजकता है। आज यह विश्व में सबसे अधिक हिंसक क्षेत्र बन चुका है।

6. जेके की उपद्रवी वास्तविकता स्वाभाविक सवाल उठाती है कि इस समस्या का कारण और हल हम कहाँ देखें। क्या स्वायत्तता का क्षय वास्तव में इसका कारण और उत्तर बनता है?

III

जेके समस्या के आधारभूत कारण के सवाल पर

7. जेके समस्या के आधारभूत कारण पर नजर डालने से पता चलता है कि सम्बन्धित लोगों की राय का सम्पूर्ण परिदृश्य तीखे मतभेदों से भरा पड़ा है। खाड़कू समर्थक ताकतें

तर्क करती है कि जेके में खाड़कूपन का करण नई दिल्ली में निहित है जिसने जेके समस्या की विवादित प्रकृति की वास्तविकता को स्वीकार करने से गुरेज करके और जेके के लोगों को अपना स्वयं का भविष्य तय करने के अधिकार से वंचित करके जेके के लोगों पर चौतरफा विध्वंसकारी सशस्त्र आक्रमण शुरू किया और इस प्रकार लोग केवल आत्मरक्षा में हथियार उठाने के लिए मजबूर हुए हैं।

8. स्वायत्तता समर्थक ताकतों ने नब्बे के दशक की शुरूआत में कहा कि खाड़कूपन पाकिस्तान द्वारा प्रोत्साहित संकट था, परन्तु इसी दशक के आखिरी दौर में अपने तर्क में सुधार करते हुए कहा कि जेके की समस्या का क्षय 'कश्मीरी असन्तोष का प्राथमिक कारण' था (जैसा कि 1999 की स्वायत्तता कमेटी की रिपोर्ट में दर्ज किया गया है)।

9. नई दिल्ली, खाड़कूपन के शुरूआती दौर में इसे पाकिस्तान समर्थित आन्दोलन करार देता था परन्तु बाद में इसने अपनी प्रस्तावना को बदलते हुए कहा कि यह पाकिस्तान का परोक्ष युद्ध है या भारत के खिलाफ सीमा पार का आतंकवाद है। वाजपेयी गठबंधन की नेतृत्वकारी पार्टी का मानना है कि भारतीय संविधान की धारा 370 (जिसने जम्मू-कश्मीर राज्य का अतिरिक्त अधिकार सौंपे) ने भी कश्मीर में 'अलगाववाद' उत्पन्न करने में योगदान दिया है।

10. कुछ अन्य भारत समर्थक ताकतें मानती हैं कि जेके समस्या का कारण जेके और खास करके घाटी में राज्य और केन्द्र दोनों सरकारों की गैर जनवादी नीतियों और भ्रष्ट व्यवहार का अनुसरण करने में निहित है।

11. पाकिस्तान दावा करता है कि जेके भारत के विभाजन का बचा हुआ एक एजेण्डा है और कि भारत ने जेके पर गैर-कानूनी कब्जा कर रखा है तथा खाड़कूपन स्थानीय सम्बन्धित लोगों का आन्दोलन है और उनको पाकिस्तान का समर्थन राजनीतिक और नैतिक सीमाओं में बंधा हुआ है।

12. सारी दुनिया समझती है कि जेके समस्या भारत के विभाजन के साथ पैदा हुई और अभी तक एक अनसुलझे मसले के रूप में जारी है और इसको भारत व पाकिस्तान के बीच जेके लोगों की भागीदारी के साथ द्विपक्षीय तौर पर हल करने की आवश्यकता है।

13. यहाँ, दो बिन्दुओं पर खास ध्यान देने की जरूरत है। एक यह कि नई दिल्ली और स्वायत्तता समर्थक ताकतों के बीच जेके समस्या के कारण पर अब कुछ मतभेद आ गया है। जबकि नई दिल्ली पाकिस्तान को जेके संकट को केवल मात्र स्रोत मानती है और गठबंधन की मुख्य पार्टी जेके को विशेष दर्जा देने पर अलगाववाद पैदा करने का दोषारोपण लगाती है। स्वायत्तता समर्थक धड़ा अब इस समझ पर आ गया है कि 1953 से पहले की स्वायत्तता का क्षय ही जेके में गड़बड़ी का मुख्य कारण है। दूसरा बिन्दु यह है कि, जबकि खाड़कूपन जेके समस्या का कारण केवल नई दिल्ली को मानता है, स्वायत्तता समर्थक समूह भी खाड़कूपन की वृद्धि के लिए नई दिल्ली को खाद पानी देने का कुछ जिम्मेदार मानने लगा है।

IV

जेके समस्या के हल के सवाल पर

14. जेके समस्या के हल के सवाल पर खाड़कू समर्थक धड़ा (खास करके कश्मीर घाटी में और जम्मू क्षेत्र के कुछ क्षेत्रों के साथ-साथ कारगिल जिला के लोग) जम्मू-कश्मीर के वर्तमान राजनीतिक दर्जे में परिवर्तन की मांग करता है। इस पक्ष में प्रभुत्वकारी रुझान स्वतंत्रता का पक्ष लेने वालों का नजर आता है और उसके बाद पाकिस्तान के साथ विलय का विकल्प का पक्ष है। वो लोग जो जम्मू-कश्मीर समस्या को त्रिपक्षीय (भारत-पाकिस्तान और जेके लोगों सहित) नजरिये से देखते हैं इसका तीनों पक्षों के बीच आम सहमति से हल चाहते हैं।

15. घाटी में भारत समर्थक ताकतें सोचती है कि 1953 से पहले की स्वायत्तता बहाल करना ही इस मसले को तय करने की दिशा में सबसे अधिक उचित कदम है, जबकि जम्मू और लद्दाख में मुख्य जन रुझान निरन्तर नई दिल्ली की धारणाओं के समर्थन में चला आ रहा है।

16. नई दिल्ली ने जेके समस्या के हल पर हमेशा अस्पष्ट और दोगला दृष्टिकोण अपनाया है। ऊपरी तौर पर इसने हर कहीं जोर से घोषणा की है कि इस समस्या का उत्तर केवल पाकिस्तान के परोक्ष युद्ध या भारत के खिलाफ सीमा पार आतंकवाद को समाप्त करने से होगा और है। परन्तु, बहुत से मौकों पर इसने अपने मन से पाकिस्तान के सामने, नियंत्रण रेखा या युद्ध विराम रेखा के आसपास कुछ ले-देकर जेके का विभाजन मान लेने का सुझाव समझौते के सूत्र के रूप में रखा। तथापि, पाकिस्तान हर मौके पर ऐसे प्रस्तावों को अमान्य करार करता रहा है। एक ही साथ नई दिल्ली जबकि जेके समस्या की विवादित प्रकृति को मानने से इन्कार करती है तथा उसी समय घोषणा करती है कि इस विवाद में पाकिस्तान के कब्जे वाले जम्मू-कश्मीर को खाली करवाना ही एकमात्र मुद्दा है।

17. यहाँ भी यह साफ है कि नई दिल्ली और स्वायत्तता समर्थक धड़े के अपने-अपने दृष्टिकोण पूरी तरह मेल नहीं खाते हैं।

V

जेके समस्या के कारण और उसको प्रत्युत्तर देने के सम्बन्ध में स्वायत्तता का तर्क और सापेक्षता

18. जेके समस्या के कारण और उसको प्रत्युत्तर देने के सम्बन्ध में उपरोक्त तर्कों पर गहराई से नजर डालने पर जेके स्वायत्तता के मसले का तर्क और सापेक्षता के सम्बन्ध में पाँच मुख्य तथ्यों को चह्नित किए जा सकते हैं।

प्रथमतया, यह साफ है कि नई दिल्ली और स्वायत्तता समर्थक अवधारणा जेके समस्या के कारण और प्रत्युत्तर के मामले में एक दूसरे से सहमत नहीं है।

द्वितीयत:, यह देखा जा सकता है कि जम्मू-कश्मीर के किसी भी क्षेत्र में 1953 से पहले की स्वायत्तता बहाल करने की मांग पर कोई जन आंदोलन नहीं है।

तृतीयत:, यह आसानी से देखा जा सकता है कि ना तो भारत में जनता की राय है और ना ही दुनिया जम्मू-कश्मीर को स्वायत्तता (भारतीय संघ के अंग के तौर पर) देने को जेके समस्या के हल के लिए उपयोगी विकल्प समझती है।

चतुर्थत:, यह साफ है कि नई दिल्ली जेके समस्या के कारण और विकल्प के सम्बन्ध में जेके स्वायत्तता को एक प्रासंगिक पहलू के तौर पर नहीं देख रही है।

पंचम, यह नजर आता है कि स्वायत्तता समर्थक नेतृत्व खुद इस मुद्दे पर डाँवाडोल और टालमटोल करता रहता है, यह अपने लक्ष्य, यानि जम्मू-कश्मीर को स्वायत्तता देने के मुद्दे पर इसकी अनभिज्ञता, कमजोर प्रेरणा और असंगत व अस्थिर व्यवहार की कमी से झलकता है।

VI

स्वायत्तता के बारे में गलत अवधारणा और इसकी भारतीय संविधान के साथ असंगतता

19. भारत और जम्मू-कश्मीर राज्य के बीच 1947 के बाद के शुरूआती समय से ही स्वायत्तता समर्थक धड़ा बहुत सी गलत अवधारणाओं का शिकार बना रहा है। उनमें मुख्य अवधारणाएं निम्नानुसार है।

20. मूलभूत गलत अवधारणा खुद स्वायत्तता की धारणा के सम्बन्ध में रही हैं। पिछले 52 वर्षों में भारतीय संघ या जेके राज्य के लगभग सभी सम्बन्धित संवैधानिक और कानूनी दस्तावेजों (राजकीय स्वायत्तता समिति और क्षेत्रीय स्वायत्ता समिति द्वारा तैयार किए गए दो अपने-अपने 1999 के दस्तावेजों सहित) में स्वायत्तता की अति महत्वपूर्ण धारणा को अपरिभाषित छोड़ देने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

(अ) जैसा कि आमतौर पर जानते हैं, स्वायत्तता की शब्दावली एक अव्यवहारिक प्रस्तावना नहीं है, परन्तु यह एक विशिष्ट अर्थ रखती है, यानि, स्वयं की सरकार। साधारण उपयोग में, यह किसी के द्वारा अपने मामलों को स्वयं प्रबंधित करने की आजादी का इजहार करती है। परन्तु समाज विज्ञान के अर्थों में इसका निहितार्थ किसी क्षेत्र या इलाके में विशिष्ट समुदाय या एक सामाजिक ग्रुप द्वारा राजनीतिक सत्ता का उपयोग करना है। ऐसा समुदाय लोगों का कोई ढीला-ढाला ढेर नहीं होता, बल्कि एक साझी भाषा, जीवन पद्धति, साझे नैतिक मूल्यों, साझा इतिहास इत्यादि द्वारा चरित्रित होता है। वास्तव में ऐसे समुदाय तो पहले से ही अपना राज्य बनाने और एक राष्ट्र की हद में पहुँचने की प्रक्रिया के दौरान ही राष्ट्रीयता की मंजिल हासिल कर चुके हैं। परन्तु इसी दौरान इसने दूसरे राष्ट्रीय राज्य से ऐसी शर्तों पर समझौता किया जो दोनों पक्षों को मंजूर थी और इस प्रकार वह उस नये साझे राज्य की एक स्वायत्त इकाई बन गया। तथापि, ऐसे समझौते एक संघीय राज्य के ढांचे के भीतर होते हैं। जम्मू-कश्मीर में कश्मीरी समुदाय को भी इस रूप में पहचाना जा सकता है जिसने राष्ट्रीयता की चेतना हासिल कर ली है।

(ब) संघीय शब्द एक लेटिन शब्द है जो विभिन्न तरह के मंडलों के समागम का द्योतक है। सामाजिक व्यवस्था के तौर पर यह दो स्तरों पर शासन की प्रक्रिया का द्योतक है, यानि संघीय केन्द्र और संघीयकृत राज्य, दोनों के पास उनके अपने-अपने परिभाषित

अधिकार क्षेत्र के दायरे में स्वायत्तता और सत्ता के अधिकार होते हैं। यू.एन. के अब तक अंग बन चुके 186 राष्ट्रीय राज्यों में से केवल दो राज्यों (यू.एस. और स्वीट्जरलैण्ड) में इस तरह का संघीय मॉडल विद्यमान है। दो अन्य राज्य, कनाडा और आस्ट्रेलिया अर्द्ध-संघीय हैं। भारत सहित लगभग 15 दूसरे राज्य (देश) भी दो स्तरीय शासन तंत्र से संचालित हैं। परन्तु इन देशों में राज्य केवल अपनी-अपनी केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर सत्ता का उपयोग करते हैं यानि केन्द्र के बदौलत सत्ता का अधिकार रखते हैं। तथापि, ये सभी संघीय रूप पुरातन किस्में हैं जो 18वीं-19वीं शताब्दियों के सामाजिक हालातों से निकली धारणाओं पर आधारित हैं।

(स) संघवाद का 20वीं शताब्दी का मॉडल यूएन, डब्ल्यूटीओ, आईएलओ, इत्यादि की व्यवस्था में देखा जा सकता है, जिसमें संघीयकृत राष्ट्रीय राज्य किसी भी क्षण केन्द्रीय संगठन को छोड़कर बाहर आ सकते हैं। और यह किस्म 21वीं शताब्दी में एक नई संघीय-महासंघीय पद्धति बनने जा रही है। राष्ट्रवाद से अन्तर्राष्ट्रीयवाद की तरफ संक्रमण के वर्तमान युग में विश्व बहु-नस्ली सभ्यता के दौर में प्रवेश कर रहा है जो एकरूपीय की बजाए बहुल-किस्म के मॉडल की माँग करता है। स्पष्टतया, इस तरह के ढांचे में संघवाद-महासंघवाद काम करेगा और कर सकता है केवल मात्र यह किस्म ही रास्ता हमवार करेगी।

21. दूसरी गलत अवधारणा इस विश्वास से जुड़ी है कि वर्तमान भारतीय संवैधानिक पैमानों के दायरे में कोई सामाजिक इकाई या क्षेत्रीय समूह किसी सच्ची स्वायत्तता या विशेष संवैधानिक दर्जा हासिल कर सकता है। भारतीय संविधान पूर्णतया केन्द्रित राष्ट्रीय दृष्टिकोण का द्योतक है जिसमें उच्चतम सत्ता (या सम्प्रभु सत्ता) एक एकल अविभाजित इकाई (यानि, अपनी मंत्री परिषद की सलाह के अनुसार चलने वाले संघीय राष्ट्रपति के पास) में निहित है, जबकि स्वायत्तता के मायने राज्य (या राज्यों, जैसा भी मामला हो) और केन्द्र के बीच ताकत (सत्ता या अधिकार) के बंटवारे से है। इसीलिए भारतीय संविधान (धारा 370 सहित) में स्वायत्तता और इसके पूरक शब्द 'संघ' का इसके सम्पूर्ण मूल ग्रन्थ में (जिसमें 395 धाराएं और 12 अनुसूचियां हैं) एक बार भी उपयोग करने से गुरेज किया गया है। यह केवल केन्द्र को अधिकार देता है कि वह कुछ अधिकारों को राज्यों को हस्तान्तरण कर दे या किसी राज्य को कुछ निश्चित अधिकार देकर केन्द्र के निमित्त राज्य स्तर के मामलों में प्रशासन चलाने का अधिकार प्रदान कर दे। यह हस्तान्तरण केन्द्र की प्रशासनिक सुविधा पर आधारित है और किसी भी तरह के जनवादी उसूलों पर आधारित नहीं है।

22. तीसरी गलत अवधारणा इस विचार में निहित है कि जम्मू-कश्मीर के लिए भारतीय संविधान की धारा 370 द्वारा प्रतिपादित अधिकार जम्मू-कश्मीर राज्य को स्वायत्तता या विशेष दर्जा प्रदान कर देते हैं। इस धारा के शीर्षक और सार तत्व में जम्मू-कश्मीर को किसी भी तरह की विशिष्ट पहचान नहीं देने के लिए विशेष शब्द का कहीं भी उपयोग करने से गुरेज किया गया है। इसके बजाए शीर्षक में पहला शब्द 'अस्थायी' लिखा गया है जो संकेत करता है कि यह केवल एक निश्चित सामाजिक आवश्यकता को पूरी करने के लिए संक्रमणकारी प्रबन्ध है। यहाँ भी अधिकारों की प्रकृति पुष्ट आधार वाली

नहीं बल्कि केन्द्र के प्रतिनिधित्व के तौर पर सौंपी गई है। इसका अर्थ है कि ये राज्य के अपने अधिकार नहीं है और जो भी अधिकार व ताकत प्रयोग करने के लिए दी गई है वह कार्यवाही केन्द्र के निमित्त (**on behalf of**) ही है।

23. जेके राज्य को दूसरे राज्यों की तुलना में अधिक अधिकार देना क्यों आवश्यक है, इस बात की कोई व्याख्या नहीं देना चौथी गलत अवधारणा है। अगर यह करना जेके के लोगों की विशिष्ट प्रकृति के कारण है तब तो स्वायत्तता का अधिकार देना एक रणनीतिक आयाम बनता है। अन्यथा, मामला कैसा भी हो, तब तो विद्यमान असाधारण हालात एक अस्थायी प्रकृति का ही मामला बनता है।

24. पांचवीं गलत अवधारणा इस तथ्य में निहित है कि जेके स्वायत्तता के प्रति नकारात्मक रुख और केन्द्र के एकात्मक (सत्ता के केन्द्रीयकरण) दृष्टिकोण के 50 वर्षीय अनुभव के बाद भी भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार से जेके के लिए स्वायत्तता की आशा करने से जाहिर है। जबकि भाजपा एक ऐसी पार्टी है जो हमेशा से ही जम्मू-कश्मीर के सम्बन्ध में किसी भी विशेष संवैधानिक सुधार की कार्यवाही का उग्रता से विरोध करती रही है।

VII

एसएसी और आरएसी रिपोर्ट की खुशफहमी भरी कल्पनाएं

(क) राज्य स्वायत्तता समिति रिपोर्ट

25. भारतीय संविधान की वास्तविक प्रकृति और सच्ची स्वायत्तता की धारणा के बारे में गलत समझ से शुरू करते हुए राज्य स्वायत्तता समिति की रिपोर्ट बहुत से अर्थपूर्ण तथ्यों और टीका-टिप्पणियों के बावजूद खुशफहमी भरी कल्पनाओं से भरी पड़ी है। यह जेके की वर्तमान वास्तविकता को नकारती है। यह पिछले 52 वर्षों के दौरान जम्मू-कश्मीर के भारत के साथ संवैधानिक सम्बन्धों के अनुभव से सीखने को तैयार नहीं है। यह भारतीय राष्ट्रवाद की बहुसंख्यकवादी और अन्धराष्ट्रवादी प्रकृति को नहीं देखती है जिसका प्रतिबिम्बन भारतीय संविधान के एकात्मक और केन्द्रीयकृत सिद्धान्त और तरीकाकार से होता है।

26. 184 पेज की एसएसी रिपोर्ट (15 अध्यायों में विभाजित) की प्रथम भ्रामक मान्यता इस सुझाव में है कि राज्य और केन्द्र के मध्य ऐसा एक नया सुसम्बन्ध कायम किया जाए जो 'काफी हद तक क्षतिपूर्ति करे और सम्बन्धों को अन्तिम रूप दे; यह इस संवैधानिक समझ की घोषणा के द्वारा किया जाए कि भारत के संविधान की धारा 370 को जम्मू-कश्मीर पर आगे कभी ऐसे उपयोग नहीं लिया जा सकेगा जिससे भारत के संविधान के किसी अन्य प्रावधान द्वारा 1950 के आदेश और 1952 के दिल्ली समझौते की हदों का उल्लंघन किया जाता हो'' (रिपोर्ट का अन्तिम अध्याय, शीर्षक : भविष्य के लिए सुरक्षा कवच)। स्पष्टतया, वर्तमान एकात्मक भारतीय संविधान के तहत सर्वोच्च सत्ता (केन्द्र) और इसकी शाखा (यानि राज्य जो केन्द्र की शर्तों पर काम करता है) के मध्य कोई संवैधानिक समझौता नहीं हो सकता है।

27. दूसरी भ्रामक मान्यता इसके इस प्रयास में है कि केन्द्र को मनवाया जाए कि जम्मू-कश्मीर की स्वायत्तता के क्षय का तथ्य ''कश्मीर में असन्तोष का प्राथमिक कारण है।'' यह इसलिए है क्योंकि क्षय का मामला वर्तमान प्रधानमंत्री और उसके विविध सहयोगियों ने नहीं के बराबर समझा है जो हमेशा यह आरोप लगाते रहे हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य को स्वायत्तता दिए जाने के कारण इसमें संकट पैदा हुआ है। यह कांग्रेस आई की समझ के विपरीत भी है जो भारतीय संविधान के प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर पर लागू करने को इस तरह से चरित्रित करती है कि इससे भारत के 'लोकतांत्रिक' ताने-बाने को मजबूती मिली है। केन्द्र-राज्य की विरोधाभाषी मुद्राओं के होते हुए भी एसएसी रिपोर्ट द्वारा क्षय गतिविधि का जो विवरण दिया गया है वह प्रशंसा लायक नहीं है।

इसके अनुसार मई 1954 में क्षय होने की प्रक्रिया शुरू हुई तो तीन दशक तक लगातार चलती रही। 30 जुलाई 1984 तक 42 संवैधानिक आदेश जारी किये गए जिनके जरिए भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधानों को लागू करके राज्य की विधानपालिका की शक्ति को समवर्ती सूची के मामलों में और यहाँ तक कि राज्य से सम्बन्धित मामलों पर भी प्रतिबंध लगाए। भारतीय संविधान के 395 अनुच्छेदों में से 260 अनुच्छेद जम्मू-कश्मीर पर लागू हैं, शेष 135 वे अनुच्छेद हैं जिनके जैसे ही प्रावधान जम्मू-कश्मीर के संविधान में मौजूद हैं। केन्द्रीय सूची में उल्लेखित 97 क्षेत्रों में से केवल 3 क्षेत्र ऐसे हैं जो राज्य पर अब लागू नहीं हैं। समवर्ती सूची के 47 क्रमांक में से 26 लागू नहीं है। और संविधान के 12 परिशिष्टों में से 7 राज्य पर लागू हैं।

आपातकालीन शक्तियां जो अन्य राज्यों पर लागू थीं उन्हें भी जम्मू-कश्मीर पर लागू कर दिया गया। भारत की अखिल भारतीय सेवाएं और चुनाव आयोग के प्रावधान भी जम्मू-कश्मीर पर लागू कर दिए गए। राज्य के संविधान में बड़े सुधार भी किए गए।

28. तीसरी भ्रामक मान्यता उसकी इस मांग में है जो भारतीय संघ और राज्यों के संविधानों के 13 बड़े शीर्षकों के तहत 24 परिवर्तन करना चाहते हैं। संक्षेप में ये निम्न हैं–

* केन्द्र की विधायिका का नियन्त्रण राज्य पर केवल सुरक्षा, विदेशी मामले, संचार और उससे जुड़े मामलों तक ही सीमित किया जाए।

* राज्य के राज्याध्यक्ष और मुखय कार्यकारी का नाम 1952 से पहले की स्थिति में परिवर्तित कर दिया जाए।

* भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को अस्थाई प्रावधान के स्थान पर विशेष प्रावधान के तौर पर बनाया जाए।

* भारतीय संविधान का अनुच्छेद 356 जो राज्य सरकारों को बर्खास्त करने की शक्ति केन्द्र को देता है, उसे राज्य पर लागू नहीं किया जाए।

* 1953 के बाद करीब-करीब सभी बड़े कानून जो जम्मू-कश्मीर पर लागू किये गए हैं, उन्हें रद्द किया जाए।

* 1950 के आदेश के बाद अनुच्छेद 246 को राज्य पर लागू करने के लिए उसमें किये गए सभी संशोधनों को रद्द किया जाए।

* अनुच्छेद 248, 249, 250 और 251, चाहे इनको मूल रूप में लागू किया गया हो या स्थानापन्न/संशोधित रूप में लागू किया गया हो, जेके राज्य पर इनको लागू नहीं किया जाए।

* अनुच्छेद 254 को उसी स्थिति में लाया जाए जो स्थिति 1954 में इस अनुच्छेद को राज्य पर लागू करने के समय थी।

* अनुच्छेद 262 और 263 जो 1950 के आदेश के तहत लागू नहीं थे, लेकिन जिन्हें बाद में राज्य पर लागू कर दिया गया था उन्हें लागू करना रोका जाए।

* अनुच्छेद 255, 256, 357, 358, 359 और 360 को राज्य पर लागू न किया जाए जैसी कि 1954 में स्थिति थी।

* अनुच्छेद 72(1)(C), 72(3), 133, 134, 135, 136, 138, 145(1)(C) और 151(2) को राज्य पर लागू न किया जाए, जैसा कि 1950 के आदेश के समय स्थिति थी।

* अनुच्छेद 149, 150 और 151 को राज्य पर उस रूप में लागू किया जाए जैसा कि वे 1954 में थे।

* अनुच्छेद 218, 220, 222 और 226 को राज्य में लागू न किया जाए।

(ख) क्षेत्रीय स्वायत्तता समिति रिपोर्ट

29. आरएसी रिपोर्ट का अवलोकन करें तो पाते हैं कि यह भावावेशी सह दिग्भ्रमित सोच को चिह्नित करती है।

प्रथम, यह अपनी बहन एसएसी रिपोर्ट की तरह इसके बुनियादी प्रस्थान बिन्दु, यानि स्वायत्तता के सही अर्थ के बारे में चुप्पी साधे हुए है।

द्वितीय, यह वर्तमान जम्मू-कश्मीर के दो प्रदेशों को 8 प्रदेशों में पुनर्गठित करने का सुझाव देती है, परन्तु निर्देशक मानदण्डों की पहचान किये बगैर ऐसा करने का सुझाव देती है। जबकि जम्मू क्षेत्र में यह एक जातीय डोगरा प्रदेश बनाने का प्रस्ताव करती है जिसमें तीन जिलों (यानि, जम्मू, कठूआ और उधमपुर) को शामिल किया जाए। कश्मीर क्षेत्र में यह नस्ली तौर पर और अधिक समरूप कश्मीर प्रदेश को तीन प्रदेशों में विभाजित करने का विचार प्रस्तुत करती है परन्तु इस भेदभाव के उद्देश्य को स्पष्ट नहीं करती है।

तृतीय, यह अपनी मनोदशा का ब्यौरा दिये बिना दो विकास के वैकल्पिक मॉडलों की सिफारिश करती है, जो ये हैं–(क) इसके द्वारा प्रस्तावित-पुनर्गठित आठ प्रदेशों के आधार पर परिषदों का गठन और (ख) इस प्रकार की परिषदों का वर्तमान जिला स्तर के आधार पर स्थापित किया जाना।

VII

सार-संक्षेप

30. जेके स्वायत्तता के मसले का 52 वर्ष का अनुभव मांग करता है कि स्वायत्तता समर्थक धड़ा अपना सम्पूर्ण कच्चा चिट्ठा नये शिरे से देखें। यह करने से उसे नई रोशनी मिलेगी जिससे वह अपनी परम्परागत रणनीति को आधुनिक बना सकेगा।

31. समाज विज्ञान ने बार-बार सिद्ध किया है कि हमें हमेशा सामाजिक वास्तविकता की सुननी चाहिए। और जेके वास्तविकता यह कह रही है कि स्वायत्तता यहाँ कुल मिलाकर वास्तविक मसला नहीं है। यह इसलिए है क्योंकि आज यहां की जनता, खास करके कश्मीर के लोगों की यह सामाजिक आवश्यकता नहीं है और वे इसके लिए थोड़े बहुत भी इच्छुक नहीं है। यही कारण है कि इस राज्य में कहीं भी जनता ने इसकी प्रशंसा नहीं की है।

32. आज के समय की आवश्यकता है कि हम जम्मू-कश्मीर में वास्तविक मसले की खोजबीन करते हुए उसकी तह तक पहुंचे। और यह मसला है कि भारत व पाकिस्तान सहित दुनिया के 186 देश लम्बे समय से किस बात पर जोर दे रहे हैं और कश्मीर में वर्तमान धरातलीय वास्तविकता क्या है एवं जेके के 52 साला इतिहास की चीख-पुकार क्या है। स्पष्टतया, ये सभी तत्व यह इंगित करने में एक हैं कि इसकी अनसुलझी समस्या ही जम्मू-कश्मीर में मसला है। जम्मू-कश्मीर समस्या के हल के रास्ते में एक मात्र रुकावट भारत-पाक टकराव है।

33. भारत तर्क देता है कि सम्पूर्ण जेके राज्य हमारा है और कि पाकिस्तान ने हमारे इस राज्य के एक हिस्से को गैर-कानूनी तौर पर अभी तक कब्जे में ले रखा है और अब हमारे खिलाफ अपरोक्ष युद्ध छेड़ रखा है। अत: भारत के अनुसार जम्मू-कश्मीर में केवल मात्र मसला यह है कि पाकिस्तान को अपरोक्ष युद्ध बन्द करने के लिए मजबूर करना और जम्मू-कश्मीर के गैर-कानूनी कब्जे वाले भाग को पाकिस्तान से खाली करवाना।

34. पाकिस्तान दावा करता है कि यह भारत ही है जिसने जम्मू-कश्मीर के दो तिहाई भाग को जबरदस्ती नियंत्रण में ले रखा है और पिछले कुछ समय से अपनी आजादी के लिए लड़ रहे जम्मू-कश्मीर के लोगों को आतंकित करने के लिए उन पर सशस्त्र हमला कर रखा है। अत: पाकिस्तान के अनुसार जम्मू-कश्मीर में मसला केवल यह है कि भारत के आक्रामक नियंत्रण से जम्मू-कश्मीर को छुटकारा दिलवाना और खाली करवाना।

35. सम्पूर्ण संसार मांग करता है कि भारत व पाकिस्तान अपने-अपने टकराववादी रवैयों से छुटकारा पायें और जम्मू-कश्मीर समस्या का हल जेके के लोगों को शामिल करते हुए द्विपक्षीय वार्ता से करें। इसका निहितार्थ है कि दुनिया जेके को त्रिपक्षीय मसला समझती है और उसके त्रिपक्षीय हल का सुझाव देती है। स्पष्टतया, किसी भी तरह का एक पक्षीय प्रस्ताव, चाहे वह भारत या पाकिस्तान के साथ जेके के विलय का हो, चाहे आत्म-निर्णय के अधिकार का हो या जनमत संग्रह का हो अथवा आजादी हासिल करने या भारत और पाकिस्तान के तहत स्वायत्तता हासिल करने का हो, सभी टकराववादी कार्यक्रम (एजेण्डा) हैं। दुनिया के लोग और वैश्वीकरण का नया युग आज कहीं भी टकराव नहीं चाहता, क्योंकि इससे युद्ध होने की संभावना बनती है, जो विश्व के विकास और स्थायित्व की प्रक्रिया में बाधा का कारण बन सकता है।

36. जम्मू-कश्मीर समस्या की त्रिपक्षीय प्रकृति के मुताबिक एक न्यायिक, तर्कसंगत व व्यवहारिक हल के लिए जरूरी है कि इसमें भारत व पाकिस्तान दोनों देशों के राष्ट्रीय गौरव को सुरक्षित रखा जाए तथा एक तरफ दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों और दूसरी तरफ

जम्मू-कश्मीर के लोगों, खासकर कश्मीरियों (प्रवासी कश्मीरियों सहित) की आकांक्षाओं को पूरा किया जाए।

37. भारत व पाकिस्तान के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों को संतुलित करने के लिए जम्मू-कश्मीर पर भारत-पाक (या अगर तीनों पक्ष सहमत हो तो सार्क) सहराज्य कायम किया जाए जो जम्मू-कश्मीर की रक्षा, विदेशी मामलों और मुद्रा विभाग संभाले तथा जम्मू-कश्मीर के सम्बन्ध में सम्प्रभुसत्ता का अधिकार रखता हो।

38. जेके राज्य एक स्वतंत्र राज्य होना चाहिए जिसकी सम्प्रभुसत्ता भारत-पाक सहराज्य में निहित हो। राज्य को एक संघीय संविधान अपनाना चाहिए जिसमें एक साझा राज्य प्रमुख, एक साझा उच्चतत न्यायालय, एक साझा चुनाव आयोग, एक साझा सार्वजनिक सेवा आयोग और एक साझा मानव विकास आयोग का गठन हो, इन सभी इदारों का गठन नस्ली-क्षेत्रीय परिषदों द्वारा चुनाव से किया जाए। जिसमें प्रत्येक परिषद से हर इदारे के लिए एक प्रतिनिधि लिया जाए।

39. राज्य का संघीय संविधान राज्य में प्रत्येक नस्ली क्षेत्र के लोगों के लिए अधिकतम सम्भव स्वायत्तता सुनिश्चित करेगा।

40. भारत-पाक सहराज्य के तहत जेके की सुरक्षा, विदेशी मामलों और मुद्रा व्यवस्था पर कुल खर्च यह सहराज्य वहन करेगा। जेके के नागरिकों को दोनों देशों में नागरिकता के अधिकार होंगे। जेके का भारत और पाकिस्तान के साथ व्यापार उन्हीं नियमों के अनुसार होगा जैसा कि इन दोनों देशों के अपने-अपने राज्यों के साथ होता है। जेके राज्य में विभिन्न परियोजनाओं का कार्य भारत-पाकिस्तान और कश्मीर राज्य के बीच हिस्सेदारी के आधार पर किया जाएगा.... जिसमें तीनों शेयरधारियों को समान अधिकार होंगे और भारत व पाकिस्तान इसमें तकनीकी और सम्पूर्ण पूंजी निवेश के रूप में योगदान देंगे जबकि जेके राज्य अपने संसाधनों के मूल्य के रूप में अपने हिस्से का फंड प्रदान करेगा।

41. हमारे युग की आवाज को सुनते हुए यह बिना किसी सन्देह के कहा जा सकता है कि भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों के बीच भागीदारी न केवल इनकी सेवा करेगी बल्कि दक्षिण एशिया और दुनिया की भी सेवा करेगी।

42. स्वायत्तता समर्थक धड़े को भी अपने आपके लिए देखना चाहिए कि जेके स्वायत्तता का इसका उद्देश्य भी एक ऐसी व्यवस्था के भीतर ही हासिल किया जा सकता है जिसमें भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के हितों के बीच समन्वय बैठाया जाएगा।

10.1.2000

***

बाल श्रम की समस्या–बदतरीन सामाजिक अपराध

I. बच्चे–मानव जाति का भविष्य

वर्तमान समय में बाल श्रमिकों की समस्या सारी दुनिया में मानव जाति के लिए एक मुद्दा बन गई है। क्योंकि यह समस्या मानव समाज में काफी बड़ी संख्या के बच्चों के लिए एक कठिन परीक्षा, तकलीफों और शोषण तथा उनके मूलभूत मानव अधिकारों के लिए कुप्रथा बन गई है। इस प्रकार, यह समस्या मानव विकास के अनिष्ट में तब्दील हो गई है।

बच्चे मानव जाति का भविष्य हैं। वे ऐसी फसल है जो मनुष्य के भविष्य को पोषित करती है यदि वे जैव-सामाजिक तौर पर दुरुस्त हैं तो मनुष्य का भविष्य पूर्णतया आश्वस्त है। यदि वे दुरुस्त नहीं है तो मानव भविष्य अंधेरे में है। इसमें कोई शक नहीं कि श्रम पूजनीय है। लेकिन, यह उनके द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए जो इसके लिए फिट हैं।

II. बाल श्रम की धारणा

संक्षिप्त में, बाल श्रम की धारणा का तात्पर्य कम उम्र के बच्चों (यानि, 14 वर्ष से कम उम्र) से लम्बे समय तक कठोर श्रम करवाने से है जो उनके शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं सामाजिक विकास पर विपरीत असर डालता है तथा उनको स्वास्थ्य शिक्षा और हँसमुख बचपन के अधिकारों से वंचित करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) ने इसे इन शब्दों में परिभाषित किया है ''बाल श्रम में वे बच्चे शामिल हैं जो अपरिपक्व अवस्था में ही बालिग जीवन व्यतीत करने लगते हैं, उनके स्वास्थ्य एवं मानसिक विकास को नुकसान पहुँचाने वाले हालात में वे कम मजदूरी पर घंटों काम करते हैं तथा कभी-कभी अपने परिवार से अलग-थलग, अर्थ-पूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण के अवसरों से आम तौर पर वंचित रहते हैं जो उनके बेहतर भविष्य के दरवाजे खोल सकता है।''

अमेरिका के राष्ट्रीय बाल श्रम समिति के अध्यक्ष मिस्टर फॉक्स बाल श्रम को इस प्रकार परिभाषित करते हैं–''बच्चों द्वारा किए जाने वाला वह हर काम जो उनके पूर्ण शारीरिक विकास, उनकी वांछित न्यूनतम शिक्षा या उनके लिए आवश्यक आमोद-प्रमोद के अवसरों में बाधा पहुँचाता है, यह सब काम बाल श्रम हैं।''

सामाजिक विज्ञान के विश्व-कोष, बाल श्रम की परिभाषा इन शब्दों में व्यक्त करता है, ''जब कमाई का धंधा या बाल श्रमिक स्वयं को जिन्दा रखने के लिए काम करें या वह अपने परिवार को सहायता देने के लिए काम करे और ऐसा काम परोक्ष या अपरोक्ष रूप में उसकी वृद्धि (विकास) और शिक्षा के कार्य के विपरीत जाता हो तो उसका अर्थ बाल श्रम है।''

III. एक भीमकाय समस्या

बाल श्रम दुनिया भर में फैला हुआ घटनाक्रम रहा है। आईएलओ द्वारा हाल के एक अध्ययन में यह उल्लेख किया है कि दुनिया भर में करोड़ों बच्चे–10 से 14 वर्ष की उम्र के सभी बच्चों का 25 प्रतिशत–खतरनाक या अवैध कार्यों में काम करने के लिए बाध्य किए जाते हैं तथा उनमें से काफी तादाद में वैश्यावृत्ति करते हैं या नशीली दवाओं के व्यवसाय में लिप्त हैं। अब समस्या विस्फोटक स्थिति में पहुंच चुकी है। विकासशील देशों में बाल श्रमिक सबसे अधिक है, बाल श्रमिकों की सूची में एशिया सबसे ऊपर है। कुछ देशों में, बच्चे श्रम शक्ति का 11 प्रतिशत हैं। पश्चिमी यूरोप की सूची में इटली और स्पेन बाल श्रम में सबसे ऊपर है। अमेरिका सरकार का हाल का अध्ययन दर्शाता है कि 1983 से 1990 के बीच बाल श्रम कानूनों के उल्लंघन में 250 प्रतिशत की बढ़ोतरी अमेरिका में हुई है। अमेरिका के श्रम विभाग की हाल की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के अनुमानित 10 करोड़ से 20 करोड़ बाल श्रमिकों के 50 प्रतिशत से अधिक एशिया में है तथा दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका वाले हिस्सों में श्रम शक्ति का काफी बड़ा हिस्सा बाल श्रमिक है।

भारत में बाल श्रमिकों की संख्या के बारे में कई मूल्यांकन किए गए हैं। 1971 की जनगणना ने 10.74 मिलियन बाल श्रमिक अनुमानित किए गए हैं। 1981 की जनगणना ने 13.6 मिलियन बाल श्रमिकों का आंकड़ा दिया है। 1983 में, योजना आयोग ने करीब 17.36 मिलियन बाल श्रमिक बताए हैं। आपरेशन रिसर्च ग्रुप, बड़ौदा ने भारत में सन् 1983 में बाल श्रमिकों की संख्या 44 मिलियन अनुमानित की है। सन् 1998 में भारत में करीब 203 मिलियन बच्चों में से केवल करीब 120 मिलियन बच्चे स्कूल जाते थे। 83 मिलियन बच्चों में से अधिकांश जो स्कूल नहीं जाते, वे विभिन्न गतिविधियों में काम करते हैं। हाल ही में लोक सभा में उपलब्ध करवाए गए आंकड़ों के अनुसार भारत में 11.2 मिलियन बाल श्रमिक हैं जबकि आईएलओ के अनुमान के अनुसार ये 44 मिलियन है। गैर सरकारी संगठन इसे 55 मिलियन बताते हैं।

IV. बाल श्रमिकों के कार्य क्षेत्र

भारत में बाल श्रमिकों के 80 प्रतिशत से अधिक कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार करीब 86.4 प्रतिशत बाल श्रम शक्ति ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार कर रही है और वहाँ बिजाई, कटाई, पशु चराना, ईंधन इकट्ठा करने इत्यादि गतिविधियों में लगी हुई हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरों के एक तिहाई से अधिक बाल मजदूर है और उनमें से एक चौथाई से अधिक गैर घरेलू उद्योग एवं निर्माण कार्य में मजदूरी करते हैं।

शहरी क्षेत्र में बच्चे छोटी फैक्ट्री इकाइयों, दुकानों, रेस्तरां, होटल, गैराज, पैट्रोल पम्प, फेरीवाला, फुटकर विक्रेता, कुलीगिरी, पल्लेदार, सफाई, चिथड़ा बिनना, बूट पॉलिश आदि काम करते हैं।

कुछ बच्चों का उपयोग अवैध, असामाजिक गतिविधियों (जैसे वैश्यावृत्ति, तस्करी, अवैध शराब एवं नशीली दवाओं को बेचने के काम) में लिया जाता है। बच्चे बहुत से

खतरनाक उद्योगों, जैसे आतिश, काँच बनाने का काम, कालीन बुनाई, हीरा तराशी, ताला निर्माण आदि में भी मजदूरी करते हैं।

बाल श्रमिकों की बहुत बड़ी संख्या बंधुआ मजदूरों की तरह खरीदी जाती है और ठेकेदारों द्वारा उन्हें गुलामों की तरह रखा जाता है। काफी लम्बे समय तक बच्चों का व्यापार या ठेके प्रथा के अनुसार काम लेने के कारण बहुधा वे अपने मां-बाप से स्थाई तौर पर जुदा हो जाते हैं। कुछ कर्जदार माता-पिता अपने बच्चों को जमींदारों या सूदखोरों के यहाँ बन्धक या गिरवी रखते हैं। इस प्रकार के बच्चे कर्ज की रकम अदा न होने तक दासता में काम करने के लिए मजबूर हैं।

क्योंकि बाल श्रमिक संगठित नहीं है इसलिए उनकी प्रतिरोधक क्षमता बहुत कम है अत: विभिन्न तरह की प्रताड़नाओं से उन्हें गुजरना पड़ता है। नियोजक अपनी इच्छानुसार उन्हें रखते और निकालते हैं। बाल श्रम के क्षेत्र में शारीरिक प्रताड़ना, क्रूरता और दमन सामान्य बात है। महिला बाल श्रमिकों का अधिकांश यौन-शोषण होता है।

V. बाल श्रमिकों के काम करने व रहने की स्थिति

बाल श्रमिक बहुत ही अस्वास्थ्यकर स्थिति में काम करते हैं और रहते हैं। उनमें से काफी बड़ी तादाद में, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में फुटपाथ पर सोते हैं और कभी-कभी होटल और रेस्तरां की रसोई तक में भी जहाँ वे रोजगार पर लगे हुए होते हैं वहीं सोते हैं। काम करने और रहने के स्थानों में शौच की सुविधा और अन्य बुनियादी सुविधा की कमी होती है। उनमें से बहुत से खतरनाक और असुरक्षित कार्य की स्थिति से सामना करते हैं। क्योंकि उन्हें लगातार नुकसानदेह रसायनों को काम में लेना पड़ता है, जैसे उर्वरक, कीटनाशक, पेन्ट्स, डाइज और अन्य विषैले पदार्थ जो उनके स्वास्थ्य और शारीरिक वृद्धि को नुकसान पहुंचाने वाले होते हैं।

खतरनाक और असुरक्षित मशीनरी, औजारों और उपकरणों को उपयोग करने के प्रशिक्षण में कमी, सुरक्षा के उपकरणों का उपलब्ध न होना, जैसे हाथ के दस्ताने, चश्मे, मुखौटे आदि, कम रोशनी और शोध की सुविधा की कमी व इसके साथ जुड़ी बाल श्रमिकों की थका देने वाली मेहनत, एक जैसा अरुचिकर काम, कुपोषण की वजह से कमजोरी प्राय: दुर्घटना का कारण बनती है। कुछ बच्चों में असाध्य बिमारियां विकसित हो जाती हैं। खानों, खुली खानों और चुनाई के कामों में बच्चे भारी वजन ढोते हैं और गिरने वाले पदार्थों से चोट लगने की संभावनाओं से ग्रसित रहते हैं। खतरनाक धुएं, धूल और जहरीली गैसों से सामना करने के कारण बच्चों में आसानी से श्वास की तकलीफ और अन्य बिमारियां विकसित हो जाती है तथा छोटी उम्र में उनकी मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है। बहुत से बच्चों के आंखों पर जोर पड़ने, अपर्याप्त रोशनी या रोशनी और ताप से अधिक वास्ते के कारण नजर कमजोरी की समस्या विकसित हो जाती है।

VI. बाल श्रम का क्रमिक विकास

समाज के प्रारम्भ से ही बच्चों ने हर काल में आर्थिक कार्यकलापों में हिस्सा लिया है। वे सामाजिक समूह जिनके बाल श्रमिक अंग है, इनका अस्तित्व सामाजिक श्रम विभाजन, उससे जुड़ी काम की संस्कृति और सांगठनिक मानदंड सुनिश्चित करते हैं और

इस आवश्यकता से बाल श्रमिकों को आर्थिक कार्यकलाप में हिस्सा लेने के लिए मजबूर होना पड़ता है। सभी पूर्व-औद्योगिक समाजों (यानि गण, कबीलाई और कृषिकारी) में बच्चे से अपने-अपने परिवारों के दायरे में काम लिया जाता रहा है। वे अपने काम धंधों की शिक्षा अपने परिवारों के पारम्परिक धन्धों में काम पर लगकर व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे। परिवार के दायरे में काम आनन्द का स्रोत रहा और इस प्रकार नुकसानदायक प्रभाव, बुरे व्यवहार और शोषण से मुक्त रहा। औद्योगिक समाज के शुरू होने पर नये बाजारों के खुलने से पहले नई तकनीक ने आर्थिक गतिविधियों को गति प्रदान की। इसने बहुत सी समस्याएं पैदा की, जैसे कि प्राकृतिक संसाधनों में गिरावट, काम की खोज में गाँव से शहरों की ओर लोगों का पलायन, काम की अस्वास्थ्यकर स्थिति, स्वास्थ्य के लिए संकट, मजदूरों के स्वास्थ्य की अवहेलना आदि। मुख्य समस्याओं में एक समस्या सस्ते श्रम की आवश्यकता की पूर्ति करना था और इस अवाश्यकता की पूर्ति आसानी से बाल श्रम ने कर दी।

VII. वैश्विक और राष्ट्रीय प्रयासों में इच्छा शक्ति की कमी

सभी वैश्विक संगठन यह उपदेश देते रहते हैं कि बाल श्रम एक बुरा और घृणास्पद सामाजिक व्यवहार है। सभी देशों में इस सामाजिक बुराई को समाप्त करने के लिए कानून बनाए हुए हैं। बच्चों की सुरक्षा और विकास पर लगातार सेमीनार किए गए हैं, प्रस्ताव पास किए गए हैं और कार्य करने की योजनाएं बनाई गई हैं परन्तु अभी तक इस मामले में कुछ भी विशेष नहीं किया गया है और बाल श्रमिकों की समस्या लगातार प्रतिदिन सीमाओं को लाँघ रही हैं।

(क) अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाएँ

सन् 1924 में लीग ऑफ नेशन्स ने बच्चों के अधिकार पर जिनेवा घोषणा को स्वीकार किया। यह घोषणा कहती है कि गुलामी, बाल श्रमिक और नाबालिगों की वैश्यावृत्ति एवं उनके अवैध व्यापार की सामाजिक बुराई के विरुद्ध ठोस कदम उठाना चाहिए।

20 दिसम्बर 1959 को बच्चों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया। यह प्रस्ताव कहता है कि शारीरिक और मानसिक अपरिपक्वता के कारण बच्चों को जन्म से पहले और जन्म के बाद विशेष सुरक्षा और देखभाल की जरूरत है। जिसमें पर्याप्त कानूनी सुरक्षा भी शामिल है।

30 सितम्बर 1990 को 150 से अधिक देशों के राजनेता (71 राष्ट्राध्यक्ष और प्रधानमंत्रियों सहित) न्यूयार्क में दुनिया के बच्चों की तकलीफों को हटाने की दृढ़-प्रतिबद्धता जाहिर करने के लिए इकट्ठे हुए।

आईएलओ के संविधान की प्रस्तावना में यह कहा गया है ''.....बच्चों और युवाओं की सुरक्षा सहित बहुत से प्रभाव क्षेत्रों में तुरन्त सुधार की आवश्यकता है।'' अपने पिछले 75 साल के अस्तित्व में आईएलओ ने 18 समझौते (जिसकी अभिपुष्टि के लिए सभी प्रावधानों की पालना करना आवश्यक है) और 9 सिफारिशें (जिनके प्रावधानों में उनको

लागू करने के केवल निर्देशक सिद्धान्त दिए हुए हैं और इन्हें प्रगतिशील तौर पर और आंशिक तौर पर लागू किया जा सकता है) की है।

सन् 1919 का आईएलओ का समझौता नं. 5 के अनुसार 14 वर्ष से कम के बच्चे को किसी भी औद्योगिक प्रतिष्ठान में नहीं लगाया जाना चाहिए या काम करने की कोई इजाजत नहीं दी जानी चाहिए। सन् 1921 का समझौता नं. 10 किसी भी खेतीबाड़ी के काम में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाने की मनाही करता है। 1937 का समझौता नं. 60 गैर-औद्योगिक संस्थानों (यानि दुकान, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में 13 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को भारत में रोजगार पर लगाने से मनाही करता है। 1973 का समझौता नं. 138 प्रभावी ढंग से बाल श्रम को समाप्त करने को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय नीति बनाने का आह्वान करता है।

1990 में आईएलओ ने बाल श्रम को उन्मूलन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय योजना शुरू की। इसने सरकारों, मजदूरों और मालिकों के संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, शिक्षकों, अभिभावकों और बच्चों को बाल श्रम के अभिशाप से छुटकारा पाने का आह्वान किया।

(ख) भारत में संवैधानिक और विधिक प्रावधान

भारतीय संविधान का अनुच्छेद (14), 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की सुरक्षा के अधिकार को मूल अधिकार घोषित करता है। अनुच्छेद (24) निर्माण कार्य में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को रोजगार पर लगाने से मनाही करता है। अनुच्छेद 39(E)और (F) बचपन और युवावस्था को सुरक्षित करने का आह्वान करता है।

बाल रोजगार अधिनियम 1938 (सेक्शन 3) रेलवे और गोदी मजदूर के लिए 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को रोजगार पर लगाने की मनाही करता है और 12 वर्ष की आयु से कम बच्चों को बीड़ी बनाने, माचिस, विस्फोटक और आतिशबाजी के निर्माण में, माइका को काटने और तराशने, साबुन निर्माण और ऊन सफाई के रोजगार पर लगाने की मनाही है। भारतीय फैक्ट्री अधिनियम 1948, किसी भी फैक्ट्री में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे को काम पर लगाने की मनाही करता है।

संविधान के लागू होने के बाद कई अधिनियम, उदाहरणार्थ प्लांटेशन एक्ट 1951, माइन्स एक्ट 1952, और प्रशिक्षु अधिनियम 1961–14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खदानों और उद्योगों में प्रशिक्षु के तौर पर काम पर लगाने से रोकने के लिए लागू किए। तथापि, बाल श्रम बिल केवल 1986 में पारित हुआ और नई राष्ट्रीय श्रम नीति को आखिरकार 1987 में स्वीकार किया गया। दोनों ने ही भारतीय कानूनों में बाल श्रम के प्रतिबंध के प्रावधानों को सख्ती से लागू करवाना चाहा।

(ग) विश्व और भारत में बच्चों की वर्तमान स्थिति

उपरोक्त अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं और भारतीय सरकार की बाल-अधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता की रोशनी में विश्व में और साथ ही साथ भारत में, दोनों जगह बच्चों की वर्तमान स्थिति निराशाजनक हैं।

बालकों पर 1993 की विश्व रिपोर्ट के अनुसार बच्चों की जनसंख्या के 30 प्रतिशत बच्चे हर साल मौत के शिकार हो जाते हैं। वे बच्चे जिनको रोग निरोधक टिके नहीं लगते

हैं उनकी जनसंख्या के 30 प्रतिशत और कुपोषित बच्चों की जनसंख्या के 40 प्रतिशत बच्चे तीन देशों में है, उदाहरणार्थ, बंगलादेश, पाकिस्तान और भारत। और भारत में उच्च मृत्यु दर (यूएसएमआर) 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की 126 है। बच्चों को स्वस्थ रहने, भोजन, रोग निरोधक टीके लगाने, शिक्षा, निवास आदि की आवश्यकता है। तथापि इन सभी आवश्यक जरूरतों को पूरा करने का वैश्विक प्रबंध अपर्याप्त है।

भारत के सम्बन्ध में यह स्थिति है कि इसमें सबसे अधिक श्रम शक्ति है। भारत की जनसंख्या का 2/5 हिस्सा 14 वर्ष से कम उम्र का है। हाल का यूनिसेफ का आंकड़ा यह दावा करता है कि बच्चों को मजबूर होकर स्कूल छोड़ना पड़ता है और अमानवीय स्थिति में मामूली सी मजदूरी पर काम करना पड़ता है।

यूनिसेफ के आंकड़ों के अनुसार भारत में हर तीसरे घर में एक बाल श्रमिक है। एक से 5 वर्ष की उम्र का हर चौथा बालक रोजगार पर है। करीब 15 लाख बच्चे केवल ताला, काँच और कालीन उद्योग में कार्यरत हैं। यद्यपि कानून के अनुसार बाल श्रमिक रखने की मनाही है। परन्तु नियोजक लगातार इस कानून का उल्लंघन कर रहे हैं। इनको कभी कोई छूता तक नहीं है। ये कार्यशील बच्चे विभिन्न खतरनाक धंधों में जोखिम भरा कार्य कर रहे हैं। परन्तु इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। कुछ गैर सरकारी संगठनों के अनुसार भारत के कालीन बुनाई उद्योग के कुल श्रम शक्ति में से 80 प्रतिशत बच्चे हैं।

भारत में वनस्पति उद्योग में बाल श्रमिक को रोजगार पर लगाने के लिए कानूनी तौर पर इजाजत दी हुई है। सन् 1992 में पश्चिम बंगाल के चाय बागानों में 55000 स्थाई बाल श्रमिक कार्यरत थे। यहाँ न्यूनतम रोजगार आयु न्यूनतम निर्धारित 14 वर्ष से दो वर्ष कम है जबकि असंगठित क्षेत्र जैसे बीड़ी, सीगार, माचिस, कालीन उद्योग, इत्यादि में निर्धारित न्यूनतम उम्र 14 वर्ष है।

वर्तमान कानूनों के आधार पर भारत में 15 जोखिम भरे धंधों में बाल श्रम पर प्रतिबंध है जैसे मासिच निर्माण, आतिश, बीड़ी, कालीन, सीमेन्ट निर्माण, रतन पर पालिश करना आदि। फिर भी लाखों-लाख बच्चे इन उद्योगों में कार्यरत हैं।

घरेलु सेवाओं में अधिकांश बच्चे लगे हुए हैं। जिनमें अधिकांश लड़कियां हैं। इन लड़कियों को शारीरिक तौर पर पीड़ा दी जाती है और इनका यौन-शोषण भी किया जाता है। घरेलु कुटीर उद्योगों में भी महिला बाल श्रमिकों को अधिक पसन्द किया जाता है। प्रत्येक शहर में बाल श्रमिकों की एक बहुत बड़ी तादाद होटल, रेस्तरां, चाय की होटल, मिठाई की दुकान, सड़क पर स्थित संस्थानों में लगी हुई हैं।

बम्बई के एक सर्वे के निष्कर्षों ने यह उद्घाटित किया है कि भारी तादाद में बाल श्रमिकों के अपने घर नहीं हैं वे सड़क के बच्चे हैं। उनमें से अधिकांश 10 से 12 घंटे प्रतिदिन कार्य करते हैं। जो इससे कम घंटे काम करते हैं वे अंशकालीन बाल श्रमिक हैं, वे स्कूल और घर के काम के बाद काम पर जाते हैं।

बड़ी तादाद के बाल श्रमिकों की मौजूदगी ने भारत की श्रम शक्ति की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डाला है।

VII. बाल श्रम के कारण

बाल श्रम के कई कारण हैं और वो अन्तर सम्बन्धित हैं। सामान्य तौर पर बाल श्रम का प्रधान कारण गरीबी है परन्तु बाल श्रम की गुणवत्ता और संख्यात्मकता कई अन्य पहलुओं से भी प्रभावित है। ये सभी निम्न प्रकार से वर्गीकृत किए जा सकते हैं।

(क) आर्थिक कारण

भारत में बाल श्रम का प्राथमिक कारण आर्थिक मजबूरियाँ हैं जैसे गरीबी और बेरोजगारी (जो धन और आमदनी के वितरण की असमान व्यवस्था से पैदा हुए हैं) भारत की जनसंख्या के करीब आधी जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करती हैं।

(ख) सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू

मौजूदा घरेलू संगठन और खून के रिश्ते की व्यवस्था के तौर-तरीके भी बाल श्रम को प्रभावित करते हैं। बालकों को क्या करना चाहिए यह इस बात से प्रभावित होता है कि खून के रिश्ते की व्यवस्था बच्चों के क्या अधिकार और उत्तरदायित्व मानती है। भारत में जातीय वंश परम्परा के कारण सामाजिक असमानता है। निम्न जाति समूह सामान्य तौर पर पिछड़े और अशिक्षित रह जाते हैं। बाल श्रम इन्हीं समूहों में अधिक मौजूद हैं।

(ग) शैक्षणिक पिछड़ापन

कुछ लोगों को आर्थिक दबाव के कारण अपने बच्चों को काम पर भेजना पड़ता है। कुछ मामलों में अशिक्षित माता-पिता बच्चों की शिक्षा के महत्व को नहीं समझ पाते हैं। गरीब परिवार के कई माता-पिता शिक्षा कोई काम की है यह नहीं समझ पाते हैं। क्योंकि यह भविष्य में रोजगार की गारन्टी नहीं दे पाती है। वे बच्चों को कम उम्र में स्कूल भेजने के बनिस्पत काम पर भेजना इस आशा से अधिक पसन्द करते हैं कि उनके बच्चे कम से कम कुशलता या धंधे का ज्ञान बालिग होते-होते जरूर प्राप्त कर लेंगे।

प्रवासी मजदूर और निर्माण और मौसमी कार्यों में लगे मजदूर अपने बच्चों को स्कूल भेजने का सोच भी नहीं सकते हैं क्योंकि पूरे के पूरे परिवार काम की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह में घूमते रहते हैं।

(घ) सबको शिक्षा के अधिकार का अभाव

सबको अनिवार्य शिक्षा दिए जाने का प्रावधान माता-पिता और उनके बच्चों को स्कूल जाने के लिए प्रेरित कर सकता है और बच्चों को कम उम्र में रोजगार लगने से रोक सकता है।

(ड़) नियोजकों की बाल श्रम की चाहत

नियोजक बालिग श्रम की बनिस्पत बाल श्रम को विभिन्न कारणों से अधिक पसन्द करते हैं, जैसे कि निम्न मजदूरी, बालिग मजदूरों की बनिस्पत बाल मजदूरों के प्रबंधन में आसानी, जब चाहे तब काम से निकालने की स्वतंत्रता, संगठन और ट्रेड यूनियन चेतना की कमी, दब्बू श्रम बल, अधिक अनुशासित और नियंत्रित, परिस्थितियों के अनुकूल ढलने की अधिक क्षमता आदि।

(च) बाल श्रम समाप्ति–सत्ताधारी पार्टियों की प्राथमिकता पर न होना

भारत में (और इसी प्रकार अन्य सभी देशों में) विधायिका द्वारा बाल श्रम पर प्रतिबंध मौजूद है। परन्तु सारी दुनिया में बाल श्रम लगातार बढ़ रहा है। इसका विशेष तौर पर कारण यह है कि इस खिलती हुई मानवीय अन्त शक्ति को विकसित करना इन पार्टियों की प्राथमिकता पर नहीं है। इन सत्ताधारी पार्टियों की इस ओर नापसन्दगी सामान्य तौर पर सामाजिक, विधिक और व्यवहारिक टालमटोल में फलीभूत होती है। सामाजिक तौर पर सत्ताधारी पार्टियां बाल श्रम के बुरे प्रभावों के बारे में जागृत नहीं करती हैं, और बाल श्रम के मुख्य कारण, यानि गरीबी, बेरोजगारी या लगातार गैर-बराबरी वाली व्यवस्था को प्रभावी ढंग से समाप्त करने में असफल रही है। विधिक तौर पर वे सम्बन्धित कानूनों में चोर दरवाजे छोड़ देते हैं जो मुल्जिमों को कानून से बचने का रास्ता दे देता है या उसकी गिरफ्त से आसानी से बच निकलने का रास्ता दे देता है। वे प्राय: कानूनी क्षेत्र के दायरे से लघु उद्योग इकाई, पारम्परिक वर्कशॉपों, अर्द्ध पारिवारिक संस्थानों, छोटी वाणिज्यिक संस्थानों, ठेला व्यापारी और कृषि को अलग कर देते हैं, जबकि वहाँ पर बहुसंख्यक बाल मजदूर कार्यरत हैं। व्यवहारिक तौर पर मौजूदा कानूनों को भी प्रभावी तौर पर लागू करने में वे लापरवाही बरतते हैं।

(छ) जनजागृति की कमी

अन्तिम परन्तु महत्वपूर्ण, बाल श्रम का लगातार जारी रहने का बड़ा कारण यह रहा है कि आम तौर पर माता-पिता, उपभोक्ता और समाज में मानव विकास और प्रगति पर बाल श्रम का क्या असर है इस बारे में जागरुक नहीं होने में निहित है। यद्यपि, दुनिया के लोगों की चेतना पहले से आज कहीं अधिक है, फिर भी यह अभी उतनी शक्तिशाली नहीं बनी है कि अपनी-अपनी सरकारों पर यह दबाव डाल सके कि वे इस निर्णायक प्रश्न पर न्यायपूर्ण रास्ता अपनाने के लिए विवश हों। आज भारत में यह जागरुकता प्रतिबिम्बित होती हुई हम नहीं पाते हैं। जब हम एक बच्चे को मैली और फटी कमीज में बर्तनों के ढेर को साफ करते हुए या भवन निर्माण सामग्री को कन्धे पर उठाते हुए या केन्टीन में चाय या खाना परोसते हुए देखते हैं। इस प्रकार का यह दृश्य हमें यह महसूस नहीं करवाता कि कैसे एक बच्चा हमारी सामाजिक आवश्यकताओं के दबाव के तहत अपनी अपर्याप्त शक्ति को स्वयं के लिए और अपने माता-पिता को मदद देने के लिए अपने घर से बहुत दूर रहकर तथा स्वास्थ्य की देखभाल और स्कूल से दूर रहकर रोटी कमाने में खर्च करता है।

IX. बाल श्रम उन्मूलन के लिए

अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि बाल श्रम का उन्मूलन कोई आसान काम नहीं है। पवित्र घोषणाएँ, कानूनों का ढेर, शानदार कार्य-योजनाएँ इस मुद्दे को हल करने में अप्रभावी साबित हुई हैं। जब तक समस्या के असली स्वभाव की पहचान न हो तो उससे प्रभावी ढंग से नहीं निपटा जा सकता है। किसी भी दृष्टि से कोई देखे तो वह पाता है कि बाल श्रम अमानवीय है क्योंकि मानव समाज में बदलाव और विकास के भविष्य के प्रतिनिधि बच्चे हैं। यदि वे अविकसित रहते हैं तो निश्चय ही मानव

के भविष्य का परिदृश्य अन्धकार में होगा। मानव के चहुँमुखी विकास के बिना कोई भी विकास टिकाऊ नहीं हो सकता। न कोई लोकतंत्र कार्यशील रह सकता है। न कोई मूल्य आधारित व्यवस्था कार्य कर सकती है। नहीं, कुछ भी नहीं हो सकता।

क्योंकि यह एक सामाजिक बुराई है और बहुआयामी है तो बाल श्रम के उन्मूलन की यह माँग है कि इसका प्रत्युत्तर बहुआयामी तौर पर दिया जाए।

बाल श्रम उन्मूलन क्रियान्विति का सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक क्षेत्र मानवीय मनोवैज्ञानिक क्षेत्र होना चाहिए क्योंकि यह सभी प्रकार के सामाजिक मानदण्डों–राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक–को अपनाने व रद्द करने में बहुत अहम् भूमिका अपनाता है। यहाँ, लोगों को हमारे समाज पर बाल श्रम की दीर्घकालीन एवं तत्कालीन नकारात्मक प्रभावों के बारे में जागरुक किया जाए और उन्हें बाल श्रम उन्मूलन कार्यक्रम पर लोगों को अधिक से अधिक संगठित करने के लिए प्रेरित किया जाए।

इस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करने का दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र बाल श्रम की भौतिक जड़ों (या सामाजिक-आर्थिक) के उन्मूलन का होना चाहिए। विशेष तौर पर यह जड़ें बेहद गरीबी में निहत हैं। जहाँ कहीं भी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है वहाँ बच्चे स्कूल जाने लगते हैं और बाल श्रम वास्तव में गायब हो जाता है। इसलिए कोई भी समाज अपने बच्चों को बन्धुआ स्थिति से मुक्त कर और उन्हें प्रतिभाशाली व सर्जनात्मक बनाकर अपने भविष्य को सुरक्षित बनाना चाहता है तो उसे सबसे पहले अपनी जनसंख्या को आवश्यकताओं की कमी के भय से मुक्त करना होगा। इसका अर्थ है कि सभी लोगों की बुनियादी मानवीय जरूरतों जैसे पानी, खाना, निवास, कपड़ा, शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल और रोजगार आदि को सुनिश्चित करना है। इसका यह भी मतलब है कि ऐसी योजनाएं शुरू की जाए जो लोगों की आय बढ़ाएं और रोजगार उत्पन्न करें। अन्य कदम यह है कि पाठ्यक्रम की गुणवत्ता और शिक्षण के तरीकों में सुधार कर, विद्यार्थियों के दोपहर के भोजन कार्यक्रम को अच्छा बनाकर, सांस्कृतिक और खेलों की गतिविधियों को सम्पन्न बनाकर स्कूल शिक्षा को उन्नत किया जाए।

उपरोक्त दो पहलकदमियाँ (दो बुनियादी पहलुओं यानि मनोवैज्ञानिक और भौतिक के बीच समन्वय कर) रणनीतिक और दीर्घकालीन हैं। तात्कालिक के लिए बच्चों की सुरक्षा और बाल श्रम के उन्मूलन की यह जरूरत है कि कानून के राज पर चला जाए और मौजूदा बाल श्रम विरोधी सभी कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए। इसके पूरक के तौर पर बाल श्रम संहिता बनाई जाए जो सभी श्रम कानूनों को एकीकृत करें और साथ ही प्रत्येक जिले में बाल श्रम से सम्बन्धित सभी मामलों को निपटाने के लिए विशेष बाल श्रम न्यायालय कायम किए जाए।

उपरोक्त तीन सामाजिक क्षेत्रों की संयुक्त गतिविधि को लम्बे समय तक चलाकर मानव समाज से बाल श्रम की सामाजिक बुराई को जड़ से उखाड़ा जा सकता है।

23.1.2000

***

जे.के. समस्या
विकल्प स्पष्ट है : मेल-मिलाप और विकास या टकराव और बिखराव

1. एक बार पुन:, जम्मू-कश्मीर ध्यान खींचने के लिए पुकार रहा है। इसका लम्बा समय खदबदा रहा राजनीतिक कड़ाह पुन: उबाल पर है। वहाँ सभी पक्षों की तरफ से राज्य में हिंसा का ताण्डव अद्वितीय रूप से फूट पड़ा है। इसने जेके के दो परम्परागत दावेदारों यानि भारत और पाकिस्तान के बीच निरन्तर टकराव को और अधिक बढ़ा दिया है और उनके बीच और अधिक टकराव की सम्भावना उत्पन्न हो गई है। हाल ही में, यू.एस. ने इस धरती पर हमारे उपमहाद्वीप को सबसे अधिक खतरनाक क्षेत्र कहा है, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय इसे विश्व का सबसे बड़ा परमाणु-खतरे वाला बिन्दु समझता है।

I विश्व भारत-पाक शान्ति प्रक्रिया को पुन: आरंभ करवाना चाहता है

2. सम्पूर्ण विश्व (यानि. यू.एन. और इसके 186 सदस्य राष्ट्रीय राज्य) भारत व पाकिस्तान के बीच ठप पड़ी 1999 की लाहौर शान्ति प्रक्रिया को पुन: आरंभ करवाना चाहता है और इनके बीच अत्यधिक आपसी तनाव को कम करना चाहता है। परन्तु इन दोनों देशों में से कोई भी इस अन्तर्राष्ट्रीय सलाह को मानने की मानसिकता लिए हुए नहीं है।

3. भारत-पाक शान्ति प्रक्रिया को पुन: आरंभ करवाने की विश्व की इच्छा किसी शून्य से पैदा नहीं हुई है। यह इच्छा एक तरफ वर्तमान विश्व वास्तविकता और दूसरी तरफ हालिया एशिया के हालात के बारे में इसकी अवधारणा से उभरी है।

(क) वर्तमान विश्व वास्तविकता

4. वर्तमान विश्व वास्तविकता के संबंध में, अर्न्तराष्ट्रीय समुदाय यह मानता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के काल में नये वैज्ञानिक तकनिकी-सामाजिक विकास हमारे पुरानी दुनियां के सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रीय राज्यों को एक नई अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय राज्यों की दुनिया में बदल रहा है। शीत युद्ध के अन्तिम काल ने इस अन्तरनिर्भरता की प्रक्रिया को एक नया आवेग दिया है। शीत युद्ध के बाद के अन्तरनिर्भर राष्ट्रों के काल में, हम ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जहाँ राष्ट्रों का विकास केवल मित्रता और सहयोग के रास्ते से ही हो सकता है। और जहाँ धन और सत्ता को पाने के परम्परागत तरीके बड़बोलापन, टकराहट और युद्ध बेअसर हो गये है परन्तु ये तरीके अभी निर्मूल नहीं हुए है।

5. हमारी अन्तरनिर्भर दुनियां का मुख्य लक्षण देशों का आपसी व्यापार है क्योंकि व्यापार प्राचीन समय से दूर-दराज के भिन्न-भिन्न समुदायों को जोड़ने की मुख्य तकनीक

रही है। वह अब दुनियां के आर्थिक वृद्धि का मुख्य पहलू बन गया है जो अन्य सभी माँग और पूर्ति के अतिआवश्यक मूल आर्थिक उत्पादक क्षेत्रों को (उच्चतम स्तर तक यानि वैश्विक स्तर तक) आपस में जोड़ती है। जबसे विश्व व्यापार धन उत्पादन के मुख्य स्त्रोत में तब्दील हो गया है (समान वितरण के लिए नहीं)। तब से विभिन्न क्षेत्रों के देश मुक्त व्यापार क्षेत्रों में सम्मिलित होने लगे हैं (जैसे, इ.सी., नाफ्टा, मरक्यूसर, एसियान, सार्क आदि)

आज की दुनिया में राष्ट्रीय सम्प्रभुता तथा राष्ट्रीय सीमाओं ने अपनी बहुत कुछ महत्ता खो दी है। यदि यह विश्व व्यापार आपस में लाभदायक है तो आवश्यक स्तर तक विभिन्न देश एकबद्ध होंगे और यदि यह आपस में लाभदायक नहीं है तो एक इकाई समुदाय (जैसे रूस-उक्रेन के स्लाव समुदाय) भी खण्डित हो जाता है।

6. इस प्रकार की अन्तरनिर्भर दुनियां में, यदि किसी क्षेत्र के दो देशों के बीच में विवाद हो तो अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय किसी के भी पक्ष में जाए बिना आमतौर पर संबंधित पक्षकारों को उस विवाद को हल करने के लिए आपसी बातचीत का जरिया अख्तियार करने की कहता है। क्योंकि दुनिया के किसी क्षेत्र में उत्पन्न गड़बड़ स्वत: ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विकास की प्रक्रिया को बाधा पहुँचाता है जिसका सभी देशों के आर्थिक हितों पर नकारात्मक असर होता है।

(ख) दक्षिण एशिया के हालात

7. दक्षिण एशिया के हालात के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय यह महसूस करता है कि परमाणु-आयाम लिए हुए भारत-पाक टकराव अत्यधिक तनावग्रस्त स्थिति की वजह से विश्व शान्ति, स्थिरता और विकास के लिए गंभीर चुनौती पेश कर रहे हैं और इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय भारत-पाक टकराहट की गंभीर संभावनाओं के प्रति चिन्तित है और चाहता है कि लम्बे समय से टाली जा रही भारत-पाक वार्ताएँ पुन: प्रारंभ हो और इस क्षेत्र के अति टकराहट भरा राजनीतिक वातावरण ठंडा पड़े।

II भारत-पाक अभी भी शीत युद्ध मानसिकता से ग्रस्त

8. भारत-पाक शान्ति प्रक्रिया को पनु: बहाल करने की माँग के सम्बनध में भारत-पाक के अपने-अपने प्रत्युत्तर की स्थिति यह है कि दोनों ही अपने-अपने विशेष तरीकों से नकारात्मक रूख अपनाए हुए हैं जिसमें प्रत्येक का अपना-अपना विशेष उद्देश्य है। शान्ति प्रक्रिया की पुन: बहाली से कतराते हुए भारत पैतरेबाजी के तौर पर नई-नई शर्तें रखता है जबकि यही काम पाकिस्तान इसे वचन में स्वीकार कर व्यवहार में इसके उलट कर्म करता है।

9. भारत और पाकिस्तान के अपने-अपने नकारात्मक प्रत्युत्तर उनके परम्परागत शक्ति पूजक दृष्टिकोण से निकलते हैं जो सेना को इसका औजार समझते हैं और युद्ध को शक्ति का साधन समझते हैं। इसलिए दोनों देश यद्यपि वैश्वीकरण के मंत्र का जाप करते हैं परन्तु परस्पर एक दूसरे के खिलाफ उकसाने वाले वक्तव्य देते हैं-दुश्मनी भरी कार्यवाहियां करते हैं (जैसे दोनों राष्ट्रों के बीच घृणा का भाव भरना, सैन्यीकरण को उच्चतम प्राथमिकता देना, सीमाओं पर एक-दूसरे पर अघोषित हथियाबन्द हमले करना, इत्यादि) यह दर्शाता

है कि ये दोनों देश वर्तमान समय की नई भावनाओं यानि व्यापार का विकास के मुख्य पहलु के तौर पर उभरना तथा देशों के बीच व्यापार के फलने-फूलने के साधन के तौर पर राजनीतिक रिश्तों का दोस्ती और सहयोग के रूप में उभरना, एवं राष्ट्रीय आर्थिकता को वैश्विक आर्थिकता से एकीकृत करना आदि को समझने में असमर्थ रहे हैं। नतीजतन दुनियां के देशों का भारी बहुमत इस वक्त नई भावना के पक्ष में होते हुए भी भारत व पाकिस्तान अपने परम्परागत शक्ति आधारित नजरिये को आधुनिक बनाने में असफल हैं।

(क) भारत की जम्मू-कश्मीर नीति की मुख्य सैन्य प्राथमिकता

10. अपने शक्ति आधारित नजरिये (जो हमेशा ताकतवर स्थिति के समय बात करने को तैयार होता है न कि वास्तविकता को ध्यान में रखकर) का अनुसरण करते हुए भारत यह मानता है कि पाकिस्तान से उसे तभी बातचीत शुरू करनी चाहिए जब घाटी पर इसके सुरक्षा बलों का सम्पूर्ण नियंत्रण हो अथवा कम से कम उसको सुरक्षा बलों का राज्य के खाड़कुओं से हाथ ऊपर हो। हाल ही में अभी जब जम्मू-कश्मीर के खाड़कुओं का प्रभाव थोड़ा अधिक था तो भारत अतार्किक शर्तें रख रहा था जिससे दोनों देशों के बीच वार्ता की स्थिति को टाला जा सके (जैसे कि 1947 पूर्व का वह भाग जो पाकिस्तान के नियंत्रण में है उसे खाली करने की शर्त) पिछले साल (फरवरी 1999) जब भारतीय सेना अनुकूल स्थिति में थी तो भारत-पाक शान्ति प्रक्रिया शुरू करने के लिए वाजपेयी ने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री से बातचीत करने के लिए बड़े उत्साह से लाहौर यात्रा की। इस प्रकार आज भारत की जम्मू-कश्मीर नीति का मुख्य प्राथमिकता सैनिक तौर पर और अधिक लाभदायक स्थिति हासिल करने की है। इस तात्कालिक उद्देश्य को पाने के लिए भारत जम्मू-कश्मीर में अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में लगा है तथा हर कूटनीतिक साधनों का उपयोग पाकिस्तान को विश्व आतंकवाद एवं इस्लामिक कट्टरवाद का केन्द्र घोषित करवाने के लिए कर रहा है।

(ख) जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान की प्रधान सैन्य प्राथमिकता

11. पाकिस्तान के सैन्य दृष्टिकोण के अनुसार क्योंकि वह सैन्य शक्ति में तुलनात्मक तौर पर कमजोर है और इसलिए वह किसी भी द्विपक्षीय समान स्तर की बातचीत में भारत से प्रतियोगिता में जीत नहीं सकता है। इस कमजोरी से उभरने के लिए इसकी प्रधान प्राथमिकता जम्मू-कश्मीर मुद्दे के अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने की अथवा तृतीय पक्ष की मध्यस्थता (चाहे संयुक्त राष्ट्र संघ या अन्य कोई अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी हो या कोई भी शक्तिशाली देश हो जैसे अमेरिका) करवाने की है और रही है। स्पष्टतया यह उद्देश्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब जम्मू कश्मीर में खाडकू गतिविधि को तीव्र किया जाए। और आज पाकिस्तान वह हर कदम उठा रहा है जिससे खाडकू संभावनों को उच्चतम स्तर पर पहुँचाया जा सके। पूर्वानुसार यद्यपि पाकिस्तान-भारत के साथ बिना शर्त बातचीत करने की शर्त रख रहा है जबकि भारत-पाकिस्तान से बातचीत करने के लिए शर्तें रख रहा है, ऐसी स्थिति में पाकिस्तान खाड़कुओं की लड़ाकू प्रेरणा को मौत से गले लगाने (यानि आत्मघाती दस्ते) के स्तर पर पहुँचा रहा है।

(ग) भारत–पाक वार्ता की प्रबल संभावना

12. दुनिया की राजनीतिक प्राथमिकता भारत-पाक के बीच शान्तिपूर्ण वार्ता करवाने की है और भारत व पाकिस्तान की राजनीतिक प्राथमिकताएँ इन्हें टलवाने की है परन्तु यह स्थिति लम्बे समय तक चल नहीं सकती है। देर-सवेर विश्व राजनीतिक प्राथमिकता अपना असर डालेगी या दोनों देशों की सापेक्ष स्थिति में बदलाव दोनों देशों को वार्ता की मेज पर ले आयेगा। यही आज की सबसे अधिक प्रबल संभावना है। इस पल परमाणु आयामों सहित युद्ध की संभावना ज्यादा प्रबल नहीं है। परन्तु किसी भी एक पक्ष द्वारा दुस्साहसी कार्यवाही करने से या संयोगवश किसी भी समय युद्ध की संभावना वास्तविकता में बदल सकती है।

(घ) भारत और पाकिस्तान के शीत युद्ध नजरिये का आधार

13. भारत और पाकिस्तान द्वारा अभी तक अपनाए जा रहे शीत युद्ध के दृष्टिकोण का आधार 1947 के बाद के समय के दोनों देशों के अपने-अपने संकीर्ण और अन्धराष्ट्रवादी राष्ट्रवाद—यानि भारत के बहुसंख्यक राष्ट्रवाद और पाकिस्तान के सुन्नी राष्ट्रवाद में निहित है।

III जम्मू और कश्मीर भारत–पाक विवाद का केन्द्रीय मसला

14. विश्व जेके पर भारत-पाक शान्ति प्रक्रिया को पुन: बहाल करना चाहता है क्योंकि इन दो देशों के बीच विवाद का मूल स्रोत इसी राज्य को समझता है। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय भारत और पाकिस्तान को न तो व्यापार, ना ही आतंकवाद ना अन्य कोई उत्तेजक मुद्दे पर बातचीत करने की कह रहा है और ना ही कभी कहा है। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय न तो जेके के खाड़कूपन को आतंकवादी आन्दोलन का नाम देता है और ना कभी यह नाम दिया है। यही कारण है कि वह पाकिस्तान को विश्व आतंकवाद या इस्लामिक कट्टरवाद का आधार क्षेत्र के रूप में चरित्रित नहीं करता है ना कभी चरित्रित किया है। और आगे, यही कारण है कि जेके मसले को द्विपक्षीय मसला नाम देने के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय भारत और पाकिस्तान को हमेशा जेके के लोगों को शामिल करके इसे हल करने का मशविरा देता रहा है और दे रहा है। जेके सवाल पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सम्पूर्ण अनुभव से यह तर्क निकलता है कि जेके विवाद में जेके के लोगों को यह तीसरी प्रभावित पार्टी के रूप में स्वीकार करता है, इस प्रकार इसे यह त्रिपक्षीय राजनीतिक समस्या के रूप में परिभाषित करता है।

15. आज, प्रत्येक जानता है कि दोनों देशों के उद्भव से प्रतिद्वन्द्विता का प्रमुख केन्द्र बिन्दु जम्मु-कश्मीर का मसला रहा है और है। यही वह मसला है जो आमतौर पर दोनों देशों के राष्ट्रीय कार्यक्रमों और उनकी अपनी-अपनी उच्च प्राथमिकताओं को तय करता है। दोनों देशों ने 3 युद्ध लड़े हैं और इसी मसले पर लगातार एक दूसरे के प्रति शत्रुता का बर्ताव करते रहे हैं।

16. दोनों विरोधी, भारत और पाकिस्तान भी जेके की विवादित प्रकृति के तथ्य को स्वीकार करते हैं यद्यपि इनमें से प्रत्येक विवाद की अपनी ही व्याख्या करता है।

(क) भारतीय पक्ष

17. भारत हमेशा से यह कहता रहा है कि जम्मू-कश्मीर के राजा द्वारा हस्ताक्षरित भारत में विलय होने का विलय पत्र अन्तिम और अपरिवर्तनीय है व रहा है तथा जम्मू-कश्मीर पूर्णतया भारत का अन्दरूनी मामला है व रहा है और जम्मू-कश्मीर मुद्दे में यदि कोई प्रश्न बाकी रहा है तो वह पाकिस्तान द्वारा जम्मू-कश्मीर के एक भाग पर उसके अवैद्य कब्जे को छुड़ाने का है। परन्तु यह समझ जम्मू-कश्मीर की वास्तविकता की सही तस्वीर का प्रतिनिधित्व नहीं करती, जो निम्न तथ्यों से जाहिर हैं–

(अ) भारत के तत्कालीन गर्वनर जनरल द्वारा उस समय विलय पत्र को अस्थाई तौर पर स्वीकार किया गया, जिसने उसे सशर्त स्वीकार किया था और उस विलय पत्र पर यह टिप्पणी दर्ज की थी कि इस मुद्दे पर राज्य में जनमत संग्रह करवाये जाने के बाद ही विलय होना अन्तिम माना जायेगा।

(ब) पुन: भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में जम्मू-कश्मीर के विलय को अस्थाई व्यवस्था के तौर पर अंगीकार किया था। वहाँ भारत ने स्वयं यह प्रस्ताव रखा था कि राज्य में जनमत संग्रह करवाकर लोगों की इच्छा क्या है यह सुनिश्चित किया जायेगा।

(स) और आगे, सन् 1947 से 1999 तक भारत ने जम्मू कश्मीर की समस्या को हल करने के लिए पाकिस्तान के साथ कई श्रृंखलाओं में बातचीत की है और संयुक्त दस्तावेजों पर अधिकाधिक तौर पर हस्ताक्षर भी किए है, जम्मू-कश्मीर मुद्दे के शान्तिपूर्वक हल के लिए 1949 का नेहरू-लियाकत समझौता, जम्मू-कश्मीर प्रश्न को निपटाने के लिए 1962 में स्वर्णसिंह-जुल्फिकार भुट्टो वार्ता, भारत-पाक महासंघ के चौखट्टे में जम्मू-कश्मीर मुद्दे को निबेड़ने के लिए पाकिस्तान को सन् 1964 में भेजा गया शेख अब्दुला शिखरमण्डल (जिसे उस समय नेहरू का समर्थन प्राप्त था), सन् 1972 का शिमला समझौता जो जम्मू-कश्मीर राज्य को विवादास्पद होना स्वीकार करता है। (इस समझौता के अनुच्छे 6 के अनुसार), और 1993-99 के मध्य भारत और पाकिस्तान के बीच जम्मू-कश्मीर सहित विभिन्न विवादास्पाद मुद्दों को हल करने के लिए भारत-पाक वार्ता के कई दौर जिसमें 1999 की लाहौर घोषणा शामिल है।

18. जेके मामले में स्वतंत्र पर्यवेक्षकों को जो बात खटकती है वह यह है कि जम्मू-कश्मीर मुद्दे पर भारत का मत सामाजिक वास्तविकताओं से परे है और कुछ मामलों में दोगलापन लिए हुए है। देश के अन्दर लोगों को यह कहा जाता है कि जम्मू-कश्मीर का मुद्दा आन्तरिक मुद्दा है। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर बड़ी आसानी से यह स्वीकार किया जाता है कि भारत-पाकिस्तान के बीच जम्मू-कश्मीर का मुद्दा विवादास्पद मुद्दा है। हुर्रियत कांफरेन्स से यह कहा जाता है कि वह भारत के संविधान के दायरे में ही बातचीत करे परन्तु जम्मू-कश्मीर की सीमा निगरानी के लिए पिछले 50 साल से संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यवेक्षकों के कार्यालय वास्तविक स्थिति को स्वयं उजागर कर रहे हैं। तृतीय पक्ष की मध्यस्थता इस दलील के साथ रद्द की जाती है कि शिमला समझौते में जम्मू-कश्मीर मुद्दे को द्विपक्षीय तौर पर हल करने का प्रावधान है, परन्तु जब भारतीय विमान का अपहरण कर असहाय अवस्था में कन्धार हवाई अड्डे पर उतार लिया जाता है तो भारत का विदेश मंत्री न केवल

अमेरिकी सरकार और अन्य विकसित सरकारों से बल्कि पाकिस्तान सरकार से भी यह विनती करते हैं कि वे नई दिल्ली और अपहरणकर्ताओं के मध्य समझौता करवाने के लिए दखन्दाजी करें। विश्व पैमाने पर भारत यह दावा करता है वह दुनिया में सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है और यह भी घोषणा करता है कि जम्मू-कश्मीर भारतीय राष्ट्रीयता का सारतत्व है। परन्तु यह कश्मीरी जनता के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करता है एवं उन्हें लोकतांत्रिक या मानव अधिकारों का उपभोग करने के लायक भी नहीं समझता।

(ख) पाकिस्तान का पक्ष

19. पाकिस्तान दावा करता है कि हर तरह से राजनीतिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक तौर पर जम्मू-कश्मीर उनका है और वह यह भी दावा करता है कि 1947 से जब दो देश के सिद्धान्त पर बँटवारा हुआ, 1947 पूर्व का जम्मू-कश्मीर राज्य जो मुस्लिम बहुसंख्यक इकाई था, इस्लाम आधारित सिद्धान्त के अनुसार पाकिस्तान का भाग बनता है। सांस्कृतिक तौर पर पाकिस्तान का कहना है कि जम्मू-कश्मीर नैतिक और नीतिगत मानदण्डों के अनुसार वह भारत की तुलना में पाकिस्तान से कहीं अधिक नजदीक है। भौगोलिक तौर पर पाकिस्तान का कहना है कि जम्मू-कश्मीर राज्य पाकिस्तान का भौतिक हिस्सा बनता है। इसकी और आगे दलील यह है कि हिन्दू बहुसंख्यक राज्य हैदराबाद और जूनागढ़ जो चारों और से भारत संघ से घिरे हुए थे इनको भारत सरकार ने जबरदस्ती अपने में शामिल कर लिया जबकि इन दोनों राज्यों के शासकों ने अपने में निहित संवैधानिक अधिकारों के तहत् उस समय पाकिस्तान में विलय की घोषणा की थी। इसके बाद भारत में जनमत संग्रह करवाया गया ताकि भारत में इनके विलय की पुष्टि जनता द्वारा करवाई जा सके, परन्तु जम्मू-कश्मीर के विलय के मामले में पाकिस्तान के मतानुसार भारत सरकार न तो बहुसंख्यक जनसंख्या के मानदण्ड को और ना ही जनमत संग्रह के सिद्धान्त को स्वीकार करती है।

20. हालांकि, पाकिस्तान का पिछले 52 वर्षों का व्यवहार स्वत: ही इसके दो राष्ट्रों या पैन-इस्लामिक सिद्धान्त को धाराशायी कर देता है और इसके इस्लाम आधारित राष्ट्रीय राज्य के सिद्धान्त की बुनियाद पर इसके जम्मू-कश्मीर पर दावें के खोखलेपन को प्रकट करता है। तथ्यों की शृंखला यह साबित करती है कि धर्म आधारित राष्ट्रवाद कारगर नहीं हैं, विशेषतौर पर वैश्वीकरण या अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय राज्यों के दौर में धर्म आधारित राष्ट्रवाद आगे नहीं चल सकता है, मसलन, मूल पाकिस्तान का मुस्लिम बहुसंख्यक-प्रान्त यानि, बांग्लादेश जिसमें कुल पाकिस्तान की जनसंख्या के आधे से अधिक जनसंख्या थी का अलग होना, विभिन्न नस्ली समुदायों द्वारा पंजाबी प्रभुत्व से बाहर निकलने के लिए किए जा रहे लोकतांत्रिक आन्दोलन (जैसे सिंधि, बलूची, पखतून, मुहाजिर आदि), मुस्लिम समुदाय में शिया-सुन्नी विभेद, इस्लाम-आस्था आधारित पंथों की दयनीय स्थिति, जैसे अहमदिया, बहाई आदि, जिन्हें प्रभुत्वकारी सुन्नी उलेमाओं द्वारा गैर-इस्लामिक घोषित किया गया, पाकिस्तान अल्पसंख्यक जैसे हिन्दू, सिख, बंगाली आदि की भंयकर दयनीय अवस्था, सैन्य प्रभुत्वकारी राजनीति और अराजकता, असफल आर्थिकता, छाया हुआ भ्रष्टाचार, फैली हुई गरीबी और बेरोजगारी, आदि।

(ग) जेके विवाद का आधार

21. उपरोक्त तथ्यों का सार-संक्षेप निकाले तो यह देखा जा सकता है कि जम्मू-कश्मीर राज्य पर अकेले एक ही देश भारत या पाकिस्तान के अधिकार का दावा युक्तियुक्त नहीं है।

22. जम्मू-कश्मीर के प्रादुर्भाव के प्रश्न और इससे उपजी भारत-पाकिस्तान के बीच पारस्परिक निरन्तर विद्वेषता की और मुड़े तो पाते हैं कि इसका आधार भारत के 1947 के बँटवारे में निहित है। 1947 का भारत विभाजन स्वयं 1947 पूर्व की दो भ्रान्त धारणाओं वाली राष्ट्रवादी किस्मों यानि उदार हिन्दू दिशा वाला गांधीवाद और मुस्लिम लीग द्वारा प्रायोजित पान-इस्लामवाद के मध्य विवाद से उत्पन्न हुआ है, पहला अधिक दोषी है क्योंकि वह बहुसंख्यक जनता का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता है और इसलिए वह अल्पसंख्यक समुदाय का विश्वास जीतने में असफल रहा। इन दो राष्ट्रवादी टकराहटभरी राजनीति जो पहले भी थी और आज भी है, इन्होंने भारत व पाकिस्तान के 1947 के बाद के इतिहास को काफी हद तक शक्ल दी है, जिसने इन दोनों देशों की जनता, विशेषतौर पर 1947 के बाद के जम्मू-कश्मीर में बहुत अधिक कीमत वसूल की है।

IV 52 वर्ष के भारत-पाक टकराव के दुष्प्रभाव

23. पिछले पाँच दशकों से जेके प्रश्न पर नई दिल्ली और इस्लामाबाद न कम होने वाले बेर-भाव की स्थिति में जकड़े हुए है। इस दौरान तीन भारत-पाक युद्ध हो चुके हैं और दोनों देशों की सेनाओं के बीच हजारों बड़ी और छोटी मुठभेड़ें हो चुकी हैं तथा दोनों में घृणा और अधिक गहराई है। दोनों के चिरस्थायी दुश्मनी के राष्ट्रीय उद्देश्य और इससे उपजी सैन्यीकरण की प्राथमिकता रही है ताकि दुश्मन से भिड़न्त की जाए और उसे हराया जा सके, इस दुश्मनी ने अत्यधिक हानिकारक असर डाला है और निरन्तर डाल रही है। इससे एक तरफ जेके मुद्दे को और अधिक असाध्य बनाया है और दूसरी तरफ भारत व पाकिस्तान की जनता को भारी पीड़ा पहुँचाई है।

24. जेके समस्या की और अधिक जटिलता ने यह स्वरूप लिया है कि जनता को लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा है विशेषतौर पर घाटी की चुनाव प्रक्रिया में जनता को लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित किया गया है। जेके में खाड़कूपन का बढ़ना, विशेषतौर पर कश्मीरी क्षेत्र में, और रोजाना मानव हत्याओं का सिलसिला बढ़ना जिसमें आम आदमी शामिल है, बेमिसाल मानव अधिकारों का हनन होना, जनता में मुफलिसी और कठिनाइयों का बढ़ना, विशेषतौर पर घाटी में न समाप्त होने वाली भारत-पाक दुश्मनी का लोगों की जिन्दगी पर नुकसानदायक असर ने सारे रिकार्ड तोड़ दिए हैं। यह रिकार्ड उतना विभत्स है कि दोनों देशों के टकराहट और प्रचारक घड़ों के संचालक और प्रवर्तक किसी भी मानदण्ड से इसे सही नहीं ठहरा सकते हैं। इससे भारत-पाक जनता को विपदाओं और कठिनाइयों से ही गुजरना पड़ा है।

26. संक्षेप में, भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के लोग दुनिया के सबसे गरीब 10 देशों के वंचित लोगों में हैं। इन दोनों देशों की करीब दो तिहाई आबादी गरीबी की श्रेणी में आती है। करीब 40 प्रतिशत भारत के लोग और 50 प्रतिशत पाकिस्तान के लोग गरीबी

की रेखा के नीचे जीवन बसर करते हैं। इनकी करीब आधी आबादी अनपढ़ है। लाखों लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है। एक तिहाई लोगों को अपने घर नहीं है। तीन चौथाई लोगों को उचित शौच की सुविधा उपलब्ध नहीं है, 60 प्रतिशत बच्चे बुनियादी व गुणात्मक शिक्षा से वंचित हैं। पर्यावरण गिरावट और वन-विहिनता के मामले में दोनों के ग्राफ ऊपर है सामाजिक जिन्दगी में चारों और ,विशेषकर आर्थिक जिन्दगी में असमानता बढ़ती जा रही है।

27. भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में मानवीय विपदाओं व हानि का कारण इनकी आपसी टकराहट की दिशा में निहित है। उनमें से प्रत्येक अपने अमूल्य श्रोतों को हथियार और सैन्यीकरण में निरन्तर बर्बाद कर रहा है। परन्तु ये दोनों अब भी अपने पिछले अनुभवों से कोई सबक नहीं लेना चाहते हैं और निरन्तर उसी टकराहट भरे रास्ते पर चल रहे हैं जिसे उनको मौजूदा आपसी रिश्तों में देखा जा सकता है।

V भारत–पाक संबंधों की वर्तमान अवस्था

28. इस समय भारत-पाक संबंध निम्नतम स्तर पर है। पिछले 50 सालों में सिवाय तीन-भारत-पाक युद्धों को छोड़कर इतने कड़वे कभी भी नहीं रहे हैं। कारगिल संकट और भारतीय विमान का अपरहण कर कंधार उतारने की घटना ने वर्तमान भारत-पाक तनाव में इजाफा ही किया है।

29. आज भारत और पाकिस्तान अपने-अपने देश के राष्ट्रीय प्रबन्ध में हर जगह घटना में इसके अलावा और कुछ नहीं देखते कि उन घटनाओं के पीछे एक-दूसरे देश का विखण्डनकारी वरदहस्त है। भारत को दुष्ट आई.एस.आई. का प्रभाव चारों ओर नजर आता है जो भारत की प्रत्येक पहल और उपलब्धि को ध्वंस कर रही है। जबकि पाकिस्तान ऐसा ही मससूस करता है कि उसकी उपलब्धियों को चालाक रॉ या आई.बी. धवंस करने में लगी है।

30. इस पारस्परिक भय का मुख्य कारण दोनों विरोधियों की प्रचलित अवास्तविक रणनीतिक अवधारणाओं में निहित है।

31. भारत का सोच है कि पाकिस्तान का द्वेष अन्तिम पड़ाव पर है और इस समय यह घोषित करवा दिया जाए कि पाकिस्तान इस्लामिक रूढ़ीवाद और विश्व आंतकवाद का स्रोत है तो दुनिया में इसे अलग-थलग किया जा सकता है और अन्त में इसे अकेले कोने में धकेला जा सकता है।

32. पाकिस्तान को यह विश्वास है कि जेके में पूर्णतया खाड़कूपन का समर्थन करने और उसे तेज करने से भारत को न समाप्त होने वाले संघर्ष में उलझाया जा सकता है जो उसे अपमानजनक हार की हालात में ले जा सकता है और अन्त में भारत को जेके राज्य से बाहर निकाला जा सकता है। पाकिस्तान के अनुसार यह विश्वास ऐसी प्रक्रिया उत्पन्न कर सकता है जो भारत के एकात्मक पहलू और उसके विभिन्न नस्लीय-क्षेत्रीय शक्तियों के मध्य टकराहट को तेज कर सकता है जिसका फल भारत के विखण्डन में निकल सकता है।

33. भारत और पाकिस्तान की उपरोक्त समझ के व्यवहारिक स्वरूप को जम्मू-कश्मीर की मौजूदा जमीनी वास्तविकता में देखा जा सकता है।

VI जम्मू–कश्मीर में वर्तमान जमीनी वास्तविकता

34. जम्मू-कश्मीर में जो कुछ आज हो रहा है वह 52 वर्ष पुराने भारत-पाक टकराहट और वर्तमान भारत-पाक संबंधों की स्थिति का स्वाभाविक परिणाम मात्र है। आज इनकी टकराहट ने हिंसा के फैलाव के रूप में एक नई अवस्था ग्रहण कर ली है, राज्य में खाड़कूपन शुरू होने के 10 वर्ष बाद जमीनी स्थिति हर तरह से बिगड़ी है। इस स्थिति के मुख्य पहलुओं को निम्न प्रकार से बयान किया जा सकता है।

35. (क) खाड़कूपन बढ़ा ही है, इसके हमला करने की क्षमता गहरी और विस्तृत हुई है। आत्मघाती दस्तों की अपनाई गई नई रणनीति से इसको काफी लाभ मिला है। जिसने इसे इस योग्य बनाया है कि वह भारतीय सुरक्षा बलों से उसकी कार्यनीतिक पहल को छीन ले। आज सम्पूर्ण घाटी में खाड़कुओं के आदेश ही लागू होते हैं।

35. (ख) नई दिल्ली शुरू से पूर्णतया जम्मू-कश्मीर समस्या के सैनिक हल पर निर्भर रहा है परन्तु यह हल स्वाभाविक तौर पर बेअसर साबित हुआ है जैसा कि दुनिया के अन्य भागों में हुआ है। जरा देखें, आडवानी जी की सभी सक्रिय पहलकदमियाँ बेकार गई है। वास्तविकता का स्थान कभी भी नारेबाजी नहीं ले सकती। नई दिल्ली की राजनीतिक दिशा भ्रान्तियों का पुँज है। नतीजा यह है कि भारत इस समय जम्मू-कश्मीर में अपने काल की बुरी से बुरी स्थिति से सामना कर रहा है।

35. (ग) आज भारत के सुरक्षा बलों की स्थिति खुशनुमा नहीं है। भारतीय सुरक्षाबलों के मजबूत ठिकानों पर खाड़कूओं के आत्मघाती दस्तों के दिलेराना हमले, खाड़कूओं के सामने सुरक्षा बलों के कार्यनीतिक पहल का ह्रास, सुरक्षा बलों की हत्या की दर में तेजी से बढ़ौतरी, लगातार कार्य से सुरक्षा बलों में थकावट, अपने प्रियजनों से लम्बे समय तक दूरी, इन सबसे ऊपर विपरीत सामाजिक वातावरण का धीरे-धीरे असर ने सुरक्षा बलों के मनोबल को कुछ हद तक आघात पहुँचाया है।

35. (घ) राज्य प्रशासन वित्तीय और सुरक्षा संबंधों के मामलों में पूर्णतया केन्द्र पर निर्भर होने के कारण पूरी तरह से नकारा हो गया है।

35. (ड़) गरीबी, बेरोजगारी और मानव अधिकारों की दृष्टि से लोगों की आर्थिक, राजनीतिक स्थिति, विशेषतौर पर घाटी में बदत्तर हो गई है। लोगों की मौजूदा बन्दूक आधारित सामाजिक व्यवस्था के प्रति मोहभंग की भावना में और अधिक इजाफा हुआ है। ऐसा लगता है कि अलगाव की लहर घाटी पर छा गई है। यह सब इंगित करते है कि खाड़कुओं के कार्यक्रम को और अधिक समर्थन मिल रहा है।

36. जम्मू-कश्मीर के दृष्टि पटल पर हो रही घटनाएँ वास्तव में चेतावनी देने वाली है। घाटी में घातक टकराव, तीव्र भारत-पाक तनाव निर्मित होना, दोनों ओर से युद्ध जैसा खतरा बनना, सभी का जेके केन्द्रित एकमात्र एजेन्डा है। आज न तो भारत और ना ही पाकिस्तान सहन कर सकते हैं कि जम्मू कश्मीर का कोई भाग जो अभी उनके नियंत्रण में है और उनके हाथ से निकल जाए। पाकिस्तान के लिए जम्मू-कश्मीर उनकी श्वास नली

है और विभाजन का अपूर्ण एजेन्डा है। भारत के लिए जम्मू-कश्मीर उनके राष्ट्रवाद की आत्मा है और उनकी राष्ट्रीयता का सारतत्व है। दोनों ने यह ठान रखी है कि किसी भी कीमत पर जम्मू-कश्मीर उनका ही रहे। इसका अर्थ है कि भारत-पाकिस्तान और दक्षिण एशिया का भी भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि जम्मू-कश्मीर के हालात आगे क्या करवट लेते हैं। जब तक जम्मू-कश्मीर उबलता रहेगा भारत-पाकिस्तान और अन्य दक्षिण एशियाई देश शान्ति से नहीं जी सकेंगे।

VII जेके दलदल से निकलने के लिए राजनीतिक रास्ते की तलाश

37. सामाजिक विज्ञान दर्शाता है कि एक जटिल समस्या के हल के लिए इस प्रक्रिया के विकास की तीन तरफा समझ की आवश्यकता होती है। वह है–

(अ) इसके पूर्व इतिहास का अनुभव,

(ब) इसकी वर्तमान अवस्था, और

(स) इसके विकास की दिशा।

उपरोक्त वर्णित उसूल के चलते हुए यह आवश्यक है कि जेके मसले के वास्तविक हल के लिए इसकी 3 तरफा वास्तविकता पर नजर डाली जाए।

(क) जेके के 52 वर्षीय ऐतिहासिक अनुभव के सबक

38. जेके समस्या के 52 साल के ऐतिहासिक अनुभव की रोशनी में यह देखा जा सकता है कि भारत व पाकिस्तान की अपनी-अपनी टकरावावादी राजनीति ने इन दोनों को कहीं का नहीं छोड़ा। बदतरीन, इसने जम्मू-कश्मीर को मानवीय और भौतिक दोनों रूपों में अत्यधिक हानि पहुँचाई है और पहुँचा रही है। इसने बदतरीन काम किया है और कर रही है जब तक और जहाँ तक इस टकरावावादी राजनीति को छोड़ा नहीं जाता, तब तक जेके समस्या का उचित हल नहीं निकाला जा सकता।

39. जेके समस्या का टकरावावादी राजनीति से हल क्यों नहीं निकाला जा सकता है, इसके दो कारण है, प्रथम, यह टकरावावादी राजनीति राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता (जो राष्ट्रों के बीच दोस्ती और सहयोग की माँग करती है और इनके बीच सभी तरह के तनावों और विवादों का हल बातचीत के तरीके से चाहती है) की नई उभर रही विश्व वास्तविकता से मेल नहीं खाती है, टकराव की राजनीति और इसका युद्ध का तरीकाकार अपनी प्रासंगिकता काफी हद तक खो चुके हैं। (परन्तु अभी तक पूर्णतया अप्रासंगिक नहीं बने हैं)। द्वितीय, भारत-पाक का ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि यह विभाजन की टकरावावादी राजनीति ही थी जिसने जेके मसले को पैदा किया। अब, इस समस्या को पैदा करने वाला वह कारण इसका समुचित समाधान नहीं हो सकता है।

40. जेके मसले के 52 साल के इतिहास से सबक मिलता है कि जो कोई भी जेके मसले का वास्तविक हल चाहता है उसके लिए यह अति आवश्यक है कि वह इस सवाल के सम्बन्ध में एक वास्तविक और उचित प्रतिक्रिया द्वारा सभी टकरावावादी विकल्पों का विरोध करें। स्पष्टतया, ऐसे प्रस्तावों जिनमें भारत-पाक फूट पैदा हो या राज्य में साम्प्रादायिक विभाजन रेखा खिंचती हो या राज्य का बहुल चरित्र टूटता हो या राज्य

भारत-पाकिस्तान के बीच विभाजित होता हो, सभी टकरावावादी कार्यक्रम है। जम्मू-कश्मीर के साम्प्रदायिक विभाजन का प्रस्ताव, एक देश के साथ विलय का प्रस्ताव, भारत और पाकिस्तान के बीच राज्य के बँटवारे, जनमत संग्रह, आत्म निर्णय, इत्यादि के प्रस्ताव इसी टकरावावादी राजनीति के शीर्षक में आते हैं।

41. एक वाक्य में, जेके राज्य की एक इकाई के रूप में अखण्ड रखने के उसूल (जिसमें इसकी प्रत्येक नस्ली-क्षेत्रीय इकाई के लिए स्वायत्तता का समान पैमाना शामिल है) पर कोई हल निकाला जाना चाहिए।

(ख) वर्तमान जेके वास्तविकता की माँग

42. वर्तमान जेके वास्तविकता और हकीकी जमीनी हालात से उभर रही आवश्यकताओं पर नजर डालें तो यह देखा जा सकता है कि 52 वर्ष पुरानी भारत-पाक राजनीति, जो परस्पर भड़काने वाला चरित्र लिए हुए है तथा परमाणु शस्त्र एवं अन्य नर-संहारक हथियारों से सुसज्जित हैं ने जेके राजनीतिक प्रक्रिया को आज ज्वलनांक स्थिति में पहुँचा दिया है। यदि इस घातक ज्वलंनाक स्थिति को तुरन्त शान्त नहीं किया गया तो यह महाद्वीप में खतरनाक विस्फोट की स्थिति की तरफ ले जा सकता है जिसका दुष्प्रभाव विश्व पर भी पड़ सकता है। यद्यपि दुनियां के लोगों की राय के दबाव के कारण यद्यपि तुरन्त भारत-पाक युद्ध होने की संभावना नहीं परन्तु इस मुद्दे की संकटपूर्ण प्रकृति की माँग है कि इस पर पूर्ण चौकसी रखी जाए।

43. वर्तमान ज्वालामुखीय और खतरनाक जेके वास्तविकता की स्थिति के मद्देनजर यह आवश्यक हो गया है कि आम तौर पर विश्व (भारत और पाकिस्तान सहित) में सभी शान्तिप्रिय लोगों और खासतौर पर जेके के लोगों को भारत-पाक तनाव की चली आ रही अत्यधिक गर्मा-गर्म चुनौती को घटाने का प्रयास करना चाहिए और इस प्रकार जम्मू-कश्मीर में तथा भारत व पाकिस्तान के बीच तनाव मुक्त वातावरण बनाना चाहिए। भारत-पाक शान्ति प्रक्रिया में यह हमारी सर्वप्रथम प्राथमिकता अथवा तात्कालिक उद्देश्य होना चाहिए। यह तात्कालिक उद्देश्य स्वाभाविकत: कई एक दूसरे से जुड़े हुए कार्यों को पूर्ण करने की माँग करता है। जो सारत: निम्न है–

(क) पहला कार्य यह करना चाहिए कि एक तरफ लोगों का दबाव भारत और पाकिस्तान दोनों पर डाला जाए कि वे बिना शर्त शान्ति प्रक्रिया को पुन: बहाल करें और दूसरी तरफ सभी आल पार्टी हुर्रियत नेताओं को रिहा किया जाए और उनसे बिना शर्त वार्ता की जाए।

(ख) दूसरा कार्य यह किया जाना चाहिए कि भारत और पाकिस्तान से इस आशय की सार्वजनिक घोषणा करवाई जाए कि वे जम्मू-कश्मीर समस्या का हल शान्तिपूर्ण तरीके से निकालेंगे। अच्छा यह रहेगा कि दोनों आपस में युद्ध नहीं करने का समझौता करें। इसी प्रकार की उद्घोषणा आल पार्टी हुर्रियत कान्फरेन्स जो जम्मू-कश्मीर के दोनों क्षेत्रों में कार्यशील है तथा अन्य सभी राजनीतिक संगठनों की तरफ से होनी चाहिए।

(ग) तीसरा कार्य यह होना चाहिए कि नियंत्रण रेखा की निगरानी भारत-पाक के संयुक्त पर्यवेक्षकों जिन्हें दोनों पक्ष आपस में तय करें, द्वारा की जाए।

(घ) चौथा कार्य यह होना चाहिए कि भारत-पाक दोनों से यह स्वीकार करवाया जाए कि जम्मू-कश्मीर मुद्दे की प्रकृति त्रिपक्षीय है जिसमें भारत-पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोग शामिल हो।

(ड़) पाँचवा कार्य यह है कि भारत और पाकिस्तान से यह कहा जाए कि वे पहले से सहमत दो समझौतों, यानि एक सियाचीन और दूसरा वुलर वेराज को अन्तिम निर्णायक रूप दें। इन समझौतों पर हस्ताक्षर के बाद उसे वैज्ञानिक शोध केन्द्र के रूप में बदल दिया जाए जिसे भारत और पाकिस्तान संयुक्त रूप से चलायें। उसके बाद सर क्रीक का अन्य समझौता, जिस पर दोनों देशों के बीच पहले से विचार-विमर्श हो चुका है–पर भी दोनों देशों के हस्ताक्षर करवाये जा सकते हैं।

(च) छठा कार्य यह होना चाहिए कि राज्य में व विशेष तौर पर घाटी में धरातल स्तर पर शान्तिपूर्ण वातावरण स्थापित किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि भारतीय सुरक्षा बल वापस अपनी बैरकों में जाएं और खाड़कू अपनी बन्दूक चलाना बन्द करें। ऐसा युद्ध विराम का समझौता भारत-पाकिस्तान और खाड़कुओं के प्रतिनिधियों के बीच होना चाहिए। यह निर्धारित अवधि (मानों 1 महिना) के लिए होना चाहिए और तब समय-समय पर इसे आगे बढ़ाया जाए। साथ ही युद्ध विराम समझौता हो जाने पर सभी राजनीतिक नजरबंदियों को रिहा किया जाना चाहिए। संयुक्त रूप से सहमत एक आयोग बैठाया जाना चाहिए जो भारत-पाकिस्तान और खाड़कूओं तीनों द्वारा मानव अधिकारों के उल्लंघन की शिकायतों की जाँच करे और यह सिफारिश की जानी चाहिए कि सभी पीड़ित परिवारों को उचित मुआवजा दिया जाए। मुआवजा कोष भारत और पाकिस्तान की उस सहयोग राशि से बनाया जाना चाहिए जिसके लिए वे अपने-अपने मामले में जिम्मेवार है। खाड़कूओं द्वारा किए गए मानव अधिकारों के उल्लंघन के मुआवजे को अदा करने की जिम्मेवारी संयुक्त रूप से भारत व पाकिस्तान को उठानी चाहिए।

(छ) सातवाँ कार्य यह होना चाहिए कि भारत और पाकिस्तान नियंत्रण रेखा पर से अपने सुरक्षा बलों को अपनी-अपनी तरफ 1 किलोमीटर हटाकर मुठभेड़ नहीं हो पाने की स्थिति उत्पन्न करें दोनों देशों के बलों द्वारा उस मुठभेड़ विहीन स्थानों पर संयुक्त भारत-पाक मित्रता पार्क स्थापित किए जाने चाहिए। इसी क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थानों पर भारत-पाक मित्रता व्यापार केन्द्र खोले जाने चाहिए, जैसे जम्मू में सुचेतगढ़ में, कश्मीर में उड़ी में आदि। पँजाब और राजस्थान की भारत-पाक सीमा पर भी वाघा, मुनाबाव, आदि रणनीतिक बिन्दुओं से पाकिस्तान की तरफ से कुछ महत्वपूर्ण स्थानों को रेल और बस की सेवाओं से जोड़ा जा सकता है।

44. यह सही है कि उपरोक्त तनावमुक्त कार्यवाहियाँ दोनों देशों की एक दूसरे के प्रति मौजूदा दुश्मनी भरी नजरिये की स्थिति में मेल नहीं खाती हैं। इसका अर्थ है कि भारत और पाकिस्तान में इसके लिए राजनीतिक आधार की कमी है। और इस प्रकार भारत और पाकिस्तान के संबंधों में सामान्य स्थिति लाए जाने का वातावरण बहुत अधिक अनुकूल नहीं हैं। परन्तु इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि असामान्य मामले में प्रकृति और समाज में प्राय: अति असाधारण तरीकों से ही निपटे जाते हैं।

(ग) भारत–पाक और जम्मू–कश्मीर के लोगों के लिए भविष्य में विकास की दिशा

45. अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की वर्तमान दुनिया में कोई देश आज लम्बे समय तक अलग-थलग रह नहीं सकता है। अब देश इस स्थिति में आ गये है जहाँ उनकी वृद्धि और विकास के लिए उनके मध्य आर्थिक एकीकरण (पूँजी, तकनीकी, श्रम, माल और मानवीय तथा भौतिक स्रोत आदि के व्यापार के जरिये) अति आवश्यक हो गया है। विकास की यह मजबूरी दुनिया के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय मुक्त व्यापार क्षेत्र स्थापित कर अब अपने आपको अभिव्यक्त कर रही है। ये क्षेत्रीय मुक्त व्यापार क्षेत्र वास्तव में आने वाली विश्व व्यवस्था की भ्रूण अवस्था है। इससे आगे यह आशा की जा सकती है कि यह अवस्था इस पृथ्वी पर विश्व मानव समाज के निर्माण के दौर में प्रवेश कर जायेगी।

46. इन क्षेत्रीय जुड़ावों के प्रादुर्भाव के अनुसरण में भारत व पाकिस्तान सहित दक्षिणी एशिया के देशों ने भी दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन में अपने आपको संगठित किया है। स्वाभाविकतया आज सार्क इस क्षेत्र के देशों में भविष्य के विकास की दिशा का प्रतिनिधित्व करता है।

47. अन्य क्षेत्रीय संगठनों की तरह सार्क का परिप्रेक्ष्य यह माँग करता है कि इस क्षेत्र के देशों में सभी आन्तरिक और बाह्य टकराहटों को मित्रता और सहयोग की राजनीति तथा टकराहट करने वाले पक्षों के मध्य बातचीत के तरीके से हल किया जाना चाहिए ताकि इन पक्षों की आकाँक्षाओं और हितों को संतुलित करते हुए नजदीक लाया जाये। इस प्रकार सार्क का परिप्रेक्ष्य, इसकी राजनीति और तरीकाकार हमें एक तरफ जेके समस्या के दलदल से निकलने का रास्ता प्रदान करता है और दूसरी तरफ जेके, भारतीय पाकिस्तानी जनता का एक साँझा भविष्य निर्माण करने की शक्ति प्रदान करता है।

48. उपरोक्त समझ के आधार पर आगे बढ़ते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि जम्मू-कश्मीर समस्या का प्रासंगिक, न्यायपूर्ण और निष्पक्ष हल यही हो सकता है। जो जम्मू-कश्मीर मुद्दे से जुड़े तीनों पक्षों, यानि भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के सामूहिक सह व्यक्तिगत आकांक्षाओं और हितों को संतुलित करें। निम्न तीन सूत्री फारमूला इस उद्देश्य की समुचित पूर्ति करता है।

(क) भारत और पाकिस्तान के अपने-अपने हितों का सन्तुलन जम्मू-कश्मीर राज्य के बारे में भारत-पाक (या तीनों पक्ष ऐसा तय करें तो सार्क) सहराज्य स्थापित करके बनाया जाना चाहिए। जिसे जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा, विदेशी मामले और मुद्रा को संभालना चाहिए और जम्मू-कश्मीर के मामले में उसके पास सम्प्रभुसत्ता होनी चाहिए।

(ख) जम्मू-कश्मीर का एक स्वतंत्र राज्य होना चाहिए जिसकी सम्प्रभुसत्ता भारत-पाक सहराज्य में निहित होनी चाहिए। राज्य को एक संघीय संविधान अपनाना चाहिए जिसमें एक साँझा राज्याध्यक्ष चाहिए, एक साँझी लोक सेवा आयोग, एक साँझा मानव विकास और एक साँझा पर्यावरण विकास आयोग होना चाहिए। ये सभी नस्ली-क्षेत्रीय परिषदों, जिसमें प्रत्येक का एक-एक प्रतिनिधि हो, द्वारा चुने जाने चाहिए।

(ग) राज्य का संघीय संविधान राज्य के प्रत्येक क्षेत्र को अधिकतम संभव स्वायत्तता दिये जाने के लिए आश्वस्त करेगा।

49. उपरोक्त तीन सूत्री फारमूला संबंधित तीनों पत्रों के हितों को पूरा करने वाला और इस प्रकार सभी को फायदा पहुँचाने वाला है।

प्रथम, एक तरफ भारत और पाकिस्तान की राष्ट्रीय आकांक्षाएं जम्मू-कश्मीर पर उनके सम्प्रभुसत्ता प्राप्त करने से पूरी होती है दूसरी तरफ जम्मू-कश्मीर के लोगों की क्षेत्रीय आकांक्षाए राज्य को स्वतंत्र दर्जा (सम्प्रभुता घटाकर) देने से पुरी होती है। ऐसा करने से जम्मू-कश्मीर राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की आकांक्षाएँ भी उनके प्रत्येक नस्ली क्षेत्र को अधिकतम सम्भव स्वायत्तता सुनिश्चित कर देने से पुरी होती है।

द्वितीय, यह भारत पाकिस्तान के परस्पर करोड़ों रुपये के व्यापार की विपुल संभावनाओं को खोलकर और उन्हें इस योग्य बनाकर कि वे भारी मात्रा के गैर-टिकाऊ सुरक्षा खर्चे को कम कर सके जो अभी जम्मू-कश्मीर में सैन्य कार्यवाही पर खर्च हो रहा है। इस प्रकार यह त्रिसूत्री फारमूला दोनों देशों के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करता है। यह दोनों देशों की अपनी-अपनी विकास योजनाओं के लिए संसाधन उपलब्ध करेगा।

तृतीय, यह भारत-पाकिस्तान दोनों को जम्मू-कश्मीर के प्राकृतिक संसाधनों को उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक पूँजी प्रदान करके इसके शेयरधारी बनने का अवसर देता है।

चतुर्थ, इससे जम्मू कश्मीर के लोगों को विभिन्न तरीकों से अत्यधिक लाभ पहुँचेगा। जेके के लोग दोनों देशों की नागरिकता का आनन्द ले सकेंगे। जेके का दोनों देशों के साथ व्यापार करने का अवसर मिलेगा जैसे कि यह दोनों ही देशों के अपने-अपने राज्यों में से ही एक राज्य हो। जेके राज्य की भिन्न-भिन्न परियोजनाएँ भारत-पाकिस्तान व जम्मू-कश्मीर राज्य के बीच हिस्सेदारी के आधार पर शुरू की जायेगी जिसमें तीनों शेयरधारियों के समान अधिकार होंगे। इनमें भारत व पाकिस्तान सम्पूर्ण निवेश और तकनीकी लगायेंगे जबकि जेके राज्य अपने संसाधनों का मूल्य निर्धारण करते हुए अपने शेयर का फंड अदा करेगा।

पाँचवा, सार्क देशों में यह व्यापारिक विकास के लिए नई संभावनाओं को खोलता है।

VIII जम्मू कश्मीर के लोगों का ऐतिहासिक उत्तरदायित्व

50. इस प्रक्रिया को शुरू करने और आगे ले जाने का बड़ा भारी उत्तरदायित्व जम्मू-कश्मीर के लोगों के कन्धे पर है। वे अब भारत और पाकिस्तान को नजदीक लाने तथा जम्मू-कश्मीर समस्या को न्यायपूर्ण, तर्कसंगत और व्यवहारिक आधार पर हल करवाने के लिए अब बहुत कुछ कर सकते हैं। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निम्न पहलकदमियां करना आवश्यक है।

(क) जम्मू-कश्मीर समस्या के हल से संबंधित सभी टकराहट भरे विकल्पों (या सैनिक या सक्रियता समर्थक विकल्प) का प्रत्युत्तर वास्तविक और समूचित विकल्प से दें।

(ख) इस सिद्धान्त को अपनाया जाए कि जम्मू कश्मीर की एकता व अखण्डता हर हाल में बरकरार रहे।

(ग) सात तरह के कार्यों (जैसा कि पैरा 43 क से छ पर दिया गया है) को लागू किया जाए ताकि भारत पाक तनाव के खतरे और जम्मू-कश्मीर की संकटपूर्ण स्थिति को शान्त किया जा सके और जम्मू-कश्मीर व साथ-ही-साथ भारत व पाकिस्तान के संबंधों को सामान्य स्थिति के रूप में बहाल किया जा सके।

(घ)सार्क परिप्रेक्ष्य और उसकी राजनीति को थामा जाए तथा जम्मू-कश्मीर की समस्या को त्रिसूत्री फार्मूले के आधार पर हल किया जाए ताकि तीनों पक्षों के हितों को संतुलित किया जाए।

(ड़) उन सभी शक्तियों का संयुक्त मोर्चा बनाया जाए जो कश्मीर को अनसुलझी समस्या के रूप में स्वीकार करते हैं ओर इसके शान्तिपूर्ण हल की पैरवी करते हैं।

(च) जम्मू-कश्मीर, भारत, पाकिस्तान, दक्षिण एशिया और दुनिया के अन्य हिस्सों की सभी शान्तिप्रिय शक्तियों का सक्रिय समर्थन जम्मू-कश्मीर समस्या के त्रिपक्षीय हल के पक्ष में हासिल किया जाए।

(छ) जम्मू-कश्मीर समस्या के शान्तिपूर्ण हल की तीन तरफा प्रकिया के लिए जम्मू-कश्मीर के लोगों को प्रेरित किया जाए और उन्हें शामिल किया जाए।

(i) जम्मू-कश्मीर के हालात को सामान्य बनाने के लिए लोगों को लामबन्द किया जाए।

(ii) तीन सूत्री फार्मूले के जरिए जम्मू-कश्मीर समस्या को हल करने के पक्ष में जनता को प्रेरित किया जाए।

(iii) जनता की तात्कालिक एवं रोजमर्रा की माँगों को पूरा करने के लिए उन्हें शामिल किया जाए।

(ज) भारत व पाकिस्तान दोनों देशों के लोगों से यह अपील की जाए कि वे अपनी-अपनी सरकारों की टकराहट और सैन्यीकरण के रास्ते से दूर रहने की माँग करें, जिसके कारण दोनों देशों की मानवीय जिन्दगी पीड़ादायक बनी हुई है।

(झ) विभिन्न नस्ली-क्षेत्रीय ग्रुपों के बीच जम्मू-कश्मीर हल पर कुछ आम सहमति पर पहुँचने के लिए बातचीत की पहल की जाए।

(च) नई दिल्ली और इस्लामाबाद दोनों से अपील की जाए कि वे जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्ली-क्षेत्रीय पहचानों द्वारा जम्मू-कश्मीर समस्या के हल पर बनाई गई आम सहमति को स्वीकार करें।

IX सारांश

(ज) उपरोक्त वर्णित बातों का सारांश है कि विकल्प स्पष्ट है, या तो विवाद से संबंधित तीनों पक्ष समझौता और विकास करें या लड़ते रहें और विखण्डित हो जाएं। इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं हैं। (15.4.2000)

***

आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेंस कार्यकारिणी को एक लेख

द्वारा आप.पी.सराफ

(1) भारतीय समाचार माध्यमों के मुताबिक, चाहे इस्लामाबाद का शांति अभियान, संयुक्त राज्य अमेरिका व यूरोपीय देशों की सहानुभूति प्राप्त कने की मात्र एक चालाकी हो और पाकिस्तानी मीडिया के मुताबिक चाहे नई दिल्ली का आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेस को वार्ता का प्रस्ताव जो मात्र एक पाकिस्तानी शांति अभियान की धार को कुन्द करने की मात्र एक धूर्त कोशिश है- अभी भी बहस का मामला है। लेकिन ऐसे अभियान भले ही सही भी हो, हमेशा के लिए नहीं चल सकते। विश्व व्यापी बहती शांति की हवा को लम्बे समय तक हमारे उपमहाद्वीप के ऊपर से बहने से रोकी नहीं जा सकती। भले ही ऐसा चौथे भारत-पाक युद्ध के पहले या बाद में हो लेकिन ऐसा होना ही है। यह हमारे आज के युग की सच्चाई है।

(2) जैसा कि सभी को विदित है, संघर्ष की गतिविधियों से बिल्कुल अलग, शांति प्रक्रिया के अपने स्वयं के मापदण्ड होते हैं। यहाँ ताकत के तर्कों के स्थान पर धारणात्मक तर्क के मापदण्ड जगह ले लेते हैं।

(3) जम्मू-कश्मीर के संबंध में यह बहुत कुछ संभव है कि वार्ता और समझौतों के नये अध्याय शीघ्र ही खुल सकते है। अत: मैं आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेस कार्यकारिणी के विचारार्थ यह लेख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

I

(4) प्रथम, हमारे समय के चरित्र को गंभीरता से अध्ययन करने की आवश्यकता है। क्योंकि यह प्रत्येक को एक वास्तविक आम परिदृश्य प्रदान करता है जिसके बिना अंधेरे में तीर चलाना है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हम अब एक ऐसे युग में हैं जिसमें आम आदमी एक दूसरे पर निर्भर हो गये है। यह इंगित करता है कि चूंकि इस समय मानवता सभी राष्ट्रीय इकाईयों (अर्थात राज्यों) के रूप में अन्तरनिर्भर हो चुकी है। अर्थात् हम उस दुनियाँ में है जहाँ कोई भी देश अलग-थलग व पड़ौसियों से दुश्मनी में नहीं रह सकता, जहाँ राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु टकराव व युद्ध का परम्परागत तरीका बेकार (हालांकि अभी खत्म नहीं हुआ है) हो गया है तथा जहाँ दोस्ती व सहयोग की राजनीति सामाजिक विकास व प्रगति को परखने के नये मापदण्ड पैदा हो गये है।

(5) उक्त कथन की जाँच के बत्तौर, एक साल पुराने कारगिल अध्याय को लेते है जो शुरूआत में इसके चलाने वाले के लिए बड़ी सैनिक कार्यनीतिक उपलब्धि होने के बावजूद, अंतत: विश्व स्तर पर पाकिस्तान की कूटनीति का पतन तथा राष्ट्रीय स्तर पर इसकी परिणति राजनीतिक व आर्थिक संकट में हुई। इसने पाकिस्तान के प्रति दुनियां के रवैये में परिवर्तन किया तथा इसकी राजनीतिक व आर्थिकता के विपरीत प्रतिक्रिया हमारे

नये वैश्विक युग के चरित्र से पैदा हुआ। ''अमेरिकी व्यापार हितों'' के संदर्भ में इसका अर्थ लगाना इसे इस तरह से देखना है जैसे जंगल के लिए पेड़ तलाशना।

(6) दूसरा संदर्भ बिन्दु उपमहाद्वीप में हाल ही की क्लिंटन यात्रा रहा है जिसने आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेंस, पाकिस्तान व भारत की परम्परागत कार्यसूची व प्राथमिकताओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए है।

(7) आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेंस जैसा कि इसके संविधान में दर्शाया गया है, इसके आत्मनिर्णय व जनमत संग्रह के परम्परागत नारों की जगह द्विपक्षीय वार्ता को अंतिम विकल्प के रूप में माना है। स्पष्टतौर पर, आत्मनिर्णय, जनमतसंग्रह तथा त्रिपक्षीयवाद बिल्कुल ही अलग-अलग धारणा है।

(i) आत्मनिर्णय किसी क्षेत्र विशेष के लोगों के जन्मजात अधिकार को अभिव्यक्त करता है जो राष्ट्रीयता की बहुत सी सामाजिक विशेषताओं (जैसे कि मानव जातीय, अनुवाशिंक, सांस्कृतिक-नैतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक व राजनैतिक) को सम्मिलित करता है तथा वे स्वयं के राष्ट्र-राज्य के गठन की दिशा की ओर अग्रसर होते है। संक्षेप में, आत्मनिर्णय का अधिकार एक निर्णायक कारक के रूप में लोगों को सक्षम बनाता है।

(ii) जनमत संग्रह किसी विशेष मुद्दे (शराबबंदी के मामले में भी) पर विशेष लोगों की राय अभिव्यक्त करने का किसी प्राधिकारी द्वारा दिया गया साधारण अधिकार है तथा वहीं पर समाप्त हो जाता है। अर्थात् संयुक्त राष्ट्र संघ प्रस्ताव जनमत संग्रह का अधिकार (आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं) देते हुए जम्मू-कश्मीर के लोगों को तीसरी पार्टी स्वीकार करने के बजाय उनको सिर्फ भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित होने का विकल्प ही देता है।

(iii) त्रिपक्षीयवाद तीनों पार्टियों के समान स्तर स्वीकार करते हुए बराबर अधिकार देता है।

(8) पाकिस्तान जम्मू-कश्मीर समस्या के अन्तराष्ट्रीयकरण की अपनी आम दिशा से हट कर कुछ समय से भारत-पाक द्विपक्षीयवाद से त्रिपक्षीयवाद पर आ गया है।

(9) भारत अपने एक पक्षीयवाद (अर्थात् भारत के लोगों के लिए जम्मू-कश्मीर को भारतीय संघ का एक अभिन्न अंग मानना) की पक्की धारण से चालाकी से हट गया है तथा सुविधाजनक द्विपक्षीयवाद (अर्थात् विश्व जनमत को प्रभावित करने के लिए, पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर को खाली करवाने के सवाल पर भारत का पाकिस्तान के साथ विवाद) को अघोषित त्रिपक्षीयवाद आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेंस से (जो इसके मुताबिक एक माह पूर्व एक 'आंतकवाद प्रोत्साहक' संगठन रहा है) जम्मू-कश्मीर समस्या के समाधान के लिए वार्ता करना इसकी राष्ट्रीय आवश्यकता को सार्वजनिक रूप में स्वीकारा है।

(10) हमारे युग में उक्त खाके से, यह निकलता है कि आज एक राजनीतिक विवाद का समाधान एक वास्तविक रास्ता वार्ता व समझौता में निहित है न कि विवादों व टकराहट में। यह हमें समय के साथ चलने का आव्हान करता है न कि इसके पीछे।

II

(11) द्वितीय, हमारे युग की प्रकृति का अनुसरण करते हुए यह जरूरी है कि जम्मू-कश्मीर समस्या के लगातार बदल रहे प्रबल धारणात्मक आयामों पर गहरी नजर रखें।

क्योंकि यह जम्मू-कश्मीर सवाल के सम्बन्ध में विभिन्न सामाजिक स्तरों पर विद्यमान प्रमुख सामाजिक रूझानों एवं लोगों की मनोदशा को बताता है।

(12) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय (विश्व में सभी देशों के लोगों से गठित) जम्मू-कश्मीर समस्या को एक राजनीतिक विवाद समझता है, इसको विश्व के अत्यधिक खतरनाक ज्वालनांक बिन्दू स्वीकारता है, यह चाहता है कि इसका शान्तिपूर्ण समाधान भारत और पाकिस्तान व जम्मू-कश्मीर के लोगों (जो कि विश्व जनमत के अनुसार जेके विवाद का तीसरा पक्ष है) को समिलित करते हुए बातचीत के जरिए हल करे और सम्बन्धित पक्षों के बीच तुरन्त बातचीत की पुन: शुरूआत की आशा करता है।

(13) उपमहाद्वीप स्तर पर, भारत और पाकिस्तान अभी भी अपने-अपने शीत युद्ध के तर्कों पर डटे हुए है। वे अपनी कठोर अवधारणाओं को समयानुकूल बनाने में असफल रहे हैं। वे अभी भी टकराहट भरे रास्तों पर चल रहे हैं तथा मित्रता एवं सहयोग की विश्वव्यापी चाहत को लगातार अनदेखा कर रहे हैं। अब पाकिस्तान की प्रत्येक कोशिश जेके विवाद में तीसरी पार्टी की मध्यस्थता को शामिल करने की रहती है। भारत की कोशिश आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेंस को अपना दृष्टिकोण स्वीकार कराकर पाकिस्तान को अलग करने की है।

(14) जम्मू-कश्मीर स्तर पर आल पार्टी हुर्रियत कान्फ्रेस जम्मू-कश्मीर का भविष्य कैसा चाहती है, अभी भी तय नहीं कर पायी है (यानि जम्मू-कश्मीर के बारे में इसकी भावी दृष्टि) इसकी आत्मनिर्णय, जनमत संग्रह और त्रिपक्षीयवाद की मांग का केवल अर्थ अकल्पनीय अन्त की तरफ है। वे किसी स्पष्ट लक्ष्य को नहीं बताते।

(15) ऊपर का वर्णन, जम्मू-कश्मीर समस्या में सम्मिलित मुख्य पक्षों के अलग-अलग परिप्रेक्ष्यों को बताता है। यह जेके समस्या का शांतिपूर्ण रास्ता निकालने पर जोर देता है, जैसा कि हमारे युग और विश्व समुदाय की इच्छा है। इसका समाधान तीनों सम्बन्धित पक्षों की विभिन्न अवधारणाओं में तालमेल करने में निहित है इसका अर्थ है कि कोई भी सैनिक समाधान और किसी प्रकार की बन्दूक की राजनीति जेके सहित विश्व के किसी भी संवेदनशील मामलों को निपटाने में गैर उत्पादक बन गये हैं। इसलिए अमरीकी राष्ट्रपति ने उपमहाद्वीप की अपनी यात्रा के दौरान कहा था कि कोई भी इस क्षेत्र की सीमाओं को खूनी बनाने की कोशिश करेगा वह अपराधी होगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से अलग-थलग पड़ जायेगा।

III

(16) तृतीय, ऊपर बताये गए तथ्यों से शुरूआत करते हुए यह स्वभाविक है कि जम्मू-कश्मीर समस्या के शांतिपूर्ण समाधान की दिशा में आन्दोलन को बढ़ाने एवं उसे मजबूती प्रदान करने के लिए एक दो तरफा मूलभूत कार्य तुरन्त पूरा करने की जरूरत है। यह है एक तरफ जम्मू-कश्मीर में सभी राजनीतिक ताकतों के बीच जेके समस्या के सर्व सहमति आधारित समाधान को शामिल करे, दूसरी तरफ जेके लोगों को जागृत एवं संगठित करे। इस हेतु निम्नलिखित कदमों को लेने की आवश्यकता है।

(क) सर्वप्रथम, इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है कि ए पी एच सी. कार्यकारिणी स्वयं जम्मू-कश्मीर समस्या का एक सर्वसम्मत हल निकाले फिर इसे जनरल कौंसिल

द्वारा पारित करवाये। बिना एक लक्ष्य के किसी भी पार्टी या फ्रंट की वैचारिक एकता हासिल नहीं की जा सकती।

(ख) पुन: इस हल को एक तरफ खाड़कुओं के लिए समाचार माध्यमों द्वारा विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए और दूसरी तरफ राज्य में जेके मामलों को बिना सुलझा राजनीतिक मामला मानने वाले गुटों के प्रतिनिधियों की मीटिंग में विचारा जाये।

(ग) आगे, यह विचार-विमर्श क्रमश: घाटी, जम्मू तथा लद्दाख की सभी पार्टियों (चाहे उनके विभिन्न राजनीतिक परिप्रेक्ष्य हों) की मीटिंग में होना चाहिए। बाद में एक राज्य स्तरीय सभी पार्टियों की मीटिंग भी आयोजित की जावे।

(घ) फिर, यह बराबर ही आवश्यक है कि आम सभाओं के साथ-साथ समाचार माध्यमों में जेके समस्या के विभिन्न समाधानों पर लोगों में विचार-विमर्श शुरू किया जावे।

(ड़) भारतीय हिस्से के जम्मू-कश्मीर में आम विचार-विमर्श के साथ-साथ एक प्रतिनिधिमण्डल पाकिस्तान हिस्से के जेके में भेजा जाना चाहिए जो जेके समाधान के लिए वहां की राजनीतिक पार्टियों एवं लोगों से विचारों का आदान-प्रदान करे।

(च) इसी बीच, जेके लोगों के हितों के लिए भारत पाकिस्तान में सभी शांतिप्रिय और लोकतांत्रिक विचारों वाले लोगों की हमदर्दी एवं समर्थन हासिल करने की प्रत्येक कोशिश की जानी चाहिए।

(छ) जेके के प्रत्येक भाग में तथा उनके बीच अधिकतम सम्भव सर्वसम्मति पैदा करने के बाद यह आवश्यक है कि ए पी एच सी सर्वसम्मति आधारित राजनीतिक समाधानों पर दो विशालतम सम्भव फ्रंटो–एक इस तरफ तथा दूसरा पाकिस्तान की तरफ–का निर्माण करे। यह ए पी एच सी को जनादेश से आलिंग्र करेगी और इस प्रकार दसियों पुराना अनुत्तरित इस सवाल का उत्तर मिलेगा कि ''जेके लोगों का वास्तविक प्रतिनिधि कौन है?''

(17) एक तरफ सर्वसम्मति आधारित जेके समस्या के समाधान और दूसरी तरफ जेके लोगों को इस समाधान पर जागृत एवं संगठित करने की प्रक्रिया पर दुनिया के लोगों का ध्यान आकर्षित होना जरूरी है। इससे एक तरफ तर्कसंगत रूप से जेके मामला विश्व एजेण्डा में आता है और दूसरी तरफ भारत और पाकिस्तान पर जेके लोगों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करते हुए जेके समस्या के शांतिपूर्ण समाधान का दबाव पड़ता है।

(18) यदि सर्वसहमति आधारित राजनीतिक समाधान और जेके लोगों को जागृत एवं संगठित करने का दो तरफा मूलभूत कार्य यदि पूरा नहीं किया जाता तो इसका नतीजा राजनीतिक और जनता दोनों स्तरों पर सभी तरह की भ्रांति पनपने में निकलेगा।

IV

(19) चतुर्थ, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आज की दुनिया में जेके का सवाल सर्वोच्च जटिल राजनीतिक मसला है, यह बिल्कुल सही है कि इस उलझन का कोई सरल समाधान नहीं है। यहाँ तक कि जब जेके बीमारी के ईलाज हेतु राजनीतिक बाजार में

विभिन्न तरह के राजनीतिक सूत्र प्रचलित हो रहे हैं, ये न सिर्फ इस उपमहाद्वीप में बल्कि अमेरिका और यूरोपीय समुदाय में भी चल रहे हैं। ये सभी राजनीतिक नुस्खे हमारा गहरा ध्यान इस बात की ओर दिलाने की मांग करते हैं कि इनमें से प्रत्येक की जाँच इस मानदण्ड से होनी है कि क्या यह 3 प्रतियोगी पार्टियों की इच्छाओं और आकांक्षाओं का समुचित प्रत्युत्तर देते हैं।

(20) संक्षेप में, 3 पक्षों की स्थिति इस प्रकार पेश की जा सकती है।

(क) भारत की मान्यता है कि जेके का मसला इसके राष्ट्रवाद की आत्मा है। पाकिस्तान इसे अपना कण्ठ बताता है, जबकि कश्मीरी लोग इसे अपनी ऐतिहासिक पहचान का आधार मानते हैं।

(ख) न तो भारत और न ही पाकिस्तान जेके पर अपने-अपने नियंत्रित हिस्से का जरा सा भाग भी छोड़ने को तैयार है।

(ग) यथास्थितिवाद (**status quoism**) कश्मीरियों को बिल्कुल ही अस्वीकार्य है। यहाँ तक कि भारत समर्थक कश्मीरी भी अधिकतम सम्भव स्वायत्तता चाहते हैं और वे पूर्ण विलय के खिलाफ हैं। 52 वर्षों से भारतीय संविधान का जेके को विशेष दर्जा और पिछले 11 वर्षों के दौरान 50 हजार कश्मीरियों की मौतें को विलक्षण अनुभव ने घाटी में यथास्थितिवाद को पूर्णतया अव्यवहारिक बना दिया है।

(घ) जेके राज्य स्वयं में ही इसके 8 नस्ली क्षेत्रीय समुदायों की अपनी-अपनी दृष्टि, इच्छाएं और आकांक्षाएं हैं। मामले का सार यह है कि यदि हम जेके की जनसंख्या का भारत की कुल जनसंख्या के अनुपात की गणना करें तो यह राज्य भारत से भी ज्यादा नश्ली सांस्कृतिक विविधता लिए हुए है।

(ड़) तीनों पक्षों के लिए साझा समाजशास्त्रीय कमी है कि विद्यमान विश्व शक्ति संतुलन में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक केन्द्र यानि संयुक्त राष्ट्र संघ उन पर मात्र दबाव डाल सकता है, उनके अपने विचारों के उलट कुछ नहीं कर सकता, सिवाय किसी हल के।

(21) तीनों पक्षों के विभिन्न दृष्टिकोणों का जायजा लें तो यह स्पष्ट है कि एक अथवा अन्य के पक्ष का कोई राजनीतिक सूत्र जेके समस्या के समाधान हेतु प्रासंगिक और उचित नहीं हो सकता। यह तभी हो सकता है जब कोई इन सभी की इच्छाओं और हितों में तालमेल बैठाए। यहाँ निम्नलिखित 3 राजनीतिक सूत्र आगे विचार-विमर्श के लिए आधार प्रदान कर सकते हैं।

(क) भारत और पाकिस्तान के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों और आकांक्षाओं को जेके सुरक्षा एवं विदेश मामलों पर भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक रचनातंत्र में जेके की सम्प्रभुता दोनों को संयुक्त रूप से सुपुर्द करके पूरा किया जा सकता है।

(ख) जेके लोगों में खासकर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को जम्मू-कश्मीर राज्य की सम्प्रभुता भारत-पाक सहराज्य के तहत रखते हुए राज्य को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य स्वीकार करके पूरी की जा सकती है।

(ग) जेके की विभिन्न नश्ली-क्षेत्रीय समुदायों की आकांक्षाऐं और हितों को उन्हें अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर पूरी की जा सकती है। जेके के राज्य

स्तरीय मामलों में ये मामले सम्मिलित किये जा सकते हैं: राज्य का प्रमुख, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि।

(22) तीनों सम्बन्धित पक्षों की आकांक्षाओं को पूरा करने के अलावा उपर्युक्त सूत्र उनके साथ-साथ विश्व समुदाय को विभिन्न तरह से फायदा करता है।

यह दुनिया के सर्वोच्च खतरनाक ज्वलांक बिन्दु को समाप्त करके विश्व समुदाय के अनुकूल बनता है।

यह दक्षिण एशियन समुदाय को इसके मुक्त व्यापार बाजार के विकास में रोड़े को हटाकर उन्हें फायदा देता है।

यह आगे भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों को आर्थिक विकास में प्रत्येक को बराबर के भागीदार बनाकर उनकी सेवा करता है, जहां भारत और पाकिस्तान बराबर मात्रा में वित्तिय सहायता देते हैं जबकि जम्मू-कश्मीर राज्य अपने प्राकृतिक स्त्रोतों के रूप में हिस्सेदार बनता है। जेके लोग स्वभावत: दो देशों की नागरिकता का फायदा लेते हैं और उनकी व्यापार सुविधाएं हासिल करते हैं।

(23) अन्त में, जेके समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान का रास्ता जेके की जमीनी वास्तविकता को अपना शुरूआती बिन्दु बनाने की मांग करता है। आज घाटी में हिंसा का स्तर और राज्य में आतंकवादी तथा प्रति आतंकवादी अभियानों का ग्राफ साथ ही नियंत्रण रेखा पर भारत-पाक तनाव का पैमाना अभूतपूर्व मात्रा में बढ़ गया है। मानवाधिकारों, दिन प्रतिदिन के जीवन के मामलों में लोगों की दुर्दशा खासकर घाटी में, सभी सीमाओं को पार कर चुका है। अनुभव बताता है कि जितना लम्बा जेके उबलता रहता है, भारत, पाकिस्तान और दक्षिण एशिया शांति से नहीं रह सकते।

(24) इस खतरनाक और ज्वालामुखीय स्थिति की आवश्यकता है कि जब तक जेके समस्या का राजनीतिक हल तलाशा जाता है, हमें एक तरफ राज्य में सामान्य हालात बहाली की मांग तथा दूसरी तरफ भारत-पाक तनाव में कमी की मांग भी की जानी चाहिए।

यहाँ, निम्नलिखित उपाय को अपना कर जन दबाव बनाया जाना चाहिए जो तनाव कम करने और लोगों में शांति प्रक्रिया की भावना को पैदा करने में सहायता कर सकते हैं।

(क) बन्द पड़ी भारत-पाक वार्ता की बहाली।

(ख) उन सभी बंदियों को छोड़ना जिन्हें बीते वर्षों में बिना किसी आरोप के बंदी बनाया गया।

(ग) एक भारत-पाक घोषणा कि वे जेके समस्या का समाधान शांतिपूर्ण उपायों से करेंगे।

(घ) भारत द्वारा जेके समस्या की प्रकृति त्रिपक्षीय स्वीकार करना।

(ड़) सियाचीन, वुल्लर बेराज और सर क्रीक मामलों पर भारत और पाकिस्तान का जल्दी निपटारा।

(च) जेके में व्यवहारिक युद्ध विराम को कार्य रूप देना।

(छ) वास्तविक नियंत्रण रेखा के दोनों तरफ एक किलोमीटर की दूरी में भारत-पाक सेनाओं को हटाना तथा इस एरिया को सैन्य गतिविधियों से मुक्त क्षेत्र बनाना।

(ज) इस क्षेत्र में निगरानी दोनों देशों की संयुक्त सैनिक टुकड़ियों द्वारा करना।

(झ) इस क्षेत्र में भारत-पाक मित्रता पार्क तथा व्यापार केन्द्र कुछ चुनिन्दा जगहों पर स्थापित करना।

(झ) पाकिस्तान द्वारा घाटी को बिजली उचित मूल्य पर मुहैया करना।

(ट) पाकिस्तानी हिस्से के जम्मू-कश्मीर के करीब 100 विद्यार्थियों को भारत द्वारा अपने तकनीकी संस्थानों खासकर सूचना तकनीकी क्षेत्र में प्रशिक्षण और छात्रवृत्ति की सुविधा देना।

(ठ) राज्य की राजनीतिक एवं भावनात्मक एकता की मजबूती के लिए कार्य करना।

(ड) और सबसे महत्वपूर्ण लोगों को कहना और मनाना कि भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों का भविष्य साथ-साथ बंधा है।

(25) लोगों को राहत पहुँचाने वाले उक्त उपायों के अलावा यहाँ दो बिन्दुओं पर जोर देने की आवश्यकता है। एक है बिना शर्त वार्ता का सार्वत्रिक सिद्धान्त हर समय और हर कही माना जाना चाहिए। बातचीत का कोई भी रूप जो शांति प्रक्रिया को बढ़ाता है और समस्या के समाधान में मदद करता है, होना चाहिए। जो भी ऐतराज है उसे पहली मीटिंग में ही उठाना चाहिए।

(26) अन्य यह है कि जेके समस्या के समाधान हेतु बातचीत के तरीके के अलावा कुछ अन्य रूपों—जैसे सुविधा देना, मध्यस्थता, पंच फैसला आदि को अपनाने में कोई नुकसान नहीं है, यदि वे किसी विशेष हालात में प्रासंगिक हो।

(27) सच है, जेके समस्या ऊंचे दर्जे की जटिल और उलझा हुआ विषय है। लेकिन इस प्रकार के सभी असामान्य मामले अपना वेग समय और स्थान में खो देते हैं और साधारण उपायों द्वारा हल होने के लिए प्रस्तुत होते हैं। हर कोई सापेक्ष है और निरपेक्ष कुछ नहीं। (19.5.2000)

***

(27 मई, 2000 को आई डी पी की फाजिल्का, पंजाब कान्फ्रेंस में प्रस्तुत प्रस्ताव)

हमारी पुरानी चली आ रही विकट समस्या

(एक लुढ़कता पत्थर कोई भी द्रव्य एकत्रित नहीं करता)

I

(1) जैसा कि हम सभी जानते है कि अपनी पार्टी के प्रार्दुभाव से ही इसके द्वितरफा कार्य, इसके तिहरा उद्देश्यों—अर्थात् (अ) भारत का पूर्ण जनवादीकरण, (ब) दक्षिण-एशिया कम्युनिटी तैयार करना (स) विश्व मानव समाज की स्थापना—को प्राप्त करने के लिए एक ओर, हमारे पार्टी सदस्यों की आम समझ एवं सामाजिक चेतना बढ़ाना (व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों) तथा दूसरी तरफ लोगों को जागृत व संगठित करना रहा है। इस दोतरफा कार्य की दृढ़ता और महत्व हमारी प्रत्येक प्रमुख पार्टी सभाओं में इसके बारम्बार कार्य सूची में रहने से बिल्कुल स्पष्ट है। यही मात्र वह रास्ता है जिससे हम अपने तिहरा उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं। हालांकि आज के दिन भी हमारे द्वारा इसके लगातार दोहराने के बावजूद भी, हम इसे एक प्रभावी तरीके से संचालित करने में समर्थ नहीं हुए है।

(2) दोष कहां स्थित है? स्पष्टतया दोष या तो हमारी पार्टी के एजेन्डे का क्रमश: पार्टी और लोगों की जरूरत तथा प्राथमिकताओं से अप्रासंगिक होने में अथवा इसकी (ऐजेन्डे की) व्याख्या का हमारा तरीका त्रुटीपूर्ण होने या इस कार्य की अनुपालना में हमारी अयोग्यता में निहित है। संभव है ये सभी कारण हों, लेकिन अंतिम कारण मूलभूत दिखता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि जब सर्वोच्च महत्वपूर्ण जन कल्याण के विषय (जैसे पानी, सफाई, पर्यावरण, स्वास्थ्य, शिक्षा, गरीबी, बेकारी, बेघबारता, बिजली, सड़क और रेल यातायात, सूचना तकनीकी आदि) जन जागृति की प्रक्रिया में जब और जहाँ कहीं जनगतिविधियों में शामिल नहीं किये जाते तो वे निष्क्रिय बने रहते हैं। अलग से पैदा किए गए एजेन्डे (जैसे बाबरी मस्जिद का गिराना, कांग्रेस आई का खानदानी राज का विरोध) तथा गैर मुद्दे (जैसे कि धर्म परिवर्तन, चाहे सिख जाति को हिंदू पंथ बनाना या एक स्वतंत्र पहचान, इत्यादि) जब और जहां कहीं दबाव देकर प्रभावी तरीके से प्रचारित और प्रदर्शित किया तो लोग उन मुद्दों पर उत्साहित हुए (चाहे बाद में इनके नकारात्मक प्रभावों को लोगों ने भुगता) यह दर्शाता है कि अधिक संगत एजेन्डा भी कम प्रभावी हो जाता है यदि यह लोगों को जागृत करने के लिए लगातार व तार्किक रूप से समझाया गया न हो। मानव समाज में अलग से पैदा किए गए एजेन्डे व अप्रासंगिक विचार भी विवेकपूर्णता व उपयोगिता खोने के बावजूद भी जारी रहते हैं। और आगे परिवर्तन प्रकृति का आम नियम है, लोग कुछ समय के लिए अपनी नैसर्गिक प्रेरणा से चलते हुए उचित विचारों और व्यक्तियों के बजाय प्रचलन से अलग विचारों और प्रचारकों को अपनाते हैं।

II

(3) हमारी गैर कुशलता का सवाल तीन तथ्यों का एक नतीजा है वह है (अ) किसी एक एजेन्डे की अनिवार्य जीत में किसी का विश्वास (ब) एजेन्डे की वास्तविकता की ओर किसी के प्रोत्साहन की कमी (स) संगठन के महत्व की किसी में अपर्याप्त समझ।

(4) जहाँ तक प्रथम बिन्दु का सम्बन्ध है, अनिवार्यता का सिद्धान्त (अर्थात् ऐसा ही होगा) एक अवास्तविक प्रस्ताव है क्योंकि कुछ भी पूर्ण व अंतिम नहीं है। एक संगत प्राकृतिक परिदृश्य कभी-कभी प्रकृति में निश्चित परिवर्तन और बेतरतीब कारकों के कारण असंगत बन जाता है और यदि जरूरी उद्देश्य के लिए सही तरीके से काम नहीं किया जाये तो एक सामाजिक जरूरतमन्द वस्तु कई बार समाज में एक कम जरूरतमंद और यहाँ तक कि एक गैर जरूरी वास्तविकता से प्रतियोगिता में अपनी प्रासंगिकता खो देती है। जैसे कि नई दिल्ली में एक रूढ़ीवादी पार्टी द्वारा सत्ता हथियाना।

(5) जहाँ तक द्वितीय बिन्दु का सवाल है, प्रेरणा में कमी किसी के अपने ही एजेन्डे को अपनी मान्यता का परिणाम है चाहे वह इसे एक कमजोर तात्कालिक सामाजिक प्रासंगिकता अथवा प्राथमिकता माने अथवा विशेष संदर्भ में सफलता का कम अवसर समझे।

(6) जहाँ तक तृतीय बिन्दु का सवाल है, संगठन को कम आँकना किसी के सामाजिक नियमों की उपेक्षा करने का नतीजा है अथवा इस सामाजिक तथ्य की कम समझ होना है कि सामाजिक तौर पर सचेत और उत्साहित लोग मानव समाज में परिवर्तन की सर्वोच्च प्रेरणा शक्ति है।

(7) अधिक जागृत लोग सामाजिक रूपान्तरण में तेजी लाते हैं। अधिक जन-निष्क्रियता सामाजिक परिवर्तन में देरी करती है और कम प्रभावी रहती है तथा कभी-कभी सामाजिक तब्दिली में नकारात्मक प्रभाव डालती है।

(8) यह कहने की जरूरत नहीं है कि विशिष्ट पार्टी सह जन आन्दोलन को बनाने का सवाल विशिष्ट पार्टी संविधान से जुड़ा है जो इसके लक्ष्य, दिशा व दूसरे पैमाने तय करता है। यदि किसी में सांगठनिक समझ की कमी है तो वह संविधान को नजरअन्दाज करने तथा संगठन व कार्य के स्वयं के तरीके लागू करने का जुम्मेवार है। और यह हमारी पार्टी में हुआ है तथा जारी है। हम अपने पार्टी संविधान को तभी खोलते है जब इस कार्य के लिए कोई आम पार्टी मिटिंग बुलाते हैं। लेकिन मुश्किल से इसे कभी अपने कार्य के लिए मौलिक नियम बनाया हो।

(9) जरा पीछे देखें तथा सन् 1988 की पार्टी कांग्रेस पर ध्यान देवें (जिसमें हमारे पार्टी प्रोगाम व संविधान को पास किया गया था) इसके तीसरे दस्तावेज (शीर्षक ''वर्तमान परिस्थिति व हमारे काम'') में कहा गया है कि ''मौजूदा हालात के मद्देनजर तथा अपने अपर्याप्त सांगठनिक ढाँचे और लोगों में क्षीण प्रभाव को देखते हुए, इस कांग्रेस का मत है कि हालात को और अधिक जनवादीकरण और सामाजिक न्याय की दिशा में मोड़ देने के लिए पार्टी को दो तरफा काम पूरा करना चाहिये। पहला काम गुण और परिमाण के लिहाज से अपने संगठन को मजबूत करने का है तथा दूसरा काम आवामी मसले उठाने के

साथ-साथ तानाशाही, अफसरशाही और सत्ता केन्द्रीयकरण करने वाली ताकतों (इस रूझान का प्रतिनिधित्व इस समय अमूमन दो महाशक्तियाँ और खास तौर पर भारत सरकार व सत्तारूढ़ पार्टी करती हैं) के खिलाफ लोगों को गोलबंद करने व संगठित करने का है। ये दोनों पक्ष अंतर संबंधित है और एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इस दो-तरफा काम को पूरा करने के लिए पार्टी से उचित योजना बनाने और फिर उस पर अमल करने की जरूरत है। इसके बाद उसका जायजा लिया जाना चाहिये और फिर योजना बनायी जानी चाहिए वगैरह-वगैरह। इसके लिए निम्नलिखित बातों का पालन किया जाना चाहिए।

पार्टी मोर्चे पर हमारी सभी इकाइयों को शुरूआत इस सवाल से करनी चाहिए कि क्या वे प्रत्येक सदस्य के अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में, सदस्यों और उम्मीदवार सदस्यों को भर्ती करने, संगठन के निर्देशक सिद्धान्त और उसके नियमों का पालन करने, यूनिट मीटिंगे आयोजित करने के बारे में, पार्टी सदस्यों में अनुशासन रखने, वर्ग और जन संगठनों में पार्टी की शाखाओं के काम काज, लोगों में काम आदि के बारे में पार्टी संविधान के मुताबिक अमल कर रही है। अगर ऐसा नहीं किया जा रहा हो तो उस पर पूरी तरह अमल किया जाए।

दूसरे, सभी इकाइयों को व्यक्तिगत अध्ययन और फिर सामूहिक अध्ययन व बहस के जरिये पार्टी लाइन के बारे में अपनी समझ गहरी करने की कोशिश करनी चाहिये। तीसरे सभी इकाइयों को व्यक्तिगत और सामूहिक आधार पर पार्टी पत्रिका का समुचित अध्ययन करना चाहिये तथा उसके उचित वितरण और बिक्री की योजना तैयार करनी चाहिये। चौथे, सभी इकाइयों को यह जायजा लेना चाहिए कि क्या उनकी समूची ताकत या क्षमता (यानि सदस्यों और हमदर्दो की क्षमता) का उपयोग पार्टी और लोगों के काम काज के लिए किया जा रहा है। अगर ऐसा नहीं हो रहा हो तो उन्हें तुरन्त अपनी बेकार पड़ी क्षमता को इस्तेमाल में लाना चाहिए। पाँचवे, सभी इकाइयों को समाज विरोधी तत्वों की छेड़छाड़ के विरूद्ध कानूनी और राजनैतिक दोनों तौर पर अपनी रक्षा (सदस्यों की निजी सुरक्षा समेत) के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। छठे, सभी इकाइयों को लोगों में काम की विस्तृत योजना तैयार करनी चाहिये जिसमें प्राथमिक मुद्दे और प्राथमिक इलाके पर खास जोर दिया जाना चाहिए। सातवें, सभी इकाइयों को हमेशा जनता के प्रति जवाबदेही के कारगर तरीके तलाश करने चाहिए और उन पर ईमानदारी से अमल करना चाहिए। इस सिलसिले में नई खोज जारी रखते हुए उन्हें फिलहाल इन नियमों का पालन करना चाहिए: (क) पार्टी संविधान के मुताबिक पार्टी में जनवादी तरीके से काम करना, (ख) वर्ग व जन संगठनों में उनके अपने-अपने कार्यक्रमों और संविधानों के मुताबिक काम करना। (ग) उस इलाके के लोगों से जहाँ वे काम करते हैं, हर साल अपनी कार्यशैली के बारे में आलोचनाएँ आमंत्रित करना। (घ) जनता से जमा किये गये हर चंदे का हिसाब-किताब उन्हें देना (यूनिटवार या निजी तौर पर जैसी भी सूरत हो) (ड़) हर अगुवा साथी की वित्तीय व आर्थिक स्थिति के बारे में पार्टी इकाई के जरिये लोगों को जानकारी देना।

(क) इन मोर्चे पर शुरूआत सभी पार्टी इकाइयां जन कार्य से जुड़ी दो अंतर संबंधित समस्याओं को सन्तोषजनक तरीके से हल करके करें। पहली समस्या जन प्रचार की

लाइन तय करने की है। दूसरी समस्या ऐसे मसलों की पहचान करने की है जो लोगों के लिए तत्काल कठिनाइयों का वायस बने हुए है और शासक पार्टी की नालायकी की वजह से अभी तक लटके चले आ रहे हैं, इन्हें हल करने के लिए लोगों को उचित तरीकों और कारगर अगुवाई की जरूरत है।

(ख) जहाँ तक पहली समस्या (जन प्रचार लाइन तय करने) का ताल्लुक है, इसे पार्टी की आम लाईन और ठोस स्थानीय हालात को मद्देनजर रखकर हल किया जा सकता है। पार्टी की आम लाईन और ठोस स्थानीय हालात को जोड़ने के लिए निम्नलिखित पाँच बातें स्पष्ट करना जरूरी है। पहली, जन प्रचार की हमारी लाइन की शुरूआत लोगों को दर पेश तात्कालिक मसलों (वे चाहे स्थानीय हो, राष्ट्रीय या अंतराष्ट्रीय) से होनी चाहिये। जिसमें यह बताया जाय कि लोगों के मसले मौजूदा सरकार और सत्तारूढ़ पार्टी की प्रतिक्रियावादी नीतियों की वजह से नहीं सुलझे हैं और उन्हें सुलझाने का ठीक तरीका क्या है। दूसरी, इसमें सत्तारूढ़ पार्टी का अच्छी तरह भंडाफोड़ किया जाए कि उसने आम चुनाव के दौरान अपने भाषणों और घोषणा-पत्र में क्या वायदे किए थे तथा फिर सत्ता में आने के बाद उसने क्या गुल खिलाए हैं (और संविधान व कानून का कितना उल्लघंन किया) तीसरी, इसमें अपने पार्टी कार्यक्रमों की व्याख्या की जाए (जिसमें अंतर्राष्ट्रीय जनवाद की हमारी बुनियादी दिशा का राष्ट्रीय पार्टियों के राष्ट्रीय जनवाद से फर्क बताया जाए और यह भी कि राष्ट्रीय जनवाद भारत सहित दुनिया की मूल समस्याओं को हल करने में असमर्थ है); सभी स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में संबंधित पार्टी नीतियों की व्याख्या की जाए (इन नीतियों का केन्द्रीय सिद्धान्त बताया जाए जिसका मकसद राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अधिकतम नीति निर्धारक अधिकार लोगों को सौपना हैं)। तथा पार्टी के कार्यक्रम और नीतियों से कांग्रेस ई और विपक्षी पार्टियों सहित सभी पार्टियों का फर्क बताया जाय। चौथी, इसमें लोगों को कार्यक्रमों और नीतियों के आधार पर विभिन्न पार्टियों के बीच फर्क करने और इसी फर्क को सत्तारूढ़ पार्टी का राष्ट्रीय विकल्प चुनने की कसौटी बनाने की दिशा दी जाय। पाँचवी, इसमें लोगों को या तो आई.डी.एफ. में या किसी दूसरे जन संगठन में (जो कुछ आवामी मांगों पर आंदोलन के लिए बनाया गया हो) संगठित होने के लिए मानसिक तौर पर तैयार किया जाय।

(ग) जहाँ तक दूसरी समस्या (लोगों के लिए तात्कालिक कठिनाइयां पैदा करने वाले आवामी मसलों की पहचान) का ताल्लुक है, इसे जाँच पड़ताल करके और उसका ठोस समाधान तलाश करके सुलझाया जा सकता है। फिर इस समाधान को जनता में लोकप्रिय बनाया जाना चाहिये। उन्हें इस हद तक गोलबंद किया जाए कि वे इसमें सुझाए गये सांगठनिक और संघर्ष के तौर-तरीके मान लें। सांगठिनक तौर-तरीके में इस बात पर जोर दिया जाए कि बिना किसी संगठन के बड़ी से बड़ी आवामी गोलबंदी (वह चाहे छोटे आवामी मसलों पर हो या बड़ी पर) बिखर जाती है तथा बिना किसी संगठन के कोई कारगर गतिविधि नहीं चलाई जा सकती। इसमें लोगों को तो आई.डी.एफ. में या संबद्ध मसले पर अस्थायी तौर पर बने जनसंगठन में शामिल होने की प्रेरणा मिलनी चाहिये। जहाँ कहीं मुमकिन हो विशालतम संभव संयुक्त मोर्चा बनाया जाना चाहिए। संयुक्त

कार्यक्रम (चाहे एक ही मुद्दे पर हो या कई मुद्दों पर अथवा आवामी मांग पर हो या चुनाव लड़ने पर) के बिना कोई संयुक्त मोर्चा (महज कांग्रेस विरोध के आधार पर) न बनाया जाय और कोई भी पार्टी या गुट यदि संयुक्त कार्यक्रम पर सहमत हो तो उसे बाहर न रखा जाए। संघर्ष का तौर-तरीका लोगों के मूड और उनकी वास्तविक ताकत के मुताबिक अख्तियार किया जाए (यह चाहे ज्ञापन देने, किसी मंत्री अथवा अफसर को शिष्ट मंडल लेकर मिलने या उससे भी बड़े कदम प्रदर्शन, धरने हड़ताल या लंबे आन्दोलन की सूरत में हो)। लोगों को गोलबंद और संगठित करने के बाद संघर्ष तब तक चलाया जाए जब तक कि मसला हल न हो जाता। लोगों को तात्कालिक मुद्दों पर गोल बंद करते समय हमें उन्हें पार्टी की जन प्रचार लाइन के बारे में भी जानकारी देनी चाहिए। इससे मौजूदा सामाजिक हालात की सही जानकारी मिलेगी और उनकी सामाजिक चेतना बढ़ेगी।''

(10) उपर्युक्त बताया गया उद्धरण हमारे बारे में स्वयं बता रहा है। यह स्वयं स्पष्ट है अधिक व्याख्या की जरूरत नहीं। इसमें विस्तृत तर्क, व्यवहारिकता समाहित है। जहाँ तक हमारा संबंध है, वे हमारी बढ़ी-चढ़ी शैली के तौर-तरीके को मामूली व्यवहारिक उपयोगिता के साथ अभिव्यक्ति करता है। निसंदेह, हमारी पार्टी व जन जागृति की लाईन में अस्थिरता ऐसे लुढ़कते पत्थर की तरह रही है जिस पर कोई द्रव्य नहीं ठहरता। यह पार्टी और जन आन्दोलन संगठित करने में असफल रही है।

हमारा पार्टी व इसकी जनस्थिति का आँकलन करने का पैमाना धन-बल व भुजबल पर आधारित राजनीति का न तो रहा है व न है बल्कि सिद्धान्तों पर आधारित रहा है। हमारे मापदण्ड का प्रमुख सिद्धान्त सदस्यों की समझ व जन आन्दोलन है व रहा है।

III

(11) अब क्या किया जाये? एक पुरानी कहावत है, उफने हुए दूध पर रोने से कोई फायदा नहीं। अत: हमारे सामने मात्र विकल्प है कि हमारे नकारात्मक अनुभवों को सकारात्मक बनाने के लिए एक दृढ़ प्रतिज्ञा ले कि हम हमारे दोषपूर्ण सांगठनिक अवधारणा व शैली से छुटकारा पाने के लिए हमारे संविधान के नियमों के मुताबिक पार्टी सह जन कार्य की प्रक्रिया को संगठित करें, हमारे समय के सामाजिक परिर्वतनों के मुताबिक कुछ अप्रासांगिक संवैधानिक सूत्रीकरण की पुर्नजाँच व समानुकूलित करने की ज्यादा से ज्यादा कोशिश करें।

(12) हमारी पार्टी की कार्यशैली में प्रमुख बाते हमारे संविधान की प्रत्येक धारा की धारणा व उस पर वास्तविक अमल करने पर विचार-विमर्श करना होना चाहिए। इन विचार-विमर्शों में सम्पूर्ण सदस्यता सभी स्तरों पर सम्मिलित की जानी चाहिए। प्रत्येक इकाई यह सुनिश्चित करे कि वह प्रत्येक धारा की माँग को कैसे पूरी व लागू कर रही है। यह संवैधानिक पुर्नविचार एक माह में सम्पन्न हो व स्वीकृत फैसले अगले दो महिनों में लागू हो जाने चाहिये। सभी ब्लॉक व ऊपर की इकाईयाँ संवैधानिक पुर्नविचार व निर्णित कार्यों के पूर्ण होने के 15 दिन बाद उनके लिखित वक्तव्य केन्द्रीय कमेटी को भेजने चाहिये।

(13) हमारे जन कार्य की प्रमुख बात लगातार बढ़ती जन समस्याओं (नयी व पुरानी दोनों) जो हमारे लोगों को कठिनाई में डाल रही है, के तथ्य को ध्यान में रखने की

होनी चाहिए। आज 5 प्रकार के मुद्दे जन मानस को आन्दोलित कर रहे हैं। इन मुद्दों की विलक्षणता है कि वे न केवल राष्ट्रीय चरित्र बल्कि उप क्षेत्रीय व क्षेत्रीय लक्षणों को भी समाहित किये हुए हैं। वे मुद्दे ये है (क) प्राथमिक मानवीय आवश्यकताओं के मुद्दे (पानी, सफाई, पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित मामले), स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, सड़क व रेल यातायात, संचार आदि) (ख) गरीबी व भुखमरी के मुद्दे (ग) बेरोजगारी का मुद्दा (घ) बेघबारता का मुद्दा (ड़) कृषि व ग्रामीण विकास का मुद्दा (च) लिंग विभेद का मुद्दा तथा (छ) जनता के साथ अन्याय के मुद्दे (जैसे भ्रष्टाचार, मानवाधिकारों की अवहेलना, अपराधीकरण, जंगलराज, हिंसा, साम्प्रदायिकता, जातिवाद इत्यादि)। आने वाले दिनों में, मजदूरों के अधिकारों, बेरोजगारी, गरीबी, छोटी व सीमान्त कृषि, लिंग-विभेद व बेघरबारता से संबंधित सामाजिक समूहों को जन आन्दोलन को गति देने की दिशा में सही तरीके से संगठित व जागृत करने की आवश्यकता है।

(14) लोगों को सम्मिलित करने की प्रक्रिया के लिए आवश्यक साधन कमोबेश एक जैसे ही होते है। फर्क मात्र उनके सृजनात्मक अथवा अदक्ष प्रयोग में निहित है। आमतौर पर ये हैं–

(क) ज्वलंत मुद्दे व संबंधित समूहों को छांटना जो ये हो सकते है (i) क्षेत्र विशेष (ii) वर्ग विशेष (iii) समस्या विशेष (iv) सामाजिक समूह विशेष।

(ख) लक्षित समूह का उद्देश्य, ज्वलंत मुद्दों के विभिन्न पहलुओं व संघर्ष के रूप को स्पष्ट करते हुए एजेण्डा तैयार करना।

(ग) लक्षित समूह व उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों के साथ अपने-आप में सामंजस्य बैठाना।

(घ) विभिन्न स्नेह मिलनों को प्रभावित लोगों की सम्पूर्ण जागृति के लिए शुरूआती बिन्दु के रूप में इस एजेन्डा को काम में लिया जाए और इन समस्याओं व इनके समाधानों पर बातचीत कर इसे स्वीकार कराया जाए।

(ड़) एजेन्डे से जोड़ते हुए क्षेत्र, देश व विश्व से संबंधित इसी तरह की समस्याओं द्वारा लक्षित समूहों की जागृति को विकसित करना।

(च) भागीदारों द्वारा कोर-टीम चुनवाना तथा एजेन्डे पर सामाजिक समूह को और आन्दोलित करने का कार्य कोर टीम को सुपुर्द करना तथा ज्यादा से ज्यादा कोर टीमें तैयार करना।

(छ) संगठन व जन जागृति के निश्चित स्तर तक तैयार करने के बाद, उस समस्या को सम्बन्धित क्षेत्र से हल करवाने के लिए जनता की राय का दबाव पैदा करना तथा संघर्ष के विभिन्न रूपों के जरिये उसे लागू करवाना।

(ज) जन-जागृति को संघर्ष के तरीके व विभिन्न जागृति अभियानों के द्वारा तपाकर एक अजेय शक्ति के रूप में तब्दील करना।

(15) जन-जागृति तथा सामाजिक समस्याओं को समझने एवं उनके समाधान में लोगों की भागीदारी एक प्रकृति दोस्ताना एवं मानव दोस्ताना समाज के स्थापन की प्रक्रिया में एक बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल है। भागीदारी प्रेरणा पर निर्भर करती है तथा

प्रेरणा तर्कसंगत व भावनात्मक जागृति के द्वारा तय की जाती है। यह सवाल करके सीखने का है। उपलब्धियाँ सिद्धान्त व व्यवहार के सही तालमेल की एक अन्तहीन प्रक्रिया से आती है। बने बनाये प्रमेय मात्र बंजर सूत्र है।

IV

(16) ऊपर बताये एजेन्डे के अन्त में, तीन और अन्तर संबंधी बिन्दुओं पर यहाँ कहने की आवश्यकता है।

प्रथम, पार्टी एक विश्व व्यवस्था बनाने के दृष्टिकोण का पक्षपोषण करती है जिसका मौलिक सिद्धान्त जनता व पर्यावरण (प्रकृति) को मानवीय विचार, क्रियाकलाप व संगठन के केन्द्र में रखना है।

द्वितीय, पार्टी शांति आधारित विश्व व्यवस्था को स्थापित करने के लिए कटिबद्ध है, जो महाशक्तिवाद या प्रभुत्ववाद तथा इसके सहायक तनावकारी तरीकों (जैसे कुछ बड़े देशों की विदेश सह सुरक्षा नीति) की राजनीति से किनारा करते हुए दोस्ती व सहयोग के द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के हितों का सामंजस्य करके तथा सभी झगड़ों (चाहे देशों के बीच हों या उनके अन्दरूनी) का समाधान विवादित पक्षों के बीच बातचीत, समझौता वार्ता द्वारा हल करती है।

यह संयुक्त राष्ट्र व अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का सभी विशेषाधिकारों व भेदभाव वाले कानूनों का खात्मा कर एक जनवादी, समानता एवं पारदर्शिता के आधार पर पुनर्गठन करने की वकालत करती है।

यह समानता, टिकाऊपन, उत्पादकता, जनवादी एवं पारदर्शिता के मानदण्डों पर आधारित एक लोक सह पर्यावरण दोस्ताना विकास पर जोर देती है।

तृतीय, पार्टी एक वास्तविक आधार पर (क) भारत की राजनीतिक प्रक्रिया को कानून के राज, लोगों के अधिकतम संभव सीधा शक्तिकरण, पारदर्शिता, लोगों को सूचना का अधिकार एवं प्रशासन के हर स्तर पर पूर्ण जवाबदेही के उन्नत मानदण्ड (ख) इसकी आर्थिक प्रक्रिया को समानता, टिकाऊपन, उत्पादकता, लोकतांत्रिक और पारदर्शिता के नियमों पर (ग) इसकी सांस्कृतिक प्रक्रिया को मानवीय सोच और लोकतांत्रिक व्यवहार के स्तर पर (घ) इसके विदेश सह सुरक्षा प्रक्रिया को सभी बाह्य झगड़ों और आन्तरिक उत्तेजना पैदा करने वाले मामलों को बातचीत एवं समझौतों द्वारा स्थायी शांति प्रस्तावों पर आधारित बनाना (ड़) इसका नजरिया सम्प्रभुता, स्वतंत्र और सिर्फ राष्ट्रवाद (जो अकसर अंध देश भक्ति और उदण्ड राष्ट्रवाद की ओर प्रवृत होता है) की पुरानी पड़ रही धारणाओं की जगह अन्तरनिर्भर राष्ट्रवाद (अथवा राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता) के सिद्धान्त पर आधारित करके भारत का पुनर्गठन करती है।

(27.5.2000)

***

राष्ट्रीय फार्मुले वैश्विक समस्याओं का हल नहीं
पर्यावरण एवं मानव हितैषी कार्यक्रम समय की मांग

I

1. मानव समुदाय एक नये युग–वैश्वीकरण के युग में प्रवेश कर चुका है। आज प्रत्येक व्यक्ति इसे एक जीवन्त तथ्य के रूप में स्वीकार करता है–चाहे वह इसके (वैश्वीकरण के) बारे में अपनी ही धारणा रखता हो।

2. फिर भी, इस अप्रत्याशित ऐतिहासिक विकास का भटकाव पक्ष यह है कि वर्तमान शासकीय समूह इसकी (वैश्वीकरण की) महत्वता के बारे में विशेष प्रकार की चुप्पी साधे हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने इस महत्वपूर्ण घटना पर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया है। यद्यपि वे प्राय: कम महत्वपूर्ण मुद्दों को विश्लेषण एवं निस्तारण के लिए हाथ में ले रही हैं। एकमात्र महाशक्ति, अमेरिका तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य चार वीटो धारक सदस्यों ने वैश्वीकरण की व्याख्या राष्ट्रीय सन्दर्भ में की है।

3. नये युग की प्रकृति के बारे–यानि यह युग क्यों और कैसे वजूद में आया–में लोगों के बीच भी कोई गंभीर विचार-विमर्श नहीं है। ना ही बीते हुए राष्ट्रीय युग के लेखे-जोखे–इसके सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष–के पुनरनिरीक्षण करने का कोई प्रयास किया गया है।

4. स्पष्टतया, बीते हुए काल के वास्तविक पुनरमूल्यांकन के बिना तथा हमारे वर्तमान के बारे में उचित समझ बनाए बिना आने वाले दिनों में हमसे निश्चय ही ऐतिहासिक भारी भूलें होंगी।

5. हमारे शासकों की तरफ से ऐसी संगीन चूक क्यों हो रही है जबकि तमाम ऐतिहासिक मानवीय अनुभव बार-बार इस तर्कसंगतता पर जोर देता है कि बीते हुए काल से सबक लेना चाहिए एवं वर्तमान काल के अनुकूल हमें काम करना चाहिए तथा यह भी कि जब हम उचित दावा प्रस्तुत कर रहे हैं कि मानव जाति एक नये ज्ञान के युग में प्रवेश कर चुकी है। मनुष्य की यह भूल आकस्मिक होना प्रतीत नहीं होती। वास्तव में इस प्रकार की बहस अभी भी प्रभुत्वकारी राष्ट्रीय धोखेबाजों की पसन्द न थी और ना है। राष्ट्रवाद के सिद्धान्त और व्यवहार पर लोगों के बीच बहस तथा नई उभरी वैश्विक व्यवस्था की उत्पत्ति और उसकी मांगें नई वैश्विक वास्तविकताओं का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रीय नुस्खे और उनके प्रचारकों की अप्रासंगिकता को प्रकट कर देते हैं। स्पष्टतया, वर्तमान राष्ट्रीय शासकों की अपने अस्तित्व की अनुभूति ने इस खतरे को भाँपा कि उभर रही वैश्विक व्यवस्था में उनका प्रभाव समाप्त हो सकता है और इसने उन्हें वास्तविक मुद्दे को तोड़-मरोड़ कर अमूर्त विषय में तब्दील करने के लिए प्रेरित किया। इसके लिए उन्होंने तीसरी सहस्त्राब्दी के अवसर का उपयोग नई चुनौतियों को पुराने राष्ट्रीय फार्मूलों के जरिए हल करने के आह्वान में किया। इसके अनुकूल संयुक्त राष्ट्र संघ ने तुरन्त राष्ट्र राज्य

के अध्यक्षों या राष्ट्रीय सरकारों के नेताओं का तीसरी सहस्त्राब्दी सम्मेलन (सितम्बर, 2000) आयोजित किया ताकि वैश्विक मुद्दों को राष्ट्रीय समाधानों से निपटा जा सकता है यह गूँज सबको सुनाई दे। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं (जैसे, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक) तथा विश्व व्यापार संघ (डब्ल्यू.टी.ओ.) ने भी तीसरी सहस्त्राब्दी की महत्वता को नई उभरी ऐतिहासिक वैश्वीकरण की मांगों से जोड़े बिना अपने राष्ट्रीय नजरिए वाले तरीकों से उजागर किया। साफ तौर पर, ये सभी ताकतें (यानि, राष्ट्रीय शासक तथा वर्तमान विद्यमान अन्तर्राष्ट्रीय संगठन) चाहती है कि नये वैश्विक कार्यक्रम और उसकी समस्याओं का प्रत्युत्तर देने के लिए पुराने राष्ट्रीय रास्ते पर बराबर कायम रहे–ताकि नई वैश्विक व्यवस्था पर पुरानी राष्ट्रीय ताकतों का प्रभुत्व संरक्षित रह सके।

II

6. अब जबकि मानव समुदाय ने वैश्विक पथ पर चलना शुरू किया है तो सबसे पहले यह आवश्यक है कि वह पीछै मुड़ कर अपने तात्कालिक बीते हुए काल पर नजर डाले और यह छटनी करे कि बीते हुए काल की विरासत ने उसे क्या सकारात्मक और क्या नकारात्मक पक्ष दिये हैं। यहाँ, हमारी नजर में निम्न बिन्दु ध्यान दिए जाने योग्य हैं।

[A]

7. सकारात्मक पक्ष में, राष्ट्रीय युग (अठारहवीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश में शुरू होकर, आज तक) ने काफी योगदान दिया है।

8. वैज्ञानिक तकनीकी क्षेत्र में, इसने विज्ञान की करीब-करीब सभी शाखाओं में नहीं टूटने वाली सफलताओं के रिकार्ड स्थापित किये। यह दौर न्यूटन की यांत्रिकी (गति और बल का वैज्ञानिक अध्ययन) से शुरू करते हुए और विभिन्न दौर से गुजरते हुए प्लांक के क्वांटक यांत्रिकी तक पहुंचा। कदम-ब-कदम मानव समुदाय को इसने नई समझ प्रदान की।

9. राजनीतिक क्षेत्र में, इसने राजा के दिव्य अधिकार के सिद्धान्त के स्थान पर व्यवहार में लोगों को अपनी पसंद की सरकार चुनने के अधिकार के सिद्धान्त का नियम स्थापित किया, उदार लोकतंत्र (शुरू में मुख्यत: पश्चिमी यूरोपीय देशों तक सीमित) ने लोगों को मतदान का अधिकार दिया जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक मत देने का अधिकारी रहा। इसकी शुरूआत में महिलाओं, गुलामों और गरीबों को मतदान के अधिकार से वंचित रखा गया परन्तु बाद में बीसवीं सदी के प्रथम भाग में प्रत्येक राष्ट्र राज्य में सार्वत्रिक मताधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार किया। इसने बहुदलीय व्यवस्था को अपनाया, जहाँ विभिन्न दल आपस में अधिकतम मत और सीटें प्राप्त करने के लिए आपस में प्रतियोगिता करते हैं।

10. बीसवीं सदी के शुरू के चतुर्थांश में जब साम्यवादी लोकतंत्र पर्दे पर सामने आया इसने एक दलीय केन्द्रीयकृत शासन का चयन किया।

11. अर्थशास्त्र के क्षेत्र में दो विकास धारणाओं और उनके अपने-अपने मॉडल रहे यानि, (अ) उदार विकास धारणा और मॉडल तथा (ब) मार्क्सवादी विकास धारणा और मॉडल। इसका पहला मॉडल अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उभरा और आज तक

निरन्तर जारी है, जबकि दूसरा उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में प्रकट हुआ और बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश से अंतिम चतुर्थांश तक कार्यरत रहा। हमारे विचार से ये दोनों विकास धारणाएं और मॉडल गंभीर कमजोरियां लिए हुए हैं।

12. प्रथम, मनुष्य की प्रकृति के बारे में दोनों एकपक्षीय समझ प्रस्तुत करते हैं जबकि उदारवादी अर्थशास्त्र प्रत्येक मानवीय गतिविधि में निजी हित को ही केवल मात्र मानवीय प्रेरणा का स्रोत मानता है, तथापि मार्क्सवादी अर्थशास्त्र मानवीय विचार और गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में सामाजिक हित ही सब कुछ है–की धारणा को पेश करता है।

उपरोक्त दोनों धारणाएं यह समझने में नाकामयाब रही हैं कि मनुष्य जो कि एक जैव-सामाजिक घटनाक्रम है, एक दोहरी जैव-सामाजिक प्रकृति से चरित्रित है और इसलिए हमेशा व्यक्तिगत के साथ-साथ सामाजिक यानि, दुतरफा प्रेरणा लिए हुए है, जिसमें हमेशा एक पक्ष प्राथमिक भूमिका में होता है जबकि दूसरा उसकी सहायक भूमिका निभाता है। संक्षेप में, उदारवादी पक्ष मनुष्य की प्रकृति के सामाजिक पहलू की अनदेखी करता है जबकि मार्क्सवादी अर्थशास्त्र उसके जैविक पहलू पर ध्यान देने से इन्कार करता है।

इन दोनों धारणाओं ने अपने-अपने राष्ट्र राज्य के विकास की प्रक्रिया में कार्य किया है यद्यपि उनके अपने-अपने एकतरफापन ने उनकी पूरी उपयोगिता को बाधित किया है।

13. द्वितीय, दोनों मॉडल पूंजी के बारे में एक तरफा धारणा प्रदान करते हैं (यानि, विभिन्न आर्थिक उद्यमों में अधिक धन पैदा करने की प्रक्रिया में संग्रहित धन का उपयोग करना)। उदारवादी अर्थशास्त्र मानता है कि पूंजी या मुनाफा प्राथमिक तौर पर पूंजी निवेश का उत्पाद है जबकि श्रम और तकनीक गौण भूमिका में रहते हैं।

इसके मुकाबले में, मार्क्सवादी अर्थशास्त्र मानता है कि पूंजी केवल श्रम से ही पैदा होती है इसलिए ही मार्क्सवादी अर्थशास्त्र प्राय: पूंजी को संचित श्रम या अतिरिक्त श्रम मूल्य कहता है।

उपरोक्त दोनों धारणाएं यह देखने में नाकामयाब है कि पूंजी एक दो तरफा अन्तरक्रिया की पैदावार है। यानि, एक तरफ प्राकृतिक और मानवीय शक्तियों के बीच अन्तरक्रिया (जिसके कारण नये वैज्ञानिक सिद्धान्त और तकनीक पैदा होते हैं) तथा दूसरी तरफ समाज में विभिन्न मानवीय इकाइयों के बीच अन्तरक्रिया (जिसमें श्रमिक और पूंजीपति का पहलू शामिल है)।

इस प्रकार साधारण शब्दों में, पूंजी या मुनाफा हमेशा तीन आर्थिक पहलुओं की पैदावार है, यानि तकनीक, श्रम एवं पूंजी, जिसमें प्रत्येक एक निश्चित समय में प्राथमिक भूमिका निभाते हैं तब अन्य दो उसकी पूरक भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर उत्पादन की प्रक्रिया की शुरूआत में पूंजी प्रथम स्थान ग्रहण करती है परन्तु बाद में उसी प्रक्रिया में श्रम और तकनीक की भूमिका बारी-बारी से मुख्य स्थान ग्रहण करते रहते हैं।

14. तृतीय, दोनों उदारवादी और मार्क्सवादी विकास मॉडल (जो सामाजिक कल्याण, सम्पन्नता और न्याय को इंगित करता है) अपने-अपने एक तरफा लक्ष्य या उद्देश्य प्रस्तुत करते हैं। उदारवादी विकास मॉडल जबकि मुनाफा या उत्पादकता को अपना एकमात्र लक्ष्य चयन करता है तथापि मार्क्सवादी विकास मॉडल उत्पादन के

साधनों या आर्थिक समता या सामाजिक न्याय को अपना एकमात्र लक्ष्य निर्धारित करता है। एक विकास मॉडल का टिकाऊपन मांग करता है कि इसका लक्ष्य दुतरफा उद्देश्य वाला होना चाहिए, यानि, एक तरफ पर्यावरणीय पहलू को प्रोत्साहित करना तथा दूसरी तरफ मानवीय पहलू का विकास करना। ये दोनों पहलू मानव समाज की जीवन रेखा को तय करते हैं और इसलिए किसी भी विकास मॉडल के लिए ये दोनों उच्चतम प्राथमिकता रखते हैं। इन दो प्राथमिकताओं की उचित सेवा तभी की जा सकती है जब पांच सूत्री उसूलों को व्यवहार में अपनाया जाए और लागू किया जाए। यानि विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाले पांच सूत्री उसूल यानि पर्यावरणीय और मानवीय पहलुओं के बीच संतुलन, आर्थिक समता (या सामाजिक न्याय), उत्पादकता, लोकतंत्र तथा पारदर्शिता हैं। परन्तु ये दोनों मॉडल विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण सुरक्षा तथा लोकतांत्रिक और पारदर्शी मानदण्डों को ठुकराते हैं। आगे, उदारवादी विकास मॉडल समता के सिद्धान्त या सामाजिक न्याय को पूर्णतया ठुकराता है तथापि मार्क्सवादी विकास मॉडल उत्पादकता की पूर्णतया अनदेखी करता है।

15. चतुर्थ, उदारवादी व मार्क्सवादी दोनों विकास मॉडल राज्य और बाजार की संस्थाओं के बारे में एक तरफा राय रखते हैं। उदारवादी विकास मॉडल राज्य की कोई महत्वपूर्ण भूमिका होने के तथ्य को नकारता है जबकि वह राज्य की भूमिका इस हद तक मानता है कि पूंजी के मालिकों के बीच उचित प्रतियोगिता को व्यवस्थित (रेगुलेट) करे तथा पूंजी व श्रम (मानसिक व शारीरिक दोनों) के बीच प्रतियोगिता को आंशिक रूप में पूंजी के मालिकों के पक्ष में मोड़े तथा विक्रेता और क्रेता के बीच प्रतियोगिता को व्यवस्थित करे। यह मानता है कि बाजार एकमात्र वह माध्यम है जो सभी प्रकार की सामाजिक विकृतियों को दुरुस्त करता है और इस प्रकार समाज में सामाजिक कल्याण, सम्पन्नता, प्रगति एवं न्याय स्थापित करता है।

इसके मुकाबले में मार्क्सवादी विकास मॉडल समाज कल्याण, सम्पन्नता, प्रगति करने के लिए तथा न्याय दिलाने के लिए राज्य को केन्द्रीय भूमिका में रखता है तथा बाजार को कोई भी महत्वता देने से इन्कार करता है। तथ्यात्मक तौर पर, राज्य और बाजार दोनों ही अत्यधिक आवश्यक सामाजिक संस्थाएं हैं। जबकि राज्य सामाजिक कल्याण, सम्पन्नता, विकास तथा न्याय के बारे में सामाजिक दृष्टिकोण, उद्देश्य एवं कानून को धारण करता है तथा लागू करता है, तथापि बाजार समाज में विनिमय का प्रमुख माध्यम बनता है, जो कि इसके विकास मॉडल की सफलता के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

16. पंचम, उदारवादी तथा मार्क्सवादी दोनों विकास मॉडल सामाजिक कल्याण, सम्पन्नता, प्रगति एवं न्याय पाने के अपने-अपने विकास के उद्देश्यों को पाने के लिए एक तरफा सिद्धान्त पेश करते हैं। चूंकि उदारवादी विकास मॉडल 'बूंद-बूंद रिसने' या आर्थिक समता या सामाजिक न्याय का उसूल अपनाता है जिससे एक तरफ अमीरों एवं मध्यम वर्ग के उच्च स्तर का धन बढ़ता है तो दूसरी तरफ गरीब और अमीर के बीच निरन्तर असमानता बढ़ती चली जाती है। उत्पादन के साधनों के समाजीकरण का मार्क्सवादी सिद्धान्त हालांकि गरीबों और वंचितों के जीवन स्तर में सुधार लाता है, साथ ही उत्पादन के गुण व मात्रा में गंभीर गिरावट का कारण बनता है जिसने कमजोर भागों सहित लोगों के सभी भागों में नई मुश्किलें पैदा कर दी हैं।

17. संस्कृति के क्षेत्र में, अपनी पिछली सामन्ती संस्कृति के बनिस्पत राष्ट्रीय संस्कृति अधिक मानवीय मूल्यों तथा कम टकराहट वाले रुझानों से चरित्रित है। फिर भी, यह अभी भी पर्याप्त तौर पर आक्रामक और निर्मम है।

[B]

18. नकारात्मक पक्ष में, राष्ट्रीय रिकार्ड इतना घातक है कि यह तमाम सकारात्मक योगदान को शून्य कर देता है।

राष्ट्र की मुख्य गलती पर्यावरण विरोधी तकनीकी का उपयोग तथा ग्रीन हाउस गैसों के उत्पादन के गंभीर पारिस्थितिक असंतुलन के कारण में निहित है। सम्पूर्ण राष्ट्रीय परिदृश्य में तमाम उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान पैदा किये गये कुल उत्पादन की बनिस्पत अकेले पर्यावरण विनाश की पूंजी के सन्दर्भ में लागत कहीं अधिक है। अब पर्यावरणीय ह्रास की काली छाया मानव समुदाय को दिखने लगी है।

19. राष्ट्रीय राजनीति के मामले में, धन बल निर्देशित राजनीतिक संस्कृति को अपनाने और लोकप्रिय बनाने के कारण राष्ट्रवाद ने अपने दलीय नेतृत्व वाले लोकतंत्र को प्रदूषित कर दिया है, जिसने राजनीति को अवसरवादी राजनीतिज्ञों के खेल के रूप में परिवर्तित कर दिया है। मानवाधिकारों का उल्लंघन, अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव, माफियावाद, अपराध और अराजकता आदि करीब-करीब सभी राष्ट्रीय राज्यों में आम बात है।

20. राष्ट्रीय आर्थिकता के मामले में, आम तौर पर सभी राष्ट्रीय राज्यों में तथा विशेष तौर पर विकासशील देशों में इसने व्यापक गरीबी तथा बेरोजगारी एवं तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि तथा अमीरी व गरीबी के बीच अद्वितीय असमानता पैदा की है।

21. राष्ट्रीय संस्कृति के सन्दर्भ में इसने नई किस्म का उपभोक्तावाद या वाणिज्यिक संस्कृति को पनपाया है जो सही या गलत तरीके से धन और सत्ता को विकसित करने में लगाव पैदा करता है तथा निजी हित को और बढ़ावा देता है। धन और सत्ता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इसने पूरी दुनिया में करीब 200 साल तक निर्मम उपनिवेदशवाद को अपनाया तथा बीसवीं सदी के प्रथम अर्द्धांश में दो आक्रामक विश्व युद्ध लड़े हैं।

22. उपरोक्त वर्णित तथ्यों के मद्देनजर यह देखा जा सकता है कि वे तमाम गंभीर चुनौतियां जो आज की वर्तमान दुनिया के सामने हैं–यानि, पर्यावरणीय गिरावट, जनसंख्या वृद्धि, असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, लिंग असमानता, मानवीय अधिकारों का उल्लंघन, अल्पसंख्यकों से भेदभाव, माफियावाद, बढ़ते हुए अपराध, अराजकता आदि, वे हमारी पिछली राष्ट्रीय व्यवस्था के उत्पाद हैं तथा बाद में नई उभरी वैश्विक व्यवस्था को वसियत में दी गई है। इन समस्याओं से निपटने के लिए पुरानी राष्ट्रीय व्यवस्था की क्षमता नहीं रही है और आज भी इनसे परम्परागत राष्ट्रीय तरीकों के जरिए नहीं निपटा जा सकता है।

23. हमारी मौजूदा समस्याओं के असली कारण तथा वास्तविक प्रकृति को जाँचने में यदि हम असफल रहते हैं तो हम इनका उचित उत्तर देने लायक नहीं बन सकेंगे। यह हमें नई उभरी वैश्विक प्रक्रिया के सच्चे चरित्र की गलत समझ की ओर ले जा सकती है और ले जायेगी।

III

24. वैश्वीकरण क्या है तथा इसकी मांगें क्या हैं–आज सम्पूर्ण मानव समुदाय के सामने यह बुनियादी सवाल है। और मानवता का अगला कदम इस सवाल के हल से सीधा जुड़ा हुआ है। वास्तविक उत्तर अगर आगे बढ़ने के रास्ते को प्रशस्त करेगा जबकि गलत उत्तर इसे (मानव समाज को) गतिहीन कर देगा।

25. साधारण परिभाषा में, वैश्वीकरण वह घटनाक्रम है जो विश्वव्यापी विस्तार लिए हो। मानव समाज पर इसको लागू किया जाए तो इसका अर्थ है कि मानव जाति विश्वव्यापी हो गई है। गति के मायने हैं स्थान और समय में परिवर्तन, इसके अनुसार मनुष्य के समय और स्थान की स्थिति में परिवर्तन हो गया है।

26. समय की स्थिति में परिवर्तन नई संचार पद्धतियों से प्रकट है, इन्टरनेट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व्यवस्था ने मनुष्य की मानसिक अन्तरक्रिया को रोशनी की गति प्रदान कर दी है। यह सुविधा आज सामान्य हो गई है। कुछ तीन दशक पहले यह कुछ विशेषाधिकार वालों को ही उपलब्ध थी, और बीसवीं सदी से पहले तो मानसिक तौर पर सम्पर्क करने के लिए महीनों लगते थे।

27. मनुष्य के स्थान परिवर्तन की स्थिति इस तथ्य से साबित है कि मनुष्य अब एक स्थान से दूसरे स्थान तक ध्वनि से भी तेज रफ्तार से यात्रा कर सकता है जो अब से 30 वर्ष पहले असम्भव था।

28. स्पष्टतया, उपरोक्त वर्णित परिवर्तन नई वैज्ञानिक-तकनीकी खोजों का सीधा परिणाम है। ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि सभी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक-तकनीकी परिवर्तन के अनुकूल सामाजिक परिवर्तन हमेशा होते रहे हैं–जिनसे मनुष्य का सम्पूर्ण जीने का तरीका बदल जाता है, यानि उसके सोचने, काम करने और संगठित होने का तरीका बदल जाता है। यह ऐतिहासिक तथ्यों की सम्पूर्ण शृंखला में देखा जा सकता है, यानि राष्ट्र राज्य का उद्भव जिसकी अपनी लोकतांत्रिक राजनीति, मुक्त व्यापार आधारित अर्थनीति तथा उपभोक्तावादी संस्कृति है जिसके साथ ही औद्योगिक वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति भी है; सामन्ती राज्यों का उभरना जिनकी अपनी सामन्ती राजनीति 'राज्य करने का राजा का दिव्य अधिकार' सामन्ती अर्थनीति तथा सामन्ती संस्कृति जिसके साथ ही कृषि की वैज्ञानिक-तकनीकी परिवर्तन भी है। कबीलाई समाज का उद्भव चरागाह या पशुपालन विज्ञान एवं तकनीक से जुड़ा हुआ है तथा गण समाज शिकार एवं भोजन इकट्ठा करने के विज्ञान और तकनीक से जुड़ा हुआ है।

29. प्रकृति के साथ मानव की अन्तरक्रिया का परिणाम उस समय का विज्ञान एवं तकनीक होता है। इस अन्तरक्रिया के जरिए मानव प्रकृति की विभिन्न प्रक्रियाओं की समझ हासिल करता है। यह समझ मानव जाति के लिए प्राकृतिक संसाधनों को अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए हासिल करने में मदद देती है। इसलिए, प्रकृति के बारे में मानव जाति की समझ का जो स्तर होता है वही स्तर प्रकृति के अधिकतम दोहन के लिए मानव जाति के सोच, व्यवहार और संगठन का होता है। दोहन की प्रक्रिया में संयुक्त मानवीय प्रयास के लिए मानव जाति अपनी एक सामाजिक व्यवस्था बनाती है–मानव जाति द्वारा

दोहन, कर्म और जीवन से सम्बन्धित अन्य शब्दों में, समाज के अन्दर मानव जाति की परस्पर अन्तरक्रिया की व्यवस्था।

IV

30. आज, वैश्वीकरण भी प्रकृति की निश्चित प्रक्रियाओं, जैसे, ऊर्जा, पदार्थ, अन्तरिक्ष, सूचना, जैव-विज्ञान आदि आदि के सम्बन्ध में मनुष्य की एक निश्चित मंजिल का प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्य की समझ की इस नई मंजिल की भी मांग है कि पुरानी राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था को पुनरगठित किया जाए या आज के अनुकूल बनाया जाए।

31. पुरानी राष्ट्र राज्य व्यवस्था को पुनरगठित करने के लिए निम्न मुख्य बिन्दुओं को शामिल किया जा सकता है।

(A) वर्तमान विश्व वास्तविकता की एक स्पष्ट समझ बनाई जाए; यानि, अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की एक दुनिया या अर्द्ध-राष्ट्रीय और अर्द्ध-अन्तर्राष्ट्रीय राज्यों वाली एक दुनिया।

(B) एक स्पष्ट दृष्टिकोण की आवश्यकता; यानि एक दुनिया का दृष्टिकोण।

(C) 'एक दुनिया के दृष्टिकोण' का बुनियादी उसूल, जनता और पर्यावरण को वैश्विक गतिविधि के केन्द्र में रखना है। जनता और पर्यावरण के प्रति नजरिया वैज्ञानिक वास्तविकतावाद पर आधारित हो।

(D) एक लोकतांत्रिक वैश्विक व्यवस्था : संयुक्त राष्ट्र संघ को एक राष्ट्र-एक वोट के लोकतांत्रिक उसूल के आधार पर गठित करना; जैसे वीटो पॉवर; महाशक्तिवाद या प्रभुत्ववाद को नकारते हुए स्थायी शांति को सुनिश्चित करना; तथा सभी विवादों को बातचीत के जरिए हल करना।

(E) राजनीति : जनता के सशक्तिकरण पर आधारित हो।

(F) लोक एवं पर्यावरण हितैषी विकास : एक तरफ जनता और दूसरी तरफ पर्यावरण–इन दो तरफा प्राथमिकताओं से यह विकास चरित्रित हो तथा यह विकास पांच उसूलों, यानि, टिकाऊ पर्यावरण, समता, उत्पादकता, लोकतंत्र एवं पारदर्शिता–पर आधारित हो।

(G) अर्थनीति : कारपोरेट रूढ़िवाद एवं राज्य निश्चयवाद के अनुकूल होने के बनिस्पत जनता के विकास एवं पर्यावरण संवर्द्धन निर्देशित हो।

(H) संस्कृति : लोकतांत्रिक व्यवहार तथा तर्कसंगत मानवतावादी सोच पर आधारित हो।

(I) सुरक्षा : जीवन के हर क्षेत्र में सुरक्षा हो और खासकर आजीविका के क्षेत्र में सुरक्षा सुनिश्चित हो।

सार-संक्षेप : किसी सामाजिक अवस्था (मंजिल) में सामाजिक परिवर्तन या चीजों को दुरुस्त करने का एक ही रास्ता है–लोगों में जागृति लाना, उन्हें शामिल करना तथा संगठित करना।

***

एकमात्र प्रकृति-हितैषी एवं मानव-हितैषी कृषि ही मानव समुदाय की सेवा कर सकती है

I. आम नजरिया

मोर्चा दृढ़तापूर्वक मानता है कि सोच, व्यवहार और संगठन में वैज्ञानिक वास्तविकतावाद का नजरिया इसका मार्गदर्शक है। वैज्ञानिक वास्तविकतावाद ब्रह्मांड एवं उसके भिन्न-भिन्न घटनाक्रमों का अध्ययन एवं व्याख्या वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर करता है।

अब तक मानव समुदाय द्वारा समझे गये तथा विज्ञान द्वारा ज्ञात विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक ज्ञान को ध्यान में रखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि प्रकृति में कोई भी चीज निरपेक्ष, अन्तिम या निश्चयात्मक नहीं है। प्रत्येक चीज निरन्तर परिवर्तनशील है, यहां तक कि परिवर्तन का नियम स्वयं भी या ब्रह्मांड का अन्य कोई बुनियादी नियम (यदि कोई हो तो) भी परिवर्तनशील है। स्पष्टतया, वैज्ञानिक और सामाजिक सत्य लगातार बदलते जा रहे हैं।

मौजूदा उपलब्ध तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रकृति एक आम प्रक्रिया है जो भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं से गठित है तथा वे आपस में कभी एकता और कभी संघर्ष के जरिए एक दूसरे से लगातार अन्तरक्रिया में हैं जिससे प्रत्येक प्रक्रिया में आंशिक मात्रात्मक और गुणात्मक निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं तथा चरम बिन्दु पर प्रत्येक प्रक्रिया दूसरी प्रक्रिया (आपसी एकता और आपसी संघर्ष) का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

मानव समाज पर लागू करने पर, वैज्ञानिक वास्तविकतावाद मानव समाज को प्रकृति की विभिन्न प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया के रूप में देखता है जिसका अस्तित्व और विकास दो अन्तरसंबंधित अन्तरक्रियाओं पर आधारित है, यानि, एक तरफ प्रकृति (प्रत्येक प्राकृतिक प्रक्रिया की द्योतक) एवं मानव समाज (इसकी व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों चरित्रों की अभिव्यक्ति) के बीच तथा दूसरी तरफ मानव समाज में विभिन्न मानवीय ग्रुपों के साथ ही व्यक्ति और व्यक्ति के बीच अन्तरक्रिया। पहली अन्तरक्रिया के जरिये जो समझ हासिल होती है वह मानव के सोच, कार्य और संगठन के तरीके को निर्धारित करती है जबकि दूसरी अन्तरक्रिया मानव समाज के सामूहिक प्रत्युत्तर (यानि, प्रदत्त मानव सामाजिक व्यवस्था) एवं मानव के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को निर्धारित करती है ताकि प्रदत्त मानव सामाजिक व्यवस्था के मानदण्डों को अपनाया जा सके।

II. हमारे सामाजिक युग की प्रकृति एवं इसकी आम समस्याएं

अपने इतिहास के दौर में मानव समाज भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक मंजिलों (या सामाजिक काल या युग) से गुजरा है। अब तक, वैज्ञानिक वास्तविकतावाद की नजर से

देखा जाए तो ऐसी पाँच ऐतिहासिक मंजिलें (मानवीय झुंड, गण, कबीला, कृषिकारी-धार्मिक समुदाय और राष्ट्र) रही हैं। अब मानव जाति अपने छठे सामाजिक युग, यानि वैश्वीकरण के युग में प्रवेश कर चुकी है। वैश्वीकरण का अर्थ है कि मानव के सम्बन्ध वैश्विक हो गये हैं। कुछ समय पहले तक तो ये सम्बन्ध मुख्यतया राष्ट्रीय थे। यद्यपि, राष्ट्र राज्य अभी भी निरन्तर मौजूद हैं वे वैश्विक रास्ते पर चलने के लिए मजबूर हैं (चाहे वास्तविकता की समझ के जरिये या वास्तविकता के दबाव में)।

वैश्वीकरण के समक्ष आज दो बुनियादी समस्याएं हैं, यानि, (1) पर्यावरणीय गिरावट जो सभी पर्यावरणीय संसाधनों के मात्रात्मक और गुणात्मक गिरावट से देखी जा सकती है, जैसे, वायु (ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ोतरी के कारण), जल, भूमि, जंगल, जैव विविधता, इत्यादि और (2) मानवीय क्षमता की बर्बादी जो मानवीय असमानता में बढ़ोतरी, गरीबी, बेरोजगारी, पुरानी एवं नई बिमारियां, एकपक्षीय शिक्षा व्यवस्था (जो केवल व्यक्तिवाद पर जोर देता है तथा सामाजिक संवेदनशीलता की उपेक्षा करती है), महंगाई, काला धन, भ्रष्टाचार, अपराध, अराजकता, आदि।

III. मौजूदा दो वैश्विक समस्याओं का बुनियादी कारण

आज जो भी बुनियादी वैश्विक समस्याएं तथा उनके उप-उत्पाद मौजूद हैं वे सब हमारे निरन्तर चले आ रहे पारम्परिक विकास मॉडलों या मॉडल की उपज हैं। ये मॉडल आज अचानक नहीं उत्पन्न हुए हैं परन्तु जैसा कि तथ्य दर्शाते हैं कि कई दशक पहले उभरे हैं जब दुनिया भर में राष्ट्रीय राज्य का काल वर्चस्व में रहा, और तब वैश्वीकरण एक अमूर्त धारणा थी।

राष्ट्र राज्य व्यवस्था ने अपने करीब दो सौ साल के जीवन काल में दो विकास मॉडल प्रस्तुत किये हैं–पश्चिमी उदार-लाभ निर्देशित विकास मॉडल तथा मार्क्सवादी-राज्य नेतृत्व वाला विकास मॉडल। यद्यपि इन दोनों मॉडलों ने मानव समाज की सामाजिक वृद्धि में योगदान दिया है तथापि वास्तव में यह वृद्धि अत्यधिक कीमत अदा करने से प्राप्त हुई है, यानि पर्यावरणीय एवं मानवीय गिरावट के रूप में हुआ नुकसान और शायद कुल लाभ के बनिस्पत कुल हानि कहीं अधिक है।

IV. वर्तमान वैश्विक समस्याओं का एक वास्तविक उत्तर

पीछे दिये गये तथ्य इंगित करते हैं तथा राष्ट्रों की अन्तरनिर्भरता की मौजूदा वैश्विक वास्तविकता सुझाव प्रदान करती है कि हमारी चल रही बुनियादी समस्याओं (यानि, पर्यावरणीय गिरावट तथा मानवीय क्षमता की बर्बादी) का हल भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय राज्यों को एक नई वैश्विक व्यवस्था में पुनर्गठित करने में निहित है। ऐसी व्यवस्था एक प्रकृति हितैषी एवं मानव हितैषी ही हो सकती है और होनी चाहिए। या अन्य शब्दों में यह ऐसे मॉडल का प्रतिनिधित्व करती है जिसकी दो उच्चतम प्राथमिकताएं–पर्यावरण एवं मानव जाति–हैं। स्थायी शांति इस मॉडल की सामाजिक आवश्यकता है जिसे सभी प्रकार के महत्वपूर्ण विवादों का न्यायपूर्ण हल करके प्राप्त किया जा सकता है, लोक सशक्तिकरण

तथा साथ ही साथ केन्द्रीकृत दलीय राजनीतिक शक्ति को कमजोर करना इस मॉडल की राजनीतिक जरूरत है। टिकाऊ, समता, उत्पादकता (या लाभदायी), लोकतांत्रिक एवं पारदर्शी आर्थिक वृद्धि इस मॉडल की आर्थिक आवश्यकता है। एक यथार्थवादी सोच एवं व्यवहार इस मॉडल की सांस्कृतिक जरूरत है। वैचारिक तौर पर इसे वैज्ञानिक यथार्थवाद को अपनाना चाहिए।

स्पष्टतया, एक वैश्विक व्यवस्था का विकास मॉडल प्रकृति हितैषी एवं मानव हितैषी ही हो सकता है, जो दो उच्चतम प्राथमिकताओं (यानि, पर्यावरण एवं मानव जाति) तथा पांच उसूलों (यानि, टिकाऊ पर्यावरण, लोकतंत्र, उत्पादकता, समता या सामाजिक न्याय तथा पारदर्शिता) से चरित्रित है।

***

खेतीबाड़ी एवं किसान विकास फ्रंट का कार्यक्रम, पंजाब

प्रथम अध्याय

I. नाम :

संगठन का नाम 'कृषि एवं किसान विकास मोर्चा' होगा। यह उन सारे लोगों का जन संगठन है जो कृषि पैदावार की प्रक्रिया से सीधे तौर पर सम्बन्धित है।

खेत मजदूरों की अपनी स्वयं की कई ठोस समस्याएं हैं, वे अपना अलग संगठन बना सकते हैं।

कृषि की धारणा का अर्थ विज्ञान एवं उद्योग दोनों से है। विज्ञान के तौर पर इसका महत्व इस सिद्धान्त पर आधारित है कि यह जमीन में पैदा होने वाली भिन्न-भिन्न फसलों के व्यवहारिक ज्ञान को सिखाती है। उद्योग के तौर पर यह पैदावार की आर्थिक प्रणाली का संकेत है जो कि समाज के उपयोग के लिए खेतीबाड़ी के भिन्न-भिन्न उत्पादों का प्रबंध करती है और काश्तकारी से सम्बन्धित सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों को विकसित करके आगे बढ़ाती है।

कृषि भारत की अर्थव्यवस्था का एक अति महत्वपूर्ण घटक रही है। यह इसलिए है क्योंकि भारत की 65% आबादी कृषि की गतिविधियों में संलग्न है; भारत की श्रम शक्ति का सबसे बड़ा हिस्सा इस क्षेत्र में लगा हुआ है और इस क्षेत्र का भारतीय राष्ट्रीय आय में करीब 30 प्रतिशत का योगदान है। भारत की कृषि भूमि का 80 प्रतिशत भाग छोटी जोत वाला है जबकि विकसित देशों में बहुत बड़ी जोत वाली भूमि केवल 3 से 4 प्रतिशत आबादी के पास है।

II. फ्रंट का उद्देश्य

प्रकृति-मानव हितैषी कृषि से इसके जुड़ाव को ध्यान में रखते हुए यह मोर्चा दो तरफा उद्देश्य को मजबूती से अपनाता है। वे उद्देश्य है; एक तरफ कृषि से सीधे जुड़े सभी लोगों की आर्थिक बेहतरी, सांस्कृतिक उत्थान और राजनीतिक शक्ति प्रदान करवाने के लिए पूरे मन से कार्य करना और दूसरी तरफ टिकाऊपन, उत्पादकता, क्षमता, जनवाद और पारदर्शिता के पाँच उसूलों के आधार पर कृषि को व्यवस्थित तरीके से संगठित करना।

अध्याय 2

III. पंजाब की कृषि के वर्तमान हालात

आज पंजाब की कृषि के मामले में अत्यधिक चुनौतीपूर्ण स्थिति अख्तियार किए हुए है। भारत में खाद्य उत्पादन के क्षेत्र में अगुवा और उदाहरणीय भूमिका के बावजूद आज पंजाब की खेतीबाड़ी के सामने कुछ अत्यधिक गंभीर समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं।

इसकी चावल, गेहूँ, रूई, गन्ना और ज्वार की खेती में उत्पादकता गिर रही है।

इसके उत्पादन के पर्यावरणीय पहलुओं–यानि, मिट्टी, पानी, जंगल, जैव-विविधता, इत्यादि काफी खराब हो चुके हैं। इसकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था और अधिक असमानता वाली बनी हुई हैं। यहाँ कृषि क्षेत्र के और अधिक विस्तार की संभावना समाप्त हो गई है। अधिकांश खेती लायक जमीन पर जोताई की जाने लगी है। फसल की सघनता काफी उच्च स्तर पर पहुँच चुकी है। अधिकांश कृषि निवेश का उपभोग राष्ट्रीय स्तर (165 किलो प्रति हैक्टेयर) से कहीं अधिक है।

बढ़ती हुई आबादी के मद्देनजर भूमि मिल्कियत के टुकड़े होने की वजह से सीमान्त और छोटे किसान की खेती लाभदायक नहीं रही है। कृषि निवेश की कीमतों और मजदूरी बढ़ने के कारण उत्पादन की लागत बढ़ गई है। 1975-76 से 1996-97 तक प्राप्त आंकड़े बताते हें कि गेहूँ की खेती की लागत 6 गुना, रूई की 7 गुना और चावल की 10 गुना तक बढ़ गई है। (ट्रिब्यून, 6.8.98 पेज 9) खेती में बढ़ रही लागत ने कृषि समुदाय में कर्जदारी बढ़ा दी है। पंजाब में खेती पर कुल कर्ज 8200 करोड़ रुपये का आंका गया है। कर्ज का प्रतिवर्ष ब्याज का बोझ 1103 करोड़ रुपये है, यानि यह फसल पैदावार के कुल मूल्य का करीब 11 प्रतिशत है। पंजाब की अलाभदायक खेती की ओर विकास के परिणामस्वरूप कई किसानों ने आत्महत्या कर ली है। बहुत ही जल्दी (यानि, नई दिल्ली द्वारा–विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुसार, जिसमें भारत हस्ताक्षरकर्ता है–मात्रात्मक प्रतिबंधों को वापिस लेने के बाद) इसे विश्व मंडी से कीमत व गुणवत्ता के बिन्दु पर गंभीर चुनौतियां का सामना करना पड़ेगा।

IV. पंजाब के कृषि संकट का मुख्य कारण

पंजाब के कृषि संकट का मुख्य कारण इसकी केवल उत्पादकता या मुनाफा आधारित कृषि में निहित है जो प्रकृति-मानव हितैषी कृषि के विकास मॉडल के 5 आवश्यक आयामों में से केवल एक आयाम है।

V. पंजाब की कृषि के लिए एक वास्तविक विकल्प

उपरोक्त विवरण के आधार पर तथा तर्कसंगत तौर पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पंजाब की कृषि को आगे ले जाने के लिए प्रकृति-मानव हितैषी कृषि मॉडल को अपनाने से संभव है जो एक तरफ पंजाब के कृषि समुदाय के तीन तरफा हितों को आगे ले जायेगा तथा दूसरी तरफ पंजाब की कृषि को 5 तरफा आधार पर विकसित करेगा।

(A) पंजाब के कृषि समुदाय के तीन तरफा हितों को आगे बढ़ाने के लिए

1. किसानों का आर्थिक कल्याण

किसानों के लिए कल्याण कार्य करने का अर्थ है कि वे सभी कदम उठायें जाएं जो किसानों को सम्पन्नता और प्रसन्नता दें। वे निम्न हैं–सभी कृषि उत्पादों के लिए उचित मूल्य हासिल करना; किसानों के लिए आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाना; प्रभावी फसल बीमा योजना शुरू करवाना; सभी निवेशों–खाद, बीज, कीटनाशक, पानी आदि के प्रबन्ध के बारे में एकीकृत तकनीक को उन्नत करना; ब्लाक स्तर पर विशेष सूचना सेवाओं को स्थापित करना जो प्रत्येक गाँव में किसानों को नई तकनीक के उचित प्रयोग और पंजाब, भारत और दुनिया की प्रसिद्ध मंडियों में महत्वपूर्ण कृषि उत्पादों की कीमतों

के नवीनतम रुझानों की स्थिति के बारे में नियमित तौर पर समय पर उचित सूचना देना। ग्रामीण बेरोजगारी, गरीबी, बेघरबारता की स्थिति से कृषि उद्योग और कुटीर उद्योग शुरू करके निपटाना। सीमान्त किसान, खेत मजदूर, बन्धुआ मजदूर, ग्रामीण भिखारी आदि की समस्या पर ध्यान देना। भूमिहीन और छोटे व मध्यम किसानों (5 एवं 7 एकड़ तक के भूमि मालिकों को मध्यम किसान समझा जाता है) के पिछले कर्जे माफ करना, चाहे वे आड़तियों, सहकारी बैंकों या कॉमरशियल बैंकों के कर्जे हों। आड़तिया व्यवस्था समाप्त करना, किसानों की बाजार और वित्त सम्बन्धी समस्याओं को हल करना, आत्महत्या से पीड़ित किसानों के परिवारों को राहत पहुँचाना, प्राकृतिक विपदाओं, फसली नुकसान के शिकार लोगों को तुरन्त राहत और सहायता प्रदान करना, फसली विभिन्नता (फसल बदली) शुरू करना, बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों में बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम बनाने और सेम व अकाल पीड़ित क्षेत्रों के लिए विशेष कदम उठाना; इत्यादि।

2. किसानों के सांस्कृतिक उत्थान के लिए

किसानों के सांस्कृतिक उत्थान के लिए हर वह कदम उठाना जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित विचारों और रिवाजों को और अधिक मानवीय व तर्कसंगत बना सकते हो। ये कदम हैं–मानवीय बन्धुता के सिद्धान्त को ऊंचा उठाना तथा जाँत-पाँत, साम्प्रदायिक एवं नस्ली भेदभाव का डट कर विरोध करना, लिंग समानता के सिद्धान्त को अपनाना, लड़के और लड़कियों को बराबर का दर्जा देना, बड़ों का आदर तथा बच्चों की विशेष देखभाल करना, सभी सामाजिक बुराइयों, जैसे कि भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, जुएबाजी, शराब, नशाखोरी, सिगरेट पीना आदि समाप्त करने का आह्वान करना। पर्यावरण की देख-भाल करना और सारी खाली पड़ी जगहों पर पेड़ लगाना, शैक्षणिक संस्थाओं तथा गतिविधियों को विकसित करना, स्वास्थ्य रक्षा और ग्रामीण सफाई व्यवस्था की तरफ विशेष ध्यान देना।

3. लोगों का राजनीतिक शक्तिकरण

जनता के राजनीतिक शक्तिकरण के लिए कार्य करने में वे सभी कदम शामिल हैं जो लोगों की राजनीतिक जागरुकता बढ़ा सकते हैं और राजनीति की निर्णयकारी प्रक्रिया में उनके अधिकतम सम्भव हद तक शामिल होने को सुनिश्चित करते हैं। ये कदम हैं–लोगों को लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धान्तों के बारे में अवगत करवाना और हर समय व हर जगह इन उसूलों को अपनाने की आवश्यकता पर जोर देना; लोगों को धनबल और सत्ताबल आधारित राजनीति के खतरों के प्रति जागरुक करने के लिए उनकी पंचायतों, एम.एल.ए. व एम.पी. के व्यवहारिक कारनामों और सरकार की कृषि और अन्य नीतियों के बारे में दिन प्रतिदिन की कारगुजारियों की नकारात्मक भूमिका को लोगों के सम्मुख रखना; लोगों को संवैधानिक वायदे के मुताबिक उनके मूल अधिकारों और उसके व्यवहारिक पक्ष के बारे में बताना कि वास्तव में उन्होंने पाया क्या है; मानव अधिकारों का पक्ष लेना और उनके उल्लंघन का हर कहीं विरोध करना; भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अपराधीकरण, साम्प्रदायिककरण, धोखाधड़ी, ठगी, अराजकता, हिंसा इत्यादि का विरोध करना; किसानों को कृषि एवं किसान विकास मोर्चे के उद्देश्य और सिद्धान्तों के अनुसार चुनाव प्रक्रिया के दौरान उचित राजनीतिक फैसले लेने के लिए लामबंद करना; पंजाब को विशेष

दर्जा देने की माँग करना ताकि यह अपनी खेतीबाड़ी (कृषि) को विश्वव्यापी प्रतियोगिता के मुकाबले विकसित कर सके; इत्यादि।

(B) पंजाब कृषि के 5 तरफा आधार को विकसित करने के लिए

1. पर्यावरणीय टिकाऊपन का उसूल

टिकाऊपन के आधार पर कृषि को संगठित करने के कार्य का अर्थ है कि वे सभी कदम उठाये जाएँ जिससे पर्यावरण और मानव के बीच संतुलित सम्बन्ध बन सके। ये सन्तुलित सम्बन्ध ह्रास होते पर्यावरणीय संसाधनों को, जैसे कि भूमि, जल और जंगल को सुधार करके किया जा सकता है और तब इन संसाधनों को संरक्षित किया जाए ताकि यह सन्तुलन कायम रखा जा सके। ये कदम निम्न हैं–भूमि पर दबाव तथा पानी का अति उपयोग (जो विशेषज्ञों के अनुसार चावल-गेहूँ फसल चक्र पद्धति के कारण है) को फसल विभिन्नता का तरीका अपनाकर रोका जाए। चावल, गेहूँ फसल चक्र के कम से कम 30 प्रतिशत क्षेत्र पर अन्य लाभदायक वैकल्पिक फसलों, जैसे फल, सब्जी आदि को पैदा किया जाए।

कुल अकार्बनिक खादों के एक तिहाई हिस्सा की जगह कार्बनिक खादों (हरा या फार्म यार्ड) या जैविक खादों का उपयोग किया जाए।

कृषि वानिकी विकसित करना–यानि पेड़ों के साथ-साथ फसल उगाना–ऐसा करने से तात्कालिक एवं दीर्घकालिक दोनों उपज सुनिश्चित होती है और मिट्टी के साथ-साथ नमी को भी लाभ मिलता है।

वन्य क्षेत्र को बढ़ाना, प्रत्येक खाली स्थान पर पेड़ लगाना और खुली पड़ी जमीनी क्षेत्र को हरा-भरा बनाना।

बंजर और निम्न स्तरीय भूमि में सुधार लाने के लिए राज्यव्यापी या जिला स्तरीय परियोजनाएं शुरू करना।

पानी, जिसमें नदी का पानी, बरसाती पानी, भूमिगत पानी तथा गन्दे नालों के पानी के उपयोग में वैज्ञानिक संयुक्त उपयोग प्रणाली को विकसित किया जाए तथा जल संग्रहण के छोटे स्तर पर टिकाऊ एकीकृत विकास रणनीति की शुरूआत की जाए।

पर्यावरण सुरक्षा, जल संरक्षण, जैव विविधता, आदि को सुधारने के लिए तथा सतही मिट्टी, पानी, जंगल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए एकीकृत कदम उठाए जाने चाहिए।

निचले स्तर तक के संगठनों और गाँव के लोगों द्वारा भूमि, पानी, जंगल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की नीति को मुख्य उद्देश्य के रूप में अपनाया जाए।

नीचे लिखे बिन्दुओं के आधार पर प्रत्येक ब्लाक में टिकाऊ भूमि उपयोग प्रणाली को अपनाया जाए और एकीकृत किया जाए।

(अ) टिकाऊ सघनता–बढ़िया भूमि में सघन खेती तभी की जा सकती है जब उसकी मिट्टी की उर्वरकता इजाजत देती हो या मिट्टी की उर्वरकता पर उचित ध्यान रखा जाए।

(ब) पुनर्बहाली क्षेत्र–क्षयग्रस्त भूमि को उचित बंजर भूमि विकास परियोजनाओं के जरिये वापस अच्छी भूमि में बदलना।

(स) संरक्षित क्षेत्र–जंगल और अन्य क्षेत्र जो जैव विविधता में उन्नत हैं, उनकी सम्भाल की जानी चाहिए ताकि उनकी प्राचीन पवित्रता कायम रखी जा सके।

7 एकड़ से नीचे जोत वाले किसानों (भूमिहीनों सहित) के सभी पिछले कर्जों को रद्द किया जाए, चाहे वह कर्ज आड़तियों, सहकारी बैंकों या वाणिज्यिक बैंकों ने दिया हो।

2. उत्पादकता का सिद्धान्त

उत्पादकता के आधार पर कृषि को संगठित करने का अर्थ है कि वे सभी कदम उठाए जाएं जो उत्पादन की दर और उत्पाद की गुणवत्ता के सुधार में लगातार वृद्धि ला सके। वे कदम निम्न हैं–

नई टिकाऊ तकनीक और निवेश का सृजन और उपयोग करना तथा इसे फैलाना और इसके ज्ञान को ग्रामीण क्षेत्र विशेष तौर पिछड़े क्षेत्रों के कोने-कोने तक पहुँचाने पर जोर देना।

उत्पादन बढ़ाने, कुशलता लाने और उत्पादन अपशिष्ट को कम करने के लिए पानी, जीवाणु नाशक तथा पोषणीय पदार्थों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में एकीकृत तकनीक को आगे बढ़ाना।

नई तकनीक को आगे लाना जो मोटे अनाज, दालें तथा बीजों की उत्पादन वृद्धि में मदद कर सके।

संसाधन और निवेश (इनपुट) प्रभावी उपयोग के जरिये प्रति इकाई भूमि, जल और पशु की फसलवार और समूची उत्पादकता बढ़ाना।

प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखते हुए कुल उत्पादकता के पहलू को त्वरित करना।

कृषि की प्रक्रिया का बेहतर प्रबन्ध करते हुए उत्पादकता बढ़ाना, उदाहराणार्थ फल और सब्जियों की फसल के बाद के नुकसानों को परिवहन, शीत घर, बाजार और परिशोधन इकाई (प्रोसेसिंग युनिट) उपलब्ध करवाकर रोका जाए ताकि राज्य की कृषि आमदनी को काफी हद तक बढ़ाया जाए।

राज्य की सभी मुख्य फसलों के लिए स्थाई कृषि मूल्य नीति सुनिश्चित करना।

एक राज्य स्तरीय प्रभावशाली फसल बीमा योजना सुनिश्चित करना जो प्रत्येक फसल की जोखिम के सही आकलन पर आधारित हो। यदि बीमा किस्तें उच्च होंगी तो छोटे और मध्यम किसान उसको वहन नहीं कर सकेंगे।

कृषि और कृषि उद्योग में ऋण की मात्रा दुगुनी करते हुए ग्रामीण ऋण व्यवस्था को पुनर्गठित किया जाए और विशेष तौर पर छोटे और सीमान्त किसानों को ऋण व्यवस्था की अधिक सुविधा प्रदान की जाए। केन्द्र सरकार को बैंकों और कर्ज देने वाली दूसरी एजेन्सियों को कहना चाहिए कि वे कर्जे की पूर्ति बढ़ाये और अपनी तरफ से दिए जाने वाले कुल ऋण और निवेश का 30 प्रतिशत हिस्सा कृषि में ऋण और निवेश के रूप में खर्च करे।

पंजाब सरकार द्वारा कृषि को निवेश और अन्य सहायता देने के क्षेत्र में प्राथमिकता पर रखा जाए। फसल कटाई के बाद नुकसान को कम से कम करने के लिए अनाज, फल और सब्जी के लिए परिवहन व्यवस्था में सुधार और स्टोरेज (कोल्ड स्टोरेज समेत) की

सुविधा में बढ़ोतरी करते हुए एक बुनियादी ढाँचा उचित समय सीमा में तैयार करने के लिए फंड मुहैया करवाया जाए।

कृषि को उद्योग का दर्जा देना। भूमि सुधारों का बचा हुआ काम पूरा करना। कृषि परिशोधन उद्योग (बड़े, मध्यम और लघु) विकसित करके कृषि पैदावार और गाँवों की आमदनी में बढ़ोतरी करना। पंजाब की कृषि के लिए गेहूँ-चावल फसल चक्र की जगह फसली विभिन्नता का तरीका अपनाना बहुत ही गंभीर मसला है। यह पंजाब की कृषि उत्पादकता की बहाली और इसे आगे विकसित करने के लिए तथा पंजाब की आर्थिकता को वहनीय (चलने लायक) व संतुलित बनाने के लिए बहुत ही जरूरी है।

अपने अधिक अनाज भंडार के कारण पंजाब भिन्न-भिन्न किस्म के खाद्य प्रोसेसिंग उद्योगों के लिए पूरी तरह फिट है। यह बहुत सारी बागवानी फसलों के लिए भी उपयुक्त है, जो न केवल अपने मूल कच्चे रूप में ही मूल्य देगी बल्कि उससे भिन्न-भिन्न किस्म के जूस (रस) भी प्रोसेसिंग करके निकाले जा सकेंगे। इसमें प्रोसेसिंग किए खाद्य पदार्थ तथा फलों के रस को निर्यात करने के लिए उचित बुनियादी ढांचा भी शामिल है। इस बुनियादी ढाँचे में आवश्यक बिजली की उपलब्धता, कोल्ड स्टोर स्थापित करने, प्रोसेसिंग प्रक्रिया की सहूलियतें, जैसे, पैकिंग (डिब्बा बंद), कैनिंग (रस निचोड़ना), बोतल में पदार्थ बन्द करना, ठंडा करना और निर्जलीकरण (डी आईड्रेशन) करना शामिल है ताकि भोजन और फलों की कीमतों में बढ़ोतरी की जा सके।

परिवहन में तसल्लीबख्श प्रबन्ध करके ताजा सब्जियों और फलों को देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में भेजा जा सकता है। इनको अधिकृत उड़ानों के द्वारा यूरोप की मंडी में भी भेजा जा सकता है। इन सब कुछ के लिए किसानों को समय रहते उचित सूचना देने की जरूरत है। उन्हें देश की भिन्न-भिन्न मंडियों में भिन्न-भिन्न किस्म के फलों और सब्जियों की कीमतों की जानकारी देनी पड़ेगी ताकि वे इनको बेचने के लिए ठीक स्थान का फैसला कर सके। इसी तरह वे फैक्स और फोन के माध्यम से यूरोप की भिन्न-भिन्न मंडियों की सूचना प्राप्त करके वहाँ भी फल और सब्जियां भेज सकेंगे। यहाँ राज्य सरकार को वांछित भूमिका निभाने की जरूरत है।

3. न्यायसंगतता (समता) का सिद्धान्त

न्यायसंगतता के आधार पर कृषि को संगठित करने का अर्थ है कि वे सभी कदम उठाए जाएं जो प्रत्येक के लिए निष्पक्ष और युक्तियुक्त व्यवहार करने को सुनिश्चित करे। वे कदम निम्न हैं–

उत्पादकता, टिकाऊपन और न्यायसंगतता के आधार पर कृषि को विकसित करना। सबसे महत्वपूर्ण कार्य ग्रामीण मानव संसाधन को विकसित करना है क्योंकि ये वो लोग हैं जो कृषि से संलग्न हैं और अकेले ये ही हैं जो प्राकृतिक संसाधनों और कृषि पैदावार के इनपुट (खाद आदि) का उपयोग कर कृषि की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। एक बार किसी प्रक्रिया में शामिल हुए लोग जब जागरुक और प्रेरित होते हैं तब कोई भी संभव कार्य सफल किया जा सकता है। ग्रामीण मानव संसाधनों को विकसित करने के लिए निम्न कार्यों को पूर्ण करना आवश्यक है।

पंजाब की कृषि के क्षेत्र में न्यायसंगतता (तथा उत्पादकता में भी) के लिए बड़ी

बाधा भूमि जोतों का लगातार छोटा हो रहा आकार है। यह साधारण परिवार की औसतन आवश्यकताओं को पूरा करने लायक आमदनी भी पैदा नहीं करती है और इसीलिए अव्यवहार्य बन गई हैं। वर्तमान समय में इस तरह की जोतों (4 एकड़ से कम) की गिनती पंजाब की कुल भूमि जोतों की 2/3 भाग बनती है। इसका अर्थ है कि पंजाब में दो तिहाई छोटे और गरीब किसान हैं, जो मुश्किल से जीवन निर्वाह कर पा रहे हैं। यदि इनमें खेत मजदूरों (जिनमें से ज्यादातर गरीबी की रेखा के नीचे रह रहे हैं) को शामिल कर दिया जाये तो यह गिनती पंजाब की ग्रामीण आबादी की 80 प्रतिशत बन जाती है। वे लोग जिनके पास 5 से 7 एकड़ जमीन है मध्मय श्रेणी में आते हैं।

हमारे 5 पक्षीय आम परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में छोटी जोत की रुकावट को इस तरह दूर किए जाने की आवश्यकता है कि एक तरफ तो हमारी भूमि जोतों को उचित इकाइयों (पैदावार के सारे आधुनिक साधनों के उपयोग किए जाने लायक व्यवहारिक इकाई) में तब्दील करे और दूसरी तरफ गरीब व छोटे किसानों के हित सुरक्षित रखे जाएं। हमारे विचार से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के इन गरीब, छोटे और मध्यम किसानों को मोटे तौर पर 3 किस्म के उप ढाँचे में अपनी गैर-व्यवहारिक भूमि जोत को पुनर्गठित करने के लिए तैयार होना चाहिए।

(क) सिंचित और दो फसली भूमि के 10 एकड़ जोत के निजी फार्म बनाये जाने चाहिए। यह भूमि की गुणवत्ता के लिहाज से अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग आकार के भी हो सकते हैं। इनको या तो छोटे और गरीब किसान आपस में मिलकर बना सकते हैं, या फिर एक छोटा किसान दूसरे छोटे और गरीब किसान से जमीन ठेके या लीज पर लेकर 10 एकड़ का फार्म बनाए। ऐसे फार्मों को उपयोग लिए गए इनपुट्स और किए गए खर्च (निवेश) पर विशेष कृषि छूट (सब्सिडी) दी जानी चाहिए और कृषि भूमि को ऋण आधार बनाकर गिरवी रखने के बदले कम ब्याज पर ऋण दिया जाना चाहिए। ऐसी इकाइयों की बाजार लागत को कम करने और बाजार लाभ को बढ़ाने के लिए उचित बाजार सहकारिता के जाल के साथ गूंथा जाना चाहिए।

(ख) छोटे और सीमान्त किसान अपनी आसपास की जमीनों को मिलाकर 100 एकड़ सिंचित व दो फसली भूमि के सहकारी खेत बना सकते हैं। यह भूमि गुणवत्ता को देखते हुए क्षेत्रवार भिन्न-भिन्न आकार के भी हो सकते हैं। इस प्रकार के खेतों को कुल भूमि पर खेती भी करनी चाहिए तथा साथ ही बाजार गतिविधियां करनी चाहिए। संस्थागत लाभ पाने के लिए 4 एकड़ आकार से अधिक बड़े किसान को कानून के द्वारा इस सहकारी खेत का सदस्य बनाने की मनाही होनी चाहिए। अनुभव यह दर्शाता है कि अमीर किसान प्राय: ऐसी संस्थाओं में छोटे किसानों पर हावी हो जाते हैं और अपने लाभ के लिए इनका शोषण करते हैं। मजदूरी के आधार पर सदस्यों को मुख्य तौर पर अपने में से ही मजदूर उपलब्ध करने होंगे। केवल विशेष मामलों में ही बाहर के मजदूरों को लगाया जायेगा। सहकारी खेती का आधार नये कानून होने चाहिए जो इसे जन-आधारित आन्दोलन बनाएं और सभी प्रकार की नौकरशाही दखलन्दाजी को पूर्ण तौर पर रोकें।

(ग) केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा ठेके पर खेती किए जाने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ठेके की खेती का अभिप्राय है कि छोटे और सीमान्त किसान विशेष

फसलों की खेती उद्योगपति (जिसे अपने उद्योग के लिए एक प्रकार का निश्चित कच्चा माल चाहिए) या एक निर्यातक (जिसे निर्यात करने के लिए विशेष गुणवत्ता का कृषि माल चाहिए) या उनके इलाके में काम करने वाली एक कृषि औद्योगिक इकाई (विशेष प्रकार के कृषि उत्पाद की प्रोसेसिंग की जरूरत के लिए) के साथ संविदा के तहत की जाने वाली खेती। इस प्रकार की व्यवस्था एक तरफ छोटे और सीमान्त किसानों को अपनी जमीनों पर मिल्कियत बनाए रखने को सुनिश्चित करती है और दूसरी तरफ उन्हें करीब-करीब व्यवहारिक बना देती है।

ठेके की खेती में अन्तरनिहित विचार यह है कि यह प्रयोगशाला, उद्योग, भूमि और बाजार के पहलुओं को एकीकृत करती है। इसका उद्देश्य निर्धारित उत्पाद की पैदावार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवाना है। किसानों की एक ठोस सुसम्बन्ध ब्लॉक के रूप में पहचान बनती है, सहमत कीमत पर क्षेत्र और मात्रा के आधार पर संविदा होती है और इसमें महत्वपूर्ण निवेश बीज और पौधे (नर्सरी) की सेवा उपलब्ध होती है। समझौता खेती छोटे और सीमान्त किसानों द्वारा बनाई गई सहकारी खेती और 10 एकड़ सिंचित खेती के लिए अधिकांशत: लाभदायक रहती हैं। समझौता खेती सभी प्रकार की फसलों, जिसमें औषधि वाले पौधे, जैव विविधता, कृषि वानिकी और संरक्षण आदि के लिए की जा सकती है। कई ऐसे इलाके हैं जहाँ निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग उक्त सहकारी खेती को विकसित कर सकते हैं। भारत में गन्ने और तम्बाकू के उद्योग पहले से ही समझौता (ठेका) खेती कर रहे हैं। चीन, थाइलैण्ड और अन्य कई देशों ने उद्योग-कृषि के जुड़ाव को अपने बहुत से क्षेत्रों में विकसित किया है। दिल्ली को भी इस अनुभव से सीखने की कोशिश करनी चाहिए और इसे अपनी स्वयं की परिस्थिति के अनुसार लागू करना चाहिए।

(घ) धनी और मध्यम जोतों के सम्बन्ध में उनके मालिकों को पहले की तरह से ही उन्हें खेती निरन्तर करते रहने की स्वीकृति देनी चाहिए।

(ड़) खेत-मजदूरों के सम्बन्ध में उनकी दयनीय स्थिति की माँग है कि बहुत हद तक उनकी स्थिति को ठीक करने के लिए सुधार के कुछ कदम उठाये जायें। जो निम्न हैं–

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाये और उसे सख्ती से लागू किया जाए। उन भूमिहीनों को जिन्हें भूमि सुधार के तहत भूदान, ग्रामदान आदि में पहले भूमि दी गई थी, परन्तु जो अभी तक वहाँ बसे नहीं उन्हें पुन: बसाया जाए। वह खाली पड़ी भूमि जिसे किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए चिह्नित नहीं किया गया हो उसे शेष भूमिहीनों में आवंटित की जाए। पीने का पानी, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाए। गाँव में भूमिहीनों के निवास के लिए प्लाट देने या निर्मित भवन प्रदान करने की योजना लागू की जाए। प्रत्येक खेत मजदूर को केन्द्र और राज्य सरकार के बराबर-बराबर हिस्से के योगदान के आधार पर 50,000 रुपये दिलाना सुनिश्चित किया जाए। खेत मजदूरों के लिए वृद्धावस्था पेंशन योजना लागू की जाए।

कृषि ढाँचे का उपरोक्त दिशा के आधार पर पुनर्गठन करने से कृषि प्रक्रिया और अधिक उत्पादक और न्यायपूर्ण बनेगी।

4. लोकतन्त्र का सिद्धान्त

लोकतांत्रिक आधार पर कृषि को संगठित करने का अर्थ है कि वे सभी कदम उठाये जाएँ, जिससे एक ऐसी व्यवस्था बन सके जिसमें कृषि प्रबन्ध लोगों द्वारा व लोगों के लिए चले। ये कदम निम्न हैं–(i) ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और बुनियादी ढाँचे की गुणवत्ता में सुधार किया जाए। (ii) ग्रामीण जनता के ज्ञान और कुशलता को विकसित किया जाए। (iii) खेत मजदूर और सीमान्त किसानों की जिन्दगी को बेहतर बनाया जाए। (iv) छोटे किसानों को अनुदानित निवेश और सस्ता ऋण उपलब्ध कराया जाए। (v) मध्यम और धनी किसानों के लिए एक स्थिर मूल्य नीति, मुक्त राष्ट्रीय बाजार, दीर्घकालीन ऋण, निर्यात सुविधाएँ आदि सुनिश्चित की जाएं। (vi) गाँव में चुने हुए लोगों की समिति को यह अधिकार दिया जाए कि वे विभिन्न योजनाओं–आईआरडीपी, जवाहर रोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना आदि के तहत अपने ग्रामीण विकास के लिए चिह्नित किए गए कोष और उस पर खर्च की जाने वाली राशि के उचित उपयोग का निरीक्षण कर सके। (vii) सहकारी आन्दोलन को सहकारिता से सम्बन्धित अफसरशाही कानूनी और विभागीय अफसरशाही नीतियों में संशोधन कर पूर्णतया लोकतांत्रिक बनाया जाए। (viii) महिलाओं को अपने पति की चल-अचल सम्पत्ति का सहमालिक बनाया जाए और उन्हें सभी चुनावी संगठनों में 50 प्रतिशत का आरक्षण दिया जाए। (ix) प्रत्येक पंचायत को (यानि इसके सभी सदस्यों को) अपने चुनाव क्षेत्र के बारे में जबावदेह बनाने के लिए प्रति 6 माह में (यानि साल में दो बार) मतदाताओं की आम सभा की बैठक बुलाई जाए और उसमें 6 महिने का रिकॉर्ड उनके सामने रखा जाए ताकि वे उस पर विचार-विमर्श कर सके और अपनी टिप्पणियां दे सके।

5. पारदर्शिता का सिद्धान्त

लोकतांत्रिक आधार पर कृषि को संगठित करने के लिए कार्य करने का अर्थ है कि वे सभी कदम उठाये जाएँ, जिससे एक ऐसी कृषि व्यवस्था स्थापित हो सके जो आसानी से समझने लायक हो, जिसमें कोई गुप्तता न हो और हरेक के लिए किसी भी जगह और किसी भी समय निरीक्षण करने की खुली छूट हो। ये कदम निम्न हैं–(i) कृषि से सम्बन्धित सभी विभागों और उनके अधिकारियों को किसानों विशेषकर उनको सूचना उपलब्ध करवाने के सम्बन्ध में जवाबदेह बनाया जाए। (ii) कृषि सम्बन्धित विभागों के बारे में किसानों को हर प्रकार की सूचना पाने का हकदार माना जाए।

अध्याय 3

VI. कृषि से सम्बन्धित अन्य मुद्दों के बारे में मोर्चे का नजरिया

कृषि से सम्बन्धित अन्य मुद्दों के बारे में निम्न विषयों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

A. विश्व व्यापार संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक का परिप्रेक्ष्य, कार्यक्रम और प्राथमिकताएं

पहला मुद्दा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (यानि, डब्ल्यू.टी.ओ., आई.एम.एफ. एवं विश्व बैंक) के बारे में मोर्चे के नजरिए से संबंधित है।

डब्ल्यू.टी.ओ. विश्व व्यापार को नियंत्रित करने वाला एक संगठन है। यह एक देश एक वोट के सिद्धान्त पर कार्यरत है। यह आम सहमति और बहुपक्षीयवाद का पक्षपोषक है तथा एकपक्षीयवाद, संरक्षणवाद और एकाधिकारवाद को रद्द करता है।

आई.एम.एफ. और विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं हैं। आई.एम.एफ. अपने सदस्य देशों को भुगतान संतुलन की मुश्किलों से उभरने के लिए ऋण प्रदान करता है। विश्व बैंक एक ऋणदाता संस्था है जो अपने सदस्य राज्यों को उनकी विकास परियोजनाओं के लिए ऋण प्रदान करता है। यह संस्था वित्तीय योगदान आधारित वोट-शक्ति के सिद्धान्त पर कार्यरत है तथा यह अमेरिका एवं अन्य विकसित देशों के पूर्ण नियंत्रण में है।

हमारी नजर में उपरोक्त संस्थाओं में मुख्य त्रुटि यह है कि इनका परिप्रेक्ष्य, कार्यक्रम एवं प्राथमिकताएं विश्व के आम आदमी की मुख्य समस्याओं से मेल नहीं खाती हैं। जबकि ये संस्थाएं मुक्त व्यापार के अर्थशास्त्र के दर्शन से निर्देशित है, पूंजी निर्माण एवं पूंजी निर्माताओं को सामाजिक वृद्धि का इंजन समझती है और इस प्रकार धन उत्पादन एवं संग्रहण को सर्वोच्च प्राथमिकता देती है, तथापि विश्व के आम आदमी रोजमर्रा की जिन्दगी को अच्छी बनाने के लिए सामाजिक कल्याण और सम्पन्नता की इच्छा रखते हैं। सामाजिक असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अराजकता, अपराध, पर्यावरण प्रदूषण आदि को शीघ्र समाप्त करने की इच्छा रखते हैं। अत: इन दो कार्यक्रमों (यानि, विश्व संस्थाओं का कार्यक्रम तथा दुनिया के लोगों का कार्यक्रम) का मुख्य केन्द्र बिन्दु अलग-अलग है।

पूंजी मालिकों की विकास रणनीति का केन्द्र बिन्दु अधिकतम मुनाफे के जरिए आर्थिक वृद्धि प्राप्त करना है तथा मानव (शारीरिक एवं मानसिक श्रम सहित) कल्याण, पर्यावरणीय प्रोत्साहन तथा ढांचागत सुधार के लिए उनकी भूमिका मामूली है। स्पष्टतया, मुक्त व्यापार दर्शन स्व: हित आधारित धन उत्पादन (उत्पादकता) पर जरूरत से ज्यादा जोर देता है जबकि इसके समान वितरण को दोयम स्थिति में रखता है। इसलिए मुक्त व्यापार दर्शन पार्टी नेतृत्व वाली राजनीति, स्व: हित आधारित आर्थिकता तथा व्यक्ति केन्द्रित संस्कृति के 200 साल के व्यवहार इसके कल्याणकारी सिद्धान्त (यानि, ऊपर से नीचे की ओर धन की बूंद-बूंद रिसने का सिद्धान्त) के दावे के विपरीत है, जो एक तरफ अधिकतम धन निर्माण की प्रक्रिया की ओर धकेल रहा है तथा दूसरी ओर सामाजिक असमानताओं (जैसे, विशेषाधिकार एवं वंचितपन; अमीर व गरीब; पांच सितारा लोग और भिखारी; पुरुष प्रभुत्व एवं महिला अधीनता; इत्यादि) में बढोतरी करता है।

राज्य रचनातंत्र के चरमवादी प्रचारक तथा बाजारवादी तकनीक के घोर विरोधी–यानि, वामपंथी पार्टियां, मानवाधिकार के कुछ ग्रुप तथा पर्यावरणवादी संस्थाएं, इत्यादि उपरोक्त संस्थाओं को पूर्णतया नकारात्मक सामाजिक घटनाक्रम के तौर पर पेश करते हैं। इनकी मुख्य चिन्ता गरीबी और अन्याय से मुक्ति पाने की है जबकि पूंजी निर्माण पर इनका बहुत कम ध्यान है। वर्तमान 55 वर्षीय पुरानी वैश्विक संस्थाओं (जिसमें ज्यादातर देश इनके सदस्य हैं और बाकी सदस्य बनने के इन्तजार में हैं) के किसी भी विकल्प को प्रस्तावित किये बिना ये इनके सम्पूर्ण खात्मे (अपने-अपने देशों पर इन संस्थाओं की सदस्यता से हटने के लिए कभी कोई दबाव बनाये बिना) की मांग करते हैं। सामाजिक न्याय केन्द्रित वृद्धि का इनका एकमात्र नुस्खा राष्ट्रीय सरकार के नेतृत्व वाले विकास

मॉडल का है जो कि पूर्व सोवियत युनियन तथा सोवियत कैंप के उस समय के अन्य राज्यों तथा साथ ही कुछ अन्य देश, जैसे भारत में यह दुखदायी सिद्ध हो चुका है।

ऐतिहासिक अनुभवों पर आधारित हमारा मानना है कि उपरोक्त उल्लेखित दोनों विकास मॉडल–यानि, (i) मुक्त बाजारवादी दर्शन आधारित विकास मॉडल, जिसे आजकल सभी विकसित देश तथा काफी संख्या में विकासशील देश मानते हैं, एवं (ii) सरकार के नेतृत्व वाला विकास मॉडल, जिसे कुछ वामपंथी ग्रुप और उनके जैसे अन्य इसे आजकल प्रस्तुत करते हैं और जो अब भी 19वीं शताब्दी वाले कम्युनिस्ट मॉडल को पुन: वापिस लाने का स्वप्न देखते हैं–ये एक तरफा हैं। जबकि पहले वाला मॉडल धन निर्माण को अपनी जीवन रेखा बनाता है तथा बाद वाला पूंजी के समान वितरण को सामाजिक जीवन का सब कुछ समझता है। पहले वाला सामाजिक पूंजी के उचित वितरण की अनदेखी करता है जबकि बाद वाला सामाजिक पूंजी के निर्माण की परवाह नहीं करता है। दोनों बेतहाशा राजनीतिक शक्ति को केन्द्रित करते हैं एवं सामाजिक मामलों के प्रबंध में लोगों की सीधी भागीदारी से हिचकिचाते हैं। आज दोनों वैश्विक समाज बनाने की सामाजिक मांग के सन्दर्भ में अप्रासंगिक हो चुके हैं। उनकी अप्रासंगिकता प्रथमतया, दशकों लम्बे समय तक प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति पूर्णतया अनदेखी करने से स्पष्ट होती है–और इस प्रकार इसने पर्यावरणीय गिरावट को पैदा किया है तथा मानवता को गंभीर खतरे के कगार पर ला खड़ा किया है। निजी तौर पर, हालांकि मुक्त बाजारवादी दर्शन निर्देशित विकास मॉडल दुनिया को असहनीय स्तर तक गरीबी और बेरोजगारी (इस प्रकार मानवीय पूंजी की बर्बादी) की ओर ले गया है, सरकार आधारित मॉडल औसत वृद्धि दर भी पैदा करने में असफल रहा है जो अपने नागरिकों को एक सामान्य जिन्दगी जीने लायक बनाता है (इस प्रकार नतीजतन इसने अपने ही राज्य को ध्वस्त किया है तथा अपने सामाजिक समुदाय को विघटित किया है)।

हमारी मान्यता है कि आज सामाजिक तौर पर उचित और टिकाऊ विकास मॉडल केवल मात्र यही हो सकता है कि उसका चरित्र प्रकृति और मानव हितैषी हो। इसकी दो उच्चतम प्राथमिकता हैं–यानि, पर्यावरण और मनुष्य। इसकी सामाजिक आवश्यकता स्थायी शांति पर निर्भर है, जहां सभी सामाजिक टकराव बातचीत के जरिए हल किये जाए; इसकी राजनीति निर्णय लेने की प्रक्रिया में जनता के अधिकतम संभव सशक्तिकरण पर आधारित है तथा उसी के अनुरूप पार्टी केन्द्रित शक्ति को कमजोर करने वाली है। इसकी आर्थिकता टिकाऊ, उत्पादकता, समता, लोकतंत्र एवं पारदर्शिता वाले विकास को ध्यान में रखने वाली है। इसकी संस्कृति पर्यावरणीय व मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत है। जबकि इसकी विचारधारा वैज्ञानिक वास्तविकतावाद से मार्ग दर्शित है।

(B) नई दिल्ली के मात्रात्मक प्रतिबंधों को हटाने के बारे में

दूसरा मुद्दा नई दिल्ली द्वारा कृषि को प्रभावित करने वाली कुछ वस्तुओं पर मात्रात्मक प्रतिबंध हटाने की नई दिल्ली की नीति के संबंध में मोर्चे का नजरिया है। मोर्चे की यह राय है कि केन्द्रीय सरकार सन् 1995 से (जब इसने डब्ल्यू.टी.ओ. को मात्रात्मक प्रतिबंध हटाने की सहमति दी) मानसिक और भौतिक दोनों तौर पर विश्व बाजार में, विशेष तौर पर विकसित देशों की कृषि की ओर से अत्यधिक कठिन प्रतियोगिता से मुकाबला करने के लिए अपने कृषि समुदाय को तैयार करने में असफल रही है। इस प्रकार की प्रतियोगिता

का मुकाबला करने के लिए भारतीय कृषि की मौजूदा प्रतियोगी क्षमता बहुत पीछे है। अत: वर्तमान स्थिति की मांग है कि भारतीय कृषि एवं इससे जुड़ी गतिविधियों को विदेशी प्रतियोगिता से 5 साल के लिए डब्ल्यू.टी.ओ. के साथ नई शर्तों के बाबत या तो बारीकी से बातचीत करके या कृषि आयात पर आवश्यक भारी तट कर लगा कर संरक्षित करना सुनिश्चित किया जाए, ऐसा करने की आवश्यक शक्तियां केन्द्र के पास लगातार मौजूद है। इस दौरान भारतीय कृषि को प्रत्येक किस्म की वैश्विक कृषि प्रतियोगिता के लिए तैयार किया जाए।

(C) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का विकसित देशों की ओर झुकाव

तीसरा मुद्दा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का विकसित देशों के पक्ष में झुकाव से संबंधित है। यहां मुख्य कारण विकासशील देशों के ग्रुपों के दायरे में मौजूद कमजोरियों में निहित है। प्रथम, वे उसी मुक्त बाजारवादी दर्शन आधारित विकास मॉडल (या कारपोरेट निर्देशित विकास मॉडल) को लागू कर रहे हैं, जिसे विकसित देशों ने अपनाया हुआ है। द्वितीय, प्रत्येक विकासशील देश की अपनी राष्ट्रीय प्राथमिकता है, यानि–अपने देश के लिए विकसित देशों से अधिकतम आर्थिक छूट पाने की चाहना, ऐसा करने में कृषि या अन्य कोई आर्थिक मसलों से संबंधित मुद्दों पर विकासशील देशों के बीच कार्यवाही करने में आपसी एकता के प्रति ध्यान न देना। तृतीय, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का विकसित देशों के पक्ष में झुकाव इस तथ्य में निहित है कि उनका नजरिया और नीति मुक्त बाजारवादी दर्शन पर आधारित है।

(D) नई दिल्ली की नई कृषि नीति

चौथा मुद्दा हाल ही में सरकार द्वारा घोषित कृषि नीति है। इसका प्रमुख पहलू कृषि के कारपोरेटरीकरण करने का है। अन्य बिन्दुओं में शामिल हैं : 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर हासिल करना, संविदा खेती को शुरू करना, किसानों के लिए कीमतों का संरक्षण करना, राष्ट्रीय कृषि बीमा स्कीम को शुरू करना तथा देश भर में कृषि उत्पादों के आवागमन पर प्रतिबंधों को समाप्त करना।

कृषि के निगमीकरण (कारपोरेटरीकरण) का अर्थ यह है कि भारत की कृषि बड़ी व्यापारिक कम्पनियों द्वारा चलाई जायेगी और वह प्रत्येक कम्पनी शक्तिशाली पूंजीपतियों द्वारा नियंत्रित होती है। और इस प्रकार के प्रतिष्ठानों में मुट्ठी भर विशाल व्यापारिक कम्पनियां ही कर्ता-धर्ता होती हैं। हमारे मामले में ये कम्पनियां या तो सीधी जमीन खरीद लेती है या उसको किराये पर ले लेती है और इसीलिए नई कृषि नीति में संविदा कृषि को एक आवश्यक भाग के तौर पर शामिल किया गया है। वास्तविक कृषि कार्य को मजदूर ही करेंगे और बाकी कार्य मध्यम वर्ग, कर्मचारी, कम्पनी के एजेन्ट या वाणिज्यिक आधार पर कार्य करेंगे। इस प्रकार की कृषि नीति को भारत की ग्रामीण आबादी की करीब 25 प्रतिशत भूमिहीन मजदूर या किसानों की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिए उक्त प्रस्तावित नीति में भूमि सुधार का बिल्कुल भी उल्लेख नहीं है। सीमान्त और छोटे किसान जो भारत की ग्रामीण आबादी का करीब 67 प्रतिशत है, उस पर भी इनका कोई ध्यान नहीं है, नतीजतन सीमान्त और छोटी जोत की खेती में परिवर्तन लाने या उनकी बेहतरी के लिए इसमें कुछ भी नहीं किया गया है। यहां तक कि मध्यम किसान के लिए भी

कुछ नहीं किया गया है। धनी किसानों के लिए केवल अपरोक्ष रूप में मूल्य संरक्षण का आश्वासन दिया गया है वह भी वास्तव में कारपोरेशनों के लाभ में जाने वाला है।

कारपोरेट पूंजी पर पूर्णतया निर्भर होने से नई कृषि नीति में उन संस्थाओं का निर्माण करने का हवाला तक नहीं दिया गया है जो भारतीय कृषि समुदाय की बाजार एवं वित्तीय समस्याओं से उभारने के लिए आवश्यक है जैसे, कृषि विपणन सहकारी समितयां या कृषि वित्तीय सहकारी समितियां।

(E) आनुवंशिक रूपान्तरित खाद्य

पांचवां मुद्दा आनुवंशिक रूपान्तरित खाद्य के सवाल से जुड़ा हुआ है। इस मामले पर वैज्ञानिक समुदाय में कोई आम सहमति नहीं है। कुछ विशेषज्ञ इसे सकारात्मक विकास के तौर पर देखते हैं जबकि अन्य इसे मानव जाति के लिए हानिकारक समझते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन अपने सदस्य राज्यों से यह कह रहा है कि मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसके लाभ और हानि का बहुत ही सावधानी से मूल्यांकन किया जाए।

(F) भारत के कृषि क्षेत्र पर तूफानी घटाएं मंडरा रही हैं

भारत के सभी भागों से आई रिपोर्टें यह दर्शाती है कि भारतीय कृषि में चीजें ठीक नहीं चल रही हैं।

अनाज (भारत की मुख्य फसलें) की वृद्धि दर से शुरू करें तो 1980 की वृद्धि दर से 1990 में वृद्धि दर आधी रह गई है। आगे, सन् 1991 से इस क्षेत्र में लगातार ठहराव की स्थिति है। अतएव, भारत में 50 करोड़ लोग कुपोषित हैं और बहुत से लोग खाद्य असुरक्षा के दायरे में है, तब भी घरेलू मांग में कमी हो रही है। आगे करीब-करीब सभी तरह के कृषि मालों की कीमत गिर गई है जबकि उत्पादन की लागत में बढ़ोतरी हो गई है। और आगे, जबकि आधा भारत चौथाई खाली पेट के साथ सोता है तब करीब 5 करोड़ 30 लाख टन खाद्य भंडारण सरकारी गोदामों में सड़ रहा होता है। फिर और आगे, कृषि में बदत्तर होते हालात तथा संस्थागत ऋणों में कटौती ने निजी सूदखोरों (अनौपचारिक ऋण बाजार) द्वारा बहुत ऊंची ब्याज दरों पर ऋण देने की वजह से किसान अत्यधिक कर्जों में डूब गये हैं। कृषि ऋण समस्या की गंभीरता कृषि समुदाय, विशेष तौर पर धनी एवं मध्यम किसानों में आत्महत्याओं की बढ़ती संख्या से प्रकट होती है। यद्यपि लाखों किसान इस अतिवादी कदम को नहीं उठा रहे हैं तथापि निश्चय ही उनकी स्थिति इस हद तक बदत्तर हो गई है कि वे अपनी भूमि और अन्य सम्पत्ति को गिरवी रखे हुए हैं तथा उनके परिवार के सदस्य दिहाड़ी (दैनिक मजदूरी) करने के लिए मजबूर हैं।

स्पष्टतया, आर्थिक गतिविधि के तौर पर कृषि गैर-उत्पादक हो गई है। अगर इस संकट से इसे बाहर नहीं निकाला जाता तो भारतीय अर्थव्यवस्था गैर-टिकाऊ हो जायेगी।

(G) भारत का कृषि संकट–इसके कारपोरेट निर्देशित मॉडल की एक उपज है

संक्षेप में कहा जाय तो आम तौर पर भारतीय कृषि संकट इसके वर्तमान औद्योगिक कारपोरेट निर्देशित विकास मॉडल की देन है। इस मॉडल की रूपरेखा राष्ट्रीय राज्यों द्वारा तैयार की गई थी और इसलिए पिछले 200 सालों के इनके राज में यह मॉडल फला-फूला है। इसकी उच्चतम प्राथमिकता अत्यधिक उत्पादकता (या उत्पादक मुनाफा) प्राप्त करने की है जो मनुष्य की अन्य प्राथमिकताओं में से केवल एक है। यह दुनिया के समाने मौजूद

दो सबसे बड़ी चुनौतियों (जिसे इसने ही पैदा किया है)–यानि, खराब होता पर्यावरण (जो हमारे पृथ्वी ग्रह पर समस्त जैव-जीवन को नष्ट होने की तरफ ले जा सकता है) तथा गंभीर होती जा रही सामाजिक असमानता (जो मानव समाज में सामाजिक स्थिरता और सामंजस्य को छिन्न-भिन्न करती है)–को संबोधित नहीं करता।

विशेष तौर पर भारत का कृषि संकट भारत के अनु-उपयुक्त प्रबंध की उपज है। यह इस तथ्य से प्रकट है कि कृषि हालांकि राज्य (प्रान्त) का विषय है परन्तु इसकी (कृषि की) बुनियादी नीतियां नई दिल्ली के कृषि भवन द्वारा बनाई जाती हैं। कृषि सख्त केन्द्रीय नियंत्रण में चली आ रही है। कृषि निवेश (जैसे, बीज, खाद, कीटनाशक, रोगनाशक, डीजल, आदि) से लेकर कीमतें तथा पूर्तियां, जिन पर केन्द्र का नियंत्रण रहा है, न्यूनतम समर्थन मूल्य एवं उत्पाद को हासिल करना तथा भंडारण करने, इत्यादि हर चीज का निर्णय केन्द्र ही करता है। राज्य सरकारों के करने के लिए कुछ नहीं रहता है। कृषि समुदाय की कोई भूमिका कृषि नीतियों को बनाने में नहीं है।

आम तौर पर आज नई उभरी वैश्विक व्यवस्था केवल तभी विकसित एवं समृद्ध हो सकती है जब यह अपने आपको सामाजिक तौर पर आवश्यक नये विकास मॉडल के सिद्धान्त की बुनियाद पर आधुनिक बनाए। सामाजिक तौर पर आवश्यक नया विकास मॉडल–यानि, एक पर्यावरण एवं मानव हितैषी मॉडल–जो अपनी दो प्राथमिकताओं (अर्थात् पर्यावरण एवं मानवजाति) के साथ पांच उसूलों (अर्थात् टिकाऊपन, उत्पादकता, समता, लोकतंत्र एवं पारदर्शिता) की बुनियाद पर एक तरफ पर्यावरण और दूसरी तरफ मानवजाति को विकसित करने के लिए काम करता है। केवल इस प्रकार का मॉडल ही हमें प्रकृति हितैषी एवं मानव हितैषी कृषि को विकसित करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

विशेष तौर पर, कृषि नीति की जरूरत यह है कि संबंधित राज्य द्वारा इसे तय किया जाये। क्योंकि भारत की वर्तमान कृषि को क्षेत्र विशेष योजना की आवश्यकता है ना कि एक केन्द्रीयकृत योजना की, ताकि यह नीति इसकी अन्दरूनी और बाहरी दोनों चुनौतियों को प्रत्युत्तर दे सके।

अत: इसके विशेष पहलुओं को ध्यान में रखते हुए पंजाब एक विशेष दर्जे की मांग करता है, ताकि यह जटिल कृषि समस्याओं से निपट सके।

******

खेतीबाड़ी एवं किसान विकास फ्रंट, पंजाब का संविधान

कृषि एवं किसान विकास मोर्चा की सदस्यता लिंग, धर्म, जाति, भाषा, सामाजिक विचार आदि के भेदभाव बिना हर उस व्यक्ति के लिए खुली है, जिसकी उम्र कम से कम 16 साल हो, जो कृषि एवं किसान विकास मोर्चा के कार्यक्रम (प्रोग्राम), संविधान और नीतियों को मानता हो और सदस्यता फीस जमा करवाता हो। सदस्यता का हर वर्ष नवीनीकरण किया जाता है। सदस्य को अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी समय इस्तीफा देने का अधिकार है।

I

(अ) सदस्यों के अधिकार

1. कृषि और किसान विकास मोर्चा की भिन्न-भिन्न समितियों और उसके

पदाधिकारियों को चुनने और उनके लिए खुद चुने जान का अधिकार है।

2. अपनी-अपनी इकाइयों में बहस में भाग लेने का अधिकार है।

3. अपने सुझाव, शिकायत, आलोचना और अपील उच्च समितियों को भेजने का अधिकार है।

4. अगर कोई दोषारोपण हो तो अपना पक्ष पेश करने का अधिकार है।

(ब) सदस्यों के कर्तव्य

1. कृषि एवं किसान विकास मोर्चा के कार्यक्रम (प्रोग्राम) तथा नीतियों का प्रचार करना।

2. कृषि एवं किसान विकास मोर्चा के संविधान को लागू करना।

3. इसकी सांगठनिक ताकत को मजबूत करने के लिए काम करना।

(स) भारत के किसी भी हिस्से में काम कर रहा कोई भी वर्तमान किसान संगठन अपने आपको कृषि एवं किसान विकास मोर्चा के साथ जोड़ सकता है बशर्ते कि सम्बन्धित संगठन मोर्चा के प्रोग्राम, संविधान और नीतियों को मानता हो।

II

कृषि एवं किसान विकास मोर्चा का बुनियादी सांगठनिक सिद्धान्त लोकतंत्र हैं, जिसका अर्थ है कि विचार प्रकट करने के सम्बन्ध में राय रखने, आलोचना करने और आत्म-आलोचना करने का पूरा लोकतांत्रिक अधिकार है और एक तरफ ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर तक लगातार रिपोर्टिंग करना तथा दूसरी तरफ हरेक गतिविधि में अच्छे व्यवहार का स्तर अपनाना है।

III

(अ) कृषि एवं किसान विकास मोर्चा का सांगठनिक ढाँचा पांच स्तरीय है।

1. राज्य कमेटी : सम्बन्धित संगठनों और भिन्न-भिन्न प्रतिनिधियों वाले राज्य स्तरीय सम्मेलन द्वारा हर 2 साल बाद चुनी जाती है।

2. जिला कमेटियां : प्रत्येक 2 साल बाद तहसील (ब्लॉक) सम्मेलनों में आये प्रतिनिधियों द्वारा जिला सम्मेलन में चुनी जाती है।

3. तहसील कमेटियां : पंचायत सम्मेलनों से चुनकर आये प्रतिनिधियों द्वारा प्रत्येक 2 साल बाद तहसील सम्मेलन में चुनी जाती है।

4. पंचायत कमेटियां : गाँव के सम्मेलन से चुन कर आये प्रतिनिधियों द्वारा प्रत्येक 2 साल बाद पंचायत सम्मेलन में इन्हें चुना जाता है।

5. ग्रामीण कमेटियां : प्रत्येक 2 साल बाद बुलाई गई ग्रामीण स्तर की सारी सदस्यता द्वारा किए गए ग्रामीण सम्मेलन में इन्हें चुना जाता है।

नोट : शहरी किसान क्षेत्रों में वार्ड कमेटी पंचायत कमेटी के स्तर की है और टाउन कमेटी तहसील के बराबर है।

(ब) राज्य, जिला, तहसील, पंचायत और गाँव के सम्मेलनों में प्रतिनिधियों का आधार क्रमवार सम्बन्धित आयोजक कमेटी तय करती है। जबकि भिन्न-भिन्न कमेटियों में चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या किसी सम्बन्धित सम्मेलन द्वारा ही तय की जाती है।

(स) प्रत्येक कमेटी के पदाधिकारियों में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव, सहायक सचिव

और खजांची होते हैं। उपाध्यक्षों और सहायक सचिवों की संख्या सम्बन्धित चुनने वालों की राय के अनुसार अलग-अलग हो सकती है। प्रत्येक कमेटी में मुख्य कार्यकारी अधिकारी इसका अध्यक्ष है और इसके बाद सचिव का स्थान होता है।

(द) सारी इकाइयों के लिए अपनी मिटिंगों को नियमित करना जरूरी है। राज्य, जिला, तहसील, पंचायत और गाँव की कमेटियों को दो मिटिंगों के बीच के समय का अन्तराल क्रमश: 2 महीने, 1 महीना, 15 दिन, 7 दिन और 4 दिन से अधिक नहीं होना चाहिए।

2. किसी भी यूनिट की मिटिंग का साधारण कोरम कुल सदस्यों का 2/3 भाग है, जबकि आपातकाल मिटिंग का कोरम 1/3 भाग है।

3. मामलों का फैसला आम तौर पर तर्कसंगत बहस से किया जाना चाहिए जिससे सर्वसम्मति पैदा हो। बहुमत के आधार पर फैसला सिर्फ उसी समय लिया जाता है जब विरोधी विचारों वाला समूह वोटों की माँग करे। तथापि आन्दोलन और राजनीतिक मामलों से सम्बन्धित प्रश्नों का निर्णय 3/4 बहुमत से किया जाना चाहिए।

4. कृषि एवं किसान मोर्चा के सभी अंगों का गठन चुनाव के जरिये किया जाता है। चुनाव हाथ खड़ा करके, ध्वनि मत से या गुप्त मतदान से (यदि इसकी माँग हो) किया जाता है। जिस प्रत्याशी को बहुमत प्राप्त होता है उसे चुनिंदा घोषित किया जाता है।

5. कृषि एवं किसान विकास मोर्चा का कोष मुख्य तौर पर सदस्यता शुल्क और सदस्यों, समर्थकों एवं अन्य हमदर्दों के चन्दे से इकट्ठा किया जाता है। इसका विभाजन समान अनुपात में पाँच स्तरीय संगठनों में बराबर (प्रत्येक को 20 प्रतिशत) किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर विशेष मुहिम के जरिये कोष आम जनता से और व्यक्तियों से उचित रसीद बुक, जिस पर सेक्रेटरी और खजांची के हस्ताक्षर हों, उसी के जरिये इकट्ठा किया जाता है। कृषि एवं किसान विकास मोर्चा की प्रत्येक इकाई अपने सम्बन्धित सम्मेलन में अपने आय-व्यय का ब्यौरा प्रस्तुत करती हैं।

6. कृषि एवं किसान विकास मोर्चा के प्रोग्राम, संविधान, नीति और अन्य निर्णयों का उल्लंघन करना, संगठन के अनुशासन को भंग करना माना जायेगा। गंभीर अनुशासनहीनता के लिए सम्बन्धित इकाई या उच्च इकाई द्वारा की जाने वाली कार्यवाही के लिए वह सदस्य जिम्मेदार होगा। प्रत्येक सदस्य जिसके विरुद्ध अनुशासनहीनता की कार्यवाही की जावे उसे अपना बचाव करने का अधिकार होगा और दोष सिद्ध होने की हालत में उसे अपील करने का अधिकार है।

IV

(अ) किसी भी कमेटी में रिक्त स्थान की पूर्ति सम्बन्धित कमेटी द्वारा मनोनयन से भरी जाती है, बशर्ते कि प्रत्येक मनोनयन के लिए उसके सदस्यों के 2/3 भाग का समर्थन प्राप्त हो। परन्तु कुल सदस्यों के 1/5 से अधिक रिक्त स्थान को मनोनयन से नहीं भरा जायेगा।

(ब) किसी महत्वपूर्ण सवाल पर या राज्य कमेटी के 1/3 सदस्यों के या 1/3 जिला कमेटियों की माँग पर राज्य सम्मेलन का विशेष सत्र राज्य कमेटी बुला सकती है।

(स) कृषि एवं किसान विकास मोर्चा के प्रोग्राम और संविधान में किसी भी प्रकार का संशोधन राज्य सम्मेलन ही कर सकता है।

***

राजकीय-नेतृत्व आधारित विकास मॉडल और बाजार-निर्देशित विकास मॉडल दोनों अप्रासंगिक हो चुके हैं, एक नया लोक-हितैषी और पर्यावरण-हितैषी विकास मॉडल समय की मांग

विद्युत क्षेत्र की स्थित : विशेष तौर पर पंजाब के सन्दर्भ में

1. हमारे सामाजिक जीवन में विद्युत शक्ति कितनी महत्वपूर्ण है इसका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहना काफी है कि यह करीब-करीब प्रत्येक मानवीय गतिविधि और उद्यम में आवश्यक साझा संसाधन हो गई है। स्पष्टतया, इतनी महत्वपूर्ण चीज का समय-समय पर लगातार आकलन करना आवश्यक है।

2. विद्युत शक्ति क्षेत्र की वर्तमान स्थिति पर नजर डालें तो सभी जगह अत्यन्त असन्तोषजनक स्थिति देखने को मिलती है।

(अ) विश्व स्तर पर, विश्व जनसंख्या की 20 प्रतिशत विकसित देशों की आबादी वैश्विक तौर उत्पन्न कुल विद्युत शक्ति के 80 प्रतिशत का उपयोग करती है, दुनिया के लोगों की शेष 80 प्रतिशत आबदी को 20 प्रतिशत विद्युत शक्ति से काम चलाना पड़ता है। अमेरिका में विद्युत शक्ति की प्रति व्यक्ति उपलब्धता भारत से 30 गुना अधिक है।

(ब) भारत के स्तर पर विद्युत शक्ति की माँग और पूर्ति में बहुत बड़ी खाई है। माँग की बनिस्पत पूर्ति बहुत कम है।

देश में विद्युत शक्ति की अत्यन्त कमी है। विद्युत शक्ति की कमी उद्योग और कृषि दोनों के उत्पादन में बाधा डालती है। इसके अलावा उपभोक्ताओं को बेहिसाब बिजली कटौती को झेलना पड़ता है। विद्युत शक्ति में पूर्ति की कमी के कारण देश को जीडीपी का करीब 2 से 2.5 प्रतिशत का नुकसान उठाना पड़ता है। अकेले इस वर्ष विद्युत शक्ति की कमी के कारण उत्पादन में 18000 करोड़ रुपये के करीब का घाटा आर्थिक क्षेत्र में अनुमानित है। अगर हम यह मान भी लें कि जीडीपी में वृद्धि 6 प्रतिशत के आधार पर रहेगी तो भी ऐसी स्थिति के लिए अनुमानित है कि आगे के पाँच सालों में यह नुकसान 45000 करोड़ रुपये तक पहुँच जायेगा और आगे के 10 सालों में यह नुकसान 1.8 लाख करोड़ रुपये तक पहुँच जाएगा।

1998-99 के अनुसार उत्पादन की कीमत प्रति इकाई 2.43 रुपये थी जबकि इसका विक्रय 1.84 रुपये प्रति इकाई के हिसाब से किया गया। संचारण और वितरण में 22.1 प्रतिशत की हानि होती थी, यद्यपि भारत में बिजली चोरी का व्यवहार आम है परन्तु इसका वास्तविक आकलन करना कठिन है।

विश्व के सन्दर्भ में देखें तो बिजली भारत में बहुत महंगी है; कुछ राज्यों में और उपभोक्ताओं की कुछ श्रेणियों में अन्तर्राष्ट्रीय दरों से 5 गुना अधिक दरें हैं (ट्रिब्यून, 28.1.2000, पेज 10)। तब भी बिजली नियमित उपलब्ध नहीं है और प्राय: असमान गुणवत्ता वाली है (यानि वोल्टेज का कम-ज्यादा होते रहना)। स्पष्टतया, यह सभी क्षेत्रों के विकास में रुकावट पैदा करती है।

राज्यों के स्तर पर, सभी राज्य विद्युत बोर्ड नुकसान करने वाली संस्थाएं हो गई हैं। औसतन सालाना नुकसान करोड़ों रुपये में हो रहा है। इन दिनों यह 20,000 करोड़ रुपये तक पहुँच गया है। इतने भारी नुकसान पर ध्यान दे तो पाते हैं कि यह अति महत्वपूर्ण संसाधन वित्तीय तौर पर गैर टिकाऊ हो गया है। नुकसान की मात्रा अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। परन्तु प्रत्येक राज्य विद्युत बोर्ड संकट में फंसे हुए हैं।

(स) पंजाब स्तर पर, सरकार यह डींग मारती है कि पिछले 52 वर्षों में बिजली का रिकॉर्ड उत्पादन किया है। उसने अपनी उत्पादन क्षमता को सन् 1967-68 में 614 मेघावाट से बढ़ाकर सन् 1999-2000 में 5179 मेघावाट तक बढ़ा दिया है। परन्तु जब कोई इसके विस्तृत विवरण पर नजर डालता है तो स्थिति बिल्कुल निराशाजनक है।

उत्पादन के क्षेत्र में, उत्पादन के सभी संसाधन अपनी क्षमताओं से नीचे हैं और उनको पुनर्गठित करने की आवश्यकता है।

संचारण और वितरण के क्षेत्र में तकनीकी नुकसान करीब 33 प्रतिशत है।

पंजाब में बिजली क्षेत्र में सबसे चिन्ताजनक पहलू यह है कि वित्तीय तौर पर यह उस समय चलने योग्य नहीं रहा है जब राज्य पहले से ही वित्तीय दिवालिएपन के कगार पर खड़ा है। यदि राज्य में बिजली क्षेत्र में तुरन्त कोई बदलाव नहीं लाया गया तो यह पंजाब के सम्पूर्ण वित्तीय ढाँचे को अस्त व्यस्त कर सकता है।

हर एक यह महसूस करता है कि पंजाब में बिजली क्षेत्र को पुनर्गठित करने की आवश्यकता है परन्तु क्या किया जाए और कैसे किया जाए इस बारे में भिन्न-भिन्न नजरिए हैं।

3. वर्तमान समय में दो पारम्परिक आर्थिक सिद्धान्त है–यानि (क) राज्य नेतृत्व आधारित सिद्धान्त (सार्वजनिक क्षेत्र) और (ख) बाजार निर्देशित सिद्धान्त (निजी क्षेत्र) जो एक दूसरे से प्रतियोगिता कर रहे हैं इनमें से प्रत्येक अपने लिए यह दावा कर रहा है कि पंजाब के विद्युत शक्ति क्षेत्र की दुर्व्यवस्था को ठीक करने का जादू केवल उनके ही पास है।

राज्य नेतृत्व आधारित सिद्धान्त (जो पंजाब में पिछले 52 वर्षों से बिजली क्षेत्र का आधार रहा है) के नेताओं (मुख्यतया इंजीनियरों, कर्मचारियों और मजदूरों की ट्रेड युनियन) का दावा है कि बिजली क्षेत्र में वर्तमान संकट पंजाब सरकार की 52 वर्षीय गलत बिजली नीति का परिणाम और जिससे कर्मचारियों और मजदूरों का कोई लेना-देना नहीं रहा है। विशेष तौर पर यह बिजली क्षेत्र के संकट के चार कारण देखता है–यानि (क) कृषि क्षेत्र को मुफ्त बिजली (जो कुल उपलब्ध बिजली का पांचवां हिस्सा बनता है), (ख) उत्पादन की कीमत की तुलना में बिजली की कम दरें, (ग) संचारण में छीजत और (घ) वितरण में चोरी। अब वे सरकार को कोस रहे हैं कि वह विश्व बैंक के दबाव में बिजली क्षेत्र

को निजी उद्यमियों के हाथों में सौंप रही है, बिना श्वेत पत्र जारी किए या बिना खुली बहस किए हुए बिजली क्षेत्र के समवर्ती चरित्र (केन्द्र और राज्य दोनों के अधिकार) की अवहेलना करते हुए इलेक्ट्रिक बिल 2000 जारी कर रही है जिसका एक मात्र उद्देश्य राज्य बिजली बोर्डों को भंग करना है और अनुदान (सब्सिडी) बन्द करना है।

उपरोक्त विश्लेषण के बावजूद सार्वजनिक क्षेत्र के पैरोकार बिमारी को इलाज का वही पुराना नुस्खा पेश करते हैं। उनकी यह माँग है कि सार्वजनिक क्षेत्र की कमियों को दूर किया जाए और इस क्षेत्र को पूर्ववत जारी रखा जाए। इस क्षेत्र की मिल्कियत, नियंत्रण और संचालन राज्य में निहित रहे। वे इस क्षेत्र को चलाने और प्रबंध के ढाँचे में एक भी परिवर्तन करने का सुझाव नहीं देते हैं। इसका अर्थ है कि इसकी बुनियादी कमी–यानि इसकी राजनीतिक नौकरशाही प्रकृति–जारी रहे ताकि राजकीय क्षेत्र की बर्बादी पूर्ववत चलती रहे।

बाजार निर्देशित सिद्धान्त के समर्थक (मुख्यतया, नई दिल्ली और कारपोरेट सेक्टर) यह दलील देते हैं कि पंजाब में बिजली क्षेत्र के संकट का आधार राजकीय क्षेत्र के सिद्धान्त और व्यवहार में निहित है। उनका एकमात्र तर्क यह है कि यदि बिजली क्षेत्र में मामलों को ठीक करना है तो राज्य नेतृत्व आधारित नियंत्रण के स्थान पर बाजार निर्देशित मॉडल लाना होगा। फिलहाल बाजार निर्देशित शक्तियां अपने विरोधियों की बनिस्पत हावी पड़ती है क्योंकि केन्द्र की नीतियों में बाजार दर्शन के पक्ष में रुख हो गया है। तथापि उड़ीसा (1996-2000) के और आन्ध्र राज्य विद्युत बोर्ड (1999-2000) के हाल के निजीकरण का अनुभव बाजार विचारकों के दावे के खोखलेपन को दर्शाता है।

हमारी यूनियन का मत है कि यद्यपि बाजार तंत्र (विनिमय के माध्यम के तौर पर) और राज्य यंत्र (राजनीतिक माध्यम के तौर पर) दोनों आज भी सामाजिक तौर पर अत्यावश्यक संस्थाएं हैं। परन्तु दोनों (यानि राज्य नेतृत्व आधारित और बाजार निर्देशित) विकास मॉडल वैश्वीकरण के नये युग में अप्रासंगिक होते जा रहे हैं और एक नये प्रासंगिक विकास मॉडल की आवश्यकता समय की माँग है।

जहाँ तक दोनों पुराने विकास मॉडलों का सम्बन्ध है दोनों ही औद्योगिक पूंजीवाद के युग में उभरे हैं उस समय मानवीय जनसंख्या ने अपने आपको सम्प्रभु सत्ता सम्पन्न राष्ट्रीय राज्य में संगठित किया था। ये मॉडल सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रीय राज्यों के युग में कार्यशील रहे थे। जो शक्तिशाली का कमजोर पर और अमीर का गरीब पर प्रभुत्व जमाने का चरित्र लिए हुए थे।

अब जबकि सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रीय राज्यों की दुनिया अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय राज्यों की दुनिया में बदल चुकी है और अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय राज्यों की दुनिया विश्व मानवीय समाज के गठन (मानवीय सोच, कथनी-करनी में सामाजिक बदलाव और नई वैज्ञानिक तकनीक के परिणामस्वरूप) की ओर बढ़ रही है, और नई उभरती हुई दुनिया को नई-नई समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उनमें कुछ ये हैं– पर्यावरण का ह्रास, बढ़ती हुई आबादी, असमानता में बढ़ोतरी, हिंसा का वर्तमान स्तर और बेईमान राजनीति (जो अनैतिक तरीके से धन और सत्ता प्राप्त करने को उचित ठहराती है)। यह सभी समस्याएं और चुनौतियां राज्य नेतृत्व और बाजार निर्देशित

विकास मॉडलों की उपज है। यहाँ तक कि आज भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया का प्रबंध अमेरिका और अन्य विकसित देशों द्वारा नियंत्रित बाजार निर्देशित विकास मॉडल द्वारा किया जा रहा है। परिणामस्वरूप दुनिया में सब तरफ असमानता और गरीबी बढ़ रही है। वे वैश्वीकरण की प्रक्रिया से नहीं उभर रही है बल्कि पुराने बाजार निर्देशित और राज्य नेतृत्व आधारित विकास मॉडल से उभर रही है।

पुराने दोनों मॉडलों की मुख्य खराबी उनके एकाधिकारवादी नियंत्रण में है–सरकारी क्षेत्र सत्ताधारी राजनीतिज्ञों और सेवारत नौकरशाहों के संयुक्त एकाधिकारी नियंत्रण में है और निजी क्षेत्र में बोर्ड ऑफ डायरेक्टर (मुख्यतया सम्बन्धित कम्पनी के प्रोमोटर्स, जिनके हाथ में ब्लॉक शेयर है, से गठित है) से नियंत्रित एकाधिकार में है।

आज मनुष्य समाज को (या अन्तरनिर्भर राष्ट्रीय राज्य की दुनिया को) एक पूर्ण लोकतांत्रिक विकास मॉडल की आवश्यकता है। इस प्रकार का विकास मॉडल लोकहितैषी और प्रकृति हितैषी मॉडल बन सकता है जिसकी दो तरफा प्राथमिकताएं हैं, यानि एक तरफ जनता और दूसरी तरफ पर्यावरण है। ये दोनों प्राथमिकताएं पांच सिद्धान्तों पर आधारित हैं, यानि–टिकाऊपन, लोकतंत्र, उत्पादकता, समता (सामाजिक न्याय) और पारदर्शिता। ये पुराने दोनों राष्ट्रीय मॉडलों के ढाँचे में फिट नहीं हो सकते। उनमें से एक (यानि बाजार निर्देशित) निजी हित और लाभ को अपना सब कुछ समझती है जबकि दूसरी सत्ता को (ठीक या गलत जैसे भी हो) अपने अस्तित्व का एकमात्र जरिया समझती है। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य और भूत व वर्तमान के अनुभवों पर चलते हुए हम यह सुझाव देते हैं कि पंजाब में बिजली क्षेत्र को निम्न दिशा में पुनर्गठित किया जाए।

(अ) पंजाब राज्य बिजली बोर्ड का नाम पंजाब बिजली प्रबन्ध बोर्ड रखा जाए जिसको कानूनी स्वायत्तता का दर्जा प्राप्त हो और जिसमें किसी भी प्रकार की राजनीतिक-प्रशासनिक दखलन्दाजी न हो।

(ब) इसका लोकतंत्रीकरण इसके शेयर्स के 50 प्रतिशत का विनिवेशीकरण दो भागों में लोगों में किया जाए यानि, 30 प्रतिशत उपभोक्ताओं में और 20 प्रतिशत इसके मजदूरों में। सम्पूर्ण शेयर पूंजी का गठन निम्न प्रकार हो : 50 प्रतिशत पंजाब राज्य शेयर पूंजी, 30 प्रतिशत उपभोक्ता शेयर पूंजी और 20 प्रतिशत मजदूरों की शेयर पूंजी लगाई जाए।

(स) उपरोक्त वित्तीय ताकत के अनुसार प्रबंध बोर्ड में 40 प्रतिशत राज्य द्वारा नामांकित सदस्य, 30 प्रतिशत उपभोक्ता शेयरधारकों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि, 20 प्रतिशत मजदूरों के शेयरधारकों द्वारा चुनिन्दा प्रतिनिधि और 10 प्रतिशत ट्रेड यूनियन के द्वारा चुनिन्दा प्रतिनिधि हों।

(द) जब तक यह व्यवस्था व्यवहारिक स्वरूप ले तब तक वर्तमान बिजली बोर्ड को तुरन्त प्रभाव से निम्न कदम उठाने चाहिए।

(i) मजदूरों से तुरन्त बातचीत शुरू की जाए और उन्हें यह पक्का आश्वासन देकर सहमत करवाया जाए कि उनकी कीमत पर कोई सुधार नहीं किया जायेगा। यह भी वादा किया जाए कि सुधार विदेशों द्वारा संचालित नहीं होंगे और भारत की सामाजिक

आवश्यकताओं के आधार पर होंगे। अन्तिम तौर पर ये सुधार जनता, कर्मचारी और राज्य के लिए लाभदायक होंगे।

(ii) कृषि को मुफ्त बिजली आपूर्ति करना बन्द किया जाए और राज्य सरकार को कहा जाए कि वह बकाया राशि का भुगतान करने तथा बिजली उपभोग के भविष्य के भुगतान का उत्तरदायित्व राज्य अपने जिम्मे ले। प्रबंध में बढ़ रहे खर्चे के सम्बन्ध में राज्य केन्द्र से सलाह कर सकता है।

(iii) गरीबी की रेखा से नीचे के सभी लोगों को मासिक तौर पर 50 इकाई मुफ्त बिजली दी जाए।

(iv) बिजली चोरों और इस अपराध को उकसाने वाले लोगों से सख्ती से निपटा जाए।

(v) बिजली दरों का पुनर्मूल्यांकन किया जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि मूल्य ह्रास और ब्याज को घटाने के बाद शेष रही निवेश पूंजी के न्यूनतम 3 प्रतिशत की दर का लाभ सुनिश्चित किया जाए।

(vi) ऊर्जा के नवीनीकृत संसाधनों–यानि, सौर, वायु, जैव–सहित को प्राथमिकता के आधार पर शुरू करने के सवाल को हाथ में लिया जाए।

(vii) राजनीतिक दखलन्दाजी को पूर्णतया बन्द कर दिया जाए, विशेष तौर पर पदस्थापन और स्थानान्तरण के मामलों में।

(viii) मजदूरों को प्रेरित किया जाए कि वे उपभोक्ताओं के हितों की सेवा करें तथा पंजाब राज्य बिजली बोर्ड के हितों की भी रक्षा अपनी उत्पादकता और कुशलता को बढ़ा कर करें।

(ix) ऊर्जा संरक्षण और हर स्तर पर ऊर्जा ऑडिट को मजबूत बनाए।

(x) संचारण और वितरण व्यवस्था को मजबूत करने तथा नुकसान को घटाने के लिए पर्याप्त निवेश की व्यवस्था की जाए।

(xi) सरकार से बातचीत की जाए कि उसके ऋण छमाही किश्तों में निर्धारित अवधि में चुकाने की स्वीकृति दी जाए।

(यह दस्तावेज राज्य कार्यकारी समिति इलेक्ट्रीसिटी फ्रंट पंजाब राज्य बिजली बोर्ड द्वारा स्वीकृत है।)

***

भारत में दूर संचार क्षेत्र की स्थिति
कारपोरेट एवं सरकारी दोनों अपनी वैधता खो चुके हैं
पर्यावरण एवं मानव आधारित मॉडल की आवश्यकता

I

1. भारत में दूर संचार क्षेत्र ने अपने जीवन के 150 वर्ष पूरे कर लिए हैं। सबसे पहले यह टेलीग्राफ टैक्नोलॉजी के रूप में सामने आई तब से इसने तेज गति से लम्बे डग भरे हैं, मसलन सन् 1876 में टेलिफोन, सन् 1892 में वायरलैस टेलीग्राफी, सन् 1970 में सैटेलाइट टेलिफोनी, सन् 1983 में इन्टरनेट और सन् 1990 में वर्ल्ड वाइड वेब का आविष्कार किया। वर्तमान में यह विकसित होकर सेलुलर टेलिफोनी तक पहुंच चुकी है।

2. शुरू के 97 वर्ष ब्रिटिश उपनिवेशी राज के तहत इसने कार्य किया जबकि 1947 से बाद के 53 वर्ष स्थानीय शासन के तहत रहे हैं।

3. इसके सम्पूर्ण व्यवहार के लेखे-जोखे पर नजर डाली जाए तो यह आसानी से कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर दूर संचार क्षेत्र ने भारत की विकास प्रक्रिया में सकारात्मक भूमिका निभाई है। फिर भी, इसके नकारात्मक पक्ष का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है ताकि इसकी पहले की कमजोरियों से सबक सीखा जा सके, ताकि भविष्य में गलतियों से बचा जा सके।

4. संक्षेप में कहें तो दो बड़ी कमजोरियां इस क्षेत्र में निरन्तर विद्यमान हैं। एक इसका चीजों को देखने और व्यवहार में लाने के प्रति नौकरशाही रवैया रहा है जबकि दूसरा इसका स्वार्थपूर्ण आचरण जो प्राय: सेवा निभाते समय भ्रष्ट आचरण में अभिव्यक्त होता है। इन दोनों कमजोरियों का परिणाम एक तरफ इसके घोषित उद्देश्यों और निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति में उच्च स्तर की अकुशलता में निकला है और दूसरी तरफ उपभोक्ताओं और लोगों को असंतोषजनक सेवा देना रहा है।

5. आज भी दूर संचार क्षेत्र अकुशलता एवं खराब जन सेवा का शिकार है। यह इस तथ्य में देखा जा सकता है कि सन् 1994 की दूर संचार नीति के निर्धारित लक्ष्यों को अभी तक पाया नहीं जा सका है। जबकि सन् 1999 की नई दूर संचार नीति नवीनीकृत उद्देश्यों और लक्ष्यों के साथ लागू हो गई है। सन् 1994 की दूर संचार नीति में निर्धारित किया गया है कि दूर संचार विभाग 6 लाख गांवों में कार्य करेगा और हर क्षेत्र में बुनियादी दूर संचार सेवायें सबको उपलब्ध करवायेगा तथा उचित कीमत पर विश्व स्तरीय सेवाएं प्रदान करेगा। परन्तु वर्ष 2001 के मध्य तक केवल चार लाख गांवों तक ही पहुंच पाई और सीमित रही तथा अन्य देशों की तुलना में विदेश सेवा दर अभी तक महंगी है। जहाँ तक इस क्षेत्र की वित्तीय कारगुजारी का सवाल है यह कभी भी औसत के बराबर नहीं पहुंच पाई है।

इसकी वैधानिक बुनियाद के बारे में स्थिति है कि यह अभी भी भारतीय टेलीग्राफ एक्ट 1885 तथा भारतीय वायरलैस एक्ट 1933 के प्रावधानों से प्रबंधित है, यद्यपि आज दूर संचार आशाओं से परे परिवर्तित हो चुका है।

II

6. प्रत्येक यह महसूस करता है कि भारतीय दूर संचार क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है। परन्तु क्या किया जाए और कैसे किया जाए पर मत-भिन्नताएं हैं।

7. वर्तमान समय में, दो परम्परागत सिद्धान्त (विभिन्न राष्ट्र राज्यों में प्रभुत्वकारी रही हैं)—यानि, (क) सरकारी नेतृत्व वाला (तथाकथित सार्वजनिक क्षेत्र) सिद्धान्त तथा (ख) कारपोरेट निर्देशित (जिसे निजी क्षेत्र कहा जाता है) सिद्धान्त—एक दूसरे से प्रतियोगिता में हैं जिनमें से प्रत्येक यह दावा करता है कि वह ही अकुशल दूर संचार क्षेत्र में पुनरजीवन स्थापित करने की रामबाण लिये हुए है।

8. सरकारी मिल्कियत वाले क्षेत्र (दूर संचार क्षेत्र के अस्तित्व काल का एकमात्र मॉडल) के प्रचारक (मुख्यतया इंजीनियर, कर्मचारी और मजदूरों के ट्रेड यूनियन) यह दावा करते हैं कि इस क्षेत्र की सभी कमजोरियां विभाग का विभिन्न गलत नीतियों का नतीजा है तथा जिसका मजदूरों से कोई वास्ता नहीं है। विशेष तौर पर, वे नीति स्तर पर हो रहे बदलाव के अनुसार विभिन्न कारणों को जिम्मेदार ठहराते हैं। अब वे सरकार पर आरोप लगा रहे हैं कि इस क्षेत्र की राष्ट्रीय महत्ता को कम आंकते हुए, इसके मजदूरों से सलाह मशविरा किये बगैर अमेरिका, विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के दबाव में दूर संचार क्षेत्र को निजी उद्यमियों को सौंपने की योजना बना रहे हैं।

9. फिर भी, उपरोक्त वर्णित उनकी आलोचनात्मक दलीलों के बावजूद सरकारी क्षेत्र के पैरोकार बिमारी को दुरुस्त करने का वही पुराना नुस्खा प्रस्तावित कर रहे हैं। वे मांग कर रहे हैं कि सरकारी क्षेत्र की खराब कारगुजारियों को जैसा चल रहा है वैसा चला कर भी ठीक किया जा सकता है जिसकी मिल्कियत, नियंत्रण और नियमन सरकार में ही निहित रहे। इस क्षेत्र के कार्यकलाप, प्रबंध व नजरिये में एक भी बदलाव प्रस्तावित नहीं करते हैं। इसका अर्थ है कि इसकी बुनियादी खामी—यानि, इसकी राजनीतिक-नौकरशाही प्रकृति एवं इसके परिणामस्वरूप बनने वाली नीतियां दूर संचार क्षेत्र में निरन्तर बर्बादी की वाहक रहेंगी।

10. कारपोरेट निर्देशित सिद्धान्त के समर्थक (मुख्यतया भारतीय सरकार तथा कारपोरेट घराने) दलील देते हैं कि दूर संचार की कमजोरियों का आधार सरकारी क्षेत्र के सिद्धान्त और व्यवहार में निहित है। उनकी एकमात्र दलील यह है कि दूर संचार क्षेत्र में मामलों को ठीक करने के लिए सरकारी नेतृत्व वाले नियंत्रण के स्थान पर कारपोरेट निर्देशित संस्थाओं का नियंत्रण लाया जाए। इस समय केन्द्र की नीतियां कारपोरेट दर्शन की ओर झुक गई हैं जिसकी वजह से कारपोरेट शक्तियां अपने विरोधियों के मुकाबले में वजनी हो गई है। फिर भी, बाम्बे (यानि, एनरोन), आन्ध्रा और उड़ीसा में ऊर्जा क्षेत्र के हालिया कारपोरेटीकरण (जिसे निजीकरण भी कहते हैं) के अनुभव ने कारपोरेट जेहादियों के दावे के खोखलेपन को प्रकट कर दिया है।

11. हमारी यूनियन मानती है कि सरकारी नेतृत्व वाली तथा कारपोरेट निर्देशित विकास मॉडल, दोनों वैश्वीकरण के नये युग में अप्रासंगिक हो चुके हैं तथा एक नया प्रासंगिक विकास मॉडल हमारे आज के समय की मांग है।

12. पारम्परिक विकास मॉडल के बारे में स्थिति यह है कि दोनों औद्योगिक पूंजीवाद के युग में उभरे थे जब मानव जाति ने अपने आपको विभिन्न सम्प्रभु राष्टों के रूप में संगठित किया था जो शक्तिशाली का कमजोर पर, अमीर का गरीब पर प्रभुत्व के मानदंडों से चरित्रित थे।

13. राष्ट्र राज्य का ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि उनके अपने कारपोरेट निर्देशित तथा सरकारी नेतृत्व वाले विकास मॉडल ने जबकि कई विशिष्ट वैज्ञानिक तकनीकी तथा सामाजिक योगदान दिये हैं, साथ ही मानव जाति को भयंकर नुकसान भी पहुंचाया है। पर्यावरण विरोधी तकनीक के उपयोग तथा ग्रीन हाउस गैसों के अद्वितीय उत्पादन के जरिये गंभीर पारिस्थितिकी असंतुलन पैदा किया है इन्होंने इस ग्रह पर समस्त जैव जीवन के लिए गंभीर खतरा पैदा कर दिया है। सामाजिक क्षेत्र में इनके द्वारा बड़े पैमाने पर गरीबी और बेरोजगारी पैदा करने से, विशेष तौर पर विकासशील देशों में ऐसा करके इन्होंने कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों तथा अधिकतर वंचित जनता के बीच गंभीर असमानता पैदा कर दी है।

14. सरकारी नेतृत्व वाले क्षेत्र का गैर टिकाऊ होने का सबूत पूर्व सोवियत संघ के ढह जाने में तथा दुनिया में तत्कालीन समाजवादी देशों द्वारा इस मॉडल को नकारने में देखा जा सकता है। कारपोरेट क्षेत्र के अप्रभावी होने को भी लगातार असमानता, गरीबी, भूख, बेरोजगारी, घरविहीन और इन सबसे ऊपर दुनिया भर में कारपोरेट मॉडल के गैर टिकाऊ संकट (अब यदा-कदा लगातार बने रहने) से घिरे होने में देखा जा सकता है।

पर्यावरणीय तथा मानवीय मुद्दों पर समुदाय या जनता का नियंत्रण या प्रबंध होने की बढ़ती मांग दर्शाती है कि मानव समुदाय की दिशा किस किस ओर अग्रसर हो रही है।

कारपोरेट क्षेत्र द्वारा सामाजिक जवाबदेही और नैतिक व्यवहार के दर्शन का अपनाया गया कदम भी कारपोरेट सेक्टर के अहस्तक्षेप के बुनियादी सिद्धान्त—जो आर्थिकता की विकास प्रक्रिया में प्रत्येक सामाजिक पहलू का तिरस्कार करता है (जिसका एकमात्र उद्देश्य अधिकतम मुनाफा कमाना है)—कारगर नहीं होने को प्रतिबिम्बित करता है।

15. अब जबकि सम्प्रभु सम्पन्न राष्ट्रों वाली दुनिया अन्तरनिर्भर राष्ट्रों वाली दुनिया में बदल गई है तथा जब नई उभरी दुनिया को इस ग्रह पृथ्वी पर एकीकृत मानव समाज में अपने आपको संगठित करने की आवश्यकता है (नया विज्ञान और तकनीकी तथा उसके अनुकूल मानव की सोच, कार्य और क्रिया के सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप), जिसके कारण अन्तरनिर्भर राष्ट्रों के सामने नई समस्याएं और चुनौतियां खड़ी हो गई हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं—पर्यावरण गिरावट, जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती असमानता, हिंसा और अपराधों का बढ़ता स्तर, अनैतिक तथा माफिया आधारित राजनीति (जिसका एकमात्र उद्देश्य धन और सत्ता हड़पना है)। ये सभी समस्याएं और चुनौतियां सरकारी नेतृत्व तथा कारपोरेट निर्देशित विकास मॉडल की देन है। आज भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों से नियंत्रित कारपोरेट निर्देशित विकास मॉडल—जिसके साथ विकासशील

देश जुड़े हुए हैं–द्वारा प्रबंधित है। नतीजतन चहुँ ओर असमानता तथा इससे पैदा हुई शाखाएं, यानि, बेरोजगारी, गरीबी, भूखमरी आदि चौतरफा बढ़ती जा रही है। यह कहना भारी झूठ और धोखा देना होगा कि विद्यमान सामाजिक बुराइयां वैश्वीकरण की प्रक्रिया से उभर रही हैं यह सामाजिक बुराइयां हमेशा से सभी राष्ट्रीय राज्यों को जकड़े हुए हैं जबकि ये बुराइयां उनके अपने-अपने सरकारी नेतृत्व तथा कारपोरेट निर्देशित मॉडल से पैदा हुई हैं। आज भी ये उन्हीं राष्ट्रीय ताकतों द्वारा पैदा हो रही हैं जो अभी भी राष्ट्र राज्यों में प्रभुत्वकारी हैं।

अगर हम मौजूदा समस्याओं की वास्तविक प्रकृति तथा असली कारण को जांचने में असफल रहते हैं तो हम उनका उचित जवाब नहीं दे पायेंगे। यह हमें नये उभरे वैश्वीकरण की प्रक्रिया के सही चरित्र के बारे में गलत समझ पैदा करने की और ले जा सकता है तथा ले जायेगा।

16. परम्परागत दोनों विकास मॉडलों की मुख्य खामी उनके एकाधिकारवादी नियंत्रण में है, राजकीय क्षेत्र में यह शासक राजनीतिज्ञों और सेवारत नौकरशाहों के नियंत्रण में है तथा निजी क्षेत्र में बोर्ड आफ डायरेक्टर के नियंत्रण में है (बोर्ड आफ डायरेक्टर्स मुख्यतया संबंधित कम्पनी के प्रोमोटर्स से गठित है जो ब्लाक शेयरधारी हैं या उनके उत्तराधिकारी हैं)।

आज मानव समाज (वर्तमान अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की दुनिया) को पर्यावरण एवं मानव हितैषी विकास मॉडल की आवश्यकता है जिसकी दो प्राथमिकताएं–यानि, पर्यावरण और मानव जाति–हैं तथा वह पांच उसूलों (टिकाऊ पर्यावरण, लोकतंत्र, उत्पादकता, समता या सामाजिक न्याय एवं पारदर्शिता) पर आधारित है। यह मॉडल परम्परागत दोनों राष्ट्रीय मॉडलों के ढाँचे में फिट नहीं होता–जिनमें से एक (कारपोरेट निर्देशित) निजी हित, मुनाफा, पूंजी और पूंजी मालिकों को अपनी जीवन रेखा मानता है जबकि दूसरा (यानि सरकारी नेतृत्व वाला) सत्ता को अपने अस्तित्व का एकमात्र उद्देश्य मानता है और सत्ता चाहे उचित या अनुचित साधन से मिले।

III

17. उपरोक्त समझ से शुरू करें तो हमारी यूनियन यह प्रस्ताव रखती है कि भारत में दूर संचार क्षेत्र को निम्न आधारों पर पुनरगठित किया जा सकता है।

(A) बी एस एन एल का नाम भारतीय संचार प्रबंधक बोर्ड रखा जाए, जिसे कानूनी तौर पर स्वायत्तता की हैसियत प्राप्त हो, जिसकी नीति निर्धारण और कार्यवाही में राजनीतिक-प्रशासन की कोई दखल न हो।

(B) बोर्ड को एकाधिकार विहीन करने के लिए इसके शेयरों के आधे शेयर आम जनता में (जिसमें दूर संचार के कर्मचारी और मजूदर शामिल हैं) पुनरनिवेश किया जाए तथा आधे शेयर सरकार के पास रहे।

(C) बोर्ड को एकाधिकार विहीन करने के लिए मैनेजमेंट बोर्ड में श्रमिकों को एक तिहाई प्रतिनिधित्व मनोनयन द्वारा तय किया जाय (ये मनोनीत प्रतिनिधि मानसिक और शारीरिक श्रमिकों में से चुना जाए), इन श्रमिक प्रतिनिधियों को मैनेजमेंट बोर्ड में वही

अधिकार रहेंगे तो सरकार की तरफ से तथा आम शेयरधारकों के प्रतिनिधियों को हासिल होंगे। इस प्रकार मैनेजमेंट बोर्ड के सदस्यों का गठन–एक तिहाई सरकार के प्रतिनिधि, एक तिहाई शेयर धारकों के प्रतिनिधि तथा एक तिहाई प्रतिनिधि टेलीकाम सेक्टर के उन मजदूरों से लिया जाए जिनका जीवन दांव पर लगा हुआ है।

(D) मैनेजमेंट बोर्ड निर्णय लेने की प्रक्रिया में तथा व्यवहारिक तौर पर सांगठनिक कामों में सचेत होकर निम्न उसूलों को लागू करे–

(i) दूर संचार क्षेत्र में अभी प्रचलित पर्यावरण विरोधी तकनीक तथा गतिविधि रोकी जाए।

(ii) सरकारी तथा कारपोरेट क्षेत्र के एकाधिकारी नियंत्रण को समाप्त कर पूंजी पर जनता का नियंत्रण कायम किया जाए।

(iii) मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं को बढ़ाकर मानव संसाधन का विकास किया जाए।

(iv) मैनेजमेंट बोर्ड को प्रतिबद्ध करने के लिए इसके निर्णय और नीतियों को शेयरधारकों तथा कर्मचारियों की सालाना आम सभा में अनुमोदित करवाया जाए।

(v) बोर्ड के निर्णय और काम को पारदर्शी एवं खुला किया जाए।

(vi) उच्च एवं निम्न वेतन (अन्य लाभ सहित) के बीच आर्थिक असमानता घटाने की कोशिश की जाए, इसके लिए वेतन 1:7 से अधिक नहीं हो।

(vii) हमारी यूनियन की राय में मुख्यालय को दूर संचार कर्मचारियों की फेडरेशन के अन्दर सामाजिक वास्तविकता तथा उसकी माँगों के बारे में सामूहिक समझ बढ़ाने के लिए निम्न तथ्यों पर विचार गोष्ठियां आयोजित करवानी चाहिए।

*दुनिया तथा प्रत्येक देश में श्रमिक आन्दोलन या इसकी विभिन्न ट्रेड यूनियनों के कमजोर होने के पीछे बुनियादी कारण क्या है।

*शीत युद्ध समाप्त होने के बाद नये उभरे युग की प्रकृति क्या है।

*नये युग में हमारी सामाजिक विकास तथा श्रमिक कल्याण आन्दोलन की रणनीति क्या कारगर है या एक नई रणनीति की आवश्यकता है।

***

जम्मू-कश्मीर समस्या के त्रिपक्षीय हल के मोर्चे की आधारभूत घोषणा

जम्मू कश्मीर समस्या के क्रमिक विकास की प्रक्रिया तथा इसका भविष्य

I

ब्रह्मांड में प्रत्येक वस्तु (या प्रक्रिया) जो जन्म लेती है, अस्तित्वमान होती है या विकास करती है उसका कोई न कोई हल उसके क्रमिक विकास के दौरान निकलता ही है। कोई भी समस्या हल विहीन नहीं है चाहे वह समस्या किसी विशिष्ट समय में कितनी भी असंभव या असाध्य नजर आती हो। ऐसी ही स्थिति जम्मू-कश्मीर (जेके) समस्या के मामले में है। यद्यपि, प्रत्येक समस्या चाहे वह प्राकृतिक हो या मानवीय अपने क्रमिक विकास के आधार पर हल होती ही है (चाहे वह सकारात्मक हल हो या नकारात्मक), यह हल चार बुनियादी अवयवों से गठित होता है। ये निम्न चार बुनियादी अवयव हैं–(अ) इस प्रजाति की गुणवत्ता (या इसके उद्भव का कारण, या अस्तित्वात्मक भेद या इसकी शुरूआत का स्रोत या वंशानुगत क्रम, आदि), (ब) इसकी अतीत वृद्धि, (स) इसकी वर्तमान स्थिति, तथा (द) भविष्य की दिशा। मनुष्य समाज में, अनुभव आधारित ज्ञान बताता है कि वास्तविकता पर आधारित नजरिया तथा प्रासंगिक व्यवहार अपनाये जाने पर उस समय के शक्ति संतुलन में बदलाव के जरिये नकारात्मक विकास को भी सकरात्मकता में बदला जा सकता है।

II

उपरोक्त भूमिका से शुरू करें तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि जेके समस्या के मानवीय सकारात्मक हल छांटने के क्रम में हमें इसके चार क्रमिक विकास के पहलुओं– यानि, इसकी प्रजातीय विशेषता, अतीत वृद्धि, वर्तमान स्थिति तथा भविष्य की दिशा तलाश करनी चाहिए।

(A)

जेके समस्या के प्रजातीय गुणवत्ता के प्रश्न को लें, इसकी मानवीय विशिष्टता की मांग है कि जेके की जनता को हमेशा मानवीय तथा पर्यावरणीय हितों को उच्चतम प्राथमिकता देनी चाहिए। इस दो तरफा प्राथमिकताओं में, वर्तमान समय में मानवीय पहलू प्रथम स्थान रखता है।

(B)

जेके समस्या के अतीत में वृद्धि (1947-1989) के प्रश्न को लें तो इसके तीन पहलू बनते हैं। प्रथम, वैचारिक तौर पर जेके समस्या का उद्भव का कारण दो संकीर्ण तथा अन्धराष्ट्रवादी धारणाओं–गांधीवादी बहुसंख्यक (या उदार हिन्दुत्व) राष्ट्रवाद तथा मुस्लिम

लीग का पान-इस्लामीवादी (या मुस्लिम रूढ़िवाद) राष्ट्रवाद–में से प्रत्येक ने भारत के लोगों की राष्ट्रीय एवं भौगोलिक एकता के हित को नुकसान पहुंचाया है। राष्ट्रवाद की इन दोनों किस्मों ने भारतीय जनता के हितों की बजाए उपनिवेशी तथा भारतीय समाज के प्रभुत्वकारी तबकों के हितों का प्रतिनिधित्व किया।

द्वितीय, जेके समस्या की शुरूआत का सामाजिक-राजनीतिक कारण सन् 1947 में भारत का दो भागों–भारत और पाकिस्तान–में विभाजन होने में निहित है। यह विभाजन ही वह शुरूआती कदम है जिससे भारत और पाकिस्तान के बीच जीवन के सभी क्षेत्रों में तकरार और टकराहट उत्पन्न हुई।

तृतीय, भारत और पाकिस्तान दोनों ने जम्मू-कश्मीर राज्य के अपने-अपने नियंत्रण वाले भाग में लोगों से बुरा बर्ताव किया। भारत की तथाकथित धर्म निरपेक्षता की कश्मीर घाटी में सबसे खराब स्थिति थी, जहां इसके अलोकतांत्रिक तथा अन्यायपूर्ण व्यवहार ने प्रथमत: कश्मीरियों को पूर्णतया अलग-थलग किया और उसके बाद अपनी दमनकारी और जबरिया कार्यवाही से कश्मीरी खाड़कू आन्दोलन को जन्म दिया, यह खाड़कू आन्दोलन मानवीय परिप्रेक्ष्य रहित था जो कभी मुस्लिम रूढ़िवाद की तरफ विचलित हुआ तो कभी इसने कश्मीरी धर्मनिरपेक्षता का रुझान लिया तथा कभी अमेरिका के आजादी मॉडल की तरफ भटका। पाकिस्तान ने अपनी तरफ के जम्मू-कश्मीर के लोगों के साथ कोई अच्छा व्यवहार नहीं किया। परन्तु इसने इस्लाम के साइनबोर्ड के नीचे ऐसा किया और इस वजह से उग्र जन प्रतिक्रिया से बचा रहा।

(C)

जेके समस्या (1989-2000) की वर्तमान स्थिति को लें, तो यह जम्मू-कश्मीर में एक अत्यधिक खतरनाक स्थिति के विकास को उद्घाटित करती है। एक तरफ जेके में पिछले 11 सालों से खाड़कुओं व भारतीय सुरक्षा बलों के बीच घातक संघर्ष जारी है, दूसरी ओर जेके की नियंत्रण रेखा पर अतिरिक्त आवेशित वातावरण बना हुआ है जो भारत और पाकिस्तानी फौजों के मध्य बीच-बीच में गोलाबारी की झड़पों में बदल जाती है। इस 11 साला पुरानी आपसी सम्बन्धों की परेशानकुल स्थिति न केवल जम्मू-कश्मीर के निवासियों तथा भारत व पाकिस्तान राष्ट्रों के बल्कि पूरी दुनिया के लोगों के लिए भी बहुत से सबक प्रस्तुत करती है।

(i) मुख्य सबक यह है कि वर्तमान दुनिया में किसी भी समस्या का बन्दूक एक उचित और अन्तिम हल नहीं हो सकता। भारत की यह गर्वोक्ति चूर-चूर हो गई कि वह खाड़कुओं से तब तक बात नहीं करेगा जब तक वे अपने हथियार नहीं डाल देते; इसकी हालिया एक तरफा युद्धबंदी की घोषणा; भारतीय सेना के रिटायर होने वाले एवं आने वाले मुखियाओं के यह बयान कि सेना खाड़कुओं को रोके रख सकती है परन्तु उन्हें समाप्त नहीं कर सकती तथा जेके समस्या को राजनीतिक समाधान के जरिए हल किया जाना चाहिए; कारगिल दुस्साहस से आश्चर्यजनक तौर पर पाकिस्तानी शासन का वापिस लौट जाना; मुशर्रफ का नई दिल्ली को लगातार एक साल तक यह अपील करना कि रुकी हुई भारत-पाक वार्ता को बहाल किया जाए तथा मुशर्रफ एवं अन्य पाकिस्तानी जनरलों का बयान कि भारतीय सेना के साथ पाकिस्तानी फौज का कोई मुकाबला नहीं है; कश्मीरी जनता की (कश्मीरी खाड़कुओं सहित) एक वास्तविक और सम्मानजनक शांति प्राप्त करने की नई

उत्पन्न हुई भारी इच्छा अपने-अपने सैनिक परिप्रेक्ष्य से हटने का अकाट्य साक्ष्य प्रस्तुत करती है। सही है कि उनके अपने-अपने अन्ध राष्ट्रवादी और उनके अपने-अपने सैन्य निर्देशित राज्य अभी भी टकरावादी एवं संघर्ष की राजनीति के दलदल में फंसे हुए हैं।

(ii) द्वितीय सबक यह है कि मौजूदा दुनिया के शक्ति संतुलन में कोई भी (संयुक्त राष्ट्र संघ सहित) इस स्थिति में नहीं है कि वह अपना निर्णय (चाहे वह कितना ही प्रासंगिक क्यों न हो) भारत पर तथा पाकिस्तान या जेके की जनता पर थोप सके। यह (यू एन) अभी तक इस योग्य भी नहीं हुआ है कि चीनी सम्प्रभुता के तहत तिब्बत की स्वायत्तता पर वार्तालाप के लिए दलाई लामा की युक्तियुक्त मांग पर चीन को सहमत करवा सके।

(iii) तीसरा सबक यह है कि जेके समस्या के केन्द्रीय मुद्दे पर आँख मूंदने से यह समस्या भुलाई नहीं जा सकती है। समय गुजारने से यह समस्या समाप्त नहीं हो जाएगी। इससे मामला और जटिल हुआ है। इस समस्या का एक तरफा समाधान सम्भव नहीं है, मसलन, वर्तमान नियंत्रण रेखा का अन्तर्राष्ट्रीय सीमा में बदलने का भारतीय विकल्प, जेके पाकिस्तान का भाग बनाये जाने का पाकिस्तानी एजेण्डा, आजादी पाने की कश्मीरियों की भारी इच्छा तथा भारत में जेके समस्या के हल के तौर पर जेके को भारत के अन्दर तीन भागों में विभाजित करने की जम्मू के उच्च तबके की मांग या अन्य कोई भी एक तरफा या दुतरफा प्रस्ताव जेके समस्या का एक व्यवहारिक और तर्कसंगत हल नहीं हो सकता है।

(iv) चौथा सबक यह है कि भारत-पाक का अन्तहीन 53 वर्ष के टकराव जिसमें तीन भारत-पाक युद्ध शामिल हैं–का नतीजा बहुत ही नुकसानदायक रहा है, इससे केवल भारत-पाकिस्तान और जेके के लोगों का ही नुकसान नहीं हुआ बल्कि दक्षिण एशिया क्षेत्र का भी नुकसान हुआ है। तथ्यों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान दुनिया में आज सबसे गरीब लोग दक्षिण एशिया में हैं। इस टकरावादी रास्ते ने तो यह भी साबित कर दिया है कि दुनिया के लिए भी यह फायदेमंद नहीं है।

(v) पांचवां सबक यह है कि केवल शांति, सहयोग तथा दोस्ती का संयुक्त भारत-पाक तथा जेके एजेण्डा सम्बन्धित अपने-अपने लोगों को तथा सम्पूर्ण दुनिया के लोगों को भी फायदा पहुंचा सकता है।

(D)

जेके समस्या के भविष्य की दिशा पर नजर डालते हैं, इसकी तीन आयामी प्रक्रिया की वास्तविकता से शुरू करना अत्यन्त आवश्यक है।

यह कि, (i) इसके अतीत का अनुभव सैनिक हल की व्यर्थता को दर्शाता है। (ii) इसकी आज की स्थिति का आयाम दर्शाता है कि सभी तरह के विवादित मसलों (चाहे वे नये हों या पुराने) का प्रभावी और सम्भाव्य हल बातचीत और विचार-विमर्श के माध्यम से हो सकता है तथा (iii) इसके भविष्य की दिशा वाला आयाम, जिसे अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की नई वैश्विक वास्तविकता में देखा जा सकता है, देशों में आपसी विवादों की कमी का रुझान, दुनिया के विभिन्न देशों के बीच सहयोग और दोस्ती का बढ़ता हुआ आम झुकाव तथा लगातार उभरते हुए क्षेत्रीय व्यापार क्षेत्र, जो पूंजी, माल, श्रम आदि की मुक्त गति को सुनिश्चित करते हैं तथा मानवीय-पर्यावरणीय आधार पर नस्ली-क्षेत्रीय समुदायों का बनना, जैसे यूरोपियन समुदाय।

यह तीन आयामी दृष्टिकोण सुझाता है कि एक वास्तविक, निष्पक्ष और तर्कसंगत रास्ता इसके सम्बन्धित तीनों पक्षों की आकांक्षाओं और हितों के बीच संतुलन बनाने में निहित है तथा कोई भी एक तरफा या दुतरफा तरीका जो किसी एक या दूसरे के पक्ष में जाता हो, एक प्रासंगिक और उचित विकल्प नहीं हो सकता।

III

हमारे दृष्टिकोण में, जेके विवाद में शामिल तीनों पक्ष, यानि भारत, पाकिस्तान तथा जेके की जनता की आकांक्षाओं को एक वास्तविक, टिकाऊ, निष्पक्ष तथा तर्कसंगत आधार पर निम्न तीन फार्मूलों के अनुसार संतुष्ट किया जा सकता है।

(क) जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा और विदेशी मामले की हद तक भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक ढाँचे के तहत जम्मू-कश्मीर की सम्प्रभुता को संयुक्त रूप से सौंपकर भारत-पाकिस्तान की अपनी-अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं और हितों को संतुलित किया जा सकता है।

(ख) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देकर, जिसे सुरक्षा और विदेशी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में सम्प्रभु शक्तियां हासिल हो, जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(ग) जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्लीय-क्षेत्रीय समुदायों में प्रत्येक को अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर उनकी नस्लीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

सम्बन्धित तीनों पक्षों की आकांक्षाओं की संतुष्टि के अलावा इन तीनों पक्षों के साथ-साथ विश्व समुदाय को और कई तरीकों से आगे और उपलब्धियां प्रदान करता है।

सबसे खतरनाक वैश्विक ज्वलंत समस्या का समाधान होना विश्व समुदाय के अनुकूल है।

इससे दक्षिण एशिया समुदाय को फायदा पहुंचेगा क्योंकि इसके मुक्त व्यापार बाजार के विकास की बाधाएं हट जाएंगी।

और आगे यह भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों को आर्थिक विकास में समान भागीदार बनाकर लाभ पहुंचाता है, इस साझेदारी में भारत और पाकिस्तान प्रत्येक समान वित्तीय राशि प्रदान करके तथा जम्मू-कश्मीर राज्य प्राकृतिक संसाधनों का अंशदान देकर हिस्सेदार बनते हैं। जम्मू-कश्मीर के लोगों को दोनों देशों की नागरिकता एवं दोनों के साथ व्यापार करने की सुविधा मिलने से अतिरिक्त लाभ भी मिलता है।

आगे, जेके समस्या के लिए एक शांतिपूर्ण रास्ते की आवश्यकता है कि जेके समस्या के राजनीतिक हल की खोज करते हुए हमें एक तरफ राज्य में सामान्य हालात बनाए रखना और दूसरी तरफ भारत-पाक तनाव को कम करना है।

यहाँ, निम्नलिखित कदम अख्तियार करने के लिए जन दबाव का निर्माण करना चाहिए जिससे तनाव को कम करने और शांतिपूर्ण प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी के अहसास को बढ़ाया जा सके।

(a) रुकी हुई भारत-पाक वार्ता को पुन: बहाल करना।

(b) ऐसे सभी लोगों को रिहा किया जाए जिनको कई सालों से बिना किसी आरोप के जेल में बन्द कर रखा है।

(c) भारत-पाक घोषणा करे कि जेके समस्या को शांतिपूर्ण तरीके से हल किया जाएगा।

(d) भारत जेके समस्या के त्रिपक्षीय चरित्र को स्वीकार करे।

(e) भारत और पाकिस्तान सीयाचीन, वुलर बैराज और सरक्रीक पर अतिशीघ्र समझौता करे।

(f) जेके में व्यवहारिक युद्ध बंदी लागू की जाए।

(g) भारत-पाक की फौजों को नियंत्रण रेखा से हटाकर प्रत्येक देश की फौज को उक्त रेखा से एक किलोमीटर पीछे लाया जाए।

(h) दोनों देशों के संयुक्त बलों द्वारा सीमा के खाली क्षेत्र की गश्त की जाए।

(i) राज्य की राजनीतिक और भावनात्मक एकता को मजबूत करने के लिए कार्य किया जाए।

(j) और सबसे महत्वपूर्ण है कि भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों का भविष्य साझा है, इस बात को लोगों को कहना और उन्हें सहमत करवाना।

(k) सीमा पर मुक्त क्षेत्र में कुछ चुनिन्दा जगहों पर संयुक्त भारत-पाक व्यापारिक केन्द्रों और पार्कों की स्थापना करना।

(l) घाटी क्षेत्र में पाकिस्तान द्वारा उचित दर पर बिजली प्रदान की जाए।

(m) भारत द्वारा पाकिस्तान की तरफ से जम्मू-कश्मीर के लगभग 100 विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष तकनीकी संस्थानों (खासकर आई टी क्षेत्र) में ट्रेनिंग और स्कालरशिप की सुविधा प्रदान की जाए।

(IV)

उपरोक्त वर्णित तथ्यों से चलते हुए यह स्वाभाविक मार्ग निकलता है कि जेके समस्या के शांतिपूर्ण हल को तैयार करने और सुनिश्चित बनाने के लिए तत्काल एक दो तरफा मूलभूत कार्य को पूरा करने की आवश्यकता है। जिसके लिए एक तरफ जेके में सभी राजनीतिक ताकतों के बीच जेके समस्या के आम सहमति वाले राजनीतिक हल के आधार को तैयार करना और दूसरी तरफ जेके की जनता को सचेत एवं संगठित करना। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाने की आवश्यकता है–

जेके समस्या की एक आम सहमति आधारित राजनीतिक हल की प्रक्रिया को उभारने के लिए राज्य स्तर पर (जम्मू-कश्मीर के दोनों विभाजित भागों सहित) एक अन्तर-पार्टी और अन्तर-नस्ली विचार-विमर्श की जरूरत है, जबकि जेके के लोगों को जागरुक और संगठित करने की प्रक्रिया की मांग है कि जेके समस्या के एक व्यवहारिक और न्यायपूर्ण हल के बारे में लोगों की चेतना को ऊंचा उठाया जाए और जन गतिविधियों में जनता की सक्रिय भागीदारी बढ़ाई जाए। जेके समस्या के उचित हल के पक्ष में भारत, पाकिस्तान और विश्व के शांतिप्रिय एवं तर्कसंगत लोगों की हमदर्दी और समर्थन को हासिल करने की आवश्यकता है। नवम्बर, 2000

***

(जेके समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चे द्वारा जेके पर भारत के मुख्य वार्ताकार श्री के सी पंत को एक खुला पत्र)

दुनिया का आम रुझान भारत, पाकिस्तान तथा जेके के लोगों के एक साझे भविष्य की ओर इंगित करता है

(I) यह खुला पत्र क्यों

1. जेके समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चा 5 बिन्दुओं पर आपको यह खुला पत्र प्रेषित करता है।

2. पहला यह है कि आपने यह सार्थक नहीं समझा है कि जेके समस्या पर इसका (यानि मोर्चे का) दृष्टिकोण जाना जाए।

3. दूसरा यह है कि जम्मू-कश्मीर समस्या से संबंधित तीनों पक्ष (यानि भारत, पाकिस्तान तथा जेके के लोग) अपनी-अपनी भ्रमित समझ से चरित्रित है जो प्राय: उनके कहने और करने से स्पष्ट होती है। जरा भारत के मामले को देखा जाए, भारत का संविधान (अनुच्छेद 1 एवं 370) जम्मू-कश्मीर राज्य को भारत का अभिन्न अंग परिभाषित करता है जबकि 1972 का शिमला समझौता जेके को भारत व पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय मुद्दा वर्णित करता है जबकि भारतीय संसद का 15 दिसम्बर 1994 का सर्वसम्मत प्रस्ताव जेके को भारत का अभिन्न अंग घोषित करता है, भारत और पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों द्वारा हस्ताक्षरित 1998 की लाहौर घोषणा दोनों सम्बन्धित देशों के बीच जेके को अनसुलझे मुद्दे की श्रेणी में रखती है।

यह भ्रम जेके समस्या पर नई दिल्ली की विभिन्न पहलकदमियों एवं प्रतिक्रियाओं से बिल्कुल स्पष्ट होता है। मसलन, नई दिल्ली का बार-बार यह एलान करना कि भारतीय संविधान के ढांचे से बाहर जेके पर किसी भी अन्य पक्ष से बातचीत नहीं करेगा तथा पिछले साल हिज्ब-ए-मुजाहिदीन के साथ इसने बिना शर्त बातचीत की है तथा हाल ही में नियुक्त पंत आयोग की बातचीत की शर्तें बेरोकटोक विचारों के आदान-प्रदान को सुनिश्चित करती है; इसके लगातार दिये जाने वाले बयान कि सशस्त्र ग्रुपों के साथ तब तक बातचीत शुरू नहीं की जाएगी जब तक वे हथियार नहीं डाल देते तथा खाड़कुओं से असीमित विचार-विमर्श करने के लिए इसका नवीनतम प्रस्ताव इसकी शांति की दो नवीनतम पहलकदमियां–यानि, एक तरफा युद्धबंदी तथा जेके पर एक वार्ताकार की नियुक्ति–के साथ-साथ पाकिस्तान से बिना शर्त बातचीत करने से मना करना, सर्वदलीय हुरियत कांफ्रेंस को पाकिस्तान यात्रा के लिए स्वीकृति देने से मना करना तथा जेके में दमन की इसकी पुरानी नीतियां, आदि आदि।

पाकिस्तान की भी ऐसी ही स्थिति है, एक तरफ यह जेके को विभाजन का अधूरा रह गया एजेण्डा बतलाता है (अर्थात् जेके एक मुस्लिम बाहुल्य रहा है और है तथा साम्प्रदायिक विभाजन के आधार पर पाकिस्तान का एक भाग होने के लिए उचित मसला है), तथा

दूसरी ओर यह इसे एक कश्मीर प्रश्न या जेके के लोगों के मसले के रूप में रेखांकित करता है। और अधिक, एक तरफ यू एन प्रस्ताव के आधार पर यह जेके मुद्दे को हल करने की मांग करता है तथा दूसरी ओर कभी द्विपक्षीय तो कभी त्रिपक्षीय विकल्प चयन करता है। बहुत से अवसरों पर यह तीसरे पक्ष की मध्यस्थता के हल के रास्ते पर जोर डालता है। आगे, एक तरफ, यह भारत से मांग करता है कि जेके के लोगों को अपना भविष्य तय करने का अधिकार दिया जाए तथा दूसरी तरफ आजाद कश्मीर के नागरिकों का पाकिस्तान के नागरिकों के तौर पर संवैधानीकरण करता है, आदि आदि। सर्वदलीय हुरियत कान्फ्रेन्स–कश्मीरियों का मुख्य प्रतिनिधि संगठन–कभी कभी आत्मनिर्णय का अधिकार मांगता है तथा कभी कभी जेके के त्रिपक्षीय हल पर जोर देता है।

4. तीसरा बिन्दु यह है कि मोर्चे का एक विशेष लक्ष्य है, एक नये तरीके का जेके का हल है जो सम्बन्धित तीन पक्षों की आकांक्षाओं को समायोजित करता है। यह सभी परम्परागत विकल्पों से बिल्कुल भिन्न है, जेके समस्या में प्रत्येक प्रतिभागी कभी किसी एक के हितों की तरफदारी करता है तो कभी दूसरे के हित की तरफदारी करता है, जो निम्न है : (क) वे सभी विकल्प जो या तो भारत का पक्ष लेते हैं, जैसे भारत के साथ विलय, नियंत्रण रेखा के आधार पर जेके को विभाजित करना, 1953 से पहले वाली स्वायत्तता पुन: बहाल करना, जेके का तीन भागों में विभाजन, इत्यादि; (ख) या पाकिस्तान के पक्ष में जाना, जैसे जेके को पाकिस्तान का अंग बनाना, (ग) या जेके के एक या दूसरे नस्लीय ग्रुपों की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करना, जैसे जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट की एक स्वतंत्र देश के रूप में 1947 से पहले के जेके राज्य की स्थापना की मांग, एक स्वायत्त विशाल कश्मीर की अमेरिकी अध्ययन ग्रुप की योजना, जो भारत की सम्प्रभुता के तहत घाटी तथा पुंछ, राजौरी और डोडा जिलों से गठित हो, जबकि आजाद कश्मीर पाकिस्तान के साथ रहे तथा जम्मू, कठूआ एवं उधमपुर, लद्दाख तथा कारगिल जिले भारत का भाग रहें, यानि एक साम्प्रदायिक निर्देशित योजना।

जेके समस्या के त्रिपक्षीय हल की प्रक्रिया में, मोर्चा अपने स्वयं के लक्ष्य को–जो कि सबसे उचित समाधान है–प्रथम प्राथमिकता देगा, जबकि सम्मिलित तीनों पक्षों द्वारा संयुक्त अनुमोदन के किसी भी अन्य जेके समाधान को स्वीकार करने के लिए हमेशा खुले मन से तैयार रहेगा।

5. चौथा बिन्दु यह है कि सम्बन्धित तीनों पक्षों के बीच जेके समस्या का हल प्राप्त करने के लिए मोर्चा पूर्णतया शांतिपूर्ण रास्ते को मान्यता देता है।

6. पांचवां बिन्दु यह है कि सम्बन्धित तीनों पक्षों के बीच जेके शांति प्रक्रिया को शुरू करने तथा भारत और पाकिस्तान के बीच एवं साथ ही साथ जेके के अन्दर तनाव रहित वातावरण बनाने में मदद करने के लिए जेके, भारत, पाकिस्तान, दक्षिण एशिया तथा दुनिया में सभी शांतिपूर्ण लोगों को संगठित करने के तात्कालिक लक्ष्य को मोर्चा मान्यता देता है। इसके लिए दो चीजें आवश्यक हैं।

(क) जेके समस्या की प्रकृति त्रिपक्षीय है इसको भारत एवं पाकिस्तान द्वारा स्वीकार किया जाए, तथा (ख) तत्काल कुछ एकीकृत कदम उठाये जाएं जैसे बिना पूर्व शर्त त्रिपक्षीय वार्ता शुरू करना, एक संयुक्त भारत-पाक की घोषणा की मांग करना कि वे

शांतिपूर्ण तरीके के जरिए जेके समस्या का हल निकालेंगे तथा वे आपस में युद्ध वर्जन संधि का शीघ्र निर्णय लेंगे, नियंत्रण रेखा पर शांति बनाये रखने के लिए संयुक्त भारत-पाक पर्यवेक्षकों की नियुक्ति, भारत, पाकिस्तान तथा खाड़कुओं के प्रतिनिधियों के बीच सार्थक युद्धबंदी सहमति द्वारा जमीनी स्तर पर राज्य में शांतिपूर्ण माहौल कायम करना। इसमें भारतीय सुरक्षा बलों का उनकी बैरकों में वापिस भेजना तथा खाड़कुओं द्वारा बंदूकें नहीं चलाना शामिल होना चाहिए। इसकी निश्चित अवधि होनी चाहिए, जैसे–माना तीन माह, तथा यह इसके बाद इसे समय-समय पर लगातार बढ़ाया जाता रहे। युद्धबंदी सहमति बनने के साथ-साथ ही सभी राजनीतिक नजरबंदियों या कैदियों–जिनमें खाड़कू भी शामिल हैं–को रिहा करना तथा तीनों पक्षों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघनों की जांच के लिए सहमति से संयुक्त आयोग नियुक्त करना एवं सभी पीड़ित परिवारों को उचित मुआवजा दिये जाने की सिफारिश करना। मुआवजा कोश में भारत व पाकिस्तान दोनों को उनसे जुड़े मामलों के सम्बन्ध में अपना-अपना अंशदान देना चाहिए, जबकि खाड़कुओं से पीड़ित परिवारों को मुआवजा देने का उत्तरदायित्व भारत व पाकिस्तान दोनों का संयुक्त रूप से होना चाहिए।

7. जेके समस्या के बारे में मोर्चे की एकीकृत समझ–यानि, इसकी अवधारणा, परिदृश्य और समाधान–को निम्न तथ्यों से देखा जा सकता है।

(II) जेके समस्या पर मोर्चे की समझ

8. जेके समस्या पर मोर्चे की समझ के बारे में, यह निम्नलिखित है।

9. प्रथम, 1947 से पूर्व का सम्पूर्ण जेके राज्य अनसुलझी समस्या रही है।

10. द्वितीय, इस समस्या का त्रिपक्षीय चरित्र है, जिसमें तीन पक्ष, यानि, भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोग शामिल हैं तथा इसके हल के लिए त्रिपक्षीय रास्ता अपनाना अपरिहार्य है।

11. तीसरा, जेके समस्या का बुनियादी कारण 1947 के भारत विभाजन में निहित है। उपरोक्त विभाजन स्वयं 1947 पूर्व की राष्ट्रवाद की दो भ्रमित धारणाओं–यानि, (क) उदार हिन्दू-निर्देशित बहुसंख्यक राष्ट्रवाद तथा (ख) मुस्लिम लीग प्रायोजित मुस्लिम रूढ़िवाद–के बीच टकराहट की उपज है। पहला ज्यादा गलती पर था क्योंकि उसका दावा है कि वह भारतीय जनता की बहुसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है, परन्तु वह भारत में सबसे बड़े अल्पसंख्यक समुदाय का विश्वास जीतने में असफल रहा। इन दोनों तरह के राष्ट्रवाद की टकराहट वाली नीति जो पहले भी थी और अभी भी चल रही है, जिसने भारत और पाकिस्तान के 1947 के बाद के इतिहास का ज्यादातर हिस्सा प्रभावित हुआ है, इन दोनों देशों के लोगों को आम तौर पर तथा 1947 के बाद विशेष तौर जम्मू-कश्मीर के लोगों को बहुत कीमत अदा करनी पड़ी है।

12. चौथा, भारत और पाकिस्तान के बीच 5 दशक लम्बी राष्ट्रीय शत्रुता तथा अपने मन में बैठाये शत्रु पक्ष से लड़ने और हराने के लिए इसकी तार्किक परिणति ने जेके के निवासियों एवं भारत-पाक के लोगों पर भारी नुकसानदायक प्रभाव लागू किया और अभी भी पैदा कर रहा है।

जेके निवासियों के लिए, इसके नतीजे में कश्मीर क्षेत्र में विशेष तौर पर चुनाव प्रक्रिया तथा आम तौर पर सभी लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित हुए, 1989 के आसपास हिंसा का प्रादुर्भाव, दैनिक मानव हत्याओं के काल की शुरूआत और मुख्य तौर पर आम आदमी की, अद्वितीय मानवाधिकारों का उल्लंघन, आम लोगों की दुख-तकलीफों का बढ़ना, इत्यादि।

भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में मानवीय दुख-तकलीफ उठाने वाली स्थिति भी कम चौंकाने वाली नहीं है। इन दोनों देशों के लोग दुनिया के सबसे गरीब 10 देशों के वंचित लोगों में शामिल है। इन दोनों देशों की दो तिहाई आबादी गरीबी की श्रेणी में आती है। भारत के करीब 40% लोग और पाकिस्तान के करीब 60% लोग गरीबी में जीवन बसर करते हैं। उनकी अपनी-अपनी करीब आधी जनसंख्या अनपढ़ है। दसियों लाख लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध नहीं है, एक तिहाई लोगों के पास अपने घर नहीं है तथा तीन चौथाई लोगों को उचित शौचालय सुविधा प्राप्त नहीं है। करीब 60 प्रतिशत बालक बुनियादी एवं गुणात्मक शिक्षा के अधिकार से वंचित है। प्रत्येक देश में लगभग 75 प्रतिशत महिलाएं किसी न किसी प्रकार के दमन की शिकार हैं। पर्यावरण गिरावट तथा जंगल कटाई में दोनों के अपने-अपने ग्राफ बढ़ोतरी पर है, आर्थिक क्षेत्र में विशेष तौर पर तथा सामाजिक जिन्दगी के हर क्षेत्र में असमानता भी बढ़ोतरी पर है।

13. पंचम, जम्मू-कश्मीर में आज मुख्य जमीनी हकीकत खाड़कू और फौज के बीच संघर्ष के इर्द-गिर्द केन्द्रित है तथा भारत-पाक शत्रुता (तीन सशस्त्र युद्धों सहित) में बढ़ोतरी के सन् 1947 के बाद के अनुभव ने साबित किया है कि जेके समस्या का कोई भी सैनिक समाधान न तो संभव है और न ही संभव हो सकता है, तथा इस समस्या का एक पक्ष की शर्तों के अनुसार निपटारा नहीं हो सकता है। सभी एक पक्षीय एवं द्विपक्षीय समाधान टिकाऊ नहीं रहे हैं क्योंकि किसी भी पक्ष द्वारा युद्ध जीता नहीं जा सकता है। जो कोई भी सैनिक समाधान पर अड़ा रहेगा वह अस्थिर हो जाएगा।

14. षष्टम, विवाद के तीनों पक्षों में से किसी के पास जेके समस्या के समाधान का कोई भी वास्तविक फार्मूला नहीं है। भारत जेके को अपने राष्ट्रवाद का मुख्य मुद्दा मानता है, पाकिस्तान इसे अपनी श्वांस नली की संज्ञा देता है जबकि जेके की 9 नस्लीय समुदायों में से प्रत्येक की अपनी इच्छाएं व आकांक्षाएं हैं।

15. सप्तम्, जेके पर गतिरोध समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि तीनों खिलाड़ियों में से प्रत्येक कुछ त्याग करे तथा अपने-अपने दावों में कुछ कदम पीछे हटाएं। भारत को जेके में अपनी वर्तमान स्थिति में से कुछ कम प्राप्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए, उसी प्रकार पाकिस्तान को जनमत संग्रह या आत्मनिर्णय के अलावा कुछ पाने की सहमति देने के लिए तैयार रहना चाहिए तथा आम तौर पर जेके के लोगों और विशेष तौर पर कश्मीरियों को अपने-अपने हितों को भारत व पाकिस्तान के राष्ट्रीय हितों के साथ समायोजन के लिए तैयार होना चाहिए। इन तीनों पक्षों द्वारा केवल वास्तविकता के आधार पर अपनी मानसिकता को ढालने से ही एक न्यायपूर्ण, तर्कसंगत एवं टिकाऊ जेके समाधान के निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार की मानसिकता तथा एक वास्तविक समाधान तभी उभर सकता है जब हम अतीत से सबक लेते हुए, वर्तमान से शुरू करें तथा भविष्य की ओर आगे बढ़ें।

(III) जेके समस्या पर मोर्चे का परिप्रेक्ष्य

16. जेके पर मोर्चे के परिप्रेक्ष्य के सवाल को लेते हैं, वर्तमान जमीनी वास्तविकता से शुरू करते हुए तथा भारत, पाक, जेके की पिछली 53 वर्षीय सम्पूर्ण शृंखला के सबक से सीखते हुए तथा 21वीं सदी के आम रुझान में से यह उभरा है।

17. 21वीं सदी का आम रुझान द्विपक्षीय आन्दोलन–यानि, एक तरफ देशों को क्षेत्रीय संघों के रूप में मिलाना तथा दूसरी तरफ नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों, जैसे, विश्व व्यापार संघ, पश्चिमी आर्थिक समुदाय, आदि का उभरना, तथा पहले से मौजूद, यानि यू एन ओ तथा उसके संगठन की शाखाओं, विश्व की वित्तीय संस्थाओं, जैसे आई एम एफ, विश्व बैंक, इत्यादि को और अधिक मजबूत करना–इत्यादि के जरिए राष्ट्रों के एकीकरण से मानव समुदाय को एक एकल इकाई में परिवर्तित करने की प्रक्रिया है। यह दो पक्षीय रुझान दर्शाता है कि दुनिया में 186 देशों का भविष्य साझा हो गया है। इसलिए हमारे समय की सामाजिक वास्तविकता भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों से मांग करती है कि जेके समस्या के समाधान के लिए इस प्रकार आगे बढ़ा जाए जो उन्हें आज से साझा भविष्य बनाने में उनकी मदद कर सके।

18. आज जेके में जमीनी वास्तविकता यह है कि प्रथमतया, यह हिंसा, सामाजिक अराजकता, मानवाधिकारों का उल्लंघन एवं लोगों की तकलीफों तथा द्वितीयत: विभिन्न धार्मिक एवं नस्ली गुपों के बीच असामंजस्य द्वारा चरित्रित है। इसलिए, सम्बन्धित तीनों पक्षों, मुख्यत: भारतीय सरकार से यह जेके राज्य सहित भारत-पाक सम्बन्धों को सामान्य बनाने की मांग करता है।

19. पिछले 53 वर्षों का मुख्य सबक यह है कि साम्प्रदायिक विभाजन की राजनीति तथा शीतयुद्ध किसी भी सूरत में लाभदायक नहीं है, इसलिए हमेशा और हर जगह इसकी खिलाफत करनी चाहिए। इसलिए इसका यह अर्थ निकलता है कि वे सभी प्रस्ताव जो भारत-पाक के बीच मनमुटाव पैदा करते हैं या राज्य को साम्प्रदायिक लाइन पर विभाजित करते हैं या इसे भारत और पाकिस्तान के बीच में बांटते हैं, ये सभी टकराहट के कार्यक्रम हैं। इस शीर्षक के तहत प्रस्तावनाएं : एक देश के साथ विलय, राज्य का भारत और पाकिस्तान के बीच बंटवारा करना, जेके का साम्प्रदायिक विभाजन, जनमतसंग्रह व आत्मनिर्णय, आदि है। अत: अतीत का अनुभव हमसे इसकी प्रत्येक विभिन्न पहचानों को स्वायत्तता के साथ जेके राज्य को एक ही इकाई में बांधे रखने के उसूल की मांग करता है।

20. इस प्रकार, वैश्विक समाज के उभरते हुए आम रुझान को थामकर वर्तमान सामाजिक आवश्यकता से शुरू करते हुए भारत, पाकिस्तान एवं जेके के लोगों के अपने-अपने हितों में सामंजस्य बैठाकर तथा अतीत के अतिवाद के नुकसानदायक अनुभव से सबक लेने से यह निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रों के अन्दर एवं आपस के विवादों को निपटाने का वास्तविक परिप्रेक्ष्य बातचीत के जरिए समाधान निकालने के पुराने जांचे-परखे तथा नवीन तौर पर मजबूती पकड़े इस सिद्धान्त में निहित है जो सम्बन्धित पक्षों के सामूहिक एवं निजी अपेक्षाओं और हितों में मेल बैठाता है।

(IV) जेके समस्या के समाधान के लिए मोर्चे का 3 बिन्दु का प्रस्ताव

21. ऊपर वर्णित अवधारणा से चलते हुए जेके समस्या का एक वास्तविक समाधान त्रिपक्षीय वार्ता में निहित है, जेके समस्या का सबसे उचित उत्तर इसके त्रिपक्षीय हल में है

और इसका भविष्य जम्मू-कश्मीर, पाकिस्तान और भारत के साझे विकास में समाहित है।

22. हमारे दृष्टिकोण में, जेके विवाद में शामिल तीनों पक्ष, यानि भारत, पाकिस्तान तथा जेके की जनता की आकांक्षाओं को एक वास्तविक, टिकाऊ, निष्पक्ष तथा तर्कसंगत आधार पर निम्न तीन फार्मूलों के अनुसार संतुष्ट किया जा सकता है।

(क) जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा और विदेशी मामले की हद तक भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक ढाँचे के तहत जम्मू-मश्कीर की सम्प्रभुता को संयुक्त रूप से सौंपकर भारत-पाकिस्तान की अपनी-अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं और हितों को संतुलित किया जा सकता है।

(ख) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देकर, जिसे सुरक्षा और विदेशी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में सम्प्रभु शक्तियां हासिल हो, जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(ग) जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्लीय-क्षेत्रीय समुदायों में प्रत्येक को अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर उनकी नस्लीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(घ) सम्बन्धित तीनों पक्षों की आकांक्षाओं की संतुष्टि के अलावा इन तीनों पक्षों के साथ-साथ विश्व समुदाय को और कई तरीकों से आगे और उपलब्धियां प्रदान करता है।

23. सबसे खतरनाक वैश्विक ज्वलंत समस्या का समाधान होना विश्व समुदाय के अनुकूल है।

24. इससे दक्षिण एशिया समुदाय को फायदा पहुंचेगा क्योंकि इसके मुक्त व्यापार बाजार के विकास की बाधाएं हट जाएंगी।

25. और आगे यह भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों को आर्थिक विकास में समान भागीदार बनाकर लाभ पहुंचाता है, इस साझेदारी में भारत और पाकिस्तान प्रत्येक समान वित्तीय राशि प्रदान करके तथा जम्मू-कश्मीर राज्य प्राकृतिक संसाधनों का अंशदान देकर हिस्सेदार बनते हैं। जम्मू-कश्मीर के लोगों को दोनों देशों की नागरिकता एवं दोनों के साथ व्यापार करने की सुविधा मिलने से अतिरिक्त लाभ भी मिलता है।

26. संक्षेप में, भारत-पाक सहराज्य एक सामाजिक मॉडल को अभिव्यक्त करता है, जो भारत-पाकिस्तान और जेके लोगों के साझे भविष्य को सुनिश्चित करता है भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के अपने-अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान की सुरक्षा करता है, उनके राष्ट्रीय हितों को संतुलित करता है, जेके लोगों के मामलों में सामंजस्य बैठाता है, जेके की नश्लीय-क्षेत्रीय पहचानों की आकांक्षाओं और हितों को पूरा करता है, भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों को नजदीक लाता है, सार्क देशों की एकता में ताकत बढ़ाता है, विश्व के देशों में शांति और स्थिरता में मजबूती लाता है। यह एक नया प्रयोग होगा जो दिखायेगा कि कैसे विभिन्न देशों के राष्ट्रीय हितों को समाहित किया जाता है, तथा विभिन्न नश्लों की आकांक्षाओं और हितों को कैसे संतुलित किया जाता है। 17-05-2001

***

जेके समस्या के त्रिपक्षीय समाधान के लिए मोर्चे का प्रेस वक्तव्य

भारत-पाक वार्ता की पुन: बहाली पर जेके समस्या के त्रिपक्षीय समाधान के लिए मोर्चे द्वारा प्रेस को जारी किया गया वक्तव्य निम्न है–

1. मोर्चा यह विचार रखता है कि प्रधानमंत्री वाजपेयी का जनरल मुशर्रफ को आमंत्रण और मुशर्रफ द्वारा इस निमंत्रण को स्वीकार करने की इच्छा एक स्वागत योग्य कदम है। क्योंकि यह जेके की मौजूदा बहुआयामी मांगों के अनुकूल कदम है। यद्यपि ये कदम पहले ही उठा लिए जाने चाहिए थे परन्तु नहीं उठाने से तो देर से उठाना ही अच्छा है।

2. भारत-पाक सम्बन्धों में करीब दो वर्षों से चली आ रही तनाव की स्थिति में केवल वैश्विक, राष्ट्रीय एवं जमीनी परिस्थितियों के दबावों ने दोनों को मजबूर किया है कि वे बातचीत का रास्ता अपनाएं। इस घटनाक्रम से केवल मात्र यही सबक लिया जा सकता है कि किसी को भी वह काम करने से बचना चाहिए जिसकी वजह से वह अपनी ही बेवकूफियों के जाल में फंस जाए।

3. कभी-कभी, यहाँ तक कि अचानक घटने वाली घटनाएं भी वांछित परिणाम की ओर ले जा सकती है। परन्तु दोनों देशों के जेहन में जमा हुआ अपना-अपना परंपरागत रवैया तथा इनके अपने-अपने देशों में जमीनी वास्तविकता की संभावनाएं आने वाले दिनों में दोनों शासक ग्रुपों के लिए और कठिन हो जाएंगी, बातचीत की प्रक्रिया किसी सार्थक परिणाम की ओर ले जायेगी इसकी संभावना बहुत कम है।

4. फिर भी, मोर्चा इस मौके को एक वास्तविक, न्यायिक एवं शांतिपूर्ण हल के पक्ष में लोगों को संगठित करने के लिए एक अच्छी शुरूआत मानता है। मोर्चा एक ऐसे कार्यक्रम के प्रति दृढ़ है जो जेके समस्या की वास्तविकताओं के अनुकूल है। मोर्चे की नजर में जेके समस्या का वास्तविक हल त्रिपक्षीय वार्ता में निहित है, जेके समस्या का सबसे उचित उत्तर त्रिपक्षीय समाधान में है तथा जेके, पाकिस्तान एवं भारत का भविष्य साझे विकास में निहित है। मोर्चा तीन बिन्दु वाले प्रस्ताव को मान्यता देता है जो जेके विवाद में शामिल पक्षकारों, यानि भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों की आकांक्षाओं एवं हितों में सामंजस्य बैठाता है। वे प्रस्ताव निम्न हैं–

(A) जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा और विदेशी मामले की हद तक भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक ढाँचे के तहत जम्मू-कश्मीर की सम्प्रभुता को संयुक्त रूप से सौंप कर भारत-पाकिस्तान के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों एवं आकांक्षाओं को संतुलित किया जा सकता है।

(B) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देकर, जिसे सुरक्षा और विदेशी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में सम्प्रभु शक्तियां हासिल हो, जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(C) जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्लीय क्षेत्रीय समुदायों में प्रत्येक को अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर उनकी नस्लीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के राज्य स्तर के मामलों में निम्न को शामिल किया जा सकता है—राज्याध्यक्ष, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि। (27-5-2001)

***

जेके समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चे द्वारा भारत-पाक शिखर सम्मेलन को की गई अपील

I

भारत-पाक शिखर सम्मेलन के सामने पहला निवेदन है कि चाहे वह जेके समस्या जैसी अत्यधिक जटिल समस्या के हल के लिए अथवा भारत-पाक के मध्य अन्य कोई साधारण मसले को निपटे, परन्तु कृपा करके इस बुनियादी तथ्य को प्रथम महत्वता दें कि भारत, पाकिस्तान और जम्मू के लोग ऐतिहासिक तौर पर एक है—जिनका एक भविष्य, जिनका भूतकाल साझा और एक जैसा था और जो आज एक जैसी समस्याओं से सामना कर रहे हैं।

इनके साझा भविष्य के बारे में, हमारे समय में नई उभरी मुख्य वास्तविकता (यानि राष्ट्र राज्यों की अन्तरनिर्भरता या देशों का वैश्वीकरण) यह मांग करती है कि मौजूदा परम्परागत राष्ट्रीय दृष्टिकोण को आधुनिक बनाते हुए एक नया अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया जाए। इसका अर्थ है कि आज प्रत्येक राष्ट्र का मुख्य लक्ष्य अन्य राज्यों के मुकाबले सर्वोच्चता (या आधिपत्य, प्रभुत्व या बड़ी शक्ति का दर्जा) प्राप्त करना नहीं है, बल्कि तर्कसंगत बातचीत के माध्यम के जरिए इनकी आकांक्षाओं और हितों में संतुलन स्थापित करना है। राष्ट्रों में संतुलन स्थापित करने की प्रक्रिया की आवश्यकता है कि परम्परागत राष्ट्रीय राजनीति, अर्थनीति तथा संस्कृति को पुनरगठित कर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अर्थनीति तथा संस्कृति की ओर आगे बढ़ा जाए। हमारे युग की अन्तर्राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया को दो मुख्य प्राथमिकताओं यानि, पर्यावरण और मनुष्य को मानव समाज द्वारा अपनाए जाने की आवश्यकता है तथा प्रत्येक देश में पारिस्थितिक और मानव समर्थक राजनीति तथा संस्कृति पर जोर दिये जाने की आवश्यकता है। इतना सब यह दर्शाता है कि सम्पूर्ण मानवता का भविष्य (भारत, पाकिस्तान तथा जेके की जनता सहित) साझा हो गया है। इस वस्तुगत मानवीय आवश्यकता के रास्ते में अब जो कोई भी रुकावट पैदा करेगा उसे गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

इनके अतीत में समान हिस्सेदारी के बारे में, भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों की एक ही जेनेटिक कोड एवं वंशानुगतता है, समान भाषा बोलते हैं तथा समान संस्कृति, आदतें, मानदण्ड और ढंगों का पालन करते हैं। विभिन्न रंगों के बावजूद उनके धार्मिक विश्वास समान हैं। स्पष्टतया, धार्मिक किस्में उनके एक ही मूल के होने की वास्तविकता में न तो कोई परिवर्तन लाती और न ही ला सकती है। उदाहरणतया, कुछ तीन हजार वर्ष पहले इन देशों में ना तो कोई हिन्दू था और ना कोई बौद्ध व जैन था। 1500 वर्ष पहले कोई मुसलमान भी नहीं था और कोई 600 वर्ष पहले सिख भी नहीं था। परन्तु मानव चाहे वह आर्य थे या द्रविड़, काफी लम्बे समय से इस क्षेत्र में रह रहे थे। इन लोगों के अस्तित्व के ऐतिहासिक साक्ष्य जो बहुत पुराने शहरों मोहनजोदड़ो व हड़प्पा (अब पाकिस्तान में) में प्रचलित प्राचीन सभ्यता से प्राप्त होते हैं। परन्तु अब से करीब 3500 वर्ष

पहले इन शहरों का अस्तित्व समाप्त हो गया। कहा जाता है कि वह सभ्यता उत्तरी भारत-पाक क्षेत्रों से पश्चिम में मेसोपोटामिया (जिसे अब इराक कहते हैं) तक बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई थी। इस प्रकार भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों की जड़ें एक ही सभ्यता में हैं तथा एक कुल की रचना है।

इनके वर्तमान जीवन की समानता के बारे में, भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों के सामने आज एक जैसी समस्याएं हैं, यानि, राजनीति का अपराधीकरण, कानून और व्यवस्था का उल्लंघन, न्याय की विफलता, बढ़ता अपराध, अराजकता व हिंसा, कमरतोड़ भ्रष्टाचार, असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, बेघरबारता, सांस्कृतिक मानदंडों में गिरावट, पर्यावरणीय संसाधनों का बिगड़ना, जैसे हवा और पानी में प्रदूषण, पीने के पानी की उपलब्धता में कमी, भूमि में गिरावट, जंगलों का विनाश, जैव-विविधता को खतरा आदि। यहाँ तक कि इस वैज्ञानिक युग में भारत और पाकिस्तान दुनिया के सबसे गरीब देशों की पंक्ति में ही खड़े हैं। वित्तीय तौर पर दोनों बर्बाद होने के कगार पर हैं, जिनका वित्तीय घाटा भारी मात्रा में बढ़ गया है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों (यानि, भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों की अतीत के इतिहास में समान हिस्सेदारी, उनके चल रहे जीवन में समान समस्याओं का सामना तथा साझे भविष्य के दौर में प्रवेश) की मांग है कि अपने व्याख्यानों और निर्णय लेने की प्रक्रिया के दौरान भारत-पाक शिखर सम्मेलन–भारत, पाक व जेके के लोगों की ऐतिहासिक एकता के सत्य को कृपया प्रारम्भिक बिन्दु बनाएं।

II

भारत-पाक शिखर सम्मेलन को दूसरा निवेदन यह है कि कृपया यह इस तथ्य को ध्यान में रखे कि जेके में मौजूद संघर्षरत सभी तीनों सशस्त्र बल, यानि, भारत, पाकिस्तान एवं खाड़कू अब अपनी चरम सीमा पर हैं, इनमें से कोई भी ऐसी स्थिति में नहीं है कि अपनी इच्छा को अन्य दो पर लाद सके या अपने विरोधियों से अपने पक्ष में कोई रियायत हासिल कर सके। स्पष्टतया, इस तरह के बराबरी के शक्ति संतुलन का अर्थ है कि जेके समस्या का एकमात्र रास्ता समझौते वाला हल ही है और हो सकता है जो सभी एक पक्षीय या द्विपक्षीय समाधानों के विकल्प को अर्थहीन बना देगा। इसलिए, भारत-पाक शिखर सम्मेलन अपने व्याख्यानों और निर्णय लेने के दौरान कृपया एक मैत्रीपूर्ण फार्मूला तलाश करने की कोशिश करे जो न केवल जेके समस्या को वास्तविकता और न्यायिक आधार पर सुलझाए बल्कि भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों को अभी और नजदीक लाने का रास्ता मुहैया करे।

III

भारत-पाक शिखर सम्मेलन को तीसरा निवेदन यह है कि कृपया यह हमेशा ध्यान रखे कि 1947 से पहले और बाद के धार्मिक रूढ़िवाद ने (या धर्म निर्देशित राजनीति, यानि धर्म को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए उपयोग करना) भारत, पाकिस्तान और जेके में बर्बादी का खेल खेला है।

प्रथम, इसने 1947 में भारत को दो देशों (यानि भारत और पाकिस्तान) में विभाजित किया है और उसके बाद 1971 में पाकिस्तान को दो देशों (पाकिस्तान और बांग्लादेश) में विभाजित किया है। तत्पश्चात् इसने हिंसा, अपराध, अराजकता, कानून व्यवस्था का

उल्लंघन, राजनीति का अपराधीकरण, माफिया प्रभुत्व में बढ़ोतरी, लोगों में असुरक्षा आदि को अद्वितीय प्रोत्साहन दिया है। और इसने लगातार यह कोशिश की है कि भारत और पाकिस्तान संघर्षरत रहें, जिसके नतीजे में तीन भारत-पाक युद्ध भी हो चुके हैं। आगे, सामाजिक अव्यवस्था एवं सौहार्दहीनता पैदा करके इसने भारत, पाकिस्तान एवं जेके के आर्थिक विकास का गला घोंटा है। इस प्रकार सम्बन्धित अपने-अपने लोगों को मात्र जीने भर के स्तर पर कायम रखा है जिसकी पुष्टि बहुत सी वैश्विक संस्थाओं, जैसे, संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक आदि द्वारा जारी की गई विभिन्न विकास रिपोर्टों से पुष्टि होती है।

अभी भी धार्मिक रूढ़िवाद लगातार भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश में संसदीय, अर्द्ध संसदीय या अधिनायकवादी आदि भिन्न-भिन्न वेशभूषा के नाम पर छाया हुआ है। परन्तु इसका आवश्यक पहलू येन-केन प्रकारेण सत्ता हथियाने का है तथा विशेष तौर पर धर्म का उपयोग कर लोगों की मानसिकता का साम्प्रदायिकरण करना है।

जबकि जेके में मौजूदा गतिरोध ने दुनिया के बहुत से देशों (खासकर बड़े देशों) को लम्बे समय से दुखदायी जेके समस्या पर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया है और नतीजतन जेके समस्या में शामिल तीनों पक्षों (यानि भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों) ने जब शांतिपूर्ण समाधान पर और अधिक जोर देना शुरू किया है तब एक बार फिर अत्यधिक सक्रिय धार्मिक रूढ़िवादी शक्तियों ने विभिन्न लेबल के तहत दस्तक देना शुरू किया है।

प्रथम, यह भारतीय संघ के भीतर जेके राज्य को तीन भागों (यानि मौजूदा जेके राज्य में से तीन राज्य इकाइयों का निर्माण–जम्मू क्षेत्र, डोडा, राजौरी एवं पुंछ जिलों सहित; लद्दाख क्षेत्र एवं कश्मीर घाटी) में विभाजित करने के संघ परिवार द्वारा उठाए गये नारे की आड़ में सामने आया है। परन्तु इस नारे के पीछे राज्य को साम्प्रदायिक लाइन पर विभाजित करने की एकमात्र इच्छा है, इसका साम्प्रदायिक खाका प्रस्तावित करता है कि जम्मू एवं लद्दाख राज्य भारत के साथ रहें, आजाद कश्मीर पाकिस्तान के साथ रहे तथा यदि सम्भव हो तो भारतीय सम्प्रभुत्ता के तहत कश्मीर घाटी को पूर्णतया स्वायत राज्य बनाया जाए। दुनिया के शक्तिशाली समूहों द्वारा पाकिस्तान से समझौता करने का दबाव डाला जाए तो ऐसी स्थिति में सुरक्षा एवं विदेशी मामलों के बारे में संयुक्त भारत-पाक सम्प्रभुता के तहत एक पूर्णतया स्वायत या अर्द्ध स्वतंत्र घाटी का वजूद कायम किया जा सकता है।

द्वितीय, जेके राज्य में पाकिस्तान समर्थित तत्वों द्वारा भारत और पाकिस्तान के बीच जेके के साम्प्रदायिक विभाजन की मांग के रूप में यह (धार्मिक रूढ़िवाद) सामने आया है।

तृतीय, इसने (धार्मिक रूढ़िवाद ने) अपने आपको अमेरिका के प्रस्ताव के रूप में अभिव्यक्त किया है जो संघ परिवार के त्रिपक्षीय विभाजन के नारे जैसा ही है।

उपरोक्त वर्णित कटु लेखा-जोखा भारत-पाक शिखर सम्मेलन से आग्रह करता है कि वह सभी प्रकार की धार्मिक रूढ़िवादिता के विरुद्ध दृढ़ रवैया अपनाए।

IV

भारत-पाक शिखर सम्मेलन को चौथा निवेदन यह है कि सभी प्रकार के समृद्ध अनुभवों तथा बाहर से मिलने वाली सूझबूझ वाली सलाह के प्रति खुला रहते हुए, इसे

सभी तरह की दूषित सलाहों से बचने की कोशिश करनी चाहिए। विशेष तौर पर, इसे सभी महाशक्तिवादी कदमों, विशेष तौर पर गरमा रही चीनी-अमेरिकी प्रतिस्पर्धा से सम्बन्धित कदमों से बचने की कोशिश करनी चाहिए।

अब यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अमेरिका का नया बुश प्रशासन अपने वैश्विक महाशक्तिवादी रणनीति को लागू करने में भारत को कनिष्ठ साझेदार बनाने की कोशिश में है जिसका उद्देश्य सारी दुनिया में अमेरिका के हितों की रक्षा करना है तथा मुख्य तौर पर चीन के विरुद्ध निर्देशित है।

अपने रणनीतिक दायरे में भारत को लाने के लिए बुश प्रशासन जेके सम्बन्धी एक नई स्कीम के सम्बन्ध में आकर्षक प्रलोभन प्रस्तुत कर रहा है। अमेरिका का प्रस्ताव करीब-करीब आर एस एस-बीजेपी के त्रिपक्षीय विभाजन की योजना से मिलता-जुलता है और वाजपेयी सरकार को काफी अच्छा लगने वाला है। बड़े पैमाने पर यह अफवाह है कि यह साम्प्रदायिक निर्देशित तथा पाक को रियायत देने वाली स्कीम पाकिस्तान को भी स्वीकार्य है।

भारत एवं पाकिस्तान दोनों को अमेरिकी गुट से जोड़ने वाला ऐसा गुप्त समझौता यदि परिपक्व होता है तो उसका अवश्यंभावी नतीजा न केवल जेके को साम्प्रदायिक लाइन पर विभाजित करेगा (जिसका भारत व पाकिस्तान की एकता के लिए अपने ही निहितार्थ होंगे) बल्कि भारत, पाकिस्तान और जेके को महाशक्तियों की चालबाजियों के चंगुल में भी फंसा देगा जिसके परिणाम स्पष्ट हैं।

V

भारत-पाक शिखर सम्मेलन को पांचवां निवेदन यह है कि वह भारत-पाक टकराहट के मूल कारण को समाप्त करने पर कृपया गंभीरता से विचार करे। और वह मूल कारण और कोई नहीं जेके समस्या है, जैसा कि भारत-पाक सम्बन्धों का 53 साला इतिहास के तथ्य दर्शाते हैं। परन्तु मुश्किल यह है कि दोनों देश जेके के बारे में बुनियादी तौर पर अलग-अलग बोध लिए हुए हैं। शिखर सम्मेलन स्वयं भी उनके जेके के बारे में अपने-अपने एजेण्डे में परिवर्तन की वजह से नहीं हो रहा है बल्कि उनके कूटनीतिक एवं आर्थिक मजबूरियों का नतीजा है।

फिर भी भारत, पाकिस्तान तथा जेके व साथ ही वैश्विक समुदाय के आम लोग शिखर सम्मेलन से कम से कम यह आशा करते हैं कि उसको (शिखर सम्मेलन को) कुछ ऐसे कदम उठाने चाहिए जिससे दोनों देशों के बीच जो अत्यधिक तनाव है उसमें कमी आये। शिखर सम्मेलन जेके समस्या के समाधान के लिए कुछ रीति-नीति निर्धारित करके लोगों की इस इच्छा की पूर्ति कर सकता है, जो निम्न हो सकती है : (क) सैनिक समाधान को नकारना, (ख) शांतिपूर्ण रास्ते को अपनाना, (ग) दोनों देश आपस में कोई युद्ध नहीं करेंगे ऐसे अनुबंध पर हस्ताक्षर करना, (घ) प्रत्येक देश की एकता और अखण्डता को कायम रखने की शपथ लेना, (ड़) अपनी-अपनी प्रिय पसन्द पर जोर न देना, यानि जेके भारत का अभिन्न अंग है या जेके पाकिस्तान की श्वांस नली है, आदि। (च) जेके में हिंसा के स्तर को कम करना तथा मानवाधिकारों के उल्लंघनों को रोकना, (छ) जम्मू-कश्मीर के सम्बन्ध में सभी साम्प्रदायिक समाधानों को रद्द करना, (ज) तीनों पक्षों

(भारत, पाकिस्तान तथा जेके के लोगों) के हितों में समन्वय बैठाते हुए जेके समस्या का समाधान करना, तथा (झ) भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों का साझा भविष्य देखना।

उपरोक्त वर्णित मार्गदर्शन का अनुसरण करते हुए निम्न तीन बिन्दुओं वाला जेके विवाद में शामिल तीनों पक्षों, यानि, भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों की आकांक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए एक वास्तविक, टिकाऊ एवं तर्कसंगत आधार प्रस्तुत करता है–

(A) जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा और विदेशी मामले की हद तक भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक ढाँचे के तहत जम्मू-कश्मीर की सम्प्रभुता को संयुक्त रूप से सौंप कर भारत-पाकिस्तान के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों एवं आकांक्षाओं को संतुलित किया जा सकता है।

(B) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देकर, जिसे सुरक्षा और विदेशी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में सम्प्रभु शक्तियां हासिल हो, जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(C) जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्लीय क्षेत्रीय समुदायों में प्रत्येक को अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर उनकी नस्लीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के राज्य स्तर के मामलों में निम्न को शामिल किया जा सकता है–राज्याध्यक्ष, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि।

तीन संबंधित पक्षकारों की नस्ली, क्षेत्रीय और वैश्विक इच्छाओं की संतुष्टि के अलावा उपरोक्त फार्मूला तीनों पक्षों तथा विश्व मानव समुदाय को आगे और नई विकास की संभावनाओं के द्वार खोलता है। यह फार्मूला उन्हें कई अन्य तरीकों से भी लाभ पहुंचाता है। यह फार्मूला विश्व समुदाय के भी माफिक है क्योंकि यह विश्व की सबसे खतरनाक ज्वलन्त समस्याओं में से एक समस्या को समाप्त करता है। यह फार्मूला दक्षिण एशिया समुदाय के हित में भी है क्योंकि यह इसके सामाजिक-आर्थिक विकास, साझा बाजार, संयुक्त सुरक्षा आदि मामले में उत्पन्न बाधाओं को दूर करता है।

आर्थिक विकास में समान रूप से साझीदार बनाकर जिसमें भारत व पाकिस्तान प्रत्येक वित्त की समान राशि उपलब्धकर, जबकि जम्मू-कश्मीर राज्य प्राकृतिक संसाधन के रूप में अपने हितों का योगदान देकर, यह फार्मूला भारत-पाकिस्तान व जम्मू-कश्मीर के लोगों की सेवा करता है। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर के लोगों को दोनों देशों की नागरिकता हासिल होने तथा उनसे व्यापार की सुविधा प्राप्त होने के कारण अतिरिक्त फायदा भी प्राप्त होता है।

कुल मिलाकर भारत-पाक सहराज्य विश्व निर्देशित विकास मॉडल का एक नया प्रयोग होगा जो यह दर्शायेगा कि कैसे विभिन्न राष्ट्रों के अलग-अलग राष्ट्रीय हितों में समन्वय बैठाया जा सकता है तथा विभिन्न नस्लों की भिन्न-भिन्न आकांक्षाओं और चिन्ताओं में संतुलन बैठाया जा सकता है। (5-7-2001)

***

जम्मू संभाग को एक शांति भंग क्षेत्र घोषित करना– जेके समस्या का समाधान नहीं है

जम्मू रेलवे स्टेशन पर मासूम नागरिकों की क्रूरतापूर्ण हत्या पर जेके समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चा अपने सदमे और दुख को अभिव्यक्त करता है। यह पीड़ित परिवारों को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि और गहन सहानुभूति प्रदान करता है एवं सरकार से मांग करता है कि उन्हें पर्याप्त सहायता प्रदान करे। मासूम लोगों की जान लेना एक अमानवीय बर्बर एवं घृणित कार्य है।

मोर्चा राज्य के लोगों से अपील करता है कि अपने पुराने चले आ रहे भाईचारे को हर कीमत पर बनाए रखे।

जैसा कि बाद की घटनाओं से स्पष्ट है कि यह डरावना कार्य तथा इससे पहले किस्तवाड़ तहसील में इसी प्रकार की दो विभत्स हत्याओं ने जम्मू संभाग व अन्य जगह पर एक बहुत जोरदार प्रतिक्रिया को उकसाया था। कुछ राजनीतिक शक्तियों ने राज्य सरकार को बर्खास्त कर गवर्नर शासन स्थापित करने की मांग की और कुछ ने तो केन्द्रीय गृह मंत्री तक का इस्तीफा मांग लिया; कई और लोगों ने खाड़कू प्रशिक्षण कैंपों को नष्ट करने के लिए प्रभावी और सख्त कदम उठाने की मांग की; तथा और अधिक कमाण्डो या एस पी जी की तैनाती की मांग भी की गई।

राज्य में ऐसे कदमों की पहले भी कोशिश एवं परीक्षण किया जा चुका है परन्तु उससे कभी लाभप्रद नतीजा नहीं निकला है।

फिर भी, केन्द्र और राज्य सरकारों ने सशस्त्र बलों (जम्मू व कश्मीर) को विशेष शक्ति अधिनियम 1990 के अनुसार सम्पूर्ण जम्मू संभाग को शांति भंग क्षेत्र घोषित करना उचित समझा। परन्तु जम्मू संभाग के दो जिलों (राजौरी एवं पुंछ) तथा घाटी के 6 जिलों में उक्त वर्णित अधिनियम के एक दशक से लागू रहने का अनुभव दर्शाता है कि उन क्षेत्रों में सामान्य स्थिति बहाल करने के बजाए यहाँ पहले से स्थिति और खराब हुई है तथा समस्या को और अधिक बदत्तर कर दिया है।

सम्पूर्ण भारतीय पैमाने पर, खास तौर पर उत्तरी-पूर्वी राज्यों में केन्द्रीय 'शांतिभंग क्षेत्रीय अधिनियम' को लागू करने का व्यवहार भी जेके के साक्ष्यों को ही सिद्ध करते हैं।

उपरोक्त वर्णित अधिनियम के असफल होने का कारण इस तथ्य में निहित है कि संघर्षरत क्षेत्रों के लिए यह उचित समाधान नहीं था।

दुनिया भर का अनुभव दर्शाता है कि राष्ट्र राज्यों के वैश्वीकरण या मानवीय अन्तरनिर्भरता के नये उभरे युग में विभिन्न देशों के मध्य या अन्तर नस्लीय संघर्षों के सम्बन्ध में सभी प्रकार की सैन्य निर्देशित नीतियां प्रभावहीन साबित हुई हैं। यह नया युग

समस्त मानव जाति के साझे भविष्य को इंगित करता है और इसीलिए सभी विवादों के हल का शांतिपूर्ण रास्ता सुझाता है।

उपरोक्त वर्णित वैश्विक परिदृश्य से शुरू करते हुए मोर्चा मानता है कि भारत, पाकिस्तान एवं जेके के लोगों के अपने-अपने हितों में सामंजस्य बैठाते हुए केवल एक वास्तविक और न्यायिक बातचीत का समाधान ही राज्य में टिकाऊ शांति स्थापित कर सकता है तथा हमारे लोगों को भारत, पाकिस्तान एवं अन्य सार्क सदस्यों के साथ साझेदारी में जम्मू-कश्मीर में एक टिकाऊ, लोकतांत्रिक, सम्पन्नता, समता, न्यायपूर्ण एवं पारदर्शी व्यवस्था निर्माण करने के योग्य बनाता है। (9-8-2001)

***

'ग्रेटर कश्मीर' श्रीनगर, द्वारा 3 मई, 2001 को प्रकाशित लेख

एक न्यायपूर्ण मिशन

जम्मू–कश्मीर समस्या का जन्म तथा उसके बाद घटी घटनाओं पर गुलाम नबी हंगरू

मेरे लिए यह स्वीकार करना इतना आसान नहीं था कि कोई जम्मू के डोगरा क्षेत्र के हृदय-स्थल पर जा सकता है और जम्मू एवं कश्मीर की अनसुलझी स्थिति पर बातचीत कर सकता है और भारत सरकार का यह दबाव डालने के लिए लोगों का समर्थन मांग सकता है कि इस समस्या को सुलझाया जाए तथा भारत सरकार यह स्वीकार करे कि जम्मू-कश्मीर के लोग उन तीन पक्षों में से एक हैं जिनके द्वारा इस समस्या को सुलझाया जाना है। अन्य दो पक्ष भारत और पाकिस्तान हैं। इस सम्बन्ध में जम्मू-कश्मीर के लोगों से अर्थ यह है कि युद्ध बंदी लाइन के भारतीय तरफ के जेके के लोग तथा लाइन के दूसरी तरफ (यानि, पाक प्रशासित कश्मीर) के लोग एवं गिलगित, अस्कार्ड, यासिन व निगार के लोग भी इसमें शामिल हैं। यद्यपि विजयपुर (साम्बा के पास), जिला जम्मू, रविवार 22 अप्रेल, 2001 की सार्वजनिक सभा प्रत्यक्षत: शानदार थी, इसलिए मेरे जैसे के लिए यह संभव हो सका कि जब मैंने सभा को संबोधित किया तो लोगों के समक्ष जेके समस्या के मुख्य-मुख्य पहलू रखे तथा इस समस्या के हल हेतु प्रभावी कदम उठाने के प्रयास करने के लिए जनता की राय संगठित करने की मदद एवं समर्थन का आह्वान किया। वहाँ और भी काफी वक्ता थे, परन्तु मुख्य वक्ता अनुभवी कम्युनिस्ट नेता श्री राम प्यारा सर्राफ थे जो अतीत में प्रसिद्धि के आयाम छू चुके थे।

मेरी सर्राफ और कृष्णदेव सेठी से जानकारी जम्मू केन्द्रीय कारागृह में सन् 1965 में हुई, जहाँ जुलाई सन् 1965 से 1966 की फरवरी के अन्त तक हिरासत में था। सेठी और सरार्फ उसी जेल में अलग-अलग जगह बन्द थे परन्तु उनसे मिला जा सकता था। इसलिए मैं उनके पास जाता रहता था और उनसे एक या दो किताबें ले आता था। उस सारे काल में उन्हें चीन समर्थित साम्यवादी कहा जाता था, इसके विपरीत मैं जनमतसंग्रह मोर्चे की तरफ से बन्द था। जेल में हर कोई चुप रहता था ताकि उन्हें ऐसी जेल में नहीं भेज दिया जाए जहाँ उनके परिवार के सदस्य उनसे आसानी से मिलने नहीं आ सके। ये दोनों आसपास की जगह से थे जिससे इनके परिवार के सदस्यों का मिलने आना आसान था जबकि मेरी स्थिति इनसे भिन्न थी। परन्तु किसी तरह से मैं इनसे प्राय: मिल लेता था।

जून 2000 में श्रीनगर में हुई एक मिटिंग में कृष्णदेव सेठी आये थे। उस मौके पर सेठी ने भाषण दिया और कहा कि 'यदि जेके समस्या तत्काल और प्रभावी ढंग से हल नहीं की जाती है तो इससे अनेक समस्याएं खड़ी हो जाएंगी। उनमें से मुख्य समस्या समाज के बहुत बड़े हिस्से का घुटन की ओर जाने में होगा, साथ ही इसका दमनकारी वर्ग की सामान्य वृद्धि पर भी असर पड़ेगा और दबे-कुचले लोगों की नई पीढ़ी के विद्रोही बनने की

संभावना बढ़ेगी।' सेठी के भाषण को विस्तृत प्रचार मिला। सर्राफ उस सम्मेलन में नहीं आये थे।

सोमवार, 16 अप्रेल, 2001 को शाम की प्रार्थना के तुरन्त बाद गुलाम नबी फरीदी (राजेन्द्र बाजार, जम्मू के मस्जिद इब्राहीम के इमाम) ने मुझे जेके समस्या पर त्रिपक्षीय मोर्चे की एक मीटिंग में जाने के लिए कहा। मैं उस मिटिंग में गया तथा विचार-विमर्श में भाग लिया। उस मिटिंग में मैं सर्राफ एवं मोर्चे के अन्य सदस्यों से मिला। मोर्चा बड़े पैमाने पर लोगों के बीच जाए इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। प्रस्तुत लेख पर बातचीत हुई और मैंने उसमें कुछ परिवर्तन करने के सुझाव दिये। मेरे लिए यह आश्चर्यजनक था कि सर्राफ ने जेके में दिलचस्पी विकसित की है तथा इस सम्बन्ध में लोगों की राय बनाने की कोशिश कर रहे हैं। यह बताया गया कि मोर्चे ने पहले से भिन्न-भिन्न जगहों पर कुछ सार्वजनिक सभाएं की हैं तथा इस मुद्दे पर आम आदमी काफी दिलचस्पी ले रहे हैं। मैं अचंभित हुआ और संभवत: सर्राफ ने मेरे दिमाग को पढ़ लिया और कहा कि 'आने वाले रविवार को विजयपुर में हम एक सार्वजनिक सभा आयोजित कर रहें, आप हमारे साथ आयें और स्वयं देखें कि जो कुछ हम आज की मीटिंग में विचार-विमर्श कर रहे हैं क्या हम वह सब आम जनता में कह रहे हैं या नहीं।' इस पर विश्वास करना बहुत मुश्किल था परन्तु जो कुछ मैंने मिटिंग में देखा था उसकी नजर में साथ ही साथ विश्वास न करने का भी कोई कारण नहीं था।

जम्मू संभाग में मुस्लिम क्षेत्र के बाहर जेके का जनमतसंग्रह मोर्चा कहीं पर भी प्रवेश नहीं कर पाया था, ऐसी ही स्थिति लेह क्षेत्र की थी। परन्तु जनमतसंग्रह मोर्चे के औपचारिक तौर पर समाप्त होने के पन्द्रह साल बाद श्री राम प्यारा सर्राफ ने उस धारा को पकड़ा और खुले तौर पर जेके समस्या की पैरवी कर रहे हैं। स्वर्गीय शेख मोहम्मद अब्दुल्ला और स्वर्गीय मिर्जा मोहम्मद अफजल बेग के लिए जो सम्भव नहीं हो सका वह सर्राफ के लिए सम्भव हो गया। इस संभावना के क्या कारण हो सकते हैं? संभवतया एक कारण यह है कि कश्मीर के लोग डोगरा राज से घृणा करते थे, यद्यपि सभी डोगरा राज करने वाले नहीं थे। शेख जिस आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे उसके सकारात्मक पहलुओं के बनिस्पत घृणा के अभियान पर ज्यादा भरोसा करते थे। जम्मू संभाग और लद्दाख के मुसलमान शेख की कांग्रेस समर्थित राजनीति के पक्ष में नहीं थे जो समय के साथ भारत के पक्ष की राजनीति में बदल गई। 27 अक्टूबर, 1947 के बाद जम्मू संभाग के मुसलमानों को पूरी तरह से नुकसान उठाना पड़ा तथा वे ईमानदारी से यह भरोसा करते थे कि कश्मीरी मुस्लिम नेतृत्व ने उनकी दुख-पीड़ा को कम करने की कोई कोशिश नहीं की। जम्मू संभाग के साम्प्रदायिक तत्वों ने तबाही मचा दी तथा संभाग में हजारों-हजारों मुसलमान निर्दयता से कत्ल कर दिये गए। कानून और व्यवस्था के स्थापित होने के बाद भी साम्प्रदायिक दंगों के पीड़ितों के साथ निष्पक्ष और थोड़ा भी उदार व्यवहार नहीं हुआ। जम्मू संभाग के अन्यथा विपरीत वातावरण में उन्हें (मुस्लम समुदाय) शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया। कुल मिलाकर जम्मू क्षेत्र के लोगों ने यह महसूस किया कि कश्मीर के मुसलमानों ने उन्हें वंचित किया है और भ्रष्ट बनाया है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय मजबूरियों के तहत नई दिल्ली ने कश्मीर के मुस्लिम शासक गुटों के प्रभुत्व को प्रोत्साहित किया। आबादी के अनुपात के अनुसार विधान सभा में जम्मू क्षेत्र को कुछ अधिक सीटें मिलनी चाहिए थी परन्तु राजनीतिक अपेक्षाओं की वजह से जम्मू वालों को उनके इस

अधिकार से भी वंचित किया गया। यही स्थिति नौकरी प्राप्त करने में रही। नई दिल्ली के इस खेल को जम्मू वाले न तो समझ सके और ना ही समझने दिया गया। इसलिए वे आर एस एस (राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ) की तरफ आकर्षित होने लगे तथा उनके द्वारा मांग (अधिक सीटें मिलने की) उठाई गई जो स्पष्टतया उचित थी। इन मांगों को उठाने के प्रति लोग आकर्षित होने लगे जो कि देखने में मुसलमानों और कश्मीरी नेताओं के विरुद्ध नजर आती थी। वास्तव में ऐसी मांगें नई दिल्ली के विरुद्ध उठाई जानी चाहिए थी जो उनके अपने कारणों से जेके में लोकतंत्र को फलने-फूलने की इजाजत नहीं दे रहे थे।

'अगस्त 1953 के बाद जब कश्मीर के लोकप्रिय हीरो शेख अब्दुल्ला को हटाने एवं हिरासत में लेने के तरीके पर गुस्से से सारा कश्मीर उबल रहा था, तब मैं नेहरू से मिला और एक लिखित टिप्पणी के जरिये तर्क प्रस्तुत किया कि तमाम राज्य के स्तर पर भारत पक्षीय लोकतांत्रिक विपक्ष का गठन लोगों की नाराजगी को स्वस्थ तरीके से बाहर निकलने का मौका प्रदान करेगा, अन्यथा उनकी नाराजगी हिंसात्मक और साम्प्रदायिक तरीके से निकलने को विवश होगी। एक भारत पक्षीय दल भारत विरोधी भावना को निकलने का उचित रास्ता मिलने से उन्हें भारत विरोधी होने से रोकेगा तथा यह दल कश्मीर को शेष भारत के नजदीक लाने में शासक पार्टी से ज्यादा बड़ा योगदान देगा। नेहरू ने मुझे चेतावनी दी कि ज्यादा आदर्शवादी मत बनो और आग्रह किया कि राष्ट्रीय हित लोकतंत्र की बनिस्पत अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने यह स्वीकार किया कि बक्सी ने बेईमानी के तरीके काम में लिए हैं, परन्तु यह दलील दी कि अब कश्मीर पर भारत की नीति उसके (बक्सी के) चारों ओर घूमती है और इन सारी कमियों के बावजूद बक्सी सरकार को मजबूत किया जाना चाहिए। उन्होंने (नेहरूजी ने) आगे कहा, 'हमने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कश्मीर पर जुआ खेला है इसको खो देना हम सहन नहीं कर सकते। इस समय हम वहां संगीन की नोक पर खड़े हैं, जब तक स्थिति सुधरती है तब तक लोकतंत्र एवं नैतिकता इंतजार कर सकते हैं।' (कश्मीर विद्रोह की तरफ, बलराजपुरी, ओरिएन्ट लोंगमैन, संस्करण 95, पेज-47)

इस लेखक द्वारा बलराजपुरी को सामन्य तौर पर उद्धृत किया गया है अन्यथा तो यह उस काल का एक गवाह है और वह निश्चित तौर पर कह सकता है कि जेके के विलय के सम्बन्ध में नई दिल्ली द्वारा अपनाई गई गलत नीतियों से अन्तरनिहित विवशता पैदा हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह (नई दिल्ली) जेके का मुस्लिम सह लोकतांत्रिक पहलू दिखाने में लगे हैं। इस नीति ने जम्मू और लद्दाख क्षेत्र की कुछ उचित मांगों को इसे न मानने के लिए मजबूर किया है। इन क्षेत्रों में साम्प्रदायिक तत्वों की प्रवृत्ति कुशासन और वंचितपन के लिए कश्मीर के मुसलमानों को आरोपित करते रहे (कश्मीरी शासक गुटों को नहीं)। कश्मीर या जम्मू और लद्दाख में भी कोई भी वंचित लोगों को यह बताने में दिलचस्पी नहीं रखता कि जेके के सम्बन्ध में यह नई दिल्ली की विदेश नीति रही जिसके परिणामस्वरूप आम लोग वंचितपन के शिकार हुए।

जनमतसंग्रह के मोर्चे में नीति निर्धारक इन बिन्दुओं पर लोगों को शिक्षित करने की क्षमता नहीं रखते थे। और दूसरा इनके पास वक्ताओं का ऐसा ग्रुप था जो लोगों की भावनाओं को उभारने में ज्यादा दिलचस्पी रखता था और विवेक एवं तर्क के प्रति उचित ध्यान नहीं देते थे। जेके के जनमतसंग्रह मोर्चे के नेतृत्व की इस गलत प्रवृत्ति के कारण 1975 में संगठन विभाजित नहीं हुआ (अन्यथा ऐसा होना चाहिए था) बल्कि ताश के पत्ते

की तरह ढह गया। जनमतसंग्रह के मोर्चे का यह पहलू बेजोड़ है कि 1975 में यह पूर्ण तौर पर ध्वस्त हो गया। ...जेके जनमतसंग्रह मोर्चे की कैमेस्ट्री गलत थी और इसीलिए इसके नेताओं और कार्यकर्ताओं ने उसी तरह अपनी ड्रेसें और मेक अप बदल लिये जैसे फिल्म के नायक किसी नई फिल्म में अपने पार्ट के लिए बदल लेते हैं। मैं पूरी रात यह विश्वास करने की कोशिश कर रहा था (अभी तक विश्वास हो नहीं रहा था) कि सर्राफ और उसके साथी वास्तव में डोगरा क्षेत्र के हृदय स्थल में पहुंच कर खुले रूप में लोगों के सामने कहेंगे कि जम्मू एवं कश्मीर विवाद का अन्तिम हल अभी तक नहीं हुआ है। मेरे लिए यह आसान नहीं था क्योंकि मैं जानता था कि जेके जनमतसंग्रह मोर्चा कभी भी जम्मू तवी (शहर) या इसके बाहरी इलाके में कभी सार्वजनिक मिटिंग नहीं कर पाया था। हालांकि, जेल से रिहा होने के बाद शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की अगवानी एवं स्वागत किया गया। ऐसे वक्त पर वह (शेख साहब) अपना जाना पहचाना फार्मूला लगाते थे, यानि जब वे दिल्ली में होते तो गांधीवादी होते, जम्मू में धर्मनिरपेक्ष और कश्मीर में साम्प्रदायिक। इसलिए जम्मू और डोगरा क्षेत्र के अन्य हिस्से किसी ऐसे वक्ता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे जो खुले तौर पर कहे कि कश्मीर विलय का सवाल जो आम तौर पर 1947 में हल हो गया माना गया है परन्तु बहुत से कारणों के चलते यह अन्तिम तौर पर हल नहीं हुआ है और वास्तविक हल से निरन्तर पलायन किया जाता रहा है। यह एक बड़ी चीज है कि डोगरा लोगों के बीच इसके हल के लिए उनका समर्थन मांगने के लिए जाना।

अगली सुबह (मंगलवार, 17.04.2001) कल रात्रि मिटिंग के सेक्रेटरी हाजी अब्दुल मजीद का मेरे पास टेलीफोन आया कि शाम को 7 बजे मेरे होटल में सर्राफ और उनके कुछ साथी मिलने आ रहे हैं। और शाम को मिस्टर सर्राफ, हाजी अब्दुल मजीद, शब्बीर अहमद सलारिया और एडवोकेट कुरैशी मेरे कमरे पर आये। सर्राफ ने जम्मू-कश्मीर विवाद के हल के लिए त्रिपक्षीय मोर्चे के उद्देश्यों और लक्ष्यों की व्याख्या की। सर्राफ ने अनौपचारिक तौर पर मोर्चे में शामिल होने का निमंत्रण दिया। फिर भी, उन्होंने कहा कि इस सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए आप कुछ समय ले सकते हैं। परन्तु उन्होंने उसी समय लगातार आग्रह किया कि मुझे विजयपुर में होने वाली मोर्चे की रविवार, 22.04.2001, मिटिंग में भाग अवश्य लेना चाहिए। मैंने उस मिटिंग में भाग लेने का वादा किया।

बुधवार, 18.04.2001 को मैं होटल से त्रिकुटानगर में मिस्टर अब्दुल मजीद गांगू के निवास पर चला गया। हाजी मजीद और सलारिया रविवार को मुझे और मिस्टर गांगू को विजयपुर ले गये। वहाँ पर एक हॉल में पब्लिक मिटिंग बुलाई गई थी जिसमें लाउडस्पीकर लगा हुआ था। मैं यह देखकर अचंभित था कि मिटिंग स्थल के पास पुलिस या अन्य सुरक्षा बल नजर नहीं आ रहे थे। बहुत से लोगों ने भाषण दिये। मिस्टर सर्राफ ने स्थानीय भाषा में मुख्य सार की व्याख्या की। उसके भाषण में कई बार तालियों बजाई गईं। कुछ कवियों ने भी अपनी रचनाएं पढ़ी। मुझे भी सभा को संबोधित करने का कहा गया। मैंने जम्मू-कश्मीर समस्या के जन्म और इसके संक्षिप्त इतिहास की व्याख्या की। मैंने लोगों को बताया कि इस जेके विवाद की प्रवृत्ति ऐसी रही है जिससे भारत द्वारा जम्मू-कश्मीर में भ्रान्त जनवादी व्यवहार अपनाया गया।

भारत ने जम्मू-कश्मीर समस्या के साथ जीने का चुनाव किया और भारत के ऐसे निर्णय की मजबूरी थी कि वह (भारत) अपना चेहरा जनवादी दिखाने के लिए जम्मू व लद्दाख दोनों क्षेत्रों के लोगों में कश्मीरी प्रभुत्व के गलत विचार को प्रचारित करें। मैंने

लोगों से कहा कि शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने 1945-46 में डोगरा राज की गलत व्याख्या की, जबकि जम्मू और कश्मीर पर एक खास डोगरा परिवार ने ही राज किया। इसी तरह की गलत व्याख्या कश्मीरी प्रभुत्व की रही, जबकि कहा जाना चाहिए था कि शेख परिवार के शेखवाद का जेके में प्रभुत्व रहा। जेके में सच्चा लोकतांत्रिक व्यवहार किसी भी शक्ति या शक्तियों द्वारा व्यवहार में नहीं अपनाया जा सकता, जब तक कि जम्मू-कश्मीर समस्या का निर्णायक हल नहीं निकाल लिया जाता। मैंने लोगों को कहा कि हमें झूठी बातों में विश्वास नहीं करना चाहिए जबकि जीवन की सख्त वास्तविकताएं हमें बिना किसी गलती के कुछ दूसरे ही निर्णयों पर पहुंचा देती हैं। एक ऐसा ही झूठ है कि भारत जम्मू-कश्मीर विवाद में किसी विदेशी शक्ति की मध्यस्थता को सहन नहीं करेगा। जब पुराना यू एस एस आर (सोवियत संघ) शक्तिशाली और पैने दांतों वाला था तो उसने भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के तानाशाह को ताशकन्द में 1965 के युद्ध से उत्पन्न समस्याओं को हल करने के लिए बुलाया। रूसी मास्टर को नाराज करने का साहस किसी ने नहीं किया और ताशकन्द समझौता हुआ जिसे भारत में एकमत होकर स्वीकार किया गया जबकि इस समझौते के होते ही भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का देहान्त हो गया। अगर विश्व एकध्रुवीय नहीं बना होता तो रूस पिछले 11 वर्षों में अमेरिका से पहलकदमी छिनने के लिए जेके में पुन: जन समर्थक भूमिका अदा करता। अगर भारत वास्तव में जेके को एक आन्तरिक समस्या समझता है तो यूरोपीय और पश्चिमी दूतों को श्रीनगर जाने एवं तथाकथित अलगाववादी नेताओं के साथ मिटिंग करने की अनुमति को नम्रता से मनाही क्यों नहीं करता है। इन दूतों का मिलना ऐसे लोगों के लिए असीम महत्व रखता है जो ठीक-ठीक दिखाते हैं कि भारत इन दूतों को अनुमति देता है ताकि वे अलगाववादी नेताओं को ऐसे हल के लिए प्रोत्साहित और सूचित कर सकें जो हल भारत को स्वीकृत हो।

सन् 1846 से जम्मू-कश्मीर के लोग अच्छे पड़ौसी की तरह रहे हैं। आर पी सर्राफ के मोर्चे की राय है कि जेके समस्या के हल के लिए त्रिपक्षीय बातचीज की जाए। मोर्चा यह राय भी देता है कि 15 अगस्त, 1947 तक जेके के सम्बन्ध में भारत की ब्रिटिश सरकार जो सम्प्रभुता रखती थी और उसके बाद वह समाप्त हुई, वही सम्प्रभुता भारत और पाकिस्तान को संयुक्त रूप से निभानी चाहिए और जो सम्प्रभुता 15 अगस्त, 1947 तक महाराजा हरिसिंह को थी वह सम्प्रभुता जम्मू-कश्मीर के लोगों को मिलनी चाहिए। जम्मू-कश्मीर के लोगों को अच्छे पड़ौसी वाले रिश्ते जो सन् 1846 से वे निभाते आ रहे हैं वही परम्परा भविष्य में कायम रखें।

यह मिटिंग अत्यधिक खुश भरे वातावरण में सम्पन्न हुई। मोर्चे के एक स्थानीय कार्यकर्ता ने पचास लोगों को अपने घर चाय के लिए निमंत्रित किया। उस कार्यकर्ता का घर मुख्य बाजार में था जो मिटिंग स्थान के निकट ही था। मिटिंग में सज-धज कर आये विशिष्ट लोगों के साथ-साथ मुस्लिम और कुछ महिलाएं भी थीं। यह मेरे लिए आश्चर्य ही था कि मैंने पुलिस की गैर हाजिरी स्पष्ट रूप से देखी जहाँ एक पब्लिक मिटिंग आयोजित हुई थी।

***

जेके डेमोक्रेटिक फ्रीडम पार्टी द्वारा 10 जून 2001 को आयोजित सेमीनार में विचार-विमर्श किये जाने वाले कार्यक्रम पर जेके समस्या पर त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चे द्वारा एक टिप्पणी

I

1. जेके समस्या पर त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चे (जिसे आगे मोर्चा कहा जायेगा) की राय है कि उपरोक्त सेमीनार के बारे में जेके डी एफ पी का आमंत्रण पत्र एक विकृत कार्यक्रम पेश करता है जो जेके समस्या को उलट-पलट कर देता है। यह कार्यक्रम समस्या के तीन आयामों में से केवल एक आयाम पर जोर देता है और बाकी दो को पीछे धकेल देता है।

2. मोर्चे का मानना है कि जेके समस्या के तीन अन्तरसम्बन्धित आयाम हैं। पहला, जेके राज्य का भविष्य क्या हो, इसका फैसला तीन सम्बन्धित पक्षों को करना है। दूसरा, जेके के लोगों की प्रमुख आकांक्षाओं के साथ किस हद तक सामंजस्य बैठाया जाए और तीसरा, राज्य के 8 या 9 नस्ली समुदायों की इच्छाओं और हितों को कैसे समायोजित किया जाए। जेके डी एफ पी का आमंत्रण पत्र केवल तीसरे आयाम को ही प्रस्तुत करता है, शेष दो आयामों का तो जिक्र तक नहीं करता, विशेष तौर पर पहला आयाम जो जेके समस्या पर एक नजरिया प्रदान करता है। यह पत्र भटकावपूर्ण दृष्टिकोण को दर्शाता है।

3. मोर्चे का यह विश्वास है कि केवल नस्लीय-सांस्कृतिक-क्षेत्रीय पहलू पर (जबकि जेके के लोगों की प्रमुख आकांक्षाओं तथा जेके के सवाल पर अनदेखी करते हुए) केन्द्रित इस भटकावपूर्ण नजरिये से भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों तथा राज्य के भविष्य पर गंभीर असर पड़ेगा।

4. प्रथम, राज्य की भविष्य की दिशा एवं राज्य के दर्जे के सोच से वंचित यह नजरिया अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न नस्लीय इच्छाओं और हितों को कायम रखने में मदद देगा, इस प्रकार उनके बीच साझे जुड़ाव को शिथिल करने की ओर ले जायेगा तथा नतीजतन जेके स्टेट की पहले से दुर्बल एकता को और कमजोर करेगा।

5. द्वितीय, यह नजरिया हमारे सामाजिक ताने-बाने में चले आ रहे पारम्परिक, साम्प्रदायिक सोच को और मजबूत करने में मदद देगा, इस प्रकार हमारे सामाजिक वातावरण पर पहले से चले आ रहे खतरे को और गति प्रदान करेगा।

6. तृतीय, साम्प्रदायिक सोच को और मजबूत करना तथा जेके के लोगों के बीच दोस्ती के बन्धन को कमजोर करना, संघ परिवार का साम्प्रदायिकता आधारित त्रिविभाजन कार्यक्रम–जेके को तीन क्षेत्रों, यानि, जम्मू, कश्मीर तथा लद्दाख में बांटने–को व्यवहार में

लागू करने के लिए सहूलियत प्रदान करेगा। साम्प्रदायिकता निर्देशित त्रिविभाजनकारी योजना अपने आप में अमेरिका द्वारा प्रायोजित अध्ययन ग्रुप की ग्रेटर कश्मीर की योजना के लिए रास्ता साफ करेगा, जिससे भारतीय सम्प्रभुसत्ता के तहत कश्मीर घाटी तथा उसके साथ डोडा, राजौरी और पुंछ जिलों का एक अर्द्ध-स्वतंत्र राज्य स्थापित होगा तथा आजाद कश्मीर पाकिस्तान के साथ रहेगा एवं जम्मू व लद्दाख क्षेत्र भारत का हिस्सा रहेगा–यह जेके समस्या का एक स्पष्ट साम्प्रदायिक हल है।

7. चतुर्थ, इतिहास में पीछे मुड़ कर देखा जाए तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जेके समस्या के पीछे का कारण स्वयं साम्प्रदायिक-संकीर्ण नजरिये में सन्निहित है। इसका दीर्घकालीन कारण 1947 के विभाजन में निहित है (जो स्वयं दो भ्रान्त राष्ट्रवाद की उपज है–कांग्रेस के नेतृत्व वाला बहुसंख्यक राष्ट्रवाद तथा मुस्लिम लीग द्वारा प्रायोजित मुस्लिम रूढ़िवाद), जबकि इसका तात्कालिक कारण नई दिल्ली की आम तौर पर जेके के मामले में और विशेष तौर पर कश्मीर के मामले में भेदभरी नीति (मानव अधिकारों तथा लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में) में निहित है।

II

8. मोर्चा समझता है कि जेके समस्या तीन पक्षों–यानि भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों–के बीच एक अनसुलझा मुद्दा है। मोर्चा देखता है कि इसके हल का एकमात्र तरीका शांतिपूर्ण रास्ता है। सभी प्रकार के सैनिक विकल्पों को यह रद्द करता है; सम्बन्धित तीन पक्षों के बीच बातचीत के जरिये समझौता करने का पक्ष लेता है; सभी एकपक्षीय एवं द्विपक्षीय समझौतों को यह टकराहटवादी एवं अप्रासंगिक मानता है। यह सभी राष्ट्रों–जिसमें भारत, पाकिस्तान एवं जेके के लोग (राज्य में सभी नस्ली इकाइयों से गठित) शामिल है–के एक साझा भविष्य के परिप्रेक्ष्य (या उद्देश्य) को स्वीकार करता है।

III

9. उपरोक्त समझ और परिप्रेक्ष्य के अनुसार मोर्चा एक स्पष्ट राय रखता है कि जेके समस्या को हल करने के लिए सबसे अधिक वास्तविक तरीका सम्बन्धित तीन पक्षों की अपनी-अपनी आकांक्षाओं एवं हितों में समन्वय बैठाने में है। जेके समस्या का सबसे उचित उत्तर त्रिपक्षीय समाधान में है तथा जेके, पाकिस्तान एवं भारत का अन्तर्राष्ट्रीय वांछित भविष्य मिलजुल कर विकास करने में है।

हमारे दृष्टिकोण में, जेके विवाद में शामिल तीनों पक्ष, यानि भारत, पाकिस्तान तथा जेके की जनता की आकांक्षाओं को एक वास्तविक, टिकाऊ, निष्पक्ष तथा तर्कसंगत आधार पर निम्न तीन फार्मूलों के अनुसार संतुष्ट किया जा सकता है।

(क) जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा और विदेशी मामले की हद तक भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक ढाँचे के तहत जम्मू-मश्कीर की सम्प्रभुता को संयुक्त रूप से सौंपकर भारत-पाकिस्तान की अपनी-अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं और हितों को संतुलित किया जा सकता है।

(ख) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देकर, जिसे सुरक्षा और विदेशी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में सम्प्रभु शक्तियां हासिल हो, जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को

पूरा किया जा सकता है।

(ग) जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्लीय-क्षेत्रीय समुदायों में प्रत्येक को अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर उनकी नस्लीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(घ) सम्बन्धित तीनों पक्षों की आकांक्षाओं की संतुष्टि के अलावा इन तीनों पक्षों के साथ-साथ विश्व समुदाय को और कई तरीकों से आगे और उपलब्धियां प्रदान करता है।

सबसे खतरनाक वैश्विक ज्वलंत समस्या का समाधान होना विश्व समुदाय के अनुकूल है।

इससे दक्षिण एशिया समुदाय को फायदा पहुंचेगा क्योंकि इसके मुक्त व्यापार बाजार के विकास की बाधाएं हट जाएंगी।

और आगे यह भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर के लोगों को आर्थिक विकास में समान भागीदार बनाकर लाभ पहुंचाता है, इस साझेदारी में भारत और पाकिस्तान प्रत्येक समान वित्तीय राशि प्रदान करके तथा जम्मू-कश्मीर राज्य प्राकृतिक संसाधनों का अंशदान देकर हिस्सेदार बनते हैं। जम्मू-कश्मीर के लोगों को दोनों देशों की नागरिकता एवं दोनों के साथ व्यापार करने की सुविधा मिलने से अतिरिक्त लाभ भी मिलता है।

संक्षेप में, भारत-पाक सहराज्य एक सामाजिक मॉडल को अभिव्यक्त करता है, जो भारत-पाकिस्तान और जेके लोगों के साझे भविष्य को सुनिश्चित करता है भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के अपने-अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान की सुरक्षा करता है, उनके राष्ट्रीय हितों को संतुलित करता है, जेके लोगों के मामलों में सामंजस्य बैठाता है, जेके की नश्लीय-क्षेत्रीय पहचानों की आकांक्षाओं और हितों को पूरा करता है, भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों को नजदीक लाता है, सार्क देशों की एकता में ताकत बढ़ाता है, विश्व के देशों में शांति और स्थिरता में मजबूती लाता है। यह एक नया प्रयोग होगा जो दिखायेगा कि कैसे विभिन्न देशों के राष्ट्रीय हितों को समाहित किया जाता है, तथा विभिन्न नश्लों की आकांक्षाओं और हितों को कैसे संतुलित किया जाता है। 10-06-2001

***

त्रिपक्षीय वार्तालाप–जेके समस्या के समाधान का वास्तविक रास्ता

त्रिपक्षीय हल–जेके समस्या का सबसे अधिक उचित समाधान

साझा विकास–जेके, पाक एवं भारत का एकमात्र भविष्य

I. जेके समस्या

1. मुश्किल से कोई इस तथ्य पर एतराज करेगा कि आज दुनिया को जिन सवालों का सामना है उनमें से सबसे जटिल समस्याओं में से एक जेके समस्या है। यह इसकी तीन आयामी प्रकृति से स्पष्ट है। प्रथम, यही वह समस्या है जिसने राज्य में पूरी अव्यवस्था तथा अस्थिरता पैदा की है। यह वह समस्या है जो आज (दशकों से) भारत व पाकिस्तान के अपने-अपने टकराहटवादी कार्यक्रम लगाये हुए हैं, इस प्रकार इसने न केवल इन दोनों देशों में बल्कि पूरे दक्षिण एशिया क्षेत्र (जहाँ 130 करोड़ लोगों का भाग्य शामिल है) में स्थिरता का गला घोंट रखा है। परमाणु आयाम हासिल करने के बाद की स्थिति में यह वह सवाल है जो अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सामने एक अत्यधिक जटिल एवं असाध्य ज्वलंत बिन्दु बन गया है, इस प्रकार विश्व शांति और सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ (186 राष्ट्रों से गठित) सहित सम्पूर्ण दुनिया जेके समस्या को एक खतरनाक चुनौती के रूप में स्वीकार करती है।

2. जेके समस्या की इस खतरनाक स्थिति में यह आवश्यक है कि इसकी क्रमिक विकास की प्रक्रिया के तीन चरणों–यानि, अतीत, वर्तमान एवं भविष्य–पर ध्यान दिया जाए ताकि इसकी वास्तविक प्रकृति का मूल्यांकन किया जाए तथा उसके बाद इसके वास्तविक हल की तरफ बढ़ा जाए।

II. जेके समस्या के ऐतिहासिक सबक क्या हैं

53 वर्ष लम्बी जेके समस्या हमें निम्न मुख्य सबक प्रदान करती है।

प्रथमतया, उपनिवेशी भारत का 1947 का दो नये राज्यों–यानि भारत और पाकिस्तान में बंटवारे की उपज जेके समस्या है। यह विभाजन स्वयं दो साम्प्रदायिक निर्देशित राष्ट्रीय सिद्धान्तों–यानि, कांग्रेस के नेतृत्व वाला बहुसंख्यक राष्ट्रवाद (या अन्य शब्दों में उदार हिन्दू राष्ट्रवाद) तथा मुस्लिम लीग निर्देशित पान इस्लामवादी राष्ट्रवाद के बीच टकराहट का नतीजा था।

द्वितीय, हमारे समय में साम्प्रदायिक-टकरावादी नजरिया (मध्य युग की एक उपज) पूरे तौर पर अप्रासंगिक हो गया है। इसने सर्वप्रथम अपनी कठोरता को राष्ट्रवाद के युग में खोया तथा उसके बाद नये उभरे वैश्वीकरण के युग में यह पूर्णतया अलाभकारी हो

गया है। इस तथ्य की पुष्टि भारत-पाक के अपने-अपने दोनों राष्ट्रवाद के व्यवहार से होती है जिससे दुनिया के ये दोनों देश सबसे अधिक हिंसाग्रस्त, पिछड़े और अस्थिर क्षेत्रों में से हैं।

तृतीय, भारत-पाक टकराहट की 53 साल पुरानी राजनीति ने सम्बन्धित सभी, यानि, जेके, पाकिस्तान और भारत के लोगों के लिए अत्यधिक नुकसानदायक परिणाम दिये हैं। यह रिकार्ड इतना पीड़ादायक है कि दोनों देशों में इसके राजनीतिक प्रबंधक किसी भी पैमाने से इसे उचित नहीं ठहरा सकते। भारत और पाकिस्तान दोनों दुनिया के अत्यधिक गरीब देशों में से हैं। इनकी अपनी-अपनी राजनीति का अपराधीकरण तथा उनका समाप्त न होने वाले घोटालों में लिप्त होना दर्शाता है कि इन दोनों देशों में जो सत्तासीन हैं वे सत्ता हड़पने व पैसा बनाने के द्विपक्षीय होड़ में फंसे हुए हैं।

चतुर्थ, जेके समस्या, इस पर आंख मूंद लेने से अपने आप समाप्त नहीं हो सकती। समय के गुजरने ने इसे लुप्त नहीं किया है। इसने केवल मुद्दे को और जटिल ही बनाया है। भारतीय संविधान का कथन कि जेके भारतीय संघ का एक अभिन्न अंग है तथा भारतीय संसद का 1994 का सर्वसम्मत प्रस्ताव कि जेके भारत का एक अटूट हिस्सा है व था तथा पाकिस्तान केवल एक आक्रमणकारी है जिसने जोर जबरदस्ती से भारत के जेके के कुछ हिस्सों को हथिया लिया है तथा पाकिस्तानी राष्ट्रीय मान्यता कि जेके 1947 के विभाजन का अनसुलझा मुद्दा है–इन सब धारणाओं ने जेके समस्या के वास्तविक समाधान को और मुश्किल बना दिया है।

पंचम, यह भारत व पाकिस्तान दोनों के लिए एक अनिवार्य शर्त हो गया है। भारत के लिए इसकी धर्म निरपेक्षता की वैधानिकता को साबित करने के लिए यह एक प्रतीक है जबकि पाकिस्तान के लिए इसके द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त की सत्यता को प्रदर्शित करने का यह एक जरिया है।

षष्टम, भारत व पाकिस्तान दोनों इस समस्या से निपटने के लिए वास्तकिवता से दूर है। अपनी अपनी 1947 की मानसिकता के साथ दोनों इस समस्या का हल अपनी-अपनी शर्तों के मुताबिक हल प्राप्त करना चाहते हैं। प्रत्येक एक दूसरे को समर्पण करने की शर्त के अलावा और कुछ प्रस्तावित नहीं करते। पाकिस्तान आत्म-निर्णय या जनमतसंग्रह पर जोर देता है जबकि वह यह जानता है कि भारत ऐसे किसी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता जो जेके को भारत से अलग करता हो। भारत ताकत आधारित यथा स्थिति का प्रस्ताव पेश करता है, यह पाकिस्तान को मंजूर नहीं है, जिसने पहले से ही जेके राज्य का एक तिहाई हिस्सा हथिया रखा है।

III. जेके समस्या पर वर्तमान दौर में मामले की स्थिति क्या है

जेके समस्या पर चल रहे हालात के सारांश निम्न हैं–

(क) जेके स्तर पर

जमीनी वास्तविकता यह है कि एक तरफ कश्मीरी खाड़कुओं (पाकिस्तान आधारित जेहादी ग्रुपों द्वारा समर्थित) तथा दूसरी ओर भारतीय राज्य की फौजी कार्यवाही के बीच

घातक संघर्ष की प्रभुत्वकारी स्थिति बनी हुई है। लोगों की दुख-तकलीफों तथा दयनीय स्थिति की–विशेष तौर पर कश्मीर घाटी में–कोई सीमा नहीं है। अधिकांश आम लोगों की स्थिति और भी खराब चल रही है। औसत दर पर, इस या उस पक्ष द्वारा अति क्रूरता से करीब 10 मानव जिन्दगियां (दोनों पक्षों को हुए नुकसान को गिनने पर) प्रतिदिन समाप्त कर दी जाती है। हिरासत में हत्याएं, महिलाओं से बलात्कार, पूछताछ केन्द्रों में ज्यादतियां, आम लोगों से गाली-गलौच व मारपीट, नागरिकों के घर व अन्य इमारतों को जलाना, सामूहिक जन तलाशी तथा घेराबंदी, इत्यादि रोजमर्रा का मामला हो गया है। खाड़कू समर्थित स्रोतों के अनुसार कहा जाता है कि करीब 70,000 लोग (अधिकांश कश्मीरी) इस विध्वंस में मारे जा चुके हैं। सरकारी आंकड़े करीब 30,000 मानव जीवन के नुकसान को दर्शाते हैं। नई दिल्ली द्वारा एकपक्षीय युद्ध बंदी के बावजूद आज दुनिया में जेके सबसे अधिक हिंसाग्रस्त क्षेत्र है।

राजनीतिक परिदृश्य सब तरफ भ्रम का है। सर्वदलीय हुर्रियत कांफ्रेन्स को अभी यह प्रकट करना है कि वह जेके के लिए कैसा भविष्य चाहता है (यानि, इसका जेके के भविष्य का दृष्टिकोण) इसकी तीन मांगें–आत्मनिर्णय, जनमतसंग्रह तथा त्रिपक्षीयवाद–केवल भविष्यवाणी नहीं किये जा सकने वाले निश्चित उद्देश्यों के लिए साधन मात्र हैं। उन्होंने अपने-अपने कोई स्पष्ट लक्ष्य इंगित नहीं किये हैं। नेशनल कांफ्रेन्स, नई दिल्ली तथा जेके सरकार के बीच 1953 से पूर्व हुए समझौते के आधार पर भारत के साथ एक सीमित विलय चाहती है। कांग्रेस, भाजपा तथा वामपंथी विभिन्न अवसरों पर तरह-तरह की बोली बोलते हैं। राज्य सरकार की विश्वसनीयता गिरी हुई है तथा अलग-थलग पड़ी हुई है।

नस्ली-क्षेत्रीय मामले में, 8 या 9 पहचानों में से प्रत्येक की अपनी-अपनी इच्छाएं व आकांक्षाएं हैं।

(ख) उपमहाद्वीप के स्तर पर

हमारे उपमहाद्वीप में स्थिति कम पेचीदा नहीं है। भारत और पाकिस्तान के बीच सामान्य सम्बन्ध हो, इस सामाजिक आवश्यकता के प्रति भारत और पाकिस्तान में लोग हालांकि जागरुक हो रहे हैं जबकि नई दिल्ली और इस्लामाबाद अपने-अपने परम्परागत शीत युद्ध के तर्क पर अड़े हुए हैं। भारत और पाकिस्तान के लोगों में यह अहसास बढ़ता जा रहा है कि दोनों देशों के बीच 53 वर्ष लम्बी अबाध शत्रुता के कारण बहुत नुकसान उठाया है, नई दिल्ली और इस्लामाबाद अपने-अपने कठोर रवैये को आधुनिक बनाने में असफल रहे हैं। भारत और पाकिस्तान दोनों के सैनिक मुखिया तथा अन्य विशेषज्ञ अब जबकि सार्वजनिक तौर पर स्वीकार करते हैं कि हमारे युग में विवादास्पद मुद्दों को हल करने में युद्ध ने अपनी प्रासंगिकता खो दी है तथा दोनों देशों में से कोई भी युद्ध नहीं जीत सकते एवं जेके समस्या या और कोई मुद्दा अपनी शर्तों पर नहीं सुलझा सकते, नई दिल्ली और इस्लामाबाद के शासक शांतिपूर्ण रास्ते को छोड़कर अपने-अपने टकराहट वाले रास्ते पर चले जा रहे हैं।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर

अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय (दुनिया के सभी देशों के लोगों से गठित) यह स्वीकार करता है कि जेके समस्या एक राजनीतिक विवाद है; इसे दुनिया में सबसे खतरनाक ज्वलंत बिन्दु मानता है। इसका भारत और पाकिस्तान के बीच बातचीत के जरिये, जिसमें जेके के लोग (दुनिया के लोगों की राय के अनुसार जेके विवाद में तीसरा प्रभावित पक्ष) भी शामिल हों तथा सम्बन्धित पक्षों के बीच तत्काल बातचीत बहाल करने की इच्छा रखता है।

IV. आज मानवता किस ओर जा रही है

यह सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है जिस पर उन सभी को अध्ययन करने की आवश्यकता है जो वास्तविकता के आधार पर समाधान चाहते हैं। क्योंकि ऐसा अध्ययन हमें रास्ता दिखाता है कि मनुष्य समुदाय किस ओर जाना संभावित है।

चल रहे सन्देश जो सन्देश दे रहे हैं वह यह है कि वर्तमान दुनिया में कुछ नया उभरा है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि पारम्परिक दमनकारी विचार, जैसे सही पर ताकत का वर्चस्व, कमजोर पर ताकतवर का, महिला पर पुरुष का, गरीब पर धनी का, ईमानदार पर भ्रष्ट का, अल्पसंख्यक पर बहुसंख्यक का, आदि-आदि। जबकि सही विचार, जैसे, समानता, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, गरीबी निवारण, रोजगार का अधिकार, लिंग समानता, लोक सशक्तिकरण तथा यहां तक कि पशुओं एवं वनस्पति के जीवन का अधिकार, कदम ब कदम जन मानस में अपनी जगह बना रहे हैं। तदनुसार, परम्परागत विचार निर्मूल होते जा रहे हैं तथा नये विचार संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य राज्य सरकारों के सरकारी एजेण्डे में जगह ले रहे हैं। मानव व्यवहार में ये सभी परिवर्तन बुनियादी तब्दीली की उपज हैं तथा वह यह है कि मानव जाति में परिवर्तन आ गया है। वह राष्ट्रीय की बजाए वैश्विक हो गया है। वह प्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्र राज्य के सदस्य से अन्य देशों के व्यक्तियों के साथ अन्तरनिर्भर हो गया है, यानि, राष्ट्रीय वास्तविकता अन्तर्राष्ट्रीय वास्तविकता के ताबे हो गई है।

सामाजिक अर्थ में कहा जाए तो मानव की दुनिया वैश्विक हो गई है। यह विश्व समाज बनने की ओर बढ़ रहा है जिसका प्रबन्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र से होना है। स्पषटत: ऐसा समाज पुराने सामाजिक मानदंडों के आधार पर विकसित नहीं हो सकता। यह केवल और अधिक मानवीय तथा और अधिक सामाजिक न्याय के मूल्यों के आधार पर ही विकसित हो सकता है। इससे अपनी राजनीति, अर्थनीति तथा संस्कृति को विकसित करने के लिए लड़ाई और टकराहट की आवश्यकता नहीं है। इसके बजाए इसे अपने नये विकास मॉडल का ढांचा खड़ा करने के लिए सहयोग, मित्रता, शांति और न्याय की आवश्यकता है।

हमारे नये युग के लेखे-जोखे से यह अर्थ निकलता है कि आज के विवादों के हल का एक वास्तविक रास्ता बातचीत और समझौता वार्ता में निहित है। एक उचित हल सम्बन्धित सभी पक्षकारों के हितों के साथ सामंजस्य बैठाने में है तथा उनका भविष्य साझे विकास

में निहित है। यह हमसे समय के अनुकूल चलने और समय से पीछे नहीं रहने की मांग करता है।

V. यहाँ से जेके कहाँ जाये

हमारे समय के अन्तर्राष्ट्रीय रुख की मांग है कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की इच्छा के अनुसार जेके समस्या का समुचित हल के लिए उचित रास्ता सम्बन्धित तीनों पक्षों के भिन्न-भिन्न नजरिए एवं अपने-अपने हितों के सामंजस्य में निहित है। इसका अर्थ है कि जेके समस्या से सम्बन्धित सभी पक्षों–यानि, जेके, पाक व भारत–को चाहिए कि यदि वे मानव समुदाय के प्रति प्रतिबद्ध है तो उन्हें अपने आपको जेके पर उनके आधार बिन्दुओं में कमी लाने के लिए तैयार रहना चाहिए। सभी तीनों पक्षकारों को कुछ छोड़ना होगा तथा थोड़ा-सा कदम पीछे हटाना होगा। भारत को जेके पर अपनी वर्तमान स्थिति से कुछ कम पाने के लिए तैयार होना चाहिए, इसी प्रकार पाकिस्तान को जनमतसंग्रह या आत्मनिर्णय के अलावा कुछ अन्य पर सहमत होने के लिए तैयार होना चाहिए और जेके के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों को अपने हितों को भारत और पाकिस्तान के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों के साथ सामंजस्य बैठाने की सहमति करनी चाहिए। केवल इन तीनों द्वारा वास्तविकता के आधार पर मानसिकता को ढालने से एक न्यायिक, तर्कसंगत तथा व्यवहारिक जेके समाधान के निष्कर्ष की ओर बढ़ा जा सकता है। इस प्रकार की मानसिकता एवं एक वास्तविकता के आधार पर हल केवल तभी उभर सकता है जब हम अतीत से सीखते हुए, वर्तमान से शुरू करें तथा भविष्य की ओर आगे बढ़ें।

उपरोक्त आकलन से यह अर्थ निकलता है कि जेके समस्या को हल करने का वास्तविक रास्ता त्रिपक्षीय वार्तालाप में निहित है। जेके समस्या का सबसे उचित उत्तर त्रिपक्षीय हल में निहित है तथा जेके, पाक और भारत का भविष्य साझे विकास में निहित है।

(A) जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा और विदेशी मामले की हद तक भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक ढाँचे के तहत जम्मू-कश्मीर की सम्प्रभुता को संयुक्त रूप से सौंप कर भारत-पाकिस्तान के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों एवं आकांक्षाओं को संतुलित किया जा सकता है।

(B) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देकर, जिसे सुरक्षा और विदेशी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में सम्प्रभु शक्तियां हासिल हो, जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(C) जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्लीय क्षेत्रीय समुदायों में प्रत्येक को अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर उनकी नस्लीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के राज्य स्तर के मामलों में निम्न को शामिल किया जा सकता है–राज्याध्यक्ष, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि।

तीन संबंधित पक्षकारों की नस्ली, क्षेत्रीय और वैश्विक इच्छाओं की संतुष्टि के अलावा उपरोक्त फार्मूला तीनों पक्षों तथा विश्व मानव समुदाय को आगे और नई विकास की संभावनाओं के द्वार खोलता है। यह फार्मूला उन्हें कई अन्य तरीकों से भी लाभ पहुंचाता है। यह फार्मूला विश्व समुदाय के भी माफिक है क्योंकि यह विश्व की सबसे खतरनाक ज्वलन्त समस्याओं में से एक समस्या को समाप्त करता है। यह फार्मूला दक्षिण एशिया समुदाय के हित में भी है क्योंकि यह इसके सामाजिक-आर्थिक विकास, साझा बाजार, संयुक्त सुरक्षा आदि मामले में उत्पन्न बाधाओं को दूर करता है।

आर्थिक विकास में समान रूप से साझीदार बनाकर जिसमें भारत व पाकिस्तान प्रत्येक वित्त की समान राशि उपलब्धकर, जबकि जम्मू-कश्मीर राज्य प्राकृतिक संसाधन के रूप में अपने हितों का योगदान देकर, यह फार्मूला भारत-पाकिस्तान व जम्मू-कश्मीर के लोगों की सेवा करता है। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर के लोगों को दोनों देशों की नागरिकता हासिल होने तथा उनसे व्यापार की सुविधा प्राप्त होने के कारण अतिरिक्त फायदा भी प्राप्त होता है।

VI. जम्मू-कश्मीर के लोगों का बड़ा दायित्व

जेके समस्या को हल करने की शुरूआत करने और इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी जम्मू-कश्मीर के लोगों पर है। इसकी मांग दो तरफा लक्ष्यों की पूर्ति करने की है। यानि, एक तरफ सहमति आधारित जेके समस्या का समाधान निकालना तथा दूसरी तरफ जेके के लोगों को जागृत करना और संगठित करना है। इसके लिए निम्न कदम उठाना आवश्यक है। यानि, जेके समस्या का सहमति के आधार पर हल निकालने का मुद्दा यह आवश्यक बना देता है कि राज्य स्तर पर (जेके के द्विभाजित हिस्सों सहित) अन्तर-दलीय तथा अन्तर-नस्लीय बातचीत की जाए, जबकि जेके के लोगों को जागृत करना एवं संगठित करना यह आवश्यक बना देता है कि जेके समस्या के न्यायपूर्ण एवं व्यवहारिक हल के बारे में लोगों की चेतना बढ़ाई जाए तथा जन गतिविधियों में जनता की सक्रिय भागीदारी बढ़ाई जाए। जम्मू-कश्मीर समस्या के उचित हल के पक्ष में भारत, पाकिस्तान और दुनिया के शांतिप्रिय और तर्कसंगत लोगों का समर्थन और हमदर्दी को संगठित करने की भी आवश्यकता है।

VII. दुनिया में विवाद निपटाने के कुछ पुराने नमूने (मॉडल)

देशों के बीच में टकराहटों को हल करने के लिए दुनिया से भी हमें कुछ अनुभव प्राप्त होते हैं तथा वर्तमान दुनिया में विवाद निपटाने के कई मॉडल अस्तित्व में हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं–(1) आलैंड द्वीप मॉडल–यह मॉडल फिनलैंड और स्वीडन के बीच (सन् 1921) एक समझौते के तहत स्थापित हुआ है, जिसके जरिये फिनलैंड को प्रभुसत्ता का अधिकार है जबकि स्वीडिश नस्ल की आबादी को स्वयं अपने मामलों का प्रबंधन करने की स्वायत्तता है। (2) साउथ टायरोल मॉडल–आस्ट्रिया एवं इटली के बीच (1946, 1969) एक समझौते के तहत स्थापित, जिसके जरिये इटली को प्रभुसत्ता के अधिकार प्राप्त हैं जबकि जर्मन नस्ल की आबादी अपने मामलों का स्वयं प्रबंधन करेगी। (3) ट्रायस्ट मॉडल–यूगोस्लाविया एवं इटली के बीच (1954) स्थापित जिसके जरिये ट्रायस्ट के इटली वाले

भाग के लोग युगोस्लाविया वाले भाग के लोगों के साथ स्वतंत्रापूर्वक व्यापार एवं यात्रा कर सकते हैं। (4) उत्तरी आयरलैंड मॉडल–इंग्लैंड एवं आयरलैंड के बीच (1998) एक समझौता, जिसके जरिये एक निर्धारित अवधि के बाद उत्तरी आयरलैंड अपनी यह राय अभिव्यक्त करेगा कि वह आयरिश गणतंत्र में शामिल होगा या यथास्थिति बनाये रखेगा।

प्रथम, पुराने तीन मॉडलों के तहत निर्धारित क्षेत्र पर जिस राज्य का कब्जा है उसकी विधिसम्मत प्रभुसत्ता रहेगी, जबकि विवादी पड़ौसी राज्य के साथ सम्बन्धित क्षेत्र में नस्ली लोगों को काफी मात्रा में स्वायत्तता प्रदान करने का द्विपक्षीय समझौता सम्पन्न किया है। इस नमूने (मॉडल) का अनुकरण करते हुए भारत और पाकिस्तान दोनों संयुक्त राष्ट्र संघ की गारण्टी के तहत एक समझौता कर सकते हैं जो जेके के उस भाग पर, जिस पर उनका अपना-अपना नियंत्रण रहा है तथा है–उस पर उनकी अपनी-अपनी सम्प्रभुता मान्य रहे तथा प्रत्येक भाग पर लोगों की (रक्षा एवं विदेश मामलों के अलावा) पूर्ण स्वायत्तता सुनिश्चित हो तथा वास्तविक नियंत्रण रेखा को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा की मान्यता मिले।

फिर भी, सम्पूर्ण देश पर पुराने ढर्रे वाली सम्प्रभुता से तुलना की जाए तो सामूहिक सम्प्रभुता वाला नया भारत-पाक सहराज्य वाला मॉडल जेके एवं अन्य दक्षिणी एशियाई लोगों की अच्छी सेवा करता है तथा साथ ही जेके को एक ही लोकतांत्रिक इकाई में रखकर तथा भारत और पाकिस्तान को और नजदीक लाकर उभर रही वैश्विक व्यवस्था की भी सेवा करता है। (14.03.2001)

***

एक पर्यावरण एवं मानव हितैषी विकास मॉडल हमारे समय की आवश्यकता

(क) राष्ट्रीय राज्यों का ऐतिहासिक अनुभव दिखाता है कि कॉरपोरेट निर्देशित तथा सरकारी अगुवाई वाले विकास मॉडलों ने विशिष्ट वैज्ञानिक-तकनीकी विकास और सामाजिक योगदान के बावजूद मानव जाति को भारी हानि भी पहुँचाई। पर्यावरण विरोधी तकनीक के उपयोग और अभूतपूर्व ग्रीन हाउस गैसों के उत्पादन पारिस्थितिकी तंत्र में भारी असंतुलन करके उन्होंने इस ग्रह के सम्पूर्ण जैव-जीवन के लिए गंभीर चुनौती पैदा कर दी है। सामाजिक क्षेत्र में, उन्होंने अभूतपूर्व असमानता उत्पन्न की है, एक तरफ मुट्ठी भर विशेषाधिकार प्राप्त धनवान है तो दूसरी तरफ खास करके विकासशील देशों में भारी संख्या में वंचित जो गरीबी, बेरोजगारी से ग्रसित है।

(ख) सरकारी अगुवाई वाले मॉडल की अव्यवहार्यता भूतपूर्व सोवियत संघ के पतन में तथा दुनिया में हर कहीं समाजवादी देशों में इस मॉडल के परित्याग करने में देखा जा सकता है। कॉरपोरेट सेक्टर की असफलता को लगातार बढ़ रही असमानता, गरीबी, भूख, बेरोजगारी, बेघरबारता तथा सबसे बढ़कर कॉरपोरेट मॉडल के विश्व भर में गैर टिकाऊ संकट (कभी यहां तो कभी वहां) के निरन्तर प्रकट होने में देखी जा सकती है।

सामूहिक (या लोगों के) नियंत्रण की बढ़ती हुई मांग अथवा पर्यावरण एवं मानवीय मुद्दों के प्रबंध की मांग वह दिशा दिखाती है, जिसका मानव जाति को आज सामना है। सामाजिक जवाबदेही और नैतिक व्यवहार के नए दर्शन को कॉरपोरेट सेक्टर द्वारा स्वीकार किया जाना इसकी गैर प्रभाविता को प्रकट करता है, जो 'अहस्तक्षेप' के इसके मूलभूत सिद्धान्त के ही खिलाफ है जो आर्थिक विकास प्रक्रिया में प्रत्येक सामाजिक मानदण्ड को नकारता है (जिसका एक मात्र उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है)

(ग) अब जब सार्वभौम देशों की दुनिया एक नई अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की दुनिया में बदल गई और जब नई उभरी दुनिया की आवश्यकता इस ग्रह पर एक मानव समाज में अपने आप को संगठित करने की हो गई (नई विज्ञान एवं तकनीकी के परिणाम स्वरूप तथा इसके कारण मानव की सोच, गतिविधि तथा व्यवहार में सामाजिक परिवर्तन के कारण) अन्तरनिर्भर राष्ट्रों को समस्याओं और चुनौतियों के नए सेट का सामना है। इनमें से कुछ है : पर्यावरण पतन, बढ़ती जनसंख्या, असमानता में बेहद वृद्धि, हिंसा और अपराध के स्तर में बढ़ोतरी, संदेहास्पद एवं माफिया राजनीति (जिसका एक मात्र उद्देश्य है धन कमाना और सत्ता हथियाना) ये सभी समस्याएं एवं चुनौतियां सरकारी अगुवाई और कॉरपोरेट नेतृत्व के विकास मॉडलों की उपज है। यहां तक कि आज, भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया अमेरिका और अन्य विकसित देशों द्वारा प्रबंधित की जा रही है, कॉरपोरेट निर्देशित मॉडल का ही नियंत्रण है, विकासशील देश इस पर निर्भर है। इसका परिणाम चौतरफा असमानता और इसके घातक परिणाम, बेरोजगारी, गरीबी, कुपोषण आदि के

बढ़ने में निकलता है। यह कहना सबसे बड़ा झूठ और गलत आरोप है कि ये सामाजिक बीमारियां भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न हुई। ये सभी राष्ट्रीय राज्यों द्वारा लगातार बढ़ाई गई तथा उनके अपने-अपने सरकारी अगुवाई और कॉरपोरेट निर्देशित मॉडलों से उत्पन्न हुई है। यहां तक आज भी उन्हीं राष्ट्रीय ताकतों द्वारा इन समस्याओं को पैदा किया जा रहा है जो राष्ट्रीय राज्यों पर प्रभुत्व रखती हैं।

यदि हम हमारी विद्यमान समस्याओं के वास्तविक चरित्र और सही कारण को समझने में असफल रहते हैं तो हम उन्हें सही प्रत्युत्तर देने में अयोग्य होंगे। नए उभरे भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया की सही प्रकृति, इसका कारण और प्रत्युत्तर तय करेगी।

दो परम्परागत विकास मॉडलों का मुख्य दोष उनके एकाधिकारवादी नियंत्रण का है। सरकारी सेक्टर के मामले में शासक राजनीतिज्ञ और अफसरशाह और निजी क्षेत्रे संदर्भ में एक ही निर्देशक मॉडल (जो मुख्यतया संबंधित कम्पनी के प्रोमोटर्स या उनके रिश्तेदारों, जो ब्लाक शेयर रखते हैं, से गठित होते हैं)।

मानव जाति (या अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की आज की दुनिया) को आज जरूरत है एक पर्यावरण और मानव हितैषी विकास मॉडल की, जो दो प्राथमिकता (यानि, पर्यावरण एवं मानवता) और पांच उसूलों (यानि, पर्यावरणीय टिकाऊपन, लोकतंत्र, उत्पादकता, समानता (या सामाजिक न्याय) और पारदर्शिता) पर आधारित हो। यह दो परम्परागत राष्ट्रीय मॉडलों के ढांचे में फिट नहीं हो सकता–जिनमें से एक (यानि कॉरपोरेट निर्देशित) व्यक्तिगत हित, लाभ, धन तथा धन के स्वामियों को इसकी जीवन रेखा बनाता है जबकि दूसरा (सरकारी क्षेत्र) जैसे-तैसे सत्ता प्राप्त करना, को अपने अस्तित्व का एक मात्र उद्देश्य निर्देशित करता है।

***

(जम्मू के डाक बंगले में 5 अगस्त, 2001 को फ्रंट की
जम्मू संभाग की बैठक में पारित प्रस्ताव)

आगरा सम्मेलन एवं उसके बाद

I

1. आगरा सम्मेलन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि तथ्यों को वैसे ही देखा जाए जैसा वे हैं, ना कि जैसे होने चाहिए।

2. सम्मेलन का उद्देश्य मसलों की छंटनी करना था तथा शांति के लम्बे रास्ते के साथ आगे बढ़ना था (जैसा कि वाजपेयी द्वारा दिये गये निमंत्रण पत्र में जोर दिया गया तथा मुशर्रफ द्वारा उसका जवाब दिया गया एवं बाद में उनके अपने-अपने दिये गये बयान)। निश्चय ही इसका यह लक्ष्य नहीं था कि एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जाए, फिर भी यदि सम्मेलन एक संयुक्त वक्तव्य के साथ समाप्त होता तो ज्यादा अच्छा था। आगे, भारत और पाकिस्तान के बीच दो वर्ष पुराने उच्च स्तरीय राजनीतिक ठहराव को इस सम्मेलन ने तोड़ा। पुन: इस सम्मेलन का नतीजा असफलता में नहीं निकला यह इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि वाजपेयी ने मुशर्रफ के इस्लामाबाद आने के निमंत्रण को स्वीकार किया तथा भारत-पाक के विदेश मंत्रियों के वार्तालाप प्रक्रिया को जारी रखने के सार्वजनिक वक्तव्य का दिया जाना।

3. स्पष्टत:, दोनों देशों के बीच असतत मुलाकात करने का अर्थ शांति प्रक्रिया को आगे बढ़ाना है। यह सही दिशा में उठाया गया कदम है क्योंकि जेके, भारत-पाक तथा दुनिया के लोगों को आज शांति की बेतहाशा आवश्यकता है।

4. भारत-पाक सरकारों का वार्तालाप को जारी रखने के रास्ते को अपनाने का कारण इस अहसास में निहित है कि सैनिक समाधान कारगर नहीं है चाहे वह कश्मीर समस्या के सम्बन्ध में हो या किसी अन्य समस्या के सम्बन्ध में। और यह तर्क कि संयुक्त वक्तव्य अन्तिम प्रारूप तक क्यों नहीं पहुंच सका, यह दोनों पक्षों की अपनी-अपनी प्राथमिकताओं और दबावों के कारण था, जिसमें प्रत्येक पक्ष अपने विशिष्ट राजनीतिक ग्रुप और क्षेत्र के हितों का प्रतिनिधित्व कर रहा था तथा जिसका उद्देश्य अपनी लाभदायक स्थिति हासिल करने का था, ताकि समस्या का हल अपने पक्ष में मोड़ा जा सके।

II

5. पीछे मुड़ कर देखा जाए तो भी यह देखा जा सकता है कि दोनों पक्षों के लोगों की यह इच्छा रही है कि दोनों देशों के बीच मैत्री के सम्बन्ध बने रहे, भारत और पाकिस्तान के अपने-अपने प्रभुत्वकारी ग्रुप (जिनमें कई बार कुछ अच्छे व्यक्तित्व होते हुए भी) दोनों देशों के बीच हमेशा राष्ट्रीय शत्रुता का प्रचार करते हैं; अन्ध-राष्ट्रवाद तथा साम्प्रदायिक राजनीति का अनुसरण करते हैं जिसका एकमात्र उद्देश्य धन और सत्ता हड़पना होता है; तथा ऐसा विकास मॉडल लागू करते हैं जिससे दोनों देशों में असहनीय स्तर की असमानता

जन्म लेती है, जिससे एक तरफ थोड़े से लोगों की पांच सितारा जिन्दगी में देखा जा सकता है तथा दूसरी तरफ भारी बहुसंख्या के वंचित जीवन में देखा जा सकता है जिसकी प्रतीक हैं, जन भूखमरी, कुपोषण, बिमारी, अनपढ़ता, बेरोजगारी, बेघरबारता, आदि।

6. दोनों प्रभुत्वकारी शासक ग्रुपों ने अपने-अपने पक्ष में अपने-अपने लोगों को रखने के लिए हमेशा भारत-पाक के बीच दरार बढ़ाने और उनके दिमाग में जहर भरने की कोशिश की है। उनके अपने-अपने मंचों का मुख्य मोर्चा जेके समस्या पर है तथा दोनों देशों के बीच आपस में घृणा फैलाने का है।

7. फिर भी, भारत-पाक लोगों को पिछले 53 वर्षों का अनुभव दर्शाता है कि साम्प्रदायिकता की राजनीति तथा अन्ध-राष्ट्रवाद बेहद नुकसानदायक साबित हुआ है। इसीलिए उन्होंने एक दूसरे के प्रति नई मित्रता का अहसास विकसित किया है। इस मित्रता को आगे इस तथ्य से बल मिलता है कि उन्होंने एक जैसा ऐतिहासिक अतीत बिताया है, उन्हें चल रही जिन्दगी में एक जैसी समस्याओं का सामना है तथा वे साझे भविष्य के दौर में प्रवेश कर चुके हैं। भारत-पाक के शासक ग्रुपों में एक दूसरे के प्रति शत्रुता का कारण उनके इस भय पर आधारित है कि धन व सत्ता हड़पने की उनकी अपनी-अपनी राजनीति उनके राजनीतिक क्षेत्रों में उनका असर खो देगी।

III

8. आज साम्प्रदायिकता और अन्ध-राष्ट्रवाद की राजनीति एकदम अप्रासंगिक हो गई है। इसका कारण यह है कि मानव जाति एक नये युग में प्रवेश कर चुकी है जिसमें रूढ़िवादी एवं टकराववादी नजरिये व तरीके अलाभकारी हो गये हैं (जो पुराने संकीर्ण समाजों में कार्यरत रहे, जैसे गण, कबीला, सामन्ती, राष्ट्रीय, आदि)। यह नया युग मौजूदा सामाजिक वास्तविकताओं से उभरा है जहाँ मानव जाति अन्तरनिर्भर (अभी राष्ट्रीय राज्य की शक्ल में मौजूद है) हो गई है, और इस प्रकार सम्पूर्ण मानव समुदाय (भारत, पाकिस्तान तथा जेके सहित) का भविष्य साझा हो गया है।

9. स्पष्टतया, पुराने सामाजिक मानदण्डों के आधार पर ऐसा समाज विकसित नहीं हो सकता। यह केवल अधिक मानवीय एवं अधिक न्यायपूर्ण सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही विकसित हो सकता है। इसे अपनी राजनीति, आर्थिकता एवं संस्कृति को विकसित करने के लिए संघर्ष एवं टकराहट की आवश्यकता नहीं है इसके बजाए इसे सहयोग, मित्रता, शांति, समानता तथा न्याय की आवश्यकता है ताकि यह अपने नये विकास मॉडल का पुनर्गठन कर सके।

10. इस प्रकार, पिछले 53 वर्ष के साम्प्रदायिक एवं अन्ध-राष्ट्रवादी राजनीति के नुकसानदायक अनुभव से सबक लेते हुए तथा सैनिक समाधान की व्यर्थता की मौजूदा सामाजिक वास्तविकता से शुरू करते हुए, उभरती विश्व वास्तविकता के आम रुझान के तहत यह अनुसरण करता है कि सामाजिक, राष्ट्रीय या नस्लीय विवादों के समाधान का वास्तविक रास्ता बातचीत से समझौते के सिद्धान्त में निहित है जो सम्बन्धित पक्षकारों की आकांक्षाओं और हितों के बीच सामंजस्य स्थापित करता हो।

11. बातचीत से समझौते की जरूरत यह है कि दोनों देशों के बीच अत्यधिक तनाव को शिथिल करने के लिए तथा जेके में स्थिति को सामान्य बनाने के लिए आवश्यक कदम

उठाये जाएं। वे निम्न हैं–(a) सैनिक समाधान को रद्द करना, (b) 'युद्ध वर्जन' की संयुक्त घोषणा पर हस्ताक्षर करना, (c) अपनी चहेती पसन्द को तरजीह नहीं देना, (d) हिंसा के स्तर में कमी लाना तथा जेके में मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकना, (e) जेके के सम्बन्ध में सभी साम्प्रदायिक एवं विभाजित करने वाली स्कीमों को नकाराना (मसलन, साम्प्रदायिक आधार पर जेके का विभाजन, जनमतसंग्रह, भारत और पाकिस्तान के बीच राज्य का बंटवारा, त्रिविभाजन किसी एक देश के साथ विलय, इत्यादि), (f) जेके राज्य की एक इकाई वाले एकता के सिद्धान्त को थामना एवं जिसमें इसकी भिन्न-भिन्न प्रत्येक पहचान को अधिकतम संभव स्वायत्तता प्रदान करना।

IV

12. उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में इसका अर्थ है कि जेके समस्या के हल का वास्तविक रास्ता त्रिपक्षीय वार्तालाप में निहित है, जेके समस्या का सर्वोत्तम उचित उत्तर जेके, पाकिस्तान एवं भारत का भविष्य साझे विकास में एवं त्रिपक्षीय समाधान में निहित है।

13. हमारे दृष्टिकोण में,

(A) जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा और विदेशी मामले की हद तक भारत-पाक सहराज्य के संवैधानिक ढाँचे के तहत जम्मू-कश्मीर की सम्प्रभुता को संयुक्त रूप से सौंप कर भारत-पाकिस्तान के अपने-अपने राष्ट्रीय हितों एवं आकांक्षाओं को संतुलित किया जा सकता है।

(B) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देकर, जिसे सुरक्षा और विदेशी मामलों को छोड़कर सभी मामलों में सम्प्रभु शक्तियां हासिल हो, जम्मू-कश्मीर के लोगों, विशेष तौर पर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(C) जम्मू-कश्मीर की विभिन्न नस्लीय क्षेत्रीय समुदायों में प्रत्येक को अधिकतम सम्भव संवैधानिक स्वायत्तता देकर उनकी नस्लीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के राज्य स्तर के मामलों में निम्न को शामिल किया जा सकता है–राज्याध्यक्ष, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि।

तीन संबंधित पक्षकारों की नस्ली, क्षेत्रीय और वैश्विक इच्छाओं की संतुष्टि के अलावा उपरोक्त फार्मूला तीनों पक्षों तथा विश्व मानव समुदाय को आगे और नई विकास की संभावनाओं के द्वार खोलता है। यह फार्मूला उन्हें कई अन्य तरीकों से भी लाभ पहुंचाता है। यह फार्मूला विश्व समुदाय के भी माफिक है क्योंकि यह विश्व की सबसे खतरनाक ज्वलन्त समस्याओं में से एक समस्या को समाप्त करता है। यह फार्मूला दक्षिण एशिया समुदाय के हित में भी है क्योंकि यह इसके सामाजिक-आर्थिक विकास, साझा बाजार, संयुक्त सुरक्षा आदि मामले में उत्पन्न बाधाओं को दूर करता है।

आर्थिक विकास में समान रूप से साझीदार बनाकर जिसमें भारत व पाकिस्तान प्रत्येक वित्त की समान राशि उपलब्धकर, जबकि जम्मू-कश्मीर राज्य प्राकृतिक संसाधन के रूप में अपने हितों का योगदान देकर, यह फार्मूला भारत-पाकिस्तान व जम्मू-कश्मीर

के लोगों की सेवा करता है। इसके अलावा जम्मू-कश्मीर के लोगों को दोनों देशों की नागरिकता हासिल होने तथा उनसे व्यापार की सुविधा प्राप्त होने के कारण अतिरिक्त फायदा भी प्राप्त होता है।

V

18. जेके समस्या को बातचीत के आधार पर हल करने की प्रक्रिया को सहुलियत एवं स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि मोर्चे को तीन तरफा बुनियादी लक्ष्य हाथ में लेने चाहिए। जो निम्न हैं–(a) जेके के लोगों को उनकी घोषणा तथा अन्य सम्बन्धित दस्तावेजों के आधार पर जागृत, प्रेरित एवं संगठित करना, (b) जेके समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए 9 नस्ली समुदायों के बीच तथा जेके के भिन्न-भिन्न राजनीतिक शक्तियों के बीच तर्कसंगत एवं जायज सहमति बनाने की कोशिश करना, (c) सामाजिक चेतना का विकास करना, मूल्य आधारित शैली अपनाना तथा मोर्चे का एक लोकतांत्रिक संगठनात्मक ढांचा विकसित करना।

19. उपरोक्त बुनियादी लक्ष्य को पूरा करने के लिए मोर्चा निम्न तात्कालिक कार्य क्रियान्वित करे–(a) जम्मू संभाग में जिला स्तर के सम्मेलनों को आयोजना करना, (b) जेके समस्या के हल के लिए मोर्चे के त्रिपक्षीय फार्मूले के पत्र में हस्ताक्षर अभियान शुरू किया जाए, (c) मोर्चे के कार्यक्रम पर सार्वजनिक विचार-विमर्श उन स्थानों पर आयोजित किया जाए जहाँ मोर्चा अभी तक नहीं पहुंच पाया है, (d) जेके समस्या के सहमति आधारित, तर्कसंगत एवं जायज त्रिपक्षीय समाधान निकालने के लिए अन्तर-नस्लीय एवं अन्तर दलीय बातचीत को आगे बढ़ाया जाए, (e) विभिन्न संवेदनशील स्थानों पर साम्प्रदायिक सौहार्द सम्मेलन आयोजित किए जाएं।

20. जेके समस्या के त्रिपक्षीय उचित हल के पक्ष में भारत, पाकिस्तान एवं दुनिया में सभी शांतिप्रिय एवं तर्कसंगत लोगों की सहानुभूति और समर्थन हासिल करने की कोशिश भी करेगा।

***

दुनिया का निर्णायक क्षण

महाशक्तिवाद और आतंकवाद दोनों सामाजिक तौर पर अवांछित

एक मानव हितैषी और प्रकृति हितैषी कार्यक्रम की आवश्यकता

I

खोज के प्रश्न

न्यूयार्क और वांशिगटन में 11 सितम्बर को टीवी देखते हुए उद्घाटित होती दुखद घटना ने आम तौर पर सारी दुनिया में और विशेष तौर पर अमेरिका के लोगों को स्तब्ध और हक्का-बक्का कर दिया। चारों और अराजकता थी। समस्त अमेरिकी प्रशासन बिना यह जाने उसे क्या करना है और कैसा करना है हड़बड़ी में दौड़ रहा था। देश में फैले 8300 संघीय कार्यालय बन्द थे। व्हाइट हाउस खाली करवा लिया गया था। राष्ट्रपति मुख्यालय से बाहर थे और उन्हें सुरक्षा अधिकारियों द्वारा यह सलाह दी गई थी कि सुरक्षा के कारणों से वह वाशिंगटन न लौटें। महाशक्तिवाद पूरी तरह लकवाग्रस्त था।

उस गंभीर क्षण में लोगों के दिमाग में एक ही विचार परेशानी पैदा कर रहा था कि अमेरिका में यह घटना कैसे घटित हो गई। जिस अमेरिका को भौतिक, शारीरिक और मानसिक सुरक्षा का अजेय गढ़ माना जाता है उस अमेरिका में ऐसी घटना कैसे घट गई। प्रत्येक चारों ओर कौतूहल से देख रहा था परन्तु कहीं से कोई प्रतिक्रिया नहीं थी।

जब लोग अनिश्चितता (आगे क्या होने वाला है) की अनुभूति से सामान्य स्थिति की अनुभूति पर लौटे तो उपरोक्त उत्सुकता में कई नए प्रश्न जुड़ गए। यानी यह जघन्य कार्य किसने किया है, इस दुखद घटनाक्रम का कारण क्या है और इसका समुचित जवाब क्या होना चाहिए। इस दुखद और आघातकारी घटनाक्रम में दिलचस्पी लेने वाला कोई भी इन प्रश्नों को दरकिनार नहीं कर सकता।

II

अमेरिका में ऐसी घटना कैसे घट गई

11 सितम्बर से पहले किसी के लिए भी यह सोचना वास्तव में कठिन था कि अमेरिका की श्रेष्ठता और वैभव-जिसके नियंत्रण में दुनिया के सबसे अधिक घातक और उन्नत हथियारों का जखीरा है और जो दुनिया की कुल आर्थिक शक्ति (यानि 31 ट्रिलियन डालर) का एक तिहाई (यानि 10 ट्रिलियन डालर) का मालिक है- को एक सुशिक्षित, तकनीक के जानकार और संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के समूह (जिनके हाथ में अनगढ़ हथियार जैसे चाकू और गता काटने के औजार हों) से न्यूयार्क और वाशिंगटन जैसे शहर में पहली चुनौती मिलेगी।

परन्तु वातावरण में पहले से इसके सूचक मौजूद थे। दुनिया में अमेरिका के विरुद्ध घृणा और विद्वेष का स्तर निरन्तर बढ़ता गया है जो प्राय: विभिन्न जन प्रतिरोध, मीडिया

रिपोर्ट, खुफिया सूचनाओं में अभिव्यक्त होता रहा है। पिछले दशक के प्रत्येक वर्ष में समस्त दुनिया में अमेरिका पर आतंकवादी हमलों (तीन अदंरूनी आतंकवादी हमलों, यानि, वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर 1993 में, लैंगले वर्जिनिया के खुफिया मुख्यालय पर 1994 में और ओक्लाहोमा पर 1996 सहित) का ग्राफ बिना बाधा में बढ़ता गया है। गरीबी हितैषी शक्तियों के साथ-साथ गैर सरकारी संगठनों का अमेरिका के विरूद्ध प्रतिरोध अधिक से अधिक बढ़ता गया। असमानता, गरीबी और बेरोजगारी लगातार बढ़ रही है। साल के शुरू में फरवरी में ही सिनेटर गैरी हार्ट और वारेन रूढमैन की अगुवाई वाले अमेरिकी राष्ट्रीय आयोग ने यह चेतावनी दी कि अनर्थकारी हमला होने की संभावना है जिससे या तो जनहानि होगी या जन विघटन होगा।

दुनिया के विभिन्न हिस्सों से चेतावनी भरे संकेतों का उचित प्रत्युत्तर देने के बजाय अमेरिका अपने प्रभुत्व, अधिकतम मुनाफे और पूंजी संचय की प्राथमिकताओं और महाशक्तिवादी भाव भंगिमाओं से अड़ियल तरीके से चिपका हुआ है। अमेरिका विश्व के लोगों की जरूरतों–जैसे, क्योटो प्राटोकॉल (ग्रीनहाउस गैसों को कम करने के बाबत) पर हस्ताक्षर करने से मना करना, अपनी राष्ट्रीय मिसाइल सुरक्षा (NMD) योजना को (नाटो सदस्यों सहित दुनिया के लोगों के प्रतिरोध के बावजूद) आगे बढ़ाना, सीटीबिटी में स्वच्छन्दता (रूसी और चीनी विरोध की अनदेखी करते हुए) पाना, नाटो का पूर्व की तरफ फैलाव (रूस के एतराज की परवाह नहीं करते हुए) करना, अर्न्तराष्ट्रीय दंड न्यायालय के सृजन को चुनौती (अपने पूर्व यूरोपीय सहयोगियों की राय की अवहेलना करते हुए) देना और उत्तर कोरिया के साथ सम्बन्धों को ठीक करने (दोनों कोरियाओं की इच्छाओं के उलट) को टालते जाना, इत्यादि–को नहीं मानता है।

11 सितम्बर के घातक हमले से कुछ ही क्षण पहले तक अमेरिका के उच्चतम बुद्धिजीवी, जो विज्ञान, तकनीकी, समाजशास्त्र, युद्धकला, तात्कालिक मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों और इनसे सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं, इत्यादि के ज्ञान से सुसज्जित–विश्व पर प्रभुत्व के लिए नई रणनीति बना रहे थे। अमेरिका के ये बुद्धिजीवी अनियंत्रित शक्ति, सम्पदा और शानशौकत को आने वाले समय में चीन से गंभीर चुनौती की कल्पना कर रहे थे। यूरोप के स्थान पर एशिया को रणनीतिक स्थान के रूप में चिन्हित कर रहे थे और भारत, जापान, दक्षिण कोरिया और एशियान के सदस्य देशों को अपना रणनीतिक सहयोगी मान रहे थे जिसमें भारत का प्रथम स्थान था। परन्तु यह सारी अमेरिकन अवधारणा और रणनीति धरी रह गई और सामाजिक वास्तविकता बिल्कुल भिन्न दिशा में मुड़ गई। किसी आधुनिक घटनाक्रम की बजाए चुनौती मध्ययुगीन रूढ़िवाद की तरफ से आई।

इस भंयकर आतंकवादी घटना ने हजारों निर्दोष और आम लोगों (लगभग 10,000) की जान ले ली और अरबों डालर (लगभग 20 बिलियन) की सार्वजनिक जन सम्पत्ति को नष्ट कर दिया। इसने सम्पूर्ण परिदृश्य में परिवर्तन कर दिया। इस घटना ने विश्व की मुख्य महाशक्ति को भारी आघात पहुँचाया है और सारी दुनिया के लोगों के सोच में नया मोड़ दिया है। दुनिया की सबसे अधिक शक्तिशाली महाशक्ति ने इस नई वास्तविकता के अनुरूप दूसरे देशों और ताकतों के साथ-साथ (जो अपने-अपने तरीकों से ऐसा कर रहे हैं) सबसे पहले अपनी अवधारणा, उद्देश्य, रणनीति और कार्यनीति को बदला है।

वास्तविक घटनाओं और अमेरिका की मान्यताओं के बीच अन्तर का कारण इसकी महाशक्तिवादी तार्किकता और मानसिकता में निहित है। प्रथमत: इसकी मान्यता रही है कि अमेरिका अजेय है और आज की दुनिया का वह निर्विवाद अगुवा है। द्वितीयत: इसकी मान्यता है कि अमीर और शक्तिशाली विकास की चालक शक्ति है जबकि जनता कुछ नहीं है और ना के बराबर है। तृतीय, इसकी मान्यता है कि एक महाशक्ति को सम्भावित चुनौती केवल एक महाशक्ति (संभावित या वास्तविक) से ही आ सकती है न कि लोगों की ओर से। चतुर्थ, इसकी मान्यता है कि वैश्वीकरण (या मानवीय समाज का वैश्विक स्तर पर पुनर्गठन) को एक अन्तर्राष्ट्रीय सिपाही की आवश्यकता है जो शेष सब पर अंकुश कायम कर सके। और पंचम, इसकी मान्यता है कि पश्चिमी कारपोरेट (या बाजारोन्मुखी) विकास मॉडल मानवीय न्याय की पराकाष्ठा का प्रतिनिधित्व करता है और उभरती विश्व मानव व्यवस्था का सर्वोत्तम उचित मॉडल है। स्पष्टतया, अमेरिका की उपरोक्त सम्पूर्ण अवधारणाएं 21 वीं सदी की सामाजिक मनोदशा के विपरीत है। 21 वीं सदी की सामाजिक मनोदशा की मांग है कि मनुष्य जीवन की सभी गतिविधियों–राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक–में व्यवहारिक न्याय और समता स्थापित की जाए और यही 21 वीं सदी की मनोदशा प्रेरित करती है कि हर तरह के अन्याय से मुक्ति पाएं।

उपरोक्त वर्णित अमेरिका की अजेय और अलंघनीय होने की महाशक्तिवादी धारणा ने विदेशी और कूटनीतिक मामलों के महत्त्वकांक्षी अमेरिकी विशेषज्ञों को दुनिया में अमेरिका के विरुद्ध और विशेष तौर पर मुस्लिम देशों में उसके विरुद्ध दुश्मनी व घृणा के बढ़ते स्तर को भांपने से रोक दिया, आखिरकार 11 सितम्बर को दुर्दान्त घटना घटी। पुन: इसकी महाशक्तिवादी धारणा ही थी कि जिसने इसके तकनीकी विशेषज्ञों को अपहरण जैसी आपातकालीन अवस्था में सिगनल व्यवस्था को निष्प्रभावी करने के मौके का पूर्वानुमान करने और इस तरह की अप्रत्याशित घटना से निपटने का प्रभावी विकल्प सोचने से अलग रखा। यही कारण था कि अति विकसित और सुदृढ़ तकनीकी वाली अमेरिकी निगरानी व्यवस्था शुरू से लेकर आखिर तक आतंकवादी योजना को क्रियान्वित करने के दौरान संदेहास्पद स्थितियों को पहचानने में असफल रही। महाशक्तिवादी धारणा की तार्किकता इस तथ्य की भी व्याख्या करती है कि अति अनुभवी और संसाधन सम्पन्न अमेरिकी जासूसी तंत्र इस लम्बे षडयंत्रकारी प्रक्रिया के दौरान किसी भी संदेहास्पद गतिविधि को क्यों नहीं भांप सका।

फिर भी कहानी का यह अन्त नहीं है। जब तक महाशक्तिवाद जीवित रहेगा इसका जुड़वा भाई आतंकवाद इसके साथ-साथ चलेगा। अमेरिका की बदले की भावना से प्रत्युत्तर दिये जाने की अवस्था में नये तरीके के आतंकवादी हमले–जैसे सर्वनाशी परमाणु हथियारों का आसान परन्तु अत्यधिक खतरनाक रणनीतिक लक्ष्य (जैसे कि दुनिया के 430 परमाणु परियोजनाओं के विरूद्ध हमले की संभावना) या जैविक या रासायनिक हथियारों से भरा ट्रक आसान मगर नाजुक लक्ष्य (मसलन, साइबर स्पेस) से टकराने की घटना–की संभावना बढ़ जायेगी।

11 सितम्बर के कायराना हमले ने अमेरिकी महाशक्तिवाद के अजेय और अलंघनीय होने की गलतफहमी को ध्वस्त कर दिया और नई सैनिक परमाणु मिसाइल सुरक्षा योजना पर आधारित इसकी पूर्ण सुरक्षा के भ्रम को छिन्न-भिन्न कर दिया।

ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि हर समय और स्थान पर कोई भी अवस्था पूर्ण और अन्तिम नहीं होती। प्रत्येक वस्तु अपने विकास की विभिन्न अवस्था से होकर गुजरती है (यानि, मसलन क्रमिक विकास, वृद्धि और क्षय) और तब इसका हस्तान्तरण एक नई चीज में हो जाता है। ऐसा ही अमेरिका के महाशक्तिवाद के साथ हो रहा है जो अपने क्षय और हस्तान्तरण की अन्तिम अवस्था में प्रवेश कर रहा है। अर्थात् यह महाशक्तिवाद से वैश्विक मानवीय समुदाय के विकसित भाग के रूप में परिवर्तित होने की ओर बढ़ेगा। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि विकास की नई प्रक्रिया (यानि वैश्विक मानवीय समुदाय का प्रादुर्भाव) के उभरने के कारण महाशक्तिवाद सामाजिक तौर पर अवांछित हो गया है।

III
यह घृणित कार्य किसने किया

किसी को कोई अन्दाजा नहीं था, किसी भी जिम्मेदार इदारे से कोई आवाज नहीं आई, लोग स्तब्ध थे।

इस विध्वंस के केवल 2 घंटे बाद राष्ट्रपति बुश ने फलोरिडा से टेलीविजन पर कसम खाते हुए कहा कि ''एक स्पष्ट आतंकवादी हमले के दोषियों को बख्शा नहीं जायेगा।'' इस सदमे से लोग थोड़ा उभरे तो प्रत्येक के दिमाग में यह महत्वपूर्ण सवाल था कि दोषी कौन है।

दुबई से रायटर की रिपोर्ट के अनुसार इस हमले की जिम्मेदारी फिलीस्तीन ग्रुप ने लेने का दावा किया। अबूधाबी टेलीविजन ने खबर दी की डेमोक्रेटिक फ्रंट फॉर लिबरेशन ऑफ फिलीस्तीन (डीएफएलपी) द्वारा वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर की इमारत में दो हवाई जहाज टकराने की फोन से सूचना देकर जिम्मेदारी ली गई है।

उसी दिन अमेरिका की खुफिया एजेन्सियों ने कहा कि इस अपराध में 18 अपराधियों सहित 50 लोग शामिल हैं, जो अरब मूल से आये मध्य पूर्व से सम्बन्धित निवासी हैं।

केवल तीन दिन बाद अमेरिका के विदेश सचिव ने यह घोषणा की कि उनके पास उपलब्ध सभी साक्ष्य ओसामा बिन लादेन को प्रमुख संदेहास्पद दोषी निर्दिष्ट करते हैं और अन्य अपराधकर्मी उसके अल कायदा आतंकवादी संगठन से जुड़े हुए हैं।

यह अमेरिका ही था जिसने ओसामा और मुल्ला उमर तथा ऐसे सभी को पैदा करने, पालने-पोसने और विकसित करने में पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभाई। सोवियत यूनियन के विरुद्ध प्रतिरोध संगठित करने के लिए सी आई ए ने ओसामा को अफगानिस्तान में तैनात किया और वहां उसे एक महान धार्मिक नेता के तौर पर पेश किया।

ओसामा को आरोपित करते समय अमेरिका ने उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य पेश नहीं किए। ना ही अब तक कोई साक्ष्य पेश किए हैं। घटना के 15 दिन बाद तक भी अमेरिका यह घोषणा करता रहा कि ओसामा और उसके सह अपराधियों के खिलाफ सबूत इकट्ठे किए जा रहे हैं।

11 सितम्बर की घटना में ओसामा ने अपने शामिल होने के आरोपों से इंकार किया परन्तु साथ ही घोषणा भी कि चाहे जिस किसी ने यह घटना की है उसका वह समर्थन करता है।

ओसामा और उसके सह अपराधियों के विरुद्ध सबूतों को बताया जाए यह मांग

दुनिया भर में उठाई गई। जहां तक कि अमेरिका के सहयोगी (जैसे इग्लैण्ड, पाकिस्तान, मिश्र, सउदी अरब आदि) जो अमेरिका की स्थिति का पूर्णतया समर्थन कर रहे हैं उन्होंने भी यह मांग की है उन्हें सबूत दिखाए जाएं। परन्तु अभी तक दुनिया के लोगों की इस वास्तविक सद्इच्छा की मांग को पूरा करने में अमेरिका असफल रहा है।

स्पष्टतया, ओसामा के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में कोई ठोस सबूत प्रस्तुत करने में अमेरिका अभी तक सक्षम नहीं हो सका है। और, बिना ठोस आधार के किसी पर भी दोषी होने की जिम्मेदारी नहीं डाली जा सकती है। तार्किक तौर पर इस हमले को पूर्ण अन्वेषण और जांच की आवश्यकता है। इस तरह के मानव विरोधी अपराधों को बिना पता लगाए न तो छोड़ा जाना चाहिए और ना ही छोड़ा जा सकता है। अमेरिका इस मामले में वह पक्षकार है जिसके साथ घटना घटित हुई है इसलिए अपराधी को पहचानने के लिए अन्वेषण की वह सक्षम एजेन्सी नहीं हो सकता। अन्तर्राष्ट्रीय विधि, अमेरिकी संविधान, मानवीय अनुभव और आधुनिक तर्कसंगतता–ये सभी मांग करते हैं कि एक विश्व संस्था जिसे सभी देशों का विश्वास हासिल हो, अपराधियों और उनको उकसाने वालों की पहचान का कार्य सुपुर्द किया जाए और अन्तर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धान्त और व्यवहार के अनुसार अपराधियों को उचित दण्ड दिया जाए और इस प्रकार आम तौर पर अमेरिकी जनता को और विशेष तौर पर शोकाकुल परिवारों को उचित न्याय दिलाया जाए। और संयुक्त राष्ट्र संघ जो इस समय दुनिया के सभी राष्ट्रों का एकमात्र प्रतिनिधित्व करता है, इसकी बहुत सी कमियों के बावजूद भी अत्यधिक उचित संस्था है और हो सकती है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का उक्त कार्य सौंपा जाना चाहिए।

यदि अमेरिका इस मामले में मुख्य प्रताड़ित या परिवादी है और अपने महाशक्तिवादी चरित्र की वजह से अन्वेषक के साथ-साथ आरोपित अपराधियों के साथ, न्यायाधीश की भूमिका अख्तियार करता है तो इसमें अन्तर्राष्ट्रीय के साथ-साथ अमेरिका के कानूनों का भी उल्लघंन होगा।

आतंकी घटना के लिए ओसामा पर दोषारोपण करने के कुछ देर बाद अमेरिका इस वक्तव्य के साथ सामने आया कि आज दुनिया के लोगों का आतंकवाद मुख्य दुश्मन बनता है और इसलिए शांतिप्रिय व लोकतांत्रिक ताकतों को वृहद से वृहद संभव मोर्चा बनाकर उसे मात देने की आवश्यकता है। यद्यपि इसने न तो वैचारिक तौर पर (या दार्शनिक तौर पर) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को परिभाषित किया और ना ही वर्गीकृत किया कि कौन इसके संगठनात्मक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है और ना ही इसके पैदा होने के बुनियादी कारण की व्याख्या की है।

यह एक साधारण और सामान्य प्रश्न है कि कोई भी प्रभावी तौर पर किसी घटनाक्रम से तब तक नहीं निपट सकता जब तक कि वह पर्याप्त तौर पर उसकी परिभाषा यानि उसकी प्रकृति, व्यवहार और स्वरूप को न जान ले, परन्तु जहाँ तक आतंकवाद के मुद्दे का सवाल है, अन्तर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर इस शब्द की कोई सर्व स्वीकृत परिभाषा मौजूद नहीं है। हो सकता है इसका कारण यह हो कि विभिन्न राष्ट्रीय राज्यों में इस शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं अस्तित्व में हैं। इसके अनुरूप इस शब्द के विभिन्न किस्म के अर्थ मौजूद हैं। (जैसे बास्क, पेरू का साइनिंग स्टार, एलटीटीई, आईआरए आदि के

सम्बन्ध में) जो संबंधित देशों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अर्थ देती हैं। उदाहरण के तौर पर जेके मामले की भारतीय अवधारणा 'सीमापार आतंकवाद' के नतीजे के रूप में चारित्रित करती है, परन्तु पाकिस्तान इस जेके समस्या को स्वतंत्रता संघर्ष और इसको चलाने वालों को स्वतंत्रता सेनानी के अर्थ में लेती है। इसी प्रकार अरब/इजरायल, टर्की/ग्रीस, रूस/ टर्की, इरान/ अरब के खाड़ी देशों और इसी प्रकार अन्य बहुत से देशों के मामलों में विरोधाभासी दृष्टिकोण पाया जाता है। स्पष्टतया, उपरोक्त अराजक स्थिति यह मांग करती है कि आतंकवाद की तुरन्त लेकिन सर्वसम्मत परिभाषा दी जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ बहुत लम्बे समय तक इस समस्या से असंबंधित रहा है जिसका मुख्य कारण अमेरिका और अन्य बड़ी शक्तियों का दबाव रहा है। परन्तु आज मामला इस स्थिति में पहुँच गया है जब संयुक्त राष्ट्र संघ को परिस्थितियों के दबाव के कारण इस प्रश्न को प्राथमिकता देनी होगी और आतंकवाद की सर्वसम्मत परिभाषा को खोज निकालने की कोशिश करनी होगी।

हमारे दृष्टिकोण से आतंकवाद जो प्राचीन और मध्ययुगीन सिद्धान्तों 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और 'अन्त भला तो सब भला' के प्रेरणा से उभरा है, ये कहावतें इस धारणा को स्थापित करती है कि अपने उद्देश्यों को पाने के लिए आतंक का सहारा लिया जाए। वास्तव में आतंक एक पाशविक प्रवृत्ति है न कि मानवीय। चूँकि पशु केवल जैविक प्राणी है जबकि मनुष्य एक जैविक-सामाजिक प्राणी है। ऐतिहासिक साक्ष्य दर्शाते हैं कि मानवीय विकास के क्रूर, जंगली और बर्बर अवस्थाओं में आतंकवाद अस्तित्व में था। आतंकवाद के निशान आज दिन तक भी लगातार मौजूद हैं। परन्तु अब उभरते वैश्विक मानवीय समाज की प्रक्रिया में सामाजिक तौर पर आतंकवाद पूर्णतया अवांछित हो गया है।

आतंक मनुष्य की मूल प्रवृत्ति या आवेग का प्रतिनिधित्व नहीं करता है अत: इसकी धारणा में मानवीय प्रेरक मूल्यों का अभाव है। आतंकवाद का अपना कोई स्वतंत्र कार्यक्रम या एजेन्डा नहीं होता परन्तु रूढ़िवाद (जैसे धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, नस्ली आदि) की विभिन्न किस्मों में से आम तौर पर किसी भी हथकण्डों के रूप में काम आता रहता है। इस प्रकार पृथक तौर पर इसका अलग से कोई उद्देश्य नहीं होता परन्तु इसे केवल तरीके या तकनीक के तौर पर काम लिया जाता है।

वर्तमान परिस्थिति में आतंकवाद दो स्वरूपों में मौजूद हैं- (अ) सरकार विरोधी या गैर सरकारी समूहों द्वारा लागू किया जाने वाला आतंकवाद (ब) राजकीय आतंकवाद दोनों की एक समान तौर पर अमानवीय प्रकृति और व्यवहार है परन्तु संगठनात्मक स्वरूप भिन्न है। इन दोनों स्वरूपों को वैचारिक, राजनीतिक, विधिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तकनीकियों द्वारा समाप्त किए जाने की आवश्यकता है।

IV

इस दुखदायी घटना का कारण कहाँ निहित है

ओसामा का कहना है कि अमेरिका की खुद की नीतियों से ही मुस्लिम भड़के हैं और उसी से आतंकवाद निकला है। वह दोषारोपण करता है कि अमेरिका दुनिया में सबसे बड़ा आतंकवादी है और हर कहीं आतंकवाद का मुख्य समर्थक है।

मुल्ला उमर का कहना है कि अमेरिका पर 11 सितम्बर का हमला आम तौर पर सभी मुस्लिम देशों में खास तौर पर मध्य पूर्व के मुसलमानों पर अमेरिकी हिंसा और दमन का प्रतिशोध है।

दोनों घोषणा करते हैं कि अमेरिका के महाशक्तिवाद का केवल एक मात्र जवाब आतंकवाद है।

उपरोक्त वृतान्त के उलट अमेरिका कहता है कि अन्तराष्ट्रीय आतंकवाद विश्व में तथा कई देशों में कानून के राज पर आधारित जनवादी व्यवस्था को अस्थिर करके हर कहीं मध्ययुगीन रूढ़िवादी तानाशाही लाना चाहता है। अत: इसे सभी जनवादी ताकतों द्वारा दबा दिया जाना चाहिए, जिसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ अमेरिका के नेतृत्व में सभी जनवादी ताकतों को गठजोड़ बना लेना चाहिए।

11 सितम्बर की घटना को उचित करार देते हुए ओसामा और मुल्ला उमर जोर देते हैं कि यह हमला अमेरिकी आतंकवाद के खिलाफ था जबकि तथ्य उदघाटित करते हैं कि आक्रमण में निशाना निर्दोष और आम लोगों को बनाया गया, जिनको किसी अर्थों में महाशक्तिवाद का प्रतिनिधि साबित नहीं किया जा सकता।

अपने पक्ष में तर्क देते हुए अमेरिका दावा करता है कि आक्रमण का शिकार होने के नाते उसे संयुक्त राष्ट्र चार्टर की धारा-51 के तहत आत्मरक्षा और प्रतिकार करने का अधिकार है। विश्व को चेतावनी देते हुए यह घोषणा करता है कि अगर आतंकवाद के इस अन्तर्राष्ट्रीय भूत को इसी वक्त समाप्त नहीं किया गया तो यह कानून के राज पर कायम होने वाली नई विश्व व्यवस्था को निगल जायेगा।

हालांकि 1945 के बाद अमेरिकी व्यवहार यह दर्शाता है कि अपनी स्वयं की प्राथमिकताओं के आधार पर दुनिया को पुनर्गठित करने की कोशिश में अमेरिका ने लोकतंत्र और कानून का राज फैलाने की कोशिश नहीं की बल्कि दुनिया में कुछ बहुत अधिक भ्रष्ट, निरंकुश, अत्याचारी और सैनिक सत्ताओं, जैसे जेयरे में मोबुतु, इस्लामिक रूढ़िवाद मसलन ईरान में रजाशाह पहलवी, इजरायल में अन्ध राष्ट्रवादी यहूदीवाद, दक्षिण अफ्रिका में नस्लवादी मतान्ध, पाकिस्तान में सैनिक तानाशाह, इत्यादि को बनाने और बढ़ावा देने का कार्य किया।

भूत या वर्तमान में किसी भी देश ने दादागिरी के तौर पर ऐसी आक्रामक भूमिका नहीं निभाई जैसी कि अमेरिका ने दुनिया भर में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दखलन्दाजी कर एक रिकार्ड बना दिया है। नागासाकी और हिरोशिमा पर क्रूरता से परमाणु बमों से हमला कर दुनिया को इसने आतंकित करना शुरू किया, इसने लगातार दूसरे देशों के मामलों में दखलन्दाजी करना और मुसीबते खड़ी करना जारी रखी, जैसे कि 1950 के दशक में ईरान और मध्य अमेरिका में; 1960 के दशक में ब्राजील, क्यूबा और वियतनाम में; 1970 के दशक में चिली, दक्षिण अफ्रिका, निकारागुआ, एल सल्वाडोर और अफगानिस्तान में; 1980 के दशक में पनामा, हैती, अंगोला, लिबिया में सीधा आक्रमण करके तथा इरान-इराक युद्ध को भड़का कर और 1990 के दशक में सोमालिया, यूगोस्लाविया, कोसोवा, सूडान और अफगानिस्तान पर क्रूज मिसाइल दाग कर किया।

यह वहीं तक नहीं रूका, परन्तु इससे आगे कुछ लोक अभिमुख सरकारों को गिराने

में लगा रहा, जैसे 1960 के दशक में जेयरे में पैट्रिस लुमुम्बा की सरकार तथा 1970 के दशक में ईरान में डॉ. मोशादक की सरकार के सम्बन्ध में किया।

फिर भी ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि किसी भी सामाजिक घटनाक्रम का दीर्घकालीन कारण उसके सामाजिक ढाँचे (या व्यवस्था) में निहित होता है, जबकि तात्कालिक कारण मानवीय मनोवैज्ञानिक स्थिति या प्रेरक पहलुओं में निहित होता है।

उपरोक्त सामाजिक उसूलों के मुताबिक आज मानव समुदाय को जो मुख्य खतरा है वह गैर टिकाऊ पर्यावरण, अन्याय और असमानता वाली वैश्विक व्यवस्था के साथ ही साथ राष्ट्रीय व्यवस्थाओं–जहाँ ताकतवर कमजोर की छाती पर चढ़ा हुआ है और अमीर गरीब पर तथा धन और सत्ता ही न्याय और सत्य के स्वीकृत मानदण्ड बन गये हैं–के जरिए, वैश्विक और राष्ट्रीय दोनों स्तर पर है।

यह कथन निम्न बिन्दुओं से पूर्णतया स्पष्ट होता है–

(अ) पर्यावरण की बिगड़ती हालत जिसमें संसाधनों–हवा,पानी,जमीन, जंगल, जैव-विविधता, इत्यादि के क्षय होने की स्थिति है।

(ब) संयुक्त राष्ट्र संघ जो दुनिया की सबसे उच्च निर्णय लेने वाली संस्था है तथा उसकी सुरक्षा परिषद पर 5 सबसे अधिक परमाणु शक्तिसम्पन्न उन सैनिक देशों ने अधिकार जमा रखा है जिन्हें वीटो पावर और स्थाई सदस्यता हासिल है।

(स) कुछ आर्थिक तौर पर सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यों (देशों) ने आई एम एफ और विश्व बैंक दोनों संस्थाओं में आर्थिक हैसियत के मुताबिक वोट की ताकत के आधार पर प्रभुत्व जमा रखा है।

(द) पाँच बड़ी परमाणु शक्तियों ने वास्तव में परमाणु एकाधिकार प्राप्त किया हुआ है जिसे सीटीबीटी के तहत गारन्टी प्राप्त है।

(य) कुछ मुट्ठी भर विकसित देश (जो दुनिया की आबादी का 20 प्रतिशत हैं) दुनिया के आर्थिक और वित्तीय संसाधनों के 80 प्रतिशत पर नियंत्रण किए हुए हैं, जबकि करीब 80 प्रतिशत दुनिया के लोग (जो 130 देशों में रहते हैं) दुनिया के 20 प्रतिशत से कम संसाधनों पर जीवन बसर करते हैं।

(र) दुनिया के प्रत्येक राष्ट्रीय राज्य (देश) में और खास करके विकासशील देशों में जहाँ उनकी एक तिहाई आबादी गरीबी रेखा के नीचे रहती है–धनवान और गरीबों के बीच अत्यधिक असमानता है।

(ल) प्रत्येक देश में जनवादी या संसदीय व्यवस्था भ्रष्ट और निरंकुश पार्टियों के प्रभुत्व में हैं और धन और सत्ता-बल पर आधारित हैं–इस प्रकार आम लोगों के बहुमत की शासन में कोई भी आवाज नहीं है।

मनुष्य समुदाय को आज जो खतरा है उसके तात्कालिक कारणों (यानि मानवीय मनोवैज्ञानिक स्थिति या प्रेरक पहलु) पर ध्यान दें तो हमारे दृष्टिकोण से वह केवल मात्र एक मूल पहलु यानि स्व हित पर जोर देने का परिणाम है जो मानवीय जीवन में आज सब कुछ बना हुआ है।

वास्तव में, स्व हित पशु जगत में नैसर्गिक मूल प्रवृत्ति है, जबकि मनुष्य का जब से प्रादुर्भाव हुआ है वह स्वभावत: जैविक-सामाजिक है। अर्द्ध सामाजिक चरित्र की

गुणात्मकता पशु प्रजाति से मानव प्रजाति की भिन्नता का एकमात्र गुण है। मनुष्य में जब सामाजिक पहलु नहीं रहता तो उसकी जीवन शैली पशु समान हो जाती है।

आज स्व हित (निजी हित) की एकमात्र नैसर्गिक प्रवृत्ति मनुष्य की सम्पूर्ण जीवन शैली जैसे उसका परिप्रेक्ष्य, प्रेरणा, उद्देश्य, प्राथमिकता, मानदण्ड और आचार-व्यवहार को निर्धारित करती है।

जब से धन और सत्ता प्रभुत्व में आये हैं यह स्व हित की उच्चतम स्थिति का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, सारी दुनिया इन दो जीवन दायी अमृत के पीछे भाग रही है। इस धन और सत्ता को प्राप्त करने के व्यापार ने (जिसने गैर टिकाऊ पर्यावरण व्यवस्था और अत्यधिक अन्याय व असमानता की मानव व्यवस्था खड़ी कर दी है) अब दुनिया को गंभीरतम पर्यावरणीय और मानवीय बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है।

इस चेतावनी भरी स्थिति में जबकि समझदार लोग एक उचित और तार्किक रास्ता खोजने में लगे हैं तो भाग्यवादी, रहस्यवादी, प्रकृति से ऊपर (सुपर नेचुरेलिस्ट) तथा पौराणिक मतों के खिलाड़ी लोगों को गहरे समुद्र में धकेल रहे हैं जहाँ से वे कभी भी दुबारा नहीं उबर सकेंगे। इसमें से एक किस्म आतंकवाद है।

आतंकवाद कोई बाहर से नहीं आता, यह मौजूदा सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है। आतंकवादियों के ऐतिहासिक जीवन का सामाजिक अध्ययन यह दर्शाता है कि वे अपने निश्चित वातावरण की उपज है जिनका प्रत्येक का अपना सामाजिक परिप्रेक्ष्य तथा व्यक्तिगत प्रेरणा है। साधारणतया आतंकवादियों में सामान्य धारा यह है कि वे अपनी जिन्दगी में उतने सफल नहीं हो सके जितनी उन्होंने पूर्व में कल्पना की थी। अत: वे महसूस करते हैं कि आवश्यक मसलों पर वे उचित असर नहीं डाल पाये हैं। वे अपने आपको समाज का पीड़ित पक्ष समझते हैं और अपनी मुश्किलों का कारण समाज को मानते हैं।

जब अवसर मिलता है वे (यानि, आतंकवादी) पूर्व में उत्पीड़कों द्वारा उन्हें आघात मिला है बदले में वे उसी के अनुरूप पूरी ताकत से उन पर हमला करते हैं। वे उतनी ही बर्बादी का पैमाना कायम करना चाहते हैं जितना उन्हें आघात लगा हुआ है।

स्वर्ग पाने की मानसिकता रखने वाले (यानि स्व प्रेरित आत्मघाती) आतंकवादी विश्वास करते हैं कि अच्छाई और बुराई के बीच सार्वत्रिक युद्ध का वे एक हिस्सा हैं। अच्छाई के तरफदार होने के नाते वे विरोधी को पहुंचाये जाने वाले नुकसान को वैधानिक समझते हैं और आगे की दुनिया (जहाँ सीधा सर्वशक्तिमान शासन है) में अच्छे भविष्य को सुनिश्चित करना चाहते हैं।

V

आतंकवाद का एक समुचित उत्तर क्या होना चाहिए

आतंकवाद की समस्या से निपटने के लिए 5 स्तरीय निम्न एकीकृत कार्यक्रमों की आवश्यकता है:-

(अ) वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ क्या है, यानि विद्यमान सामाजिक वास्तविकता कैसी है जिसमें आतंकवाद का प्रत्युत्तर देना है?

(ब) 11 सितम्बर की अमानवीय घटना पर अमेरिका का घोषित प्रत्युत्तर क्या वर्तमान सामाजिक वास्तविकता के अनुरूप है?

(स) 11 सितम्बर की अमानवीय घटना पर अमेरिका के घोषित प्रत्युत्तर के अलावा क्या कोई अन्य विकल्प है?

(द) आतंकवाद के दीर्घकालीन कारण (यानि विद्यमान सामाजिक व्यवस्था) को कैसे हटाया जाए?

(य) आतंकवाद के तात्कालिक कारण (यानि मानवीय मनोवैज्ञानिक या प्रेरणा के पहुल) को कैसे हटाया जाए?

प्रथम सवाल पर तमाम अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं, साथ ही साथ तमाम राष्ट्रीय राज्य इस तथ्य पर एकमत हैं कि आज की दुनिया की मुख्य वास्तविकता वैश्विक आर्थिक मंदी है जिसमें अमेरिका की आर्थिकता और आगे सिकुड़ रही है और प्रतिदिन कमजोर होती जा रही है। सभी विशेषज्ञों की आर्थिक भविष्यवाणियां यह प्रकट करती हैं कि मंदी से शीघ्र उभरने की दूर-दूर तक कोई संभावनाएं नहीं हैं।

द्वितीय प्रश्न पर अमेरिका का लम्बी लड़ाई का विकल्प दुनिया के लोगों के हितों के लिए आम तौर पर तथा सम्बन्धित देशों के लिए विशेष तौर पर बहुत खतरनाक है। प्रथम यह चल रहे आर्थिक संकट को और खराब कर देगा जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व साथ ही साथ प्रत्येक देश के उत्पादन में गिरावट आयेगी। द्वितीय, यह दुनिया में गरीबी, बेरोजगारी तथा खस्ताहाल, विशेषकर विकासशील देशों में इसकी और वृद्धि करेगा। तृतीय, यह और अधिक सामाजिक, अशान्ति उत्पन्न करेगा जिससे असामाजिक तत्वों को अस्थिरता और अव्यवस्था पैदा करने का मौका मिलेगा।

आतंकवाद के विरूद्ध लम्बे युद्ध का विकल्प अमेरिका की महाशक्तिवादी मानसिकता से निकल रहा है जो आतंकवाद को एक कानून और व्यवस्था तथा अमेरिका की सत्ता को चुनौती मानता है और इसलिए उसे हथियारों के बल पर कुचलना आवश्यक मानता है। अमेरिका की दृष्टि में यह कदम हाल ही में उसकी प्रतिष्ठा में पहुंचे आघात को भरने में मदद देगा और आगे दुनिया पर प्रभुत्व जमाने की स्थिति को मजबूत करेगा।

तृतीय, प्रश्न पर दुनिया के मानव समुदाय के समक्ष एक वास्तविक और तर्कसंगत विकल्प है कि यह अपील की जाए कि 11 सितम्बर के मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ अपने हाथ में ले और उसका समाधान निकाले। अपराधियों के विरूद्ध समस्त प्रमाणों को दुनिया के सामने प्रकाशित करे, केवल इस मामले को निपटाने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित करे, अपराधियों को इस न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए हर कोशिश करे और उस न्यायालय से यह निवेदन करे कि तथ्यों और कानून के आधार पर वास्तविक न्याय किया जाए।

एक मानव हितैषी और प्रकृति हितैषी कार्यक्रम

चौथे सवाल के बारे में यह आवश्यक है कि अन्तरनिर्भर राष्ट्रों की वर्तमान दुनिया के केन्द्र के तौर पर संयुक्त चीजों को सही करने के लिए विद्यमान विश्व व्यवस्था को एक वास्तविक और तर्कसंगत आधार पर पुनर्गठित करे और उसे सामयिक बनाए।

दुनिया को पुनर्गठित और सामयिक बनाने की प्रथम आवश्यकता है कि एक विश्व के दृष्टिकोण को स्वीकार करें जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ का 1945 का चार्टर सम्प्रभुता सम्पन्न तथा स्वतंत्र राष्ट्रों का दृष्टिकोण लेता है।

'एक विश्व' के दृष्टिकोण को इस मूलभूत उसूल की आवश्यकता है जिसमें वैश्विक गतिविधियों का केन्द्र जनता और पर्यावरण हो (यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा की जाए और दूसरी तरफ पर्यावरण संरक्षण का ख्याल रखा जाए)।

जनता-पर्यावरण प्राथमिकता (जो मानव विकास के लिए अति आवश्यक है) की मांग है कि नए किस्म का विकास मॉडल अख्तियार किया जाए जो पांच मूल सिद्धान्तों- यानि, पर्यावरण टिकाऊपन, समता (या सामाजिक न्याय), उत्पादकता, लोकतंत्र और पारदर्शिता पर आधारित हो। ये पाँच मूल सिद्धान्त मानव जाति के जैविक-सामाजिक प्रकृति के अनुकूल हैं, यानि मनुष्य के निजी हित और उसके सामाजिक हितों को जोड़ते हैं।

यह जनता-पर्यावरण आधारित विकास का मॉडल विकास की सामयिक धारणा का प्रतिनिधित्व करता है जबकि दो पारम्परिक राष्ट्रीय विकास मॉडल, यानि, कारपोरेट नेतृत्व वाला तथा सरकार निर्देशित मॉडल सामयिक नहीं है। जबकि कारपोरेट नेतृत्व वाला विकास मॉडल मुनाफे या उत्पादकता (जो केवल धन सम्पन्न लोगों के हितों को सुनिश्चित करता है) को अपने एकमात्र उद्देश्य के रूप में तवज्जों देता है। सरकार निर्देशित मॉडल उत्पादन के साधनों के समाजीकरण (या राष्ट्रीयकरण) को अपना एकमात्र लक्ष्य बनाता है। (जो सत्ताधारी राजनीतिज्ञों और अफसरशाहों के हितों की सेवा करता है)। ये दोनों पारम्परिक राष्ट्रीय मॉडल मानव जाति के निजी हित की सेवा करते हैं और उसके जैविक-सामाजिक चरित्र की यानि निजी और सामाजिक दोनों हितों की) सेवा नहीं करते हैं। पुन: ये दोनों पर्यावरण को किसी तरह की प्राथमिकता नहीं देते तथा आर्थिक या वृद्धि की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक और पारदर्शी मानदण्डों को कोई स्थान नहीं देते। कारपोरेट मॉडल समता (सामाजिक न्याय) के सिद्धान्त को पूर्णतया नकारता है जबकि सरकार निर्देशित सिद्धान्त राजनीतिक समता और उत्पादकता की पूर्णतया अनदेखी करता है।

मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास के लिए सबसे पहले स्थिर और स्थायी शान्ति और सुरक्षा की आवश्यकता है। ऐसी शांति स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रभुत्व, विशेषाधिकार, विशेष शक्ति प्रदान करने वाली राजनीति को रद्द किया जाए, विश्व में पूर्ण निशस्त्रीकरण करके और परमाणु हथियारों का पूर्ण नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र को सौंप कर टकराव की पद्धति का अन्त किया जाए। विश्व में राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असमानता का अन्त किया जाए और विकसित व विकासशील देशों के बीच अन्तर को पाटा जाए।

द्वितीय, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहता है जो सम्पूर्णतया जनवादी उसूलों, कार्यप्रणाली और ढाँचे पर आधारित हो। ऐसी सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि यू एन ओ की व्यवस्था में विशेष वीटों शक्ति के नियम को समाप्त किया जाए और राष्ट्रीय राज्य के प्रबंध को–पार्टियों की केन्द्रीकृत शक्ति में आवश्यक कमी करने के साथ-साथ निर्णय लेने में लोगों को अधिकतम सम्भव

शक्तिशाली बनाने के उसूल को सुनिश्चित करते हुए–पुनर्गठित किया जाए।

तृतीय, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास के लिए एक ऐसे तर्कसंगत और वास्तविक अर्थशास्त्र की मांग है कि जिसकी अवधारणाएं, कानूनों और नियमों को दो उच्च प्राथमिकताओं (यानि, मानवजाति और पर्यावरण) के तहत और पाँच उसूलों (यानि पर्यावरणीय टिकाऊपन, समता, उत्पादकता, जनवाद और पारदर्शिता) के मुताबिक ढालने की जरूरत है। मानव की जैव-सामाजिक प्रकृति के मद्देनजर एडम स्मिथ 'निजी हित' के बुनियादी आर्थिक उसूल और मार्क्स के हर कहीं राजकीय राष्ट्रीयकरण का बुनियादी नियम, दोनों ही मानव की इस जैव सामाजिक प्रकृति के लिए एक तरफा साबित हुए हैं।

चतुर्थ, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास जीवन के एक ऐसे रास्ते (या जीवन पद्धति) का आव्हान करता है जिसमें आधारभूत मानवीय और पर्यावरणीय मूल्य शामिल हों और जिससे लोगों के बीच तर्कसंगत, मानवीय और पर्यावरणीय सोच, व्यवहार और संगठन को बढ़ावा मिलता हो।

पाँचवां, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास को वैज्ञानिक यथार्थवाद की धारणा चाहिए जिससे प्राकृतिक घटनाक्रम का अध्ययन और विश्लेषण ठोस सूचना और आंकड़ों के आधार पर इक्ट्ठे किए गए वैज्ञानिक तथ्यों और सामाजिक वस्तुगतता की रोशनी में किया जाए।

अन्तिम तौर पर, पांचवें सवाल पर नजर डालें तो पुरानी सामाजिक व्यवस्था की प्रक्रिया में किसी भी पुनर्गठन और उसे सामयिक (आधुनिक) बनाने के लिए सम्पूर्ण वैधानिक कानूनी ढाँचे की आदमी की जैव-सामाजिक प्रकृति के आधार पर (यानि मानव के निजी हित के साथ उसके सामाजिक हित में समन्वय बैठाकर) ढाला जाए–इस प्रकार सामाजिक उन्नति को त्वरित करने के लिए वास्तविक मानवीय मनोवैज्ञानिक हालात या प्रेरक पहलु को कायम किया जाए।

VI

सार-संक्षेप

आज मानवीय गति की मुख्य दिशा शांति, जनवाद सहयोग और एकीकरण की ओर है। परनतु निरन्तर कमजोर पड़ रही प्रभुत्ववादी (यानि महाशक्तिवाद, अन्ध राष्ट्रवाद उग्र राष्ट्रवाद इत्यादि), रूढ़िवाद (यानि धार्मिक निर्देशित, कारपोरेट नेतृत्व, सरकार निर्देशित, इत्यादि सिद्धान्तों) और एकतरफावाद (यानि व्यक्तिवाद, अतिवाद, स्वरूपवाद और सभी तरह के एकतरफा दृष्टिकोणों) की ताकतें कदम ब कदम प्रगति को रोक रही है। परन्तु असामयिक घटनाक्रम नए उभरते घटनाक्रम की गति के सामने लम्बे समय तक टिक नहीं पायेंगे।

पर्यावरण और मानव हितैषी विश्व व्यवस्था की स्थापना की प्रक्रिया को आगे ले जाने के लिए यह जरूरी है कि परिस्थिति के मुताबिक लोगों के बीच काम लिया जाए। इस कार्य में विभिन्न मुद्दों पर विचार-विमर्श करना शामिल है। तथ्यों की रोशनी में जब हम किन्हीं विषयों और मुद्दों पर विचार-विमर्श करें तब हमें अपने आम नजरिये को संबंधित तथ्यों से जोड़कर अपने बिन्दुओं की व्याख्या करनी चाहिए। हमें यह शैली हर जगह काम

में लेनी चाहिए–चाहे आम सभा हो, सामूहिक बहस हो या व्यक्तिगत बातचीत हो, यह हमारी स्वयं की और हमारे से संबद्ध लोगों को जागरूक करने में मदद करेगी।

30.9.2001

VII

छपते-छपते

जब उपरोक्त लेख छप ही रहा था तब यह खबर आई कि अमरिका और ब्रिटेन के हवाई जहाजों ने काबुल, कंधार और जलालाबाद के सैनिक ठिकानों पर हमला कर दिया है।

महाशक्तिवादी तर्क के ठीक मुताबिक अमेरिका ने 11 सितम्बर को आतंकवादियों द्वारा किये गए घातक हमले की अन्यायकारी तर्ज के मुताबिक ही अन्यायकारी तरीका अख्तियार किया है। यह पुरानी कहावत है कि समान पंखों वाली चिड़ियाएं एक जैसी उड़ान भरती है।

अमेरिका के हमले की औचित्यहीनता प्रथम, इस तथ्य में निहित है कि इसने केवल एक व्यक्ति की गलती के बदले सम्पूर्ण अफगानिस्तान को लक्ष्य बनाया है और इसी प्रकार अन्य राष्ट्रीय राज्यों (देशों) पर हमला करने की धमकी दी है।

द्वितीय, अमेरिका के हमले का अविवेकपन इस तथ्य में निहित है कि इस मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ (जो इस समय विश्व का केन्द्र है) को सौंपने के बनिस्पत अमेरिका स्वयं ने पुलिसमैन के साथ-साथ न्यायाधीश की भूमिका भी अपने हाथ में ले ली है।

तृतीय, अमेरिका के हमलों की अतार्किकता इस तथ्य में है कि दुनिया भर के लोगों की मांग होते हुए भी अमेरिका ने मुख्य संदेहास्पद अपराधी और उनके प्रेरकों के विरूद्ध आज तक एक भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया।

चतुर्थ, अमेरिकी हमले की उपयुक्तहीनता इस तथ्य में निहित है कि हमला करने से पूर्व अमेरिका को आत्म विश्लेषण करना चाहिए था कि दुनिया भर के लोग अमेरिका को क्यों नापसन्द करते हैं जिसके बारे में अमेरिका की एजेन्सियों ने तथ्यात्मक प्रमाण इकट्ठे कर रिपोर्ट दी हुई थी, जबकि अमेरिका ने दुनिया को विज्ञान, तकनीक, राजनीति, आर्थिकता, उत्पादकता, कुशलता, गुणवत्ता आदि क्षेत्रों में ढेर सारा ज्ञान दिया है।

पंचम, अमेरिका के हमले की अनुचितता इस तथ्य में निहित है कि फिलीस्तीनी, जम्मू-कश्मीर, साइप्रस, आयरिस, बास्क, कूर्द समस्या, चेचन्या आदि के संबंध में रोजाना शांति बनाए रखने की हिदायतें देने के बावजूद खुद उसने आतंकवादियों की तरह ही अचानक दुनिया भर में आग लगाने वाले भयानक राक्षक का रूप धारण कर लिया।

समाज में सभी अवांछित घटनाक्रम शायद इसी फैशन में क्रियान्वित होते हैं और इसीलिए दुनिया के लोगों ने महाशक्तिवाद और आतंकवाद दोनों को अस्वीकार कर दिया है तथा मानवीय और पर्यावरणीय मूल्यों को विकल्प के तौर पर चुना है।

विनाश से पूर्व अभी भी वापस लौटने का वक्त है। बहुत सी कमजोरियों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ को अब भी दुनिया को कोई रास्ता दिखाना चाहिए।

7.10.2001

***

जम्मू-कश्मीर समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चा द्वारा 11 सितम्बर की विनाशकारी घटनाओं पर वक्तव्य

जम्मू-कश्मीर समस्या के त्रिपक्षीय हल के लिए मोर्चा आम तौर पर अमेरिकी जनता और खास तौर पर शोकाकुल परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना और एकजुटता का इजहार करता है। यह निर्दोष और असम्बन्धित नागरिकों के खिलाफ किए गये अमानवीय, बर्बर और विनाशकारी हमले की निंदा करता है।

इस नितान्त और घृणित कार्यवाही से उत्पन्न शोक, संताप और क्रोध के वातावरण ने अब आंतकवादियों को उसी तरह का दण्ड देने और प्रतिशोध लेने (बदला लेने) का आव्हान करने वाले लोगों के लिए रास्ता हमवार कर दिया है। किन्तु इस प्रतिशोधी मानसिकता (बदले की भावना) से अधिक नुकसानदेह कोई चीज नहीं हो सकती जो सम्पूर्ण मानवजाति को हिंसा/प्रतिहिंसा के कुचक्र में झोंक देगी।

इस अनर्थकारी घटनाक्रम के वक्त मोर्चा सभी ताकतों (बड़ी ताकतों सहित) से विनम्र अपील करता है कि आजकल के सभी मानवीय विवादों (चाहे वे आतंकवाद या आतंकवाद विरोधियों द्वारा पैदा किए गए हों) का हल सैनिक दृष्टि से नहीं किया जा सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि हालिया उभरे अन्तरनिर्भर मानवीय समुदाय (जो अब राष्ट्रीय राज्यों के रूप में विद्यमान हैं) की प्रथम आवश्यकता स्थिर और स्थायी शान्ति की है। स्पष्टतया, ऐसी शान्ति सभी चल रहे विवादों और झगड़ों में सम्मिलित सभी पक्षों के हितों में समन्वय बैठाकर उनकी आपसी सहमति से बातचीत और समझौतों के जरिए एक व्यावहारिक और न्यायिक हल करके हासिल की जा सकती है।

अमेरिका के नेतृत्व में विश्वव्यापी आतंकवाद विरोधी 'रणनीतिक साझेदारी' के निर्माण का प्रतिशोधी दृष्टिकोण भी मानवीय हितों के लिए उतना ही हानिकारी है जितना की रूढिवादी आतंकवाद। नाटो या किसी अन्य मोर्चे के तहत 'जनवाद और स्वतंत्रता' के नाम पर किए जाने वाले सभी एक तरफा हल विद्यमान अन्तरनिर्भर विश्व की अनदेखी करने वाले होंगे तथा हर कहीं असुरक्षा का वातावरण पैदा करेंगे। मानवीय हितों की मांग है कि हम सबको (जैसे को तैसा जवाब देने की मानसिकता रखने वाले लोगों सहित) एक वास्तविकता पर आधारित सोच बनानी चाहिए।

मोर्चे की यह पक्की राय है कि इन नाजुक घड़ियों में जब दुनिया जोखिम के कगार पर खड़ी है और उसके सामने सह-अस्तित्व या सर्व-विनाश का केवल मात्र विकल्प मौजूद है–ऐसे वक्त में संयुक्त राष्ट्र (यूएन) को अपनी निष्क्रियता त्याग देनी चाहिए, बहादुरी से आगे आना चाहिए तथा बुद्धिमानी से मामलों को अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

यू एन को सबसे पहले अमेरिकी शहरों पर हुए आतंकी हमले का तर्कसंगत और न्यायिक हल की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए जिससे अमेरिकन जनता को न्याय प्रदान किया जाए और अपराधियों और उनके सहयोगियों को उचित दण्ड दिया जाए।

द्वितीयत: संयुक्त राष्ट्र को स्थानीय या विश्व स्तरीय आतंकवाद के मूल कारण को हटाना चाहिए जो विश्वभर में चल रहा सामाजिक अन्याय और असमानता के अलावा और कुछ नहीं है।

तृतीयत:, संयुक्त राष्ट्र को एक न्यायिक और व्यवहारिक कार्यक्रम और इसको लागू करने की योजना बनाकर समता, जनवाद, पारदर्शिता, उत्पादकता और पर्यावरणीय टिकाऊपन के आधार पर नई विश्व व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए।

सम्पूर्ण ऐतिहासिक अनुभव इस तथ्य को सिद्ध करता है कि मानव समुदाय ने हमेशा ही नाजुक और निर्णायक घड़ियों में सहज बुद्धि से काम लिया है। **15.9.2001**

***

दक्षिण एशिया के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद विषय पर 29 नवम्बर, 2001 को गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी अमृतसर, में आयोजित एक सेमीनार में विचार-विमर्श के लिए आर.पी.सराफ द्वारा प्रस्तुत एक लेख

राष्ट्रीय राज्य आतंकवाद को पैदा करने के मुख्य कारक राज्य और ग्रुप आंतकवाद दोनों ही अमानवीय सैनिक समाधान निरर्थक बन गया है आतंकवाद का जवाब एक प्रकृति-मानव हितैषी कार्यक्रम में निहित

I

आतंकवाद : स्थानीय से विश्वव्यापी मामले तक

आतंकवाद अचानक ही विश्व के केन्द्रीय स्तर पर आ गया। 11 सितम्बर को न्यूयार्क और वाशिंगटन पर आतंकवादियों के कायरतापूर्ण हमले (जिसके लिए सम्पूर्ण विश्व ने अमेरिकन लोगों, खासकर शोकसन्तप्त परिवारों के प्रति दु:ख और हमदर्दी अभिव्यक्त की और आतंकवादियों की भर्त्सना की) के पहले आतंकवाद का विषय समाचार माध्यमों में कभी-कभार ही आता था। इससे पहले विश्व में कहीं भी किसी भी समय लोगों के ध्यान का केन्द्र नहीं रहा। इससे पहले जब कभी भी जहाँ भी यह सामने आता तो इसे एक स्थानीय घटना माना जाता। यहाँ तक कि अमेरिका ने भी इस विषय पर मुश्किल से ही कभी कोई जोर दिया। यह कभी-कभी इस शब्द को चुनिन्दा तौर पर अलग-अलग घटनाओं पर काम में लेता था। उदाहरण के लिए, इसने अभी तक जम्मू-कश्मीर में सीमा पार के आतंकवाद की भारत सरकार की धारणा को स्वीकार नहीं किया है। यह अभी भी इसे पृथकतावादी आन्दोलन परिभाषित कर रहा है और जम्मू कश्मीर समस्या को भारत और पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय विवाद कहता है।

पहली बार, 11 सितम्बर की दु:खद घटना के बाद अमेरिका ने 'आतंकवाद' की शब्दावली पर जोर देकर इसे एक अन्तरराष्ट्रीय विषय माना और दुनिया को चेतावनी दी कि इस दानव को पहली बार में ही समाप्त नहीं किया तो यह पूरे सामाजिक ताने-बाने को तोड़ देगा, पूरी दुनिया में असुरक्षा और अस्थिरता को पैदा कर देगा। लेकिन, इसने न तो अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद की धारणा को, न इसके संगठनात्मक वर्गीकरण को, और न इसके पैदा होने के बुनियादी कारण को परिभाषित किया है तथा न ही यह स्पष्ट किया है कि क्यों आतंकवादी (जो सुशिक्षित, तकनीकी के जानकर, साधन सम्पन्न सामाजिक स्तर

के और साधारण हथियार जैसे गत्ता काटने के चाकुओं के साथ) अमेरिका (जो विश्व का सर्वोच्च शक्तिशाली व धनवान देश है) को ही अपने विध्वंशात्मक हमले का निशाना बनाया। क्या आतंकवादियों का हमला स्व-प्रेरित था अथवा किसी अमेरिकी कार्रवाई ने उन्हें ऐसा करने के लिए उकसाया? स्वभावतया, कोई भी इनका उत्तर नहीं दे सकता, जबकि वह आतंकवाद के अर्थ, गुण और लक्षणों पर पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता।

II

आतंकवाद : अर्थ, कार्यशैली और ढाँचा

यह सर्वविदित तथ्य है कि कोई भी प्रभावी तौर पर किसी घटनाक्रम से तब तक नहीं निपट सकता जब तक कि वह पर्याप्त तौर पर उसकी परिभाषा, यानि उसकी प्रकृति, व्यवहार और स्वरूप को जान न ले, परन्तु जहाँ तक आतंकवाद के मुद्दे का सवाल है, अन्तरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर इस शब्द की कोई सर्वस्वीकृत परिभाषा मौजूद नहीं है। हो सकता है इसका कारण यह हो कि विभिन्न राष्ट्रीय राज्यों में इस शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ अस्तित्व में है। इनके अनुरूप इस शब्द के विभिन्न किस्म के अर्थ मौजूद है (जैसे स्पेन का बास्क, पेरू का साइनिंग स्टार, ब्रह्मा के कारेन, इराक, ईरान और टर्की के कुर्द, दी अमेरिका के रेड इण्डियन्स और अन्य मूल निवासी, एलटीटीई, आईआरए आदि के सम्बन्ध में) जो सम्बन्धित देशों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अर्थ देते हैं। उदाहरण के लिए जे के मामले की भारतीय अवधारणा जेके समस्या को 'सीमा पार आतंकवाद' के नतीजे के रूप में चारित्रित करती है परन्तु पाकिस्तानी इसी जेके समस्या को 'स्वतंत्रता संघर्ष' और इसके चलाने वालों को स्वतंत्रता सेनानी के अर्थ में लेती है। इसी प्रकार अरब/इजरायल, टर्की/ग्रीस, रूस/टर्की, इरान/अरब की खाड़ी देशों और इसी प्रकार अन्य बहुत से देशों के मामलों में विरोधाभाषी दृष्टिकोण पाया जाता है। स्पष्टतया, उपरोक्त अराजक स्थिति यह माँग करती है कि आतंकवाद की तुरन्त लेकिन सर्वसम्मत परिभाषा दी जाए। संयुक्त राष्ट्र संघ बहुत लम्बे समय तक इस समस्या से असम्बन्धित रहा है जिसका मुख्य कारण अमेरिका और अन्य बड़ी शक्तियों का दबाव रहा है। परन्तु आज मामला इस स्थिति में पहुँच गया है जहां संयुक्त राष्ट्र संघ को इस प्रश्न को प्राथमिकता देनी होगी और आतंकवाद की सर्वसम्मत परिभाषा को खोज निकालने की कोशिश करनी होगी।

हमारे दृष्टिकोण से आतंकवाद जो प्राचीन और मध्ययुगीन सिद्धान्तों 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और 'अन्त भला तो सब भला' की प्रेरणा से उभरा है, ये कहावतें इस धारणा को स्थापित करती है कि अपने उद्देश्यों को पाने के लिए आतंक का सहारा लिया जाए। वास्तव में आतंक एक पाशविक प्रवृत्ति है न कि मानवीय। चूंकि पुश केवल जैविक प्राणी है जबकि मनुष्य एक जैविक-सामाजिक प्राणी है। ऐतिहासिक साक्ष्य दर्शाते हैं कि मानवीय विकास के क्रूर, जंगली और बर्बर अवस्थाओं में आतंकवाद अस्तित्व में था। आतंकवाद के निशान आज दिन तक भी लगातार मौजूद हैं। परन्तु अब उभरते वैश्विक मानवीय समाज की प्रक्रिया में सामाजिक तौर पर आतंकवाद पूर्णतया अवांछित हो गया है।

आतंक मनुष्य की मूल प्रवृत्ति या आवेग का प्रतिनिधित्व नहीं करता, अत: इसकी धारणा में मानवीय प्रेरक मूल्यों का अभाव है। आतंकवाद का अपना कोई स्वतंत्र कार्यक्रम

या एजेण्डा नहीं होता परन्तु विभिन्न किस्मों (जैसे धार्मिक, राजनीतिक, नस्ली आदि) में से आम तौर पर किसी के भी हथकण्डों के रूप में काम आता रहता है। इस प्रकार पृथक तौर पर इसका अलग से कोई उद्देश्य नहीं होता, परन्तु इसे केवल तरीके या तकनीक के तौर पर काम में लिया जाता है।

वर्तमान परिस्थिति में आतंकवाद दो स्वरूपों में मौजूद है- (अ) सरकार विरोधी या गैर सरकारी समूहों द्वारा लागू किया जाने वाला आतंकवाद (ब) राजकीय आतंकवाद यानि राष्ट्रीय राज्यों द्वारा काम में लाया जाने वाला आतंकवाद। दोनों ही किस्मों की एक जैसी ही मानवीय प्रकृति और व्यवहार है, यद्यपि संगठनात्मक स्वरूप भिन्न है। गैर-सरकारी आतंकवाद किसी नियमों या प्रक्रियाओं को मानने के लिए बाध्य नहीं है और जब कोई सरकार, राजकीय आतंकवाद को अपनाती है तो वह बुनियादी राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय कानूनों, सम्मेलनों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् 1966 में आयोजित दो अधिवेशनों द्वारा पारित मानव अधिकारों का हनन करती है।

III

विश्व आतंकवाद : मूलभूत लक्षण

विश्व आतंकवाद के आकार, ढाँचा, कार्यक्रम और व्यवहार पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि 95 प्रतिशत आतंकवाद विभिन्न प्रकार के समूहों में निर्मित है जिनमें से प्रत्येक किसी न किसी देश से सम्बन्धित है। उनमें से लगभग सभी या तो धार्मिक, जातीय अथवा भाषाई अल्पसंख्यक समूह हैं। संगठनात्मक रूप से वे अपना गुप्त ढाँचा रखते हैं। उनका एक-सूत्रीय कार्यक्रम सम्बन्धित बहुमतवादी राष्ट्रीय राज्य से अलग होना अथवा अपनी पहचान से सम्बन्धित कुछ राजनैतिक-संवैधानिक मान्यता प्राप्त करना होता है। उनका तर्क है कि वे बहुमत प्रभुत्व सरकार के हाथों भेद-भाव का शिकार हैं। आगे कहते है कि वे सभी शान्तिपूर्ण उपायों को पूरी तरह काम में ले चुके हैं और सशस्त्र संघर्ष तो उनका अन्तिम सहारा है। इस तरह के लगभग सभी संघर्ष बहुधार्मिक या बहुजातीय देशों तक सीमित है। यह जानना अतिमहत्वपूर्ण होगा कि वर्तमान विश्व में 5000 से अधिक बड़ी या छोटी सामाजिक पहचाने हैं।

बचे हुए 5 प्रतिशत आतंकवादियों का विशिष्ट लक्षण यह है कि उनका अन्तर्राष्ट्रीय एजेण्डा (कुछ भिन्नता के साथ) होता है लेकिन कोई मूलभूत इलाका नहीं होता, वे व्यक्तिगत लड़ाके के रूप में कार्यरत होते हैं, और वैचारिक राष्ट्रीय पहचान वाले ग्रुप को अपनी सेवाएँ मुफ्त देते हैं।

उपर्युक्तानुसार, यह है कि प्रत्येक बहुरंगी देश में बहुतमवादी राष्ट्रवाद का उस देश में आतंकवाद पैदा करने में ज्यादा योगदान है।

बहरहाल, राष्ट्रीय-राज्य आतंकवाद (विश्व के सभी देशों में) का सबसे निकृष्ट अमानवीय अपराध, हमारे ग्रह पृथ्वी के पर्यावरणीय संसाधनों का (चाहे राज्य अथवा चल रही सरकार की) वित्तीय जरुरतों को पूरा करने के लिए बर्बाद किया जा रहा है, नुकसान पहुँचाया जा रहा है। पर्यावरणीय आतंकवाद जो इस पृथ्वी पर सम्पूर्ण जैव-जगत के अस्तित्व को ही चुनौती पैदा करता है, यह मानवविरोधी आतंकवाद से अधिक जघन्य है।

यदि कोई राष्ट्रीय राज्यों, खासकर विकसित और भूतपूर्व उपनिवेशी शक्तियों वाले राज्य के पिछले पर्यावरणीय रिकार्ड का सिंहावलोकन करें तो पाते हैं कि राष्ट्रीय-राज्य का पर्यावरणीय आतंकवाद ने अपने 200 वर्षों के अनोखे शासन में गम्भीर पारिस्थितिकी असन्तुलन पैदा कर दिया जिसका मानव समुदाय से अब सामना है।

IV

आतंकवादियों ने अमेरिका पर हमला क्यों किया?

आतंकवादियों ने 11 सितम्बर के अभूतपूर्व अमानवीय हमले का निशाना अमेरिका को ही क्यों बनाया? क्या अमेरिका इनके उद्देश्य-पूर्ति में मुख्य बाधाकारी था? आखिरकार वे इसके प्रति इतने प्रतिशोधी क्यों थे?

आतंकवादियों के इरादे, उद्देश्य और लक्ष्य के बारे में किसी भी स्त्रोत से कोई सुराग उपलब्ध नहीं है। अमेरिकी खुफिया संस्थानों द्वारा 4 हवाई जहाजों के मलबों से प्राप्त किए गए रिकार्ड से मात्र एक सूचना जारी की गई कि 19 अपराधी अरब मूल के थे तथा सामाजिक जीवन में सुस्थापित और बहुत ही निष्ठावान धार्मिक व्यक्ति थे।

बहरहाल, हमारे सवालों का जवाब खोजने में दो तथ्य कुछ मदद कर सकते हैं।

एक यह है कि भूत या वर्तमान में किसी भी देश ने दादागिरी की ऐसी आक्रामक भूमिका नहीं निभाई जैसी कि अमेरिका दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से निभाता चला आ रहा है। 1945 के बाद अमरीकी व्यवहार पर जरा-सा ही ध्यान दें तो पाते हैं कि अमेरिका दुनिया भर में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप करके अपने अवांछनीय शासकों को गिराने तथा स्वयं के कठपुतली गुट को ऊँचा उठाने में एक रिकार्ड कायम किया है।

नागासाकी और हिरोशिमा पर क्रूरता से परमाणु बमों से हमला कर दुनिया को इसने आतंकित करना शुरू किया, इसने लगातार दूसरे देशों के मामलों में दखलअन्दाजी करना और मुसीबते खड़ी करना जारी रखा, जैसे कि 1950 के दशक में ईरान और मध्य अमेरिका में, 1960 के दशक में ब्राजील, क्यूबा और वियतनाम में, 1970 के दशक में चिली, दक्षिण अफ्रीका, निकारगुआ, एल.सल्वाडोर और अफगानिस्तान में, 1980 के दशक में पनामा, हैती, अंगोला, लीबिया में सीधा आक्रमण कर तथा ईरान-इराक युद्ध को भड़का कर और 1990 के दशक में सोमालिया, यूगोस्लाविया, कोसोवा, सूडान और अफगानिस्तान पर क्रूज मिस्लाइल दाग कर किया।

यह वहीं तक नहीं रुका, परन्तु इससे आगे कुछ लोकाभिमुख सरकारों को गिराने में लगा रहा, जैसा 1960 के दशक में जेयरे में पैट्रिस लुमुम्बा की सरकार तथा 1970 के दशक में ईरान में डा. मौशादक की सरकार के सम्बन्ध में किया। इसने दुनिया में कुछ अधिक भ्रष्ट, निरंकुश, अत्याचारी और सैनिक सत्ताओं, जैसी जेयरे में मोबुटु, इस्लामिक रूढ़िवाद मसलन ईरान में रजाशाह पहलवी, इजरायल में अंधराष्ट्रवादी यहूदीवाद, दक्षिण अफ्रीका में नस्लवादी मतान्ध, पाकिस्तान में सैनिक तानाशाही, इत्यादि को बनाने और बढ़ावा देने का कार्य किया।

अपने प्रभुत्व के मुताबिक दुनिया को मोड़ते वक्त अमेरिका विश्व का सबसे ऊँचा प्रजातंत्र होने का दावा करता है, हालांकि दुनिया में कहीं भी प्रजातंत्र और कानून का राज

फैलाने के लिए कोशिश नहीं की। बजाए इसके इसने पिछले 20 वर्षों में विश्व के लगभग 10 गरीब और कमजोर देशों–लीबिया, ग्रेनेडा, पनामा, सोमालिया, हैती, अफगानिस्तान, सूडान, बोस्निया और यूगोस्लाविया–पर बमबारी की, इन सभी में अस्वेत आबादी निवास करती है।

यह विडम्बना है कि यह कोई और नहीं सिर्फ अमेरिका ही था जिसने ओसामा और मुल्ला उमर और उन जैसों को पैदा करने, पालने-पोषने तथा विकसित करने में पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभाई। अमरीकी जासूसी संस्था सी.आई.ए. द्वारा अफगानिस्तान में ओसामा को सोवियत यूनियन के खिलाफ तैनात किया गया था और तब इसे एक धार्मिक नेता पेश किया था।

अन्य तथ्य अमेरिका के बारे में लोगों की भावना का है जो सितम्बर की दुर्भाग्यपूर्ण घटना से पहले विभिन्न संकेतों द्वारा दुनिया के अलग-अलग क्षेत्रों से आ रही थी। उदाहरण के लिए, दुनिया के विरूद्ध घृणा और विद्वेष का स्तर निरन्तर बढ़ता गया जो प्राय: विभिन्न जन-प्रतिरोधी, मीडिया रिपोर्ट, खुफिया सूचनाओं में अभिव्यक्त होता रहा है। पिछले दशक के प्रत्येक वर्ष में समस्त दुनिया में अमेरिका पर आतंकवादी हमलों (तीन अंदरूनी आतंकवादी हमलों, यानि वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर 1993 में, लैंगले वर्जिनिया के खुफिया मुख्यालय पर 1994 में और ओक्लाहोमा पर 1996 सहित) का ग्राफ बिना बाधा के बढ़ता गया है। गरीब हितैषी शक्तियों के साथ-साथ गैर-सरकारी संगठनों का अमेरिका के विरूद्ध प्रतिरोध अधिक-से-अधिक बढ़ता गया है। असमानता, गरीबी और बेरोजगारी लगातार बढ़ रही है। साल के शुरू फरवरी में ही सिनेटर गैरी हार्ट और वारेन रूढ़मैन की अगुवाई वाले अमेरिकी राष्ट्रीय आयोग ने चेतानी दी कि अनर्थकारी हमला होने की संभावना है जिससे या तो जनहानि होगी या जनविघटन होगा।

ऊपर बताए गए दो तथ्य यह बताते हैं कि दुनिया में अमेरिका के अस्तित्व को लोग कितना नापसन्द करते हैं।

दुनिया के लोगों को ताजा अमेरिकी चुनौती अमरीकी राज्य के प्रमुख जार्ज बुश से है, जिसने अभी-अभी दो उद्घोषणाओं में सभी को चेतावनी दी है कि यदि तुम हमारे (यानि अमेरिका के) साथ नहीं हो तो आतंकवादियों के साथ हो और आगे इन्होंने कहा, अफगानिस्तान का युद्ध जीतने के बाद अमेरिका 50 देशों के खिलाफ कार्रवाई करेगा, जो आतंकवादियों को शरण देते हैं। यही वह घमण्डी, रोबिला और धमकाने वाला अमेरिकी व्यवहार है, जो अमेरिका के खिलाफ जन घृणा पैदा करता है, अमेरिका की धन, शक्ति और समृद्धि के खिलाफ नहीं।

V

दक्षिण एशियाई आतंकवाद जम्मू-कश्मीर मामला इसका ज्वलनांक बिन्दु

दक्षिण एशियाई-7 देशों ओर मानवता का 1/5 वां हिस्सा (लगभग 1 अरब 35 करोड़ लोगों) का एक क्षेत्र–में आतंकवाद के सवाल पर आते हैं, यह सर्वविदित है कि राज्य और समूह से सम्बन्धित दोनों आतंकवाद यहाँ एक भयानक ताकत में हैं। यह विश्व का वह क्षेत्र है जो सर्वोच्च अस्थिरता और हिंसा के लिए कुख्यात है। इसका प्रमाण दूसरे विश्व युद्ध के बाद 4 युद्ध (3 भारत व पाकिस्तान के बीच तथा एक भारत व चीन के बीच युद्ध)

है। यह इस समय का सर्वाधिक रिकार्ड है। इस क्षेत्र में सात में से पाँच बड़े देश (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, और बांग्लादेश) आतंकवाद से भंयकर ग्रसित हैं–बाकी दो देश भूटान और मालद्वीप अभी इससे बचे हुए है।

विश्व के अन्य हिस्सों की तरह दक्षिण एशियाई आतंकवाद की भी अल्पसंख्यक ग्रुप आतंकवाद और बहुसंख्यक राज्य आतंकवाद के बीच संघर्ष की विशेषता है।

श्रीलंका में लिट्टे तमिल अल्पसंख्यक आतंकवाद, सिंहली बहुसंख्यक राज्य आतंकवाद के खिलाफ लड़ रहा है। बांग्लादेश में, चकमा बुद्धिष्ट अल्पसंख्यक समुदाय पहले बहुमतवादी राज्य के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध में उलझा था, अब कुछ स्वायत्त स्थिति हासिल करने में सफल हो गया है। आज, बांग्ला अल्पसंख्यक हिन्दु समुदाय मुस्लिम रूढ़िवादियों के हमले का शिकार हैं। नेपाल में माओवादी कम्युनिष्ट नेपाल सरकार के खिलाफ युद्ध की स्थिति में है। पाकिस्तान में, अल्पसंख्यक शिया और एम.क्यू.एम. के आतंकवादी गुटों तथा सुन्नी बहुमतवादी राज्य आतंकवादी के बीच गलाकाटू संघर्ष है। भारत में, लगभग 2 दर्जन अल्पसंख्यक धड़े, दोनों धार्मिक और जातीय (जैसे कश्मीरी मुस्लिम, नागा और त्रिपुरा के आदिवासी ईसाई, आसाम के उल्फा और बोडो आदिवासी और मणिपुर के एन.एल.एफ. आदि) के साथ माओवादी गुरिल्ला और बहुमतवादी भारतीय राज्य आपस में मारधाड़ कर रहे हैं।

भूटान में, सशस्त्र संघर्ष नहीं है लेकिन पुराने बसे नेपाली मूल के नागरिक उन्हीं अधिकारों की माँग कर रहे हैं जो वहाँ के मूल निवासियों को हासिल हैं, ये इसकी शान्ति भंग कर रहे हैं।

मालद्वीप में, सुरक्षा की समस्या मुख्यतया भारत पर निर्भर है।

भारत के 'बड़े भाई' जैसा बर्ताव अन्य छह दक्षिण एशियाई देशों द्वारा नापसन्द किया जाता है।

अल्पसंख्यक आतंकवाद की उत्पत्ति की जहां तक सवाल है, यह बाहर से नहीं आया। यह अल्पसंख्यक ग्रुपों की विभिन्न तरह की धारणाओं में निहित है जैसे के बहुमतवादी राष्ट्रीय राज्य लम्बे समय से उनके साथ सुरक्षा, विकास, बोलने की आजादी और समूह की पहचान के सम्बन्ध में अन्याय करता आ रहा है और तथ्य उनकी इस अनुभूति को सही साबित करते हैं।

सिंहावलोकनार्थ, यदि कोई इस क्षेत्र की 20 वीं शताब्दी की ओर देखे, तो यह अनुभव किया जा सकता है कि साम्प्रादियक आतंकवाद जिसका सामाजिक ताने-बाने पर एक मजबूत शिकंजा कसा हुआ है, जिसने हमें भारी हानि पहुँचाई थी। सन् 1947 से पहले के भारत में साम्प्रदायिक आतंकवाद ने भारत के दो टुकड़े किये–भारत और पाकिस्तान। अगस्त, 1947 के विभाजन में साम्प्रदायिक आतंकवाद की दो क्रूर नस्लों में लगभग 1 करोड़ लोगों–हिन्दू और मुसलमानों, को काट डाला। यह विश्व इतिहास में मानवीय हत्याओं का अभूतपूर्व रिकार्ड था। दोनों नए पैदा हुए राज्यों का इन मानवीय हत्याकाण्ड में पूरा हाथ था। वास्तव में, भारतीय और पाकिस्तान दोनों राज्य ही इन हत्याकण्डों को संगठित करने वाले थे। 1947 के बाद की सम्पूर्ण अवधि में, भारत में

लगभग 35000 साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिसमें अल्पसंख्यक समुदाय को भारी नुकसान हुआ है। भारत में अत्यधिक हिंसा के स्तर के परिणाम 3 भारतीय नेताओं महात्मा गांधी, इन्दिरा गाँधी और राजीव गांधी की हत्याओं में निकला। पहले की हत्या मतान्ध हिन्दू ने की, दूसरे की उन्मादी सिख ने और अन्तिम नेता की हत्या कट्टर लिट्टे ने की।

बहुमतवादी भारतीय राज्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर भारत में घटी सभी हिंसक वारदातों में शामिल था लेकिन 3 में यह सबसे ऊपर रहा जो इसके नंगे आतंकवाद के स्पष्ट उदाहरण हैं–यानि, कश्मीरियों को 1953 के बाद से सभी मानवीय अधिकारों से वंचित करना, 1984 में ऑपरेशन ब्ल्यू स्टार अथवा सिखों के स्वर्ण मन्दिर पर सेना का आक्रमण और हिन्दू रूढ़िवादी उग्रवादियों द्वारा बाबरी मस्जिद को ढहाए जाने में मौन सहमति।

इसी प्रकार पाकिस्तान में पंजाबी प्रभुत्व सुन्नी राज्य-आतंकवाद हिन्दू शुद्धिकरण का अनुसरण करते हुए बंगला मुसलमानों के खिलाफ आक्रमण किए। अन्तिम लड़ाई में बंगला मुसलमानों का समर्थन भारत ने किया और एक नया बंगला क्षेत्र पाकिस्तान से अलग करने और स्वतंत्र और सम्प्रभूसत्ता सम्पन्न बांग्लादेश स्थापित करने में सफल हुआ। इस विखण्डन के बाद, पाकिस्तान सुन्नी मुस्लिम बहुमतवाद, जिसका समर्थन पाकिस्तान राज्य करता है और अल्पसंख्यक मुस्लिम समूह जैसे शिया, कानूनी बहिष्कृत अहमदिया, मुहाजिर और सिन्धी, जिकरी, बलूच, पस्तोनी आदि के बीच साम्प्रदायिक झगड़ों का युद्ध स्थल बन गया। नये बने बांग्लोदश में सुन्नी बहुमतवादी हिंसा चकमा बुद्धिष्ट आदिवासियों, हिन्दू अल्पसंख्यकों और बिहारी मुस्लिम शरणार्थियों के खिलाफ प्रकट हुई है।

दक्षिण एशिया में आतंकवाद का मामला भारत नियंत्रित जम्मू-कश्मीर (जेके) में सशस्त्र अशान्ति से निकटता से जुड़ा है। जेके हिंसा को भारत ''सीमा पार का आतंकवाद'' चरित्रित करता है, पाकिस्तान इसे देशी 'स्वतंत्रता संघर्ष' कहता है। दुनिया इसे एक स्थानीय अलगाववादी आन्दोलन के साथ इस समस्या को भारत और पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय सवाल समझती है। तकनीकी तौर पर बादवाली परिभाषा मजबूत प्रतीत हो सकती है, लेकिन राजनीतिक तौर पर इसमें व्यावहारिकता की कमी है। क्योंकि वर्तमान विश्व वास्तविकता की रोशनी में कोई भी जनसमस्या को बिना लोगों की भागीदारी के वास्तविक रूप से हल नहीं की जा सकती। इस प्रकार राजनीतिक और सामाजिक व्यावहारिकता इसे त्रिपक्षीय प्रदर्शित करती है–यह जेके समस्या की प्रथम वास्तविकता है।

जेके समस्या की दूसरी वास्तविकता जैसा कि हाल ही का विश्व अनुभव दिखाता है और 11 वर्षों का जेके सशस्त्र संघर्ष प्रदर्शित करता है कि ऊपर बताई गई समस्या का समाधान एक सैनिक रणनीति के जरिए नहीं किया जा सकता। ऐसा इसलिए है क्योंकि नई पैदा हुई ग्लोबेलाईजेशन की प्रक्रिया ने सैनिक समाधान की धारणा और तकनीकी को बेकार बना दिया है। इसलिए सभी टकरावादी तकनीकें जो भारत, पाकिस्तान और उग्रवादियों द्वारा अभी जेके में अपनाई जा रही है, गैर उत्पादक बन गई है।

जेके समस्या की तीसरी वास्तविकता यह है कि यह केवल मात्र समझौतावादी फार्मूला से ही हल की जा सकती है–एक ऐसा फार्मूला जो सभी 3 पक्षों की इच्छाओं एवं आकांक्षाओं को पूरा करता हो और प्रत्येक को सन्तुष्टि प्रदान करता हो।

जेके समस्या की चौथी वास्तविकता यह है कि भारत, पाकिस्तान और जेके के लोगों का एक साझा भूतकाल रहा था, वर्तमान में एक जैसी समस्याओं से सामना है और नियति साझा भविष्य की है।

उपर्युक्त वास्तविकताओं के मद्देनजर हमारा मानना है कि निम्नलिखित तीन बिन्दुओं का प्रस्ताव भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों के हितों को पूरी तरह पूरा कर सकता है और करता है।

(क) भारत और पाकिस्तान की राष्ट्रीय आकांक्षाओं और हितों को भारत-पाक सह राज्य के संवैधानिक स्वरूप में जेके को सम्प्रभुसत्ता देकर और जेके की रक्षा और विदेश मामले सहराज्य के अधीन रखकर सन्तुलित किये जा सकते है।

(ख) जेके लोगों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को, खासकर कश्मीरी लोगों के, एक स्वतंत्र राज्य की संवैधानिक स्वीकृति देकर पूरा किया जा सकता है जिसमें जेके रक्षा एवं विदेश मामलों के अलावा सभी मामलों में सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्तियां रखता हो।

(ग) जेके की विभिन्न जातीय-क्षेत्रीय समुदाय की आकांक्षाएं एवं हितों की पूर्ति उनमें से प्रत्येक को अधिकतम संभव संवैधानिक स्वायत्तता प्रदान करके पूरी की जा सकती है। जेके राज्य स्तर के मामलों में राज्य प्रमुख, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव संसाधन विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि हो सकते हैं।

तीन पक्षों की आकांक्षाओं की पूर्ति के अलावा उपर्युक्त फार्मूला इन्हें और विश्व मानव समुदाय को आगे और कई तरीकों से फायदा पहुंचाता है।

यह विश्व समुदाय को फायदा सर्वोच्च खतरनाक ग्लोबल ज्वलनांक बिन्दु को शांत करके पहुँचाता है।

यह दक्षिण एशिया समुदाय को लाभ सामाजिक-आर्थिक विकास, साझा बाजार और एक संयुक्त सुरक्षा व्यवस्था के विकास में बाधा को हटा कर पहुँचाता है।

यह आगे भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों को उन्हें आर्थिक विकास में बराबर का भागीदार बनाकर, जिनमें भारत-पाकिस्तान बराबर पूंजी निवेश करके जबकि जेके राज्य इसके बदले में प्राकृतिक संसाधन का हिस्सा लगाकर, सेवा करता है। जेके लोग दो देशों की नागरिकता और उनसे व्यापार करने की सुविधा का एक अतिरिक्त फायदा हासिल करते हैं।

सार में, भारत-पाक सह राज्य ग्लोबल निर्देशित विकास मॉडल का एक नया प्रयोग होगा जो यह बताएगा कि अलग-अलग राष्ट्रों के भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय हितों को कैसे

पूरा किया जा सकता है और विभिन्न आकांक्षाओं और जातीयताओं के बीच कैसे सामंजस्य बैठाया जा सकता है।

VI

आतंकवाद का कारण

आतंकवाद के बुनियादी (अथवा दीर्घकालीन) कारण का जहाँ तक सवाल है यह राष्ट्रीय आधारित सामाजिक व्यवस्था और इसका मुख्य मानवीय प्रेरणा का कारक यानि स्वहित में निहित है। सामाजिक व्यवस्था और इसका मानवीय प्रेरणा कारक दोनों अपने 200 वर्षों के लम्बे राष्ट्रीय शासन के दौरान गैर टिकाऊ पर्यावरण, अन्याय और असमानता की व्यवस्था को आगे लाये हैं जहाँ ताकतवर कमजोर की पीठ पर सवार रहते हैं, गरीबों पर साधन सम्पन्न का प्रभुत्व रखते हैं तथा धन और ताकत न्याय और सत्य के स्वीकृत मानदण्ड हैं।

यह दावा निम्नलिखित बिन्दुओं से पूर्णतया स्पष्ट है-

(अ) पर्यावरण की बिगड़ती हालात जिसमें संसाधनों–हवा, पानी, जमीन, जंगल जैव-विविधता इत्यादि के क्षय होने की स्थिति है।

(ब) संयुक्त राष्ट्र संघ जो दुनिया की सबसे उच्च निर्णय लेने वाली संस्था है तथा उसकी सुरक्षा परिषद पर 5 सबसे अधिक परमाणु शक्ति सम्पन्न उन सैनिक देशों ने अधिकार जमा रखा है, जिन्हें वीटो पॉवर और स्थायी सदस्यता हासिल है।

(स) कुछ आर्थिक तौर पर सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यों (देशों) ने आई एम एफ और विश्व बैंक दोनों संस्थाओं में आर्थिक हैसियत के मुताबिक वोट की ताकत के आधार पर प्रभुत्व जमा रखा है।

(द) पाँच बड़ी परमाणु शक्तियों ने वास्तव में परमाणु एकाधिकार प्राप्त किया हुआ है जिसे सीटीबीटी के तहत गारण्टी प्राप्त है।

(य) कुछ मुट्ठी भर विकसित देश (जो दुनिया की आबादी का 20 प्रतिशत हैं) दुनिया के आर्थिक और वित्तीय संसाधनों के 80 प्रतिशत पर नियंत्रण किए हुए हैं, जबकि करीब 80 प्रतिशत दुनिया के लोग (जो 130 देशों में रहते है) दुनिया के 20 प्रतिशत से कम संसाधनों पर जीवन बसर करते हैं।

(र) दुनिया के प्रत्येक राष्ट्रीय राज्य (देश) में और खास करके विकासशील देशों में जहाँ उनकी एक-तिहाई आबादी गरीबी रेखा के नीचे रहती है–धनवान और गरीबों के बीच अत्यधिक असमानता है।

(ल) प्रत्येक देश में जनवादी या संसदीय व्यवस्था भ्रष्ट और निरंकुश पार्टियों के प्रभुत्व में हैं और धन और सत्ता के बल पर आधारित हैं–इस प्रकार आम लोगों के बहुमत की शासन में कोई भी आवाज नहीं है।

(व) राष्ट्रीय व्यवस्था के मानवीय प्रेरक कारक स्वहित, एडम स्मिथ के बुनियादी सिद्धान्त, कि मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी है, से निकला है जो सामाजिक हितों को पृष्ठभूमि में धकेल देता है।

वास्तव में, स्वहित पशु जगत में नैसर्गिक मूल प्रवृत्ति है, जबकि मनुष्य का जब से प्रादुर्भाव हुआ है, वह स्वभावत: जैविक-सामाजिक है। अर्द्धसामाजिक चरित्र की गुणात्मकता पशु प्रजाति से मानव प्रजाति की भिन्नता का एकमात्र गुण है। मनुष्य में जब सामाजिक पहलू नहीं रहता तो उसकी जीवन शैली पशु के समान हो जाती है।

जब से धन और सत्ता प्रभुत्व में आए हैं यह स्वहित की उच्चतम स्थिति का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, सारी दुनिया इन दो जीवनदायी अमृत के पीछे भाग रही है। इस धन और सत्ता को प्राप्त करने के व्यापार ने (जिसने गैर-टिकाऊ पर्यावरण व्यवस्था और अत्यधिक अन्याय व असमानता की मानव व्यवस्था खड़ी कर दी है) अब दुनिया को गम्भीरतम पर्यावरणीय और मानवीय बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है।

आतंकवाद के तात्कालिक कारण का जहाँ तक सवाल है यह सामजिक व्यवस्था को चलाने वाली संस्था अथवा सरकार में निहित है। स्वहित की दिशा से मार्गदर्शन लेकर राष्ट्रीय सरकारों के नेता (जो प्रत्येक देश में पार्टी व्यवस्था पर आधारित है) मुख्तया अपनी धन सम्पदा को अधिकतम् बनाने में और उचित एवं अनुचित तरीके से सत्ता पर कब्जा बनाए रखने में समर्पित है। उनके व्यवहार का मानक 'कहो कुछ करो कुछ' है।

इस चेतावनी भरी स्थिति में जबकि समझदार लोग उचित और तार्किक रास्ता खोजने में लगे हैं, तो भाग्यवादी, रहस्यवादी, प्रकृति से ऊपर (सुपर नेचुरेलिस्ट) तथा पौराणिक मतों के खिलाड़ी लोगों को गहरे समुद्र में धकेल रहे हैं जहाँ से वे कभी भी दुबारा नहीं उबर सकेंगे। इनमें से एक किस्म आतंकवाद है (यानि एक प्रभाव है जिसका कारण राष्ट्रीय राज्य या उनकी सरकारों में निहित है।)

VII

आतंकवाद का जवाब प्रकृति-मानव हितैषी कार्यक्रम में निहित

आतंकवाद को उचित प्रत्युत्तर देने के सवाल की ओर आते वक्त मानव समुदाय के लिए यह उपयुक्त है कि वह आतंकवाद की चुनौती का सामना इसकी वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय संस्था यानि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा करे। इससे निम्नलिखित तीन अन्तरसम्बन्धित बिन्दुओं पर आतंकवाद की समस्या के उचित जवाब की खोज के लिए आगे आने की प्रार्थना करनी चाहिए।

यू एन को सबसे पहले अमेरिकी शहरों पर हुए आतंकी हमले का तर्कसंगत और न्यायिक हल की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए जिससे अमेरिकन जनता को न्याय प्रदान किया जाए और अपराधियों और उनके सहयोगियों को उचित दण्ड दिया जाए।

द्वितीयत: संयुक्त राष्ट्र को स्थानीय या विश्व स्तरीय आतंकवाद के मूल कारण को हटाना चाहिए जो विश्वभर में चल रहा सामाजिक न्याय और असमानता के अलावा और कुछ नहीं है।

तृतीयत: संयुक्त राष्ट्र को एक न्यायिक और व्यवहारिक कार्यक्रम और इसको लागू करने की योजना बनाकर समता, जनवाद, पारदर्शिता, उत्पादकता और पर्यावरणीय टिकाऊपन के आधार पर नई विश्व व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए।

हमारे दृष्टिकोण में, आतंकवाद की सभी किस्मों का रणनीतिक जवाब विद्यमान राष्ट्रीय आधारित व्यवस्था को विश्वव्यापी स्तर पर एक वास्तविक और तर्कसंगत आधार पर पुनरसंरचना करना तथा समयानुकूल बनाना है। इस पुनसंरचना और समयानुकूलन प्रक्रिया को–विद्यमान दो मूलभूत सामाजिक वास्तविकता, यानि गैर-टिकाऊ पर्यावरण और अन्याय एवं असमान मानवीय सम्बन्ध को सम्बोधित करते हुए–प्रकृति हितैषी और मानव हितैषी कार्यक्रम अपनाना चाहिए जो कि नए उभर रहे ग्लोबेलाईलेशन की सामाजिक प्रक्रिया की मांग की भी पूर्ति कर सके।

प्रकृति-मानव हितैषी कार्यक्रम

दुनिया को पुनर्गठित और सामयिक बनाने की प्रथम आवश्यकता है कि एक विश्व के दृष्टिकोण को स्वीकार करें जबकि संयुक्त राष्ट्र संघ का 1945 का चार्टर सम्प्रभुता सम्पन्न तथा स्वतंत्र राष्ट्रों का दृष्टिकोण लेता है।

'एक विश्व' के दृष्टिकोण को इस मूलभूत उसूल की आवश्यकता है जिसमें वैश्विक गतिविधियों का केन्द्र जनता और पर्यावरण हो (यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा की जाए और दूसरी तरफ पर्यावरण संरक्षण का ख्याल रखा जाए)

जनता-पर्यावरण प्राथमिकता (जो मानव विकास के लिए अति आवश्यक है) की मांग है कि एक नए किस्म का विकास मॉडल अख्तियार किया जाए जो पाँच मूल सिद्धान्तों-यानि, पर्यावरण टिकाऊपन, समता (या सामाजिक न्याय), उत्पादकता, लोकतंत्र और पारदर्शिता पर आधारित हो। ये पाँच मूल सिद्धान्त मानव जाति के जैविक-सामाजिक प्रकृति के अनुकूल हैं, यानि मनुष्य के निजी हित और उसके सामाजिक हितों को जोड़ते हैं।

यह जनता-पर्यावरण आधारित विकास मॉडल विकास की सामयिक धारणा का प्रतिनिधित्व करता है जबकि पारम्परिक राष्ट्रीय विकास मॉडल, यानि, कारपोरेट नेतृत्व वाला तथा सरकार निर्देशित मॉडल सामयिक नहीं है। जबकि कारपोरेट नेतृत्व वाला विकास मॉडल मुनाफा या उत्पादकता (जो केवल धन सम्पन्न लोगों के हितों को सुनिश्चित करता है) को अपने एकमात्र उद्देश्य के रूप में तवज्जों देता है। सरकार निर्देशित मॉडल उत्पादन के साधनों के समाजीकरण (या राष्ट्रीयकरण) को अपना एकमात्र लक्ष्य बनाता है। (जो सत्ताधारी राजनीतिज्ञों और अफसरशाहों के हितों की सेवा करता है) ये दोनों पारम्परिक राष्ट्रीय मॉडल मानव जाति के निजी हित की सेवा करते हैं और उसके जैविक-सामाजिक चरित्र की यानि निजी और सामाजिक दोनों हितों की सेवा नहीं करते हैं। पुन: ये दोनों पर्यावरण को किसी तरह की प्राथमिकता नहीं देते तथा आर्थिक या वृद्धि की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक और पारदर्शी मानदण्डों को कोई स्थान नहीं देते। कारपोरेट मॉडल समता (सामाजिक न्याय) के सिद्धान्त को पूर्णतया नकारता है जबकि सरकार निर्देशित सिद्धान्त राजनीतिक समता और उत्पादकता की पूर्णतया अनदेखी करता है।

मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास के लिए सबसे पहले स्थिर और स्थायी शान्ति और सुरक्षा की आवश्यकता है। ऐसी शान्ति स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रभुत्व, विशेषाधिकार, विशेष शक्ति प्रदान करने वाली राजनीति को रद्द किया जाए, विश्व में पूर्ण निशस्त्रीकरण करके और परमाणु हथियारों का पूर्ण नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र को

सौंपकर टकराव की पद्धति का अन्त किया जाए। विश्व में राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असमानता का अन्त किया जाए और विकसित व विकासशील देशों के बीच का अन्तर को पाटा जाए।

द्वितीय, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहता है जो सम्पूर्णतया जनवादी उसूलों, कार्यप्रणाली और ढाँचे पर आधारित हो। ऐसी सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि यू एन ओ की व्यवस्था में विशेष वीटों शक्ति के नियम को समाप्त किया जाए और राष्ट्रीय राज्य के प्रबन्ध को पार्टियों की केन्द्रीकृत शक्ति में आवश्यक कमी करने के साथ-साथ निर्णय लेने में लोगों को अधिकतम सम्भव शक्तिशाली बनाने के उसूल को सुनिश्चित करते हुए–पुनर्गठित किया जाए।

तृतीय, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास के लिए एक ऐसे तर्कसंगत और वास्तविक अर्थशास्त्र की मांग है जिसकी अवधारणाएँ, कानूनों और नियमों को दो उच्च प्राथमिकताओं (यानि मानवजाति और पर्यावरण) के तहत और पाँच उसूलों (यानि पर्यावरण टिकाऊपन, समता, जनवाद और पारदर्शिता) के मुताबिक ढालने की जरूरत है। मानव की जैव-सामाजिक प्रकृति के मद्देनजर एडम स्मिथ 'निजी हित' के बुनियादी आर्थिक उसूल और मार्क्स के हर कहीं राजकीय राष्ट्रीयकरण का बुनियादी नियम, दोनों ही मानव की इस जैव-सामाजिक प्रकृति के लिए एक तरफा साबित हुए हैं।

चतुर्थ, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास जीवन के एक ऐसे रास्ते (या जीवन पद्धति) का आह्वान करता है जिसमें आधारभूत मानवीय और पर्यावरणीय मूल्य शामिल हों और जिससे लोगों के बीच तर्कसंगत, मानवीय और पर्यावरणीय सोच, व्यवहार और संगठन को बढ़ावा मिलता हो।

पाँचवा, मानव हितैषी और पर्यावरण हितैषी विकास को वैज्ञानिक यथार्थवाद की धारणा चाहिए जिससे प्राकृतिक घटनाक्रम का अध्ययन और विश्लेषण ठोस सूचना और आंकड़ों के आधार पर इकट्ठे किए गए वैज्ञानिक तथ्यों और सामाजिक वस्तुगतता की रोशनी में किया जाए।

अन्तिम तौर पर, पाँचवे सवाल पर नजर डालें तो पुरानी सामाजिक व्यवस्था की प्रक्रिया में किसी भी पुनर्गठन और उसे सामयिक (आधुनिक) बनाने के लिए सम्पूर्ण वैधानिक कानूनी ढाँचे को आदमी की जैव-सामाजिक प्रकृति के आधार पर (यानि मानव के निजी हित के साथ उसके सामाजिक हित में समन्वय बैठकर) ढाला जाए–इस प्रकार सामाजिक उन्नति को त्वरित करने के लिए एक वास्तविक मानवीय मनोवैज्ञानिक हालात या प्रेरक पहलू को कायम किया जाए।

सार में, ओसामा और मुल्ला उमर को पकड़ना अथवा मारना या अल-कायदा आतंकवादियों के कैम्पों को नष्ट करना समस्या को हल नहीं करेगा। क्योंकि बुराई को अधिक बुराई करके समाप्त नहीं किया जा सकता। यदि मानवता को आतंकवाद के खतरे से छुटकारा दिलाना है तो इसके (आतंकवाद के) मूल कारण को पहचानना होगा और वास्तविक सामाजिक नुस्खे द्वारा उन्मूलन करना होगा।

***

19-20 दिसम्बर, 2001 को जम्मू के एशिया होटल में
शांति और समन्वय के मुद्दे पर होने वाली सेमीनार के लिए

आर.पी. सराफ की टिप्पणी

शांति और समन्वय आज के समय की माँग

आज सभी मानवीय झगड़ों को हल करने के लिए बातचीत ही केवल मात्र उचित मार्ग है

सभी झगड़ों का तात्कालिक कारण सामाजिक अन्याय में निहित है

सामाजिक अन्याय का आधार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान है

एक प्रकृति एवं मानव समर्थक कार्यक्रम ही उचित जवाब है

I

सामाजिक शान्ति (यानि सामाजिक सन्तुलन और सौहार्द) का अर्थ उस प्रक्रिया से है जो सामाजिक सुव्यवस्था पर आधारित हो या वह प्रक्रिया जो सामाजिक अव्यवस्था (यानि युद्ध, झगड़ों और टकराहट आदि) से मुक्त हो। सामाजिक समन्वय से तात्पर्य सामाजिक घावों को भरने (यानि सभी विवादों, बेचैनियों और तनावों को सहमति, समझौतों और बातचीत के जरिये हल करना) की प्रक्रिया से है। इस प्रकार सामाजिक शांति और समन्वय सामाजिक सुव्यवस्था के दो अभिन्न पहलू हैं और ये दोनों अंतर सम्बन्धित और अन्तर निर्भर हैं।

II

आज शांति और समन्वय की प्रक्रिया मानव समुदाय की प्रथम आवश्यक मांग है। यह इसलिए है क्योंकि वैश्वीकरण के नये उभरते सामाजिक घटनाक्रम को इसकी जरूरत है। वैश्वीकरण नये सामाजिक बदलाव को अभिव्यक्त करता है जिसने पुराने सम्प्रभुता सम्पन्न एवं स्वतंत्र राष्ट्र-राज्यों को अन्तरनिर्भर देशों में (यानि, एक ऐसी अवस्था जिसमें विभिन्न देशों के हित साझे हो गए हैं) तब्दील कर दिया है। इस नये सामाजिक घटनाक्रम को विभिन्न देशों के बीच मित्रता और सहयोग के सम्बन्धों की आवश्यकता है ताकि विश्वव्यापी स्तर पर विभिन्न सामाजिक गतिविधियों को चलाया जा सके–जैसे, व्यापार, पूँजी निवेश, तकनीक का हस्तान्तरण, श्रमिकों की आवाजाही, पर्यावरणीय स्रोतों का संरक्षण (यानि जल, भूमि, जंगल, जैव विविधता आदि), मानवीय संकटों से मुकाबला (जैसे, गरीबी, बेरोजगारी, असमानता, अपराध, प्राकृतिक विपदाएं, बिमारियां आदि)। इसके अलावा किसी भी क्षेत्र में अव्यवस्था की स्थिति में कोई भी सामाजिक गतिविधि यानि राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक-अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आसानी से नहीं की जा सकती है। केवल शांति और समन्वय की परिस्थितियों में ही नई उभर रही वैश्वीकरण की प्रक्रिया हमारी पुरानी असमानता और अन्याय वाली विभिन्न राष्ट्रों की दुनिया (जो कमजोर

पर ताकतवर के प्रभुत्व, गरीब का धनी द्वारा शोषण, धन और सत्ता प्राप्त करना जिन्दगी का एकमात्र लक्ष्य के सिद्धान्तों पर आधारित है) को समानता और न्यायपूर्ण एकल मानव समुदाय (जो पर्यावरण टिकाऊपन, समानता, उत्पादकता, लोकतंत्र और पारदर्शिता के पाँच उसूलों के साथ सामाजिक न्याय व तर्कसंगत जीवन मूल्यों पर आधारित) में तब्दील किया जा सकता है। इस प्रकार पूरी मानवता के लिए सभी स्तर पर वैश्विक, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर से लेकर गाँव के स्तर तक सामाजिक न्याय और समन्वय अति आवश्यक हो गया है।

III

आज की दुनिया के दृष्टिगत सभी प्रकार के वर्तमान तनावों को मोटे तौर पर हम दो किस्मों में पाते हैं–(क) राज्यों (देशों) के अन्दर के झगड़े और (ख) राज्यों (देशों) के बीच के झगड़े। पुन: पहली किस्म की दो श्रेणियाँ हैं, यानि (i) कुछ समुदायों और समूहों की परम्परागत पहचानों (यानि, जातीय, सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक सहित आदि) की रक्षा का संघर्ष तथा (ii) कुछ बुनियादी अधिकारों की रक्षा के लिए या सामाजिक परिवर्तन करने के लिए सामाजिक (यानि राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि) संघर्ष। दोनों श्रेणियों की दलील है कि उनके अपने-अपने संघर्षों का कारण राज्य (या सरकारों) द्वारा उनके साथ किये जा रहे सामाजिक अन्याय में निहित है तथा न्याय प्राप्त करने के सभी बिना झगड़े वाले उपाय आजमाये जा चुके हैं। इसलिए उनके लिए सशस्त्र संघर्ष ही एकमात्र रास्ता बचा है।

देशों के मध्य झगड़ों के सम्बन्ध में दुनिया में बहुत से राष्ट्रीय तनाव के बिन्दुओं में भारी कमी आई है। पिछले एक दशक में मुश्किल से ही देशों के बीच कोई युद्ध (अमेरिका के नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय गठजोड़ व इराक के बीच युद्ध के अलावा) हुआ है। करीब-करीब वर्तमान सभी प्रतिद्वन्द्वियों ने अपने सम्बन्धित मुद्दों को हल करने के लिए आपस में बातचीत की राह पकड़ी है।

IV

जबकि चीजें कमोबेश सही दिशा में जा रही है और शांति व समन्वय की कार्यविधि की प्रक्रिया पटरी पर है, 7 अक्टूबर को अमेरिका के अफगानिस्तान पर हमले ने वैश्विक सामाजिक व्यवस्था के राह में एक नया नकारात्मक बिन्दु शामिल कर दिया है।

यह सही है कि न्यूयार्क और वांशिगटन पर 11 सितम्बर के आतंकवादी हमले का अमेरिका एक पीड़ित पक्ष है। उसे हक है कि वह अपने लिए स्वयं न्याय प्राप्त करे और दोषियों को दंडित करे। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अन्तर्गत दुश्मन के आक्रमण को प्रत्युत्तर देने का उसे हक है। परन्तु दुनिया और साथ-साथ अमेरिका के लोगों के हितों की मांग है कि सम्बन्धित आतंकवादियों को अपने नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय गठजोड़ बनाकर स्वयं दण्डित करने के बजाय अमेरिका को संयुक्त राष्ट्र संघ के जरिए कार्यवाही करनी चाहिए थी। निश्चय ही यह रास्ता अमेरिका के लोगों सहित विश्व समुदाय के फायदे में मसलों को हल करने के लिए अधिक उपयुक्त होता।

कमजोर को अपनी इच्छानुसार दण्डित करने की परम्परागत शैली तथा वर्तमान वैश्विक व्यवस्था के नियमों को दरकिनार करने के रास्ते को अपनाकर अमेरिका ने अब

सबको (उदाहरणार्थ, इजराइल, भारत आदि) को उनके बीच के विवादास्पद मुद्दों को सैनिक तौर पर हल करने के लिए प्रोत्साहित किया है जबकि पहले वह सबको यह सलाह देता रहा है कि वे संयम से काम लें। इस प्रकार दुनिया के दो ज्वलन्त बिन्दु–फिलीस्तीन और जम्मू-कश्मीर–और अधिक गर्म हो गए हैं। इजरायल ने फिलीस्तीनियों के विरुद्ध पहले से अधिक शक्तिशाली आक्रमण शुरू कर दिया है जबकि भारतीय संसद पर 13 दिसम्बर के आत्मघाती हमले के बाद पाकिस्तान से दो आतंकवादी संगठनों–लश्कर ए तोयबा और जैश ए मोहम्मद के मुख्यालयों को बन्द करने की माँग करने लगा है। जेके मसले पर भारत-पाक तनाव चरम बिन्दु के करीब पहुँच गया है।

जम्मू-कश्मीर मसले पर भारत-पाक टकराहट का 53 वर्षीय अनुभव यह दर्शाता है कि जेके समस्या का कोई सैनिक या एक पक्षीय हल नहीं हो सकता। तीनों पक्षों (यानि, भारत, पाक तथा जम्मू-कश्मीर के लोगों) के प्रत्येक के हितों को शामिल करते हुए केवल समझौता फार्मुला ही वास्तविक हल हो सकता है। निम्न तीन बिन्दुओं का प्रस्ताव सम्बन्धित पक्षकारों के हितों की सेवा भली प्रकार कर सकता है।

(क) जम्मू-कश्मीर से सम्बन्धित रक्षा और विदेश मामलों की सम्प्रभुता को भारत-पाक सहराज्य की संवैधानिक व्यवस्था के तहत संयुक्त रूप से देकर भारत व पाकिस्तान दोनों के अपने-अपने हितों और आकांक्षाओं को संतुलित किया जा सकता है।

(ख) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य, जिसके पास रक्षा और विदेश मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों में सम्प्रभुशक्तियाँ हों, ऐसा स्वीकार करके जम्मू-कश्मीर के लोगों और विशेषकर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(ग) जम्मू-कश्मीर के विभिन्न नस्लीय-क्षेत्रीय समुदायों की नस्ली आकांक्षाओं और हितों का प्रत्येक को अधिकतम संभव संवैधानिक स्वायत्तता देकर सामंजस्य बैठाया जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के राज्य स्तरीय मामलों में, राज्याध्यक्ष, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग, आदि को शामिल किया जा सकता है।

ऐसा समाधान दक्षिण एशिया (भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर सहित) और दुनिया के लोगों को फायदा पहुँचायेगा।

ऐसे ही समझौताकारी हल से फिलीस्तीन सवाल का निपटारा करने में सहायता मिल सकती है जिसको निम्नलिखित बिन्दुओं को लागू करके हल किया जा सकता है (1) एक स्वतंत्र फिलीस्तीनी राज्य का निर्माण करना और इजरायली सीमाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित करना। (2) तीन राज्यों–इजरायल, फिलीस्तीन और जोर्डन–के महासंघ की स्थापना करना।

V

दुनिया की अव्यवस्था और मौजूदा झगड़ों (या शांति और समन्वय के खतरे) पर ध्यान दें तो पाते हैं कि यह बुनियादी तौर पर चल रही राष्ट्र आधारित सामाजिक व्यवस्था और इसके निजी हित वाले, मानवीय प्रेरक पहलू के कारण हो रहे सामाजिक अन्याय से पैदा हो रहे हैं। इस सामाजिक व्यवस्था और इसके मानवीय प्रेरक पहलू दोनों ने पिछले

200 साल के लम्बे राष्ट्रीय राज्य शासन में पर्यावरणीय गैर-टिकाऊ, अन्यायपूर्ण व असमानता की व्यवस्था दी है जहाँ ताकतवर कमजोर की पीठ पर चढ़ा बैठा है तथा धनी-गरीब पर प्रभुत्व जमाये हुए है और साथ ही धन और सत्ता न्याय व सत्य के स्वीकृत मानदण्ड बने हुए हैं।

निजी हित वाले माननीय प्रेरक पहलू वाली राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था एडम स्मिथ के बुनियादी सिद्धान्त 'मनुष्य स्वभावतया स्वार्थी होता है'–से उभरी तथा जिसने इसके सामाजिक हित वाले दूसरे पहलू को पीछे धकेल दिया।

जब से किसी व्यक्ति के निजी हित को उच्चतम हद तक पहुँचाने का प्रतिनिधित्व धन और सत्ता को प्राप्त करना बना है तब से सारा संसार इन्हीं दो 'प्राणदायी अमृत तत्वों' को पाने के लिए भाग रहा है। यह धन और सत्ता हथियाने का व्यापार (अत्यधिक पर्यावरणीय गैर टिकाऊ व्यवस्था तथा उच्चतम अन्याय और असमानता की मानव व्यवस्था) ने अब दुनिया को गम्भीरतम पर्यावरणीय और मानवीय बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है।

वैश्विक व्यवस्था और वर्तमान झगड़ों (या शांति और समन्वय को खतरे) का तात्कालिक कारण सामाजिक व्यवस्था को चलाने वाली एजेन्सी या सरकार में निहित है। राष्ट्रीय सरकारों (जो प्रत्येक देश में दलीय व्यवस्था पर आधारित है) के स्वहित प्रेरित नेता मुख्य तौर पर अपने लिए निजी सम्पत्ति को अधिकतम बटोरने तथा येन-केन-प्रकारेण सत्ता को हथियाये रखने के लिए समर्पित है। उनका इस व्यापार में मानक मापदण्ड 'कहना कुछ और करना कुछ' है।

VI

वर्तमान वैश्विक अव्यवस्था और मौजूदा झगड़ों (या शांति और समन्वय के खतरे) को उचित प्रत्युत्तर देने के मामले को लें तो मानव समुदाय के लिए उचित रास्ता यह है कि सभी विवादास्पद मसलों को वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी (यानि संयुक्त राष्ट्र संघ) के जरिए हल किया जाए। कोई भी देश चाहे वह महाशक्ति हो, संयुक्त राष्ट्र संघ से बाहर एकल तौर पर या गुटीय तौर पर (यानि अपने सैनिक सहयोगियों के गठजोड़ के साथ) कोई कार्यवाही नहीं करे।

हमारे मतानुसार, वैश्विक अव्यवस्था और मौजूदा झगड़ों (यानि शांति और समन्वय के खतरे) की सभी किस्मों का रणनीतिक उत्तर यह हे कि मौजूदा राष्ट्रीय राज्य आधारित व्यवस्था को विश्व स्तर पर एक वास्तविक और तर्कसंगत आधार पर पुनर्गठित किया जाए और आधुनिक बनाया जाए। इस पुनर्गठन और आधुनिकीकरण–वर्तमान दो मूल सामाजिक वास्तविकताओं, यानि पर्यावरणीय गैर टिकाऊपन तथा अन्याय एवं असमानता के मानव सम्बन्धों को सुलझाने के लिए–को प्रकृति एंव मानव हितैषी कार्यक्रम अपनाना चाहिए, यह नई उभर रही वैश्विक-सामाजिक प्रक्रिया की मांग को भी पूरा करता है।

प्रकृति-मानव हितैषी विकास मॉडल को स्थिर और स्थायी शांति और सुरक्षा की आवश्यकता है। इस प्रकार की शांति को स्थापित करने के लिए आवश्यकता है कि प्रभुत्व, विशेषाधिकार और विशिष्ट शक्तियों वाली राजनीति को नकारा जाए, टकराहट के तरीकों और सैनिक हल को पूर्ण निशस्त्रीकरण कर तथा आणविक हथियारों को संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्ण नियंत्रण में देकर समाप्त किया जाए।

द्वितीय प्रकृति-मानव हितैषी विकास मॉडल को एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जो पूर्णतया लोकतांत्रिक सिद्धान्तों, कार्यविधि तथा ढाँचे पर आधारित हो। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था यह आवश्यक बना देती है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था से विशिष्ट वीटो शक्ति शासन का अन्त हो तथा इस सिद्धान्त–जिसमें निर्णय लेने में अधिकतम संभव लोकशक्तिकरण सुनिश्चित हो तथा पार्टी केन्द्रित शक्ति में आवश्यक कमी आये–की रोशनी में राष्ट्रीय राज्य के प्रबंध को पुनर्गठित किया जाए।

तृतीय, प्रकृति-मानव हितैषी विकास मॉडल एक तर्कसंगत और वास्तविक आर्थिकता की माँग करता है जिसकी धारणाएं, कानून और नियम पूर्व वर्णित दो उच्च प्राथमिकताओं (यानि मानव और पर्यावरण) तथा पाँच सिद्धान्तों (यानि, पर्यावरण और टिकाऊपन, क्षमता, उत्पादकता, लोकतंत्र और पारदर्शिता) की रोशनी में बनाए जाए। मानव के जैव-सामाजिक प्रकृति के दृष्टिगत, 'निजी हित' वाले एडम स्मिथ के बुनियादी आर्थिक सिद्धान्त और प्रत्येक वस्तु का राजकीय राष्ट्रीयकरण के मार्क्सवादी बुनियादी आर्थिक नियम दोनों एक तरफा हैं।

चतुर्थ, प्रकृति-मानव हितैषी विकास मॉडल माँग करता है कि ऐसी जीवन पद्धति (या जीवन शैली) हो जिसमें बुनियादी मानवीय और पर्यावरणीय मूल्य समाहित हो।

पंचम, प्रकृति-मानव हितैषी विकास मॉडल प्राकृतिक घटनाक्रम को वैज्ञानिक तथ्यों की रोशनी में अध्ययन करने और व्याख्या करने तथा सामाजिक मामलों का अधिकृत सूचना और आंकड़ों के आधार पर अध्ययन और व्याख्या करने के पक्ष में है।

18-12-2001

***

भारत और पाकिस्तान के बीच बढ़ते तनाव और उसका हल विषय पर 6 जनवरी, 2002 को गांधी भवन जम्मू में रखे गये विचार-विमर्श के लिए सेमीनार में

आर.पी. सराफ का वक्तव्य

यह सेमीनार हमारे नेता स्वर्गीय श्री जोगेन्द्रसिंहजी एडवोकेट जम्मू हाईकोर्ट की चौथी बरसी पर आयोजित किया गया है। दिवंगत आत्मा सादगी, संवेदनशील और मानवीयता के गुणों की प्रतिमूर्ति थे, जो हमेशा अपनी पूरी जिन्दगी में सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सम्पन्नता तथा प्रगति के उद्देश्यों को दृढ़ता से थामे रहे तथा वे लगातार भारत और पाकिस्तान के बीच भाईचारे के सेतु बनने हेतु जम्मू-कश्मीर मसले पर सभी पक्षों (भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर की जनता) के हितों को समझौते के फार्मूले से समन्वय बैठाने के लिए प्रेरित थे।

भारत और पाकिस्तान के बीच बढ़ते तनाव और उसका हल

सामाजिक हिंसा (आतंकवाद और युद्ध सहित) किसी भी समस्या का हल नहीं। आज यह अप्रासंगिक हो चुकी है। क्योंकि मौजूदा अन्तरनिर्भर राष्ट्रों को इसकी जरूरत नहीं है। सामाजिक हिंसा-सामाजिक प्रतिहिंसा से समाप्त नहीं की जा सकती है क्योंकि बुराई को बुराई से दबाने से और अधिक बुराई उत्पन्न होती है। सामाजिक हिंसा विभिन्न किस्मों के सामाजिक अन्याय से उत्पन्न होती है जिसका दीर्घकालीन कारण सामाजिक व्यवस्था तथा उसके प्रेरक पहलू में निहित है जबकि तात्कालिक कारण मौजूदा सरकारी तन्त्र की वजह से है। सभी किस्मों के सामाजिक अन्याय का बुनियादी हल मौजूदा अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को एक प्रकृति और मानव हितैषी कार्यक्रम के आधार पर पुनर्गठित करने में है।

I

एक खतरनाक परिस्थिति

(i) सन् 2001 मध्य दिसम्बर के एक सप्ताह बाद सारी दुनिया, विशेषतौर पर भारत व पाकिस्तान के लोग भारत व पाकिस्तान के बीच अत्यधिक संवेदनशील सैनिक हलचल से भौंचके रह गये। इसके बाद भारत-पाक सीमा पर खतरनाक तनाव की स्थिति बन गई। दोनों देशों की सेनाएं आमने-सामने खड़ी हो गई। ऐसा लगने लगा कि वे युद्ध के कगार पर खड़ी हैं। कोई भी गलतफहमी या गलत आकलन उस समय युद्ध को भड़का सकता था, परन्तु तभी काले बादल झीने होने लगे।

(ii) भारत की संसद पर 13 दिसम्बर 2001 को आत्मघाती हमला–जो एक बदहवासी की कार्यवाही थी जिसकी पाकिस्तान सहित सभी ने निंदा की–से उत्तेजित होकर जब भारत ने अपनी सेनाओं को तमाम भारत-पाक सीमा पर हमले के अन्दाज में पहुँचाना शुरू किया तब संकट खड़ा हुआ। तत्काल पाकिस्तान ने भी ऐसा ही किया।

(iii) भारत ने हू-ब-हू 11 सितम्बर 2001 के समय की अमेरिकी फैशन में कार्यवाही की। इसने पाकिस्तान को कहा कि उन दो खाड़कू ग्रुपों लश्कर-ए-तोएबा, जेश-ए-मोहम्मद और उनसे सम्बन्धित नेताओं जो भारत की संसद पर घृणित हमला करने में शामिल हैं उनके विरुद्ध या तो पाकिस्तान कठोर कार्यवाही करे या भारत की ताकतवर सैनिक जवाबी कार्यवाही का सामना करे। पाकिस्तान ने इसका प्रत्युत्तर अपनी ओर से प्रस्ताव रख कर दिया। उसने सुझाव दिया कि 13 दिसम्बर की घटना की सत्यता को जानने के लिए या तो संयुक्त भारत-पाक जाँच की जाए या भारत जाँच एजेन्सियों द्वारा जाँच के दौरान अमेरिका की एफ.बी.आई. की टीम का सहयोग लिया जाए।

यद्यपि भारत ने ये दोनों प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। यह भी याद रखना चाहिए कि भारत ने पहले केवल लश्कर-ए-तोएबा को अपराधी बताया था परन्तु बाद में इसकी जगह जैश-ए-मोहम्मद संगठन को पहचाना और अन्त में यह घोषणा की कि यह दोनों संगठनों (सभी जगह पर अत्यधिक प्रतिद्वन्द्वी) की संयुक्त कार्यवाही थी।

(iv) अमेरिका ने इस मुद्दे पर दोहरा मापदंड अपनाया। एक तरफ पाकिस्तान द्वारा दिये गये दोनों तरह की जाँचों के उपरोक्त प्रस्तावों के सुझावों को उसने समर्थन दिया और दूसरी तरफ इन दोनों संगठनों को अपनी आतंकवादी सूची में शामिल कर भारत की इस स्थिति पर कि लश्कर-ए-तोएबा और जैश-ए-मोहम्मद आतंकवादी प्रकृति के हैं, इस पर सहमति दी। बाद में अमेरिका ने पाकिस्तान पर यह दबाव डाला कि वह इन दोनों संगठनों और उनके नेताओं तथा सक्रिय कार्यकर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही करे। तदनुसार पाकिस्तान ने इन दोनों संगठनों के मुख्य कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया।

(v) अब, भारत ने 20 संदिग्ध अपराधियों की नई सूची दी है जो सीमा पार आतंकवादी कार्यवाही तथा सारे भारत में अन्य विघटनकारी गतिविधियों में लिप्त रहे हैं। पाकिस्तान ने भारत के इन आरोपों के समर्थन में आवश्यक सबूत देने की मांग की है। यद्यपि पाकिस्तान ने स्वत: ही अब करीब 150 व्यक्तियों को जो गैर-कानूनी गतिविधियों में शामिल हैं, कहा जाता है कि उन्हें गिरफ्तार कर लिया है। पाकिस्तान ने वर्तमान अत्यधिक तनावपूर्ण स्थिति को समाप्त करने के लिए भारत से बातचीत की पेशकश की है परन्तु भारत ने अभी तक इस पर कोई टिप्पणी नहीं की है।

(vi) भारत की यह घोषणा कि वह नियंत्रण रेखा पर सैनिक कार्यवाही करेगा–इसको इस आधार पर सही ठहराने की कोशिश की जा सकती है कि उसकी यह सैनिक कार्यवाही अमेरिका के नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय गठजोड़ द्वारा आतंकवाद के विरुद्ध नये वैश्विक युद्ध का यह एक भाग है। परन्तु यदि अमेरिका संयुक्त राष्ट्र संघ को नकारते हुए महाशक्तिवादी रास्ते पर चलता है और अफगानिस्तान के मामले में एक तरफा हल निकालने के रास्ते को चुनता है, तो भी भारत को अमेरिका की नकल नहीं करनी चाहिए। क्योंकि, प्रथमतया, आज के समय में सैनिक हल का रास्ता अत्यधिक गैर-उत्पादक है। यह हमारे युग की भावना क विपरीत है जिसकी माँग है कि सभी देशों तथा सभी नस्ली समुदायों के बीच मित्रता और सहयोग के सम्बन्ध होने चाहिए। कोई भी हो, चाहे वह अमेरिका ही हो, अगर टकराहट के रास्ते को अपनाता है तो देर-सबेर अन्ततोगत्वा उसके नकारात्मक नतीजों का शिकार होता है और द्वितीयत: अमेरिका बनाम अफगानिस्तान

और भारत बनाम पाकिस्तान दोनों की पूर्णतया भिन्न-भिन्न परिस्थितियां हैं, जबकि अमेरिका दुनिया की एक महाशक्ति है और अफगानिस्तान इस पृथ्वी पर अत्यधिक पिछड़ा देश है, जबकि भारत और पाकिस्तान दोनों परमाणु अस्त्रों वाले देश हैं। इन परिस्थितियों में भारत की सैनिक हल अपनाने की तरफ ले जाने वाली कोई भी कार्यवाही भारत व पाक के बीच परमाणु संघर्ष के आयाम सहित पूर्ण युद्ध की तरफ बढ़ सकती है। यह सम्पूर्ण दक्षिण एशिया क्षेत्र के लिए आत्मघाती होगा।

(vii) भारत (और सभी राष्ट्रीय राज्यों) के लिए यह उचित रास्ता है कि यह अपना मामला सभी प्रासंगिक साक्ष्यों सहित संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने पेश करे। संयुक्त राष्ट्र संघ से यह प्रार्थना की जाए कि उपरोक्त आरोपित दोनों संगठनों और उन्हें पनाह देने वाले देश क खिलाफ वह उचित कार्यवाही करे।

(viii) कुछ खाड़कू ग्रुपों पर पाकिस्तान के टूट पड़ने से, साथ ही दोनों देशों को संयत रहने के अमेरिकी दबाव से ऐसा मालूम होता है कि हमारे उपमहाद्वीप में जो गर्म हवा चली है वह कुछ ठंडी हुई है। ताजा भारत की स्थिति जो भारत व पाकिस्तान के विदेश मंत्रियों की बैठक की संभावनाओं को पूर्णतया अस्वीकार नहीं करती, यह थोड़ी सी राहत देने का एक और इशारा है। अब भी, भारत-पाक सीमा पर स्थिति नाजुक बनी हुई है, यद्यपि, तनाव कुछ कम हुआ है तो भी सेनाएं पूर्ववत ज्यों की त्यों खड़ी हैं। और उग्रराष्ट्रवादी व्यवहार (विशेषतौर पर नई दिल्ली की तरफ से) और अधिक आक्रमणकारी हो गया है। संभवतया जो बोली में कड़वाहट बढ़ी है उसका कारण शासकों की राजनीतिक आवश्यकता है, जो और कुछ नहीं बल्कि शासकों की येन-केन प्रकारेण सत्ता हथियाने और धन बटोरने की आवश्यकता है।

II

वर्तमान राजनीतिक हालात के परिणाम

(ix) उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर आज का राजनीतिक वातावरण बहुत से सवालों से भरा हुआ है। यह सवाल विभिन्न विस्मृत मुद्दों से सम्बन्धित हैं जिन पर न केवल भारत व पाकिस्तान में बल्कि सारी दुनिया में बहस छिड़ी हुई है। इन सब मामलों का हमारी दुनिया के भविष्य के विकास की राह पर बहुत अधिक असर पड़ने वाला है।

अत्यधिक चर्चित सवाल यह है कि इस समय भारत-पाक युद्ध का खतरा कितना गंभीर है। हमारी राय में, इस मुहाने पर भारत-पाक के बीच व्यापक युद्ध होने की बहुत थोड़ी सी संभावना है। हमारे अनुमान के अनुसार, भारत-पाक उपमहाद्वीप सहित वर्तमान विश्व शक्ति-संतुलन में 95 प्रतिशत पहलू युद्ध के विरुद्ध हैं जबकि 5 प्रतिशत सैनिक तथा दुर्घटना की परिस्थितियों में कुछ गंभीर गड़बड़ियां हो सकती है परन्तु जिन्हें काबू में लाया जा सकता है। युद्धोन्मादी कितना ही शोर क्यों न करें, सारी दुनिया इस युद्ध के खिलाफ है और भारत-पाक के लोग भी युद्ध करने के समर्थन में नहीं है। और अधिक, इस समय अमेरिका भारत-पाक के मध्य सैनिक भिड़न्त के एकदम खिलाफ है क्योंकि यह उसके (यानि अमेरिका के) अफगानिस्तान के खिलाफ अभी समाप्त नहीं हुए युद्ध को सीधा नुकसान पहुँचाता है जबकि अमेरिका का उद्देश्य–ओसामा बिन लादेन और मुल्ला उमर को पकड़ना–अभी पूरा नहीं हुआ है। इन सबके अलावा, अमेरिका इस स्थिति में पाकिस्तान

पर हमला बर्दाश्त नहीं कर सकता है, जबकि उसकी वायु और थल सेना पाकिस्तान के विभिन्न हिस्सों में तैनात है।

(x) अन्य, लोगों की दिलचस्पी का सवाल यह है कि, भारत और पाकिस्तान इस स्थिति से किस ओर जाएंगे। यहाँ, पहला ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि उपरोक्त दोनों देश वर्तमान में अमेरिकी नेतृत्व वाले आतंकवाद विरोधी मुहिम का हिस्सा हैं। दोनों ने अमेरिका को अपना-अपना नेता स्वीकार किया हुआ है और आतंकवाद के मामले में वही मत अपनाए हुए हैं जो अमेरिका का स्वीकृत मत है। वास्तव में, भारत और पाकिस्तान के बीच यह होड़ है कि उन दोनों में से कौन अधिक अमेरिकी समर्थक है। इन परिस्थितियों में यह स्वाभाविक है कि अपनी महाशक्तिवादी प्राथमिकताओं के तहत अमेरिका, भारत और पाकिस्तान के बीच उनके सभी विवादास्पद मुद्दों पर विशेषकर जम्मू-कश्मीर के सवाल, जो अब तक भारत व पाक के बीच टकराहट का केन्द्र बिन्दु रहा है–किसी तरह का समझौता तलाश करने की कोशिश करेगा।

(xi) आगे और, सभी के बीच विचार-विमर्श होने वाला प्रश्न यह है कि आतंकवाद के प्रति वर्तमान में जो पाकिस्तान का मत है कि वह उसकी जम्मू-कश्मीर नीति पर कितना असर डालेगा। तथ्य यह दर्शाते हैं कि पाकिस्तान की कोई भी सरकार अमेरिकी प्रभुत्व के प्रति कितनी भी समर्पित क्यों न हो अपनी वर्तमान जम्मू-कश्मीर की नीति में बुनियादी बदलाव लाने की स्थिति में नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय जेहादी गुपों के सम्बन्ध में पाकिस्तानी रुख में कुछ दिखावटी या कार्यनीतिक परिवर्तन हो सकता है, परन्तु पाकिस्तान की जेके नीति में मूलभूत परिवर्तन की कोई संभावना नहीं है।

(xii) और आगे, अन्य लोगों से सम्बन्धित प्रश्न यह है कि जम्मू-कश्मीर में चल रहे कश्मीरी आन्दोलन पर भारत व पाकिस्तान की नीतियों में हो रहे परिवर्तन का क्या असर होने वाला है। एक बात स्पष्ट है कि आतंकवाद पर वर्तमान अमेरिकी मत के अनुसार जो इसके सभी समर्थक थामे हुए हैं कि राष्ट्रीय राज्यों के विरुद्ध सभी सैनिक संघर्षों को आतंकवाद की संज्ञा दी जानी चाहिए। इस परिभाषा की रोशनी में जम्मू-कश्मीर के खाड़कूपन ने अपना बहुत बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय पश्चिमी दुनिया का आधार खो दिया है जो पहले कश्मीर खाड़कूपन को अलगाववादी आन्दोलन के रूप में परिभाषित करता रहा है। फिर भी कश्मीरी खाड़कूपन, जो मुख्यतया स्थानीय है, पूर्व की तरह पाकिस्तान का पूर्ण समर्थन प्राप्त करता रहेगा। अमेरिका के नेतृत्व में सम्पूर्ण पश्चिमी दुनिया ओसामा-टाइप आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष में पाकिस्तान की अति महत्वपूर्ण स्थिति और भूमिका को मान्यता देती है। इसलिए यह जम्मू-कश्मीर के सवाल पर पाकिस्तानी राष्ट्रीय मत को नजरअन्दाज नहीं कर सकता। और अधिक, पश्चिमी दुनिया अब भी जेके सवाल को भारत व पाकिस्तान के बीच द्विपक्षीय मुद्दे के तौर पर परिभाषित करता है। इस प्रकार जेके सवाल पर अपने बुनियादी नजरिए तथा भारत और पाकिस्तान दोनों को अपने पक्ष में रखने की वर्तमान आवश्यकता के तहत, यह (यानि पश्चिमी दुनिया) कोई समझौते का फार्मूला तलाश करने की कोशिश करेगा जिससे भारत व पाकिस्तान दोनों के हितों में समन्वय कायम हो तथा कश्मीरी लोगों को भी कुछ सन्तोष प्रदान कर सके। फिर भी, कुल मिलाकर, कश्मीरी आन्दोलन को अमेरिका के नेतृत्व में चल रहे आतंकवाद विरोधी

आन्दोलन से कुछ धक्का ही लगा है। इस उपमहाद्वीप में अमेरिका का अत्यधिक चहेता होते हुए भी पाकिस्तान ने अपनी सैकड़ों मील लम्बी पश्चिमी पाक-अफगान सीमा पर जो बचाव और सुरक्षा हासिल थी, उसको भी खो दिया है।

(xiii) और आगे, अन्य दिलचस्प सवाल यह है कि क्या कोई ऐसे समझौते की योजना हो सकती है जो एक दूसरे के एकदम विपरीत भारत व पाकिस्तान के राष्ट्रीय मतों को भी एक तरफ अच्छी लगे और दूसरी तरफ जम्मू-कश्मीर में बहु नस्लीय समुदायों (विशेषतौर पर कश्मीरी) की विभिन्न आकांक्षाओं और जरूरतों को सन्तोष प्रदान करे। हमारी राय में, निम्न तीन बिन्दुओं का प्रस्ताव न केवल उपरोक्त कथित विरोधीभासी रुखों और स्थितियों में समन्वय बैठायेगा, बल्कि यह दक्षिण एशिया और दुनिया के लोगों के हितों की भी सेवा करेगा।

(क) जम्मू-कश्मीर से सम्बन्धित रक्षा और विदेश मामलों की सम्प्रभुता को भारत-पाक सहराज्य की संवैधानिक व्यवस्था के तहत संयुक्त रूप में देकर भारत व पाकिस्तान दोनों के अपने-अपने हितों और आकांक्षाओं को संतुलित किया जा सकता है।

(ख) जम्मू-कश्मीर को संवैधानिक तौर पर स्वतंत्र राज्य, जिसके पास रक्षा और विदेश मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलां में सम्प्रभुशक्तियां हो, ऐसा स्वीकार करके जम्मू-कश्मीर के लोगों और विशेषकर कश्मीरियों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को पूरा किया जा सकता है।

(ग) जम्मू-कश्मीर के विभिन्न नस्लीय-क्षेत्रीय समुदायों की नस्ली आकांक्षाओं और हितों का प्रत्येक को अधिकतम संभव संवैधानिक स्वायत्तता देकर सामंजस्य बैठाया जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के राज्य स्तरीय मामलों में, राज्याध्यक्ष, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि को शामिल किया जा सकता है।

III

भविष्य के कुछ रुझान

(xiv) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दो व्यापक सम्बन्ध रखने वाले सवाल अब भी बहस-मुबहिसे में हैं।

पहला : अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की विभिन्न किस्मों (यानि वे जो हिंसा का पाठ पढ़ाते हैं और अपने साध्य पाने के लिए शस्त्र बल का उपयोग करते हैं) का भविष्य क्या है।

(xv) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का कोई भविष्य नहीं है। यह एक मरणासन्न शक्ति है। यह इसलिए है क्योंकि आतंकवाद सामाजिक तौर पर अवांछित हो चुका है। मानव समाज को अब इसकी कोई जरूरत नहीं है। राष्ट्रीय-राज्य के रूप में अस्तित्वमान, आज मानव समाज पूर्व के अलग-अलग राष्ट्रीय ढांचों–जिसमें प्रत्येक राज्य का एक अलग और स्वतंत्र अस्तित्व रहा है–आज इन सबसे अलग एक अन्तरनिर्भर राष्ट्रों के कारण ये अब और अधिक एकीकृत हो गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरनिर्भरता को राष्ट्रीय राज्यों के बीच और विभिन्न नस्लीय समुदायों के बीच शांति और शांतिपूर्ण अन्तरक्रिया की आवश्यकता है। प्रत्येक हथियारबंद कार्यवाही (चाहे वह राज्यों के अन्दर हो या राज्यों के बीच हो)

सामाजिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है इसलिए, सभी प्रकार की हथियारबंद कार्यवाहियाँ–चाहे वह राज्य द्वारा या किसी पार्टी, ग्रुप या संगठन द्वारा की जाए–को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आतंकवादी गतिविधि माना जाए।

(xvi) मौजूद सभी हथियारबंद और गैर-हथियारबंद संघर्षों को सम्बन्धित पक्षकारों के मध्य या तो बातचीत के जरिए या संयुक्त राष्ट्र संघ की मध्यस्तता के जरिए हल किया जाना चाहिए। किसी भी शैतान या अवज्ञाकारी पक्ष, चाहे वह राष्ट्रीय राज्य हो या गैर-राष्ट्रीय राज्य हो, केवल संयुक्त राष्ट्र संघ के पास उनके विरुद्ध शस्त्र बल उपयोग करने की शक्ति होनी चाहिए। एक निश्चित अवधि में सभी राष्ट्रीय राज्यों द्वारा सम्पूर्ण निशस्त्रीकरण करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संधि होनी चाहिए। सभी अन्तर्राष्ट्रीय हथियारों को संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंप देना चाहिए।

(xvii) आज की दुनिया में जितनी भी सामाजिक हिंसा मौजूद है वह हमारी अन्तरनिर्भर दुनिया की देन नहीं है। यह राष्ट्रीय-राज्यों की राजनीति के परिणामस्वरूप है, जिसके शासक समूहों (विशेषतौर पर अमेरिका और चार अन्य जो सुरक्षा परिषद में वीटो शक्तिधारक हैं) का एकमात्र उद्देश्य धन और सत्ता के पीछ भागना है, चाहे उन्हें येक-केन-प्रकारेण ही प्राप्त करना पड़े।

(xviii) अन्य, अन्तर्राष्ट्रीय विचार-विमर्श का प्रश्न यह है कि : अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका के नेतृत्व में किया जाने वाला युद्ध हमारी दुनिया को किस ओर ले जायेगा।

(xix) आज कोई भी सैनिक हल (चाहे वह एक ध्रुवीय हो या बहुध्रुवीय) जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की स्वीकृति हासिल नहीं हो वह गैर-उत्पादक बन चुका है। इसलिए, आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिकी नेतृत्व में लड़े जाना वाला युद्ध कोई न्यायिक कार्यवाही नहीं है और इससे कोई सकारात्मक नतीजा नहीं निकल सकता। अमेरिका ने उसी तरह से अन्यायकारी प्रत्युत्तर दिया है जिस तरीके से आतंकवादियों ने पहले 11 सितम्बर को न्यूयार्क और वाशिंगटन पर घातक हमला करते समय अपनाया था। अमेरिका के लिए उचित कार्यवाही यह थी कि वह अपने आतंक विरोधी मामले को उचित साक्ष्य सहित संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष प्रस्तुत करता।

(xx) ओसामा या मुल्ला उमर को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने या अल कायदा के अड्डों को नष्ट करने का अमेरिका का आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध का उद्देश्य न तो आतंकवादी समस्या को हल कर सकता है और ना ही कर पायेगा। एक बुराई को दूसरी बुराई से निपटना और अधिक बुराई को उत्पन्न करता है। यह अफगानिस्तान में अमेरिका की आंशिक विजय के बावजूद मध्य एशिया में इजरायल और फिलीस्तीनियों के मध्य और अधिक हिंसा भड़कने से तथा दक्षिण एशिया में भारत व पाकिस्तान के बीच परमाणु युद्ध होने के बढ़ते खतरे के रूप में देखा जा सकता है। दोनों मामलों में, अपने विरोधियों पर हमला करने में इजरायल और भारत ने अमेरिकी दिशा की नकल की है। समाज में बुराई का खात्मा का एकमात्र तरीका उसके सामाजिक कारणों तथा बुराई के स्थान पर वास्तविक सामाजिक कार्यक्रम को लागू करके किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिए।

(xxi) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका के युद्ध का अत्यधिक गंभीर प्रभाव और अधिक सामाजिक अव्यवस्था में निकलेगा, जिससे विभिन्न राष्ट्रीय राज्यों में पहले से बिगड़ी चली आ रही कानून व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देगा। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय मंदी के साथ बढ़ रही अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था पहले से बीमार विश्व आर्थिकता को और अधिक खराब कर देगी, जिससे और अधिक असमानता, व्यापक गरीबी तथा भीषण बेरोजगारी उत्पन्न होगी। राजनीतिक और आर्थिक गड़बड़ियां हमारे सांस्कृतिक मानदण्डों को और अधिक नीचे गिरा देगी–इस प्रकार चारों ओर अनैतिक वातावरण उत्पन्न होगा तथा जो अन्ततोगत्वा हमारे मानवीय और पर्यावरणीय मूल्यों को नुकसान पहुँचायेगा।

(xxii) अन्त में, अति महत्वपूर्ण सवाल जो हम सबसे सम्बन्धित है वह यह है कि सामाजिक हिंसा का कारण कहाँ निहित है तथा इसका हल क्या है।

IV

सामाजिक हिंसा का कारण

(xxiii) सभी किस्मों की सामाजिक हिंसा या आतंकवाद के आम कारण के प्रश्न को लें तो यह पाते हैं कि यह मौजूदा सामाजिक अन्याय में निहित है जिसका आधार (या दीर्घकालीन कारण) वर्तमान राष्ट्र आधारित व्यवस्था तथा इसकी मुख्य मानवीय प्रेरक पहलू यानि निजी हित में विद्यमान है। सामाजिक व्यवस्था और इसका मानवीय प्रेरक पहलू दोनों, ने अपने 200 साल के लम्बे राष्ट्रीय सत्ता के दौरान पर्यावरणीय गैर-टिकाऊपन, अन्याय और असमानता को जन्म दिया है, जहाँ ताकतवर कमजोर की पीठ पर चढ़ा हुआ है और अमीर गरीब की छाती पर बैठा है तथा न्याय और सत्य का स्वीकृत मानदण्ड धन और सत्ता है।

(xxiv) मौजूदा सामाजिक अन्याय के तात्कालिक कारण के बारे में, इसका कारण सामाजिक व्यवस्था को चलाने की एजेन्सी या सरकार में निहित है। निजी हित से प्रेरित, राष्ट्रीय सरकारों (प्रत्येक देश में दलगत व्यवस्था पर आधारित) के नेता मुख्य तौर पर अधिक से अधिक अपने लिए सही या गलत तरीके अपनाकर धन बटोरने एवं सत्ता हथियाने के लिए समर्पित हैं। उनका व्यवहारिक स्तर यह है कि वे 'कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं।'

V

सामाजिक हिंसा का प्रत्युत्तर

(xxv) सामाजिक हिंसा या आतंकवाद को उचित प्रत्युत्तर देने के मसले पर मानव जाति के लिए उचित रास्ता यही है कि वह अपनी तात्कालिक चुनौतियों को वर्तमान मानवीय अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी, यानि संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से निपटे।

(xxvi) सामाजिक हिंसा की सभी किस्मों का रणनीतिक हल विद्यमान राष्ट्र आधारित व्यवस्था को विश्व स्तर पर हकीकी और तर्कसंगत आधार पर पुनर्गठित और आधुनिक बनाने में निहित है। इस पुनर्गठन या आधुनिकीकरण को विद्यमान दो मूलभूत सामाजिक वास्तविकताओं, यानि गैर टिकाऊ, पर्यावरण तथा गैर न्यायिक और असमान मानवीय सम्बन्धों को ठीक करने के लिए–एक प्रकृति समर्थक और मानव समर्थक कार्यक्रम

अपनाकर पूरा किया जाना चाहिए जो नई उभर रही वैश्वीकरण की सामाजिक प्रक्रिया की माँग को भी पूरा करेगा।

प्रकृति समर्थक और मानव समर्थक कार्यक्रम

(xxvii) उपरोक्त कार्यक्रम का मूलभूत उसूल है कि यह सभी मानवीय गतिविधियों के केन्द्र में लोगों और पर्यावरण को रखता है। इसका विकास मॉडल पाँच तरह के मूलभूत उसूलों–यानि पर्यावरणीय टिकाऊपन, समता (या सामाजिक न्याय), उत्पादकता, जनवाद और पारदर्शिता–को अपनाता है। यह विकास मॉडल विद्यमान दो राष्ट्रीय विकास मॉडलों–यानि, कारपोरेट नेतृत्व और सरकार निर्देशित से बिल्कुल भिन्न है। जहाँ कारपोरेट नेतृत्व वाला मॉडल मुनाफे को अपना एकमात्र उद्देश्य बनाता है वहाँ सरकार निर्देशित मॉडल समाजीकरण अपनाता है जिसका आवश्यक अर्थ है कि सामाजिक प्रक्रिया पर शासक राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों का प्रभुत्व और नियंत्रण कायम होना। जबकि एक प्रकृति-मानव हितैषी मॉडल के लिए एक स्थिर और स्थायी सामाजिक शांति और सुरक्षा की जरूरत है। इसके लिए ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की जरूरत है जो निर्णयकारी मसलों में लोगों को अधिकतम संभव अधिकार देना सुनिश्चित करे तथा साथ ही साथ सत्ता के केन्द्रीयकरण वाली पार्टी व्यवस्था को आवश्यकतानुसार कमजोर करे। आगे, यह नया मॉडल एक तर्कसंगत और हकीकी आर्थिकता की मांग करता है जिसकी धारणाएं, कानून और नियम दो उच्च प्राथमिकताओं (यानि मानव जाति और पर्यावरण) और पाँच उसूलों (यानि पर्यावरण टिकाऊपन, समता, उत्पादकता, जनवाद और पारदर्शिता) की रोशनी में बनाए जाएं। यह नया मॉडल आह्वान करता है कि एक ऐसी जीवन शैली (या जीवन का तरीका) अपनाया जाए जिसमें मूलभूत मानवीय और पर्यावरणीय मूल्यों को संजोया जाए। और आखिर में, यह वैज्ञानिक वास्तविकतावाद को अपनाता है जो वैज्ञानिक तथ्यों की रोशनी में प्राकृतिक घटनाक्रम तथा अधिकारित सूचना और आंकड़ों के आधार पर सामाजिक घटनाक्रम का अध्ययन एवं व्याख्या करता है। 01-01-2002

***

भारत–पाक तनाव की वर्तमान स्थिति और जम्मू–कश्मीर समस्या पर अमेरिकी विदेश मंत्री कॉलिन पावेल को जे.के. समस्या का त्रिपक्षीय समाधान मोर्चा द्वारा प्रस्तुत खुला पत्र

प्रिय श्रीमान् पावेल,

भारत और पाकिस्तान की सीमाओं पर बढ़ रहे तनाव को समाप्त करने और उन्हें उनके विवादों पर शीघ्र बातचीत शुरू करने के विशिष्ट उद्देश्य से भारत-पाक की आपकी सद्इच्छा यात्रा का स्वागत करते हुए हम विनम्रतापूर्वक आपके विचार के लिए दीर्घकालिक भारत-पाक टकराहट तथा उनके बीच सर्वोच्च विवाद के विषय यानि जम्मू और कश्मीर (या जेके) के एक व्यवहारिक हल के प्रस्ताव से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत करते हैं।

हमारा प्रथम आत्मनिवेदन है कि कानून के शासन की स्थापना करने, धर्म को राजनीति से अलग करने, सभी तरह के इस्लामी उग्रवाद को काबू करने और भारत-पाक के साथ सम्बन्धों को ठीक करने का 12 जनवरी को जनरल मुशर्रफ का पाकिस्तानी राष्ट्र को सम्बोधन भारत-पाक के बढ़ रहे तनाव को शांत करने, उनकी सेनाओं को सीमा से वापस हटाने के किसी शांति फार्मूले पर पहुँचने के आपके कार्य को सुविधा प्रदान करता है। इसका (यानि भाषण का) मुख्य बिन्दु भारत और पाकिस्तान के बीच सभी विवादों को बातचीत से हल करने के एकमात्र रास्ते पर जोर देता है और कुछ भारतीय विषयों को विद्यमान पाकिस्तानी जनता की मानसिकता को ध्यान में रखते हुए सम्बोधित करता है।

हमारा द्वितीय आत्मनिवेदन है कि 1947 के बाद सैनिक समाधान की राजनीति ने भारत और पाकिस्तान को कहीं नहीं पहुँचाया। पिछले 53 सालों में तीन भारत-पाक युद्धों तथा चीन के साथ एक सीमा युद्ध के बावजूद भारत और पाकिस्तान के बीच विवादों में से एक भी विवाद अथवा भारत और चीन के बीच सीमा विवाद एक इंच भी आगे नहीं सरका। बदले में दक्षिण एशिया आज अपने परमाणु ज्वलन बिन्दु के खतरे के साथ अधिक असुरक्षित और अस्थिर बन गया है, इससे न सिर्फ स्वयं दक्षिण-एशिया को बल्कि विश्व-स्थिरता को चुनौती है।

हमारा तीसरा आत्मनिवेदन है कि 1947 से पूर्व तथा बाद के धार्मिक रूढ़िवाद (या हिन्दू निर्देशित भारतीय राष्ट्रवाद और मुस्लिम दिशा वाला पाकिस्तानी राष्ट्रवाद) ने भारत और पाकिस्तान में भारी तबाही मचाई है। प्रथमत: इसने भारत को (1947 में) दो देशों (भारत और पाकिस्तान) में विभाजित किया और फिर (1971 में) पाकिस्तान दो देशों (पाकिस्तान और बांग्लादेश) में बंटा। आगे इसने हिंसा, अपराध, अराजकता, गुण्डों का

प्रभुत्व, कानून के शासन की अनदेखी, राजनीति के अपराधीकरण, जन असुरक्षा आदि को अभूतपूर्व प्रोत्साहन दिया। आगे इसने भारत और पाकिस्तान को धीरे-धीरे झगड़ालू बना दिया; परिणामत: पिछले 53 सालों में 3 भारत-पाक युद्ध हुए। और आगे इसने सामाजिक मनमुटाव और अव्यवस्था पैदा करके दोनों प्रतियोगियों के आर्थिक विकास का गला घोंटा।

हमारा चौथा आत्मनिवेदन है कि भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के लोग ऐतिहासिक रूप से एक ही लोग हैं–जिनका साझा भूतकाल रहा है और अब एक जैसे वर्तमान से सामना कर रहे हैं तथा एक साझा भविष्य में रहने की नियति रखते हैं।

हमारा पाँचवां आत्मनिवेदन है कि दीर्घकालीन भारत-पाक विवाद का मूल कारण जैसा कि 53 वर्षों का लम्बा इतिहास बताता है और कोई नहीं जेके समस्या ही है। दो देश पहले से ही इस सवाल पर 3 युद्ध कर चुके हैं जबकि चौथा हमारे दरवाजे पर दस्तक दे रहा है।

भारत-पाक इतिहास के सम्पूर्ण रास्ते में जम्मू-कश्मीर का विषय दोनों देशों के लिए जिन्दगी और मौत का सवाल रहा है। जबकि भारत इसे अपने राष्ट्रीय अस्तित्व का केन्द्र तथा पाकिस्तान इसे अपनी श्वास नली समझता है।

मामले की इस अवस्था में हमारे विचार से जेके समस्या तीन चरणों में पहल की मांग करती है यानि (अ) दोनों देशों की सेनाओं की तत्काल वापसी (ब) जेके समस्या के समाधान हेतु मान्यताओं को तय करना तथा (स) इस समस्या का वास्तविक और तर्कसंगत समाधान तलाशना।

पहले चरण की पहल को लेते वक्त यह निरापद रूप से कहा जा सकता है कि 12 जनवरी के मुशर्रफ के भाषण और इसको लागू करना 2 देशों की फौजों को सीमाओं से हटाने का हमें मजबूत आधार प्रदान करता है।

दूसरे चरण की पहल की ओर मुड़ते हुए मामले (यानि जेके समस्या) के भूतकाल और वर्तमान के तथ्य हमें निम्नलिखित मान्यताएँ सुझाते हैं। वे यह हैं (क) सैनिक समाधान को अस्वीकार करना (ख) शांतिपूर्ण रास्ते को अपनाना (ग) दो देशों के बीच युद्ध वर्जन सन्धि पर हस्ताक्षर करना (घ) प्रत्येक देश की एकता और अखण्डता की रक्षा का वचन देना (ड़) प्रत्येक देश की प्राथमिकता के विशेष आग्रह (यानि जेके) भारत का अभिन्न अंग है अथवा पाकिस्तान की श्वास नली है, आदि को छोड़ना (च) जम्मू-कश्मीर में हिंसा के स्तर और मानवाधिकारों के उल्लंघन में कमी लाना (छ) जम्मू-कश्मीर से सम्बन्धित सभी साम्प्रदायिक समाधानों को अस्वीकृत करना (ज) जेके समस्या का समाधान तीन पक्षों (यानि भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों) के हितों में सामंजस्य बैठा कर हल करना (झ) भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों के एक साझा भविष्य के दृष्टिकोण को अपनाना।

तीसरे चरण की पहल की तरफ आते हुए उपर्युक्त मान्यताएं एक समझौतापूर्ण समाधान की मांग करती है जो 3 सम्बन्धित पक्षों (यानि भारत, पाकिस्तान और जेके लोगों) की आकांक्षाओं व हितों को अधिकतम संभव सीमा में संतुष्ट करता हो।

हमारे दृष्टिकोण से नीचे लिखा प्रस्ताव सभी परिस्थितियों व आवश्यकताओं को पूरा करता है।

(क) भारत और पाकिस्तान की राष्ट्रीय आकांक्षाओं और हितों को, भारत-पाक सह राज्य के संवैधानिक स्वरूप में जेके को सम्प्रभुसत्ता देकर और जेके की रक्षा और विदेश मामले सहराज्य के अधीन रखकर सन्तुलित किये जा सकते हैं।

(ख) जेके लोगों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं और हितों को, खासकर कश्मीरी लोगों के, एक स्वतंत्र राज्य की संवैधानिक स्वीकृति देकर पूरा किया जा सकता है जिसमें जेके रक्षा एवं विदेश मामलों के अलावा सभी मामलों में सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्तियां रखता हो।

(ग) जेके की विभिन्न जातीय-क्षेत्रीय समुदाय की आकांक्षाएं एवं हितों की पूर्ति उनमें से प्रत्येक को अधिकतम संभव संवैधानिक स्वायत्तता प्रदान करके पूरी की जा सकती है। जेके राज्य स्तर के मामलों में राज्य प्रमुख, उच्च न्यायालय, चुनाव आयोग, मानव संसाधन विकास आयोग, पर्यावरण आयोग, योजना आयोग आदि हो सकते हैं।

इस प्रकार का समाधान विश्व और (भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर सहित) दक्षिण एशिया के लोगों को लाभ पहुँचाएगा।

आदर के साथ,

भवदीय

प्रतिलिपि :

(1) प्रधानमंत्री कार्यालय, नई दिल्ली

(2) राजदूत पाकिस्तानी दूतावास, नई दिल्ली

***

7, 8 व 9 सितम्बर, 2001 को जोधपुर में आयोजित लेबर कान्फ्रेन्स (जिसे ट्रेड यूनियनों, कर्मचारियों एवं जन संगठनों के नेताओं से गठित आयोजन कमेटी द्वारा प्रायोजित किया गया) में आर.पी. सराफ द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज

श्रमिकों की तेजी से बढ़ती परेशानी से निकालने का रास्ता श्रम अधीनता को समाप्त करना और श्रम-पूँजी की भागीदारी स्थापित करना

I श्रमिकों का सन्ताप

1. श्रम के सम्पूर्ण इतिहास में शायद कभी भी श्रमिकों को इतनी अवसादपूर्ण अनुभूति नहीं हुई जितनी कि आज वे महसूस कर रहे हैं। यू एन की सन् 2000 की रिपोर्ट के अनुसार इन दिनों दुनिया के श्रमिक केवल एक मामले में एकताबद्ध हैं वह है उनमें 'तनाव के रिकार्ड स्तर' तक बढ़ने का मामला। काम करने की जगह पर तनाव के संबंध में एक सर्वे के मुताबिक दुनिया के पाँच अत्यधिक विकसित राष्ट्रों (यानि, यू.एस., ब्रिटेन, जर्मनी, पॉलैण्ड, फिनलैण्ड) में यूएन के अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) ने पाया है कि चिन्ता, अधीरता और अवसाद का स्तर नियंत्रण से बाहर जा रहा है। छंटनी, तालाबंदी, एक कम्पनी का दूसरी बड़ी कम्पनी में मिलने, अल्पावधि ठेकों और उच्च उत्पादकता की माँग इत्यादि सभी ने श्रमिकों से पिछले 10 सालों में अत्यधिक कीमत वसूल की है जिसमें बहुत से श्रमिक तिल-तिल कर मरने की स्थिति में पहुँच गए हैं और घोर निराशा और मानसिक तनाव की तरफ धकेल दिये हैं।

2. रिपोर्ट इस घोर निराशा और मानसिक तनाव का कारणा बयान करती है कि लोगों द्वारा नई तकनीक अख्तियार करना मुश्किल होता है जिसके कारण निरन्तर बदलती स्थिति के साथ श्रमिक व्यवहार में तालमेल कायम नहीं कर सकते हैं।

3. मानसिक स्वास्थ्य की विश्व फेडरेशन ने चेतावनी दी है कि 2020 के आसपास दिमागी विकृति और तनाव सड़क दुर्घटनाओं से ज्यादा होने लगेंगे। एड्स और हिंसा कामकाजी वक्त को बर्बाद करने वाले प्राथमिक कारण होंगे।

II श्रमिकों की विपत्ति पर तर्क

4. यह स्पष्ट है कि आई एल ओ की रिपोर्ट प्रथमतया, विकसित देशों के संगठित क्षेत्र के श्रमिकों के हालात के संबंध में है और विकासशील देशों के संगठित क्षेत्र के बदहाल श्रमिकों (जिनकी संख्या पहले वालों से तीन गुना से अधिक है) के हालात को छोड़ देता है। द्वितीयत: यह रिपोर्ट विश्व के असंगठित क्षेत्र के बदहाल श्रमिकों की जिन्दगी के बारे में कुछ नहीं कहती।

5. तथापि, उपरोक्त जरूरी सूचना की कमी के बावजूद आई एल ओ की रिपोर्ट विकसित देशों के श्रमिकों की विपत्तिदायक हालात और उनके कारणों को जाहिर करती है लेकिन हम इसके पहले भाग से सहमति रखते हुए इसके दूसरे भाग यानि कि विपत्तिदायक स्थिति के कारण पर इससे सहमत नहीं हैं।

6. हमारा तर्क यह है कि मानव निराशा के गुणात्मक और मात्रात्मक पहलू मानवीय सोच से जुड़े होते हैं। अगर कोई यह सोचता है कि मामलात एक या दूसरे उपलब्ध तरीकों से ठीक हो सकते हैं तो उसकी पेरशानी चिन्ताप्रद हद तक नहीं जाती। लेकिन जब किसी को अपने दुख से मुक्त होने का रास्ता नजर नहीं आता है तो उसकी परेशानी के क्षण ऐसा भूत बन जाते हैं जो हर वक्त उसे तंग करते हैं।

7. हर कोई जानता है कि इतिहास में श्रमिकों को कई जटिल और पेचीदा हालात से दो-चार होना पड़ा है लेकिन उन्होंने कभी अपने भविष्य की उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा है। मानवीय सामाजिक जिन्दगी के दोरान उनको लगातार नई तकनीकों और उसे संबंधित कुशलताओं को एक के बाद दूसरी को अपनाना पड़ा है। भोजन इकट्ठा करने की तकनीक और उसके अमल (व्यवहार) से शुरू करके और शिकारबाजी तथा पशुपालन, कृषिकारी और औद्योगिक तकनीकों से गुजरते हुए और अब जैव, ऊर्जा, पदार्थ, सूचना और अन्तरिक्ष तकनीकों और उनके तरीकाकारों को उपयोग करते हुए उन्होंने हमेशा अपने आपको हर आजमाइश की घड़ी में योग्य साबित किया है।

III श्रमिकों का ऐतिहासिक आत्म-विश्वास

8. बीते हुए जमाने में श्रमिकों की अपने भविष्य के प्रति आत्म-विश्वास की क्या वजह थी?

9. मानव के ऐतिहासिक बीते हुए काल पर नजर डालते हुए हर कोई देख सकता है कि इतिहास के प्रारम्भ से ही हर व्यक्ति के अस्तित्व को किसी न किसी प्रकार की सामाजिक गारण्टी मौजूद रही है। यह गारण्टी इतिहास में विभिन्न सामाजिक इकाइयों में से मौजूद हरेक इकाई की एक आम पहचान (जो उसके सदस्यों के बीच एकता का अहसास पैदा करती है) की सूरत में मौजूद रही है। प्रारम्भ में हर मानवीय झुण्ड की पहचान उसके नेता की बुनियाद पर तय होती थी। इसके बाद गण की पहचान माता की वंशावली और बाद में पिता की वंशावली से तय होती रही। मानवीय झुण्ड की पैदावार की साझी हिस्सेदारी, गण, खून के रिश्ते पर आधारित जिन्दगी, कबीले की नस्ली दिशा, धर्म और जाति की बुनियाद पर चलने वाली सामन्ती व्यवस्था और साझी नागरिकता और राष्ट्रीयता पर आधारित राष्ट्रीय राज्य किसी न किसी प्रकार की मानवीय सुरक्षा की बद्धता पेश करती रही है, फिर भी बहिष्कृत लोगों को बदतरीन जिन्दगी गुजारनी पड़ी है। लेकिन आज वैश्वीकरण के उभरने के बाद तमाम परम्परागत सामाजिक सुरक्षा के जाल अपनी प्रासंगिकता खोते जा रहे हैं जबकि कोई नया सुरक्षा जाल एक विकल्प के तौर पर वजूद में नहीं आया है।

IV श्रमिकों के आत्म-विश्वास को किस चीज ने हिला दिया है

10. फिर, वह क्या है जिसने आज श्रमिकों के मन में निराशा और तनाव को पैदा कर दिया है और उनके आत्म-विश्वास को हिला दिया है।

11. क्या वैश्वीकरण ने श्रमिकों के घेरे में मायूसी को जन्म दिया है जैसा कि कुछ वामपंथी, दक्षिणपंथी, अतिवादी, रूढ़िवादी वगैरह कहते हैं। इसके एक वास्तविक जवाब पर पहुँचने के लिए जरूरी है कि वैश्वीकरण क्या है और उसकी क्या समस्याएं हैं इन सवालों का जायजा लेना जरूरी है। आम भाषा में वैश्वीकरण किसी घटनाक्रम की एक विश्वव्यापी प्रक्रिया को जाहिर करती है। मानव समाज के सन्दर्भ में इसका अर्थ है कि मानवीय अन्तरक्रिया समय और स्थान के मुताबिक ग्लोबल बन गई है। नये वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान ने मानव की मानसिक अन्तरक्रिया (सूचना तंत्र) को प्रकाश की गति से और मानवीय भौगोलिक अन्तरक्रिया को ध्वनि की गति से तेज संभव बना दिया है।

12. यह मानवीय वैश्विक अन्तरक्रिया तकाजा करती है कि मानव समाज का प्रबन्ध एक मानव समर्थक और पर्यावरण समर्थक (जो मानव अस्तित्व के लिए अति आवश्यक है) की बुनियाद पर कायम किया जाए, जो पाँच बुनियादी उसूलों यानि कि पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ, समता या सामाजिक न्याय, उत्पादकता, जनवाद और पारदर्शिता को मजबूती से थामे। इन दो उच्चतम प्राथमिकताओं यानि मानव और पर्यावरण को सामने रखे। इसकी प्राथमिक सामाजिक जरूरत एक स्थायी शान्ति कायम करना होना चाहिए जिसके तहत तमाम किस्म के सामाजिक टकरावों को बातचीत और समझौतों के जरिए हल किया जाए। इसकी राजनीति जनता को अधिकतम संभव सीमा तक शक्ति प्रदान करने के साथ-साथ पार्टी केन्द्रित सत्ता को कम करने पर आधारित होनी चाहिए। इसका अर्थशास्त्र पर्यावरणीय टिकाऊपन, उत्पादकता, समता, जनवाद और पारदर्शिता के विकास से सम्बन्धित होना चाहिए। इसकी संस्कृति मानवीय और पर्यावरणीय मूल्यों से ओत-प्रोत होनी चाहिए, जबकि इसकी विचारधारा को वैज्ञानिक यथार्थवाद से दिशा हासिल करनी चाहिए।

13. जाहिर है कि ऐसा वैश्विक विकास मॉडल शक्तिशाली और धनवान देशों की पसन्द नहीं हो सकता, क्योंकि यह वैश्विक मामलों (राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक) में निर्णय लेने के उनके विशिष्ट अधिकारों पर चोट पहुँचाता है। वे लगातार अपने परम्परागत राष्ट्रीय मॉडलों—यानि कि कॉरपोरेट नेतृत्व और राजकीय नेतृत्व (खास करके पहले वाला, क्योंकि बाद वाला विश्व स्तर पर लगभग नकारा साबित हो चुका है)—से चिपके हुए हैं। वे एक दहाई से अधिक समय से बड़े जोर-शोर से कॉरपोरेट मॉडल को वैश्वीकरण का समुचित प्रत्युत्तर के रूप में पेश कर रहे हैं। विकासशील देशों में शासक समूह भी उपरोक्त कॉरपोरेट मार्ग पर सम्पूर्ण ताकत से चल रहे हैं। राजकीय नेतृत्व वाले विकास मॉडल के एक या दो प्रचारक (जैसे फिडेल कास्ट्रो) भी उसे घिसे-पिटे पुराने रास्ते में कोई सुधार किए बगैर निरन्तर चल रहे हैं। विश्व श्रमिक और इसकी ट्रेड यूनियनें (खास करके विकासशील देशों में) अपने दु:ख तकलीफों के लिए आम तौर पर वैश्वीकरण पर दोषारोपण करती रहती है। जबकि इस सच्चाई को भूलती है कि उनकी सभी वर्तमान समस्याओं का

जन्म कॉरपोरेट राष्ट्रीय शासनों के तहत पहले ही हुआ और वही अभी तक उन्हें निरन्तर तंग कर रही है।

V श्रमिकों की परेशानी का वास्तविक कारण

14. तब, श्रमिकों की परेशानी का क्या कारण है? जाहिर है, यह प्रथमतया, वर्तमान विद्यमान बुनियादी सामाजिक वास्तविकता की गलत समझ में निहित है जो कि (वर्तमान वास्तविकता) तमाम किसम के सामाजिक अतिवादी रूझानों (यानि कि वामवाद, दक्षिणवाद, कट्टरवाद, एकतरफापनवाद) के मुताबिक राष्ट्रीय दायरे में ही चल रही है। वे वैश्वीकरण को एक ऐसा मनोगत घटनाक्रम समझते हैं जिसे यू एस और अन्य विकसित देशों द्वारा अपने स्वार्थ पूरे करने के लिए पैदा किया गया है। वे इस प्रकार वैश्वीकरण की वस्तुगत हकीकत को नकार देते हैं, जो वैश्वीकरण नई वैज्ञानिक तकनीकी परिवर्तनों (जो हमेशा मनुष्य और प्रकृति के बीच अन्तरक्रिया का नतीजा होता है) से पैदा हुआ है। द्वितीयत: यह पुरानी श्रमिक लाइन (जो राष्ट्रीय दौर से सम्बन्धित रही है) में नई उभरी वास्तविकता की मांग के मुताबिक आधुनिक (Update) नहीं बना पाने में निहित है। परिणामस्वरूप विद्यमान वास्तविकता के बारे में गलत समझ और उसको एक पुरातन प्रत्युत्तर देने में श्रमिक आन्दोलन को एक देश से दूसरे देश तथा सम्पूर्ण विश्व स्तर पर निरन्तर धक्का लगता जा रहा है।

VI श्रमिकों को उन्नत करने के लिए कार्यक्रम

15. श्रमिकों के सामने मुँह बाए खड़ी वर्तमान परेशानी केवल तभी समाप्त की जा सकती है अगर श्रमिक एक हकीकत पर आधारित कार्यक्रम तय करें, जिसमें त्रिपक्षीय पहलू शामिल हों, यानि (क) श्रमिक आन्दोलन की एक सही भविष्य दिशा तैयार करना, (ख) वर्तमान वास्तविकता और श्रमिकों का उसे समुचित प्रत्युत्तर देने के बारे में एक हकीकी समझ बनाना और (ग) श्रमिकों के भूतकाल के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों का सही पुनर्मूल्यांकन करना।

अ. श्रमिक आन्दोलन के भविष्य की दिशा

16. श्रमिक आन्दोलन के भविष्य की दिशा के सम्बन्ध में इसे 21वीं सदी के आम रूझान से सीख लेनी चाहिए और जिस दिशा में मानव समुदाय जा रहा है उसी दिशा का अनुसरण करना चाहिए। यह आम रूझान दिन-प्रतिदिन के तथ्यों से साफ जाहिर होता है कि विभिन्न देशों के एकीकृत होने की प्रक्रिया दो तरफा आन्दोलन के जरिए एक एकीकृत विश्व मानवीय इकाई बनने की तरफ आगे बढ़ रही है।

यह दो तरफा प्रक्रिया देशों को क्षेत्रीय समुदायों में इकट्ठा कर रही है और दूसरी तरफ डब्ल्यू टी ओ, डब्ल्यू ई सी इत्यादि जैसे नये अन्तरराष्ट्रीय संगठनों को गठित करने के साथ-साथ पहले से विद्यमान संगठनों, जैसे यू एन और उससे सम्बन्धित संगठनों तथा आइ एम एफ और विश्व बैंक इत्यादि जैसे विश्व वित्तीय संस्थाओं को और अधिक शक्तिशाली बना रही है।

17. यह दो तरफा आम रूझान दर्शाता है कि विश्व के 186 देशों का भविष्य साझा बन गया है। अत: हमारे समय की आम सामाजिक वास्तविकता श्रमिक आन्दोलन को आह्वान करती है कि यह (श्रमिक आन्दोलन) पूंजी (या इसके प्रबन्धकों) के साथ अपनी समस्याओं का हल निकालते वक्त टकराववादी तरीका काम में ना लें, बल्कि दोस्ताना मार्ग अपनाएँ, जो दोनों सहभागियों का एक ऐसा साझा भविष्य निर्मित करने में सहयोग करें जिसमें श्रम की अधीनता को समाप्त करते हुए एक ऐसे दो तरफा उद्देश्य की सेवा की जाए जिसमें एक तरफ पर्यावरणीय हितों और दूसरी तरफ मानव जाति (सम्पूर्ण श्रमिकों सहित) के हितों को पूरा किया जाए।

ब. वर्तमान वास्तविकता और श्रमिकों का प्रत्युत्तर

18. आज श्रमिक आन्दोलन को दो तरफा कार्य का सामना करना पड़ रहा है। इसे एक तरफ विद्यमान सामाजिक वास्तविकता को समझना है और श्रमिक दिशा (या लाइन) को इसकी परम्परागत धारणाओं, चलन के तरीकों और संगठन के मानदण्डों में नई वास्तविकता के अनुरूप पुनरसंरचना करके आधुनिक बनाना है।

(i) विद्यमान सामाजिक वास्तविकता का मसला

19. मानवीय बौद्धिक एवं सम्पर्क सम्बन्धों के अति तीव्र गति से परिवर्तन के फलस्वरूप देशों के अन्तरनिर्भर बन जाने से एक वैश्विक सोच, कार्य-प्रणाली एवं संगठित पद्धति उभर कर सामने आई है (जैसा कि पैरा नं. 11 और 12 में पहले से ही उल्लेख किया गया है), यह नई वैश्विक प्रणाली एक ऐसी नई विकास रणनीति की माँग करती है जिसका दो तरफा उद्देश्य एक तरफ लोगों को उच्च प्राथमिकता देना और दूसरी तरफ पर्यावरण को सुधारना हो।

(ii) श्रमिकों की आम दिशा को आधुनिक बनाने के सवाल

20. श्रमिक दिशा को आधुनिक बनाने के लिए निम्न मुद्दों पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

21. धारणात्मक उसूलों के संबंध में दो बिन्दु, यानि श्रम आन्दोलन के आम उद्देश्य एवं इसके मुख्य कार्य को पुन: परिभाषित करने की आवश्यकता है।

(i) श्रम आन्दोलन के आम उद्देश्य के संबंध में वैश्विक विकास की रणनीति के अलावा और कोई उद्देश्य नहीं हो सकता। (जिसका उल्लेख पैरा 12 में किया गया है) विशेष तौर पर इसके मायने है कि विकास परियोजनाओं के प्रबन्ध में कम-से-कम मजदूरों की एक-तिहाई भागीदारी सुनिश्चित की जाए (यह लोकतांत्रिक सिद्धान्त को लागू करने के बारे में है), न्यायिक आधार पर आन्तरिक और बाह्य तनावों या टकराहटों को सन्तुलित करना या कम करना तथा असमानता एवं वंचितपन को दूर करना (यह सामाजिक शान्ति के सिद्धान्त के सम्बन्ध में है), सभी भौतिक संसाधनों की उन्नति पर जोर देना (यह टिकाऊपन के संबंध में है), आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी की मांग (यह समता के संबंध में है) तथा उद्यम की अधिकतम दक्षता, उत्पादकता एवं उत्पाद की गुणवत्ता को बढ़ाने की जिम्मेदारी (यह उत्पादकता के पाँचवे सिद्धान्त के बारे में है)

उठाना। मानवीय एवं भौतिक दोनों पहलुओं के समान महत्वपूर्ण होने पर जोर देने से पूंजी की तर्कसंगत एवं वास्तविक परिभाषा सामने आती है। पूँजी के बारे में मार्क्सवादी अर्थशास्त्रियों ने अतिरिक्त श्रम या अतिरिक्त मूल्य की एकतरफा व्याख्या की है तथा उदारवादी अर्थशास्त्रियों ने इसकी व्याख्या उत्पादन के साधनों के रूप में की है। सामाजिक विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया दर्शाती है कि पूँजी का मानवीय एवं भौतिक पहलू मानवीय समाज की शुरूआत से ही अस्तित्व में हैं।

(ii) इसके मुख्य कार्य के तौर पर श्रमिक उद्देश्य यह आवश्यक बना देता है कि एक-दूसरे से जुड़ी हुई तीन तरफा गतिविधियाँ की जाएँ, यानि (क) मजदूरों की सामाजिक चेतना को उनकी राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी (श्रम कानूनों से सम्बन्धित) एवं सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाकर बढ़ाया जाए, (ख) लोकतान्त्रिक कार्य प्रणाली को ट्रेड यूनियनों में अपनाने को सुनिश्चित करना तथा (ग) तात्कालिक और दीर्घकालिक माँगों के आधार पर मजदूरों को एकबद्ध करना, जिससे एक परियोजना में एक यूनियन का मानदण्ड मजबूत होता हो।

22. कार्यप्रणाली के मानदण्डों के बारे में उपरोक्त तीन मुख्य कार्यों को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि एक नई कार्य संस्कृति को निम्न मानदण्डों के आधार पर अपनाया जाए।

(i) मजदूरों की सामाजिक चेतना को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि वैश्विक सामाजिक वास्तविकता तथा इसकी मांगे, श्रमिकों के उद्देश्य एवं कार्य, श्रमिकों की कार्य संस्कृति, इसके सांगठनिक मानदण्ड तथा सभी मौजूदा श्रम कानूनों का संक्षिप्त सार, वैश्वीकरण-विरोधी सभी धारणाओं (जैसे उग्र राष्ट्रवाद, नस्लवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद इत्यादि) का मुकाबला करने के संबंध में पर्याप्त समझ पैदा की जाए। इस संबंध में एक सरल और संक्षिप्त पाठ्यक्रम तैयार किया जाए जिसमें बातचीत करने के महत्वपूर्ण बिन्दु शामिल हों और उसे जुबानी व लिखित दोनों तरीकों से प्रचारित किया जाए।

(ii) श्रम आन्दोलन की लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि सभी हालात में जनवादी सिद्धान्तों को अपनाया जाए। इसका अर्थ है नियमित चुनाव हों, विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति की इजाजत हो, मजदूरों के साथ निरन्तर सम्पर्क कायम रखा जाए, नीतियाँ बनाने, निर्णय लेने और उन्हें लागू करने में प्रत्येक मजदूर को शामिल किया जाए, इन सबके लिए प्रयास करते हुए यूनियन, मजदूरों एवं जनता के प्रति हमेशा जवाबदेही के मानदण्ड को लागू करना।

इसका यह भी अर्थ है कि श्रमिकों की प्रत्येक माँग को मनवाने के लिए कानूनी और शान्तिपूर्ण साधनों को अपनाया जाए, यानि उन सभी मुद्दों पर जो मजदूरों के दिमागों में उमड़ रहे हों, उन पर मजदूरों की आम सभा में या तो हाथ खड़ा करके या मतदान के जरिए संघर्ष के तरीकों (जिसमें बातचीत, समझौता, मध्यस्थता और आखिर में हड़ताल, जिसे केवल तभी अपनाया जाए, जब अन्य सभी विकल्पों के रास्ते बंद हो चुके हों) का निर्णय किया जाए। प्रबन्ध में वास्तविक भागीदारी के काल में हड़ताल का तरीका अप्रासंगिक बन जाता है।

इसका और आगे अर्थ यह है कि नागरिक स्वतन्त्राओं और मानव अधिकारों पर थोपी जाने वाली सभी बाध्यताओं का विरोध किया जाए। सामाजिक न्याय, असमानताओं को समाप्त करने, कमजोर वर्ग व अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने के सभी आन्दोलन का समर्थन किया जाए। श्रम आन्दोलन को जनता के अन्य तबकों की समस्याओं के साथ जोड़ा जाए। अन्य जन संगठनों और वर्ग संगठनों से नजदीकी सम्पर्क कायम रखा जाए तथा राष्ट्रीय श्रम आन्दोलनों को उनसे सम्बन्धित वैश्विक ट्रेड यूनियन से सम्बद्ध किया जाए ताकि विभिन्न देशों के मजदूरों में लगातार सहयोग और एकजुटता बनाई जा सके (साथ ही साथ अन्य मेहनतकश जनता के तबकों के साथ सहयोग व एकजुटता कायम की जाए।)

23. सांगठनिक स्वरूप के संबंध में, ट्रेड यूनियन आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य और कार्य संस्कृति की यह आवश्यकता है कि हर गतिविधि मजदूरों में अधिकतम संभव एकता बनाए और इसके लिए एक परियोजना में एक यूनियन के मानदण्ड की अनुपालना की जाए। इसके लिए प्रथमतया यह आवश्यक है कि प्रत्येक परियोजना में मजदूरों की भागीदारी व उनसे विचार-विमर्श करके मजूदरों का एक युक्ति-युक्त माँग-पत्र तैयार किया जाए और उसके आधार पर संबंधित मजदूरों को एक यूनियन में संगठित किया जाए। जहाँ कहीं भी एक यूनियन बनाने का मानदंड व्यावहारिक न हो, तो मौजूदा सभी यूनियनों को न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त मोर्चे के रूप में एकताबद्धकरने की कोशिश करनी चाहिए। श्रम आन्दोलन के अन्दर राजनीतिक कलह समाप्त करने और अन्तर-पार्टी दुश्मनी तथा अनावश्यक राजनीतिक दखलन्दाजी से उसको बाहर निकालने के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है कि मजदूरों और ट्रेड यूनियनों में प्रचार चलाया जाए और उन्हें सहमत किया जाए कि श्रम आन्दोलन का प्रबन्ध बाहरी पार्टी संगठनकर्त्ताओं की बजाए खुद सम्बन्धित मजदूरों द्वारा चलाने के उसूल को अपनाया जाए। इन सभी संगठनात्मक मानदण्डों की परियोजना से लेकर अन्तरराष्ट्रीय स्तर तक अपनाने की जरूरत है।

(iii) भारत के श्रमिकों की समस्याएँ और श्रम आन्दोलन की रणनीति

24. उपरोक्त वर्णित वैश्विक ट्रेड यूनियनवाद के आम उसूल को भारत में उभर रहे ठोस हालात (यानि जहाँ श्रम की कई किस्में हैं, जैसे संगठित मजदूर, सरकारी कर्मचारी, दुकान एवं वाणिज्य कर्मचारी, खेत मजदूर, असंगठित मजदूरों की विभिन्न किस्में आदि और जहाँ विभिन्न किस्मों में से प्रत्येक किस्म को अपनी विशिष्ट समस्याओं सहित, विरोधी ट्रेड यूनियनों में खासतौर से दलीय आधारित तथा कहीं-कहीं गैर दलीय (व्यावसायिक नेताओं के नेतृत्व में है) पर लागू किया जाए तो सबसे पहले आवश्यक है कि यह विश्लेषित किया जाए कि भारतीय श्रमिक के सामने वर्तमान में मुख्य समस्याएँ क्या है? और तब सभी प्रकार के मजदूरों की चेतना बढ़ाने व उनकी भागीदारी बढ़ाने तथा विभिन्न ट्रेड यूनियनों को विस्तृत संयुक्त मोर्चे में एकबद्ध करने के लिए वास्तविक श्रम आन्दोलनों की रणनीति (श्रम आन्दोलन का परिप्रेक्ष्य, मजदूरों का एक साझा मांग-पत्र, श्रमिकों की कार्यशैली व संगठन की सूरत सहित) बनाई जाए।

(iv) वर्तमान में भारतीय श्रमिकों के सामने मुख्य समस्याएँ

25. भारतीय श्रमिकों के सामने मुख्य मूल समस्या सम्पूर्ण भारतीय व्यवस्था (यानि इसका सरकारी दृष्टिकोण, इसकी अर्थव्यवस्था, यानि उद्योग,कृषि एवं व्यापारिक क्षेत्र, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम, इसकी कार्यशैली एवं सांगठनिक ढाँचा) तथा सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पूँजी व श्रम के संबंध में श्रम को कम प्राथमिकता देने का प्रश्न है। जब तक यह व्यवस्थागत त्रुटि नहीं हटाई जाती तब तक श्रमिक समाज एवं विकास के क्षेत्र में उचित स्थान प्राप्त नहीं कर सकेगा।

26. यह समस्या मनुष्य समाज की शुरूआत से ही मौजूद है जिसका आधार निरन्तर उभर रहा वैज्ञानिक तकनीकी काम और संगठन के तरीकों (जैसे भोजन एकत्र करना, शिकार, पशुपालन व कृषि) के लगातार क्रमिक विकास में निहित है। दो सौ साल पहले औद्योगिक तरीके ने इस आधार में (श्रम के बन्धनों को तोड़कर) बड़ा परिवर्तन किया परन्तु श्रमिक अभी भी सभी प्रकार के प्रबन्ध मण्डलों के अधीन बना हुआ है। अब नया उभरा वैज्ञानिक तकनीकी तरीका, इसके वैश्विक आयाम तथा विकास की रणनीति की माँग है कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में एक नई लोकहित व लोक समर्थक तथा प्रकृति हितैषी व्यवस्था कायम हो, जो प्रत्येक सामाजिक क्षेत्र में उचित समानता पर आधारित हो।

27. भारतीय मजदूरों और उसके श्रम आन्दोलन के सामने अन्य पुरानी व नई समस्याएँ निम्न हैं:-

(i) काम के सभी क्षेत्रों में कम मजदूरी का मिलना। यह इसलिए है क्योंकि कहीं भी काम की मजदूरी, मजदूरों की न्यूनतम आवश्यकता से जुड़ी हुई नहीं है। इसकी स्थिति विशेष तौर पर लघु उद्योगों, असंगठित एवं कृषि क्षेत्र में गम्भीर है।

(ii) बेरोजगारी एवं अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या, यह राज्य के बुनियादी विकास की रणनीति से सम्बन्धित प्रश्न है, इसलिए राज्य का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह इसके सामाजिक प्रभावों से निपटे।

(iii) श्रमिकों और प्रबन्ध मण्डल के आमदनी में अमानवीय असमानता की समस्या।

(iv) बाल-मजदूरी की समस्या का विद्यमान रहना। यह सामाजिक तौर पर एक विकराल घटनाक्रम है जहाँ बच्चों का मानसिक एवं शारीरिक विकास की आवश्यकता है। इसके बनिस्पत उन्हें कठोर शारीरिक श्रम करना पड़ता है जिससे वे सामाजिक और व्यक्तिगत तौर पर अविकसित रह जाते हैं। करीब 20 करोड़ 30 लाख बच्चों में से मात्र 12 करोड़ बच्चे स्कूल जाते है और काफी बाल श्रमिक मजदूरी करते हैं। 8 करोड़ 70 लाख बच्चों में से अधिकांश जो स्कूल नहीं जाते हैं, विभिन्न गतिविधियों जैसे घरेलू नौकर, खेत मजदूर, चिथड़े उठाने, बीड़ी निर्माण आदि में लगे रहते हैं। हाल ही में लोकसभा में दिए गए सरकारी आकंड़ों के अनुसार 1 करोड़ 12 लाख बच्चे बाल मजदूर हैं जबकि आई एल ओ के अनुमानों के अनुसार 4.4 करोड़ बच्चे बाल श्रमिक हैं। गैर-सरकारी संगठन इन बच्चों की संख्या 5.5 करोड़ बताते हैं।

(v) मजूदरी के संबंध में लिंग भेद की समस्या, उच्च संगठित क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र को छोड़कर यह समस्या सब जगह है।

(vi) मजदूरों के कमजोर स्वास्थ्य और बीमारियों की समस्या, यह समस्या इसलिए है क्योंकि निम्न स्तर की मजदूरी, निम्न स्तर का पोषण ही उपलब्ध करा सकती है, जो मेहनतकश लोगों के विकृत स्वास्थ्य का कारण है।

(vii) मजदूरों में अनपढ़ता की समस्या, इसका कारण यह है कि मजदूरों में गरीबी छाई हुई है और सामाजिक पिछड़ेपन मौजूद है। गरीबी तथा सामाजिक पिछड़ापन बच्चों को स्कूल जाने में रूकावट है और इसलिए कमाई में लगाना उनकी मजबूरी है।

(viii) सरकार द्वारा मुफ्त विधि सहायता के प्रावधान और मुकदमेबाजी की समस्या, इसका कारण है कि उच्च संगठित क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र को छोड़कर आम तौर पर मजदूर, मजदूरी भुगतान न होने, मजदूरी काट लिए जाने एवं अन्य बुनियादी सुविधाएँ जो कानून द्वारा उसे प्राप्त हैं, से इन्कार करने से आमतौर पर पीड़ित होता है।

(ix) उदार या बाजारोन्मुखी प्रबन्धन मजदूरों की बुनियादी समस्याओं का हल निकाले बिना श्रम उत्पादकता के एकतरफापन पर जोर देता है। इस प्रकार का एक तरफा दबाव मजदूरों पर काम का अतिरिक्त वजन डालता है। जिसके एवज में मजदूरों को कुछ नहीं दिया जाता। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्रोन्मुखी श्रमिक समर्थित अधिकारों पर एकतरफा जोर देते हैं जबकि श्रम उत्पादकता या परियोजना की अधिकतम वृद्धि से इन अधिकारों को नहीं जोड़ते हैं। इससे न केवल संबंधित उद्योग के हितों को नुकसान पहुँचता है, बल्कि श्रमिकों का भी अहित होता है।

(x) श्रम कानूनों के पुनरनिरीक्षण की समस्या, इस पुनरनिरीक्षण के जरिए सरकार और बड़े उद्योग चाहते है कि जो विधिक अधिकार श्रमिकों को इस समय उपलब्ध हैं, उन्हें कमजोर किया जाए। यहाँ मुख्य मुद्दा निर्यात नीति, स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होने की योजना तथा बीमार इकाइयों के विक्रय का है।

(xi) उद्योगों के बीमार होने की समस्या, इस समस्या के प्रथम शिकार मजदूर हैं, क्योंकि इसका तुरन्त प्रभाव मजदूरों के बकाया भुगतान न होने में है। इस प्रकार, मजदूरों से यह कहा जाता है कि वे मजदूरी पंचाट लागू न करने, बोनस का भुगतान न लेने, मजदूरी दर घटाने, वार्षिक वेतन को स्थगित करने एवं सेवा शर्तों को बदलने की शक्ल में त्याग करें।

कपड़ा औद्योगिक क्षेत्र में यह बीमारी अधिक है। इसके बाद इन्जीनियरिंग और रसायनिक क्षेत्र आते हैं। विभिन्न पुरानी और नई जाँचे यह प्रदर्शित करती है कि उद्योगों को बीमार होने का मुख्य कारण संबंधित उद्योग या उद्यम का प्रबन्धन है। आर्थिक मंदी और मांग और पूर्ति का पहलू इसके बीमार होने के अन्य कारण है। उद्योगों के बीमार होने के श्रम की भूमिका नगण्य है। मौजूदा औद्योगिक बीमारी में भी श्रम की अनुशासनहीनता की जिम्मेदारी सरकारी तथ्यों के अनुसार मात्र 10 प्रतिशत है।

(xii) यद्यपि भारतीय कानून के तहत सभी प्रकार के जबरदस्ती या अनिवार्य रूप से करवाये जाने वाले श्रम प्रतिबन्धित हैं फिर भी 1999 की अमेरिका के गृह विभाग की

भारत पर मानवाधिकार की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 60 लाख बन्धक मजदूर हैं। इस रिपोर्ट का कहना है कि कुछ घरों में और काम करने की कुछ जगहों पर हालात बन्धुओं मजदूरों जैसी है। बन्धुआ मजदूरों की अन्य किस्मों में महिलाओं का बन्धुआ होना, जबरदस्ती वैश्वयावृत्ति करवाना तथा बच्चों को वैश्यावृत्ति के लिए अवैध व्यापार करवाना आदि है।

(xiii) आकस्मिक या दैनिक वेतन-भोगी मजदूरों की समस्या, इस प्रकार के लाखों मजदूर इस देश में (इनमें से कुछ इस हैसियत से 20 वर्षों से काम कर रहे हैं) सालों अनिश्चितता में झूलते रहते हैं। दिसम्बर 1999 के प्रथम सप्ताह में दिल्ली हाईकोर्ट ने एक महत्वपूर्ण निर्णय दिया है। इस निर्णय से दिल्ली प्रशासन में काम करने वाले इस प्रकार के मजदूरों पर औद्योगिक विवाद अधिनियम लागू होना माना गया है। इस निर्णय का केन्द्र सरकार एवं अन्य राज्य सरकारों के लाखों दैनिक वेतनभोगी मजदूरों के कानूनी अधिकारों पर असर पड़ सकता है।

(xiv)असंगठित शहरी मजदूरों की समस्या, यह काम का एक विशाल क्षेत्र है जिसमें विभिन्न किस्मों की गतिविधियों वाले लाखों मजदूर जैसे कि निर्माण में कार्यरत मजदूर, घरों में काम करने वाले मजदूर नियोजित हैं, इस प्रकार के मजदूरों के अधिकारों और कल्याण के संबंध में अभी तक कोई कानून नहीं बना हुआ है।

(xv) खेत-मजदूरों (ग्रामीण इलाकों के अन्य किस्म के मजदूरों सहित) की समस्या भारत में यह क्षेत्र रोजगार दिलाने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र है जिसमें करीब 10 करोड़ मजदूर जो भारत की कुल श्रम शक्ति का 25 प्रतिशत हिस्सा बनता है, कार्यरत हैं। परन्तु भारत का यह सबसे अधिक उपेक्षित क्षेत्र है जिसमें देश के काफी तादाद में वंचित लोग हैं।

(v) भारतीय श्रम की रणनीति

28. भारतीय श्रम रणनीति की ओर मुखरित हों तो आवश्यक है कि चार राजनीतिक मुद्दों पर ध्यान दिया जाए:-

श्रम परिप्रेक्ष्य, मजदूरों का मांग-पत्र, श्रमिक कार्यशैली तथा संगठन का तौर-तरीका।

(i) भारतीय श्रम परिप्रेक्ष्य

29. भारतीय श्रम परिप्रेक्ष्य को दो तरफा प्राथमिकता रखनी चाहिए। यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा करे तथा दूसरी तरफ पर्यावरण या (प्रकृति) के हितों की रक्षा करें। आमतौर पर इसका मतलब है कि श्रमिकों का आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक तौर पर सशक्तिकरण किया जाए। विशेषतौर पर इसका तात्पर्य है कि सभी प्रकार की विकास परियोजनाओं के प्रबन्ध में श्रमिकों के उचित प्रतिनिधित्व के अधिकार को सुरक्षित किया जाए, पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन किया जाए। आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी तथा अन्य आवश्यक सुविधाएँ (जैसे बोनस, प्रोविडेण्ट फण्ड, छुट्टियाँ, निश्चित काम के घण्टे, सुरक्षा-प्रबन्ध, स्वास्थ्य एवं सफाई का इन्तजाम, श्रम कल्याण आदि) एवं उत्पादन, गुणवत्ता, विविधता, उपलब्धता, कम कीमत, अपशिष्ट कम करना आदि के लिए श्रम कुशलता को बढ़ाने की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करना है।

30. उपरोक्त परिप्रेक्ष्य मजदूरों में यह चेतना बढ़ाता है कि वे विकास-प्रक्रिया तथा अपने सम्बन्धित उद्यम के प्रशासन के साझेदार है। यह इस अहसास को जगाता है कि जिस परियोजना में मजदूर काम कर रहे हैं वह उनका अपना है और उसकी सम्पन्नता उन पर निर्भर करती है। पूंजी या प्रबन्ध के प्रभुत्व को थामना तथा श्रम को अधीन मानने के परिप्रेक्ष्य के विपरीत श्रम-पूंजी की साझेदारी का परिप्रेक्ष्य सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया में दीर्घकाल तक कार्य संस्कृति को बढ़ाने का कार्य कर सकता है। श्रम-पूंजी साझेदारी की समझ बाजार (या पूंजी) के महिमा मंडन और ट्रेड यूनियन या श्रम के लोक-लुभावनेपन को ,जो कि दोनों एक तरफा नारे और क्रिया से ग्रसित हैं, नतीजन श्रम व पूँजी में टकराहट पैदा करते हैं, को भी रोकने की क्षमता रखते हैं।

(ii) भारतीय श्रमिकों का मांग-पत्र

31. श्रमिकों के मांग-पत्र में वे सभी दावे शामिल हैं, जिससे श्रमिकों या उनके श्रम आन्दोलन की तर्कसंगतता एवं मौजूदा मजदूर समस्याओं का प्रासंगिक हल (जैसा कि उपरोक्त चरण संख्या 25 और 26 में उल्लेखित) है, जो निम्न है-

(i) यह मांग की जाए की श्रम को मानवीय पूँजी माना जाए न कि माल, इस प्रकार श्रम के पूँजी के अधीन होने की स्थिति को समाप्त किया जाए तथा पूँजी और श्रम को बराबरी का दर्जा दिया जाए।

(ii) उचित सरकारी श्रम नीति निर्धारित किये जाने की मांग की जाए। जिसका उद्देश्य श्रम और पूँजी के संबंधों को समान दर्जा देकर तथा एक तरफ मजदूरों की सभी जायज माँगों को मानकर दूसरी तरफ पूँजी को उचित स्थान देकर दोनों का सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण बनाए जाए।

(iii) भारत के राष्ट्रीय स्तर पर श्रम की योग्यता और क्षमता को विकसित कर प्रतियोगी (तीव्र वैश्विक प्रतियोगिता के मद्देनजर भारतीय पूँजी की यह एक तुरन्त पूर्ण की जाने वाली मांग है) बनाए जाने की मांग की जाए।

यह मांग पुराने स्थापित संबंधों के तहत नहीं उठाई जा सकती है जो प्रबन्ध के प्रभुत्व और श्रम के अधीनस्थ संबंधों और इस प्रकार लगातार श्रम और पूंजी के टकराहट से ग्रसित है, पर आधारित है। ये तनावपूर्ण संबंध मजदूरों की प्रेरणा और उनकी कारगुजारियों को कुन्द करते हैं। मजदूरों की क्षमताएँ और योग्याताएँ श्रम और पूंजी की एकमात्र साझेदारी से बढ़ाई जा सकती है और केवल मात्र यही एक तरीका मजदूरों को उनकी उत्पादकता, गुणवत्ता, कीमतों में कमी, विविधता, उपलब्धता तथा अपव्यय (Waste) कम करने की बुद्धिमता का विकास करने को प्रेरित कर सकता है।

(iv) श्रम विरोधी कानूनों द्वारा भारत को प्रतियोगी बनाने की सरकारी योजना को समाप्त करने की मांग करना, जैसे काम के घण्टों की बढ़ोत्तरी करना, मजदूरों में ठेकेदारी प्रथा को कानून सम्मत बनाना, सरकारी इजाजत के बिना प्रबन्धकों को तालाबन्दी व कार्यबन्धी के अधिकारों को स्वीकृति देना तथा अपनी इच्छानुसार मजदूरों को रखने व निकालने का अधिकार देना, छंटनी नीति को लागू करना, उत्पादकता से बोनस को

जोड़ना (मौजूदा कानूनी तौर पर उपलब्ध लेबर इन्सेटिव को वापस लेना) इत्यादि में मजदूरों के हितों की कीमत पर श्रम कानूनों में कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए।

(v) उच्चतम व न्यूनतम वेतन के बीच में सभी सुविधाओं और भत्तों सहित 5 गुना से अधिक अन्तर न होने की मांग करना।

(vi) प्रत्येक उद्यम एवं उद्योग या ट्रेड में गुप्त मतदान के जरिए से एक इकई में एक यूनियन बनाए जाने की मांग करना ताकि यूनियनों की बहुलता को निर्मूल किया जा सके।

(vii) बन्धुआ मजदूर मुक्ति अधिनियम को प्रभावी ढंग से लागू किये जाने की मांग की जाए।

(viii) असंगठित मजदूरों की समस्याओं से निपटने के लिए व्यापक केन्द्रीय तौर पर केन्द्रीय कानून बनाए जाने की मांग की जाए।

(ix) खेत-मजदूरों की समस्याओं विशेष तौर पर न्यूनतम वेतन, बोनस तथा वृद्धावस्था पेन्शन के संबंध में व्यापक केन्द्रीय कानून बनाए जाने की मांग की जाए।

(x) बीमार सार्वजनिक राजकीय उपक्रमों के जनवादी पुनरसंरचना की मांग करना प्रथमतया; संबंधित मजदूरों की सहकारी संस्था को बेचकर या सौंपकर (जो भी अधिक व्यावहारिक हो) तथा द्वितीयत: सरकारी नामांकित एवं मजदूरों के चुनिंदा प्रतिनिधियों के संयुक्त प्रबंध के तहत उसे चलाया जाए। यह इसलिए किया जाए क्योंकि इन परियोजना में हानि का कारण नौकरशाही द्वारा गलत ढंग से काम किया जाता है और इस प्रकार इसका प्रत्युत्तर केवल मात्र लोकतांत्रिक हल ही है। यदि पहला और दूसरा विकल्प न लिया जा सके तब इसका विक्रय बाजार में कर दिया जाए।

(xi) निगम कम्पनियों को उनके प्रवर्त्तकों के मामूली कीमत पर बड़ी तादाद में अपने स्वयं के नाम, अपने रिश्तेदारों और दोस्तों के नाम शेयरों को प्राप्त करने के विशेषाधिकार को समाप्त कर लोकतान्त्रिक बनाया जाए। इस प्रकार इन निगम कम्पनियों के शुरू से लेकर आखिर तक वंशानुगत नियंत्रण बनाए रखने से रोका जा सकता है। यह लोकतान्त्रिक सुधार सामान्य अंशधारकों को लोकतांत्रिक तरीके से मैनेजमेण्ट बोर्ड को चुनने के लिए शक्तिशाली बनाएगा तथा प्रबन्धक बोर्ड (जिसमें मजदूरों के चुनिंदा प्रतिनिधि भी शामिल हों) को अधिक दक्ष और अन्वेषक बनाएगा। निगम प्रबन्ध की अदक्षता इस तथ्य में देखी जा सकती है कि कुछ निगम कम्पनियों पर कुल बैंक का ऋण 5500 करोड़ रुपये है। सम्बन्धित निगम प्रबन्ध चाहता है कि यह ऋण वसूल योग्य न माना जाए, जबकि बैंक प्रबन्ध चाहता है कि इस ऋण की वसूली के लिए कानूनी कदम उठाने हेतु सरकार इशारा करे और सरकार है कि वह हमेशा की तरह मौन है–इस प्रकार, कुछ बैंकों को दिवालिए की स्थिति में धकेल दिया है।

(xii) औद्योगिक बीमारी को लोकतांत्रिक सुधारों के जरिए समाप्त करने के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाने की मांग की जाए, जैसे इस प्रावधान को उच्च प्राथमिकता देकर कि मजदूरों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों को प्रबन्धन में शामिल किया जाए, उनकी कार्यकुशलता को समयानुकूल स्तर पर लाया जाए, मजदूरों की क्षमता और योग्यता को

सुधारकर उनको प्रेरित किया जाए–इस प्रकार भारतीय उद्योग में प्रतियोगिता को बढ़ावा दिया जाए। भारत में निम्न प्रतियोगिता का एक बड़ा कारण यह है कि यहाँ श्रम और पूंजी में टकराहट के संबंध हैं।

(xiii) मानव संसाधन तथा पर्यावरणीय संसाधनों के विकास के जरिए नये रोजगार के अवसरों को पैदा किए जाने की मांग की जाए और इनका विकास श्रम विशेषज्ञता को विकसित कर, रोजगारोन्मुखी शिक्षा उपलब्ध कर, खेत मजदूरों तथा ग्रामीण एवं शहरी बेरोजगारों को भूमि संरक्षण, रेगिस्तान तथा क्षारित भूमि को खेती योग्य क्षेत्रों में बदलकर, कृषिकारी जंगलात, पुनरनवीनीकरण, जल सदुपयोग, जैव-विविधता, कृषिकारी उद्योग, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, दस्तकारी, हाथकरघे, सेवा एवं सूचना उद्योगों आदि को लगाकर किया जाए।

(xiv) यह मांग की जाए कि भारत की सरकार–भारतीय संविधान के अनुच्छेद 43 ए के तहत भारतीय राज्य को यह निर्देशित करता है–''उपक्रम, वाणिज्य संस्थान या अन्य संगठन जो उद्योग में संलिप्त हों, के प्रबन्धन में मजदूरों की भागीदारी को सुनिश्चित करे''–तुरन्त कानून बनाए, जिसमें इस प्रकार के सभी उद्यमों के प्रबन्धन में उनके मजदूरों को एक-तिहाई प्रतिनिधित्व हो। इस मांग को पूरी करने से संगठित क्षेत्र में पूँजी और श्रम की साझेदारी कायम होगी तथा इस क्षेत्र के लोकतन्त्रीकरण की बुनियादी आवश्यकता भी पूरी होगी।

(xv) भारत की सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41 के तहत, जिसमें भारतीय राज्य को यह निर्देशित किया गया है''काम का अधिकार, शिक्षा बेरोजगारी की स्थिति में लोक-सहायता, वृद्धावस्था, बीमारी एवं विकलांगता के संबंध में प्रभावी प्रावधान बनाए जाएं। सभी बेरोजगारों को काम करने का अधिकार दिलाने तथा बेरोजगारी के दौर में उचित सहायता दिलाए जाने के कानून बनानें की मांग भी की जाए।''

(xvi) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 43 के तहत, सभी मजदूरों चाहे वे खेत मजदूर हों, औद्योगिक मजदूर हों–को काम मिले, जीने लायक मजदूरी, काम की ऐसी स्थिति हो, जिसमें शानदार जीवन स्तर सुनिश्चित हो तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक और पूर्ण आनन्द के अवसर सुनिश्चित करने के बाबत उचित कानून बनाया जाए या आर्थिक संगठन बनाया जाए या कोई अन्य तरीका अपनाया जाय''–सभी प्रकार के मजदूरों, विशेष तौर पर कृषि और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की न्यूनतम जीने लायक मजदूरी को सुनिश्चित करने का तुरन्त कानून बनाया जाए।

(xvii) भारत सरकार- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 38 (2) के तहत निर्देश देती है कि ''आय की असमानता को न्यूनतम किया जाए तथा हैसियत, सुविधा और अवसर की असमानताओं को जो न केवल व्यक्तियों के बीच में बल्कि विभिन्न क्षेत्रों या विभिन्न धन्धों में लोगों के समूहों के बीच में भी मौजूद असमानताओं को हटाने की कोशिश की जाय।''–आय में अत्यधिक असमानताओं को अधिकतम अनुपात 5 गुना के स्तर पर उद्योग व्यापार तथा प्रशासनीय सेवाओं में घटाने के लिए आवश्यक कानूनी कदम उठाए जाने की मांग की जाए।

(xviii) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (डी) के तहत जिसमें भारतीय राज्य से आह्वान किया गया है ''आदमी और महिला दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन दिए जाने को सुनिश्चित बनाने के लिए नीति निर्धारित करे–कानूनी और व्यावहारिक तौर पर समान कार्य के लिए समान वेतन, आदमी और महिला दोनों को विशेष तौर पर कृषि और असंगठित क्षेत्र में भुगतान करने को विश्वसनीय बनाने की मांग की जाए।''

(xix) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद (24) के तहत, जिसमें यह निश्चित किया गया है कि बालकों को फैक्ट्री में या किसी अन्य खतरनाक रोजगार देने से प्रतिबन्धित किया जाए तथा अनुच्छेद 39 (ई) व (एफ) जिसमें भारत सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देशित किया गया है ''बच्चों को खुशनुमा वातावरण तथा स्वतंत्रता और गरिमा की स्थिति में विकसित होने के लिए अवसर एवं सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएं और बचपन एवं युवावस्था को शोषण से बचाया जाए तथा नैतिक एवं भौतिक विकास में बाधाएँ न आने दी जाए।'' सभी प्रकार के बाल मजदूरी को कानून बनाकर प्रतिबन्धित किया जाए तथा उसे प्रभावी ढंग से लागू किया जाए।

(xx) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के तहत, जिसमें भारतीय राज्य पर यह जिम्मेदारी डाली गई है कि ''भारतीय संविधान के लागू होने के 10 साल के अन्दर सभी बच्चों को जब तक वे 14 वर्ष के नहीं हो जाएं मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करवाई जाए। भारत सरकार उन सभी को जो गरीबी की रेखा से नीचे है, विशेष तौर पर बच्चे तथा कृषि एवं असंगठित क्षेत्रों में काम करने वालों को मुफ्त शिक्षा दे, यह मांग की जाए।''

(xxi) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 के तहत, जिसमें भारतीय राज्य को निर्देशित किया गया है कि ''वह अपने लोगों के जीवन एवं पोषण स्तर को ऊँचा उठाए तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार लाने, जो इसकी प्राथमिक जिम्मेदारियों में से हैं, को पूरो करे।'' उन सभी मेहनतकश लोगों को जो गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करते हैं, विशेषतौर पर कृषि एवं असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं, उनके लिए मुफ्त स्वास्थ्य सेवाओं को उपलब्ध करवाने के प्रावधानों को भारत सरकार करे–इसकी मांग की जाए।

(xxii) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (ए) के तहत, जिसमें निर्देशित किया गया है कि ''किसी भी नागरिक को जो आर्थिक या अन्य कारणों से अयोग्य हो, उसे मुफ्त कानूनी सहायता दिलाई जाए।'' कृषि एवं असंगठित मजदूरों के लिए मुफ्त कानूनी सहायता दिलाए जाने को सुनिश्चित करने की मांग की जाए।

(xxiii) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 के तहत जिसमें ''ग्राम पंचायतों के संगठन के बारे में कहा गया है–एक ग्राम पंचायत की कुल सीटों के एक-तिहाई सीटों को उन सभी मेहनतकश लोगों जो गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करते हैं, के लिए सुनिश्चित करने की मांग की जाए।''

(xxiv) भारत सरकार-भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (4) एवं 16 (4) व (5) जिसमें भारत सरकार को यह शक्ति प्रदान की गई है कि ''नागरिकों के किसी भी सामाजिक

एवं शैक्षणिक पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति एवं जनजाति की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान निर्धारित करे।'' अपनी गैर उत्पादक 5 दशक पुरानी जाति आधारित आरक्षण नीति में भारतीय संविधान के आदेशों के मुताबिक पुनरनिरीक्षण करे, जिसमें प्रथम तौर पर 'नागरिकों के पिछड़े वर्ग' शब्दावली का उपयोग किया गया है न कि पिछड़ी जातियों का (पिछड़े वर्गों की श्रेणी में केवल अनुसूचित जाति व जनजाति को शामिल किए जाने की छूट दी गई है) यह जाति आधारित नीति का खोट पिछड़ेपन को गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने से परिभाषित कर दुरुस्त करे–इसकी मांग की जाए।

(III) श्रम आन्दोलन की कार्यशैली

32. ऊपर वर्णित भारतीय श्रम आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य एवं भारतीय मजदूरों के मांग-पत्र की अनुपालना में यह आवश्यक है कि लगातार पांच तरफा एकीकृत गतिविधि की जाए।

प्रथम, हमें हमेशा अपने-आपको हमारे सोच एवं क्रिया में मजदूरों एवं श्रम आन्दोलन के प्रति जवाबदेह बनाना चाहिए।

द्वितीय, हमें प्रत्येक परियोजना में मजदूरों की समस्या और मांगों का उनसे विचार-विमर्श करके तथा अपने आपको उनसे परिचित करवाकर युक्तियुक्त मांग-पत्र बनाना चाहिए।

तृतीय, हमें रोजाना श्रम आन्दोलन का कार्य चलाना चाहिए तथा मजदूरों की रोजमर्रा की समस्याओं व्यक्तिगत या सामूहिक को रोजाना ध्यान देकर मजदूरों से नजदीकी संबंध बनाना चाहिए एवं श्रमिकों की सामाजिक व श्रम आन्दोलन की चेतना को उनकी अपनी समस्याओं और मांगों से जोड़कर और श्रम आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य तथा भारतीय मजदूरों के मांग-पत्र के साथ-साथ वैश्विक सामाजिक वास्तविकता और इनका श्रम आन्दोलन पर असर (जैसा कि इस दस्तावेज में दर्ज किया गया है) से जोड़ते हुए व्याख्या करके इस चेतना को रोजाना बढ़ाया जाना चाहिए।

चतुर्थ, हमें अपनी यूनियन कार्य प्रणाली में लोकतांत्रिक मानदण्डों को सख्ती से अपनाना चाहिए। धैर्यपूर्वक प्रत्येक मजदूर को सुनना चाहिए एवं संबंधित मजदूरों से उनके जीवन, उनके उद्यम, उनके क्षेत्र, देश, राज्य एवं विश्व से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं से वाकिफ होकर एकता स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए।

पंचम, हमें प्रत्येक कारोबार या व्यापारिक संस्थान (जैसी भी स्थिति हो) के मजदूरों की आमसभा की मीटिंग 15 दिनों में करनी चाहिए, जिसमें संबंधित मजदूरों की साझा समस्याओं, सम्बन्धित परियोजनाओं, व्यापार या उद्योग में उन्हें उपलब्ध अधिकार तथा भारतीय कानूनो जैसे ट्रेड यूनियन एक्ट 1926, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, वेतन भुगतान अधिनियम 1936, न्यूनतम वेतन अधिनियम 1938, बोनस भुगतान अधिनियम, कान्ट्रेक्ट लेबर एक्ट 1970 तथा असंगठित मजदूरों के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित अन्य कानूनों व आदेशों के बारे में विचार विमर्श करना चाहिए।

(IV) श्रम आन्दोलन का सांगठनिक स्वरूप

33. उपरोक्त भारतीय श्रम आन्दोलन का परिप्रेक्ष्य एवं भारतीय मजदूरों का मांग पत्र तथा श्रमिक कार्यशैली को अपनाते हुए हमें मजदूरों में अधिकतम सम्भव एकता उत्पन्न करने की कोशिश करनी चाहिए तथा एक परियोजना में एक यूनियन के सिद्धान्त पर चलना चाहिए। जहाँ भी यह मानदण्ड लागू करने में व्यावहारिक न लगे तो सभी मौजूदा यूनियनों को साझा न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त मोर्चे में एकबद्ध करने के प्रयास करने चाहिए।

(स) श्रमिकों के पिछले समय के सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष

34. श्रम आन्दोलन के सकारात्मक पक्ष के संबंध में स्थिति यह है कि इसने आरम्भ से ही खासतौर पर मजदूरों और आमतौर पर मेहनतकश लोगों की जिन्दगी में सकारात्मक भूमिका निभाई है। इसने विभिन्न नस्ल, धार्मिक समुदायों, संस्कृति और क्षेत्रीय समूहों आदि के मजदूरों को एक यूनियन में एकताबद्ध कर उनके मानवीय नजरिए को विस्तार देने में योगदान दिया है। इसने मेहनतकश लोगों को, विशेष तौर पर मजदूरों और कर्मचारियों तथा असंगठित मजदूरों के बहुत से अधिकारों को प्राप्त करने में भारी मदद की है। इन अधिकारों में शामिल है, एक यूनियन में मजदूरों में एकताबद्ध होने का अधिकार, हड़ताल करने और सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार, मजदूरी और वेतन में बढ़ोत्तरी, काम के घण्टों में कमी, बाल श्रमिकों तथा नाबालिगों के श्रम पर पाबन्दी, मेहनतकश महिलाओं के लिए मातृत्व अवकाश, मकान की सुविधा, बीमारी सुविधा, शिशु देखभाल केन्द्र, फैक्ट्री केण्टीन, शुद्ध हवा की व्यवस्था, सुरक्षा-प्रबन्ध, बीमा लाभ, मनोरंजन केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, श्रम कल्याण योजनाएँ, आदि मामलों में मेहनतकश लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की है।

35. यद्यपि बहुत-सी उपलब्धियों के बावजूद ट्रेड यूनियन आन्दोलन भी कुछ कमजोरियों से ग्रसित है, जो निम्न है-

प्रथमतया, ट्रेड यूनियनें मुख्यतया गैर-श्रमिक संगठनकर्त्ताओं (जो आम तौर पर राजनीतिक पार्टियों से आते हैं) के नेतृत्व और नियंत्रण में है जो उनकी यूनियन के लिए काम करते हुए अपनी पार्टी द्वारा चलाए जा रहे ट्रेड यूनियन केन्द्र से उसे सम्बद्ध कर देते हैं। ये विभिन्न केन्द्र मजदूरों को भिन्न-भिन्न राजनीतिक खण्डों में विभाजित रखते हैं और उनको अपना वोट बैंक समझते हैं। यह अन्तर यूनियन टकराव को बनाए रखता है और आपस में व्यवहार के अस्वस्थ मानदण्डों को पैदा करता है, जैसे शारीरिक झगड़े, असामायिक श्रमिक मांगे, विरोधी यूनियन के नेतृत्व वाले संघर्षों को बिखेरना इत्यादि।

द्वितीयत:, पार्टी नेतृत्व वाला ट्रेड यूनियनवाद आम तौर पर श्रमिकों की सामाजिक चेतना और उनका कानून व ट्रेड यूनियन ज्ञान ऊँचा उठाने के अधिक महत्वपूर्ण काम को करने के बजाय अपने सदस्यों की व्यक्तिगत समस्याओं पर अधिक ध्यान देता है। इसका परिणाम यह है कि श्रमिक निरन्तर चेतना के अभाव में अपनी यूनियन का नेतृत्व करने की कला से वंचित है और बाहरी ट्रेड यूनियन नेता पर निर्भर है।

तृतीयत:, पार्टी नेतृत्व वाला ट्रेड यूनियनवाद निरन्तर ट्रेड यूनियन आन्दोलन में कई एकतरफा अवधारणाओं को प्रचारित करके गलत दिशा देता है, यानि वामपंथी सिद्धान्त मजदूर वर्ग को वर्तमान युग में मानव जाति का एकमात्र उद्धारकर्त्ता बताता है (बजाय इसके कि जनता और उनके वास्तविक नेता विद्यमान सामाजिक वास्तविकताओं से मेल खाते हुए कार्यक्रम को पेश करके मानव जाति के विकास को आगे बढ़ाते है)। श्रम और पूंजी को एक-दूसरे की विरोधी ताकतों के रूप में बताना (बजाय इसके कि दोनों के साझे हित अधिक है और अन्तरविरोधी हित कम है)। प्रबन्धमण्डल को हमेशा श्रमिक विरोधी के रूप में चित्रित करना (बजाय इसके कि उसे पूंजी के हितों को आगे बढ़ाने के लिए एकतरफा जोर देने वाला बताया जाए और श्रमिकों के हितों की अवहेलना करके आखिरकार पूंजी के हितों को नुकसान पहुंचाने वाला भी बताया जाए); मजदूरों का संबंध इनकी इकाइयों की उत्पादकता से नहीं, बल्कि केवल अपनी मांगों से है (बजाय इसके कि श्रमिक का दोनों से संबंध है); जनता में उत्तेजना पैदा करने वाले को बहादुर नेता बताना (बजाय इसके कि वह अतर्कसंगत व्यक्ति होता है) इत्यादि। इसके उलट दक्षिणपंथी पार्टी नेतृत्व वाला ट्रेड यूनियनवाद मजदूरों को संकीर्ण, साम्प्रदायिक, नस्ली और धार्मिक आधार पर संगठित करता है और ट्रेड यूनियन को प्रबन्ध मण्डल का आज्ञाधीन बनाकर ट्रेड यूनियन आन्दोलन को गलत दिशा देता है।

36. शायद, उपरोक्त किस्म का ट्रेड यूनियनवाद पूंजी के राष्ट्रीय दौर में काफी हद तक प्रासंगिक रहा, परन्तु सार्वभौमिक (वैश्विक) पूंजी के युग में इसकी उपयोगिता समाप्त हो गई और श्रम आन्दोलन की वृद्धि तथा आर्थिक प्रक्रिया के विकास दोनों के लिए ही यह गैर-उत्पादकता बन गया। परम्परागत ट्रेड यूनियन लाइन की अप्रासंगिकता बढ़ रही है, चाहे वह वामपंथी किस्म हो या दक्षिणपंथी किस्म हो। यह बात शीत युद्ध के बाद के समय में प्रत्येक देश के साथ-साथ दुनियाभर में निरन्तर कमजोर हो रहे ट्रेड यूनियन आन्दोलन से स्पष्ट होती है। 16.8.2001

***

मानव समाज में
परिवर्तन और विकास को समझने का एक प्रयास

I इस अध्ययन का मूल विषय, आवश्यकता, उद्देश्य और दृष्टिकोण

मानव समाज में परिवर्तन और विकास कैसे होता है–इस अध्ययन की मुख्य विषय-वस्तु यही बनती है।

इस अध्ययन को हाथ में लेने की आवश्यकता विश्व में प्रचलित सामाजिक विरोधाभास की स्थिति से उभरी है, जिसमें विद्यमान धारणाएँ सामाजिक परिवर्तन और विकास को एक स्तम्भिय आधार वाले नजरिये को पेश करती है जबकि सामाजिक परिवर्तन और विकास का वास्तविक घटनाक्रम वास्तव में दो कारकों द्वारा संचालित प्रक्रिया है।

इस अध्ययन का एकमात्र उद्देश्य तथ्यों के आधार पर सामाजिक वास्तविकता को समझना है। हालांकि यह अध्ययन तथ्यों की खोज करते समय अपने आपको प्रत्येक पूर्वाग्रह से स्वतंत्र रहने की कोशिश करता है। जबकि तथ्यों की व्याख्या करने में यह विभिन्न विकल्प वाली प्रस्थापनाओं और धारणाओं से तुलना और भेद करके वास्तविकता को समझने की कोशिश करता है।

यह अध्ययन वास्तविकता की खोज में मनोगत (यानि दिमाग के यंत्र को) और वस्तुगत (यानि ऊर्जा, पदार्थ, अन्तरिक्ष, समय, इत्यादि औजारों को) दोनों श्रेणियों का उपयोग करता है। इसकी तुलना में प्रकृति विज्ञान अपना आधार केवल वस्तुगत को बनाता है और रहस्यवाद मनोगत पर आधारित अपनी आधारशीला खड़ी करता है।

यह अध्ययन अपने को ऐसे सिद्धान्त के रूप में पेश नहीं करता जो किसी चीज के प्रामाणिक और आधिकारिक लेखा-जोखा पेश करने का दावा करता हो। इसकी बजाय यह केवल अपने को मॉडल के रूप में समझता है जिसको आम आदमी और इसके अध्ययनकर्त्ता के हाथों आगे जाँचा और समृद्ध किया जाए।

यह अध्ययन अपेक्षा करता है कि विभिन्न सामाजिक विचार-शाखाएं इस पर एक वैज्ञानिक-तर्कसंगत भाव से विचार करेंगी जिसमें मतान्धता को रद्द करने, चीजों को प्रमाण के आधार पर जाँचने और जब नए तथ्यों और ताजा अनुभवों के साथ पुराने घिसे-पिटे विचारों का संघर्ष हो जाए तो पुन: विचार करने के लिए हमेशा तैयार रहने का भाव हो।

II सामाजिक परिवर्तन और विकास पर विभिन्न दृष्टिकोण

सम्पूर्ण मानव इतिहास में सामाजिक परिवर्तन और विकास का सवाल निरन्तर वाद-विवाद का मसला बना रहा है। स्वाभाविकतया समय के दौरान इस सवाल पर कई

प्रकार की मानवीय अवधारणाएँ* उभरी हैं। इनको मोटे तौर पर निम्नलिखित क्रम में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) मानव–केन्द्रित धारणाएँ

हमारे ग्रह पृथ्वी पर और यहाँ तक कि कई मामलों में ब्रह्माण्ड में मनुष्य जाति को सर्वोत्तम घटनाक्रम समझने वाली धारणाएँ मानव समाज और इसमें होने वाली प्रत्येक क्रिया का एकमात्र निर्माता लोगों (मानवजाति) को पेश करती है। वे कई श्रेणियों में बंटी हुई है। कुछ निश्चयवादी, कुछ अनिश्चियवादी, कुछ लघुकरणवादी (अपचयनवादी), कुछ प्रेरकवादी, इत्यादि। कुछ अनुभववाद, कुछ मनोगतवाद, कुछ शून्यवाद, कुछ आतंकवाद, कुछ व्यवहारवाद, कुछ नैतिकवाद, कुछ सैनिकवाद, इत्यादि पर जोर देते है। कुछ (यानि, जो रूढ़िवादी हैं) आर्थिकता को, कुछ धर्म, कुछ संस्कृति, कुछ जाति, कुछ नस्ल, कुछ राजनीति, इत्यादि को सामाजिक विकास का प्रधान निर्णयकारी वाहक मानते है। कुछ संरचनावाद, कुछ बाहुल्यवाद, कुछ कुलीनतंत्रवाद, कुछ संकीर्णतावाद आदि पर जोर देते है।

लेकिन संक्षेप में ये सभी सिद्धान्त दर्शातें है कि समाज में विचार प्रमुख भूमिका निभाते है- इस प्रकार यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि विचारक ही इतिहास का निर्माण करते है। एक वैचारिक किस्म के मुताबिक विचार महान व्यक्तियों के दिमाग की उपज होते है जो जन्म से ही प्रतिभावान होते हैं। और वे समाज को आगे ले जाने के लिए इंजन की भूमिका अदा करते है। अन्य वैचारिक किस्म प्रतिपादित करती है कि जनता ही समाज के हर पहलू की निर्माता है और वही विचारों की जन्मदाता है तथा वही इतिहास चक्र को आगे ले जाने वाली है। तीसरी किस्म का यह सोच है कि विचारों की रचना भी अन्य रचनाओं की तरह ही आध्यात्मिक ताकत द्वारा की गई है।

स्पष्टतया मानव केन्द्रित सिद्धान्त एक तरफ मानव और प्रकृति के बीच की ऐतिहासिक एकता और दूसरी तरफ व्यक्ति और समाज के बीच की ऐतिहासिक एकता को तोड़ते हैं।

(ख) तकनीकी–केन्द्रित धारणाएँ

आगे आइए तकनीकी-केन्द्रित धारणाओं पर जो मानवीय सामाजिक विकास को अकेले तकनीकी विकास (यानि प्रकृति से हासिल किए गए यांत्रिक साधनों) का फल समझतें है। केवल तकनीकी पर जोर देकर यह विचार इस सच्चाई पर पर्दा डालता है कि मनुष्य तकनीकी को पैदा करने वाला और संचालक है–इस तरह से तकनीकी और मानव जाति के बीच ऐतिहासिक एकता को तोड़ता है।

(ग) पर्यावरण–केन्द्रित धारणाएँ

पुन: पर्यावरण या भूगोल केन्द्रित धारणाएँ जोर देती हैं कि मानवीय सामाजिक विकास का अन्तिम कारण पर्यावरण है। कोई संदेह नहीं है कि सामाजिक विकास पर

*फुट नोट : इन धारणाओं की मुख्य प्रस्थापनाओं को लेख के अन्त में देखें।

मनुष्य की तरह ही पर्यावरण भारी प्रभाव छोड़ता है। परन्तु यह सब वह केवल मनुष्य के साथ-साथ ही कर पाता है। अगर मनुष्य पर्यावरण उपयोग की तकनीकी को नहीं समझ पाता है तो पर्यावरण अपने आप क्रिया नहीं कर पाता है। उदाहरण के लिए, ब्राजील भौगोलिक सम्पदा में बहुत अधिक धनवान है। परन्तु यह अभी विकासशील देश ही है। इसके उलट जापान प्राकृतिक संसाधनों में कमजोर है परन्तु फिर भी यह अत्यधिक विकसित देशों में से एक है। स्पष्टतया पर्यावरण केन्द्रित धारणाएँ लोगों और पर्यावरण के बीच ऐतिहासिक एकता को तोड़ते है, अत: यह एक तरफा धारणाएँ है।

(घ) प्रकृति–केन्द्रित धारणाएँ

आगे मानवीय सामाजिक विकास के बारे में प्रकृति केन्द्रित धारणाएँ सामाजिक बदलाव के लिए प्रकृति को एकमात्र पहलू के रूप में स्वीकार करती हैं, और मानव जाति की भूमिका को गौण स्थान पर धकेल देती हैं। इस प्रकार मानव जाति और प्रकृति के बीच ऐतिहासिक एकता को तोड़कर ये सिद्धान्त ठीक वास्तविकता को विकृत कर देतें हैं।

(ड़) ईश्वर–केन्द्रित धारणाएँ

और आगे, उपरोक्त धारणाएँ मानवीय समाज और इसमें होने वाली प्रत्येक क्रिया को ईश्वरीय आदेश या भाग्य निर्णय के रूप में पेश करती है। इसके प्रचारक राम कहानी कहते है कि प्रत्येक वस्तु ईश्वर से पैदा होती है और लोग कभी भी अपने आप किसी समस्या का हल नहीं कर सकते। इनके मुताबिक ''मनुष्य की योजना कुछ होती है परन्तु ईश्वर कुछ और कर देता है'' यह उनका ''निर्विवाद सत्य'' है, जो मानव समाज के परिवर्तन और विकास में मानव जाति की तरह ही प्रकृति की भूमिका को पूर्णतया रद्द करता है।

III वैज्ञानिक वास्तविकतावाद : परिवर्तन और विकास पर हमारी धारणा

वैज्ञानिक वास्तविकतावाद की धारणा, प्रथमत:, चीजों का अवलोकन और परीक्षण उसी रूप में करती है जिस रूप में वे वास्तव में है या भूतकाल में रही है (जैसा कि शब्द 'वास्तविकतावाद' सूचित करता है) और प्राकृतिक विज्ञान द्वारा प्रदान किए गए प्राकृतिक तथ्यों का तथा मानवीय ऐतिहासिक व सामाजिक अनुभव द्वारा हासिल सामाजिक तथ्यों का उपयोग करते हुए चीजों का अध्ययन और व्याख्या करती है।

द्वितीयत: इसकी मान्यता है कि ब्रह्माण्ड में सभी तरह के प्राकृतिक घटनाक्रम (व्यक्ति की इकाई सहित) अन्तर सम्बन्धित है और अन्तरक्रिया करते है तथा परिवर्ती रूपों में अस्तित्व, गति और परिवर्तन के समान सामान्य उसूलों का अनुसरण करते हैं।

तृतीयत: इसकी मान्यता है कि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक चीज (यानि सभी घटनाक्रम और उनसे संबंधित नियम) किसी निश्चित समय और स्थान में प्रासंगिक होती है और जो अपने आप में क्रमिक परिवर्तनों और इसकी दूसरे घटनाक्रमों से अन्तरक्रिया के बाद के दूसरे समय और स्थान पर गैर प्रांसगिक बन जाती है–इस प्रकार प्रत्येक चीज (ब्रह्माण्ड और कोई भी 'सिद्धान्त या प्रत्येक चीज का नियम' सहित) की सापेक्ष प्रकृति की आम वास्तविकता प्रतिबिम्बित होती है।

चतुर्थ, इसका मानना है कि प्रतिक्षण बदल रही वास्तविकता के माहौल में इसके अनगिनत घटनाक्रम और उनसे संबंधित नियमों में नये परिवर्तनों के अनुरूप अपने आपको आधुनिक बनाने ओर निरन्तर विकास (या तैयार) करने की क्रिया चलती रहती है।

पंचम, यह सभी निरपेक्षतावादी, निश्चयवादी और रूढ़िवादी सिद्धान्तों को रद्द करती है, चाहे इन्हें विभिन्न प्राकृतिक या सामाजिक विज्ञान की शाखाओं द्वारा पेश किया गया है। इतिहास या कुछ अन्य शिक्षण (यानि, सभी प्राकृतिक घटनाओं के बीच मानव जाति को उच्चतम जीव के तौर पर पेश करने वाले सामाजिक सिद्धान्त) जिन्होंने अपने-अपने समय के दौरान और प्रभाव क्षेत्र में जो कुछ सकारात्मक योगदान दिया, उसका उपयोग किया जाए।

IV प्रकृति में परिवर्तन और विकास पर वैज्ञानिक वास्तविकतावाद का परिप्रेक्ष्य

वैज्ञानिक वास्तविकतावाद प्रकृति को एक ऐसी व्यापक या आम प्रक्रिया के रूप में देखता है जिसमें अनगिनत विशिष्ट प्रक्रियाएँ शामिल हैं। इन अनन्त प्रक्रियाओं (मानव प्रजाति की प्रक्रिया सहित) के भिन्न-भिन्न रूप और व्यवहार है। परन्तु यह सब प्रकियाएँ अपने-अपने स्वभाव के मुताबिक भिन्न-भिन्न तरीकों से एक आम (सामान्य) संचालन की पद्धति का अनुसरण करती है। यह सतत आम संचालन पद्धति की प्रक्रिया दो तरफा अन्तरक्रिया (यानि आन्तरिक और ब्राह्य) दो या दो से अधिक वस्तुओं के बीच कभी एकता और कभी संघर्ष की गति द्वारा उत्पन्न होती है। ऐसी अन्तरक्रिया, चाहे वह सामंजस्पूर्ण हो या टकरावपूर्ण, समय के दौरान प्रत्येक प्रक्रिया के गुण और परिमाण में निरन्तर आंशिक परिवर्तन कर देती है और परिणाम स्वरूप एक चरम बिन्दु पर प्रत्येक पुरानी प्रक्रिया (जिसका अपना विशिष्ट चरित्र होता है) एक नई प्रक्रिया (अपने खास लक्षणों के साथ) में तब्दील हो जाती है, इस प्रकार दोनों प्रक्रियाएँ अपने-अपने भिन्न स्वभावों वाली होती हैं। बदलाव और विकास की यह अन्तहीन प्रक्रिया मानव समाज सहित प्रत्येक घटनाक्रम में निरन्तर जारी रहती है।

V मानव समाज में परिवर्तन और विकास पर वैज्ञानिक वास्तविकतावाद का परिप्रेक्ष्य

वैज्ञानिक वास्तविकतावाद मानव समाज को एक ऐसा घटनाक्रम समझता है जिसके अस्तित्व की प्रणाली जैविक (जिसके लिए एक निश्चित प्राकृतिक पर्यावरण की आवश्यकता) है, परन्तु जिसकी जीवन यापन और कार्य करने की प्रणाली सामाजिक है। स्पष्टतया, मानव प्रजाति या उसके संगठन, यानि समाज, दो तरफा प्रकृति लिए हुए है– जैविक (या प्राकृतिक) और सामाजिक।

प्रकृति की दूसरी सभी प्रक्रियाओं की तरह मानव समाज की प्रक्रिया भी प्रकृति की सार्वत्रिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। प्रकृति किसी भी प्रक्रिया की तरह ही यह भी बदलती और विकसित होती रहती है। अत: यह अपने उद्‌भव से ही घटनाक्रमों की दो तरफा अन्तरक्रिया (एक बाह्य और दूसरी अन्त:)–एकता और संघर्ष के द्वारा और सार्वत्रिक संचालन पद्धति के अनुसार परिवर्तित और विकसित होती रहती है। बाह्य अन्तरक्रिया मानवजाति और प्रकृति की दूसरी प्रक्रियाओं के बीच एकता और संघर्ष द्वारा घटित होती है जबकि मानव समाज के अन्दर अन्त: प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

VI परिवर्तन और विकास पर प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान

प्रकृति और मानव समाज में परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया को वैज्ञानिक वास्तविकतावाद की तरह ही समस्त प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान साबित करते हैं। यह प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों की विभिन्न शाखाओं के सिद्धान्त और व्यवहार का अध्ययन करके देखा जा सकता है।

(क) क्वाण्टम मैकेनिक्स

क्वाण्टम मैकेनिक्स का विज्ञान (सूक्ष्म-विश्व के बारे में) दर्शाता है कि रेडियो सक्रिय केन्द्रक (मध्यम भार वाले तत्त्व जैसे यूरेनियम-235 या प्लुटोनियम-239) में से न्यूट्रॉन और प्रोटोन के बीच की एकता को तोड़ने से कैसे परमाणु ऊर्जा निकलती है। यह प्रक्रिया परमाणु विखण्डन कहलाती है और इसे परमाणु रिएक्टर या परमाणु बम में देखा जा सकता है। इसके उलट, जब हाइड्रोजन (एक हल्के भार वाला तत्त्व जिसमें केवल एक परमाणु होता है) के दो परमाणुओं को जोड़कर हीलियम (जिसके दो परमाणु होते हैं) बनाया जाता है तो काफी बड़ी मात्रा में परमाणु ऊर्जा निकलती है। यह प्रक्रिया परमाणु संलयन कहलाती है। जो सूर्य सहित तारों में ऊर्जा उत्पन्न होने की आम पद्धति है।

(ख) भौतिकी

भौतिक विज्ञान (दीर्घ-विश्व के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे एक निश्चित हालात में पानी के अणुओं के बीच की एकता उसे बर्फ में बदल देती है, जबकि इसके अणुओं के बीच दूरी बढ़ने से यह भाप में परिवर्तित हो जाता है। इसके परमाणुओं की वायु में औसत दूरी साधारण ठोस पदार्थ के परमाणुओं की दूरी की तुलना में 10 गुनी अधिक होती है। हमारा ग्रह पृथ्वी स्वयं गैसों, पत्थर व लोहे के कणों और धूल का संयोग है जो गुरुत्वाकर्षण खिंचाव, गैस दबाव और विद्युत-चुम्बकीय बल के द्वारा आपस में जुड़े हुए हैं।

(ग) रसायन विज्ञान

रसायन विज्ञान (रसायनिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे-कैसे तत्वों को एक निश्चित मात्रा में संयोग करवाने में एक नया यौगिक (उदाहरणतया सोडियम+क्लोराइड=साधारण नमक) बनता है। एक यौगिक को किसी निश्चित मात्रा (उदाहरणतया, पानी=ऑक्सीजन का एक परमाणु+हाइड्रोजन के 2 परमाणु) के 2 तत्त्वों में विभाजित किया जा सकता है। गैसों के संयोजन से वायु बनती है और वायु को गैसों में विभाजित किया जा सकता है।

(घ) जीव-विज्ञान

जीव-विज्ञान (जैविक क्रियाओं के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे कार्बनिक (जैविक) प्रक्रियाओं (यानि पौधों, पशुओं और मनुष्यों) में पचा लेने और अपघटित भाग को निकाल देने की उपापचयी क्रियाएँ आंशिक और मूलभूत परिवर्तन कर देती है।

(ड़) यान्त्रिकी

यांत्रिक विज्ञान (यांत्रिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि विभिन्न यांत्रिक घटनाक्रमों में क्रिया और प्रतिक्रिया के कारण उनकी अपनी-अपनी गति में कैसे बदलाव

आता है। उदाहरण के लिए एक निश्चित हालात में गेंद को दीवार से टकराने की क्रिया में दीवार समान बल से गेंद के प्रतिक्रिया स्वरूप वापस धकेल देती है।

(च) अन्तरिक्ष

अन्तरिक्ष विज्ञान (खगोलिय पिण्डों के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे इसकी समस्याओं–जैसे समय की माप, दैनिक गति, ग्रहीय गति, ग्रहों और तारों का सहयोजन, ग्रहण और भूकेन्द्रीय पैरेलैक्स इत्यादि–को गणित के धन और ऋण अंकों का उपयोग करके हल किया जा सकता है।

(छ) भू-विज्ञान

भू-विज्ञान (भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में) दर्शाता है कि कैसे पृथ्वी के विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं (यानि पुरातन, आदिजीवी, मध्यजीवी, नूतन जीव युग इत्यादि) से गजुरती है, जिनमें से कोई भी अपनी पहली अवस्था को दोहराती नहीं है और प्रत्येक अवस्था में बहुत से महाद्वीपों, द्वीपों, समुद्रों, पहाड़ों इत्यादि का लोप हुआ है और पूर्णतया नए भूतत्त्वीय घटनाक्रमों के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण जलवायु परिवर्तन हुए।

(ज) जीवाश्म-विज्ञान

जीवाश्म-विज्ञान (जीवाशेष प्रजातियों का अध्ययन करने वाले विज्ञान की एक नई शाखा) दर्शाता है कि कैसे बहुत से पौधे और पशु प्रजातियाँ एक-दूसरे का स्थान लेती रही हैं। इनमें से कुछ लुप्त होती रही हैं जबकि दूसरी प्रजातियों का करोड़ों वर्षों में आविर्भाव होता रहा है। इस प्रक्रिया द्वारा पशु प्रजातियाँ क्रमश: धीरे-धीरे तृतीय महाकल्प (6.9 करोड़ से 10 लाख साल पहले) तक अधिक जटिल बनती गई, विकसित पशु सहित स्तनधारी प्रकट हुए जो न केवल संवेदन करने में सक्षम थे बल्कि प्रत्यक्ष बोध और अवधारणा की क्षमता भी रखते थे।

(झ) विज्ञान की कुछ नई शाखाएँ

विज्ञान की दूसरी नई शाखाएँ जैसे कि जैव-भौतिकी, जैव-रसायन, जैव-तकनीकी, खगोल-भौतिकी, भू-रसायन, सूक्ष्म-जैविकी, इत्यादि जो अपने से सम्बन्धित प्रक्रियाओं का संयुक्त अध्ययन करती है और दर्शाती है कि किस प्रकार उनके विशिष्ट घटनाक्रम अन्तर-सम्बन्धित, आपस में जुड़े हुए व अन्तरक्रियाशील और एक-दूसरे में तब्दील होते हैं।

(ञ) विज्ञान के तीन पुराने सिद्धान्त

विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के तीन दूसरे महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी दर्शातें है कि कैसे प्रकृति में भिन्न-भिन्न प्रकार के घटनाक्रम अन्तरसम्बन्धित, अन्तरक्रियाशील और आपस में तब्दील होते रहते हैं।

प्रथमत: जैविक (ऑरगेनिक) घटनाक्रम की कोशिकीय संरचना (1838-39) का जीव विज्ञान का सिद्धान्त स्थापित करता है कि पुश और पौधे की कोशिकाएँ–चाहे वे एक समुद्री घास या एक पेड़ की अथवा एक सूक्ष्म जीव या मनुष्य की कोशिकाएँ हों, सभी

मौलिक तौर पर एक ही तरह की संरचना और शारीरिक क्रिया सम्पन्न करती हैं। जीवों का जन्म और विकास कोशिकाओं की गुणन वृद्धि, उनके निरन्तर नवीनीकरण–जन्म और मृत्यु के–द्वारा होता है। यह सिद्धान्त सभी जीवों की ऐतिहासिक एकता को सिद्ध करता है और अप्रत्यक्ष तौर पर उनकी उत्पत्ति की एकता की तरफ इशारा करता है।

द्वितीयत: संरक्षण एवं ऊर्जा के रूपान्तरण का भौतिक सिद्धान्त (1840 का) उद्घाटित करता है कि यांत्रिक, उष्मीय, विद्युत और रासायनिक ऊर्जा आपस में परिवर्तनीय है। इस प्रकार इसने दुनिया में विभिन्न घटनाक्रमों के बीच आपसी तब्दीली और अन्तरसम्बन्ध को प्रदर्शित किया।

तृतीयत: जीवों के बारे में डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त (1859) पशुओं और पौधों की प्रजातियों की परिवर्तनीयता और उनकी उत्पत्ति की एकता को सिद्ध करता है। यह स्वत: (स्वाभाविक) प्राकृतिक चयन, पेड़ और पौधों का अस्तित्व के लिए संघर्ष और सर्वोत्तम अनुकूल व्यक्तिगत इकाइयों और प्रजातियों के जिन्दा रहने के उसूल को मानता है। यह सभी जीवों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है और प्रदर्शित करता है कि उनका विकास पुराने को दोहराना नहीं था बल्कि पुराने का नए में तब्दील होना था। यहाँ, यह उल्लेख करना बिल्कुल उचित होगा कि प्रकृति की प्रक्रिया एक से दूसरी प्रजातियों में विकास के बहुत से उदाहरणों के दृष्टान्त पेश करती है। सूण्डी से तितली का विकास एक सामान्य तब्दीली का उदाहरण है। आजकल, एक तरह के पौधे से पौधे के उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) और जैव-तकनीकी द्वारा गुणात्मक तौर पर भिन्न पौधे में परिवर्तन करना आम प्रचलन हो गया है। यहाँ तक कि पौधे में पुश जीव के प्रतिरोपन ने पौधे और पशु के बीच के अवरोध को तोड़ दिया है।

(ट) सामाजिक विज्ञान

सामाजिक विज्ञान का गहन अध्ययन भी दर्शाता है कि कैसे समाज भी (प्रकृति की आम प्रक्रिया के एक भाग के तौर पर) अन्य प्रकृति विज्ञानों के समान समाज की विभिन्न उप-प्रक्रियाओं (यानि, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैदेशिक, प्रशासनिक इत्यादि) और उनकी अपनी-अपनी शाखाओं (उदाहरणतया सामाजिक प्रक्रिया में राष्ट्रों, राजनीतिक प्रक्रिया में पार्टी और दबाव समूह, आर्थिक प्रक्रिया में उद्योग, कृषि, इत्यादि और सांस्कृतिक प्रक्रिया में कला, साहित्य, विज्ञान, इत्यादि) में अन्तरक्रिया (यानि क्रिया और प्रतिक्रिया)का अनुसरण करता है।

समाजशास्त्र का समाज विज्ञान दर्शाता है कि कैसे अपने-अपने समय की विभिन्न ऐतिहासिक इकाइयो के बीच कभी एकता और कभी संघर्ष (उदाहरणतया प्राचीन समय में गण-संघर्ष और गणों का मेल, उसके बाद कबीलों के बीच संघर्ष और मेल, बाद में सामन्ती राज्यों के बीच युद्धों और समझौतों का होना और हालिया राष्ट्रीय युद्धों का होना, जैसे इराक के खिलाफ अमेरिका की अगुवाई में संयुक्त राष्ट्र का 1991 का युद्ध, 1950 से 1980 के बीच अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत युद्ध 1980 के दशक में ईरान-इराक युद्ध, 1965 और 1971 का भारत-पाक युद्ध, इत्यादि और हालिया राष्ट्रीय गठजोड़ों जैसे नाटो, भूतपूर्व वार्सा गठजोड़ और दूसरे गठजोड़ के साथ व्यापारिक ब्लॉकों जैसे नाफ्टा, एसीयान, ई.सी. इत्यादि) के द्वारा सामाजिक विकास की प्रक्रिया आगे बढ़

रही है। राजनीतिक विज्ञान दर्शाता है कि कैसे विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के बीच कभी संघर्ष (उदाहरणतया, पंजाब में फरवरी 1997 के चुनावों में सी.पी.आई.-कांग्रेस गठजोड़ बनाम जनता दल-सी.पी.एम. का साझा जबकि केन्द्र में सी.पी.आई, सी.पी.एम. और जनता दल का गठजोड़, हरियाणा में एच.वी.पी.-बी.जे.पी. का गठजोड़, बंगाल में वाम मोर्चा, इत्यादि) की अन्तरक्रिया से राजनीतिक प्रक्रिया विकसित होती रहती है। अर्थशास्त्र का समाज विज्ञान दर्शाता है कि कैसे आर्थिक प्रक्रिया प्राय: एकता की गति (यानि उत्पादन की प्रतिदिन की गतिविधि में) तथा कभी-कभी संघर्ष (यानि मजदूरी बढ़ाने, बोनस, प्रोवीडेण्ट फण्ड इत्यादि) के तरीके से विकसित होती है। कला और संस्कृति का समाज विज्ञान दर्शाता है कि कैसे विभिन्न सांस्कृतिक पहचानों के बीच कभी एकता (यानि अन्दर आने वाले कबीलों का जैसे कुशाणों, गुजरों इत्यादि और धार्मिक समूह जैसे मुसलमानों, क्रिश्चिनों इत्यादि का भारत के मूल निवासियों के साथ सांस्कृतिक संश्लेषण और कभी संघर्ष (उदाहरणतया ग्रीक, मुगल और ब्रिटिश का अपने-अपने शासनों के द्वारा भारत पर सांस्कृतिक प्रभाव और भारत की संस्कृति का उन पर प्रभाव) की अन्तर क्रिया से कला और संस्कृति की प्रक्रिया आगे बढ़ी है।

VII मानव प्रजाति का क्रमिक विकास–प्रकृति की आम प्रक्रिया का एक भाग

प्राकृतिक विज्ञान और मानवीय ऐतिहासिक अनुभव हमें बताता है कि प्राकृतिक और मानवीय वास्तविकताओं की यह वर्तमान अवस्था सदा से इसी रूप में अस्तित्वमान नहीं थी, परन्तु यह क्रमिक विकास की बहुत लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया का परिणाम है जो अरबों वर्षों तक चलती रही है। यह निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है।

(क) प्रकृति–एक स्व:-उत्पन्न प्रक्रिया

क्या प्रकृति की प्रक्रिया एक अप्रत्याशित घटना है या सार्वत्रिक नियमों का भाग और उपज है? प्राकृतिक विज्ञान और मानवीय ऐतिहासिक अनुभव के मुताबिक यह स्व-उत्पन्न हुई है, यानि इसने अपने आपको पैदा किया है। इस सिद्धान्त के संबंध में प्रमाण अकार्बनिक (प्राथमिक कण से बहुत बड़े अन्तरिक्ष पिंडों तक) और कार्बनिक घटनाक्रम (छोटे से छोटे बैक्टीरिया से मानव तक) के दोनों प्रकार के तथ्यों से मिलते हैं, कि ये दोनों ब्रह्माण्ड में समान तत्त्वों से बने हैं। यहाँ इन दोनों के बीच कोई अलंघ्य सीमा नहीं है। दोनों ही हाइड्रोजन, कार्बन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के रासायनिक तत्त्वों से बने हैं। दोनों ही पर्यावरण के साथ अन्तरक्रिया करने की समान तात्विक विशिष्टता लिए हुए हैं–इसमें अन्तर केवल इतना है कि जहाँ कार्बनिक पदार्थ अति संवेदनशीन तरीके (संवेदना, उत्प्रेरित होना, उत्तेजनशीलता, इत्यादि) से व्यवहार करता है वहाँ अकार्बनिक पदार्थ इस व्यवहार को अपने ही विशिष्ट तरीके से (यहाँ तक कि लोहा चुम्बक के साथ सक्रिय होता है) करता है।

(ख) ब्रह्माण्ड

ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में विज्ञान के प्रमाणों के अनुसार इसकी आयु लगभग 15 अरब वर्ष है और लगभग इतना ही समय यह और आगे कायम रहेगा। वैज्ञानिक विश्वास करते

हैं कि आज हम जो कुछ भी देख रहे हैं वह ब्रह्माण्ड की पदार्थ-ऊर्जा का केवल 5 प्रतिशत हिस्सा है। अन्य 30 प्रतिशत भाग काले पदार्थ (जो विकिरित नहीं होता है, लेकिन आकाशगंगाओं और आकाशगंगाओं के समूह जैसे अंतरिक्षीय गुच्छों को अपने में समेटे हुए हैं) से गठित है। बची हुई 65 प्रतिशत गुप्त काली ऊर्जा के बारे में सोचा गया है कि उसमें गूढ़ प्रतिकर्षी गुण है जो आकाशगंगाओं को लगातार बढ़ती हुई गति से एक दूसरे से दूर धकेल रही है।

(ग) सौर-मण्डल

सौर-मण्डल के सम्बन्ध में खगोल विज्ञान के प्रमाणों के अनुसार सूर्य लगभग 10 अरब वर्ष पुराना है लगभग इतना ही समय यह और आगे कायम रहेगा। यह एक औसत दर्जे का तारा है। इसके अपने ग्रह हैं जो सौरमण्डल का निर्माण करते हैं।

विज्ञान सिद्ध करता है कि सौरमण्डल जैसा आज है वैसा हमेशा नहीं था। ना ही सूर्य अपरिवर्तनीय रहा है। भारी मात्रा में ऊर्जा के विकिरण की वजह से 4 लाख टन प्रति सैकण्ड की दर से सूर्य की संहति (द्रव्यमान) में कमी हो रही है।

(घ) पृथ्वी

पृथ्वी के सम्बन्ध में वैज्ञानिक आंकड़ों के अनुसार इसकी आयु लगभग 5 अरब वर्ष है। पृथ्वी सहित समुद्रों, चट्टानों, पहाड़ों, भूमि और वनस्पति तथा पशु जीवन का निर्माण 5 भू-वैज्ञानिक अवस्थाओं से गुजरा है:- (1) पुरातत्त्व महाकल्प 350 करोड़ वर्ष, (2) आद्य महाकल्प-170.6 करोड़ वर्ष, (3) द्वितीय महाकल्प-55.9 करोड़ वर्ष, (4) तृतीय महाकल्प-10.9 करोड़ वर्ष, (5) चतुर्थ महाकल्प- 10 लाख वर्ष। प्रत्येक नई अवस्था शुरू होने का अर्थ है कई महाद्वीपों, टापुओं, समुद्रों, पहाड़ों इत्यादि का गायब हो जाना और सम्पूर्णतया नए भू-गर्भीय घटनाक्रमों के उभरने के साथ-साथ भरपूर जलवायु परिवर्तन हो जाना। तृतीय महाकल्प के अन्त में जाकर आज की पृथ्वी का संघटन हुआ है। पृथ्वी की वर्तमान संरचना ने लगभग 20,000 साल पहले शक्ल अख्तियार की है जो अभी भी लगातार बदल रही है।

पृथ्वी एक ऐसी पतली फिल्म (पर्त) से ढकी हुई है जिसका वजन मुश्किल से हमारे ग्रह के पदार्थ के अरबवें भाग से अधिक होगा। यह वह आवरण (संभतया पृथ्वी से 1000 मील ऊपर तक) है जो हमारे भू-मण्डल पर जीवन की रक्षा करता है और उसकों कायम रखता है। बिना इसके संरक्षात्मक अवरोध के रात्रि को ठण्ड असहनीय स्थिति तक पहुँच जाती जबकि दिन में गर्मी असहनीय हो जाती। हवा नाइट्रोजन (78 प्रतिशत), ऑक्सीजन (21 प्रतिशत), आर्गन (लगभग 1 प्रतिशत) और अति अल्प मात्रा में अन्य गैसों से संघटित हुई है। हवा एक समान संहति वाली नहीं है, बल्कि उसे पर्तों में विभाजित किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक के अपने लक्षण हैं।

(ड़) जैव-जीवन

जैव-जीवन के सम्बन्ध में स्थिति यह रही है कि इसका आदिम रूप-वनस्पति-सबसे पहले शायद समुद्रों में 2 अरब वर्ष पहले प्रगट हुई। वनस्पति जीवन विकास की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरा है। जीवन की प्रक्रिया सरल से जटिल, पूर्व कोशिकीय से

कोशिकीय, एक कोशिक से बहुकोशिक, अकशेरूकी से कशेरूकी, जलधारी से थलधारी, अण्डे देने वाले से बच्चा जन्म देने वाले और निष्क्रिय प्रतिक्रिया से असहज (प्रतिबन्धित) और सहज क्रिया (भोजन, काम-भावना इत्यादि) में विकसित होकर ही पशु जीवन का आविर्भाव हुआ है।

(च) पक्षी, पशु और मनुष्य

प्रथम पक्षी और पशु लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले अस्तित्व में आए। लगभग 20 से 30 लाख वर्ष पहले मनुष्य का आविर्भाव हुआ। कृषि की आयु 10,000 वर्ष से अधिक नहीं हैं। और पहला लिखित शब्द लगभग इसके भी आधे समय पहले आया है।

(छ) मानव विकास के बारे में परिदृश्य

मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में सबसे अधिक स्वीकृत परिदृश्य आजकल इस तरह है; पहला नर वानर (प्राईमेट) जो मानवता के रास्ते पर सवार हुआ वह लगभग 2.5 करोड़ वर्ष पहले का ड्रायोपिथीकस था। लगभग 1.2 करोड़ वर्ष पूर्व उसकी जगह प्लीओपिथीकस ने ले ली। उसकी जगह लगभग 50 लाख वर्ष पहले आस्ट्रेलोपिथीकस ने ले ली जो अभी तक अर्द्धमानव ही था और सम्भवत: औजार का उपयोग करने लगा था। लगभग 30 लाख वर्ष बाद आस्ट्रेलोपिथीकस हाथों से काम करने वाले मनुष्य के रूप में विकसित हुआ। उसके बाद 10 लाख वर्ष पहले पिथीकन थ्रोम्पुसेरेक्टस (पिंकिग और जावा मानव) अस्तित्व में आया। यह पहला खड़ा मानव जिसका दिमाग काफी बड़ा था उसे 'मानव' माना जा सकता है। वह सुदृढ़, घुमक्कड़, यद्यपि धीमा और दूरी पृथ्वी पर अपना रास्ता तय करने वाला था। इस धारा की दो शाखाएं हिडेलबर्ग और निएण्डरथाल बन गई। इनमें से निएण्डरथाल को पहला बुद्धिमान मनुष्य (होमो-सोपियन) होने का दर्जा मिला। कुछ मानव विज्ञानियों का अनुमान है वह लगभग 2 लाख वर्ष पहले पैदा हुआ और करीब 1 लाख वर्ष पहले यूरोप में पक्के तौर पर बस गया। उसके बाद पिल्टडाऊन मानव आया, इसके साथ ही आज का प्रतिनिधित्व करने वाली आस्ट्रेलियन आदिवासी जातियों की नस्लें चली। यह वर्तमान मानव समुदाय का सबसे पुराना आदिम रूप था। कुछ समय बाद इनमें से वर्तमान मानव समुदाय के पूर्वजों की कई साझी प्रजातियां निकलीं। क्रोमानॉन, ग्रीमाल्डी, चान्सीलेड, कोम्बेकेपेली या ओबीरिएसेल प्रजातियां बिल्कुल आधुनिक हैं और इनमें आपस में ज्यादा फर्क नहीं है। वे अभिनूतन युग में रहती थीं और उनके रूपान्तरित वंशजों के अलावा बाकी का अस्तित्व समाप्त हो गया। करीब 40 से 50 हजार वर्ष पहले एक बड़ी छलांग लगी और मानव अपने आधुनिक शारीरिक बनावट के साथ उभरा।

मानव प्रजातियां, जैसे-जैसे भू-मण्डल पर फैली, उनका अपने परिवेश के साथ अन्तरक्रिया के कारण नई विशिष्टताएँ पैदा हुई, इस प्रकार मानव कई प्रजातियों में विकसित हुआ। ये हैं मंगोलियन (पीला) समूह, कॉकेसोएड (सफेद) समूह, कॉकोसोएड भूरा समूह, निग्रो (काला समूह), आस्ट्रोलॉएड (आस्ट्रेलियन आदिवासी) समूह, कैपोइड (अफ्रीकन) समूह। इस पृथ्वी पर प्रत्येक प्रजाति दूसरी किसी भी प्रजाति के साथ स्वतंत्र रूप से सम्बन्ध स्थापित कर मानव को जन्म दे सकती है। मानव वर्णसंकर है और लम्बे समय से ऐसा रहा है।

पशु जगत ये एक स्पष्टत: भिन्न प्रजाति के रूप में मानवजाति का अलगाव मुख्यतया उसके सीधे खड़े होने से हुआ था; जिससे उसके आगे के दो पैर हाथों में तब्दील हो गए। इससे मानव ने पत्थरों और छड़ियों का औजारों और उपकरणों के रूप में उपयोग करना शुरू किया। उसी के साथ-साथ पाशविक दिमाग मानवीय दिमाग में तब्दील होना शुरू हुआ और मानव ने बोलने की ताकत भी हासिल की। ये समस्त विकास लाखों वर्षों में हुए हैं, इसी युगान्तरकारी लम्बे काल ने ही सामाजिक मानव और इसके समाज को अस्तित्व में लाया है।

मानव समाज का इतिहास विकास की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मानव कई सामाजिक अवस्थाओं से गुजरा है। जिसमें प्रत्येक अवस्था निम्न लक्षणों से परिलक्षित होती है। (अ) एक निश्चित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र (या सामाजिक-प्राकृतिक रचनातंत्र) और इससे सम्बन्धित सामाजिक रचनातंत्र (या सामाजिक व्यवस्था) और (ब) एक निश्चित तरह के लोग जिनका चलन उस समय के सामाजिक रचनातंत्र के अनुसार होता है, उसी के अनुरूप सामाजिक इकाईयों और ग्रुपों (मूलत: एक गण, बाद में एक कबीला, उसके बाद में राजाओं के राज्य और अब एक राष्ट्रीय राज्य) में गठित होते हैं। उनके उस समय के निश्चित सिद्धान्त और व्यवहार होते हैं। एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था में बंधे होते हैं। ऐतिहासिक विकास पुष्टि करता है कि प्रत्येक अवस्था पुरानी से नई में तब्दील होने की एक प्रक्रिया रही है–इसी से छड़ियों और पत्थरों वाले आदिम स्तर से वर्तमान इलेक्ट्रॉनिक यन्त्रों के स्तर वाला मानव समाज अस्तित्व में आया है और विकसित हुआ है।

VIII मानव समाज का आधार

मानव जाति की सम्पूर्ण जैव-सामाजिक प्रक्रिया के क्रमिक विकास पर ध्यान देने और प्रकृति एवं सामाजिक विज्ञानों का घनिष्ट अध्ययन यह सबूत देता है कि मानव जाति हमेशा से प्रकृति की सार्वत्रिक प्रक्रिया के एक भाग के रूप में विद्यमान रही है और दोतरफा अन्तरक्रिया–प्रकृति (विविध प्राकृतिक प्रक्रियाओं में अन्तरक्रिया सहित) और मानव समाज के बीच तथा स्वयं मानव समाज की विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों (व्यक्तिगत मानवीय सामाजिक इकाई सहित) के बीच अन्तरक्रिया से गतिमान एवं परिवर्तनशील रहा है। यह (यानि कथित धारणा) दो व्यापक ताकतों–प्रकृति और मानव समाज–को मानव समाज के अस्तित्व, गति एवं परिवर्तन के लिए उल्लेखित करता है।

IX प्रकृति एवं मानव समाज के बीच तथा मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया

ऊपर बताई गई दो अन्तरक्रियाएँ; (क) प्रकृति और मानव समाज के बीच (ख) मानव समाज के अन्दर–दो अन्तरसंबंधित प्रक्रियाएँ हैं। मानव समाज में परिवर्तन एवं विकास के लिए दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक अन्य को द्वितीयक स्थान पर रखते हुए सामाजिक परिवर्तन एवं विकास में बारी-बारी से प्रमुख भूमिका निभाती हैं। यही ये दो अन्तरक्रियाएँ हैं जो एक तरफ मानव समाज में परिवर्तन एवं विकास को आगे धकेलते हैं और दूसरी तरफ प्रकृति की प्रक्रिया में परिवर्तन एवं विकास

पर निश्चित प्रभाव (यद्यपि यह चाहे बहुत ही मामूली पैमाने पर हो) डालने का प्रयास करते हैं।

(क) प्रकृति का मानव समाज पर अन्तरक्रियात्मक प्रभाव

प्रकृति का मानव समाज पर अन्तरक्रियात्मक प्रभाव गैर मानवीय और मानवीय प्रक्रियाओं के बीच कुल अन्तरक्रियाओं (चाहे क्रियात्मक अथवा प्रतिक्रियात्मक) के प्रभाव का द्योतक है। ये अन्तरक्रिया दो व्यापक श्रेणियों की हैं- एक वो जिसकी संगठन की प्रणाली, संचालन और परिवर्तन (उदाहरणार्थ, हवा, पानी, जमीन, मशीन आदि) का ज्ञान मानव जाति को है और दूसरी वो जिसकी सांगठनिक प्रणाली, संचालन और परिवर्तन (उदाहरणार्थ, ब्लेक हॉल, आकाशगंगाएं, तारे, अन्तरिक्ष आदि) के बारे में मानव जाति को अभी तक जानकारी नहीं है या मामूली है।

प्रकृति (यानि, इसके किसी घटनाक्रम) मानव जाति से विभिन्न लाभकारी (जैसे हवा, पानी, भोजन आदि) और नुकसानदायक (यानि वायरस, भूकम्प आदि) प्रक्रियाओं के जरिए क्रिया और प्रतिक्रिया करती है। यह मानव जाति से विशिष्ट घटनाक्रम के संचालक नियमों, कार्यकारी प्रणाली और संगठनात्मक स्वरूपों को समझने की मांग करती है और उनकी (यानि मनुष्य की) सोच, कार्यप्रणाली और संगठन को विशिष्ट घटनाक्रम द्वारा हासिल की गई समझ से समायोजन करने की मांग करती है। बिना इस समायोजन के मानव जाति किसी भी प्राकृतिक घटनाक्रम को उचित तरीके से समझ नहीं सकती और उसका ठीक प्रबंध नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए मनुष्य किसी मशीन का परिचालन उसके परिचालन नियमों को समझकर और मशीन के संगठनात्मक ढांचे के साथ अपनी सोच का समायोजन करके ही कर सकता है।

प्रकृति के साथ अपनी निरन्तर अन्तरक्रिया में मानव जाति लगातार नये वैज्ञानिक-तकनीकी ज्ञान को सिखता है और उसके अनुसार अपने सोचने के पुराने तरीके, कार्यपद्धति और संगठन को समायोजित करता है–इस प्रकार लगातार अपने वैज्ञानिक तकनीकी और सामाजिक ज्ञान दोनों को समृद्ध करता जाता है।

प्रकृति के विविध घटनक्रमों और उनके परिचालन नियमों, कार्यप्रणाली और संगठन के स्वरूपों के बारे में मनुष्य की समझ को वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र (अथवा सामाजिक-प्राकृतिक रचनातंत्र) कहा जा सकता है और समायोजित मानवीय सोच, कार्य और संगठन को सामाजिक रचनातंत्र (अथवा सामाजिक व्यवस्था) का खाका (या नक्शा) कहा जा सकता है। वैज्ञानिक-तकनीकी और उसके अनुरूप सामाजिक रचनातंत्र के क्रमिक रूपान्तरण और विकास की बहुत-सी अन्तहीन प्रक्रियाएँ हुई हैं, जिसमें प्रत्येक पुरानी प्रक्रिया की जगह नई प्रक्रिया स्थान ले लेती है।

वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र की व्यापक धारणा में सभी वैज्ञानिक-तकनीकी सिद्धान्तों और उससे जुड़े व्यवहारों और स्वरूपों को सम्मिलित किया जा सकता है। विशिष्ट वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और इसके मूलभूत लक्षणों की आम समझ से मानव जाति अपना सम्पूर्ण सामाजिक परिप्रेक्ष्य प्राप्त करता है।

सामाजिक रचनातंत्र (या सामाजिक व्यवस्था) की व्यापक धारणा सभी सामाजिक श्रेणियों–यथा (क) आर्थिकता और इसकी शाखाएँ (यानि उद्योग, कृषि, व्यापार, सेवाएं,

आदि) राजनीति और इसकी शाखाएँ (यानि कानून, विधान, कार्यपालिका, प्रशासन, युद्ध, आदि) और संस्कृति (यानि कला, साहित्य, विज्ञान, आदि); (ख) उद्योग, कृषि, व्यापार, कानून, प्रशासन, कला, साहित्य, विज्ञान की उपशाखाएं और इसी तरह की अन्य विभिन्न उपशाखाएँ और (ग) सभी सामाजिक श्रेणियों की संचालक मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और इसके प्रतिनिधि सामाजिक नियमों और स्वरूपों–का निर्माण करती है। संक्षेप में सामाजिक रचनातंत्र विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था को अभिव्यक्त करता हे।

इस प्रकार, सामाजिक रचनातंत्र (या सामाजिक व्यवस्था) मानव समाज के संगठन, गति और परिवर्तन में बहुत ही महत्वपूर्ण कारक का निर्माण करता है। यह अपने सम्बन्धित वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र की आम समझ से सामाजिक परिप्रेक्ष्य को प्राप्त करता है और इसके आवश्यक व्यवस्थागत पहलुओं (यानि राजनीति, आर्थिकता और संस्कृति) को बदलती हुई विशिष्ट वैज्ञानिक-तकनीकी प्रक्रियाओं के संचालन साधनों और संगठनात्मक स्वरूपों की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार, विकसित करता है। मानव जाति को बदलती हुई वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र के अनुसार उसके सामाजिक रचनातंत्र को समायोजित करने के लिए बाध्य करके प्रकृति मानव समाज के संबंध में प्राथमिक तौर पर कार्य करती है।

(ख) प्रकृति पर मानव जाति का अन्तरक्रियात्मक प्रभाव

मानव समाज एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था को चलाने की प्रक्रिया के साथ-साथ प्रकृति की अभी तक अज्ञात प्रक्रियाओं के लिए प्रयोग और नई खोजों को अधिक धन सम्पदा प्राप्त करने या कुछ अतिरिक्त सामाजिक फायदे या बढ़ती हुई सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने को आगे बढ़ाने के लिए प्रकृति के साथ क्रिया व प्रतिक्रिया करता है। कभी-कभी अन्तरक्रिया एकात्मक (उदाहरणतया, श्वास लेना, जलपान, भोजन करना इत्यादि) और कभी-कभी प्रतिकूल (उदाहरणतया, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग, प्रदूषण उत्पन्न करना, इत्यादि) होती है। इन अन्तरक्रियाओं के दौरान मनुष्य निरन्तर विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं में नये बदलाव ला देता है तथा नये सिद्धान्त और व्यवहार के माध्यम से मानवता के लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओं को अधिक उपयोगी नये रूपों में विकसित कर देता है। इस प्रकार, प्रकृति में नये बदलाव लाकर और परिणामस्वरूप वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र को और आगे विकसित करते हुए मानव-समाज, प्रकृति की तुलना में मुख्य भूमिका अदा करता है।

प्रकृति और मानव समाज की यह प्रमुख भूमिका बारी-बारी से सामाजिक विकास की प्रत्येक प्रक्रिया में निरावधि तक चलती रहती है, इस प्रकार वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और समाज दोनों में लगातार परिवर्तन लाती है और सामाजिक उन्नति को आगे बढ़ाती है।

(ग) मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया

मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया सामाजिक व्यवस्था से निकटता से संबंध रखती है जिसके संचालन के लिए दो अन्तरसंबंधित चीजों की जरूरत है (क) विभिन्न

क्षेत्रों–राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सुरक्षा और विदेश मामलों–में कार्यरत मानवीय सामाजिक इकाइयों की, तथा (ख) सामाजिक इकाइयों द्वारा सामाजिक मानदण्डों और स्वरूपों को विकसित करके उनके आधार पर पुरानी सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण करना।

(i) मानवीय सामाजिक इकाइयाँ

मानवीय सामाजिक इकाइयाँ–जो वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और इससे जुड़े सामाजिक रचनातंत्र की एकमात्र संचालक और सर्जन करने वाली कारक है–कोई सरल घटनाक्रम नहीं बनती है। एक व्यक्तिगत सामाजिक इकाई से प्रारम्भ होकर राष्ट्र (उदाहरणतया, 102 करोड़ का भारतीय राष्ट्र) जैसी बड़ी इकाइयां भी इसमें शामिल हैं। इनमें से कुछ सामाजिक इकाइयां प्रमुख तौर पर वैचारिक (उदाहरणतया धार्मिक समूह, राजनीतिक ग्रुपों, वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यकर्त्ता इत्यादि) होती है। इनमें से कुछ मुख्यतया आर्थिक फायदे के लिए होती है (उदाहरणतया, परिवार, ट्रेड यूनियन, वर्ग इत्यादि)। इनमें से कुछ मुख्यतया राजनीतिक, कुछ आर्थिक, कुछ सांस्कृतिक और कुछ समाज विरोधी होती हैं। इनमें से कुछ इकाइयों (उदाहरणतया, राष्ट्रों, समुदायों इत्यादि) को उनके बहुपक्षीय चरित्र के कारण उनका मुख्य चरित्र नहीं पहचाना जा सकता।व्यक्तिगत इकाई को छोड़कर बाकी सभी इकाइयों को दो पहलुओं से पहचाना जाता है उनमें एक पहलू उसका मुख्य कार्यकर्त्ता और दूसरा पहलू उसकी सहायक इकाई (यानि जनरल बॉडी) होती है। नियम के तौर पर ऐसी कोई मानवीय सामाजिक इकाई नहीं है जिसका अगुवा कार्यकर्त्ता (जो चाहे थोड़े ही समय के लिए अगुवा की भूमिका निभाए) न हो। किसी इकाई के अगुवा कार्यकर्त्ता और सहायक इकाई (जनरल बॉडी) के बीच सम्बन्ध यह बना रहता है कि इनमें से प्रत्येक बारी-बारी से आगे आता रहता है। विभिन्न सामाजिक इकाइयाँ अपने-अपने वैज्ञानिक-तकनीकी और सामाजिक रचनातंत्र के अनुरूप क्रमिक रूपान्तरण और विकास की अन्तहीन प्रक्रिया से गुजरती है, जिसमें प्रत्येक पुरानी इकाई की जगह नई-नई इकाई अपने सामाजिक और वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र के संबंध में विभिन्न मसलों पर आपसी एकता व संघर्ष की अन्तरकिया के दौरान जगह लेती है, इसमें पुरानी इकाइयां क्षयग्रस्त रचनातंत्र और नई इकाइयां उभर रहे रचनातंत्र का प्रतिनिधित्व कर रही होती है।

(ii) सामाजिक मानदण्डों और रूपों

सामाजिक मानदण्डों और रूपों (जिन्हें सामाजिक संबंध भी कहा जाता है)–जो सामाजिक रचनातंत्र की विभिन्न सामाजिक श्रेणियों (जैसे राजनीति, आर्थिकता, संस्कृति और विचारधारा) और उनसे संबंधित शाखाओं (उद्योग, कृषि, व्यापार कानून, प्रशासन, कला, साहित्य, विज्ञान और इसी तरह) को लागू करने की सुविधा प्रदान करने वाले नियमों–का मसला भी काफी जटिल है। संक्षेप में ये सम्बन्ध व्यक्ति और समाज के बीच आर्थिक कार्य (यानि उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग, आर्थिक समानता) के दौरान विभिन्न सामाजिक इकाइयों के दरम्यान, राजनीतिक कार्यवाहियों (यानि चुनावों, प्रशासन, कानून इत्यादि) और सांस्कृतिक गतिविधियाँ (यानि आचार-शास्त्र, विभिन्न सांस्कृतिक मुहिमों में नैतिक तत्त्व इत्यादि) तथा भौतिक वस्तुओं और विभिन्न सामाजिक इकाइयों के

बीच सामाजिक उसूलों का एक समुच्चय बनते हैं जो बहुपक्षीय सामाजिक सम्बन्धों को तय करते हैं दूसरे शब्दों में वे मानवीय सामाजिक इकाई तय करते हैं। इन सामाजिक मानदण्डों और रूपों पर एक निश्चित समाज की सभी सामाजिक इकाइयां आम सहमति बनाकर उन्हें कानूनों और नियमों के रूप में संविधान और विधिशास्त्र में दर्ज कर लेती है और उसे समस्त राज्य और इसके निवासियों के लिए कानूनी तौर पर पालन करना आवश्यक बना दिया जाता है।

मानव समाज के प्रारम्भ से लेकर अब तक सामाजिक रचनातंत्र (और इससे सम्बन्धित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र) के अनुरूप सामाजिक इकाइयों और सामाजिक मानदण्डों तथा रूपों में निरन्तर बदलाव होता रहा है।

एक निश्चित समाज में विभिन्न सामाजिक इकाइयों के मध्य सामाजिक मानदण्डों और रूपों के क्रमिक विकास और लागू करने के दौरान तीव्र वाद-विवाद और विचार-विमर्श निरन्तर उभरता रहता है और जो संवैधानिक, कानूनी, आर्थिक और सांस्कृतिक मसलों पर आम सहमति के रूप में विभिन्न सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से बाद में हल हो जाती है।

(iii) सामाजिक विचार- मानव अन्तरक्रिया का मुख्य साधन

सामाजिक विचार का महत्व इस तथ्य से जाँचा जा सकता है कि वे मानव समाज में सही और गलत का निर्णय करने में मुख्य साधन होते हैं। सही सामाजिक विचारों को सिद्धान्त के रूप में संकल्पित कर लिया जाता है और इसका व्यवहार हमें आगे बढ़ाता है, जबकि गलत अवधारणाएँ और उनको लागू करने से हमारा सामाजिक जीवन नर्क बन जाता है। यही कारण है कि मानव समाज, इसकी मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक विचार के माध्यम से क्रियाशील होते हैं। विचारों के माध्यम से सम्प्रेषण मनुष्यजाति की केवल मात्र संचालन पद्धति है जो उसको दूसरे सभी गैर मानवीय घटनाक्रम से अलग कर देती है।

मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और उनके दूरदर्शी नेता अपने विचारों को सामाजिक सिद्धान्तों में सूत्रबद्ध करते हैं। और अपने समकालीन विचारकों (बाहर और अन्दर के) के साथ अन्तरक्रिया करते हुए विभिन्न पहलकदमियों और गतिविधियों के माध्यम से अपने विचारों को व्यवहार में लाते हैं। सही सिद्धान्त व्यवहार के माध्यम से अपनी वैधता स्थापित करते हैं जबकि गलत सिद्धान्त व्यावहारिक गतिविधि के दौरान अपनी साख खो देते हैं।

एक सही सिद्धान्त और उसके व्यवहार के बीच में संबंध है कि इनमें से प्रत्येक बारी-बारी से मानव जाति को उनके उद्देश्यों और कोशिशों में सहायता पहुँचाते हैं। शुरूआत में जब सिद्धान्त व्यवहार को विकसित करता है, तब सिद्धान्त ज्ञान का मुख्य पहलू बनता है, जिन क्षणों में व्यवहार सिद्धान्त को समृद्ध करता है उस समय व्यवहार प्राथमिक होता है। इस प्रकार, सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही ज्ञान का आधार बनते हैं चाहे वह ज्ञान प्राकृतिक हो या सामाजिक अथवा सैद्धान्तिक हो या व्यवहारिक।

किसी सामाजिक इकाई (एक व्यक्ति की इकाई भी हो सकती है) का कुल सिद्धान्त और व्यवहार ही उसका सम्पूर्ण प्राकृतिक और सामाजिक ज्ञान बनता है। इसी तरह से

मानव समाज की सभी सामाजिक इकाईयों का कुल सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान ही समाज का सम्पूर्ण ज्ञान बनता है।

प्रकृति के ज्ञान के संबंध में, सूचना का आधार प्राकृतिक प्रक्रियाओं में निहित होता है, जबकि उनके पर्यवेक्षण, व्याख्या और सूत्रबद्ध करने की प्रक्रिया मानवीय सोच से जुड़ी हुई है। उसी तरह से सामाजिक ज्ञान के संबंध में सूचना का आधार सामाजिक रचनातंत्र (मानवीय सामाजिक इकाइयों और सामाजिक मानदण्डों और रूपों सहित) में निहित होता है जबकि उसकी व्याख्या और सूत्रबद्ध करने की प्रक्रिया मानवीय सोच से जुड़ी हुई है। ज्ञान के मनोगत सृजन में उत्कृष्ट व्यक्ति की मानवीय सामाजिक इकाई वैचारिक परिशोधन संयंत्र की भूमिका अदा करती है जबकि उससे संबंधित टीम या ग्रुप के रूप में मानवीय सामाजिक इकाई या सम्पूर्ण समुदाय वैचारिक कच्चे माल की पूर्ति करते हैं।

मानव समाज में मानव समुदाय के लिए पर्यावरणीय और सामाजिक तौर पर जो भी प्रासंगिक है, उसे सामाजिक तौर पर सही ठहराया जाता है, जबकि उसके उलट को सामाजिक तौर पर स्पष्ट रूप से गलत निर्दिष्ट किया जाता है।

(iv) मानवीय सामाजिक इकाइयों की संचालन पद्धति–एकता और संघर्ष

सामाजिक इकाइयाँ बारी-बारी से आपसी एकता और आपसी संघर्ष के द्वारा सामाजिक विकास में अपनी विशिष्ट भूमिकाएँ निभाती हैं। एकता का सवाल विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों के निश्चित उद्देश्यों और हितों में मेल से सम्बन्ध रखता है, जबकि विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों के वास्तविक उद्देश्यों और हितों में टकराव से संघर्ष की भूमिका निकलती है। बहुत से राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मामलों में एकता और संघर्ष के मसले एक मानवीय सामाजिक इकाई के दृष्टिकोण या कुछ सामाजिक इकाइयों के आम सहमति पर आधारित एजेण्डा के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने वाले भिन्न विचारों के द्योतक हैं जो या तो सम्पूर्ण सामाजिक वास्तविकता या इसके विभिन्न आयामों में कोई एक के बारे में स्पष्ट धारणा का दावा करते हैं अथवा इन वास्तविकताओं को उचित जवाब देते हैं। ठोस हालात के मुताबिक वास्तविकता और उसको दिया गया जवाब बारी-बारी से परिस्थितियों के मुताबिक प्राथमिक स्थान ग्रहण करते हैं। यहाँ तक कि राज्य सत्ता (जिसमें एक राज्य की समस्त जनसंख्या प्रभावित होती है) का विषय जो निरन्तर टकराव का विषय बना रहता है, इस विषय को भी या तो मुकाबले वाली मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच समझौते से या लड़ाई से हल किया जाता रहा है। जब कभी एक नया सामाजिक रचनातंत्र और सम्बन्धित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र उभरता है तब समाज में नई मानवीय सामाजिक इकाइयाँ पैदा होती हैं, ऐसे समय में पुरानी इकाइयों और नई पैदा हुई मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच एकता और संघर्ष की समस्या तेज हो जाती है।

(v) मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और व्यवस्थागत परिवर्तन

मानव समाज की सम्पूर्ण लम्बी प्रक्रिया में कोई एक मानवीय सामाजिक इकाई (चाहे वह पश्चिमी उदारवादी मॉडल का बुद्धिमान नायक हो या कम्युनिस्ट मॉडल का सामाजिक वर्ग हो) सम्पूर्ण उद्देश्य की पूर्ति करने वाली इकाई न तो हुई है और ना ही हो

सकती है यानि एक इकाई सामाजिक प्रगति का एकमात्र स्त्रोत नहीं होती है। सामाजिक विकास के द्वारा व्यवस्थागत परिवर्तन विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों (व्यक्तिगत इकाई सहित) के बीच अन्तरक्रिया के द्वारा ही होता है और इसी अन्तरक्रिया से ही ऐसा होना सम्भव है। इस बहुपक्षीय और बहुआयामी अन्तरक्रिया में कभी एक विशिष्ट वैज्ञानिक अपने सहयोगी वैज्ञानिक की टीम सहित, कभी एक विशिष्ट अर्थशास्त्री अपने सहयोगी अर्थशास्त्रियों की टीम सहित, कभी एक विशिष्ट धार्मिक प्रचारक अपने सहयोगी धार्मिक प्रचारकों के साथ और अन्य इसी प्रकार के संगठन भिन्न-भिन्न समय पर अपने-अपने समय की समकालीन मानवीय इकाइयों के साथ अपने विकसित सही सामाजिक विचारों की अन्तरक्रिया (जो कभी-कभी एकता द्वारा और कभी संघर्ष द्वारा होती है) करते हुए सामाजिक विकास में अपना बड़ा योगदान करते हैं।

सभी को सम्मिलित कर लेने वाली राज्य इकाई में अत्यधिक उत्कृष्ट राजनीतिक इकाई और उसका विशिष्ट नेता वास्तविकता पर आधारित अपने प्रस्तावों और उनको लागू करने में अपने समय की राजनीतिक इकाइयों के साथ अन्तरक्रिया (एकता व संघर्ष) के द्वारा अपनी प्रमुख भूमिका अदा करता है।

(vi) मानवीय सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

मानव जाति (यानि मानव समाज) का सामाजिक विकास एक एकल सामाजिक प्रक्रिया है, जो दो तरफा यानि एक तरफ मानव समाज और प्रकृति के बीच और दूसरी तरफ मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच अन्तरक्रिया से परिलक्षित होती हैं। इस दो तरफा अन्तरक्रिया ने मोटे तौर पर सामाजिक विकास की पाँच अवस्था पैदा की हैं, जिनमें से प्रत्येक एक निश्चित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र और इसकी सामाजिक व्यवस्था विशिष्ट सामाजिक श्रम विभाजन, सामाजिक इकाइयाँ, उसके साथ ही उनके सामाजिक मानदण्डों तथा रूपों और सामाजिक सिद्धान्तों एवं व्यवहार से गठित होती है।

प्रथम अवस्था पत्थरों, छड़ियों, हड्डियों, धनुषों, तीरों इत्यादि की तकनीकी पर आधारित भोजन इकट्ठा करने और शिकार करने की अवस्था थी। उस समय सामूहिक श्रम विभाजन था, गणों का संगठन और वंश आधारित मानदण्ड, ढांचा, सिद्धान्त और व्यवहार था जो लाखों वर्षों तक चलता रहा था।

दूसरी अवस्था पशुपालनवाद की थी। यह अवस्था पहले पशुपालन तकनीकी और बाद में धातु (कांस्य और ताम्बा) के औजारों पर आधारित थी। इस अवस्था के शुरू में एक अर्द्ध सामूहिक और बाद में दास आधारित श्रम विभाजन प्रचलित था। उस समय का समाज कबीलों का संगठन था। या पशुपालक इकाइयों (यानि प्रभुत्वकारी पशुपालक इकाई, पशुपालक दास इकाई, प्रभुत्वकारी इकाई से सम्बन्धित दूसरी पशुपालक इकाइयाँ इत्यादि) और अर्द्ध वंशवाद के साथ-साथ दासता (अन्तर कालीबाई युद्धों के दौरान पकड़े गए कैदियों के द्वारा बनाए गए दास और दास प्रथा) के मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार वाला संगठन था।

तीसरी अवस्था में कृषिकारी अवस्था थी। यह अवस्था धातु (विशेषकर लोहा) पिघलाने और ढलाई करने, भूमि उर्वरण, खान खोदने, चक्की लगाने, बुनाई करने, चर्म

शोधन, मिट्टी के बर्तन बनाने, कागज बनाने, छपाई करने, जहाज निर्माण इत्यादि तकनीकी पर आधारित थी। इस अवस्था में भू-दास आधारित और पारिवारिक कार्य पर आधारित श्रम विभाजन था। कृषिकारी इकाइयों (यानि प्रभुत्वकारी कृषिकारी इकाई, भू-दास की इकाई, मध्यम श्रेणी, कारीगर इकाई इत्यादि) और राज्य के देवी अधिकार की विचारधारा के नीचे भू-दास प्रथा के मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार वाला संगठन कायम था।

चौथी अवस्था औद्योगिक अवस्था थी। यह अवस्था पहले हस्तकला और बाद में मशीन कला (जो भापशक्ति, विद्युतशक्ति और उच्च ऊर्जा ईंधन से चलाई जाती थी) की तकनीकी पर आधारित थी। इस अवस्था में उजरती मजदूरी और मालों के विनिमय पर आधारित श्रम-विभाजन कायम हुआ, औद्योगिक इकाइयों (यानि प्रभुत्वकारी औद्योगिक इकाई, औद्योगिक मजदूर इकाई, औद्योगिक मध्यम श्रेणी इत्यादि) का एक संगठन बना और उपनिवेशवाद व कम्युनिस्ट केन्द्रीयवाद के साथ उदारवाद एवं संसदीयवाद का सिद्धान्त और व्यवहार तथा मानदण्डों व रूपों वाली व्यवस्था कायम हुई।

पाँचवीं अवस्था चिन्हित करती है हालिया में उभरे 1945 के बाद के वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र (अन्तरिक्ष, ऊर्जा, पदार्थ, जीव-विज्ञान, साइबरनेटिक्स इत्यादि के क्षेत्र में अत्यधिक विकसित अन्तर्दृष्टि को सम्मिलित करते हुए) और इससे सम्बन्धित ग्लोबल (या राष्ट्रों की अन्तरनिर्भता का) सामाजिक श्रम विभाजन ने ग्लोबल कम्युनिटी के निर्माण की एक नई प्रक्रिया को गति प्रदान कर दी है जो विभिन्न अवस्थाओं से गुजरती हुई आगे बढ़ेगी।

(vii) मानवीय सामाजिक विकास के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू

मानव समाज की विभिन्न अवस्थाओं ने मनुष्य जाति के भविष्य के लिए किस तरह के रणनीतिक प्रभाव छोड़े हैं।

इनमें से प्रत्येक ने मानव सभ्यता के लिए कुछ न कुछ योगदान दिया है। सामूहिक रूप से इन्होंने दो तरफा राजनीतिक प्रभाव–सकारात्मक और नकारात्मक दोनों–पैदा किया है।

इसका सकारात्मक पक्ष है कि इन्होंने मानव समाज के कदम ब कदम आधुनिकीकरण की एक नई प्रक्रिया को अपने वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक इकाइयाँ, सामाजिक मानदण्डों और रूपों और सामाजिक सिद्धान्तों एवं व्यवहारों को रूपान्तरित करके उत्पन्न किया है। इस प्रकार भोजन इकट्ठा करने और शिकार करने के विज्ञान और तकनीकी तथा इसका सामूहित श्रम-विभाजन जो भोजन इकट्ठा करने वाले और शिकारी से पहचाना जाता है। इस समय के मनुष्य ने अपने भोजन इकट्ठा करने और शिकार के लिए सामाजिक मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार और वंश (सगोत्रता) आधारित गण के संगठन कायम किए, जिसने बाह्य दुश्मन और आन्तरिक गण के विद्रोही के प्रति बर्बर रवैया अपनाया।

पशुपालन विज्ञान और तकनीकी तथा अर्द्ध सामूहिक एवं दासता आधारित श्रम-विभाजन का एक घूमने वाले मनुष्य (यानि एक घुमक्कड़) द्वारा चरित्र-चित्रण होता है।

इस मनुष्य ने अपने पशुपालनवाद के सामाजिक मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार तथा अर्द्ध-वंशवाद आधारित कबीला संगठन कायम किए। जिसने अपने विरोधियों यानि दासों और कबीले का आन्तरिक अनुशासन तोड़ने वालों के प्रति निर्मम रवैया अपनाया।

कृषिकारी विज्ञान और तकनीकी तथा इसके भू-दास आधारित श्रम-विभाजन को एक कृषक (अपनी भूमि के साथ जुड़ा हुआ) द्वारा चिह्नित किया जाता है। इस कृषक ने अपनी कृषि के सामाजिक मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार तथा धार्मिक दिशा वाले कृषिकारी समुदाय का एक सामन्ती संरक्षण आधारित संगठन कायम किया जिसने दुश्मनों और आन्तरिक कानून भंजकों के प्रति सैन्यकृत और दमनकारी रवैया अपनाया।

औद्योगिक विज्ञान और तकनीकी और इसके माल व उजरती श्रम पर आधारित श्रम-विभाजन एक औद्योगिक मनुष्य की खासियत रखता है। यह औद्योगिक मनुष्य अपने घरेलू मामले में उदारवादी सामाजिक मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार से तथा बाहरी मामलों में उपनिवेशी दृष्टिकोण से चलता रहा है। इसी तरह से यह राष्ट्र के अन्दर संसदीय व्यवहार करता रहा है जबकि बाहर ,खासकर उपनिवेशों में दमनकारी भूमिका अदा करता रहा है।

नई ग्लोबल व्यवस्था राष्ट्रों में मित्रता, सहयोग और एकता के अपने नये लक्षणों के साथ अभी प्रकट हुई है।

नकारात्मक पक्ष पर मानव समाज (विशेष रूप से राष्ट्रीय राज्य) ने न सिर्फ मानव के लिए बल्कि सम्पूर्ण जैव-जगत के लिए तीन बहुत ही ज्यादा विध्वंसक चुनौतियों को पैदा किया है।

एक चुनौती पर्यावरण–वायु, पानी, भूमि इत्यादि के–प्रदूषण की है जिसने पहले से जैव विविधता के क्षेत्र में बरबादी खड़ी कर रखी है। जैव-जगत की सैकड़ों जातियां प्रतिदिन लुप्त होती जा रही है। खतरे की घण्टी पहले से ही बज रही है कि दुनिया पर्यावरण विनाश के कगार पर खड़ी है।

दूसरी चुनौती तेजी से बढ़ रही जनसंख्या की है जो इस शताब्दी के दौरान ही चार गुनी बढ़ी है। जनसंख्या विस्फोट ने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर अत्यधिक दबाव बढ़ा दिया है और इससे पर्यावरण का संकट गहरा गया है।

तीसरी सबसे अधिक असमानता और अनुचित सामाजिक व्यवस्था (खासकर राष्ट्रीय राज्यों द्वारा) स्थापित की गई है। जिसके तहत मानव समुदाय अमीर और गरीब, विशेषाधिकार और वंचित, समृद्ध और कंगाल और इसी तरह से अधिक से अधिक विभाजित होता जा रहा है।

(viii) सामाजिक पूँजी की धारणा

मानव समाज की विभिन्न सामाजिक अवस्थाओं के दौरान शुरू की गई और आगे लाई गई आधुनिकीकरण प्रक्रिया, दूसरे शब्दों में, सामाजिक पूंजीकरण की प्रक्रिया है। यह एक तरफ वैज्ञानिक तकनीकी (या प्राकृतिक) संसाधनों की उन्नति और दूसरी तरफ मानवीय संसाधनों के विकास को अभिव्यक्त करती है। ये दो कारक (यानि विज्ञान-

तकनीकी और लोग) मानव समाज में शुरूआत से ही हरेक सामाजिक घटनाक्रम की रचना करते आए हैं। ये दोनों इकट्ठे सामाजिक पूँजी का निर्माण करते हैं।

पूँजी, इसके साहित्यिक अर्थ में उच्चतम् अथवा सर्वोत्तम वस्तु और, इसके सामाजिक अर्थ में मानव समाज के सर्वाधिक मूल्यावान घटनाक्रम की द्योतक है। मानव समाज के प्रादुर्भाव के समय (यानि, वह समय जब मनुष्य ने पत्थर और छड़ों की प्रारम्भिक तकनीकी की रचना की और बदल में इनके सामाजिक रचनातंत्र में बंधा था) से ही उपर्युक्त दो कारक चलन में रहे हैं। इस पूरी अवधि में सामाजिक पूंजी भी विद्यमान रही है।

मानव समाज की प्रक्रिया के अनुरूप सामाजिक पूंजी की प्रक्रिया भी विभिन्न स्वरूपों से गुजरी। भोजन संग्रहण एवं शिकारी समुदाय के तहत सामाजिक पूँजी में छड़ियों, पत्थरों, हड्डियों, तीर और धनुष की तकनीकी, जंगली उत्पाद, जानवरों का मांस और गण संगठन तथा इसके सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्मिलित थे। मालों की अदला-बदली ने सर्वप्रथम वस्तु-विनिमय का रूप लिया और बाद में सार्वत्रिक तुल्यांक आया जो लगता है विभिन्न रूपों में चला, उदाहरणार्थ, अनाज, फर, शंख, सीप, मछली आदि। पशुपालन समुदाय के तहत जानवर सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक निवेश का मुख्य सार्वत्रिक तुल्यांक के रूप में उभरा। कृषिकारी समुदाय के अधीन भूमि और जानवर के अलावा धातु मुद्रा का भी विनिमय के साथ-साथ निवेश के रूप में उदय हुआ, जबकि औद्योगिक समुदाय के तहत मुद्रा ने विनिमय और निवेश दोनों में प्रमुख स्थिति अख्तियार कर ली। प्रत्येक समुदाय में पूँजी पर मुख्य रूप से नियंत्रण प्रभुत्वकारी मानवीय सामाजिक इकाइयों का रहा।

स्पष्टत: पूँजी की उपर्युक्त धारणा पूँजी के बारे में चल रहे दो आम सिद्धान्तों- पश्चिमी उदार अर्थशास्त्र (जो पूँजी को उत्पादन के साधनों का जोड़ मानता है) और मार्क्सवादी अर्थशास्त्र (जो पूँजी को मजदूरों का अतिरिक्त मूल्य या संचित श्रम या उत्पादन संबंधों की मान्यता देता है) से भिन्नता रखता है। पहले वाला मानव कारक (यानि श्रम) को कम आंकता है और उसे द्वितीय स्थान देता है जबकि दूसरा वाला तकनीकी को द्वितीय स्थान देता है। वास्तव में दोनों सिद्धान्त एक तरफा हैं।

ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि विज्ञान व तकनीकी तथा मनुष्य दोनों ही अपने-अपने तरीकों से सर्जन करने वाले हैं। मनुष्य की आविष्कार करने की काबलियत उसकी मानसिक और शारीरिक ऊर्जा में निहित है, जबकि तकनीकी की उत्पादकता ऊर्जा के विभिन्न रूपों (यानि विद्युत, रासायनिक, गतिज, ऊष्मा, विकिरण, नाभिकीय इत्यादि) में निहित है। वास्तव में उत्पादन के क्षेत्र में तकनीकी (यानि स्वचालित और मनुष्य द्वारा संचालित दोनों तरह की मशीने) मानव श्रम से अधिक मूल्य का सर्जन करती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक मशीन दसियों हजार वाट ऊर्जा एक दिन में उपयोग करती है जबकि उसकी तुलना में एक मजदूर प्रतिदिन शारीरिक कार्य के दौरान लगभग 120 वाट ऊर्जा (यानि लगभग 2,400 कैलोरी) खर्च करता है। यद्यपि भौतिक उत्पादन में मनुष्य तकनीकी से पीछे रह जाता है जबकि वह अपनी मानसिक अद्वितीयता (अनोखेपन) के कारण भौतिक और वैचारिक खोज (नवीनता या अविष्कार) में तकनीकी से आगे बढ़ा

हुआ (उत्कृष्ट) होता है। इस प्रकार मानव समाज में विज्ञान व तकनीकी तथा मानव दोनों ही पूंजीकरण व आधुनिकीकरण के लिए दो आधारभूत पहलू बनते हैं।

(ix) प्रभुत्व के सामाजिक सम्बन्ध लम्बे समय तक क्यों चले

मानव समाज प्रभुत्व के सामाजिक सम्बन्धों के रूप में चारित्रिक क्यों होता रहा है? इसके दो तरफा कारण है यानि लाखों सालों तक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास का निम्न स्तर पर बने रहना एक कारण है तथा इस समय के दौरान बर्बर और असभ्य जीवन से एक तर्कसंगत और मानवीय जीवन की तरफ मनुष्य के शनै:-शनै: क्रमिक विकास के द्वारा बढ़ना दूसरा कारण है। वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र और मानवीय ज्ञान में निरन्तर विकास के कारण सामाजिक प्रभुत्व की गुंजाइस (मात्रा) शनै:-शनै: कम होती गई जिससे दास सामाजिक संबंधों से भूदास सामाजिक संबंध और उसके बाद मजदूरी वाले सामाजिक संबंध विकसित हुए। दासता के युग में प्रभुत्वकारी शासक मानवीय सामाजिक इकाई उस समय के वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र के साथ-साथ दासों को नियंत्रण में रखती थी। भूदास युग में, दासों का दर्जा उठ कर अतिरिक्त आर्थिक अधिकारों के साथ भूदास में विकसित हुआ, परन्तु वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और भूदास श्रम अभी भी प्रभुत्वकारी शासक मानवीय इकाई के नियंत्रण के नीचे रहा। हालिया उजरती श्रम (वेतनभोगी) के युग में प्रभुत्व की मात्रा और सीमित हुई है वर्तमान दौर में प्रभुत्व की सीमा और नीचे आ रही है क्योंकि आज का वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और मानव समाज की चेतना का स्तर सामाजिक प्रक्रिया में जनता (मजदूरों सहित) के नियंत्रण की आवश्यकता को उजागर कर रहा है।

(x) मनुष्य की जैविक–सामाजिक प्रकृति

प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान दर्शाते हैं कि मनुष्य की दोहरी प्रकृति है—जैविक और सामाजिक अथवा जैव-सामाजिक। ये दोनों पहलू एक एकीकृत पूर्ण इकाई के रूप में गठित है। अत: इनमें से किसी एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। आम मानवीय प्रक्रिया (जिनमें जन्म, वृद्धि, क्षय और मृत्यु की अवस्थाएं शामिल हैं) और विशिष्ट मानवीय प्रक्रियाओं, जैसे श्वास लेना, पानी पीना, भोजन करना, मल निष्कासन इत्यादि से मानव के जैविक पहलू को देखा जा सकता है। सामाजिक अन्तरक्रिया के बिना मनुष्य की कुछ भी सीख नहीं पाने की असमर्थता से उसका सामाजिक पहलू स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए हालांकि सभी मनुष्य सुस्पष्ट बोलने वाले अंग के साथ जन्म लेते हैं फिर भी वे भाषा और बोलने का ज्ञान केवल सामाजिक गतिविधि के द्वारा ही हासिल करते हैं। एक बच्चा जो भेड़ियों के बीच रहता हो ना तो बोलना और न ही चलना सीख सकता है और सभी सामाजिक चरित्र खो बैठता है, इसी तरह से सुस्पष्ट बोलने वाले जैविक अंग के बिना गैर मानवीय जीव को किसी भी तरह से सामाजिक वार्तालाप से भाषा और बोलने की कला नहीं सिखाई जा सकती। अत: निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य की प्रकृति को अकेला सामाजिक या अकेला जैविक करार देना एक तरफापन है।

(xi) गुण और मात्रा के बीच समीकरण

विज्ञान और अनुभव दर्शाता है कि एक घटनाक्रम की मात्रा और गुण के बीच किसी तरह का समीकरण है। ऐसा इसलिए है क्योंकि गुण मात्रा में और मात्रा गुण के साथ

विद्यमान होती है। उदाहरणत: भोजन की प्रत्येक गुणवत्ता एक निश्चित मात्रा में ऊर्जा लिए हुए होती है जिसे कैलोरी में मापा जाता है। कक्षों में स्थित इलेक्ट्रोनों की संख्या किसी परमाणु के रासायनिक व्यवहार को तय करती है। एक ऑक्सीजन अणु के दो परमाणु में से एक और परमाणु जोड़ देने से इसकी गुणवत्ता ओजोन के रूप में बदल जाती है। इसी तरह से मानव समाज में गुण और मात्रा का परिवर्तन साथ-साथ चलता रहता है। उदाहरणतया 18 वीं शताब्दी में भाप के इंजन का आविष्कार 19 वीं शताब्दी में मशीनों का तथा 20 वीं शताब्दी में कम्प्यूटरों का आविष्कार एवं इसी तरह के विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में मात्रा और गुण के समस्त महत्वपूर्ण परिवर्तनों ने अपने सामाजिक श्रम विभाजन के साथ-साथ सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को बदल दिया है।

(xii) मानव समाज में पुराने से नए में तब्दीली

मानव समाज में पुराने से नये में तब्दीली की धारणा कभी समाप्त नहीं होने वाले एवं निरन्तर चलने वाले अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों तरह के परिवर्तन को जाहिर करती है। अल्पकालीन परिवर्तन वो परिवर्तन है जो किसी एक जैसी प्रक्रिया में शुरू से लेकर आगे के सभी दौरों में होता रहता है, उदाहरणतया, मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया–शिशु से बच्चे, बच्चे से किशोर, उसके बाद नौजवान, प्रौढ़, बुढ़ापा और आखिर में मृत्यु–में होने वाले परिवर्तन अथवा औद्योगिक रचनातंत्र के विकास की प्रक्रिया में निर्माणी प्रणाली से स्वचालित मशीनों में परिर्वतन होना। पुरानी प्रक्रियाओं की नई प्रक्रियाओं में तब्दीली को दीर्घकालीन परिवर्तन कहते हैं। उदाहरणतया, मानव जीवन की प्रक्रिया का मानव की मृत्यु के पश्चात विभिन्न गैर-जैविक घटनाक्रम (यानि, धूल, गैसों, इत्यादि) की प्रक्रिया में तब्दील हो जाना या कृषिकारी सामाजिक ढांचे की प्रक्रिया में निरन्तर मात्रात्मक परिवर्तन से गुजर कर औद्योगिक सामाजिक ढांचे की प्रक्रिया में तब्दील हो जाना अथवा पृथ्वी के विकास की विभिन्न अवस्थाएं जिनमें से प्रत्येक अवस्था का अर्थ है कि एक बड़ी संख्या में महाद्वीपों, द्वीपों, समुद्रों, पहाड़ों इत्यादि का गायब हो जाना और पूर्णतया नए भूगर्भीय घटनाक्रम के साथ-साथ अत्यधिक जलवायु परिवर्तन हो जाना।

(xiii) एकता व संघर्ष दोनों परिवर्तन लाते हैं

विज्ञान और इतिहास दर्शाता है कि एकता और संघर्ष दोनों भिन्न तरीकाकार हैं जिनके परिणाम एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत निकलते हैं, एक प्रक्रिया में पहले मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन होते हैं और तब एक नई प्रक्रिया में तब्दील हो जाती है। उदाहरण के लिए, समकालीन सामाजिक रचनातंत्र के साथ उस समय की सामाजिक इकाइयों का सामंजस्य (या एकता) सामाजिक विकास को गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तौर पर आगे बढ़ाता है जबकि समकालीन सामाजिक रचनातंत्र के साथ उस समय की सामाजिक इकाइयों का गैर-सामंजस्य (या संघर्ष) सामाजिक विकास को गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तौर पर छिन्न-भिन्न कर देता है। पुन: चूंकि कृषिकारी से औद्योगिक समाज में तब्दीली फ्रांस में (1789) में पुरानी और नई सामाजिक इकाईयों के बीच संघर्ष द्वारा हुई जब कि जर्मनी (1848) और जापान (1880) में यह तब्दीली पुरानी और नई सामाजिक

इकाइयों के बीच मेल-मिलाप से हुआ। आगे, पुरानी और नई सामाजिक इकाइयों के बीच संघर्ष पुरानी सामाजिक संरचना को तोड़ देता है जबकि नई सामाजिक इकाइयों की एकता से नई सामाजिक संरचना का निर्माण होता है। स्पष्टतया, ऐसे दोनों सिद्धान्त जिनमें एक केवल संघर्ष पर जोर देता है और दूसरा केवल एकता के तरीके पर जोर देता है–एक तरफा हैं।

(xiv) वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और मानव समाज के बीच सामंजस्य और गैर सामंजस्य

उनका सामंजस्य उनकी अनुरूपता (यानि किसी निश्चित सामाजिक रचनातंत्र को मानवीय सामाजिक इकाइयों द्वारा उचित तौर पर लागू करना) में निहित होता है जब कि उनका गैर-सामंजस्य उनकी गैर-अनुरूपता (यानि किसी निश्चित सामाजिक रचनातंत्र के लिए जरूरी सामाजिक मानदण्डों और ढंगों का मानवीय सामाजिक इकाइयों द्वारा अवहेलना करना) में निहित होता है। उनके बीच सामंजस्य सामाजिक विकास को आगे बढ़ाता है, जब कि गैर-सामंजस्य सामाजिक अवनति का कारण बनता है।

(xv) कारण और प्रभाव के बीच अन्तरक्रिया

क्या किसी प्रक्रिया में एक पक्ष हमेशा प्रभावी तथा दूसरा पक्ष हमेशा ताबेदार बना रहता है, उदाहरण के लिए किसी घटना के कारण और प्रभाव के बीच की अन्तरक्रिया में क्या एक पक्ष ही प्रमुख बना रहता है। विज्ञान और इतिहास का अनुभव दर्शाता है कि अन्तरक्रिया में प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष को प्रभावित करता है। ऐसा ही किसी भी घटनाक्रम के कारण और प्रभाव के बीच अन्तरक्रिया में भी होता है यद्यपि कारण वह घटनाक्रम है जो दूसरे घटनाक्रम को अस्तित्व में लाता है और प्रभाव किसी कारण की क्रिया का प्रभाव है तब भी कारण से पैदा होने के बाद स्वयं कारण को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए किसी माल की बढ़ती मांग उत्पादन को प्रोत्साहित करती है जो बदले में पुन: मांग में वृद्धि करती हैं। आगे, जबकि उष्मा, इंजन की धुरी की यांत्रिक गति का कारण है और वही बदले में यांत्रिक गति और इंजन के भागों में घर्षण से गर्म होने के बाद उष्मा उत्पन्न करती है। यहाँ उष्मा यांत्रिक गति के लिए कारण और प्रभाव साथ-साथ है। और आगे, जबकि यांत्रिक गति (जल विद्युत स्टेशन में पानी की धारा से उत्पन्न) विद्युत धारा का कारण है और बाद में वही विद्युतधारा स्वयं विद्युत स्टेशनों और फैक्ट्रियों में यांत्रिक गति का कारण बन जाती है।

आम तौर पर मानव समाज में कारण-संबंध को सार्वत्रिक चरित्र के रूप में स्वीकार किया जाता है परन्तु फिर भी कुछ अपवाद हो सकते हैं जिनके बारे में अभी हमें जानकारी नहीं हैं।

(xvi) अवश्यंभाविता का नियम

क्या ब्रह्माण्ड में अवश्यंभाविता का नियम विद्यमान है? विज्ञान और ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि ब्रह्माण्ड में केवल परिवर्तन और विकास का नियम या प्रत्येक वस्तु का पुराने से नये में तब्दील हो जाने का नियम ही अवश्यंवभाविता का आम (सार्वत्रिक)

नियम है। परन्तु किसी भी विज्ञान या दर्शनशास्त्र द्वारा अनुमान या पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता कि नया आखिरकार क्या शक्ल या ढंग अख्तियार करेगा। विज्ञान या दर्शनशास्त्र पक्के तौर पर नहीं कह सकते कि परिवर्तन और विकास का नियम सदा के लिए एक अपरिहार्य नियम है।

एक निश्चित हालात में विभिन्न घटनाक्रमों के बीच अन्तरक्रिया एक निश्चित घटनाक्रम के विकास के सम्बन्ध में विभिन्न सम्भावनाओं और प्राथमिकताओं को जन्म देती है। इनमें अनिवार्यता, प्रबल संभावना या प्राथमिकता, सम्भावना, संयोग और असंभावना शामिल है।

अनिवार्यता यह अभिव्यक्त करती है कि एक निश्चित हालात में क्या घटित होना तय है। परन्तु अगर निश्चित हालात में कोई कमी आ जाए तो ऐसा घटित नहीं भी हो सकता। उदाहरण के लिए एक पूर्ण ठीक हालात में हवाई जहाज को प्रज्वलित करने पर उसका उड़ना तय है, परन्तु अगर हवाई पट्टी ठीक नहीं है तो यह नहीं उड़ेगा, यानि यह नहीं उड़ सकेगा।

प्रबल संभावना यह अभिव्यक्त करती है कि एक निश्चित हालात में क्या घटना घटित होने की प्रबल गुंजाइश है। उदाहरण के लिए एक कैन्सरग्रस्त व्यक्ति की पहले मृत्यु होने की प्रबल संभावना होती है। संभावना यह अभिव्यक्त करती है एक निश्चित हालात में क्या घटना घटित हो सकती है। उदाहरण के लिए अगर आसमान में बादल छाए हों तो वर्षा हो सकती हैं।

संयोग यह अभिव्यक्त करता है एक निश्चित हालात में घटना घटित होने की बहुत कम संभावना है। उदाहरण के लिए निश्चित ताप और नमी वाली भूमि में बीज का पौधे के रूप में उगना एक अनिवार्य घटनाक्रम है, परन्तु ओलावृष्टि से पौधे का नष्ट हो जाना एक संयोग ही होता है।

असंभव यह अभिव्यक्त करता है कि एक निश्चित हालात में किसी घटना के घटित होने का आधार नहीं है और इसलिए ऐसा होना अवास्तविक है। उदाहरणतया, आज मनुष्य के लिए 500 साल की औसत उम्र पाना असंभव है, परन्तु हो सकता है यह कुछ समय बाद संभव हो जाए।

X सार संक्षेप

यह अध्ययन 5 नये बिन्दुओं को उल्लेखित करता है जो इसे अन्य अवधारणाओं से भिन्न अभिव्यक्त करता है।

प्रथम, इसकी मान्यता है कि मानव समाज में परिवर्तन और विकास दो कारकों, यानि, प्रकृति और मानव समुदाय के कारण होता है ये दोनों सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया को शुरू करने और आगे ले जाने के लिए आवश्यक सभी जरूरतों को मुहैया करते हैं। सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के चालक 2–कारक के हमारे दृष्टिकोण के विपरीत चल रही समाजशास्त्रीय मान्यताएँ एक-स्तम्भ आधारित सिद्धान्तों (मानव केन्द्रित, तकनीकी केन्द्रित, पर्यावरण केन्द्रित, प्रकृति केन्द्रित, ईश्वर केन्द्रित आदि) को सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के बुनियादी नियमों को आगे लाती हैं।

द्वितीय, यह मानना है कि सामाजिक परिवर्तन एवं विकास दो तरफा अन्तरक्रिया–यानि एक तरफ प्रकृति एवं मानव समाज के बीच तथा दूसरी तरफ समाज में मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच अन्तरक्रिया–से होता है। यह अन्तरक्रिया जो एक 2-तरफा गति–यानि की एक तरफ एकता की और दूसरी तरफ संघर्ष की गति को अभिव्यक्त करती है। एकता की गति का परिणाम विशिष्ट घटनाक्रम के जुड़ने में, जबकि संघष की गति उसके विभाजन में परिणित होती है। दोनों गतियां एक अविभाज्य सम्पूर्णता का निर्माण करती हैं। इनमें से प्रत्येक (यानि गति) एक समय में अन्य को द्वितीयक भूमिका में रखते हुए प्रथम स्थिति अख्तियार करती है और इसी प्रकार इसके उलट। यह लगातार तब तक चलती है जब तक विशिष्ट प्रक्रिया अन्य नई प्रक्रिया (जिसके अपने विशिष्ट गुण और मात्रा होती है) में रूपान्तरित नहीं हो जाती।

तृतीय, विद्यमान चल रहे दृष्टिकोण कि मानव की प्रकृति या तो जैविक है अथवा सामाजिक; के विपरीत यह जोर देता है कि मानव अथवा मानव समुदाय का चरित्र जैव-सामाजिक है। जैविक दृष्टिकोण स्व-हित को एकमात्र मानवीय प्रेरणा होने पर जोर देता है जबकि अन्य केवल सामाजिक को ही मानवीय प्रेरकता का कारण मानता है।

चतुर्थ, मानवीय विकास के सर्वोच्चता के विपरीत, यह मानता है कि मानव जाति प्रकृति के क्रमिक विकास की प्रक्रिया से पैदा हुई है, यह ब्रह्माण्ड की उच्चतम घटनाक्रम नहीं है। यहाँ तक कि हमारी पृथ्वी पर मानव जाति समाज में परिवर्तन और विकास की दो प्रेरक ताकतों में से मात्र एक (अन्य प्रकृति) ताकत है। हमारी पृथ्वी पर अन्य गैर-मानवीय घटनाक्रम के उनके अपने विकास के नियम है। मानव जाति अन्य गैर-मानवीय वस्तुओं से केवल मात्र अन्तरक्रिया करती है, किसी समय वह प्रथम और किसी अन्य समय में द्वितीय स्थिति रखती है।

पंचम, यह विश्वास करता है कि ब्रह्माण्ड में निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। प्रत्येक लगातार परिवर्तन में है। यह केवल विशिष्ट समय और स्थान में प्रासंगिक है। कुछ निश्चित प्राकृतिक नियम हो सकते हैं जो शायद अरबों वर्षों तक प्रासंगिक है और बने रहते हैं, लेकिन हमारे विचार में, यहाँ तक कि वे भी अपनी संक्रमणशील प्रकृति में है। हरेक की संक्रमणशील प्रकृति के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, यहाँ तक कि किसी विशिष्ट समय में अलग-अलग घटनाक्रमों के संक्रमण के भिन्न-भिन्न नियम (अथवा संक्रमण का सार्वत्रिक नियम, यदि कोई हो तो) हो सकते हैं, और किसी विशिष्ट समय पर वे एक भिन्न घटनाक्रम में परिवर्तित हो जाए।

यह अध्ययन अपने वर्तमान कार्य को समाप्त करते हुए हर एक और सभी को अपील करता है कि वो इसे पढ़ते वक्त इसके सारतत्त्व पर अपनी टिप्पणी करने का कष्ट करें। यह हमें मामलों के सही और गलत में भेद करने की हमारी विचारधारा को विकसित करने में मदद देगा। यह आगे हमें इस सवाल–कि सामाजिक परिवर्तन और विकास पर प्रमुख अवधारणाओं का मानवीय समाज की रचना करने में क्या प्रभाव पड़ता है–को प्रभावी ढंग से हल करने योग्य बनाएगा, जो कि सामाजिक वास्तविकता को समझने की हमारी अगली कोशिश की मुख्य विषयवस्तु बनेगी। 20-04-2002

फुटनोट :

(क) मानव केन्द्रित धारणाएं

1. निश्चयवाद- निश्चयवाद घटनाओं के एक निश्चित पद्धति से घटित होने का सिद्धान्त है जो निरपेक्ष कारण और स्थाई प्रभाव का लक्षण लिए हुए हैं और इस प्रकार यह दीर्घकालीन पूर्व-अनुमानों को ठीक ठहराने का सिद्धान्त है। (मसलन, मार्क्सवाद-लेनिनवाद का यह पूर्वानुमान करना कि पूंजीवाद का पतन अवश्यभावी है)।

2. न्यूनकरणवाद (लघुकरणवाद)- यह आम नियम से विशिष्ट नियम का अर्थ निकालने का सिद्धान्त है।

3. प्रेरणावाद- विशिष्ट घटनाओं से व्यापक नियम (या आम नियम) निकालने का सिद्धान्त-एक विशिष्ट घटना के लिए कोई चीज सत्य है तो दूसरी घटनाओं के लिए भी वही सत्य होगा-इस प्रकार से सत्य को सिद्ध करने का तरीका प्रेरणावाद है।

4. इंद्रियानुभववाद- केवल निरीक्षण और प्रयोग को मान्यता देने तथा सिद्धान्त को रद्द करने का उसूल इन्द्रियानुभवाद है।

5. मनोगतवाद- समस्त ज्ञान का स्त्रोत दिमाग है का सिद्धान्त मनोगतवाद है।

6. निषेधवाद (शून्यवाद) - वर्तमान विश्वासों को पूर्णतया रद्द करने और समस्त अस्तित्व को संदेह से देखने का सिद्धान्त।

7. आतंकवाद- आम लोगों को दबाव से भयग्रस्त कर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का सिद्धान्त।

8. व्यवहारवाद- किसी घटनाक्रम के व्यवहार का यथार्थ अध्ययन का सिद्धान्त (यानि घटनाक्रम को प्रोत्साहित या प्रेरित होने और उसके द्वारा प्रतिक्रिया करने का यथार्थ अध्ययन करने का सिद्धान्त ही व्यवहारवाद है)।

9. नैतिकतावाद- धर्म की बजाय सामाजिक तौर पर सही और गलत के भेद पर आधारित आचरण के नियमों का सिद्धान्त नैतिकतावाद है।

10. सैन्यवाद- सैन्यशक्ति पर भरोसा रखने का सिद्धान्त।

11. मार्क्सवाद- सामाजिक विकास के मुख्य पहलू पैदावारी शक्तियां और पैदावारी सम्बन्धों (यानि उत्पादन की प्रणाली या आर्थिकता) को मानने का सिद्धान्त।

12. धार्मिक कट्टरतावाद- परम्परागत रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताएं समाज को संगठित करने का एकमात्र तरीका हैं, इस दृष्टिकोण वाले सिद्धान्त को धार्मिक कट्टरतावाद कहते हैं। उदाहरणतया, हिन्दुत्व, अफगान तालीबान, इस्लामीकरण इत्यादि।

13. सांस्कृतिकतावाद- यह सिद्धान्त एक निश्चित संस्कृति को सामाजिक विकास का एकमात्र पहलू मानता है।

14. मण्डलवाद- सामाजिक न्याय देने का निर्णयकारी पहलू जाति (यानि एक दो हजार वर्ष पुरानी सामाजिक इकाई) को मानने का सिद्धान्त।

15. नस्लवाद- विशिष्ट नस्ल में अन्तर्निहित श्रेष्ठता होती है, को मानने का सिद्धान्त नस्लवाद है। यह सिद्धान्त विभिन्न नस्लों के बीच टकराव पैदा करने की ओर ले जाता है।

16. संरचनावाद- ऐसा सिद्धान्त जो भागों की बजाए सम्पूर्ण पर अधिक जोर देता है।

17. बहुलवाद- एक से अधिक विकास के निर्णयकारी असूलों को मान्यता देने का सिद्धान्त बहुलतावाद है।

18. कुलीनतंत्रवाद (अल्पतंत्रवाद)- अल्प लोगों के शासन को मान्यता देने वाला सिद्धान्त।

19. सभाव्यतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो मानता है कि हालांकि कोई निश्चित पक्का ज्ञान नहीं होता परन्तु यह ज्ञान विश्वास का ऐसा आधार तो हो सकता है जो व्यवहारिक क्रिया के लिए पर्याप्त हो।

20. रूढ़िवाद- ऐसा सिद्धान्त जो परम्परावाद को जैसे का तैसे कायम रखने या नहीं बदलने का दृष्टिकोण रखता है।

21. संविधानवाद- ऐसा सिद्धान्त जो राज्य संचालन के मूलभूत उसूलों पर जोर देता है।

22. पितृसत्तावाद- पुरुष की सर्वोच्चता को मान्यता देने वाला सिद्धान्त।

23. अवसरवाद- ऐसा सिद्धान्त जो उसूलों से बंधा हुआ न हो अवसरवाद कहलाता है।

24. उपयोगितावाद (स्वार्थपरतावाद)- ऐसा सिद्धान्त जो प्रत्येक वस्तु की जांच परख उसकी उपयोगिता के नजरिये से करता है।

25. सार्वभौमवाद (विश्ववाद)- ऐसा सिद्धान्त जो विश्वास करता है कि आखिरकार सारी मानव जाति को बचाया जा सकेगा।

26. सर्वसत्तावादी- ऐसा सिद्धान्त जो अपने आपको बिल्कुल सच होने का झूठा दावा करता है तथा भिन्न विचारों को इजाजत नहीं देता है।

27. समानतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो मनुष्य जाति की बराबरी पर जोर देता है।

28. अज्ञेयवाद- ऐसा सिद्धान्त जिसके अनुसार कुछ भी ज्ञान नहीं है या न ही ज्ञान किया जा सकता है।

29. स्वार्थवाद (अहमवाद)- ऐसा सिद्धान्त जिसके अनुसार खुद का स्वार्थ ही विकास की नींव है।

30. मानववाद- ऐसा सिद्धान्त जिसके मुताबिक सोचने का कार्य कलाप या सम्बन्ध मानवीय हितों को ध्यान में रखकर तय किया जाता है।

31. तर्कशीलतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो सामाजिक विकास का अंतिम कारण तर्क को मानता है।

32. द्वन्द्वात्मकतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो अन्तरविरोध को विकास का आम नियम समझता है तथा विभिन्न सामाजिक ताकतों के बीच विवाद या वर्ग संघर्ष को इतिहास का निश्चयकारी पहलू समझता है।

33. उदारतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो स्वतंत्र विचारों यानि विचारों की आजादी में विश्वास रखता है।

34. फलवाद- ऐसा सिद्धान्त जो केवल अपने हितों की व्यावहारिक उपयोगिता पर जोर देता है।

35. अनुकूलतावाद (सकारात्मक)-ऐसा सिद्धान्त जो सकारात्मक तथ्यों और निरीक्षण लायक घटनाक्रमों को मान्यता देता है तथा कारण या अन्तिम उद्भव की सभी जांच पड़तालों को रद्द करता है।

36. ऐच्छिकवाद (संकल्पवाद)- ऐसा सिद्धान्त जो यह मानता है कि मानवीय व्यवहार का निर्धारण स्वतंत्र इच्छा पर निर्भर है, इसलिए उनका पूर्वानुमान लगाना मुश्किल है।

37. नियतिवाद (प्रारब्धवाद)- ऐसा सिद्धान्त जो स्वतंत्र इच्छा को नकारता है और इस धारणा पर चलता कि सब कार्य पूर्ववर्ती (पहले की प्राथमिक) कारणों से तय होते हैं।

38. संवेदनावाद-ऐसा सिद्धान्त जो संवेदना को ज्ञान का एकमात्र स्त्रोत समझता है।

39. संशोधनवाद- ऐसा सिद्धान्त जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त या किसी भी कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर प्रभुत्वकारी लाईन के सूत्र को संशोधित करता है।

40. गणतंत्रवाद- ऐसा सिद्धान्त जो गणतंत्रीय ढांचे की सरकार की वकालात करता है।

41. नाजीवाद- नाजी पार्टी और खासकर इसके तानाशाह द्वारा प्रत्येक को नाजीवादी सैनिक ताबेदारी के नीचे लाने का सिद्धान्त को नाजीवाद कहते हैं।

42. ज्ञानसापेक्षवाद (संबंधवाद) - ऐसा सिद्धान्त जो केवल सम्बन्धों को ही ज्ञान मानता है।

43. सापेक्षतावाद- ऐसा सिद्धान्त (जिसे अलबर्ट आइन्सटाईन ने प्रस्तुत किया था) जो अन्तरिक्ष, समय, गति, त्वरण एवं गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्धों को दर्शाता है तथा प्रदर्शित करता है कि सभी तरह की गति सापेक्ष है।

44. तत्ववाद- यह सिद्धान्त घटनाक्रमों में अन्तनिर्हित सारगर्भित वास्तविकताओं को मान्यता देता है।

45. अनुमानवाद (न्यायवाक्यवाद)- जिसमें अगमनात्मक (प्रेरक) से निगमनात्मक तर्क (Inductive to deductive) के दो प्रस्तावों से परिणाम निकालने के सिद्धान्त को अनुमानवाद कहते है। उदाहरणतया, कालीदास एक मनुष्य है इसलिए कालीदास नाशवान है।

46. श्रमिक संघवाद- ऐसा सिद्धान्त जो पैदावार के साधनों तथा वितरण पर नियंत्रणकारी अधिकार श्रमिक संघों को हस्तान्तरित करने का विचार रखता है।

47. आधुनिकवाद- ऐसा सिद्धान्त जो आधुनिक पश्चिमी विचारों की रोशनी में घटना की जाँच परख करता है।

48. आभासवाद (नाममात्रवाद) - ऐसा सिद्धान्त जो समझता है कि सार्वभौम (या सर्वव्यापक) तथा अमूर्त (या निरपेक्ष) केवल नाम ही है तथा इनके अनुरूप कोई वास्तविकता नहीं है।

49. प्राच्यवाद (पूर्वदेशीयतावाद)- ऐसा सिद्धान्त जिनमें प्राच्य विद्या (यानि पूर्व की सभ्यता) वाली सभ्यता पर जोर दिया जाता है।

50. पाश्चात्यावाद- ऐसा सिद्धान्त जो पश्चिमी सभ्यता पर जोर देता है।

51. तत्वविज्ञान- ऐसा सिद्धान जो चीजों के सार तत्त्व से सम्बन्ध रखता है।

52. प्लेटोवाद- ऐसा सिद्धान्त जो प्लेटो की दार्शनीक प्रणाली को मानता है। जिसकी केन्द्रीय अवधारणा है कि दुनिया के अस्तित्व में अकेले विचार ही वास्तविक और सर्वोपरि है।

53. समतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो मनुष्य जाति की समानता की वकालत करता है।

54. अर्थवाद- एक ऐसा सिद्धान्त (जो एक तरह का रूढ़िवाद है) जो परिवर्तन और विकास को आर्थिकता के रूप में पेश करता है।

55. विकासवाद- पूर्ववर्ती प्रजातियों से विकास पाकर पेड़ और पौधों की प्रजातियों का उद्भव होने के सिद्धान्त को विकासवाद कहते है।

56. परम्परावाद- यह सिद्धान्त परम्पराओं पर निर्भर रहने को मान्यता देता है।

57. अनुभवावाद या प्रयोगवाद- यह सिद्धान्त कहता है कि सारा ज्ञान ही अनुभव से ही प्राप्त होता है।

58. अतिवाद- यह सिद्धान्त चरमपंथी विचारों एवं तरीकों से अपना उद्देश्य हासिल करने की पैरवी करता है।

59. अस्तित्ववाद- यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि यथार्थ जो अस्तित्व में है वह मनुष्य द्वारा स्वतंत्र और उत्तरदायी रूप से केवल जीया जा सकता है, परन्तु वह सोच का कभी उद्देश्य नहीं बन सकता है। (यह बुद्धिवाद विरोधी सिद्धान्त है)।

60. प्रदर्शनवाद- यह सिद्धान्त दिखावटी व्यवहार पर खड़ा है।

61. हेतुवाद (उद्देश्यवाद)- यह अन्तिम कारणों का सिद्धान्त है जो यह विश्वास करता है कि विकास उद्देश्य के कारण होता है और यह उद्देश्य की सेवा करके प्राप्त किया जा सकता है।

62. व्यवस्थावाद- यह वनस्पति एवं पशु जगत का वर्गीकरण करके वैज्ञानिक अध्ययन करने का सिद्धान्त है।

63. फासीवाद- यह फासीस्टों के अधिनायकवादी और षड़यन्त्रकारी आचरण, तरीको और संगठन को मान्यता देने वाला सिद्धान्त है।

64. साम्राज्यवाद- यह सिद्धान्त उपनिवेशवाद या साम्राज्य निर्माण के फैलाव की वकालत करता है।

65. बुद्धिवाद- इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान पूर्णतया या मुख्यतया शुद्ध तर्क से हासिल होता है।

66. वामवाद- मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विचारों को स्थापित करने वाला सिद्धान्त वामवाद है।

67. सौन्दर्यवाद- यह सिद्धान्त कला के क्षेत्र में केवल अच्छी पसन्द या सौन्दर्य के नियमों की प्रशंसा करता है।

68. अतियथार्थवाद- यह कला और साहित्य में चल रहा आंदोलन है जो मस्तिष्क के अवचेतन (सुषुप्त) गतिविधियों को अभिव्यक्त करता है।

69. प्रतीकवाद-कला के क्षेत्र में प्रतीकों के उपयोग से भावनाएं उत्पन्न करने का सिद्धान्त प्रतीकवाद है।

70. औपचारिकतावाद- यह सिद्धान्त औपचारिकताओं की पालना पर जोर देता है।

71. परिकल्पनावाद- परिकल्पना को तर्क का आधार बताना या उसे किसी प्रक्रिया की वास्तविकता की खोज का प्रारम्भिक बिन्दु बनाना ही परिकल्पनावाद है।

72. परमशक्तिवाद (निरपेक्षवाद)- यह सिद्धान्त सम्पूर्ण नियंत्रण व अनियंत्रित शक्ति को मान्यता देता है।

73. अलगाववाद- ऐसा सिद्धान्त जो अलगाव का पक्ष लेता है।

74. स्थानीयवाद- यह विशिष्ट स्थान से चिपके रहने का सिद्धान्त है।

75. नारीवाद- यह सिद्धान्त महिला अधिकारों की पैरवी करता है।

76. शिशुवाद (बालरूपतावाद)- मानसिक तथा भौतिक तौर पर अविकसित स्थिति वाला सिद्धान्त बालरूपतावाद है।

77. व्यक्तिवाद- स्वकेन्द्रित अनुभूति या आचरण को घोषित करने वाला सिद्धान्त व्यक्तिवाद है।

78. सामन्तवाद- एक भू-मालिक (यानि अधिनायकवादीसत्ता) की अधीनता (या भूदासता) के विश्वास या अचारण को प्रतिपादित करने वाला सिद्धान्त सामन्तवाद कहलाता है।

79. मूलनिवासवाद (सहजतावाद)- यह सिद्धान्त सहज विचारों का सिद्धान्त है।

80. घुमन्तुवाद- जगह-जगह घूमते रहने की व्यवस्था का सिद्धान्त घुमन्तुवाद कहलाता है।

81. भिन्न मतावलम्बितावद (गैर अनुरूपतावाद)- यह सिद्धान्त किसी भी विचार या कार्यशैली के अनुरूप नहीं होने का सिद्धान्त है।

82. अनीश्रवाद- यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड में ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व को नकारने का सिद्धान्त है।

83. ज्ञान मिमांसा- ज्ञान का सिद्धान्त है।

84. व्युत्पत्ति विज्ञान- शब्दों की व्युपत्ति का सिद्धान्त।

85. अधिभौतिकवाद- यह निराकारी (अमूर्त) पद्धति से अस्तित्व की खोजबीन करने का सिद्धान्त है।

86. तटस्थतावाद- किसी प्रक्रिया के सही और गलत में कोई भेद नहीं करने का सिद्धान्त।

87. संकीर्णतावाद- वस्तुओं के अध्ययन में संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाने का सिद्धान्त है।

88. तर्कसंगत मानवतावाद- यह सिद्धान्त मौजूदा समय में उभर रही भूमण्डलीय मानव समाज का सिद्धान्त है जो वर्तमान से पहले के बंटे हुए असंगठित और बिखरे सामाजिक स्वरूपों में व्यवहारिक नहीं था।

89. यथार्थवाद- एक ऐसा सिद्धान्त जो चीजों को उसी रूप में स्वीकारता है जैसी वास्तव में है।

(ख) तकनीकी–केन्द्रित धारणाएँ

1. प्रौद्योगिकतंत्रवाद- इस नजरिए के मुताबिक सामाजिक बदलाव की ताकत केवल तकनीकी में है।

2. यांत्रिकवाद- यह समाज की कार्यप्रणाली को एक मशीन के कार्य उसके ढांचे और भागों के तरीके से देखता है।

3. स्वत: क्रियावाद- स्वत: क्रियावाद सजीव की गति और क्रियाओं को मशीनी गति के रूप में देखता है जिसमें इच्छा शक्ति की भूमिका को नकार दिया जाता है।

(ग) पर्यावरण–केन्द्रित धारणाएँ

1. पर्यावरणवाद- पर्यावरणवाद सामाजिक विकास में पर्यावरण को फैसलाकुन पहलू समझता हैं।

2. भू-राजनीति- भू राजनीति किसी देश की राजनीतिक जांच का आधार उसकी भौगोलिक स्थिति को बनाती है।

3. जन्तुवाद-जन्तुवाद मनुष्य का अध्ययन मात्र पशु के तौर पर करता है।

(घ) प्रकृति–केन्द्रित धारणाएँ

1. प्रकृतिवाद- प्रकृतिवाद समझता है कि सामाजिक परिवर्तन प्राकृतिक नियमों से होते हैं।

2. पदार्थवाद या वस्तुवाद- इसकी मान्यता है कि गैर-अहम (यानि वस्तुगत) का ज्ञान अहम (यानि मनोगत अथवा स्वयं) की तुलना में प्राथमिक और महत्वपूर्ण है।

3. गतिवाद- गतिवाद के अनुसार ब्रह्माण्ड के घटनाक्रम को कुछ सर्वव्यापी (या अन्तर्निहित) शक्ति या ऊर्जा से गति मिलती है।

4. सार्वभौमिकतावाद (या ब्रह्माण्डवाद)- यह इस बात पर जोर देता है कि ब्रह्माण्ड का अस्तित्व स्वयं ब्रह्माण्ड से है और यह सम्पूर्णता में स्वत: क्रियाशील है।

5. प्रत्यक्षज्ञानवाद (घटनाक्रमवाद)- प्रत्यक्षज्ञानवाद घोषणा करता है कि केवल घटनाक्रम ही ज्ञान की विषय वस्तु है।

6. व्यापकतावाद (आमवाद) - व्यापकतावाद समझता है कि एक सार्वभौम नियम प्रत्येक घटनाक्रम में क्रियाशील है जिसका कोई विशिष्ट नियम नहीं है।

7. समरूपतावाद- समरूपतावाद उद्घोषणा करता है कि प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न स्थान एवं भिन्न-भिन्न समय में समान रहती है।

(ड़) ईश्वर-केन्द्रित धारणाएँ

1. अलौकिकतावाद- अलौकिकतावाद विश्वास करता है कि अलौकिक शक्ति ही घटनाओं का स्वरूप तय करती है।

2. भाग्यवाद- भाग्यवाद विश्वास करता है कि सभी घटनाएं पूर्व-निश्चित होती है और मनुष्य अपना भाग्य बदलने में असमर्थ होता है।

3. अनुभवातीतवाद- अनुभवातीतवाद विश्वास करता है कि ज्ञान सोच और व्यवहार की बजाए अन्तर्बोध पर आधारित होता है।

4. प्रेतात्मावाद- प्रेतात्मावाद विश्वास करता है कि मृत आत्माएं सजीवों से सम्पर्क रख सकती हैं।

5. जड़पूजावाद- जड़पूजावाद विश्वास करता है कि जड़ पदार्थ की पूजा में चमत्कारिक शक्ति होती है।

6. रहस्यवाद- रहस्यवाद सच्चाई के आध्यात्मिक बोध में विश्वास करता है जो मानवीय समझ से परे है।

7. पौराणिक कथावर्णनवाद- पौराणिक कथावर्णनवाद घटनाक्रम की व्याख्या (अलौकिक चरित्र पर आधारित कहानियाँ कहना) से करता है।

8. सर्वज्ञतावाद- सर्वज्ञतावाद विश्वास करता है कि इस संसार में सब कुछ जानने वाली शक्ति मौजूद है।

9. सर्वेश्वरवाद- सर्वेश्वरवाद विश्वास करता है कि प्रत्येक वस्तु में ईश्वर मौजूद है।

10. एकेश्वरवाद- एकेश्वरवाद विश्वास करता है कि त्रियेक परमेश्वर (तीन का समूह) की बजाय ईश्वर एक है।

***

दुनिया की गरीबी और असमानता पर विश्व आर्थिक मंच, संयुक्त राष्ट्र-विश्व शिखर सम्मेलन और विश्व सामाजिक मंच-2002 की विषय वस्तु और प्रकृति-मानव केन्द्रित वैकल्पिक मॉडल

I मसला

मानव जीवन जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा है, यह निरन्तर खतरनाक संकेत दे रहा है। संक्षेप में यह सन्देश दे रहा है कि मानव समाज एक अपूर्व रफ्तार से असमानता और कंगाली व गरीबी की तरफ बढ़ रहा है। संक्षेप में इस सीधी-सादी सच्चाई पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि सन् 1820 में सबसे अधिक धनी देश और निर्धनतम देश के बीच अन्तर 3 और 1 का था, जो सन् 1913 में 11 और 1 हो गया, 1950 में 35 और 1 हुआ, 1973 में 44 और 1 तक बढ़ा तथा 1992 में 72 और 1 हो गया। इसने सन् 1997 में मोटे तौर पर 74 और 1 का मर्मभेदी आकार ग्रहण कर लिया है। आज दुनिया में अधिकतम धनवान और निर्धनतम व्यक्ति के बीच विद्यमान विषमता धरती हिला देनी वाली है। एक तरफ जहाँ हमारी दुनिया के सबसे अधिक धनवान अमेरिकी बिल गेट्स कुल 60 अरब डॉलर सम्पत्ति का मालिक है और भारत का अजीम प्रेमजी 6 अरब डॉलर के संसाधन रखता है, वहीं दूसरी ओर एक भूखा इन्सान जिसकी जेब खाली है और रोटी के एक टुकड़े को प्राप्त करने वाले हर तरह के स्त्रोत से वंचित है और किसी विकल्प के बगैर भीख मांगता है, वह कुछ समय के लिए भिक्षा से जीवन चलाता है और उसके बाद अगली दुनिया के लिए प्रस्थान कर जाता है। ऐसी मौतों पर चिकित्सा विशेषज्ञ इन्हें पेट की खराबी या अन्य किसी शारीरिक बीमारी का परिणाम घोषित कर देते हैं।

उपुर्यक्त दु:खदायी तथ्यों से हमारे शासक पूर्णतया वाकिफ हैं और कभी-कभी इस पर निरुद्देश्य प्रतिक्रिया भी करते हैं। दुनिया में गरीबी के चुनौती भरे सवाल को हल करने का बड़ा प्रयास 1995 के कोपेनहेगन सामाजिक शीर्ष सम्मेलन में किया गया, जिसमें बहुत से देशों के राष्ट्राध्यक्षों (प्रधानमंत्रियों, राष्ट्रपतियों) ने भाग लिया। परन्तु पिछले 6 वर्षों के दौरान उनके नुस्खों ने आशा के ठीक उलट परिणाम दिये हैं।

इस वर्ष मानव समुदाय के कारपोरेट प्रबन्धकों ने गरीबी-उन्मूलन पर विचार-विमर्श को पुन: आरम्भ किया है। इस साल के फरवरी और मार्च के महीनों के प्रथम सप्ताहों में दो विश्व सम्मेलन आयोजित हुए है, जिसमें मानव विकास और विश्व गरीबी का सवाल परिदृश्य पर छाया रहा है। इनमें प्रथम विश्व आर्थिक मंच (कारपोरेट विश्व के मालिकों द्वारा नियंत्रित) की न्यूर्याक मीटिंग 1 से 5 फरवरी 2002 को आयोजित की गई। दूसरी मीटिंग संयुक्त राष्ट्र शिखर सम्मेलन-2002 मॉण्टेरे (मैक्सिको) में 21 से 23 मार्च, 2002 को आयोजित हुई। विश्व आर्थिक मंच की न्यूयार्क मीटिंग के समानान्तर ही 1 से 4

फरवरी, 2002 को पोर्टो अलेग्रे (ब्राजील) में विश्व सामाजिक मंच (एक हालिया जन्मा सामाजिक संगठन, जिसका पूर्ण विवरण बाद में सामने आएगा) की वार्षिक मीटिंग सम्पन्न हुई।

उपर्युक्त 3 अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में से हमने सोचा है कि पहले दो (यानि विश्व आर्थिक मंच के न्यूयार्क सम्मेलन और संयुक्त राष्ट्र शिखर सम्मेलन-2002) पर ध्यान दिया जाए, जिनका एक जैसा कार्यक्रम (एजेण्डा) है और एक जैसा ही हल है। इसके बाद विश्व सामाजिक मंच की वार्षिक मीटिंग पर विचार करेंगे। अन्त में हम विचाराधीन समस्या के सम्बन्ध में हमारी अपनी अवधारणा पेश करेंगे।

(अ) विश्व आर्थिक मंच का सम्मेलन-2002

न्यूयार्क में 1 से 5 फरवरी, 2002 को आयोजित विश्व आर्थिक मंच की 32 वीं वार्षिक मीटिंग में आतंकवाद और गरीबी के मसले पर इसके मुख्य कार्यक्रम (एजेण्डा) के तौर पर ध्यान केन्द्रित किया गया। कई भागीदारों ने दावा किया कि कार्यक्रम की सूची के दोनों मसले अन्तरसम्बन्धित हैं और इन्हें केवल लोगों का सशक्तिकरण करके ही निपटा जा सकता है।

विश्व बैंक के अध्यक्ष जेम्स वोल्फेन्सन से लेकर 'कठोर राजनीतिज्ञों' के भाषणों से मीटिंग की शुरूआत हुई, जो निजी हित के व्यवहार पर चलते हुए महसूस करते हैं कि गरीब देशों को वित्तीय सहायता देना भविष्य में आतंकवाद के खिलाफ गारण्टी करना है।

आगे, अमेरिका के स्टेट सेक्रेटरी कोलिन पावेल ने अड़ंगा लगाते हुए माना कि आतंकवाद; गरीबी, हताशा और घोर निराशा के हालात में पनपता है। अमेरिका ने तय कर रखा है कि 'स्वतंत्र महिलाओं और पुरुषों को चुनौती देने वाले' आतंकवाद के खिलाफ अफगानिस्तान के आगे किसी भी देश तक युद्ध लड़ा जाएगा। परन्तु, ठीक उसी समय गरीबी को पराजित करने की आवश्यकता पर जोर देता है और कहता है कि हमें गरीबी का पीछा करना होगा, हमें हताशा को समाप्त करना होगा, हमें निराशाजनक हालात से निपटना होगा, हमें सैनिक और कानूनी साधनों तथा कानून को लागू करके एवं जासूसी तरीके अपनाकर व आतंकवादी संगठनों के वित्तीय ढाँचे को तहस-नहस करने के साथ-साथ हमें लोगों के दिलों में भी पुन: आशा का संचार करना होगा। हमें उन लोगों को, जो आतंकवाद की दिशा में जा सकते हैं, दिखाना होगा कि इससे बहुत अच्छा रास्ता मौजूद हैं।

विश्व व्यापार संगठन के मुखिया माइक मूरे ने कहा कि यदि धनवाद देश अपने कृषि बाजारों को गरीब देशों से आयात के लिए नहीं खोलते तो दोहा दौर नाकामयाब हो जाएगा। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रबन्ध निदेशक हॉरिट कोहलर ने कहा, ''हमें विकासशील देशों को सहूलियतें प्रदान करने पर ध्यान देने की आवश्यकता है और इसमें शामिल है उन अनुदानों को क्रमबद्ध तरीके से कम करना, जो इस गरीब दुनिया के कई क्षेत्रों को पूर्णतया विकृत और बर्बाद कर रहे हैं। अगर हम इस बात पर वास्तव में गम्भीर है कि वैश्वीकरण सभी के लिए कारगर हो तो विकसित देशों को यह मानना होगा कि वे पहले की तरह व्यापार नहीं चला सकते हैं।'' शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्च आयुक्त मैरी रोबिन्सन ने कहा, ''हमें अधिक नैतिक वैश्वीकरण की तरफ बढ़ने की जरूरत है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नागरिक डेमोक्रेसी का रास्ता खोजने की जरूरत है।''

सम्पूर्ण सत्र के दौरान, धनवान देशों की उनकी संरक्षणवादी नीतियों और दोगेले नारों (विकासशील देशों से अनुदान बन्द करने की माँग करना जबकि अपने कृषि क्षेत्र में स्वयं विकसित राष्ट्र भारी अनुदान दे रहे हैं) और कॉरपोरेट लालच के खिलाफ हजारों प्रदर्शनकारियों ने गलियों में नारे लगाए।

बहुत से नेताओं ने पश्चिम-एशिया के संकट का हल खोजने की आवश्यकता पर जोर दिया। इस बात की माँग की गई कि धर्म और आतंकवाद के बीच भेद किया जाए। मलेशिया के प्रधानमंत्री महाथिर मोहम्मद ने कहा, अगर आज इस्लाम को एक पिछड़ा हिंसक और अतर्कसंगत लोगों का धर्म समझा जाता है तो यह इस्लाम की वजह से नहीं, बल्कि मुख्य तौर पर इसका कारण औपनिवेशिक भूतकाल में है। यहाँ बुश प्रशासन की विदेश नीति की दिशा पर जबर्दस्त चिन्ता थी। अमेरिाक के अगले दौर में आंतकवाद-विरोधी युद्ध के सरकारी ऐलान पर गम्भीर चिन्ता जताई गई जिसमें इराक जैसे विशिष्ट देशों को निशाना बनाने का इरादा है।

आखिरकार, संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने मीटिंग में सीधी चेतावनी देते हुए कहा कि उनकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था गरीबों की अनदेखी अपने ही जोखिम पर करेगी और कर सकती है। हममें से कोई भी इस छोटी-सी नाव पर सह-यात्री के हालातों की अवहेलना नहीं कर सकता। अगर वे बीमार हैं तो हम सबकों संक्रमण का जोखिम उठाना पड़ेगा, और अगर वे क्रोधित होते हैं तो हम सबको आसानी से नुकसान होगा। उन्होंने अन्त में कहा कि इस दुनिया में धन और सत्ता के क्षेत्र में अत्यधिक असमानता है और बहुत से लोगों को अत्यन्त गरीबी और निचले दर्जे का जीवन जीना पड़ रहा है।

मीटिंग का कुछ सिफारिशों के साथ समापन हुआ जिसमें उदारीकण और निजीकरण के माध्यम से विकासशील देशों की आर्थिकता की पुनरसंरचना को सुनिश्चित करने के लिए विकसित देशों से कहा गया, विकासशील देशों को संयुक्त राष्ट्र समर्पित मात्रा में अधिकारिक सहायता प्रदान करने और इन देशों में भ्रष्टाचार व अकुशलता की कमजोरियों को समाप्त करने का आह्वान किया। सम्मेलन में इस विशिष्ट सवाल को इंगित नहीं किया गया कि विकासशील देशों में असमानता और गरीबी क्यों बढ़ रही है। क्या इसका कारण विकसित देशों की कुशलता के क्षेत्र में बहुत ऊँची कारगुजारी के उलट विकासशील देशों की सरकारों की अकुशल कार्यप्रणाली में निहित है या अन्य कोई कारण है।

(ब) विकास पर संयुक्त राष्ट्र शिखर सम्मेलन-2002

1. विकास पर यू एन शिखर सम्मेलन-2002 मैक्सिकों के मॉण्टेरे में आयोजित किया गया था। यह शिखर सम्मेलन यू एन मिलेनियम शिखर सम्मेलन-2002 द्वारा तय किये गये विकास कार्यक्रम (जिसका उद्देश्य 2015तक विश्व गरीबी को हटाना है) के लिए वित्तीय संसाधनों को जुटाने का आह्वान करना था। विकसित देशों के नेताओं, खास करके यू एस और यूरोपीय समुदाय ने अपनी सहायता राशि सार्थक हद तक बढ़ाने का वायदा किया, हालांकि यह राशि कई अन्य देशों द्वारा की गई आशा से काफी कम है। अमेरिका के राष्ट्रपति जी.डब्ल्यू. बुश ने अगले तीन सालों में 10 बिलियन डॉलर अतिरिक्त राशि देने का वायदा किया, जबकि यूरोपीय समुदाय ने कहा कि वह अगले कई सालों में सहायता राशि क्रमश: बढ़ाता चला जाएगा, जो 2006 तक 7 बिलियन डॉलर (एक वर्ष में) तब पहुँच जाएगी।

अमेरिका अब विकास पर 10 बिलियन डालर प्रतिवर्ष देता है और यूरोपीय समुदाय लगभग 25 बिलियन डॉलर देता है। जापान, जो विदेशी सहायता पर प्रतिवर्ष 13 बिलियन डालर खर्च करता है, आज दुनिया का सबसे बड़ा दानदाता देश है, जिसकी बिगड़ती आर्थिकता ने उसे इस समय और अधिक सहायता देने से रोका है। जबकि यह सहायता संयुक्त राष्ट्र (जिसके मुताबिक 50 बिलियन डालर प्रतिवर्ष अतिरिक्त राशि होनी चाहिए थी) द्वारा कुल मिलाकर दुगुनी करने के आह्वान से काफी कम है। धनवान और गरीब दोनों तरह के देशों ने इसे एक अच्छी शुरूआत माना। हालांकि, अन्त में, विकसित देशों ने इस विचार को आगे बढ़ाया कि इस सहायता को डेमोक्रेसी की तरफ ठोस उन्नति, स्वतंत्र बाजार को बढ़ावा देने, व्यापार को वृद्धि का इंजन बनाने और संसाधनों के कुशल उपयोग से जोड़ा जाए–इस प्रकार विकास राशि को बंधन रहित सहायता की बजाए बन्धनों में जकड़ दिया।

विकासशील देशों के नेताओं ने अपने विकसित प्रतिपक्ष को चेतावनी दी कि अगर वे आतंकवाद से मुक्त संसार चाहते हैं तो उन्हें इसकी कीमत चुकानी होगी। गरीबी और हिंसा में सीधा सम्बन्ध जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि 11 सितम्बर के बाद की दुनिया में गरीबों के लिए पहले से अधिक सहायता बढ़ाने को तात्कालिक जरूरत आ पड़ी है। उन्होंने चेतावनी दी कि विश्व की सुरक्षा अमीरों और गरीबों के बीच खाई को कम करने पर निर्भर है और अत्यन्त गरीबों को राहत दी जाए। उन्होंने जोर दिया कि 11 सितम्बर के परिणामस्वरूप विकास, शान्ति और सुरक्षा अभिन्न बन चुके हैं, जिसमें दुनिया के निर्धनतम इलाके 'निराशा और हिंसा की भूमि बन चुके हैं'। उनके अनुसार विकास के लिए बोलना आतंकवाद के खिलाफ निर्णायक लड़ाई के लिए भी बोलना बनता है।

यू.एन. शिखर सम्मेलन-2002 द्वारा विकासशील देशों को वित्तीय सहायता बढ़ाने का वायदा विश्व आर्थिक मंच की न्यूर्याक मीटिंग द्वारा उठाई गई मांग के मुताबिक था।

(स) विश्व सामाजिक मंच का सम्मेलन-2002

विश्व सामाजिक मंच की द्वितीय मीटिंग 1 से 4 फरवरी, 2002 को पोर्टो अलेग्रे (ब्राजील) में आयोजित हुई। न्यूयार्क शिखर सम्मेलन के 3,500 प्रतिनिधियों की तुलना में इस सम्मेलन में 123 देशों के 5000 संगठनों के 15,000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। विश्व सामाजिक मंच का जन्म जनवरी 2001 में पोर्टो अलेग्रे में हुआ था, जहाँ 5,000 प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया था, इस संगठन का विशिष्ठ उद्देश्य विश्व आर्थिक मंच (जिसकी उस समय दावोस में 31वीं मीटिंग हो रही थी) का विकल्प पेश करना था। विश्व सामाजिक मंच की दूसरी मिटिंग का कार्यक्रम उनके आदर्श वाक्य-''एक अच्छी दुनिया सम्भव है'' के रूप में लगा था। सम्मेलन से आशा की जा रही थी कि एक अच्छी दुनिया को शक्ल दी जाए, इस पर कोई सुसंगत विकल्प तैयार किया जाए। परन्तु, स्पष्टतया, इस विचार-विमर्श से कोई ठोस विकल्प वाला दृष्टिकोण और कार्य योजना उभर नहीं पाए।

विश्व सामाजिक मंच के शिखर सम्मेलन में कई विश्व स्तर के गुणवान लोगों ने भाग लिया। विभिन्न विषयों पर 28 कान्फ्रेसों, 100 सेमीनारों और 700 वर्कशॉपों (जिनमें से कई देर रात तक चलती रही) ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसन्द के विषय पर विकल्प

खोजने का मौका दिया। चार मोटे सार तत्त्वों वाले शीर्षकों के तहत विचार-विमर्श किया गया; वे विषय थे; आर्थिक उत्पादन, सम्पत्ति पर पहुँच, सभ्य समाज और जन कार्यक्षेत्र और राजनीति शक्ति और नैतिकता। कुछ कान्फ्रेंसों के आकर्षक शीर्षक 'भेदभाव रोकना', 'वैश्वीकरण और सैनिककरण' तथा 'भोजन सुरक्षा' जैसे थे। यद्यपि कान्फ्रेंसों और सेमीनारों ने सैंकड़ों लोगों को आकर्षिक किया और इससे भी काफी अधिक भागीदारों ने वर्कशॉपों में हिस्सा लिया।

सम्मेलन में कुछ ऐसे वर्कशॉप हुए, जिन्होंने विश्व के लिए विशिष्ट विकल्प पेश किए या विकल्पों वाले रास्तों पर विचार-विमर्श किया। कुछ ऐसे सेशन भी हुए, जिनमें विश्व मुद्रा बाजार में टोबिन टैक्स लगाकर पूँजी बहाव को अधिक स्थिरता प्रदान करने पर काफी विचार-विमर्श हुआ। यहाँ एक ऐसी वर्कशॉप हुई जिसमें सारे संसार से आए गैर-सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) ने एक नया वैश्विक प्रचार शुरू किया है जिसके अनुसार एक ऐसी विश्व सन्धि हो जो आनुवांशिक संसाधनों की सुरक्षा करने, उसे बनाए रखने के लिए वैश्विक बपौती के भाग के रूप में 'वैश्विक सार्वजनिक' फैसला करें। एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के अन्य जाने-माने अर्थशास्त्रियों ने चल रही परम्परावादी आर्थिकता को चुनौती देने वाली वैश्विक आर्थिकता का वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य खोजने का आह्वान किया। प्रतिरोध के माध्यम के तौर पर साम्बा जैसे गूढ़ विषयों को छोड़ नहीं रहे थे।

पोटो अलेग्रे शिखर सम्मेलन में आखिर सब-कुछ क्या था? मंच पर सरल नुस्खों को नकार दिया, या जैसे कि एक ब्राजील के अखबार ने कहा, ''यहाँ बहुत-सी चीजें घटित हुईं, जिसमें से कोई भी एक नेतृत्वकारी नहीं है।'' विश्व सामाजिक मंच के बारे में सबसे अच्छा वर्णन है कि यह आंशिक मीटिंग थी, आंशिक जमावाड़ा था और अब अपने आप में एक आंशिक संस्था है। यह एक अन्तरराष्ट्रीय मीटिंग थी, जहाँ विश्व के कोने-कोने से राजनीतिक और गैर-सरकारी संगठनों के कार्यकर्त्ता, बुद्धिजीवी और दिलचस्पी लेने वाले नागरिकों ने विश्व को भिन्न तरह से देखने और भिन्न रचना करने के वैकल्पिक रास्तों पर विचार-विमर्श किया। यह एक ऐसा जमावाड़ा था कि इसमें वैश्वीकरण के बारे में दसियों हजार मिलते-जुलते (परन्तु एक जैसे नहीं) विचारों वाले लोगों को एक साथ इकट्ठा किया और एक-दूसरे को प्रदर्शित किया कि हम सब अलगाव में कार्य नहीं कर रहे हैं और विश्व सामाजिक मंच के साथ लोगों की दिलचस्पी असाधारण रूप से बढ़ी है, यह आभास दे रहा है कि मंच एक ऐसा वैश्विक संस्था बन रहा है जहाँ भिन्न-भिन्न मतों और विकल्पों के बीच खुला आदान-प्रदान होता रहेगा। जहाँ तक सरकारी सम्मेलनों का संबंध है, उनकी मीटिंगों में 'वैश्वीकरण विरोधी' प्रदर्शनों का निकट का संबंध बन गया है। यह विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.) की मार्च-1999 में सिएटल मीटिंग के दौरान, पराग में विश्व बैक (W.B.) अन्तराष्ट्रीय मुदद्र कोष (I.M.F.) के खिलाफ सन् 2000 के प्रदर्शन और 2001 में जिनेवा (जी-7, शिखर सम्मेलन के वक्त) प्रदर्शनों से जाहिर है। दूसरी तरफ विश्व सामाजिक मंच ने स्वतंत्र नजरिये और अपने ही विकल्पों के साथ अलग स्थान बनाया है।

मंच की असंगठित प्रकृति का अर्थ है कि इसमें यह सम्भव था कि कोई इस मौके को अपने उद्देश्य के लिए उपयोग कर सकता था। विश्व सामाजिक मंच में बहुत-सी आवाजें थीं, जिसका अर्थ है कि उसमें वक्ती तनाव भी थे। अराजकतावादियों की तरफ से आलोचना

की कोई कमी नहीं थी। और यहाँ तक कि कुछ आमूल परिवर्तनवादी (Radicals) आलोचना कर रहे थे कि डब्ल्यू.एस.एफ. एक 'सुधारवादी' मीटिंग कर रहा है जिसमें मूल रूप से व्यवस्था के सवाल को उठाया ही नहीं गया है।

II. तीन विश्व शिखर सम्मेलनों का निहितार्थ

विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय एजेन्सियों द्वारा लम्बे समय से उबल रही सामाजिक समस्याएँ (यानि असमानता और गरीबी) जो राष्ट्र राज्य व्यवस्था के उद्भव के समय से सता रही है, इनको छाँटने के श्रृंखलाबद्ध प्रयासों में से एक भाग का उपर्युक्त तीन विश्व सम्मेलन प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु उपर्युक्त तीनों पहलकदमियों में से किसी ने भी समस्या, उसकी प्रकृति, उसका कारण और निवारण का सामंजस्यपूर्ण विश्लेषण नहीं किया है।

पहले दो सम्मेलन (यानि, विश्व आर्थिक मंच और यू.एन. विश्व शिखर सम्मेलन) कारपोरेट पूँजीवाद के सिद्धान्त और व्यवहार का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये विकासशील देशों को अतिरिक्त धन, उनके पुराने कर्जों से छूट दिलाकर तथा उनके विकास सहायता के वर्तमान स्तर को बढ़ाकर गरीबी हटाने की समस्या की रणनीति पर जोर देते हैं। विकासशील देशों के लिए इसी विकास की रणनीति पर विश्व बैंक व अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष भी जोर देते हैं।

विकास की यह रणनीति इस विश्वास से उत्पन्न होती है कि विकासशील देशों का पिछड़ापन और गरीबी का कारण पूँजी के अभाव में निहित है। यह सही है कि विकासशील देशों के पास पूँजी की कमी है और यह भी सही है कि विकास के लिए पूँजी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। परन्तु, इस पूँजी (यानि कॉरपोरेट अथवा तथाकथित निजी पूँजी) का 200 साल पुराना अनुभव यह दर्शाता है कि जहाँ यह पूँजी उत्पादन और रोजगार की बढ़ोत्तरी करता है, वहीं गरीबी और अमीरी की खाई को बढ़ाता है, जहाँ पूँजीपति का धन कई गुना बढ़ता है और गरीब हासिये पर खड़ा रहता है। यह इस रास्ते से कभी नहीं हटा है।

कॉरपोरेट या तथाकथित निजी पूँजी के सामान्य तौर पर दो प्रकार हैं–कारपोरेट निवेश (यानि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश) तथा सरकारी मदद (वह धन/ जो राज्य तंत्र के जरिये इस्तेमाल किया जाता है) में पहला प्रकार मुख्यत: विदेशी और देशीय (स्थानीय) कारपोरेट व्यापार को मदद पहुँचाता है, जबकि रोजगार के सम्बन्ध में देशी मजदूरों और तिजारत के संबंध में घरेलू कृषि और व्यवसाय को मामूली-सा फायदा मिलता है।

दूसरा प्रकार मुख्यत: घरेलू राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों को फायदा पहुँचाता है जो भ्रष्टाचार के तरीके से उनका बहुत बड़ा हिस्सा हथिया लेते हैं। बदइन्तजामी की वजह से इसका कुछ भाग फिजूलखर्च हो जाता है और बहुत ही थोड़ा-सा हिस्सा लोगों के फायदे में लगता है।

विदेशी धन (चाहे वह कर्ज के तौर पर हो या विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के तौर पर हो) का वामपंथी समूह यह कहकर विरोध करता है कि यह पूँजी उत्पादन विरोधी या लोक विरोधी है। अब वामपंथ पूर्णतया इसकी भूमिका के बारे में दिग्भ्रमित हैं। बहुत-से सत्ताधारी कम्यूनिस्ट ग्रुप इस पूँजी के लालायित ग्राहकों में बदल गये हैं, जबकि केवल इनका छोटा-सा हिस्सा पुरानी हठधर्मिता को अपनाए हुए है।

यह ध्यान देने योग्य दिलचस्प बात है कि कारपोरेट पूँजी (या बाजार आधारित या पश्चिम उदारवादी) तथा साम्यवादी पूँजी (यानि राज्य आधारित या मार्क्सवादी) दोनों तरह की पूँजी की विकास की धारणा, उसके उद्देश्य, क्षेत्र एवं मापदण्ड पर कोई भिन्नता नहीं रखते।

दोनों विकास को भौतिक उत्पादन की वृद्धि की दृष्टि से परिभाषित करते हैं और इस वृद्धि को नापने का तरीका भी दोनों का समान है। दोनों का विकास का उद्देश्य और क्षेत्र एक समान है।

हमारी विकास की धारणा कारपोरेट और साम्यवादी मॉडल (जैसा कि अगले अध्याय में व्याख्या की गई है) दोनों से भिन्न है।

दुनिया में कारपोरेट पूँजी का ऐतिहासिक अनुभव सामाजिक न्याय के क्षेत्र में कोई बहुत अच्छी तस्वीर पेश नहीं करता। पूँजी संग्रहण के प्रथम चरण को एक तरफ कर दिया जाए (यानि समुद्री डकैती और उपनिवेशवाद का चरण) तो इस पूँजी का सामाजिक न्याय के रिकार्ड के तौर पर दूसरा चरण और भी निराशाजनक है जो निम्न तथ्यों से जाहिर है।

यद्यपि विकसित देशों के धनाढ्य लोगों के पास अथाह धन संग्रह हो रहा है और दुनिया की 40 प्रतिशत आबादी दो जून रोटी पर निर्भर है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ ओ.ई.सी.डी., आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के संयुक्त प्रकाशन के अनुसार एक अरब बीस करोड़ लोग प्रतिदिन एक डॉलर से कम पर जैसे-तैसे अपनी जिन्दगी गुजार रहे हैं तथा इसके अतिरिक्त 1 अरब 60 करोड़ लोग प्रतिदिन दो डालर से कम पर जी रहे हैं।

192 देशों के राष्ट्रीय सकल उत्पादन में जो असमानता है, वह आश्चर्यजनक है। एक तरफ कम-से-कम 80 डॉलर है तो दूसरी तरफ अधिक से अधिक 45360 डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है।

यद्यपि विकसित और विकासशील देश दोनों यह दावा करते हैं कि उनकी नीतियाँ गरीबी को कम कर रही है और आमदनी की असमानता को हटा रही है तथापि अमीर और गरीब देशों के बीच का अन्तर और प्रत्येक देश में अमीर और गरीब के बीच का अन्तर बढ़ रहा है। आज, अमीर के पास इतिहास के किसी भी समय से अधिक धन है। दुनिया के अरबपतियों के मामलें में ही देखें-दुनिया के 200 सबसे धनी व्यक्ति की संयुक्त सम्पत्ति 11 खरब डालर से अधिक है। 1999 में बिल गेट्स की सम्पत्ति 90 अरब डॉलर थी, आज भी दुनिया के सभी लोगों में से प्रथम 60 बिलियन डॉलर सम्पत्ति के साथ वही है। दूसरा सबसे धनी व्यक्ति लैरी एलिसन की सम्पत्ति 47 अरब डॉलर और पॉल एलन की सम्पत्ति 28 अरब डॉलर है। दुनिया में करीब 482 अरबपति है। (उपर्युक्त प्रकाशन के अनुसार)। इसके विपरीत दुनिया के 43 अल्पतम विकसित देशों के 58 करोड़ 20 लाख लोगों की संयुक्त आय 1999 में 146 अरब डॉलर थी। (उक्त प्रकाशन के अनुसार)

मानवता के खिलाफ खेली गई सबसे बड़ी चालाकी वाई 2 के (Y2K) में वैश्विक स्तर पर निपटने के लिए 400 अरब डॉलर खर्च हुआ है। मोटे तौर पर यह दुनिया के निर्धनतम देशों के कुल कर्ज के बराबर है। दुनिया के तीन सबसे धनी व्यक्तियों की सम्पदा की कीमत दुनिया के निर्धनतम 26 देशों की सकल राष्ट्रीय उत्पादन से अधिक है।

एफ.ए.ओ. की विश्व खाद्य असुरक्षा पर नई रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में 826 मिलियन लोग भूख के शिकार हैं और उनमें से 95 प्रतिशत विकासशील देशों के हैं। यह अध्ययन और बताता है कि भूख की गम्भीरता भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है। उदाहरण के तौर पर हैती में कुपोषण की खुराक अच्छे स्वास्थ्य की निम्नतम आवश्यकता से 450 किलो कैलोरी कम है। जबकि इण्डोनेशिया में यह 200 किलो कैलोरी कम है। वाशिगंटन स्थित वर्ल्ड वॉच संस्था का कथन है कि ,''पृथ्वी पर अधिक भोजन करने वाले लोगों की संख्या अधिकतम रिकार्ड पर है।'' विश्व स्वास्थ्य संगठन का आंकड़ा इंगित करता है कि कम-से-कम 110 करोड़ लोगों को भूख मिटाने के लिए बहुत ही थोड़ी कैलोरी उपलब्ध होती है और 110 करोड़ या उससे अधिक लोगों का बहुत अधिक कैलोरी वाला भोजन मिलता है।

अमेरिका के अमीरों और गरीबों के बीच शर्मनाक असमानता मौजूद है। वास्तव में, दुनिया में आय की असमानता में अमेरिका आगे है। अमेरिका में 1 प्रतिशत लोगों के पास धन यहाँ के 95 प्रतिशत लोगों के धन से अधिक है। अमेरिका की गरीबी और दूसरे देशों की गरीबों के बीच अन्तर इतना ही है कि अमेरिका के गरीब लागों का जीवन स्तर यूरोप या एशिया के गरीब लोगों के जीवन स्तर से ऊँचा है। अमेरिका में औसतन प्रति व्यक्ति आय यूरोप की प्रति व्यक्ति आय से 45 प्रतिशत अधिक है और जापान की प्रति व्यक्ति आय से 20 प्रतिशत अधिक है। आज भी अमेरिका में एक करोड़ लोग गरीबी में जीवन गुजार रहे हैं।

अमीर और गरीब देशों के राष्ट्रीय सकल उत्पादन में भारी अन्तर मौजूद है। जबकि अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और ब्रिटेन का सकल राष्ट्रीय उत्पादन क्रमश: 29080 डालर, 19640 डालर, 20870 डालर तथा 20650 डालर है तथापि श्रीलंका और भारत का 800 डालर और 370 डालर है। (ये सभी आंकड़े 1997 के हैं।)

तृतीय सम्मेलन (यानि, विश्व सामाजिक सम्मेलन) में एक बेहतर दुनिया कैसे बनाई जाए, इसको निर्धारित करने के लिए हुई थी, परन्तु इसका विचार-विमर्श का कार्यक्रम चार बड़े शीर्षकों यानि, आर्थिक उत्पादन, धन की उपलब्धता, सभ्य समाज और सार्वजनिक कार्य क्षेत्र एवं राजनीतिक शक्ति और नीतिशास्त्र में गठित किया गया था। एक वैकल्पिक सामाजिक व्यवस्था बनाने के उद्देश्य के सन्दर्भ में ये शीर्षक असंगत रहे हैं। फिर भी यह प्रयास अत्यधिक प्रशंसनीय है जिसके जरिये बहुत से समर्पित सक्रिय कार्यकर्त्ता—जो ईमानदारी से एक वैकल्पिक कार्यक्रम की आकांक्षा लिए हुए थे-एक जगह पर इकट्ठे हुए।

III. एक वैकल्पिक मॉडल

दुनिया में असमानता और गरीबी की विद्यमान समस्या-यानि उसकी प्रकृति, कारण और निवारण के प्रति हमारी समझ क्या है? किसी समस्या की वास्तविकता और ठोस समझ की कमी हमें कहीं नहीं ले जाती।

(अ) समस्या की प्रकृति

साधारण परिभाषा में असमानता और गरीबी की समस्या इंगित करती है कि आज जिस सामाजिक ढाँचे में मानव समुदाय रह रहा है और कार्यशील है, वह निष्पक्ष और न्यायपूर्ण सामाजिक प्रबन्धन नहीं है। यहाँ तक ही नहीं यह (यानि सामाजिक प्रबन्धन) इस समस्या के मूल कारण के उन्मूलन के लिए असक्षम है, बल्कि उसकी आगे बढ़ रही

वृद्धि (इस समस्या की जिन्दगी के पिछले 180 सालों में यह वृद्धि 25 गुना बढ़ी है) को रोकने में तथा इसके नकारात्मक प्रभावों को तर्कसंगत तौर पर या मानवतापूर्ण प्रबन्धन करने में भी असक्षम है। ऐसा न होने से मानव समुदाय की करीब आधी जनसंख्या के अस्तित्व के खतरे वाली स्थिति को नजरअन्दाज किया जा रहा है।

वर्तमान सामाजिक संगठन का सम्पूर्ण ऐतिहासिक अनुभव उपर्युक्त तथ्यों को पुष्ट करता है। एडम स्मिथ का रिसने के सिद्धान्त वाला आर्थिक मॉडल (जो पिछले लम्बे समय से पश्चिमी देशों में क्रियाशील है) न तो पिछले 200 सालों में इस समस्या की तीव्रता से मुकाबला करने में प्रभावी साबित हुआ है और न ही 150 साल पुराने मार्क्सवादी आर्थिक सिद्धान्त (जो दशाब्दियों तक तत्कालीन समाजवादी देशों में कार्यशील रहा), इस समस्या की तीव्रता से निपटने में प्रभावी साबित हुआ है। सभी मूल्यांकनों से, यानि इसके ऐतिहासिक उद्भव, मानव नस्ल पर इसके नकारात्मक प्रभाव, सभी इलाजों के नकारा होने से प्रकट होता है कि यह समस्या आज अमानवीय चरित्र अख्तियार कर चुकी है।

ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि असमानता और गरीबी मानव समाज का अन्तहीन पहलू नहीं है।

मानव समाज के पहले (यानि गण समाज) स्वरूप में गण सदस्य जो नजदीकी खून के रिश्ते से जुड़े हुए थे, इनके बीच पूर्णतया भाईचारा और समानता थी। अभाव के समय में सारा गण एक साथ भूखा मरता था। जबकि सम्पन्नता के समय सभी एक साथ दावतें करते थे और आनन्द मनाते थे। उस समाज में केवल असहिष्णुतार्थ यह पूर्वाग्रह था कि एक गण द्वारा दूसरे गण के सदस्य के पकड़े जाने पर सामान्यतया उसे मार दिया जाता था। ऐसी ही स्थिति कबीला समाज में चलती रही। जहाँ प्रत्येक कबीला कई गणों से मिलकर बना हुआ होता था। यहाँ वही पूर्वाग्रह विरोधी कबीलों के विरुद्ध जारी रहा, परन्तु अन्तर यह था कि विरोधी कबीले का पकड़ा गया सदस्य अब जान से मारा नहीं जाता था, बल्कि उसे गुलाम बना लिया जाता था।

सामन्ती समाज में सामन्तों के अधीन अर्द्ध-दासता की प्रथा शुरू हुई। यहाँ अर्द्धदास को प्राकृतिक और सामाजिक विपदाओं के समय ग्राम समुदाय से समान सुरक्षा प्राप्त थी।

अमेरिका और सोवियत युनियन के बीच शीत-युद्ध के दिनों में धनी देशों ने भी अपने कमजोर हिस्से के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था को लागू किया था, परन्तु सोवियत व्यवस्था के धाराशायी होने के बाद पुराना सामाजिक सुरक्षा तंत्र कमजोर हो गया और अब वंचित लोगों की सामाजिक सुरक्षा अधिक असुरक्षित हो गई है। विकासशील देशों में गरीबों की असुरक्षा की आज भी कोई सीमा नहीं है।

(ब) समस्या का कारण

असमानता और गरीबी की समस्या के उद्भव का स्त्रोत त्रिआयामी कारणों यानि इसकी समाजशास्त्रीय जड़ें, व्यवस्थागत खामियाँ तथा उसके संचालन की कमजोरियों में निहित है।

समाजशास्त्रीय जड़ें

समाजशास्त्रीय मूल कारण एडम स्मिथवादी तथा मार्क्सवादी विकास मॉडलों (ये दोनों ही मॉडल विश्व के विभिन्न भागों में चल रही राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था, जो अब पीछे हट रही है, के दो प्रामाणिक विकास पद्धतियों के रूप में कार्यरत रहे हैं) की एक तरफा

दार्शनिक समझ में निहित है। यह एकतरफा समझ है कि अपने ग्रह पर और यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड में प्रकृति की व्यवस्था में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ घटनाक्रम है। स्पष्टत: यह लोगों को मानव समाज और इसकी प्रत्येक वस्तु का एकमात्र निर्माणकर्त्ता पेश करता है। यह इस सामाजिक सच्चाई को दरकिनार करता है कि मानव समाज में परिवर्तन और विकास दो तरफा अन्तरक्रिया–एक तरफ प्रकृति और मानव समाज के बीच और दूसरी तरफ मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया–से होता है।

दूसरा मूल समाजशास्त्रीय कारण मानव स्वभाव के संबंध में एडम स्मिथ और मार्क्सवादी विकास मॉडल की एक तरफा समझ में निहित है। एडम स्मिथ का आर्थिक मॉडल यह मानता है कि मानव समुदाय स्वभाव निजी स्वार्थ का है। मार्क्सवादी आर्थिक सिद्धान्त मनुष्य की प्रकृति (स्वभाव) के प्रश्न पर दिग्भ्रमित धारणा रखती है। प्रथम, मनुष्य की प्रकृति समाजिक है इस पर जोर देती है और अगले ही क्षण निरपेक्ष सामाजिक होने के गुण को औद्योगिक सर्वहारा (जो इस सिद्धान्त के अनुसार मानव समाज का मुक्तिदाता है) में तब्दील कर देता है और अन्तिम तौर पर सामाजिक चरित्रता के समस्त एकाधिकार को कम्युनिस्ट पार्टी में निहित कर देता है। इस दृष्टिकोण के तहत मानव समाज को सामाजिक तौर पर तब्दील करने की क्षमता अकेली कम्युनिस्ट पार्टी में ही समझती है।

वास्तव में, तथापि मानव समुदाय का दुतरफा चरित्र है, एक तरफ जैविक चरित्र और दूसरी तरफ सामाजिक चरित्र। जैविक चरित्र का पहलू मानव समुदाय के व्यक्तिगत अस्तित्व को प्रतिबिम्बित करता है, जबकि सामाजिक चरित्र का पहलू उसके सामाजिक जीवन, कार्यशैली और संगठन को इंगित करता है।

बुनियादी व्यवस्थागत खामियाँ

इस समस्या का बुनियादी कारण व्यवस्थागत खामियों से सम्बन्धित है जो अधिकतम लाभ और अधिकतम वृद्धि दर को इसके विकास का एकमात्र उद्देश्य बताता है। उदारवादी और मार्क्सवादी दोनों धारणाएँ यह स्वीकार करती हैं कि सामाजिक सम्पन्नता और प्रगति को जाँचने का एकमात्र मापदण्ड वृद्धि दर है। अधिकतम वृद्धि दर पाने की अपनी खोज में इन दोनों ने पर्यावरण और मानव इतिहास के पहलुओं को बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है।

द्वितीय, सामाजिक सम्पन्नता और प्रगति को मापने का एकमात्र मापदण्ड मौद्रिक वृद्धि को मानने का सार्वभौम स्वीकृत नियम सबसे अधिक नुकसानदेह व्यवस्थागत खामी है। सामाजिक उन्नति के पहलू को रूपया-पैसा के रूप में परिभाषित करने से धन बटोरने की मनुष्य की महत्वकांक्षा को अधिक प्रज्जवलित किया है। यह आज के तथ्यों के मद्देनजर स्पष्ट है कि लगभग प्रत्येक मनुष्य की मुख्य प्रेरणा रूपया-पैसा बन गया है जो उसके परिप्रेक्ष्य, मानसिकता, उद्देश्य, प्राथमिकता तथा साधन और तरीके को तय करता है।

तब धन और सत्ता अधिकतम स्वहित का प्रतिनिधित्व करती है, पूरी दुनिया अब इन दो 'जीवनदायी अमृत' के पीछे भाग रही है। धन और सत्ता पाने का यह व्यापार (अधिकतम गैर-टिकाऊ पर्यावरण व्यवस्था और उच्चतम असमान व अन्यायपूर्ण मानव

व्यवस्था लाकर) अब दुनिया को गम्भीरतम पर्यावरणीय और मानवीय बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है।

वास्तव में, स्व-हित पशु जगत का बुनियादी स्वभाव है, जबकि मनुष्य का जबसे होमोसेपियन के रूप में प्रादुर्भाव हुआ, तब से उसकी प्रकृति जैव-सामाजिक है। अर्द्ध सामाजिक होने का उसका एकमात्र गुण मनुष्य प्रजाति को पशु प्रजाति से भिन्नता प्रदान करता है। जब मनुष्य में सामाजिक पहलू नहीं रहता, तब उसकी जीवन शैली एक पशु के रूप में बदल जाती है।

अल्पकालीन व्यवस्थागत खामियाँ

अल्पकालीन व्यवस्थागत खामी का सम्बन्ध इसकी संचालन एजेन्सी या सरकार से है। एकमात्र निजी हित की स्थायी धारणा के निर्देशन के तहत राष्ट्रीय सरकारों (प्रत्येक देश में पार्टी व्यवस्था पर आधारित) के नेतागणों का मुख्य ध्यान अपने लिए सही या गलत किसी भी तरीके से धन बटोरने और लगातार सत्ता अपने हाथों में रखने में लगा रहता है और जनहित या अन्य पर्यावरणीय जैविक मुद्दों पर कोई गौर नहीं करता है। उनकी खास जीवन शैली कहना कुछ और करना कुछ की है। वे हमेशा गरीबों और वंचितों के लिए आँसू बहाते हैं, परन्तु हर समय अमीर और प्रभुत्वशाली लोगों का हित साधते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि जब तक वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और इसके विकास के पैमाने के स्थान पर टिकाऊ, न्यायपूर्ण और समता के मॉडल को न लाया जाए,तब तक असमानता और गरीबी की अत्यधिक खतरनाक सामाजिक चुनौती के प्रभावी उत्तर देने की क्षीण सम्भावना रहती है।

(स) एक वास्तविक विकल्प

समस्या के कारण और प्रकृति का वस्तुगत अध्ययन उसके वास्तविक हल की ओर ले जाने का रास्ता सुलभ करता है, परन्तु आगे बढ़ने से पहले दो बिन्दु स्पष्टीकरण मांगते हैं। पहला, इस रास्ते में आगे बढ़ने के लिए मुख्य रुकावटें क्या हैं और दूसरा, इन रुकावटों को कैसे दूर किया जा सकता है।

प्रथम तात्कालिक रूकावट लोगों की वर्तमान मानसिकता है जो जिन्दगी का मुख्य उद्देश्य धन हड़पने और सत्ता हथियाने को समझते हैं और परिणामतया धन हड़पने वालों को पूँजी निर्माता तथा सत्ता हथियाने वालों को लोगों की सुरक्षा व स्थायित्व प्रदान करने वाले तथा लोगों की प्रतिदिन की उत्पादक गतिविधि को चलाने वाला विशेषज्ञ मानते हैं। यह तथ्य दुनियाभर में सत्ता-भूखे राजनीतिज्ञों, धन हड़पू व्यापारियों और सर्वव्यापक नैतिक पतन के प्रभुत्व से स्पष्ट है। जबकि हाशिये पर इसके कुछ अपवाद मौजूद हैं। इस प्रकार पुरानी कहावत सिद्ध होती है कि हम जिस लायक होते हैं, वहीं हमें मिलता है।

दूसरी रुकावट अमेरिका का महाशक्तिवाद है जो कॉरपोरेट विकास मॉडल का मुख्य लाभान्वित देश है तथा सैनिक बल और आर्थिक शक्ति के क्षेत्र में पहले नम्बर पर है। इसके पुराने आक्रमण और ज्यादतियों को दरकिनार कर दे तो भी अमेरिका आज युद्धखोर और एकपक्षीयवाद के रास्ते पर चल पड़ा है, जिसका उद्देश्य दुनिया पर अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाना है। हर प्रकार के आतंकवाद को समाप्त करने के नारे की तख्ती हिलाते हुए इसने

उन राज्यों और हथियारबन्द सूमहों के विरूद्ध शक्तिशाली सक्रिय मुहिम शुरू की हुई है जो इसके आदेशों की अवहेलना करने की जुर्रत करते हैं। यह सन् 1945 के राज्य आधारित मुख्य वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करने वाले 1945 के यू.एन. चार्टर में किसी भी बदलाव का विरोध करता है। इसी प्रकार 55 वर्ष पुरानी वित्तीय संस्थाओं-जैसे आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के पुराने पड़ चुके चरित्र को आधुनिक बनाने की हर पहलकदमी का यह गला घोटता है।

इस प्रकार, यद्यपि नई उभर रही वैश्वीकरण (यानि, वैश्विक स्तर पर एक मानव समाज बनाने की प्रक्रिया) की प्रक्रिया की मांग नई विश्व व्यवस्था के पुनरसंरचना करने की है तथापि अमेरिका चाहता है कि पुरानी राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था सुरक्षित और कायम रहे। वह इसमें इतना ही आधुनिकीकरण चाहता है कि जिससे उसके वर्तमान हित सुस्थापित रहें तथा आगे इसके लिए नये प्रभुत्वकारी उभर रहे हितों की सेवा होने की हद तक ही आधुनिकीकरण का विस्तार हो सके।

तीसरी रुकावट विभिन्न प्रकार के रूढ़ीवाद (नये और पुराने) का मौजूद होना है, जो सही और गलत की पहचान की खोज में लोगों को गलत रास्ते पर धकेलते हैं और भ्रमित करते हैं।

चौथी रूकावट आन्तरिक और अन्तरराज्यीय विभिन्न प्रकार के झगड़ों का विद्यमान होना है। विभिन्न बहानों के तहत ये झगड़े लोगों में फूट डालते रहते हैं और लोगों की एकता की प्रक्रिया में बाधा पहुँचाते हैं। इस प्रकार लोगों के हितों को नुकसान पहुँचाते हैं।

पाँचवी रूकावट इस धारणा में निहित है जो प्रत्येक संस्था चाहे अन्तरराष्ट्रीय हो या राष्ट्रीय, में सबसे उच्चस्थ प्राथमिकता पूँजी एवं पूँजीधारक को देते हैं। इस प्रकार पर्यावरणीय और मानवीय मुद्दों पर ध्यान देने का रास्ता यह धारणा बन्द कर देती है।

छठी रूकावट सुरक्षा परिषद में पाँच वीटों पावर रखने वाली शक्तियों का एकाधिकार होना है। वर्तमान दुनिया में सुरक्षा-परिषद वह उच्चस्थ शक्तिशाली संस्था है जो आज की दुनिया की पुनरसंरचना का केन्द्र है।

सातवीं रूकावट दो अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं- आई.एम.एफ. और विश्व बैंक पर कुछ आर्थिक धनी देशों जैसे अमेरिका, जापान, जर्मनी, इग्लैण्ड, फ्रांस आदि का पूर्ण नियंत्रण होने में निहित है।

उपर्युक्त सभी रूकावटें उचित अल्प अवधि कार्यक्रम के जरिये प्रबन्धित की जा सकती हैं।

(i) अल्पकालीन कार्यक्रम

प्रथम रूकावट को लोगों में पर्यावरणीय संसाधनों के खराब होने, अमानवीय असमानता और गरीबी के नुकसानदेह प्रभाव, मौजूदा भ्रष्टाचार, कपट और धोखा, मूल्यहीन जीवन-शैली से उभर रही घातक चुनौतियों और नकारात्मक असर–जो वर्तमान पर्यावरण और मानव विरोधी व्यवस्था के नियंत्रकों और प्रबन्धकों के धन व सत्ता की भूख की देन हैं–के बारे में जनता को जागरूक कर नियंत्रित करना चाहिए।

दूसरी रूकावट को विभिन्न राष्ट्रों तथा अन्य जातीय-सांस्कृतिक समूहों के बीच शान्ति, मित्रता और सहयोग का झण्डा दृढ़ता से थामकर, सभी झगड़ों और विवादों को

बातचीत के जरिये हल कर सभी के बीच और सभी जगह पर पर्यावरणीय हितों, मानव अधिकारों तथा समानता को सुरक्षित कर, सभी राज्यों, विशेष तौर पर अमेरिका द्वारा ऐसी युद्धकारी, प्रभुत्वकारी व एकपक्षीय सैनिक कार्यवाहियों को रोककर और सबसे ऊ पर संयुक्त राष्ट्र संघ को राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं को प्रबन्धित करने वाला एकमात्र केन्द्र स्वीकार करके दूर किया जाना चाहिए।

तीसरी रूकावट को विभिन्न रूढ़ीवादी सिद्धान्तों और उनके व्यवहारों के नकारात्मक प्रभावों को उजागर करके निपटना चाहिए।

चौथी रूकावट पर्यावरण और मानव विकास के बिन्दु पर विभिन्न झगड़ों के घातक प्रभावों को प्रचारित कर नियंत्रित किया जाना चाहिए।

पाँचवी रूकावट के लिए एकाधिकारी निगमित क्षेत्र का सम्पूर्ण लोकतान्त्रीकरण की माँग कर निपटाना चाहिए। (यह एकाधिकार अन्यायपूर्ण कानून जो निगमित कम्पनियों के प्रोमोटर्स को अपने आपको व अपने रिश्तेदारों व मित्रों को बाजार कीमत के लगभग 1/100 वें भाग की कीमत पर ब्लॉक प्रोमोटर्स शेयर जारी करने का विशेष अधिकार प्रदान करके एकाधिकार सुनिश्चित करते हैं तथा डायरेक्टर के नियंत्रण के तहत प्रबन्ध मण्डल गठित कर जो मुख्यतया प्रोमोटर शेयर धारकों में से होते हैं, जिनके उत्तराधिकारी कम्पनी के जीवन काल तक एकाधिकार कायम रखते हैं।)

निगमित क्षेत्र का लोकतान्त्रिकरण स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव करवा कर किया जाना चाहिए। प्रत्येक शेयरधारक का समान अधिकार (यानि प्रत्येक का एक वोट) होना चाहिए। प्रबन्ध मण्डल के दो-तिहाई सदस्यों का चुनाव शेयरधारकों में से होना चाहिए तथा एक-तिहाई सदस्यों का प्रतिनिधित्व मजदूरों में से उनके चुने गये प्रतिनिधियों को दिया जाना चाहिए।

राजकीय क्षेत्र का एकाधिकार इसके दो-तिहाई शेयरों को साधारण शेयरधारकों को बेचकर–तथा इसका प्रबन्ध मण्डल 50 प्रतिशत सामान्य शेयरधारकों से, 20 प्रतिशत सरकार से, 30 प्रतिशत श्रमिकों से गठित कर–समाप्त किया जाना चाहिए।

छठी और सातवीं रूकावट को संयुक्त राष्ट्र संघ के 5 स्थायी सदस्यों के विशेष वीटों अधिकारों को समाप्त कर तथा आई.एम.एफ. और विश्व बैंक में धनी देशों के प्रभुत्व को गरीब देशों को और अधिकार देकर प्रभुत्व कम किये जाने का जबर्दस्त आन्दोलन चलाकर इस बाधा को हटाया जाए।

अन्तिम परन्तु बहुत महत्वपूर्ण खराब होती असमानता और गरीबी की समस्या के मद्देनजर यह बहुत ही आवश्यक है कि वे सभी जो गरीबी रेखा से नीचे हैं और वो तमाम जो पूर्णतया बेरोजगार है, उनको सामाजिक सुरक्षा का मूल अधिकार मिलना चाहिए। यह अधिकार उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र के जरिए मिलना चाहिए, जिसको सभी देश अनिवार्य तौर पर लागू करें।

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र में यह प्रावधान होना चाहिए कि सामाजिक सुरक्षा पर लगने वाला 50 प्रतिशत खर्च सम्बन्धित राज्य वहन करे और शेष संयुक्त राष्ट्र संघ खर्च करे; संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा तुरन्त उच्च शक्ति वाली संयुक्त राष्ट्र टिकाऊ विकास परिषद का गठन करे और वह परिषद एकतरफ पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण

व संवर्धन करने के लिए एक वैश्विक ऑथोरिटी की तरह काम करे और दूसरी तरफ मानव संसाधनों के विकास के लिए काम करे; यह परिषद पर्यावरण और मानव उन्नति के संबंध में अन्तरराष्ट्रीय मूल सुधार के नियम बनाए; इस परिषद का वित्त निम्न प्रकार से इकट्ठा किया जाए; (क) प्रत्येक देश अपने सैनिक बजट में से आवश्यक तौर पर 30 प्रतिशत बचाकर इसमें योगदान करे। (ख) वैश्विक टैक्स अदायगी, जैसे वैश्विक व्यापार, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, मसलन तेल, कोयला, संचार उपग्रह, वायुयात्रा, अन्टार्कटिका का खनिज, समुद्र तल के खनिज, सामुद्रिक परिवहन आदि पर टैक्स लगाकर अदायगी की जाए; संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा उक्त वैश्विक राजस्व की संयुक्त राष्ट्र और उसके सदस्यों के बीच वितरण की ऐसी योजना बनाए, जिसमें अल्प विकसित देशों पर विशेष ध्यान दिया जाए।

(II) दीर्घकालीन कार्यक्रम : एक प्रकृति-मानव केन्द्रित प्रतिमान

हमारे ग्रह की एकीकृत और अन्तरनिर्भर प्रकृति के मद्देनजर दीर्घकालीन कार्यक्रम में निम्नलिखित बिन्दु शामिल हैं।

दृष्टि : हमारे ग्रह की अखण्ड एवं अन्तरनिर्भर प्रकृति तथा 21वीं सदी की राष्ट्र-राज्य की अन्तरनिर्भर सामाजिक वास्तविकता, प्रकृति-मानव केन्द्रित प्रतिमान एक विश्व की दृष्टि प्रदान करता है। जबकि 1945 का संयुक्त राष्ट्र चार्टर सम्प्रभुता व स्वतंत्र राष्ट्र की एक ऐसी दृष्टि देता है जो वर्तमान वास्तविकता के उलट है।

मूलभूत सिद्धान्त : ऊपर वर्णित दृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त में सर्वप्रथम लोगों एवं पर्यावरण को ग्लोबल क्रियाकलापों के केन्द्र में रखा जाना चाहिए यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा करना तथा दूसरी तरफ पर्यावरण को संरक्षित करना।

विश्वव्यवस्था : प्रकृति-मानव केन्द्रित दृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त तथा पर्यावरण-मानव प्राथमिकता मांग करती है कि संयुक्त राष्ट्र एक जनवादी आधारित तरीके एवं संगठन के रूप में पुर्नगठित हो। लेकिन संयुक्त राष्ट्र जैसा आज है, इस गुण की कमी रखता है। संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा का ढांचा व कार्यप्रणाली बिल्कुल लोकतांत्रिक है। लेकिन इसकी शीर्ष निर्णयकारी इकाई अर्थात सुरक्षा परिषद जो अत्यधिक अनुचित तथा पूर्णरूपेण अप्रजातांत्रिक कायदों-जैसे सैनिक दृष्टि से सबसे ताकतवर देशों के लिए स्थायी सदस्यता व विशेष वीटों पावर; से चरित्रित है।

स्पष्ट तौर से, इस वक्त, इस संगठन के पूर्ण लोकतांत्रिकरण की किसी भी तरह की कोशिश को पांच सदस्यीय सुविधा क्लब के भारी विरोध का सामना करना पड़ेगा। इसलिए वर्तमान में ग्लोबल शक्तिसंतुलन को ध्यान में रखते हुए यह दिखता है कि सुरक्षा परिषद का पूर्ण जनवादीकरण में कुछ और समय लगेगा। थोड़े समय के लिए जब तक चल रहे शक्ति संतुलन में परिवर्तन हो तब तक स्थायी सदस्यता का नियम रखते हुए विशेष वीटो-पावर का नियम हटा लेना चाहिए। सुरक्षा परिषद की बाकी सभी सीटे साधारण सभा द्वारा चुनाव के जरिए भरी जानी चाहिये।

धनवान देशों का अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व-बैंक के ऊपर से नियंत्रण कम हो तथा सबसे गरीब देशों का विश्व व्यापार संगठन में अधिक अधिकार दिये जाय।

विकास मॉडल : जन-पर्यावरण प्राथमिकता का मूलभूत सिद्धान्त (जो मानव विकास के लिए अनिवार्य है) एक नये प्रकार का विकास मॉडल की मांग करता है। जो पांच स्तरीय बुनियादी सिद्धान्तों यानि, पर्यावरणीय टिकाऊपन, समता (अथवा सामाजिक न्याय), उत्पादकता, लोकतांत्रिकऔर पारदर्शिता पर टिका है। ये पांच स्तरीय बुनियादी सिद्धान्त मानव के जैव-सामाजिक चरित्र से मेल खाते हैं, अर्थात् यह मनुष्य के स्वहित को सामाजिक हित से जोड़ता है।

जन-पर्यावरण आधारित विकास मॉडल दो रूढ़िवादी राष्ट्रीय विकास मॉडलों यानि निगम चलित और सरकार निर्देशित की तुलना में विकास की समयानुकूल धारणा प्रस्तुत करता है। निगम चलित विकास मॉडल केवल लाभ या उत्पादकता (जो केवल धन के स्वामियों का हित सुरक्षित करता है) को एक मात्र लक्ष्य बनाता है जबकि सरकार निर्देशित मॉडल उत्पादन के साधनों का एकमात्र उद्देश्य सामाजिकता (या राष्ट्रीयकरण) को चुनता हैं (जो शासक राजनीतिज्ञों और अफसरों के हितों की सेवा करता है)। ये दोनों रूढिवादी राष्ट्रीय मॉडल मनुष्य के जैव-सामाजिक चरित्र के उलट केवल स्वहित को ही पूरा करते हैं, जैव-सामाजिक चरित्र स्वहित और सामाजिक हित दोनों को जोड़ता है। फिर, वे पर्यावरण को कोई प्राथमिकता नहीं देते और आर्थिकता अथवा विकास प्रक्रिया में लोकतंत्र और पारदर्शिता के मानदण्डों के पालन को कोई स्थान नहीं देते हैं, आगे जबकि कारपोरेट (निगमित) मॉडल समता (अथवा सामाजिक न्याय) के सिद्धान्त को पूर्णतया अस्वीकार करता है वही सरकार निर्देशित मॉडल राजनीतिक समानता और उत्पादकता को पूर्णतया नकारता है।

यह मॉडल निगम चलित और राज्य आधारित दोनों विकास मॉडलों से उनके उद्देश्यों, प्रबंध और शैली के मामलों में भिन्नता रखता है।

जबकि निगमित मॉडल पूँजी एवं पूँजी के मालिकों को विकसित करने के लिए और राज्य मॉडल इसके शासक राजनीतिज्ञों और अफसरों के साथ मजदूर कुलीनता के हितों को आगे बढ़ाता है, प्रकृति-मानव केन्द्रित मॉडल आमतौर पर लोगों और पर्यावरण के हितों की तथा खासतौर पर गरीबों और वंचित तबको की सेवा करता है।

प्रबंध में जबकि कॉरपोरेट सेक्टर एकाधिकारवादी कॉरपोरेट प्रबंध एवं नियंत्रण का पक्षपोषण करता है और राजकीय क्षेत्र एकाधिकारवादी अफरसशाही प्रबंध एवं नियंत्रण का समर्थन करते हैं, प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल के स्थायी कॉरपोरेटरों की जगह संयुक्त कमेटियों द्वारा चुनी गयी पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों द्वारा लोकतांत्रिक प्रबंध एवं नियंत्रण होता है। प्रत्येक संयुक्त कमेटी में 2/3 सदस्य साधारण शेयर धारियों द्वारा चुने हुए तथा 1/3 सदस्य मजदूरों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं।

शैली में, अधिकनायकवादी और गोपनीय कॉरपोरेट एवं राजकीय शैली के उलट प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल लोकतांत्रिक पारदर्शिता और जवाबदेही की शैली पर आधारित है।

विश्व शांति और सुरक्षा : एक प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल को सर्वप्रथम स्थायी और टिकाऊ शांति एवं सुरक्षा की आवश्यकता है। इस प्रकार की शांति की स्थापना के लिए यह जरूरी है कि प्रभुत्व, विशेषाधिकार एवं विशेष शक्तियों की राजनीति

को छोड़ा जाये, परमाणु शस्त्रों पर पूरा नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र का करके पूर्ण निशस्त्रीकरण द्वारा टकराव और सैनिक समाधान की नीति को समाप्त किया जाये, राजनीतिक, आर्थिक तथा विकसित एवं विकासशील देशों के बीच विकास का फर्क एवं अमीर और गरीब के बीच की खाई को हटाया जाये।

राजनीति : प्रकृति-मानव केन्द्रित राजनीतिक को एक ऐसी राजनीति की आवश्यकता है जो पूर्ण लोकतांत्रिक सिद्धान्तों, गतिविधियों और ढांचे पर आधारित हो। इस प्रकार की राजनीति संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था में विशेष वीटों शक्तियों के कानून को समाप्त करे और निर्णय लेने में लोगों का अधिकतम् संभव शक्तिकरण को सुनिश्चित करे तथा पार्टी-केन्द्रित शक्ति का आवश्यक मात्रा में कमी करे।

आर्थिकता : प्रकृति-मानव केन्द्रित आर्थिकता एक तर्कसंगत और हकीकी आर्थिकता की मांग करती है, जिसकी धारणाएं, कानून और नियम पहले बताए गये 2 उच्च प्राथमिकताओं (यानि, मानव और पर्यावरण) तथा 5 सिद्धान्तों (यानि पर्यावरणीय टिकाऊपन, समता, उत्पादकता, लोकतंत्र तथा पारदर्शिता) की रोशनी में बनाये जाने की आवश्यकता है। मानव की जैव-सामाजिक प्रकृति के मध्यनजर, दोनों, एडम स्मिथ का 'स्वहित' मूलभूत आर्थिक सिद्धान्त और मार्क्स का प्रत्येक चीज का राज्य राष्ट्रीयकरण का बुनियादी आर्थिक नियम, एकतरफा है। लेकिन विडम्बना है कि दोनों मॉडल विकास, समृद्धि और उन्नति को मौद्रिक वृद्धि के रूप में मापते हैं न कि मानव और पर्यावरण विकास के सन्दर्भ में।

मूल्य व्यवस्था : प्रकृति-मानव केन्द्रित मूल्य व्यवस्था एक ऐसे जीवन के तरीके (या जीवन शैली) की मांग करती है जो बुनियादी मानवीय एवं पर्यावरणीय मूल्यों में समाहित करे और लोगों में तर्क संगत मानवतावादी एवं पर्यावरणवादी सोच, व्यवहार व संगठन को बढ़ावा दें।

अवधारणा : प्रकृति-मानव केन्द्रित अवधारणा को वैज्ञानिक वास्तविकतावाद पर आधारित होना चाहिये जो प्रकृति के घटनाक्रम का अध्ययन एवं व्याख्या वैज्ञानिक तथ्यों की रोशनी में तथा सामाजिक घटनाक्रमों का अध्ययन एवं व्याख्या मान्यता प्राप्त सूचना एवं आंकड़ों के आधार पर करता है।

स्वतंत्रता बनाम असमानता का समाजशास्त्र

उदार लोकतंत्र और स्वतंत्र बाजार के समर्थक दावा करते हैं कि समानता का सिद्धान्त सोचने और कार्य करने की स्वतंत्रता का गला घोंटता है, जबकि समानता के प्रचारक तर्क देते हैं कि सोचने और कार्य करने की स्वतंत्रता समानता के उसूल को नकारता है। लेकिन दोनों एक तरफा अवधारणा पेश करते हैं।

वास्तव में, दोनों उसूल, यानि सोचने एवं कार्य करने की स्वतंत्रता और समानता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक ही सामाजिक प्रक्रिया में एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। जबकि समानता के बिना सोचने और कार्य की स्वतंत्रता नहीं हो सकती है तथा सोचने और कार्य करने की स्वतंत्रता के बगैर समानता नहीं हो सकती है।

(जून 2002)

***

माननीय महासचिव,
सुयंक्त राष्ट्र संघ, न्यूयार्क
प्रिय महोदय,

टिकाऊ विकास पर संयुक्त राष्ट्र जोहानिंसबर्ग सम्मेलन पर संलग्न अपील आपके पठन हेतु भेजी जा रही है। इस अपील का केन्द्रीय विचार यह है कि मानव समुदाय अपने इतिहास के सर्वोत्तम चुनौतिपूर्ण जैव-पारिस्थितिकी संकट का सामना कर रहा है। इस संकट का मूलभूत कारण चल रहे अन्यायकारी और अतार्किक सामाजिक व्यवस्था में निहित है, जबकि, तात्कालिक कारण पर्यावरण विरोधी और मानव विरोधी विकास नीतियों में निहित है। जबकि समाजशास्त्रीय कारण एडमस्मिथ के अतार्किक आर्थिक सिद्धान्त कि ''मनुष्य प्रकृति से स्वार्थी है'' में निहित है (जो मनुष्य के जैव-सामाजिक चरित्र से उलट है) इस संकट का एक वास्तविक जवाब एक प्रकृति-मानव केन्द्रित कार्यक्रम से आ सकता है। आपसे प्रार्थना है कि इस अपील की एक कॉपी मानवीय सरकार प्रमुखों को उनके पठन एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु उपलब्ध करावें।

आदर एवं शुभकामनाओं तथा प्रत्याशा में धन्यवाद के साथ
आपका भवदीय

आर पी सराफ
सम्पादक, इन्टरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक व्यूपाइंट
फोन : 0091-191-585960
E-mail: saraf_rp@rediffmail.com
सम्पाकीय कार्यालय वार्ड नं.-4
साम्बा, जम्मू-कश्मीर (भारत)
दिनांक-7-8-2002
डाक पता-
आर पी सराफ
द्वारा हिम्मत सिंह, मकान नं. 11 ए, मुख्य रोड,
राजपुरा मंगोत्रियन, जम्मू- पिन-180001
जम्मू-कश्मीर (भारत)

जोहानिंसबर्ग में टिकाऊ विकास पर संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन–2002 को अपील

चयन स्पष्ट है
जीवित रहना या समाप्त होना
तीसरा कोई विकल्प नहीं है
हमारे भविष्य को सुरक्षित करने के लिए
यह सम्मेलन एक मोड़ हो

1. हमारे ग्रह पर एक घातक जैव–पारिस्थितिकी संकट

यह अपील आपको ऐसे समय में की जा रही है जब इस पृथ्वी पर मानवता (अन्य जीव-जगत सहित) सर्वोच्च गंभीर जैव-पारिस्थितिकी (Eco-bio crisis) संकट का सामना कर रही है और इतिहास के एक मोड़ पर खड़ी है। यह मोड़ मानवता के समक्ष जीवित रहने या समाप्त हो जाने में से केवल एक का चुनाव प्रस्तुत करता है। यहाँ कोई तीसरा रास्ता नहीं है।

इस अपील का एक मात्र उद्देश्य आपसे आने वाले सम्मेलन के निर्णायक अवसर को प्रकृति के घातक जैव-पारिस्थितिकी संकट उसके कारण और समाधान पर पूर्ण एवं हकीकी विचार-विमर्श करने में उपयोग लेने की विनम्र प्रार्थना करना और बाद में दुनिया के लोगों के अमल के लिए एक कार्य योजना बनाने का अनुरोध करना है।

पहले ही हम बहुत ज्यादा समय खो चुके हैं और कई सारे अवसर बर्बाद कर चुके हैं, जिनमें बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण दो अवसर-पहला 1972 में स्टॉकहॉम में मानव-पर्यावरण सम्मेलन (जिसमें 113 देश उपस्थित थे) और दूसरा 1992 में टिकाऊविकास पर रियो दी जेनेरो में हुआ पृथ्वी सम्मेलन था (जिसमें 178 देशों ने भाग लिया)।

संयुक्त राष्ट्र संघ की पिछली पहलों को पूरा नहीं करने का कारण तर्कसंगत रूप से इस तथ्य में निहित है कि वे (यानि कथित पहलकदमियां) चल रहे निगमित (अथवा राज्य निर्देशित) विकास प्रतिमानों की प्राथमिकता में नहीं थे जिनका एक मात्र उद्देश्य अधिकतम् लाभ कमाना है, जो टिकाऊविकास की रणनीति और कार्य योजना से टकराते है। अत: विभिन्न राष्ट्रीय शासनों के लिए इस एजेन्डा को हाथ में लेना कठिन था। इस वक्त संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन-राजकीय शासकों और निगमित प्रबंधकों दोनों को इस तथ्य के बारे में संजीदा बनाकर कि जैव-पारिस्थितिकी अस्तित्व से संबंधित टिकाऊ विकास का एजेन्डा किसी व्यवस्थागत मांग से ज्यादा महत्वपूर्ण है–ने प्रत्येक राज्य के लिए सैद्धान्तिक और व्यवहारिक तौर पर इसके द्वारा स्वीकृत फैसलों को प्रमुख बना दिया है। इस चरम क्षण पर

जन-आधिकारिक जागृति कार्य की किसी भी प्रकार की उपेक्षा मानव उद्देश्य का हमेशा के लिए सर्वनाश कर देगा।

इस चुनौती की गंभीरता सैकड़ों विशेषज्ञ रिपोर्टों में देखी जा सकती है। हमारे अस्तित्व के 2 मूलभूत पहलू, हमारा पर्यावरण और मानव विकास के गैर टिकाऊपन के बारे में तथ्यों के मकड़जाल की पुनरावृत्ति का यहां कोई उपयोग नहीं है।फिर भी कुछ महत्वपूर्ण दिशा संबंधि तथ्यों पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जो स्वयं बोलते हैं।

(क) 2050 में ग्रह नकारा हो सकता है

विश्व वन्य कोष द्वारा एक अध्ययन-2002, लगभग एक सप्ताह पूर्व जारी किया गया, ने चेतावनी दी है कि हमारा ग्रह 50 सालों के अन्दर बेकार होने जा रहा है। यह इसलिए है क्योंकि मानव प्रजाति द्वारा हमारे ग्रह के दोहन की गति ग्रह द्वारा जीवन को सहायता करने की क्षमता से अधिक है। पश्चिमी समाजों के उच्च उपभोक्ता स्तर की निन्दा करते हुए रिपोर्ट कहती है कि 2050 में एक अतिरिक्त ग्रह (जिसका आकार पृथ्वी के बराबर हो) की आवश्यकता होगी जब विद्यमान संसाधन समाप्त हो जायेंगे और ग्रह गैर टिकाऊ बन जायेगा।

रिपोर्ट विश्वव्यापी वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है जो उजागर करती है कि पिछले 3 दशकों में मनुष्य ने प्राकृतिक विश्व का एक तिहाई से अधिक भाग बर्बाद कर दिया है।

विशेषज्ञ कहते हैं कि समुद्र मछलियों से खाली हो जायेंगे जबकि जंगल जो कार्बन डाई-आक्साइड के उत्सर्जन को शोखते हैं-पूर्णतया बर्बाद हो जायेंगे और स्वच्छ पानी की आपूर्ति कम और प्रदूषित हो जायेगी।

रिपोर्ट अमेरिका द्वारा पर्यावरण पर भारी दबाव के लिए शर्मिन्दगी जाहिर करती है। इसने पाया है कि औसत एक अमेरिकी नागरिक कुछ अफ्रिकन से लगभग दो गुना संसाधनों का उपयोग करते हैं।

रिपोर्ट चेतावनी देती है कि अमीर देशों की जीवन-शैली प्राकृतिक सम्पदा के दोहन और समापन के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है।

रिपोर्ट सुस्पष्ट चेतावनी पेश करती है कि या तो लोग अपने अनियंत्रित जीवन शैली को रोके अथवा वैज्ञानिक दूसरे मातृग्रह की खोज का जोखिम उठायें जहाँ मानव जीवन संभव हो सके। अभी ऐसा (यानि मातृ ग्रह की तलाश) असंभव है, तब एक मात्र विकल्प गैर टिकाऊ उपभोक्ता स्तर को रोकना है।

(ख) मानव और पारिस्थितिकी स्वास्थ्य को खतरा

2002-संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू एन ई पी) रिपोर्ट- जो इस साल मई में जारी की गई, चेतावनी देती है कि शहरों का विस्तार, वनों का विनाश, खेतों का क्षरण और पानी की मांग बहुत से देशों में मानव और पारिस्थितिकी को काफी हद तक खतरा पेश करने वाली है।

रिपोर्ट कहती है कि कृषि का विकास प्राकृतिक परिदृष्य को बिगाड़ रहा है, पादप जन्तुओं को कम कर रहा है, भूमि में नमक का स्तर बढ़ा रहा है और वन्य जीवों के रहने के हालात कम कर रहा है।

पहले से ही पाँच अरब एकड़ मिट्टी अमेरिका, कनाडा के संयुक्त क्षेत्रफल से अधिक मानव क्रिया कलापों के कारण बंजर हो गयी है, उसका छठा भाग ''बहुत ही ज्यादा बंजर की हद पार कर गया है।'' 80 प्रतिशत से ज्यादा नुकसान पानी और हवा के प्रदुषण से हो रहा है।

यह आगे कहती है कि विश्व के बहुत से क्षेत्र सन् 2032 में अपने जैव-विविधता और तटवर्ती पारिस्थितिकी व्यवस्थाओं को बुरी तरह बर्बाद होते चुप-चाप देखते रह जायेंगे।

बिना पर्यावरण के किसी भी प्रकार का आवश्यक विकास आज की अथवा भविष्य की नश्ल के साथ उचित व्यवहार करना नहीं हो सकता।

(ग) विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था पर दबाव बढ़ रहा है

विश्व निगरानी संस्था (डब्लू.डब्लू. आई.) की रिपोर्ट-2002 में पर्यावरण मामलों में अगुवा विचारकों ने 10 जनवरी को कहा कि विश्व की प्राकृतिक व्यवस्था 10 वर्षों में, जब पर्यावरण पर अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेस पृथ्वी सम्मेलन हुआ था, बदतर हुई है। इस दबाव की मार पृथ्वी के गर्म होने से लेकर मत्स्य क्षेत्रों तथा स्वच्छ पानी की कमी तक हो गयी है।

पर्यावरण और विकास पर 1992 की संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, जिसने आधिकारिक तौर पर प्रचलित विकास मॉडल-जो भौतिक प्रेरक, जीवाश्म ईंधन द्वारा चलित व अति उपयोग और उपयोग पर आधारित है, को एक चुनौती के रूप में पुकारा था।

1990 के दशक, में जबसे एक अधिक न्यायिक एवं पारिस्थिकी विश्व की तरफ सम्मेलन ने कदम भरे तथापि ये कदम बहुत ही छोटे, बहुत ही धीमे अथवा बहुत ही गैर-गंभीर कदम थे।

गर्मी बढ़ाने वाली ग्रीन हाउस गैस कार्बन डाई आक्साईड का विश्वव्यापी उत्सर्जन को ज्यादातर वैज्ञानिक पृथ्वी के गर्म होने का कारण मानते हैं, जो पिछले 10 वर्षों में 9 प्रतिशत बढ़ गई।

रिपोर्ट कहती है कि 19वीं शताब्दी में जबसे तापामान मापा जाना शुरू हुआ, 1990 का दशक सबसे गर्म दशक रिकार्ड किया गया, और वैज्ञानिक प्रमाणित करते है कि पिछली शताब्दी से अब तक समुद्रों का विश्वव्यापी औसत स्तर 10 से 20 सेन्टीमीटर बढ़ा है अमेरिका का उत्सर्जन 1990 से 2000 के बीच 18 प्रतिशत बढ़ा है।

सम्मेलन में विश्व की जैव-विविधता की सुरक्षा पर विचार-विमर्श के दौरान विलुप्त हो रही प्रजातियों की सुरक्षा बढ़ाने की जोरदार आवश्यकता को प्रदर्शित किया गया। सबसे बड़ी चुनौति फ्लोरा और फोना के प्राकृतिक आवास में कमी से है, जो कृषिकारी, पशु संवर्धन, खनन, लकड़हारी, शहरी फैलाव आदि से हो रही है।

विलुप्त हो रही प्रजातियों का प्रमुख निवास विश्व के जंगल 1990 के दशक से लगातार गायब हो रहे हैं। संयुक्त खाद्य एवं कृषि संगठन का वन संसाधन अनुमान 2000 के अनुसार 1990 से विश्वव्यापी जंगल का क्षेत्र 2.2 प्रतिशत कम हो चुका है।

कॉरल रीफ्स समुन्द्री प्रजातियों के लिए बेहद महत्वपूर्ण आवासीय क्षेत्र भी रियो सम्मेलन के बाद से खराब हो गयी। लगभग 27 प्रतिशत विश्व की कॉरल रीफ्स प्रदूषण,

समुद्र के पानी के गर्म होने, खनन तथा मछली उद्योग से संकट ग्रस्त हो गयी जो पृथ्वी सम्मेलन के समय 10 प्रतिशत थी।

जंगलों के बाद दूसरी बड़ी जैविक सम्पदा कॉरल रीफ्स में इस प्रकार का घातक नुकसान बहुत सी प्रजातियों को अनिवार्य रूप से भारी हानि पहुँचायेगा, रिपोर्ट में ऐसा कहा गया है।

1990 का दशक आर्थिक विकास में अप्रत्याशित वृद्धि-10 ट्रिलियन डालर से ज्यादा (100 खरब डालर) प्रतिवर्ष की बढ़ौतरी के साथ, का दशक था। यह दशक एक अरब से अधिक लोगों को निपट गरीबी में जीने के लिए बाध्य करने का दशक भी रहा। 1990 के दशक की समृद्धि के बावजूद बहुत से देशों में अमीर और गरीब के बीच भेद गहरा हुआ, सामाजिक और आर्थिक स्थिरता कमजोर हुई है।

रिपोर्ट कहती है एच.आई.वी./एड्स से मृत्यु 1990 के दशक में छः गुणा से ज्यादा हुई और सम्पन्न देशों में लोग औसत से ज्यादा जी रहे हैं जबकि विकासशील देशों में पानी-जनित बीमारियों से लगभग 14000 से 30000 लोग प्रतिदिन मरते हैं।

पर्यावरण पहलों में कम धन देने, विकासशील राष्ट्रों में पर्यावरणीय एवं सामाजिक विकास के लिए खर्च तथा ऋण में ठहराव का रिपोर्ट आरोप लगाती है।

वर्ल्ड वॉच के अनुसार रियो सम्मेलन का नतीजा मौसम परिवर्तन, विषैले रसायन और जैवविविधता पर नई संधियों सहित अन्तर्राष्ट्रीय शासन में कई बड़े विकास में निकलता है। करीब 500 से अधिक पर्यावरणीय संधियां और सहमतियां हुई थी। लेकिन उनमें से कुछ विशेष लक्ष्य और समय सारणी रखती थी और ज्यादातर निगरानी तथा लागू करने के कमजोर प्रावधानों की थी।

इसने कहा संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण प्रोग्राम लगभग 10 करोड़ डालर के अपने वार्षिक बजट को बनाये रखने के लिए संघर्ष में है। उसी वक्त विश्व की सरकारों का एक दिन का सैनिक बजट 200 करोड़ डालर से अधिक है।

वर्ल्ड वॉच ने कहा रियो सम्मेलन के बाद में विदेशी सहायता खर्च में भारी कमी, 1992 में 69 अरब डॉलर से 2000 में 53 अरब डॉलर तक हो गई है, बावजूद इसके कि विश्व आर्थिक निष्पादन में पिछले 10 वर्षों में 30 प्रतिशत का विस्तार हुआ।

हालांकि सम्मेलन में राष्ट्रों ने ऋण देने में वृद्धि का प्रण किया, विकासशील देशों और राष्ट्रों में ऋण भार तब आर्थिक लेन-देन में 34 प्रतिशत से चढ़ कर 2000 में 25 खरब (2.5 ट्रिलियन) डालर पहुँच गया।

(घ) मानव विकास की दुःखदायी स्थिति

मानव विकास की स्थिति यदि ज्यादा नहीं तो उतनी ही खराब है जितनी पर्यावरण की। यह दिन-प्रतिदिन के तथ्यों से स्पष्ट है।

2001 की संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट लिखती है : 21 वीं सदी की शुरूआत के साथ ही मानव विकास की चुनौतियाँ बढ़ गई। विकासशील देशों में 460 करोड़ लोगों में से 85 करोड़ से अधिक अशिक्षित हैं, लगभग 100 करोड़ शुद्ध पानी की पहुंच से दूर है और

240 करोड़ मूलभूत शौचालय सुविधाओं से वंचित है। करीब 32 करोड़ 50 लाख लड़के और लड़कियां स्कूल नहीं जाते। 5 साल से छोटे 1 करोड़ 10 लाख बच्चे प्रतिवर्ष संक्रामक रोगों से मर जाते है-जो लगभग 30000 प्रतिदिन से ज्यादा है। तकरीबन 120 करोड़ लोग एक डालर प्रतिदिन से कम पर तथा 280 करोड़ 2 डालर प्रतिदिन से कम पर जीवन बसर करते है। यह वंचितपन विकासशील देशों तक सीमित नहीं है। ओ.ई.सी.डी. (आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन) देशों में 13 करोड़ लोगों की कमजोर आय है, 3 करोड़ 40 लाख बेरोजगार और प्रौढ़ कार्यकारी अशिक्षा की औसत दर 15 प्रतिशत है।

विश्वव्यापी आय में असमानता भी उच्च है। 1993 में, विश्व के सबसे गरीब 10 प्रतिशत की आय विश्व के सर्वोच्च 10 प्रतिशत धनवानों की आय का 1.6 प्रतिशत थी। सर्वोच्च 1 प्रतिशत धनवानों की आय 57 प्रतिशत सबसे गरीब लोगों की आय के बराबर थी। सर्वोच्च 10 प्रतिशत अमेरीकी जनसंख्या (लगभग 2 करोड 50 लाख लोगों) की संयुक्त आय विश्व के 43 प्रतिशत सबसे गरीब (लगभग 2 अरब) लोगों की आय से ज्यादा थी।

रिपोर्ट स्वीकार करती है कि आज तकनीकी विकास से संबंधित-अनुसंधान, डिजाईन, उत्पादन, प्रचार-बहुत से मामले, सामाजिक फायदे की मान्यता के लिए नहीं बल्कि आर्थिक तौर पर शक्तिशाली एजेन्सियों के लाभ की गणना द्वारा संचालित किये जाते हैं।

सन् 2000 में ब्राजील के नौ अरबपतियों की कुल सम्पति 20 अरब डॉलर थी। भारत के नौ की 23 अरब डालर, मलेशिया के पाँच की 12 अरब डॉलर, मैक्सिकों के 13 की 25 अरब डॉलर तथा सऊदी अरब के पाँच अरबपतियों की सम्पत्ति 41 अरब डालर थी।

रिपोर्ट में पाया कि विश्व का वित्त और विकास, बचत और निवेश के रचनातंत्र के जरिए जुड़ा है। एक अनुमान के मुताबिक पिछले साल विश्वव्यापी बचत अथवा निवेश 75 खरब डालर था। जिनमें से 1.7 अरब डालर विकासशील देशों में निवेश किया गया। लेकिन समृद्ध देशों की सम्पत्ति का कुल स्थानान्तरण 450 अरब डॉलर का हुआ जिसमें से तीन चौथाई अमेरिका द्वारा खींच लिया गया।

रिपोर्ट कहती है कि बहुत से गरीब देशों द्वारा लिया गया विदेशी ऋण गरीबी घटाने और अन्य विकास लक्ष्यों को पूरा करने की क्षमता पर भारी दबाव बन गया है। विभिन्न वित्तीय सहायक साधनों की तरह ऋण सहायता भी एक साधन है, लेकिन कुछ मसलों में ऋण की समस्या अलंध्य बाधा बन जाती है और मान्यता के महत्त्व के लिए इसका तुरन्त समाधान अनिवार्य बन जाता है।

लाभ का असमान वितरण और ग्लोबल कानून बनाने में असंतुलन, जिसे आज ग्लोबेलाईजेशन कहा जाता है, अनिवार्य तौर पर ढीलापन और सरंक्षणवाद पैदा करता है।

1999 की मानव विकास रिपोर्ट कहती है : कि 1990 के दशक के अंत में विश्व जनसंख्या का ऊपर का पाँचवा भाग (यानि उपर के 20 प्रतिशत लोग जो सर्वोच्च आय वाले देशों में रहते हैं।) : विश्व के सकल घरेलु उत्पाद का 86 प्रतिशत तथा नीचे का पाँचवां भाग 1 प्रतिशत है; विश्व विदेश बाजार का 82 प्रतिशत तथा नीचे का पाँचवा भांग 1

प्रतिशत; विदेशी सीधे निवेश में 68 प्रतिशत तथा नीचे के पांचवा भाग 1 प्रतिशत; और विश्व टेलिफोन सेवाओं में 74 प्रतिशत (जो आज संचार का मूलभूत साधन है) तथा नीचे का पाँचवां भाग 1.5 प्रतिशत भाग रखते हैं।

यह आगे कहती है : विकाशील देशों के 4.5 अरब लोगों का एक चौथाई से अधिक लोग अभी तक जीवन की सबसे अधिक बुनियादी इच्छा–यानि 40 साल आयु पार करने की चाहत पूरी नहीं कर पाते, जानकारी तथा प्राइवेट और सार्वजनिक सेवाओं तक उनकी पहुँच नहीं है। लगभग 1 अरब 30 करोड़ लोगों को साफ पानी उपलब्ध नहीं है। प्राथमिक शिक्षा की आयु के 7 में से एक बालक स्कूल नहीं जाता। करीब 84 करोड़ कूपोषण के शिकार हैं एक अनुमान के अनुसार 1 अरब 30 करोड़ लोग प्रतिदिन 1 डॉलर से कम आय पर जीते है।

1996 की संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट कहती है, विश्व के तीन सर्वोच्च धनाड्य लोग सबसे गरीब 48 विकासशील देशों की संयुक्त सकल घरेलू उत्पादन के बराबर रखती है। विश्व के 225 सबसे अमीर लोगों की सम्पत्ति 10 खरब डॉलर से अधिक है जो 47 प्रतिशत गरीबों जिनकी संख्या 2 अरब 50 करोड़ की है, की कुल आय है। विश्व के 32 सबसे अधिक धनवानों की सम्पत्ति दक्षिण एशिया (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपान, भूटान और मालद्वीप) तथा इरान और अफगानिस्तान के सकल घरेलु उत्पाद से ज्यादा है।

वाशिगंटन डी.सी. आधारित आर्थिक एवं नीति अनुसंधान केन्द्र (सी ई पी आर) 1980 से 2000 (वह अवधि जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष/विश्व बैंक की ताकत बढ़ रही थी, सम्पूर्ण विकासशील दुनिया अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष/विश्व बैंक के संरचनात्मक समायोजन पैकेजों से जुड़ रही थी तथा सरकारी खर्च के प्रति कटु थी, सरकारी स्वामित्व का निजीकरण किया जा रहा था, व्यापार को उदार बनाया जा रहा था, अर्थव्यवस्था को निर्यात उन्नमुखी और शोषक विदेशी निवेश के लिए खोला जा रहा था) एवं इससे पहले के 20 वर्षों की अवधि (जब बहुत से गरीब देश स्वयं की उत्पादक क्षमता को विकसित करने तथा स्थानीय जरूरतों को स्वयं पूरा करने पर केन्द्रित थे) के बहुत ही सम्मोहित करने वाले तथ्यों की तुलना की है।

89 देशों का परिणाम, 77 प्रतिशत अथवा तीन चौथाई से अधिक देशों ने पाया कि प्रति व्यक्ति विकास दर (1960-1980) की तुलना में (1980-2000 की अवधि) में लगभग पांच प्रतिशत के बिन्दु से नीचे गिर गयी। मात्र 14 देशों यानि, 13 प्रतिशत ने देखा कि उनकी प्रति व्यक्ति विकास दर (1960-1980) से (1980-2000) में बढ़ी है।

यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई एम.एफ) और विश्व बैंक द्वारा मान्य संकेतों के अनुसार पिछले 20 वर्षों का कॉरपोरेट ग्लोबेलाईजेशन विश्व के गरीबों के लिए महाविनाशक, घोर विपत्ति का रहा।

पिछले दो दशकों से अधिक समय लैटिन अमेरिका का अनुभव, वृद्धि में स्थिरता और अफ्रिकन देशों का अनुभव आय में अचानक गिरावट का रहा।

केवल उन्हीं विकासशील देशों ने पिछले दो दशकों में अच्छी वृद्धि की है ये वो एशियन देश है जिन्होंने आई एम एफ और विश्व बैंक द्वारा सुझाए गए आदर्श नुस्खों की अनदेखी की।

2002 की संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट अभिव्यक्त करती है, कि विश्व के एक प्रतिशत सर्वोच्च धनाड्य, आय के मामले में नीचे के 75 प्रतिशत गरीबों की आय से ज्यादा प्राप्त करते हैं और विकासशील देशों के औसत गरीब व्यक्ति को ग्लोबल बाजार में अपने श्रम को बेचने में औद्योगिक देशों के मजदूरों के सामने आने वाली बाधाओं से दुगुनी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। दुनिया में अभी तक ऐसे दु:खद अन्याय विद्यमान है।

गरीबी कम करने की ग्लोबल प्रक्रिया 'कछुआ की चाल' जैसी धीमी है और 2015 में प्रतिदिन 1 डालर से कम पर जीवन यापन करने वाली विश्व जनसंख्या को ऊपर उठाने का अन्तर्राष्ट्रीय लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक पर अमीर देशों का नियंत्रण कम होना चाहिए। रिपोर्ट सुझाव देती है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों का वीटो-अधिकार समाप्त होना चाहिए और कहती है कि विश्व व्यापार संगठन में गरीबतम् देशों को भी उच्च अधिकार होने चाहिये।

(ड़) एक अन्यायकारी मानव सामाजिक व्यवस्था

मानव समाज एक अनुचित एवं अन्यायकारी सामाजिक व्यवस्था में रह रहा है जहां ताकतवर कमजोर पर हावी है और धनी-निर्धन पर सवार है–धन, ताकत और विशेषाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर, न्याय और सच्चाई के मान्य मानदण्ड बने हुए है।

यह तथ्य प्रथमत:, सभी विश्व संस्थानों के सिद्धान्त और कार्यशैली से स्पष्ट है। उदाहरण के लिये, संयुक्तराष्ट्र और इसकी एजेन्सियां 1945 के चार्टर द्वारा संचालित होती है जो कि सैनिक तौर पर विश्व के सर्वोच्च शक्तिशाली 5 राज्यों-यानि अमेरिका, चीन, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस को वीटो अधिकार एवं चुनिंदा सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता देता है। स्पष्टत: इस प्रकार के विशेषाधिकार पूर्णतया भेदभावपूर्ण और अन्याय पर आधारित है क्योंकि यह शेष 180 संयुक्त राष्ट्र सदस्यों की भूमिका को कम करता है। नैतिक और कानूनी तौर पर यह विश्व व्यापी रूप से स्वीकृत राजनीतिक समानता के सिद्धान्त–यानि एक इकाई एक वोट–का सार्वभौमिक मानक और प्रत्येक राष्ट्र के मानवाधिकार को नकारता है। जब संयुक्त राष्ट्र विभिन्न राज्यों के मानवाधिकारों के उल्लघंन के आधार पर हस्तक्षेप करता है तो वह स्वयं की तर्कसंगत आधार पर पुनर्संरचना क्यों नहीं करता जो उसे नये युग के मुताबिक प्रासंगिक बनाता है।

द्वितीयत: इसी तरह की अतार्किक एवं अलोकतांत्रिक शैली 2 अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों-आई एम एफ और विश्व बैंक में प्रचलित है जहाँ आर्थिक महत्व ही प्रत्येक सदस्य की मतशक्ति तय करता है। इस प्रकार ये संस्थाएं निश्चित तौर पर वित्तीय रूप से

विकसित देशों खासकर अमेरिका जो कुल मतशक्ति का 26 प्रतिशत मताधिकार रखता है, द्वारा संचालित है।

तृतीयत:, नई रचित सी टी बी टी व्यवस्था 5 बड़ी परमाणु शक्तियों को परमाणु शस्त्रों पर स्वाभाविक एकाधिकार प्रदान करती है। इस प्रकार यह उन्हें विश्व का अजेय अधिपति बनाती है।

चतुर्थ, कुछ विकसित देश, मुश्किल से विश्व जनसंख्या का 15 प्रतिशत, आज विश्व की 80 प्रतिशत भौतिक और वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण रखते हैं, 130 विकासशील देशों में रहने वाले विश्व के 85 प्रतिशत लोगों के लिए 20 प्रतिशत से कम संसाधन छोड़ते हैं।

पंचम्, महिलाएं विश्व जनसंख्या का आधा भाग पूरी दुनिया में लगातार गलत व्यवहार एवं बुरा बर्ताव की शिकार हो रही है।

षष्ठम, प्रत्येक देश की राष्ट्रीय परिस्थिति चल रही विश्व व्यवस्था से ज्यादा अलग नहीं है। 190 से अधिक देशों में उनकी विभिन्न भौतिक स्थिति, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक आर्थिक हालात के बावजूद सामाजिक जीवन की गुणवत्ता में कुछ रूपान्तरण के साथ एक बहुत बड़ी समानता है, खासकर विकासशील देशों में। उदाहरण के लिए लगभग सभी देशों (चाहे विकसित हो या विकासशील) में राजनीतिक प्रक्रिया पर धन की शक्ति का प्रभुत्व है। विकासशील देशों में यह बाहुबल और आदिकालीन मानदण्डों को साथ लिए हुए है। आर्थिक प्रक्रिया आमतौर पर गलाकाटू प्रतियोगिता, सट्टेबाजी और कालाबाजारी से चलित है। बेईमानी के मानक हर कहीं व्यवहार के सर्वमान्य मानदण्ड बने हुए है।

सप्तम्, लगभग हरेक देश में, भारी बहुमत की तुलना में, कुछ थोड़े से लोग विशेषाधिकार रखते है। प्रत्येक जगह विधायक विशेष संसदीय अधिकारों के तहत आम कानूनों से स्वतंत्र है। विकासशील देशों में शासक ग्रुप अकसर कानून का दुरूपयोग करके दण्ड से मुक्त हो जाता है। दुनिया में कहीं भी न्यायपालिका लोगों के प्रति जवाबदेह नहीं है। उल्टे किसी भी आलोचना को चुप करने के लिए यह सर्वत्र अदालत की अवमानना कानून का विशेषाधिकार रखती है। सरकारी गोपनीयता कानून लगभग सभी देशों में विद्यमान है जो अफसरशाही को सभी मामले ढकने और लोगों पर सवार होने एवं उनके साथ दुर्व्यवहार करने का अधिकार देता है। कानून लागू करने वाली संस्थाएँ दुनियां भर में व्यापक अधिकार रखती है। तीसरी दुनियां में वे इस प्रकार व्यवहार करते है जैसे वे स्वयं ही कानून हो। हर कहीं कानून धनवान और कानून तोड़ने वालों का पक्ष लेता हैं और गरीबों एवं वंचितों के विरूद्ध पक्षपाती है।

यह वह दुनिया है जहां बेईमान राजनीति, काला बाजारी और जी हजूरी का मानदण्ड सबसे ज्यादा लाभदायक व्यवसाय बन गया है। वास्तव में, विद्यमान अन्यायकारी व्यवस्था के ये मापदण्ड हैं।

उपर बताई गई सभी गंभीर चुनौतियां और खतरे मानव समाज के भीतर और इसका प्रकृति के साथ असांमजस्य को बताता है। अनिवार्य तौर पर वे मानव समुदाय की असंतुलित अवस्था को इंगित करते हैं।

II. जैव-पारिस्थितिकी संकट में मूलभूत और तात्कालिक कारण एवं इसकी समाज शास्त्रीय जड़ें

(क) जैव-पारिस्थितिकी संकट के मूलभूत और तात्कालिक कारण

अब इस धारणा पर सर्वत्र एक राय (लगभग सर्व सम्मति) है कि पर्यावरणीय पतन का कारण प्राकृतिक प्रक्रिया में निहित नहीं है बल्कि यह मानवीय क्रिया से घनिष्ट संबंधित है। अब लगभग सभी वैज्ञानिक समुदाय इस मान्यता को स्वीकार करते हैं। कोई भी मानव गतिविधि सामाजिक ढांचों (चाहे वह रीति रिवाजों के द्वारा अथवा आधुनिक संवैधानिक कानूनी रूपों में हो) के बाहर नहीं हो सकती चाहे वह गतिविधि सकारात्मक हो या नकारात्मक सामाजिक व्यवहार से जुड़ी होती है। अत: सार यह है कि हमारे जैव-पारिस्थितिकी संकट का कारण विद्यमान राष्ट्र आधारित व्यवस्था में निहित है।

उपर्युक्त विचार का पुख्ता प्रमाण इस तथ्य से देखा जा सकता है कि पर्यावरणीय पतन का नुकसानदेह तरीका राष्ट्र आधारित राज्य व्यवस्था के साथ ही शुरू हो गया। यह प्रक्रिया पर्यावरण विरोधी तकनीकों--जो ग्रीन हाउस गैसों को पैदा करती है; के उपयोग के साथ ही शुरू हो गई है। आज, पर्यावरण प्रदूषण का दृश्य इस ग्रह की सम्पूर्ण जैव-जीवन को चुनौति दे रहा है।

इस प्रकार, तथ्य यह दर्शाते हैं कि मानव समाज में असमानता और गरीबी की प्रक्रिया इसी व्यवस्था के उभरने के साथ ही शुरू हो गई। इससे पहले, असमानता और गरीबी का विषय कहीं-कहीं प्रकट होता था न कि एक आम रूझान जैसा कि राष्ट्र राज्य व्यवस्था की उत्पत्ति के साथ यह बन गया है। यह बहुत से प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियां और संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत तथ्यों से देखा जा सकता है जो मानते हैं कि अमीर और गरीब देशों के बीच भेद सन् 1820 (जब राष्ट्र सामाजिक मंच पर प्रकट हुआ) के आस पास शुरू हुआ। उस समय यह 3 से 1 था जबकि आज यह 100 से 1 है। यह राष्ट्र राज्य विकास मॉडल के तहत पिछले 130 वर्षों में 33 गुना बढ़ा है।

राष्ट्र-राज्य व्यवस्था का मूलभूत दोष इसके विकास मॉडल में निहित है जिसकी एक मात्र नैतिकता अधिकतम लाभ अथवा स्वहित की पूर्ति करना है और जो न पर्यावरण की और न ही मानव की देखभाल करता है। राष्ट्र-राज्य व्यवस्था के समर्थक तर्क करते है कि इस व्यवस्था का शुरूआती अवस्था में जो कुछ भी हुआ वह पर्यावरण के बारे में मानव की अज्ञानता के कारण हुआ लेकिन आज इसका रिकार्ड क्या है जब पर्यावरणीय पतन से मानव के अस्तित्व को चुनौती आ रही है। जब सर्वोच्च विध्वंश का जैव-पारिस्थितिकी संकट मानव समुदाय का दरवाजा खटखटा रहा है। यहां तक कि इसका मुखिया अमेरिका क्यूटो प्रावधान स्वीकार करने से भी इनकार करता है—जो ग्रीन हाउस गैसों का मामूली भाग कम करने का एक कमजोर प्रयास है।

इस व्यवस्था का तात्कालिक दोष इसे चलाने वाली संस्था अथवा सरकार से संबंधित है। केवल मात्र स्व-हित की दिशा लिये राष्ट्र सरकारों के नेता (जो प्रत्येक देश में पार्टी व्यवस्था पर आधारित है) अपने लिए धन बटोरने में और जैसे-तैसे सत्ता पर अन्तहीन कब्जा जमाएँ रखने में लगे हैं। उनको लोगों के हितों अथवा किसी जैव-

पारिस्थितिकी संकट से कोई लेना-देना नहीं हैं। उनकी जीवन-शैली ''कहना कुछ करना कुछ'' है। वे हमेशा गरीबों और वंचितों के लिए आँसू बहाते है। लेकिन हर वक्त अमीर और प्रभुत्वशाली लोगों की सेवा करते हैं।

राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में राष्ट्रवाद ने पार्टी आधारित लोकतंत्र को धन और सत्ता आधारित राजनीतिक संस्कृति को लोकप्रिय बनाकर तथा व्यवहार में लाकर प्रदूषित कर दिया है जिससे पार्टी राजनीति को अवसरवादी रजानीति में रूपान्तरित कर दिया है। जिसका परिणाम मानवाधिकार के उल्लघंन, अल्पसंख्यक भेदभाव, माफियावाद, अपराध और अराजकता आदि में निकला है।

राष्ट्रीय संस्कृति के मामले में, इसने एक नये प्रकार की उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है जो स्वहित को ही बढ़ाती है और गलत या सही तरीके से प्राप्त धन और सत्ता से प्यार करती है। धन और सत्ता के अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इसने लगभग 200 वर्षों तक पूरी दुनिया में निर्दयी उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया और 20 वीं शदी के प्रथम अर्द्ध शताब्दी में दो आक्रमक विश्वयुद्ध लड़े, परिमाणत: लाखों लोग मरे, लाखों से ज्यादा घायल हुए और अरबों डालर की सम्पत्ति नष्ट हुई।

विदेशी मामलों में इसने आमतया स्वार्थ परायण नीति जिसके अपने लाभ कमाने के उद्देश्य थे, का अनुसरण किया।

ऊपर बताये गये तथ्य दर्शाते है कि अब हमारे ग्रह के सामने प्रस्तुत संगीन चुनौतियां और इसके बहु घटनाक्रम हमारे क्षीण हो रहे राष्ट्र-राज्य व्यवस्था की उपज है जो अब नई उभर रही विश्व-व्यवस्था में रूपान्तरित हो रही है।

स्पष्टत: यदि हमारे जैव-पारिस्थितिकी संकट के वास्तविक कारण को समझने में असफल रहे तो हम इसका ठीक तरीके से जवाब देने के अयोग्य रहेंगे।

(ख) जैव-पारिस्थितिकी संकट की समाजशास्त्रीय जड़ें

राष्ट्र-राज्य व्यवस्था के समाजशास्त्रीय दोष कहाँ निहित है? ऐसे प्रथम दोष की उत्पत्ति इसके प्रकृति की व्यवस्था में मानव की भूमिका के एकतरफा दर्शन की समझ से पैदा होता है। यह मानता है कि हमारे ग्रह पर और कुछ मामलों में ब्रह्माण्ड में मानव सर्वोच्च घटनाक्रम है। यह धारणा लोगों को मानव समाज की रचना और इसके अन्दर सब कुछ करने के लिए एक मात्र निर्माण कर्त्ता प्रस्तुत करती है। इस सामाजिक तथ्य की उपेक्षा करती है कि मानव समाज में परिवर्तन और विकास एक तरफ प्रकृति और समाज के बीच और दूसरी तरफ स्वयं मानव समाज के अन्दर दो तरफा अन्तर क्रिया के कारण होती है।

दूसरा दोष इसके मानव प्रकृति की एक तरफा समझ से निकलता है यह समझ विचार करती है कि मानव प्रकृति से स्वार्थी है, इस प्रकार मनुष्य दो तरफा चरित्र की सामाजिक वास्तविकता को नकारती है। यानि, एक तरफ स्वहित (जो इसके जैविक व्यक्तिवाद से पैदा होता है), और दूसरी तरफ सामाजिक (जो समाज के एक सदस्य के नाते सामाजिक पहचान से उत्पन्न होती है।) इसका अर्थ है कि मनुष्य एक जैव-सामाजिक प्राणी है।

तीसरा दोष सामाजिक विकास (अथवा सामाजिक समृद्धि और प्रगति) की एक तरफा समझ से पैदा होता है। यह सामाजिक विकास को केवल आर्थिक रूप से ही अथवा दूसरे शब्दों में मानव की भौतिक जरूरतों के सन्दर्भ में ही मानती है। यह बराबर महत्व के तीन अन्तर निहित मानवीय आयामों जैसे अस्तित्व (यानि पर्यावरणीय), मनोवैज्ञानिक (यानि सोचने और कार्य करने की स्वतंत्रता) और सामाजिकता (यानि सभी भौतिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में समता और न्याय) की अनदेखी करती है। सामाजिक समाज की इसकी समझ केवल आर्थिक उपलब्धि, जो केवल आर्थिक लाभ (अथवा आर्थिक विकास दर) को ही सामाजिक विकास का एक मात्र सूचक निर्धारित करती है। इस प्रकार धन को मानव अस्तित्व का एक मात्र आदर्श बनाती है।

चौथा दोष इसकी परम्परागत राजनीतिक मान्यता की कठमुल्ला और अवास्तविक समझ से जन्म लेता है जो ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' यानि ताकत को ही एक चिरस्थायी सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, जो विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति से असंबंधित है। इस प्रकार यह यांत्रिक विचार इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को नुकसान पहुँचाता है कि प्रत्येक चीज विशिष्ट समय और स्थान से संबंधित है। तदनुसार जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धान्त आज हानिकारक बन गया है। क्योंकि विद्यमान सामाजिक वास्तविकता विभिन्न राष्ट्रों और समाजी नश्ली समुदायों का एक ही विश्व मानव इकाई में एकीकृत करते हुए उनके बीच सभी प्रकार के सहयोग की मांग करती है। निश्चयवाद आधारित जिसकी लाठी उसकी भैंस की धारणा अब मानव अस्तित्व के लिए राजनीतिक सत्ता ही सर्वोपरि एवं सब कुछ है की धारणा में बदल चुकी है।

पाँचवा दोष इसकी नैतिक धारणा के एक तरफापन में निहित है जो मानता है कि 'अन्त भला तो सब भला'। इस प्रकार की धारणा इसे अधिक से अधिक लाभ कमाने के अपने विकास उद्देश्य को सभी प्रकार के छल कपट एवं धूर्ततापूर्ण कार्यवाहयों (जैसे, भ्रष्टाचार, काला बाजारी, धोखाधड़ी आदि) के जरिये पूर्ण करने में मदद करती है और इसकी दोगली राजनीतिक शैली कहना कुछ और करना कुछ को उचित ठहराती है।

ऊपर बताये गये राष्ट्र राज्य-व्यवस्था (अथवा निगमित या राज्य आधारित व्यवस्था) के समाज शास्त्रीय सिद्धान्तों ने मानवीय उद्देश्य को नुकसान पहुँचाया है। अन्ततः इससे चल रहे घातक जैव-पारिस्थिकी संकट को चरम सीमा पर पहुँचाया है।

उदाहरणतया, पहला सिद्धान्त जो मानता है कि प्रकृति की रचना में मानवजाति एक उत्कृष्ट घटनाक्रम है, अन्य प्राकृतिक घटनाक्रमों को अपनी सुविधानुसार दोहन करने का लाइसेन्स देता है।

दूसरा सिद्धान्त, जो स्वहित को मानव जाति का बुनियादी नैसर्गिक चरित्र पेश करता है, प्रत्येक मनुष्य को मानव समुदाय एवं पर्यावरण दोनों की कीमत पर अपने हितों की पूर्ति करने का अधिकार देता है।

तीसरा सिद्धान्त, जो लाभ को मानव समृद्धि एवं प्रगति का एक मात्र उद्देश्य पेश करता है, लाभ कमाने वालों को सम्पूर्ण समाज द्वारा पैदा की गई सम्पदा में से एक बड़ा हिस्सा लेने का हकदार बनाता है। इस प्रकार अमीर-गरीब की खाई पैदा करता है और शेष लोगों को गरीबी, बेकारी, बीमार स्वास्थ्य और अशिक्षा का शिकार बनाता है।

चौथा सिद्धान्त, ताकत को सत्ता का स्त्रोत बनाता है, ताकतवर का कमजोर पर प्रभुत्व का अनुमोदन करता है।

पाँचवा सिद्धान्त, जो दोगले आचरण को व्यवहार का मापदण्ड प्रचारित करता है, जो लोगों के उद्देश्य को हानि पहुँचाता है और धोखेबाज एवं झासे बाजों को लाभ पहुँचाता है।

बहुत ही महत्वपूर्ण बिन्दू जो यहाँ ध्यान देने वाला है वह यह है कि स्वहित के सिद्धान्त ने मानव समाज में बहुत ज्यादा बिगाड़ पैदा किया है। इसने हमारे वर्तमान समाज में स्वार्थ की प्रवृत्ति को मजबूत किया है, इस प्रकार मनुष्य के जैव-सामाजिक चरित्र के अन्य सामाजिक लक्षणों को कमजोर किया है। परिणामस्वरूप स्वार्थ आज के तथ्यों से प्रत्यक्षतः लगभग प्रत्येक मनुष्य का प्रमुख प्रेरक कारक बन गया है। जो उसकी मानसिकता, उद्देश्य, प्राथमिकता, साधनों और स्वरूपों को निर्धारित करता है।

धन और सत्ता जो किसी के हित (अथवा स्वहित) पूर्ति को अभिव्यक्त करते हैं, पूरी दुनिया इन दो जीवनदायी अमृत के पीछे भाग रही है। धन और सत्ता प्राप्ति के व्यवहार ने (जो सर्वोच्च गैर-टिकाऊ पर्यावरणीय और बहुत ही अन्यायकारी और असमानता वाली मानवीय व्यवस्था में ले जाती है।) अब दुनिया को गंभीर पर्यावरणीय और मानवीय महाविपदा के किनारे ला दिया है।

वास्तव में, स्वहित जानवरों की मूलभूत प्रवृत्ति है, जबकि मनुष्य, जब से उसका होमो सेपीयन (**Homo Sapien**) में रूपान्तरण हुआ, उसकी प्रकृति स्वाभाविकतः जैव-सामाजिक है। आधा सामाजिक लक्षण ही वह गुण है जो मानव प्रजाति को जानवरों की प्रजाति से अलग करती है। जब मनुष्य सामाजिक पक्ष को छोड़ता है तब वह एक तरह से जानवर की जीवन शैली में बदल जाता है।

III. जैव-पारिस्थितिकी संकट का जवाब एक प्रकृति-मानव केन्द्रित कार्यक्रम से मिल सकता है

अपने ग्रह, मानव समाज एवं जैव-पारिस्थितिकी संकट की अखण्ड व अन्तरनिर्भर प्रकृति को पहचानते हुए, तर्कसंगत निष्कर्ष है कि वर्तमान राष्ट्र-राज्य को एक अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर पुर्नगठित किये बिना जब कोई भी गंभीर समस्या प्रभावी ढंग से हल नहीं की जा सकती है तो ऐसी स्थिति में अत्यधिक चुनौतीपूर्ण जैव-पारिस्थितिकी संकट को हल करने की सोचना ही असंगत है। इसलिए हमारे लिए एक 3-बिन्दु आधारित समन्वित कार्यक्रम को स्वीकार करना उचित है। ये तीन बिन्दू है–(अ) वर्तमान सामाजिक जमीनी वास्तविकता को देखना। (ब) तात्कालिक कार्यक्रम बनाना जो जमीनी वास्तविकता को जवाब दे (स) एक दीर्घकालीन व्यवस्थागत पुनर्गठन कार्यक्रम को तैयार करना।

1. एक अतिचिन्ताजनक सामाजिक जमीनी वास्तविकता

तथ्य जो बिल्कुल स्पष्ट है तथा जिन्हें अब दुनिया जान चुकी है। जिनमें से प्रमुख है–

(क) पर्यावरणीय स्तर पर

1972 में स्टॉकहोम कान्फ्रेंस तथा 1992 में रियो पृथ्वी सम्मेलन में पर्यावरण के तौर पर वैज्ञानिक समुदाय ने गंभीर चेतावनी दी थी कि यदि मानव ने अपनी गैर-टिकाऊ जीवन शैली को पूरे तौर पर बरकरार रखा और यदि इसमें सुधार नहीं किया तो इस ग्रह को पर्यावरणीय विनाश के अस्वीकार्य स्तर पर मानवीय विपदा का सामना करना पड़ेगा। पिछले कुछ दशकों में–बढ़ती हुई पृथ्वी की गर्मी, मौसमी विकृति के कारण एक तरफ सूखा तथा दूसरी तरफ बाढ़, कुछ स्थानों में पानी प्रदुषण तथा दूसरी जगहों पर पीने के पानी की कमी, घटती हुई भूमि उर्वकता तथा बेकार रेत का फैलाव व बढ़ती हुई असहनीय जीवन परिस्थितियों के कारण अनेक प्रकार की जीव प्रजातियों के लगातार लोप होने, इत्यादि– विभिन्न रूपों से आघात पहुँचाया है।

(ख) मानव विकास के मोर्चे पर

सबसे ज्यादा दु:खदायी तथ्य है कि जैव-पारिस्थितिकी संकट के प्रति बहुत कम जन जागृति है। आज मानव मानसिकता प्रमुख रूप से धन व सत्ता की प्रेरणा लिए हुए है। इस तरह की मानसिकता इससे स्पष्ट हो जाती है कि लगभग सभी देशों में (कुछ के अलावा) लोग उन्हीं दुषित राजनीतिज्ञों के पक्ष में मत देते हैं जो जैव-पारिस्थितिकी संकट को बढ़ाने में तथा भ्रष्टाचार एवं आपराधिक राज्य ढांचे को कायम रखने में अपनी भूमिका अदा करते हैं और कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र जो आज दुनियां का शीर्ष संगठन के रूप में जाना जाता है। इतना कमजोर है कि वह अपने बलबूते पर विश्व की किसी भी प्रमुख समस्या को निपट नहीं सकता। कमजोरी का कारण उस समय का शक्ति संतुलन था, न कि लम्बे शीत युद्ध काल में उसकी स्थिति और ना ही शीतयुद्ध के बाद कुछ समय में उसकी स्थिति। संयुक्त राष्ट्र की अनदेखी की शुरूआत 1990 के दशक में शुरू हुई, जब संयुक्त राष्ट्र की मंजूरी के बगैर नाटो की बोस्निया, युगोस्लाविया और कोसोवो पर एकपक्षीय कार्यवाही हुई। संयुक्त राष्ट्र की अनदेखी 11 सितम्बर, 2001 को वाशिगंटन व न्यूयार्क में आंतकवादियों द्वारा हमले के बाद में एक प्रवृत्ति बन गई है जब संयुक्त राज्य अमेरिका सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य होने के बावजूद सुरक्षा परिषद की मंजूरी के बगैर अफगानिस्तान के विरुद्ध एक तरफा हमला बोल दिया। तो भी इसकी चिरस्थायी कमजोरी के बावजूद, संयुक्त राष्ट्र की सकारात्मक भूमिका भले ही पूर्व में हो वर्तमान में भुलाई नहीं जा सकती और न भुलाई जानी चाहिये।

अमेरिका आज दुनियां में बेलगाम पुलिसमैन के रूप में जाना जाता है। अफगानिस्तान में इसकी एकल सैनिक सफलता के बाद यह और ज्यादा एक पक्षीयवाद व युद्धकारी बन गया है। अब इसके स्वयं के द्वारा आरोपित आतंकवाद–जिसे न तो संयुक्त राष्ट्र के द्वारा ना किसी संयुक्त राष्ट्र के सदस्य द्वारा अभी तक परिभाषित किया–के विरुद्ध सतत युद्ध की घोषणा कर दी है। इसके आक्रमण के प्रथम लक्ष्य इसके द्वारा घोषित दुर्जन देश जैसे इराक, ईरान, उत्तरी कोरिया, इत्यादि जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य है तथा जो किसी भी तर्क पर आतंकवादी के रूप में चरित्रित नहीं किये जा सकते। चीन,

रूस व यूरोपियन देशों सहित दुनिया भर में अमेरिका की यह नवघोषित आक्रमणकारी योजना अस्वीकृत हुई है। लेकिन अमेरिका अभी तक अपनी इस नयी युद्ध योजना को बढ़ाने पर नरम नहीं पड़ा है।

घातक जैव-पारिस्थितिकी संकट के साथ ही अमेरिका-नीत विश्व कॉरपोरेट मॉडल भी गंभीर संकट में है। कॉरपोरेट लाभ कम हो रहे हैं। बहुत सी शीर्ष कॉरपोरेट कम्पनियां विशेषतौर पर अमेरिका में बड़े गबन और घोटाले में सम्मिलित पायी गयी है। कारपोरेट के सम्पत्ति पैदा करने तथा समृद्धि एवं प्रगति उत्पन्न करने की एक सामाजिक संस्था होने के इसके दावे का भण्डाफोड़ हो चुका है।

विकास प्रक्रिया एक अनसुने संकट का सामना कर रही है, जो मानवजाति के सामने एक बहुत गंभीर चुनौति पेश कर रही है।

गरीबी-अमीरी का अंतराल अप्रत्याशित पैमाने पर बढ़ रहा है।

गरीबी तथा बेरोजगारी तेजी से फैल रही है।

सैनिक बजट (जो टिकाऊ विकास का निष्कासन है) तेजी से बढ़ रहा है। जबकि सामाजिक विकास पर खर्च कम होते जा रहे है।

राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों एवं इसके कार्यवाहकों को अपने दायरे में लेते हुए भ्रष्टाचार, अपराध, हिंसा और आत्महत्याओं का दायरा दुनिया भर में तेजी से बढ़ रहा है।

मानवाधिकारों का उल्लंघन, अल्पसंख्यकों एवं अन्य कमजोर तबकों के विरूद्ध भेदभाव तथा महिलाओं पर अत्याचार बढ़ौतरी पर है।

नश्लीय तनाव बढ़ रहे हैं।

विभिन्न प्रकार की नयी एवं पुरानी रूढ़ीवादी धारणाएं लोगों को भ्रमित एवं विभाजित कर रही है।

2. तात्कालिक कार्यक्रम

विद्यमान मुसीबतपूर्ण सामाजिक जमीनी वास्तवकिता के मद्देनजर संयुक्त राष्ट्र महासभा भविष्य में पैदा होने वाली संभावित असाधारण परिस्थितियों से निपटने के लिए वर्तमान सुरक्षा परिषद को एक अन्तर्राष्ट्रीय आपदा प्रबंध परिषद (आई ई एम सी) में तब्दील करें। पहले से ही, हर साल बढ़ रहा सूखा, बाढ़, महामारी इत्यादि पर्यावरणीय विपदाए और गरीबी, बेरोजगारी, अपराध, सामाजिक हिंसा जैसे सामाजिक मामलों के लिए ऐसे संगठन की आवश्कता महत्वपूर्ण हो गयी है।

यह परिषद सभी तरह के युद्धों पर रोक लगाने के लिए हों, भले ही ये युद्ध महाशक्ति या अन्य किसी देश द्वारा किया जाने वाला हों। इसे आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका का युद्ध सहित सभी तरह के होने वाले युद्धों पर रोक लगानी चाहिये। यदि कोई देश किसी दूसरे देश के विरूद्ध शिकायत रखता हो तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय आपात प्रबंध परिषद के पास आना चाहिये तथा एक तरफा कार्यवाही का सहारा नहीं लेना चाहिये। यदि परिषद का सदस्य किसी दूसरे देश के खिलाफ सैनिक कार्यवाही के आई ई एम सी के निर्णय को चुनौती देता है तो आई ई एम सी की शिकायत पर साधारण सभा उस देश के विरूद्ध कोई

भी कार्यवाही करे। आई ई एम सी को विश्व में सभी बकाया अन्तर-राज्य राजनैतिक मतभेदों को संबंधित सभी पक्षों के हित को ध्यान में रखते हुए न्यायिक समझौतावादी समाधान के आधार पर सुलझाने की कोशिश करनी चाहिये। सभी वित्तीय तथा व्यापारिक मतभेदों को जैसा कि साधारणत: होता है अन्तर्राष्ट्रीय वित्त एवं व्यापारिक संस्थाओं या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को भेजा जाना चाहिये।

इसे उन सभी राज्यों, जो आंतरिक कलह से ग्रसित है, अगर वे कहे तो ऐसे मामलों को मैत्रीपूर्ण सुलझाने के लिए उन्हें पूरा सहयोग व सहायता देनी चाहिए।

इसे संयुक्त राष्ट्र शिखर सम्मेलन या अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हुए पिछले सभी पर्यावरणीय और मानव विकास संबंधि फैसलों को पूरा करने की हर संभव कोशिश करनी चाहिये। प्रमुख पर्यावरणीय समझौतों में सम्मिलित है–1992 का रियो कार्यक्रम 21, रियो जैव-विविधता बैठक, वनसंरक्षण पर रियो कथन, रियो ग्लोबल ताप समझौता, 1997 का क्योटो संलेख, जबकि प्रमुख मानव विकास मुद्दों में शामिल है–जनसंख्या एवं विकास पर 1994 का संयुक्त राष्ट्र काहिरा सम्मेलन, सामाजिक विकास पर 1995 का संयुक्त राष्ट्र कोपेनहेगन कान्फ्रेस, लिंग समानता एवं विकास पर 1996 का पिकिंग सम्मेलन, संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी सम्मेलन-2000, विकास पर संयुक्त राष्ट्र बैठक-2002

इसे सभी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनों व अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनों के निर्णयों को देशों में लागू करवाने पर जोर देना चाहिये।

इसे पानी की कमी वाले देशों में पेय जल की आपूर्ति तथा संग्रह के लिए एक आपात ग्लोबल योजना तय करनी चाहिये।

इसे उन सभी के लिए जो गरीबी रेखा से नीचे तथा पूरी तौर पर बेरोजगार है उनको वाजिब सुरक्षा भत्ता दिलाने के लिए प्रत्येक देश द्वारा तैयार एक दीर्घकालीन सामाजिक सुरक्षा योजना लागू करनी चाहिये।

इसे संयुक्त राष्ट्र के लिए वित्तीय साधन पैदा करने की युक्ति निकालनी चाहिये–जैसे कि कुछ निश्चित ग्लोबल लेने-देने पर उगाही; उदाहरण के लिए–शस्त्र बिक्री, हवाई यात्रा, मुद्रा-विक्रय (परिवर्ती टोबिन टेक्स) अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह तथा दूसरे ग्लोबल मनोरंजन क्रियाकलाप इत्यादि।

3. दीर्घकालीन कार्यक्रम : एक प्रकृति-मानव केन्द्रित प्रतिमान

दीर्घकालीन कार्यक्रम इंगित करता है कि शिखर बैठक चल रही राष्ट्र-राज्य व्यवस्था के मूलभूत संघटकों को आधुनिक बनाने की आवश्यकता तथा इसके ग्लोबल संयुक्त राष्ट्र आयामों पर विचार करें। वर्तमान राष्ट्रीय मॉडल (जो 19 वीं सदी में तथा 20 वीं सदी के शुरू में उपजा तथा जिसके संयुक्त राष्ट्र आयाम 1945 के बाद प्रभावी बने) के पुर्नगठन करने की आवश्यकता जो तथ्य पैदा करते है वे हैं- पिछली सदी की पुरानी सामाजिक दशा से उत्पन्न होना तथा उनकी प्रासंगिकता रखना। इसने (यानि राष्ट्र-राज्य व्यवस्था ने) एक अन्तरनिर्भर राष्ट्र-राज्यों की नयी उभरी विश्व-व्यवस्था से अपनी प्रासंगिकता खो दी है। अत: नयी परिस्थितियों की मांगों से सामना नहीं कर सकता। अप्रासंगिक हो रही व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तों जिनकी पुर्नसंरचना की आवश्यकता है, उनमें से है–

इसकी दृष्टि, प्राथमिकता, विकास मॉडल, शांति तथा स्थिरता, राजनीति, आर्थिकता, मूल्य-व्यवस्था, दृष्टिकोण, मनुष्य की जैव-सामाजिक प्रकृति आधारित सामाजिक ढांचा, इत्यादि।

प्रकृति-मानव केन्द्रित दृष्टि

हमारे ग्रह की अखण्ड एवं अन्तरनिर्भर प्रकृति तथा 21 वीं सदी की राष्ट्र-राज्य की अन्तरनिर्भर सामाजिक वास्तविकता, प्रकृति-मानव केन्द्रित प्रतिमान एक विश्व की दृष्टि प्रदान करता है। जबकि 1945 का संयुक्त राष्ट्र चार्टर सम्प्रभुता व स्वतंत्र राष्ट्र की एक ऐसी दृष्टि देता है जो वर्तमान वास्तविकता के उलट है।

प्रकृति-मानव केन्द्रित दृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त

ऊपर वर्णित दृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त में सर्वप्रथम लोगों एवं पर्यावरण को ग्लोबल क्रियाकलापों के केन्द्र में रखा जाना चाहिये यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा करना तथा दूसरी तरफ पर्यावरण को संरक्षित करना।

एक प्रकृति-मानव केन्द्रित विश्वव्यवस्था

प्रकृति-मानव केन्द्रित दृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त तथा पर्यावरण-मानव प्राथमिकता मांग करती है कि संयुक्त राष्ट्र एक जनवादी आधारित तरीके एवं संगठन के रूप में पुर्नगठित हो। लेकिन संयुक्त राष्ट्र जैसा आज है, इस गुण की कमी रखता है। संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा का ढांचा व कार्यप्रणाली बिल्कुल लोकतांत्रिक है। लेकिन इसकी शीर्ष निर्णयकारी इकाई अर्थात सुरक्षा परिषद जो अत्यधिक अनुचित तथा पूर्णरूपेण अप्रजातांत्रिक कायदों-जैसे सैनिक दृष्टि से सबसे ताकतवर देशों के लिए स्थायी सदस्यता का विशेष वीटो पावर; से चरित्रित है।

स्पष्ट तौर से, इस वक्त, इस संगठन के पूर्ण लोकतांत्रिकरण की किसी भी तरह की कोशिश को पांच सदस्यीय सुविधा क्लब के भारी विरोध का सामना करना पड़ेगा। इसलिए वर्तमान ग्लोबल शक्तिसंतुलन को ध्यान में रखते हुए यह दिखता है कि सुरक्षा परिषद का पूर्ण जनवादीकरण में कुछ और समय लगेगा। थोड़े समय के लिए जब तक चल रहे शक्ति संतुलन में परिवर्तन हो तब तक स्थायी सदस्यता का नियम रखते हुए विशेष वीटो-पावर का नियम हटा लेना चाहिए। सुरक्षा परिषद की बाकी सभी सीटे साधारण सभा द्वारा चुनाव के जरिए भरी जानी चाहिए।

धनवान देशों का अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व-बैंक के ऊपर से नियन्त्रण कम हो तथा सबसे गरीब देशों का विश्व व्यापार संगठन में अधिक अधिकार दिये जाये।

एक प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल

जन-पर्यावरण प्राथमिकता का मूलभूत सिद्धान्त (जो मानव विकास के लिए अनिवार्य है) एक नये प्रकार का विकास मॉडल की मांग करता है। जो पांच स्तरीय बुनियादी सिद्धान्त यानि, पर्यावणीय टिकाऊपन, समता (अथवा सामाजिक न्याय), उत्पादकता, लोकतांत्रिक और पारदर्शिता पर टिका है। ये पांच स्तरीय बुनियादी सिद्धान्त मानव के

जैव-सामाजिक चरित्र से मेल खाते हैं, अर्थात यह मनुष्य के स्वहित को सामाजिक हित से जोड़ता है।

जन-पर्यावरण आधारित विकास मॉडल दो रूढ़ीवादी राष्ट्रीय विकास मॉडलों यानि निगम चलित और सरकार निर्देशित की तुलना में विकास की समयानुकूल धारणा प्रस्तुत करता है। निगम चलित विकास मॉडल केवल लाभ या उत्पादकता (जो केवल धन के स्वामियों का हित सुरक्षित करता है) को एक मात्र लक्ष्य बनाता है जबकि सरकार निर्देशित मॉडल उत्पादन के साधनों का एक मात्र उद्देश्य सामाजिकता (या राष्ट्रीयकरण) का चुनता हैं। (जो शासक राजनीतिज्ञों और अफसरों के हितों की सेवा करता है।) ये दोनों रूढ़ीवादी राष्ट्रीय मॉडल मनुष्य के जैव-सामाजिक चरित्र के उलट केवल स्वहित को ही पूरा करते हैं, जैव सामाजिक चरित्र स्वहित और सामाजिक हित दोनों को जोड़ता है। फिर, वे पर्यावरण को कोई प्राथमिकता नहीं देते, और आर्थिकता अथवा विकास प्रक्रिया में लोकतंत्र और पारदर्शिता के मानदण्डों के पालन को कोई स्थान नहीं देते हैं, आगे जबकि कॉरपोरेट (निगमित) मॉडल समता (अथवा सामाजिक न्याय) के सिद्धान्त को पूर्णतया अस्वीकार करता है वहीं सरकार निर्देशित मॉडल राजनीतिक समानता और उत्पादकता को पूर्णतया नकारता है।

यह मॉडल निगम चलित और राज्य आधारित दोनों विकास मॉडलों से उनके उद्देश्यों, प्रबंध और शैली के मामलों में भिन्नता रखता है।

जबकि निगमित मॉडल पूँजी एवं पूँजी के मालिकों को विकसित करने के लिए और राज्य मॉडल इसके शासक राजनीतिज्ञों और अफसरों के साथ मजदूर कुलीनता के हितों को आगे बढ़ाता है, प्रकृति-मानव केन्द्रित मॉडल आमतौर पर लोगों और पर्यावरण के हितों की तथा खासतौर पर गरीबों और वंचित तबकों की सेवा करता है।

प्रबंध में जबकि कॉरपोरेट सेक्टर एकाधिकारवादी कॉरपोरेट प्रबंध एवं नियंत्रण का पक्षपोषण करता है और राजकीय क्षेत्र एकाधिकारवादी अफसरशाही प्रबंध एवं नियंत्रण का समर्थन करते हैं, प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल में स्थायी कॉरपोरेटरों की जगह संयुक्त कमेटियों द्वारा चुनी गयी पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों द्वारा लोकतांत्रिक प्रबंध एवं नियंत्रण होता है। प्रत्येक संयुक्त कमेटी में 2/3 सदस्य साधारण शेयर धारियों द्वारा चुने हुए तथा 1/3 सदस्य मजदूरों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते है।

शैली में, अधिकनायकवादी और गोपनीय कॉरपोरेट एवं राजकीय शैली के उलट प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल लोकतांत्रिक पारदर्शिता और जवाबदेही की शैली पर आधारित है।

एक स्थायी और टिकाऊ विश्व शांति और सुरक्षा

एक प्रकृति मानव केन्द्रित विकास मॉडल को सर्वप्रथम स्थायी और टिकाऊ शांति एवं सुरक्षा की आवश्यकता है। इस प्रकार की शांति की स्थापना के लिए यह जरूरी है कि प्रभुत्व, विशेषाधिकार एवं विशेष शक्तियों की राजनीति को छोड़ा जाये, परमाणु शस्त्रों पर पूरा नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र का करके पूर्ण निशस्त्रीकरण द्वारा टकराव और सैनिक समाधान

की नीति को समाप्त किया जाये, राजनीतिक, आर्थिक तथा विकसित एवं विकासशील देशों के बीच विकास का फर्क एवं अमीर और गरीब के बीच खाई को हटाया जाये।

प्रकृति–मानव केन्द्रित राजनीति

प्रकृति-मानव केन्द्रित राजनीति को एक ऐसी राजनीति की आवश्यकता है जो पूर्ण लोकतांत्रिक सिद्धान्तों, गतिविधियों और ढांचे पर आधारित हो। इस प्रकार की राजनीति संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था में विशेष वीटों शक्तियों के कानून को समाप्त करे और निर्णय लेने में लोगों का अधिकतम् संभव शक्तिकरण को सुनिश्चित करे तथा पार्टी-केन्द्रित शक्ति का आवश्यक मात्रा में कमी करे।

प्रकृति–मानव केन्द्रित आर्थिकता

प्रकृति-मानव केन्द्रित आर्थिकता एक तर्कसंगत और हकीकी आर्थिकता की मांग करती है, जिसकी धारणाएं कानून और नियम पहले बताए गये 2 उच्च प्राथमिकताओं (यानि, मानव और पर्यावरण) तथा 5 सिद्धान्तों (यानि पर्यावरणीय टिकाऊपन, समता, उत्पादकता, लोकतंत्र तथा पारदर्शिता) की रोशनी में बनाये जाने की आवश्यकता है। मानव की जैव-सामाजिक प्रकृति के मध्यनजर, दोनों, एडम स्मिथ का 'स्वहित' मूलभूत आर्थिक सिद्धान्त और मार्क्स का प्रत्येक चीज का राज्य राष्ट्रीयकरण का बुनियादी आर्थिक नियम, एकतरफा है। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से, दोनों ने मौद्रिक विकास में भारी मात्रा में समृद्धि और प्रगति की है न कि मानव और पर्यावरण के विकास में।

प्रकृति–मानव केन्द्रित मूल्य व्यवस्था

प्रकृति-मानव केन्द्रित मूल्य व्यवस्था एक ऐसे जीवन के तरीके (या जीवन शैली) की मांग करती है जो बुनियादी मानवीय एवं पर्यावरणीय मूल्यों में समाहित करे और लोगों में तर्क संगत मानवतावादी एवं पर्यावरणवादी सोच, व्यवहार व संगठन को बढ़ावा दे।

प्रकृति–मानव केन्द्रित अवधारणा

प्रकृति-मानव केन्द्रित अवधारणा को वैज्ञानिक वास्तविकतावाद पर आधारित होना चाहिये जो प्रकृति के घटनाक्रम का अध्ययन एवं व्याख्या वैज्ञानिक तथ्यों की रोशनी में तथा सामाजिक घटनाक्रमों का अध्ययन एवं व्याख्या मान्यता प्राप्त सूचना एवं आंकड़ों के आधार पर करता है।

संवैधानिक–कानूनी ढांचे का पुनर्गठन

अन्त में, यह जरूरी है कि, किसी भी पुरानी सामाजिक व्यवस्था के पुनर्गठन एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सम्पूर्ण संवैधानिक-कानूनी ढांचे को मनुष्य के जैव-सामाजिक प्रकृति पर आधारित होना चाहिये जो एक तरफ मानव के स्वहित को तथा दूसरी तरफ मनुष्य के सामाजिक हित को जोड़ती है; इस प्रकार एक वास्तविक मानव-मनोदशा–अनुकूलन अथवा प्रेरणात्मक कारण–को आगे लाकर सामाजिक प्रगति को गति देता है।

प्रकृति मानव केन्द्रित विकास मॉडल का समाज शास्त्र

मानव प्रकृति का स्वामी नहीं बल्कि उसका एक भाग है। प्रकृति के कानून के अनुरूप मानव समाज दो तरफा अन्तरक्रिया के जरिए विकसित हुआ, यह अन्तर क्रिया एक तरफ प्रकृति एवं मानव समुदाय के बीच और दूसरी तरफ मानव समाज के भीतर लोगों (विभिन्न घटकों, ग्रुपों, विभागों और व्यक्तियों से गठित) में अन्तरक्रिया है।

इसमें परिवर्तन एवं विकास अन्तरक्रिया के एक आम परिचालन के तरीके के अनुरूप एकता व संघर्ष के बारी-बारी से रूपान्तरित होती गति के जरिए होता है। मानव के अस्तित्व का ढंग जैविक है जबकि इसके रहने और कार्य करने का ढंग सामाजिक है। यह मानव समुदाय को अथवा मानव को, दो तरफा; जैविक और सामाजिक-चरित्र के साथ एक जैव-सामाजिक घटनाक्रम के रूप में चरित्रित करता है। (जुलाई 2002)

***

जोहान्सबर्ग यू.एन. पृथ्वी शिखर सम्मेलन–2002 ने टिकाऊ विकास के लिए कारपोरेट एजेण्डा को इंजिन के तौर पर पेश करके मानव समुदाय को खतरनाक रास्ते पर धकेला

I. जोहान्सबर्ग पृथ्वी शिखर सम्मेलन के बारे में हमारी अवधारणा

1. 26 अगस्त से 4 सितम्बर 2002 के बीच अभी-अभी सम्पन्न हुए उपर्युक्त वर्णित टिकाऊ विकास शिखर सम्मेलन के बारे में ऊपर लिखित शीर्षक हमारी धारणात्मक व्याख्या का द्योतक है।

2. हमारी अवधारणा के अनुसार इस शिखर सम्मेलन का कारपोरेट कार्यक्रम आज की मुख्य चुनौती (यानि, पर्यावरणीय संसाधनों और मानवीय संसाधनों को उनके गैर-टिकाऊ उपयोग और दुरुपयोग से बर्बाद करने) की प्रकृति को विकृत करता है। इस सम्मेलन के सामने टिकाऊ विकास का उद्देश्य है और यह इस चुनौती के वास्तविक कारण (यानि, विद्यमान बाजार-नेतृत्व वाला कारपोरेट विकास मॉडल) को ढकता है और इस मॉडल (यानि कारण) को उपर्युक्त मुख्य चुनौती (जैसा कि ऊपर परिभाषित किया गया है) को निर्मूल करने के लिए हल के रूप में पेश करता है।

3. स्पष्ट है कि आचरण की ऐसी पद्धति केवल मात्र मुंह बाए खड़ी चुनौती (यानि पर्यावरणीय संसाधनों की गिरावट और मानवीय संसाधनों का ह्रास) को तीव्र कर सकती है–इस प्रकार मानव समुदाय को एक खतरनाक रास्ते की तरफ धकेला जा रहा है।

4. हमारे नजरिये में, जैसा कि इस बारे में आगे विस्तार से विश्लेषित किया गया है, अल्पकालीन दृष्टि से कारपोरेट एजेण्डा एक तरफ पर्यावरण के हालात को और दूसरी तरफ सामाजिक बराबरी व सामाजिक न्याय के हालात को और अधिक खराब करेगा। दीर्घकालीन नजरिये से अगर इस समय चल रहे चुनौतीपूर्ण पर्यावरणीय प्रदूषण और लगातार बढ़ रही सामाजिक असमानता और सामाजिक अन्याय की दिशा को उलटा नहीं गया और इसे बढ़ने दिया गया तो हमारे ग्रह का सम्पूर्ण जैव-जीवन अपना अस्तित्व बचाए नहीं रख सकेगा अथवा उसका यहाँ रहना नामुमकिन हो जायेगा। यह खतरनाक निर्णय कारपोरेट मॉडल के समाजशास्त्रीय आधार और सामाजिक व्यवहार से निकल रहा है और किसी भी तरह की मनोगत भावना से जुड़ा हुआ नहीं है।

5. उपर्युक्त अन्धकारपूर्ण निष्कर्ष के साथ आशाजनक तर्क है कि मानवता को (और जैव-जीवन के अन्य रूप को भी) बचाने वाला पहलू मानव प्रजाति की सहज समाजशास्त्रीय तर्कसंगतता और व्यावहारिक सहज बुद्धि तथा पटुता (प्रवीणता) में निहित है। ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि जब कभी मानव को संकट का सामना हुआ तब मानवीय

समाजशास्त्रीय तर्क और मानवीय सहज बुद्धि व पटुता ने इस चुनौती से मुकाबला करने के लिए हमेशा कोई न कोई रास्ता खोज लिया।

6. अन्तर्निहित तर्कसंगत मानवीय सोच और सहज बुद्धि वाली व्यावहारिकता तथा पटुता से प्रस्थान करते हुए हमारी राय है कि इसके ऐतिहासिक दौर में मानवजाति के समक्ष प्रस्तुत इस गम्भीर चुनौती पर जीत हासिल करने के लिए कारपोरेट कार्यक्रम के स्थान पर एक हकीकी पर्यावरण-मानव केन्द्रित कार्यक्रम अपनाने लायक बनना होगा– इस प्रकार वर्तमान में चल रही कारपोरेट व्यवस्था को एक पर्यावरण-मानव केन्द्रित व्यवस्था के रूप में आधुनिक बनाना होगा। यह तब्दीली हमारी सामाजिक प्रक्रिया के परिवर्तन के साथ (गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों) निरन्तरता के यथार्थ मार्ग को जाहिर करती है।

7. उपलब्ध सामाजिक तथ्यों (विद्यमान शक्ति-सन्तुलन के सम्बन्ध में) से नजर आता है कि तब्दीली की प्रक्रिया शान्तिपूर्ण रास्ते के माध्यम से आगे बढ़ेगी जिसमें शान्ति की ताकतें टकरावादी व युद्धखोर दिग्गजों को काबू करेगी। इसके लिए आवश्यक निष्कपट और तर्कसंगत ताकतें जिनमें वे भी शामिल हैं जो अभी तक कारपोरेट दायरे में ही खड़ी है–पहले से ही नकारात्मक आगे बढ़ती हुई शक्तियों से तुलनात्मक तौर पर अधिक ताकतवर बन कर उभरी है।

8. उपर्युक्त वर्णित हालिया सामाजिक सारांश (रूपरेखा) को आगे कुछ और अधिक विस्तार से वर्णित किया गया है।

II. टिकाऊ विकास को हालिया दरपेश मुख्य चुनौती की अवस्था

9. संयुक्त राष्ट्र, राष्ट्रीय राज्यों, अन्य अन्तरराष्ट्रीय संगठनों (सरकारी संस्थाओं और गैर-सरकारी संगठनों, दोनों सहित) व वैज्ञानिकों और समाज विज्ञानियों इत्यादि द्वारा उद्घाटित या स्वीकृत तथ्यों से प्रदर्शित होता है कि हमारे ग्रह पृथ्वी पर मानव समुदाय को (अन्य जैव-घटनाक्रम के साथ) अत्यधिक गम्भीर पारिस्थितिक जैव संकट से मुकाबला है, मानव जाति अपने अस्तित्व के बाद इतिहास में किसी भी समय ऐसे संकट में नहीं गुजरी है। संकट इतना गंभीर है कि या तो मानव समुदाय अस्तित्व पर आई इस चुनौती पर विजय पा लेगा या देर-सबेर यह संकट मानव जाति पर (अन्य जैव-घटनाक्रम के साथ) विजय पा लेगा।

10. पारिस्थितिक या पर्यावरणीय पहलू के सम्बन्ध में स्थिति अत्यधिक चुनौतीभरी है। यहां तक कि दो विशेषज्ञ मतों (यानि, संयुक्त राष्ट्र की 'वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फण्ड (डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ.) द्वारा किया गया वर्ष 2002 का अध्ययन और सन् 2000 में विश्व के 6000 विख्यात वैज्ञानिकों द्वारा दी गई चुनौती) में इस विकसित हो रहे पारिस्थितिक-जैविक संकट के समय-काल को भी इंगित किया है। डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ.-2002 के अध्ययन में चुनौती दी गई है कि अगर मानव समुदाय (विशेष तौर पर धनी राष्ट्र व धनी लोग) अपने असंयमित और बर्बाद करने वाली जीवन शैली को नहीं बदलते हैं तो 50 सालों में हमारा ग्रह पृथ्वी जीवन के लिए गैर-टिकाऊ बन जाएगा। अन्तरराष्ट्रीय तौर पर विख्यात 6000 वैज्ञानिकों ने चुनौती-2000 में उल्लेख किया है कि अगर मानव समुदाय ने आने वाले थोड़े से समय में ग्रीन हाउस गैसों का उत्पादन नहीं रोका तो 21वीं सदी के अन्त तक वैश्विक

उष्माकरण (ग्लोबल वार्मिंग) की प्रक्रिया पृथ्वी पर जैव-जीवन के अस्तित्व को नहीं रहने देगी। अन्य वैज्ञानिक विशेषज्ञ जो अपने आपको समय-काल की गणना में नहीं बांधते हैं, वे भी स्वीकार करते हैं कि पर्यावरणीय स्थिति वास्तव में दुखदायी है।

11. आम आदमी का दिन-प्रतिदिन का अनुभव दर्शाता है कि पर्यावरणीय व्यवहार अत्यधिक भीषण रूप ले रहा है। 1990 का दशक अभी तक का सबसे गर्म दशक साबित हुआ है। तब से अब तक अल-नीनो घटनाक्रम के अलावा अधिक तूफान, सूखे और बाढ़ का अद्वितीय दौर यूरोप और एशिया में आई हालिया बाढ़ों से जाहिर होता है। मौसम ने अत्यधिक अविश्वसनीय स्थिति अख्तियार कर ली है। वैज्ञानिक विशेषज्ञों ने ग्रीन हाउस गैसों की अधिकता को इसका कारण बताया है, जो हमारे ग्रह में कमजोर 'अवशोषकों' (यानि जंगलों और समुद्रों) की तुलना में अधिक मात्रा में पैदा हो रही है। वर्तमान 'अवशोषक' क्षमता 3.8 बिलियन टन प्रतिवर्ष कार्बन-डाई-ऑक्साइड के तुल्य वजन के प्रदूषण को निपटा सकते हैं। ग्रीन हाउस गैसों का वर्तमान उत्पादन 'अवशोषकों' की क्षमता से दुगुने से अधिक सीमा तक पहुंच चुका है।

12. सामाजिक पक्ष पर भी हालात कम चिन्ताजनक नहीं है। आम आदमी का दिन-प्रतिदिन का जीवन मानसिक और शारीरिक दोनों तौर पर काफी विकृत हो चुका है। दिमागी तौर पर मानसिक सन्तुष्टि की स्थिति गड़बड़ा चुकी है। कहीं भी दिमागी शक्ति नहीं है, अच्छी खाती-पीती ऊपरी श्रेणी तक में भी मानसिक शान्ति नहीं है।

13. भौतिक तौर पर, गरीब और अमीर के बीच खाई अद्वितीय तौर पर बढ़ गई है। बेरोजगारी असहनीय स्तर पर पहुंच चुकी है। सफाई, पीने के पानी, स्वास्थ्य और बीमारियों, शिक्षा, सड़कों और अन्य सामाजिक मामलों जैसी समस्याओं की स्थिति बदतर हो गई है।

III. 1992 के प्रथम रीयो–पृथ्वी शिखर सम्मेलन के निर्णय किस स्थिति में पहुंचे

14. उपर्युक्त वर्णन आज विश्व में विद्यमान पर्यावरणीय और मानव संसाधनों का आम परिदृश्य पेश करता है।

15. उपर्युक्त तथ्य हमें एक झलक प्रदान करते हैं कि सन् 1992 के रीयो पृथ्वी शिखर सम्मेलन के बाद के 10 सालों में रीयो सम्मेलनकर्त्ताओं तथा उनके उत्तराधिकारियों ने पर्यावरण और मानव विकास में कैसी भूमिका अदा की है।

16. इस बिन्दु पर सर्वत्र सहमति है कि रीयो शिखर सम्मेलन पर्यावरण और मानव मसलों को मुख्यधारा में लाने वाला जल-विभाजक साबित हुआ। तब भी रीयो असफल हो चुका है और उसके कार्यक्रम को उड़ा दिया गया है क्योंकि उपर्युक्त कथित राष्ट्रीय शासकों ने अपने वायदों को तोड़ा है। संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान ने कहा कि ''टिकाऊ विकास पर रीयो के सुस्पष्ट कार्यक्रम को लागू करने में गंभीर कमियां हैं'' और जोहान्सबर्ग यू.एन. शिखर सम्मेलन की तैयारी समिति के अध्यक्ष एमिल सलीम ने रूदन किया है कि ''विकास ने केवल आर्थिक दिशा ही ली है और सामाजिक व पर्यावरणीय टिकाऊपन को ठीक पीछे छोड़ दिया है।''

17. परन्तु उपर्युक्त महानुभाव द्वारा कथित आर्थिक विकास भी अत्यधिक असमानता भरा है। धनी-निर्धन के बीच खाई, देशों के मध्य और अन्दर असहनीय सीमा तक बढ़ गई है। उदाहरण के लिए लगभग 1.3 बिलियन लोग प्रतिदिन 1 डालर से कम आय पर गुजर बसर करते हैं; इसके अलावा दूसरे 1 बिलयिन लोग अपनी आधारभूत उपभोग आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते हैं। विश्व की आबादी में उच्चतम 20 प्रतिशत धनी लोगों की कुल वैश्विक आय विश्व के निर्धनतम 20 प्रतिशत लोगों की कुल वैश्विक आय से 74 गुना अधिक है। विश्व के अधिकतम धनी 200 लोगों की सम्पत्ति चार सालों में बढ़कर दुगुनी हुई जो सन् 2000 के अन्त में 1 ट्रिलियन डॉलर जा पहुंची। उरुग्वे व्यापार दौर के समय निर्धनतम देशों की अपनी निर्यात कमाई प्रतिवर्ष 2.6 प्रतिशत और 5 प्रतिशत के बीच गिरी। इस बीच इन्होंने 163 बिलियन डालर और 265 बिलियन डालर निर्यात कमाई में खोया, जबकि अनाज के आयात पर 145 मिलियन डालर और 292 मिलियन डालर के बीच अधिक चुकाया। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट कहती है ''अधिकतम धनी देशों में रहने वाली विश्व की 20 प्रतिशत आबादी ने निर्यात व्यापार में बढ़ोतरी के 82 प्रतिशत भाग और विदेशी परोक्ष निवेश के 68 प्रतिशत भाग पर कब्जा जमाया जबकि निचली 20 प्रतिशत आबादी ने मुश्किल से मात्र 1 प्रतिशत भाग पाया।''

18. इस प्रकार के आर्थिक विकास ने सामाजिक प्रभाव यह छोड़ा कि 840 मिलियन लोग कुपोषण के शिकार हैं, जबकि विश्व के धनी लोगों का 5वां हिस्सा निर्धनतम 5वें हिस्से से 16 गुना अधिक उपभोग करता है। 160 मिलियन से अधिक बच्चे कुपोषण के शिकार हैं और 250 मिलियन से अधिक काम करते हैं। 880 मिलियन से अधिक लोगों को स्वास्थ्य सेवाएं नहीं मिलती हैं और 17 मिलियन लोग प्रतिवर्ष इलाज की जा सकने वाली संक्रामक बीमारियों से प्रतिवर्ष मर जाते हैं। विकासशील देशों में रहने वाले 4.4 बिलियन लोगों में से करीब 1.5 बिलियन लोगों को साफ पानी उपलब्ध नहीं है, 1 बिलियन लोगों के पास ठीक-ठीक घर नहीं है और 2.6 बिलियन को बुनियादी सफाई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। लगभग 2 बिलियन लोगों के पास वाणिज्यिक ऊर्जा उपलब्ध नहीं है।

19. पर्यावरण के क्षेत्र में स्थिति यह है कि विश्व में कार्बन उत्सर्जन रीयो के बाद 9 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ गया है; अमेरिका में यह 18 प्रतिशत से अधिक बढ़ गया है; 1992 के बाद प्रतिवर्ष 2.2 प्रतिशत की दर से जंगल सिकुड़ रहे हैं और प्रवाल भित्ती (coral reefs) में गिरावट 1992 में 10 प्रतिशत से बढ़कर सन् 2000 में 27 प्रतिशत हो गई है। विश्व संरक्षण संघ के अनुसार 1990 के दशक के अन्त तक 13 प्रतिशत मछलियां, 11 प्रतिशत स्तनधारियों, 10 प्रतिशत जल-स्थलचर जीवों और 4 प्रतिशत पक्षियों के विलुप्त होने का खतरा आंका गया। औद्योगिक युग से पहले के समय की तुलना में जब प्रजातियों को होने वाला नुकसान 100 गुना से अधिक आंका गया है, इसलिए जीव-विज्ञानियों ने वर्तमान युग को बड़े स्तर पर जीवों के विलुप्ती का युग कहा है, जिसमें पिछले 6 करोड़ 50 लाख सालों में पहली बार इतना नुकसान हुआ है।

20. इसी दौरान बहुराष्ट्रीय निगमों की अद्वितीय वृद्धि और व्यापन हुआ है, जहाँ 63000 से अधिक मूल कम्पनियों के साथ 690000 विदेशी सम्बद्ध कम्पनियां सारे विश्व में

फैली हैं और विविध तरह की आर्थिक गतिविधियों में लगी हैं। विश्व की उच्चतम 200 निगमों की कुल बिक्री सभी देशों की संयुक्त आर्थिकता के आकार से बड़ी है। 82 इकाइयों के साथ अमेरिका की 10 सबसे बड़ी निगमें उच्चतम 200 निगमों पर छाई हुई हैं और इसके बाद जापानी आती हैं जिनकी संख्या 41 हैं। अविश्वसनीय तौर पर सभी पेटेण्ट का 97 प्रतिशत भाग विकसित दशों में रहने वाले मालिकों के नाम रजिस्टर्ड हैं। इन बहुराष्ट्रीय निगमों के पास अत्यधिक विकासशील देशों की तुलना में अधिक धन है। उनके हितों का व्यापार वार्त्ताओं और वैश्विक वित्तीय संस्थाओं में उनकी सरकारों द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है।

21. केवल रीयो में लिये गये निर्णयों को ही किनारे नहीं किया है बल्कि एजेण्डा-21 को लागू करने के लिए धनवान देशों द्वारा गरीब देशाों को संसाधनों के हस्तान्तरण के वायदों की भी अवहेलना की है। पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र आयोग ने विकाशील देशों में एजेण्डा-21 को लागू करने के लिए सन् 1993 और 2000 के बीच प्रतिवर्ष 600 बिलियन डालर खर्च होने का अनुमान लगाया। इसी राशि का 125 बिलियन डालर भाग धनवान देशों (जबकि विकसित देशों द्वारा केवल अपनी कृषि सब्सिडी (छूट) पर 350 बिलियन डालर खर्च किया जाता है) से सरकारी विकास सहायता (ओ.डी.ए.) के माध्यम से आनी थी। यद्यपि धनवान देशों ने अपनी सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 0.7 प्रतिशत ओ.डी.ए. के रूप में देने का वायदा किया था परन्तु यह कागजों में ही रहा। ओ.डी.ए. की कुल मात्रा 1992 में 69 बिलियन डालर रही जो गिरते-गिरते सन् 2002 में 53 बिलियन डालर रह गई। वायदा किए गए संसाधनों और तकनीकी में से कोई भी हकीकत में हस्तान्तरित नहीं किये गये। ऐसा ही मामला रीयो सम्मेलन में उभरे एक नये संस्थान–विश्व पर्यावरण सुविधा (जी.इ.एफ.)–का है। सन् 1993 और 2000 के दौरान (जी.इ.एफ.) की तरफ से कुल सहायता राशि 5.4 बिलियन डॉलर प्रदान की गई जो वायदा की गई राशि की तुलना में काफी कम है। जी.इ.एफ. के महासचिव के अनुसार, ''यहाँ तक कि सभी परियोजनाओं को पर्यावरणीय तौर पर साफ करने के लिए 10 बिलियन डालर राशि भी नाकाफी थी।''

IV. रीयो फैसलों को पूरा नहीं करने के कारण

22. रीयो फैसलों को पूरा नहीं करने के पीछे कारण इस तथ्य में निहित है कि राष्ट्रीय शासकों के लिए ये फैसले कोई प्राथमिकता नहीं रखते। इसके बजाए इन्होंने (यानि, रीयो फैसलों ने) उनके हितों को नुकसान पहुंचाया। ऐसा इसलिए है क्योंकि टिकाऊ विकास की रणनीति और कार्ययोजना अन्तरराष्ट्रीय तौर पर चल रहे कारपोरेट (या राज्य नेतृत्व वाली क्षयग्रस्त) विकास मॉडल–जिसका एकमात्र उद्देश्य लाभ का अधिकतमकरण है–की मांग से मेल नहीं खाती। यह उद्देश्य पर्यावरणीय और मानवीय संसाधनों को बेलगाम उपयोग की मांग करता है। वास्तव में, लाभ-अधिक्यकरण (या अधिकतम सम्भव आय हासिल करने के तरीकाकार) प्रत्येक राष्ट्र राज्य का उद्देश्य भी है। यही नहीं, बल्कि यह (यानि, आय का अधिकतमकरण) मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य उद्देश्य बन गया है। जितना अधिक धनवान देश है उतनी ही उसके नागरिक की अपनी सम्पत्ति बढ़ाने की इच्छा अधिक तीव्र है। दूसरे शब्दों में, लाभ के अधिकतमकरण का

उद्देश्य प्रत्येक राष्ट्रीय सरकार–चाहे वह धनवान देश की सरकार है या गरीब देश की सरकार–की मुख्य प्रेरणा है। विकसित और विकासशील दोनों तरह के देशों के शासकों की अपनी-अपनी मुख्य प्राथमिकता एक ही तरह की हैं, यानि, पूंजी और पूंजी मालिकों के लाभ को अधिकतम करने वाली नीतियों और पहलकदमियों को तरजीह देना। विकसित और विकासशील देशों के बीच अन्तर केवल इसलिए है, क्योंकि दो तरह के शासक समूहों को दो विभिन्न प्रकार के लोगों–जिसमें विकसित देशों में बहुसंख्यक मध्यम और धनी वर्गों को और बहुत थोड़ी गरीबों की संख्या को, जबकि इसके उलट विकासशील देशों में बहुत बड़ी संख्या में गरीब लोगों और बहुत थोड़े से मध्यम तथा धनी लोगों–को सम्बोधित करना होता है। यही कारण है कि राष्ट्रीय शासकों की इन दोनों किस्मों के योजनागत या रणनीतिक उद्देश्य–यानि कारपोरेट (या राज्य नेतृत्व वाला क्षयग्रस्त) विकास मॉडल की सेवा करना–एक जैसे हैं जबकि ये अपने-अपने जन निर्वाचन क्षेत्रों की अलग प्रकृति के अनुसार भिन्न नीतियों का अनुसरण करते हैं।

V. वर्तमान जमीनी वास्तविकता से चिन्ताजनक संकेत आ रहे हैं

तथ्य बिल्कुल चुनौती भरे और समस्त विश्व की अच्छी जानकारी में है :

(क) पर्यावरणीय धरातल पर

23. पर्यावरणीय तौर पर, चूंकि गम्भीर चेतावनी का सायरन–वैज्ञानिक बिरादरी, 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन तथा 1992 रीयो पृथ्वी शिखर सम्मेलन के द्वारा–उसी समय से ही बजा दिया है कि अगर मानव जाति ने अपनी गैर टिकाऊ जीवन शैली को नहीं बदला तो हमारे ग्रह को पर्यावरणीय नुकसान और मानवीय पीड़ा के अस्वीकार्य स्तर से पाला पड़ेगा। यह बात आज पूर्णरूपेण उचित ठहरती है। पिछले कुछ दशकों से यह भिन्न रूपों में दस्तक देता हुआ नजर आ रहा है–जैसे वैश्विक उष्माकरण का बढ़ते जाना, मौसमी गड़बड़ी के कारण एक तरफ सूखे का पड़ना और दूसरी तरफ बाढ़ों का आना, कुछ स्थानों में पानी का प्रदूषित होना और दूसरी जगहों पर पीने के पानी की कमी पड़ना; भूमि के उपजाऊपन में कमी होना तथा बंजड़ भूमि का फैलते जाना; विभिन्न जैव-प्रजातियों का अपने बढ़ते गैर-अनुकूल जीवन हालातों के कारण निरन्तर विलुप्त होते जाना, इत्यादि।

(ख) मानव विकास मोर्चे पर

24. अत्यधिक चिन्ताजनक सच है कि अत्यधिक विनाशकारी पारिस्थितिक-जैव संकट के बारे में जन चेतना बहुत कम है। आज मनुष्य की मानसिकता मुख्यतया धन और सता की है। ऐसी मानसिकता का इजहार इस बात से होता है कि लगभग सभी देशों (कुछ को छोड़कर) में लोग उन्हीं कलंकित राजनीतिज्ञों के पक्ष में वोट देते हैं जिन्होंने पारिस्थितिक-जैव संकट के विकास में तथा भ्रष्टाचार और अपराधग्रस्त राज्य ढाँचे की स्थापना में एक बड़ी भूमिका अदा की है या अदा कर रहे हैं।

25. आज यू.एन. विश्व की उच्चतम संस्था के रूप में है परन्तु किसी भी महत्वपूर्ण विश्व समस्या को हल करने में बहुत कमजोर है। यह हालात वर्तमान विश्व शक्ति सन्तुलन की वजह से है–ऐसी स्थिति लम्बे शीत युद्ध के समय या शीत युद्ध के बाद के थोड़े से समय विश्व में नहीं थी। ऐसा मोड़ 1990 के दशक के शुरू में तब आया जब सोवियत संघ और

समाजवादी ब्लाक का पतन हुआ तथा इसके बाद बोस्निया, यूगोस्लाविया व कोसोवो में संयुक्त राष्ट्र की स्वीकृति के बिना नाटो ने एकपक्षीय कार्यवाही की। सितम्बर 11, 2001 को न्यूयार्क और वाशिंगटन पर आतंकवादी हमले के बाद संयुक्त राष्ट्र की अवहेलना करने का रुझान बन गया जब सुरक्षा परिषद के एक स्थायी सदस्य अमेरिका ने सुरक्षा परिषद की इजाजत के बगैर अफगानिस्तान पर एकपक्षीय हमला किया। फिर भी, इसकी निरन्तर कमजोरियों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र की सकारात्मक भूमिका–चाहे वह वर्तमान या भूतकाल में कभी भी रही हो–को भुलाया नहीं जा सकता और भुलाया नहीं जाना चाहिए।

26. अमेरिका आज दुनिया का निर्विरोध पुलिसमैन बन गया है। अफगानिस्तान में अकेले हाथों से अमेरिका की सैनिक सफलता के बाद यह अधिक एकपक्षीय और युद्धकारी बन गया है। अब, इसने आरोपित आतंकवाद के खिलाफ बेमियादी युद्ध की घोषणा कर दी है। जबकि आतंकवाद को न तो संयुक्त राष्ट्र या अन्य किसी यू.एन. सदस्य ने अभी तक परिभाषित किया है। इसके हमले के प्रथम लक्ष्य में तथाकथित 'दुष्ट राज्य' यानि इराक, इरान, उतरी कोरिया इत्यादि शामिल हैं जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य हैं और जिन्हें किसी भी तर्क से आतंकवादी चरित्रित नहीं किया जा सकता। हालिया अमेरिका द्वारा घोषित आक्रमण योजना को विश्वभर में अस्वीकृति मिली है जिसमें चीन, रूस तथा यूरोपीय समुदाय शामिल हैं। परन्तु जहां तक अमेरिका का सवाल है वह अभी तक अपनी नई युद्ध परियोजना को रोकने के लिए तैयार नहीं है।

27. घातक पारिस्थितिक-जैविक संकट के साथ अमेरिका के नेतृत्व वाला विश्व कारपोरेट विकास मॉडल गम्भीर संकट में है। कारपोरेट मुनाफा गिर रहा है। बहुत सारी उच्च कारपोरेट कम्पनियां, खास करके अमेरिका में बड़ी-बड़ी धोखाधड़ियों और जालसाजियों में शामिल पाई गई है। कारपोरेट मॉडल का यह दावा कि ये कम्पनियां सम्पत्ति सर्जन और सम्पन्नता व उन्नति करने वाले सामाजिक संस्थान है–गलत साबित हुआ है।

28. विकास प्रक्रिया के सामने अभूतपूर्व संकट है, यह मानवजाति को गम्भीर चुनौती पेश कर रही है। धनी-निर्धन के बीच बढ़ रहा विभाजन अद्वितीय स्तर पर पहुंच चुका है। गरीबी और बेरोजगारी तेजी से बढ़ रही है। सैनिक बजट–जो टिकाऊ विकास का शोषक है–तेजी से बढ़ रहे हैं, जबकि सामाजिक विकास पर खर्चे घट रहे हैं। विश्व में भ्रष्टाचार, अपराध, हिंसा और आत्महत्याओं का क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र और उनकी कार्यपालिकाओं को भी अपने दायरे में ले रही हैं। मानव अधिकारों की अवहेलना, अल्पसंख्यकों और अन्य कमजोर तबकों के खिलाफ भेदभाव तथा महिलाओं के ऊपर दमन लगातार बढ़ रहे हैं। नस्ली तनाव ऊंचाई पर हैं। भिन्न-भिन्न तरह की रूढ़ीवादी धारणाएं, नई और पुरानी दोनों, लोगों को गलत दिशा दे रही हैं और फूट डाल रही हैं।

VI. समय की आवश्यकता जैव-पारिस्थितिकी संकट के चरित्र और इसके कारण की एक वास्तविक समझ होना

29. विज्ञान (प्राकृतिक और सामाजिक दोनों) बताता है और अनुभव सिद्ध करता

है कि किसी को भी समझने के लिए इसके चरित्र (यानि इसके मुख्य चरित्र) और इसकी उत्पत्ति के कारण को अच्छी तरह जानें। जब तक कि इस एक ही विषय के इन दो लक्षणों को समझ नहीं लेते, तब तक हम इससे सही ढंग से निपट नहीं सकते।

(क) जैव-पारिस्थितिकी संकट का चरित्र

30. प्रकृति के बारे में अब तक का मानव ज्ञान उद्घाटित करता है कि जैव-पारिस्थितिकी संकट दो स्रोतों से उत्पन्न होता है और हो सकता है–(अ) हमारे ग्रह और हमारे ग्रह के बाहर कार्यरत अन्य प्राकृतिक शक्तियों के बीच अन्तरक्रिया से तथा (ब) हमारे पर्यावरण और इसके आस-पास के बीच अथवा इसके अन्तर्विष्टि घटनाक्रमों के बीच अन्तरक्रिया से। इनमें दो घटनाओं में से कौनसा वास्तविक कारण है–इसे हमेशा पहचानने की आवश्यकता है।

नि:सन्देह भूतकाल में हमारे पर्यावरण–भौगोलिक, जलवायु–आदि में परिवर्तन प्राकृतिक घटनाक्रमों में पारस्परिक प्रभाव के कारण हुए (यानि ग्रह और ग्रह के अलावा अन्य प्रभावों से)। केवल इस वक्त ही ढेर सारे सबूत यह सुझाते हैं कि वर्तमान पर्यावरणीय पतन मानव क्रियाकलापों की उपज है न कि प्रकृति का पारस्परिक प्रभाव अथवा हमारे ग्रह और हमारे पर्यावरण पर अन्य गैर-मानवीय प्रजातियों का प्रभाव।

31. उपर्युक्त आकलन इस तथ्य से निकलता है कि हमारी पृथ्वी पर जैविक घटनाक्रम के अस्तित्व के लिए आवश्यक सभी प्राकृतिक तत्त्व–हवा, पानी, जमीन, जंगल, जैव-विविधता अन्य प्राकृतिक उत्पाद आदि, जो हमारे ग्रह के पर्यावरण को बनाये रखते हैं–मनुष्य की कारगुजारी के कारण पतित हुए हैं न कि अन्य किसी प्राकृतिक कारक के कारण।

32. उदाहरण के लिए, पृथ्वी का गर्म होना (या वायु प्रदूषण) ग्रीन हाउस गैसों (जीएचजी) के अति उत्पादन का परिणाम है जो एक मानव गतिविधि की पैदावार है। तापीय और परमाणु ऊर्जा उत्पादन तथा रेलवे के साथ-साथ फैक्ट्रियों में कोयलों की खपत ग्रीन हाउस गैसों (जीएचजी) का एक बड़ा स्रोत है। इसी प्रकार, भूमिगत जल के स्तर का नीचे जाना रसायन आधारित खेती की जरूरतों को पूरा करने के लिए जल का अत्यधिक निकास है। औद्योगिक प्रदूषकों ने नदियों एवं नहरों को प्रदूषित किया है तथा एक बड़े क्षेत्र को जहरीला बनाया है। कारपोरेट कम्पनियों और जंगल माफिया ने जंगलों को भारी मात्रा में साफ कर दिया है। बड़ी कम्पनियों के अत्यधिक मछली व्यापार ने समुद्रों में मछलियों की कमी कर दी है। रसायन आधारित खेती, जलवायु परिवर्तन, जंगल विनाश, भू-क्षरण आदि भूमि खराब होने, बेकार और बंजर क्षेत्र बढ़ने एवं रेगिस्तान के विस्तार का कारण है। रेगिस्तान के विस्तार, जलवायु परिवर्तन, पानी के प्रदूषित होने, बड़े क्षेत्र के जहरीले होने, कृषि के रसायनिकरण होने आदि से हमारी पृथ्वी पर बहुत-सी प्रजातियां विलुप्त हो गई हैं। यहां यह बताना बिल्कुल उपयुक्त रहेगा कि पर्यावरण पतन की प्रक्रिया 200 साल पहले कम्पनियों की अगुवाई में औद्योगिक तकनीकी के साथ शुरू हो गई। बाद में, यह (यानि पतन की प्रक्रिया) बड़े कारपोरेटों द्वारा ले ली गई जिनकी क्षमता

लगातार बढ़ती जा रही है तथा वे भी निरन्तर अक्षुण्ण रूप से पर्यावरण पतन की गतिविधियों में लगे हैं।

33. जहां तक अन्याय, असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, मानवाधिकारों की अवहेलना एवं उल्लंघन, राजनीति और आर्थिकता के अपराधीकरण, पतित एवं अश्लील संस्कृति, तनाव और युद्धखोर दृष्टिकोण की मानव समस्याओं का प्रश्न है, समाजशास्त्रीय और मानव अनुभव दोनों जोर देते हैं कि मनुष्य से सम्बन्धित प्रत्येक सामाजिक विषय की जड़ समकालीन सामाजिक ढांचा या सामाजिक व्यवस्था में होता है जिसमें समकालीन मानव समुदाय रहता है तथा कार्य करता है।

34. इस प्रकार हमारे जैव-पारिस्थितिकी संकट के पर्यावरणीय और मानवीय पहलू इंगित करते हैं कि जैव-पारिस्थितिकी संकट मुख्यत: सामाजिक चरित्र रखता है।

(ख) जैव-पारिस्थितिकी संकट के कारण

35. जैव-पारिस्थितिकी संकट का सामाजिक चरित्र (जैसी कि ऊपर व्याख्या की है) इंगित करता है कि यह संकट विद्यमान सामाजिक व्यवस्था से पैदा हुआ जो तीन पहलुओं से गठित है यानि, समाजशास्त्रीय जड़ें, व्यवस्थागत आधार और इसके संचालक यंत्र।

(ग) समाजशास्त्रीय जड़ें

36. समाजशास्त्रीय मूल कारण एडम स्मिथवादी तथा मार्क्सवादी विकास मॉडलों (ये दोनों ही मॉडल विश्व के विभिन्न भागों में चल रही राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था, जो अब पीछे हट रही है, के दो प्रामाणिक विकास पद्धतियों के रूप में कार्यरत रही है) की एक तरफा दार्शनिक समझ में निहित है। यह एकतरफा समझ है कि अपने ग्रह पर और यहां तक कि ब्रह्माण्ड में प्रकृति की व्यवस्था में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ घटनाक्रम है। स्पष्टत: यह लोगों को मानव समाज और इसकी प्रत्येक वस्तु का एकमात्र निर्माणकर्ता पेश करता है। यह इस सामाजिक सच्चाई को दरकिनार करता है कि मानव समाज में परिवर्तन और विकास दो तरफा अन्तरक्रिया–एक तरफ प्रकृति और मानव समाज के बीच की दूसरी तरफ मानव समाज के अन्दर–अन्तरक्रिया से होता है।

37. दूसरा मूल समाजशास्त्रीय कारण मानव प्रकृति के सम्बन्ध में एडम स्मिथ और मार्क्सवादी विकास मॉडल की एक तरफा समझ में निहित है। एडम स्मिथ का आर्थिक मॉडल यह मानता है कि मानव समुदाय की प्रकृति निजी स्वार्थ की है। मार्क्सवादी आर्थिक सिद्धान्त मनुष्य की प्रकृति के प्रश्न पर दिग्भ्रमित धारणा रखती है। प्रथम, मनुष्य की प्रकृति सामाजिक है इस पर जोर देती है और अगले ही क्षण निरपेक्ष सामाजिक होने के गुण को औद्योगिक सर्वहारा (जो इस सिद्धान्त के अनुसार मानव समाज का मुक्तिदाता है) में तब्दील कर देता है और अन्तिम तौर पर सामाजिक चरित्रता के समस्त एकाधिकार को कम्युनिस्ट पार्टी में निहित कर देता है। इस दृष्टिकोण के तहत मानव समाज को सामाजिक तौर पर तब्दील करने की क्षमता अकेली कम्युनिस्ट पार्टी में ही समझती है।

38. वास्तव में, तथापि मानव समुदाय का दुतरफा चरित्र है, एक तरफ जैविक चरित्र और दूसरी तरफ सामाजिक चरित्र। जैविक चरित्र का पहलू मानव समुदाय के व्यक्तिगत

अस्तित्व को प्रतिबिम्बित करता है, जबकि सामाजिक चरित्र का पहलू उसके सामाजिक जीवन, कार्यशैली और संगठन को इंगित करता है।

(घ) बुनियादी व्यस्थागत दोष

39. इस समस्या का बुनियादी कारण व्यवस्थागत खामियों से सम्बन्धित है जो अधिकतम लाभ और अधिकतम वृद्धि दर को इसके विकास का एकमात्र उद्देश्य बताता है। उदारवादी और मार्क्सवादी दोनों धारणाएं यह स्वीकार करती है कि सामाजिक सम्पन्नता और प्रगति को जाँचने का एकमात्र मापदण्ड वृद्धि दर है। अधिकतम वृद्धि दर पाने की अपनी खोज में इन दोनों ने पर्यावरण और मानव इतिहास के पहलुओं को बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है।

40. द्वितीय, सामाजिक सम्पन्नता और प्रगति को मापने का एकमात्र मापदण्ड मौद्रिक वृद्धि को मानने का सार्वभौम स्वीकृत नियम सबसे अधिक नुकसानदेह व्यवस्थागत खामी है। सामाजिक उन्नति के पहलू को रुपया-पैसा के रूप में परिभाषित करने से धन बटोरने की मनुष्य की महत्वाकांक्षा को अत्यधिक प्रज्ज्वलित किया है। यह आज के तथ्यों के मद्देनजर स्पष्ट है लगभग प्रत्येक मनुष्य की मुख्य प्रेरणा रुपया-पैसा बन गया है जो उसके परिप्रेक्ष्य, मानसिकता, उद्देश्य, प्राथमिकता तथा साधन और तरीके को तय करता है।

41. तब धन और सत्ता अधिकतम स्वहित का प्रतिनिधित्व करती है, पूरी दुनिया अब इन दो 'जीवनदायी अमृत' के पीछे भाग रही है। धन और सत्ता पाने का यह व्यापार (अधिकतम गैर-टिकाऊ पर्यावरण व्यवस्था और उच्चतम असमान व अन्यायपूर्ण मानव व्यवस्था लाकर) अब दुनिया को गम्भीरतम पर्यावरणीय और मानवीय बर्बादी के कगार पर ला खड़ा किया है।

42. वास्तव में, स्व-हित पशु जगत का बुनियादी स्वभाव है, जबकि मनुष्य का जबसे होमोसेपियन के रूप में प्रादुर्भाव हुआ, तब से उसकी प्रकृति जैव-सामाजिक है। अर्द्ध सामाजिक होने का उसका एकमात्र गुण मनुष्य प्रजाति को पशु प्रजाति से भिन्नता प्रदान करता है। जब मनुष्य में सामाजिक पहलू नहीं रहता, तब उसकी जीवन शैली एक पशु के रूप में बदल जाती है।

(ड़) अल्पकालीन व्यवस्थागत खामियां

43. अल्पकालीन व्यवस्थागत खामी का सम्बन्ध इसकी संचालन एजेन्सी या सरकार से है। एकमात्र निजी हित की स्थायी धारणा के निर्देशन के तहत राष्ट्रीय सरकारों (प्रत्येक देश में पार्टी व्यवस्था पर आधारित) के नेतागणों का मुख्य ध्यान अपने लिए सही या गलत किसी भी तरीके से धन बटोरने और लगातार सत्ता अपने हाथों में रखने में लगा रहता है और जनहित या अन्य पर्यावरणीय जैविक मुद्दों पर कोई गौर नहीं करता है। उनकी खास जीवन शैली कहना कुछ और करना कुछ की है। वे हमेशा गरीबों और वंचितों के लिए आँसू बहाते हैं, परन्तु हर समय अमीर और प्रभुत्वशाली लोगों का हित साधते हैं।

44. उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि जब तक वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और

इसके विकास के पैमाने के स्थान पर टिकाऊ, न्यायपूर्ण और समता के मॉडल को न लाया जाए, तब तक असमानता और गरीबी की अत्यधिक खतरनाक सामाजिक चुनौती को प्रभावी उत्तर देने की क्षीण सम्भावना रहती है।

VII. कारपोरेट-आधारित टिकाऊ विकास मॉडल जैव-पारिस्थितिकी संकट को कैसे पैदा करता है

45. सुस्पष्ट उत्तर कारपोरेट मॉडल के पिछले 200 वर्षों के भूतकालीन तथा वर्तमान इतिहास के सिद्धान्त और व्यवहार से आता है; जिसने औद्योगिक क्रांति की शुरूआत से विभिन्न विकास चरणों–औद्योगिक, प्रतियोगी, उपनिवेशी ओर पश्य उपनिवेशी–से गुजरते हुए अब ग्लोबल चरण में प्रवेश किया है।

46. प्रथमत:, यह (यानि कारपोरेट इतिहास) कारपोरेट विकास मॉडल की गैर-टिकाऊ कार्यवाही–एक तरफ पर्यावरणीय संसाधनों का दुरुपयोग और बर्बादी तथा दूसरी ओर मानवीय संसाधनों के साथ अमानवीय बर्ताव को दिखाता है। इसका नतीजा आज पर्यावरणीय संसाधनों के क्षरण और मानवीय संसाधनों के दरिद्र होने में निकला है, जो हमारे ग्रह पर घातक जैव-पारिस्थितिकी संकट का कारण है।

47. द्वितीयत:, यह मानव समाज में प्रेरक तत्त्व के तौर पर स्वहित के अपने समाजशास्त्र को आगे लाता है। इसने चारों तरफ स्वार्थ की प्रेरणा को पैदा किया, इस प्रकार व्यक्तिगत लालच और प्राप्ति के रुझान को अधिकतम हद तक बढ़ाया तथा सामाजिक हितों की अन्य मानवीय प्रवृत्तियों को नकारा।

48. तृतीयत:, यह प्रत्येक समय और स्थान में ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' की अपनी राजनीति को समाज की स्थिरता, सुरक्षा एवं व्यवस्था को बनाये रखने का एकमात्र सामाजिक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार यह किसी भी कीमत पर उचित या अनुचित साधनों से ताकत हासिल करने की मानसिकता तैयार करता है, जो राजनीतिक प्रक्रिया को अपराधीकरण की ओर ले जाता है। आगे, ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' की राजनीति व्यक्तियों के साथ-साथ समाज में तनाव, झगड़ों और युद्ध-उन्माद की मनोवृत्ति को बढ़ावा देती है। यह कमजोर पर ताकतवर के प्रभुत्व का एक सामाजिक वातावरण पैदा करती है–इस प्रकार यह अपने विश्व प्रभुत्व की स्थापना की भूमिका तैयार करता है।

49. चतुर्थ, यह सामाजिक विकास का एकमात्र निर्धारक अधिकतम लाभ को अपना बुनियादी आर्थिक सिद्धान्त के तौर पर प्रस्तुत करता है, इस प्रकार यह सभी सामाजिक हितों की उपेक्षा करता है चाहे वो पर्यावरण, सामाजिक न्याय, उचितता, समता, उदारता आदि सहित कोई भी हो। आगे, अधिकतम लाभ के एकमात्र उद्देश्य के साथ स्वहित के समाशास्त्रीय सिद्धान्त के मेल से पूरे विश्व में धन कमाने की होड़ मच गई है, मुख्य रूप से भ्रष्ट और भद्दे तरीकों से। धन हड़पने के व्यापार में कारपोरेट क्षेत्र की भूमिका को विश्व की सर्वोच्च बहुराष्ट्रीय कम्पनियों विशेषकर अमेरिका आधारित कम्पनियों के हालिया धोखों और घोटालों से देखा जा सकता है।

50. पंचम, सभी प्रकार के दोगले मानदण्डों जैसे ''कहना कुछ और करना कुछ'' को स्वीकृति देता है, और इन्हें बाजार के नियमों और सत्ता ढाँचे की जरूरत के नाम पर जायज ठहराता है।

51. षष्ठ, यह सभी प्रकार की रूढ़ीवादी धारणाओं और तकनीकों को काम में लेता है, जो इसे अपने आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों की मजबूती में मदद देता है जबकि लोगों को संकीर्ण एवं उग्रवादी लाईन में विभाजित करता है।

52. अन्तिम, लेकिन बहुत ही महत्वपूर्ण, कारपोरेट आधारित टिकाऊ विकास मॉडल, टिकाऊ विकास की बहुआयामी प्रक्रिया को दुर्बल बनाता है, यह कारपोरेटों को विश्व पर्यावरणीय और मानवीय संसाधनों को प्रदूषित और शोषित करने की सुविधाएं प्रदान करता है–इस प्रकार जैव-पारिस्थितिकी संकट को एक खतरनाक बिन्दु पर ले आया है।

VIII. जैव-पारिस्थितिकी संकट को एक वास्तविक जवाब एक प्रकृति-मानव केन्द्रित प्रतिमान

53. हमारी समस्या के सर्वांगी चरित्र के मद्देनजर जैव-पारिस्थितिकी संकट को एक वास्तविक जवाब एक प्रकृति-मानव केन्द्रित प्रतिमान है और हो सकता है जिसमें निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित हैं।

54. दृष्टि : हमारे ग्रह की अखण्ड एवं अन्तरनिर्भर प्रकृति तथा 21वीं सदी की राष्ट्र-राज्य की अन्तरनिर्भर सामाजिक वास्तविकता, प्रकृति-मानव केन्द्रित प्रतिमान एक विश्व की दृष्टि प्रदान करता है। जबकि 1945 का संयुक्त राष्ट्र चार्टर सम्प्रभुता व स्वतंत्र राष्ट्र की एक ऐसी दृष्टि देता है जो वर्तमान वास्तविकता के उलट है।

55. मूलभूत सिद्धान्त : ऊपर वर्णित दृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त में सर्वप्रथम लोगों एवं पर्यावरण को ग्लोबल क्रियाकलापों के केन्द्र में रखा जाना चाहिए यानि एक तरफ लोगों के हितों की सेवा करना तथा दूसरी तरफ पर्यावरण को संरक्षित करना।

56. विश्वव्यवस्था : प्रकृति-मानव केन्द्रित दृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त तथा पर्यावरण-मानव प्राथमिकता मांग करती है कि संयुक्त राष्ट्र एक जनवादी आधारित तरीके एवं संगठन के रूप में पुनर्गठित हो। लेकिन संयुक्त राष्ट्र जैसा आज है, इस गुण की कमी रखता है। संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा का ढांचा व कार्यप्रणाली बिल्कुल लोकतांत्रिक है। लेकिन इसकी शीर्ष निर्णयकारी इकाई अर्थात् सुरक्षा परिषद जो अत्यधिक अनुचित तथा पूर्णरूपेण अप्रजातांत्रिक कायदों–जैसे सैनिक दृष्टि से सबसे ताकतवर देशों के लिए स्थायी सदस्यता व विशेष वीटो पॉवर; से चरित्रित है।

57. स्पष्ट तौर से, इस वक्त, इस संगठन के पूर्ण लोकतांत्रिकरण की किसी भी तरह से कोशिश को पांच सदस्यीय सुविधा क्लब के भारी विरोध का सामना करना पड़ेगा। इसलिए वर्तमान ग्लोबल शक्तिसंतुलन को ध्यान में रखते हुए यह दिखता है कि सुरक्षा परिषद का पूर्ण जनवादीकरण में कुछ और समय लगेगा। थोड़े समय के लिए जब तक चल रहे शक्ति संतुलन में परिवर्तन हो तब तक स्थायी सदस्यता का नियम रखते हुए विशेष

वीटो-पावर का नियम हटा लेना चाहिए। सुरक्षा परिषद की बाकी सभी सीटें साधारण सभा द्वारा चुनाव के जरिए भरी जानी चाहिए।

58. धनवान देशों का अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व-बैंक के ऊपर से नियंत्रण कम हो तथा सबसे गरीब देशों का विश्व व्यापार संगठन में अधिक अधिकार दिये जाय।

59. विकास मॉडल : जन-पर्यावरण प्राथमिकता का मूलभूत सिद्धान्त (जो मानव विकास के लिए अनिवार्य है) एक नये प्रकार का विकास मॉडल की मांग करता है। जो पांच स्तरीय बुनियादी सिद्धान्तों यानि, पर्यावरणीय टिकाऊपन, समता (अथवा सामाजिक न्याय), उत्पादकता, लोकतांत्रिक और पारदर्शिता पर टिका है। ये पांच स्तरीय बुनियादी सिद्धान्त मानव के जैव-सामाजिक चरित्र से मेल खाते हैं, अर्थात् यह मनुष्य के स्वहित को सामाजिक हित से जोड़ता है।

60. जन-पर्यावरण आधारित विकास मॉडल दो रूढ़ीवादी राष्ट्रीय विकास मॉडलों यानि निगम चलित और सरकार निर्देशित की तुलना में विकास की समयानुकूल धारणा प्रस्तुत करता है। निगम चलित विकास मॉडल केवल लाभ या उत्पादकता (जो केवल धन के स्वामियों का हित सुरक्षित करता है) को एक मात्र लक्ष्य बनाता है जबकि सरकार निर्देशित मॉडल उत्पादन के साधनों का एक मात्र उद्देश्य सामाजिकता (या राष्ट्रीयकरण) को चुनता है। (जो शासक राजनीतिज्ञों और अफसरों के हितों की सेवा करता है।) ये दोनों रूढ़ीवादी राष्ट्रीय मॉडल मनुष्य के जैव-सामाजिक चरित्र के उलट केवल स्वहित को ही पूरा करते हैं, जैव-सामाजिक चरित्र स्वहित और सामाजिक हित दोनों को जोड़ता है। फिर, वे पर्यावरण को कोई प्राथमिकता नहीं देते और आर्थिकता अथवा विकास प्रकिया में लोकतंत्र और पारदर्शिता के मानदण्डों के पालन को कोई स्थान नहीं देते हैं, आगे जबकि कारपोरेट (निगमित) मॉडल समता (अथवा सामाजिक न्याय) के सिद्धान्त को पूर्णतया अस्वीकार करता है वही सरकार निर्देशित मॉडल राजनीतिक समानता और उत्पादकता को पूर्णतया नकारता है।

61. यह मॉडल कारपोरेट चलित और राज्य आधारित दोनों विकास मॉडलों से उनके उद्देश्यों, प्रबंध और शैली के मामलों में भिन्नता रखता है।

62. जबकि कारपोरेट मॉडल पूंजी एवं पूंजी के मालिकों को विकसित करने के लिए और राज्य मॉडल इसके शासक राजनीतिज्ञों और अफसरों के साथ मजदूर कुलीनता के हितों को आगे बढ़ाता है, प्रकृति-मानव केन्द्रित मॉडल आमतौर पर लोगों और पर्यावरण के हितों की तथा खासतौर पर गरीबों और वंचित तबकों की सेवा करता है।

63. प्रबंध में जबकि कॉरपोरेट सेक्टर एकाधिकारवादी कॉरपोरेट प्रबंध एवं नियंत्रण का पक्षपोषण करता है और राजकीय क्षेत्र एकाधिकारवादी अफसरशाही प्रबंध एवं नियंत्रण का समर्थन करते हैं, प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल में स्थायी कॉरपोरेटरों की जगह संयुक्त कमेटियों द्वारा चुनी गयी पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों द्वारा लोकतांत्रिक प्रबंध एवं नियंत्रण होता है। प्रत्येक संयुक्त कमेटी में 2/3 सदस्य साधारण शेयर धारियों द्वारा चुने हुए तथा 1/3 सदस्य मजदूरों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं।

64. शैली में, अधिकनायकवादी और गोपनीय कॉरपोरेट एवं राजकीय शैली के उलट प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल लोकतांत्रिक पारदर्शिता और जवाबदेही की शैली पर आधारित है।

65. **विश्व शांति और सुरक्षा :** एक प्रकृति-मानव केन्द्रित विकास मॉडल को सर्वप्रथम स्थायी और टिकाऊ शांति एवं सुरक्षा की आवश्यकता है। इस प्रकार की शांति की स्थापना के लिए यह जरूरी है कि प्रभुत्व, विशेषाधिकार एवं विशेष शक्तियों की राजनीति को छोड़ा जाये, परमाणु शस्त्रों पर पूरा नियंत्रण संयुक्त राष्ट्र का करके पूर्ण निशस्त्रीकरण द्वारा टकराव और सैनिक समाधान की नीति को समाप्त किया जाये, राजनीतिक, आर्थिक तथा विकसित एवं विकासशील देशों के बीच का फर्क एवं अमीर और गरीब के बीच खाई को हटाया जाये।

66. **राजनीति :** प्रकृति-मानव केन्द्रित राजनीति को एक ऐसी राजनीति की आवश्यकता है जो पूर्ण लोकतांत्रिक सिद्धान्तों, गतिविधियों और ढांचे पर आधारित हो। इस प्रकार की राजनीति संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था में विशेष वीटो शक्तियों के कानून को समाप्त करे और निर्णय लेने में लोगों का अधिकतम संभव शक्तिकरण को सुनिश्चित करे तथा पार्टी-केन्द्रित शक्ति का आवश्यक मात्रा में कमी करे।

67. **आर्थिकता :** प्रकृति-मानव केन्द्रित आर्थिकता एक तर्कसंगत और वास्तविक आर्थिकता की मांग करती है, जिसकी धारणाएं, कानून और नियम पहले बताए गए 2 उच्च प्राथमिकताओं (यानि, मानव और पर्यावरण) तथा 5 सिद्धान्तों (यानि पर्यावरणीय टिकाऊपन, समता, उत्पादकता, लोकतंत्र तथा पारदर्शिता) की रोशनी में बनाये जाने की आवश्यकता है। मानव की जैव-सामाजिक प्रकृति के मध्यनजर, दोनों, एडम स्मिथ का 'स्वहित' मूलभूत आर्थिक सिद्धान्त और मार्क्स का प्रत्येक चीज का राज्य राष्ट्रीयकरण का बुनियादी आर्थिक नियम, एकतरफा है। लेकिन विडम्बना है कि दोनों मॉडल विकास, समृद्धि और उन्नति को मौद्रिक वृद्धि के रूप में मापते हैं न कि मानव और पर्यावरण विकास के सन्दर्भ में।

68. **मूल्य व्यवस्था :** प्रकृति-मानव केन्द्रित मूल्य व्यवस्था एक ऐसे जीवन के तरीके (या जीवन शैली) की मांग करती है जो बुनियादी मानवीय एवं पर्यावरणीय मूल्यों में समाहित करे और लोगों में तर्क संगत मानवतावादी एवं पर्यावरणवादी सोच, व्यवहार व संगठन को बढ़ावा दे।

69. **अवधारणा :** प्रकृति-मानव केन्द्रित अवधारणा को वैज्ञानिक वास्तविकतावाद पर आधारित होना चाहिए जो प्रकृति के घटनाक्रम का अध्ययन एवं व्याख्या वैज्ञानिक तथ्यों की रोशनी में तथा सामाजिक घटनाक्रमों का अध्ययन एवं व्याख्या मान्यता प्राप्त सूचना एवं आंकड़ों के आधार पर करता है।

IX. (अ) रास्ते में मुख्य बाधाएं

70. हमारे विचार में प्रकृति-मानव केन्द्रित कार्यक्रम को आगे ले जाने की प्रक्रिया में बहुत-सी बाधाओं का सामना करना होगा। मुख्य बाधाओं को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

71. प्रथम तात्कालिक रुकावट लागों की वर्तमान मानसिकता है जो जिन्दगी का मुख्य उद्देश्य धन हड़पने और सत्ता हथियाने को समझते हैं और परिणामतया धन हड़पने वालों को पूंजी निर्माता तथा सत्ता हथियाने वालों को लोगों को सुरक्षा व स्थायित्व प्रदान करने वाले तथा लोगों की प्रतिदिन की उत्पादक गतिविधि को चलाने वाला विशेषज्ञ मानते हैं। यह तथ्य दुनियाभर में सत्ता-भूखे राजनीतिज्ञों, धन हड़पू व्यापारियों और सर्वव्यापक नैतिक पतन के प्रभुत्व से स्पष्ट है। जबकि हाशिये पर इसके कुछ अपवाद मौजूद है। इस प्रकार पुरानी कहावत सिद्ध होती है कि हम जिस लायक होते हैं, वही हमें मिलता है।

72. दूसरी रुकावट अमेरिका का महाशक्तिवाद है जो कारपोरेट विकास मॉडल का मुख्य लाभान्वित देश है तथा जो सैनिक बल और आर्थिक शक्ति के क्षेत्र में पहले नम्बर पर है। इसके पुराने आक्रमण और ज्यादतियों को दरकिनार कर दे तो भी अमेरिका आज युद्धखोर और एकपक्षीयवाद के रास्ते पर चल पड़ा है, जिसका उद्देश्य दुनिया पर अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाना है। हर प्रकार के आतंकवाद को समाप्त करने के नारे की तख्ती हिलाते हुए इसने उन राज्यों और हथियारबंद समूहों के विरुद्ध शक्तिशाली सक्रिय मुहिम शुरू की हुई है जो इसके आदेशों की अवहेलना करने की जुर्रत करते हैं। यह सन् 1945 के राज्य आधारित मुख्य वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करने वाले 1945 के यू.एन. चार्टर में किसी भी बदलाव का विरोध करता है। इसी प्रकार 55 वर्ष पुरानी वित्तीय संस्थाओं–जैसे आई.एम.एफ. और विश्व बैंक के पुराने पड़ चुके चरित्र को आधुनिक बनाने की हर पहलकदमी का यह गला घोटता है।

73. इस प्रकार, यद्यपि नई उभर रही वैश्वीकरण (यानि, वैश्विक स्तर पर एक मानव समाज बनाने की प्रक्रिया) की मांग नई विश्व व्यवस्था के पुनरसंरचना करने की है तथापि अमेरिका चाहता है कि पुरानी राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था सुरक्षित और कायम रहे। वह इसमें इतना ही आधुनिकीकरण चाहता है कि जिससे उसके वर्तमान हित सुस्थापित रहें तथा आगे इसके नये प्रभुत्ववादी उभर रहे हितों की सेवा होने की हद तक ही आधुनिकीकरण का विस्तार हो सके।

74. तीसरी रुकावट विभिन्न प्रकार के रूढ़ीवाद (नये और पुराने) का मौजूद होना है, जो सही और गलत की पहचान की खोज में लोगों को गलत रास्ते पर धकेलते हैं और भ्रमित करते हैं।

75. चौथी रुकावट आन्तरिक और अन्तरराज्यीय विभिन्न प्रकार के झगड़ों का विद्यमान होना है। विभिन्न बहानों के तहत ये झगड़े लोगों में फूट डालते रहते हैं और लोगों की एकता की प्रक्रिया में बाधा पहुंचाते हैं। इस प्रकार लोगों के हितों को नुकसान पहुंचाते हैं।

76. पांचवीं रुकावट इस धारणा में निहित है जो प्रत्येक संस्था चाहे अन्तरराष्ट्रीय हो या राष्ट्रीय, में सबसे उच्चस्थ प्राथमिकता पूंजी एवं पूंजीधारक को देते हैं। इस प्रकार पर्यावरणीय और मानवीय मुद्दों पर ध्यान देने का रास्ता यह धारणा बन्द कर देती है।

77. छठी रुकावट सुरक्षा परिषद में पांच वीटो पावर रखने वाली शक्तियों का एकाधिकार होना है। वर्तमान दुनिया में सुरक्षा परिषद वह उच्चस्थ शक्तिशाली संस्था है जो आज की दुनिया की पुनरसंरचना का केन्द्र है।

78. सातवीं रुकावट दो अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं–आइ.एम.एफ. और विश्व बैंक पर कुछ आर्थिक धनी देशों जैसे अमेरिका, जापान, जर्मनी, इंग्लैंड, फ्रांस आदि का पूर्ण नियंत्रण होने में निहित है।

79. उपर्युक्त सभी रुकावटें उचित अल्प अवधि कार्यक्रम के जरिये प्रबंधित की जा सकती है।

IX. (ब) अल्कालीन कार्यक्रम

80. प्रथम रुकावट को लोगों में पर्यावरणीय संसाधनों के खराब होने, अमानवीय असमानता और गरीबी के नुकसानदेह प्रभाव, मौजूदा भ्रष्टाचार, कपट और धोखा, मूल्यहीन जीवन-शैली से उभर रही घातक चुनौतियों और नकारात्मक असर–जो वर्तमान पर्यावरण और मानव विरोधी व्यवस्था के नियंत्रकों और प्रबंधकों के धन व सत्ता की भूख की देन है–के बारे में जनता को जागरुक कर नियंत्रित करना चाहिए।

81. दूसरी रुकावट को विभिन्न राष्ट्रों तथा अन्य जातीय-सांस्कृतिक समूहों के बीच शान्ति, मित्रता और सहयोग का झण्डा दृढ़ता से थामकर, सभी झगड़ों और विवादों को बातचीत के जरिये हल कर सभी के बीच और सभी जगह पर पर्यावरणीय हितों, मानव अधिकारों तथा समानता को सुरक्षित कर, सभी राज्यों, विशेष तौर पर अमेरिका द्वारा ऐसी युद्धकारी, प्रभुत्वकारी व एकपक्षीय सैनिक कार्यवाहियों को रोककर और सबसे ऊपर संयुक्त राष्ट्र संघ को राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को प्रबंधित करने वाला एकमात्र केन्द्र स्वीकार करके दूर किया जाना चाहिए।

82. तीसरी रुकावट को विभिन्न रूढ़ीवादी सिद्धान्तों और उनके व्यवहारों के नकारात्मक प्रभावों को उजागर करके निपटना चाहिए।

83. चौथी रुकावट पर्यावरण और मानव विकास के बिन्दु पर विभिन्न झगड़ों के घातक प्रभावों को उजागर करके निपटना चाहिए।

84. पांचवीं रुकावट के लिए एकाधिकारी निगमित क्षेत्र का सम्पूर्ण लोकतांत्रीकरण की मांग कर निपटाना चाहिए। (यह एकाधिकार अन्यायपूर्ण कानून जो निगमित कम्पनियों के प्रोमोटर्स को अपने आपको व अपने रिश्तेदारों व मित्रों को बाजार कीमत के लगभग 1/100वें भाग की कीमत पर ब्लाक प्रोमोटर्स शेयर जारी करने का विशेष अधिकार प्रदान करके एकाधिकार सुनिश्चित करते हैं तथा डायरेक्टर के नियंत्रण के तहत प्रबंध मण्डल गठित कर जो मुख्यतया प्रोमोटर शेयर धारकों में से होते हैं, जिनके उत्तराधिकारी कम्पनी के जीवन काल तक एकाधिकार कायम रखते हैं।)

85. कारपोरेट क्षेत्र का लोकतांत्रिकरण स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव करवा कर किया जाना चाहिए। प्रत्येक शेयरधारक का समान अधिकार (यानि प्रत्येक का एक वोट) होना चाहिए। प्रबंध मंडल के दो-तिहाई सदस्यों का चुनाव शेयरधारकों में से होना चाहिए तथा

एक तिहाई सदस्यों का प्रतिनिधित्व मजदूरों में से उनके चुने गये प्रतिनिधियों को दिया जाना चाहिए।

86. राजकीय क्षेत्र का एकाधिकार इसके दो-तिहाई शेयरों को साधारण शेयरधारकों को बेचकर–तथा इसका प्रबंध मण्डल 50 प्रतिशत सामान्य शेयरधारकों से, 20 प्रतिशत सरकार से, 30 प्रतिशत श्रमिकों से गठित कर–समाप्त किया जाना चाहिए।

87. छठी और सातवीं रुकावट को संयुक्त राष्ट्र संघ के 5 स्थायी सदस्यों के विशेष वीटो अधिकारों को समाप्त कर तथा आई.एम.एफ. और विश्व बैंक में धनी देशों के प्रभुत्व को गरीब देशों को और अधिकार देकर प्रभुत्व कम किये जाने का जबरदस्त आन्दोलन चलाकर इस बाधा का हटाया जाए।

88. अन्तिम परन्तु बहुत महत्वपूर्ण खराब होती असमानता और गरीबी की समस्या के मद्देनजर यह बहुत ही आवश्यक है कि वे सभी जो गरीबी की रेखा से नीचे हैं और वो तमाम जो पूर्णतया बेरोजगार हैं, उनको सामाजिक सुरक्षा का मूल अधिकार मिलना चाहिए। यह अधिकार उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र के जरिए मिलना चाहिए, जिसको सभी देश अनिवार्य तौर पर लागू करें।

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र में यह प्रावधान होना चाहिए कि सामाजिक सुरक्षा पर लगने वाला 50 प्रतिशत खर्च सम्बन्धित राज्य वहन करे और शेष संयुक्त राष्ट्र संघ खर्च करे; संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा तुरन्त उच्च शक्ति वाली संयुक्त राष्ट्र टिकाऊ विकास परिषद का गठन करे और वह परिषद एक तरफ पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण व संवर्धन करने के लिए एक वैश्विक ऑथोरिटी की तरह काम करे और दूसरी तरफ मानव संसाधनों के विकास के लिए काम करे: यह परिषद पर्यावरण और मानव उन्नति के संबंध में अन्तरराष्ट्रीय मूल सुधार के नियम बनाए; इस परिषद का वित्त निम्न प्रकार से इकट्ठा किया जाए; (क) प्रत्येक देश अपने सैनिक बजट में से आवश्यक तौर पर 30 प्रतिशत बचाकर इसमें योगदान करे। (ख) वैश्विक टैक्स अदायगी, जैसे वैश्विक व्यापार, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, मसलन, तेल, कोयला, संचार उपग्रह, वायुयात्रा, अन्टार्कटिका का खनिज, समुद्र तल के खनिज, सामुद्रिक परिवहन आदि पर टैक्स लगाकर अदायगी की जाए; संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा उक्त वैश्विक राजस्व की संयुक्त राष्ट्र और उसके सदस्यों के बीच वितरण की ऐसी योजना बनाए, जिसमें अल्प विकसित देशों पर विशेष ध्यान दिया जाए।

IX. (स) जन जागृति, लामबन्दी व संगठन में मददगार कुछ व्यावहारिक सुझाव

89. इतिहास व समाजशास्त्र दोनों जोर देते हैं कि कहीं भी कोई भी सामाजिक परिवर्तन नहीं आ सकता, यदि सम्बन्धित लोग इस तरह के परिवर्तन से अनभिज्ञ हैं। वास्तव में, प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन, एक तत्कालीन वातावरण जो लोगों की मानसिकता को मोड़ता है, का परिणाम है। किसी भी सामाजिक समस्या के समाधान का एकमात्र रास्ता लोगों की जागृति, भागीदारी एवं संगठित ताकत में निहित है। इस प्रकार ऊपर बताए गए बुनियादी कार्यक्रम को वास्तविकता में बदलने की पूर्ण गारण्टी इसके पक्ष में जन मानसिकता के परिवर्तन में समाहित है।

90. जन जागृति एवं जन भागीदारी की प्रक्रिया में प्रथम बिन्दु है कैसे लोगों को प्रेरित किया जाय, अनुभव दर्शाता है कि इस कार्य को पूरा करने के दो तरीके हैं। एक है लोगों की विचारधारा को तब्दील करना तथा दूसरा है तत्कालीन जन-चिंता के मुद्दों को इस कार्य के पक्ष में जोड़ कर जन-हित में खड़ा किया जाय। इन दो तरीकों में से दूसरा आसान व जल्दी फलदायी है क्योंकि लोग मूल रूप से अपनी समस्याओं के प्रति इच्छुक रहते हैं क्योंकि वे किसी भी उस क्रिया में शामिल हो जाते हैं जो उनकी समस्याओं का समाधान सुविधाजनक बनाती है। विचारधारा को जन मुद्दों से जोड़े बिना केवल विचारधारा पर जोर देने से यह गैर उपजाऊ एवं सूखे विषय में तब्दील हो जाती है, जबकि लोगों के मामलों से जोड़ने पर लोगों की रुचि उस विचारधारा में पैदा हो जाती है।

91. अगला बिन्दु है कौन अपना काम कहां से शुरू करे? आम तौर पर मूल परिस्थितियों को जानकर कोई कहीं से भी शुरू कर सकता है। विशेष तौर से तीन तरह के बड़े लक्ष्य ग्रुप होते हैं, जैसे क्षेत्र विशेष, समस्या विशेष तथा वर्ग या ट्रेड यूनियन विशेष। चुनने का आधार ठोस-परिस्थिति होना चाहिए।

92. तीसरा बिन्दु है अपने आपको लक्ष्य ग्रुप से सामान्य रूप से तथा इसके जागरुक एवं सचेत व्यक्तियों से विशेष रूप से परिचित करना, साथ ही लक्ष्य ग्रुप की समस्याओं की पूर्ण समझ रखना।

93. चौथा बिन्दु लक्ष्य ग्रुप की समस्याओं का कार्यक्रम इसके जागरुक एवं सचेत व्यक्तियों की सहायता से तैयार करना तथा इसे सम्बन्धित लोगों में विचार-विमर्श करना। कार्यक्रम समस्याओं का एक सेट हो सकता है अथवा एक ही ज्वलंत जन-विषय या लक्ष्य ग्रुप के या इसके किसी हिस्से के साथ हुए अन्याय की कोई घटना हो सकती है।

94. पांचवां बिदु है, सम्बन्धित ग्रुप प्रेरणा को और मजबूत करने के लिए इस कार्यक्रम को एक शुरुआती बिन्दु के रूप में इस्तेमाल करना। कार्यक्रम-समस्या (या समस्याओं) इसके कारण, समाधान और हल के तरीकों के साथ दृढ़ता से लगातार सम्बन्धित ग्रुप द्वारा उठाया जाना चाहिए, इसमें सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की मदद ली जानी चाहिए। यह लक्ष्य ग्रुप की जागरुकता की प्रक्रिया को स्थापित करेगा तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ इसकी एकता कायम होगी।

95. छठा बिन्दु, इस समूह की जागृति प्रक्रिया को अन्य क्षेत्र, राज्य, देश व विश्व की ऐसी ही समस्याओं से जोड़कर मजबूत करनी है।

96. सातवां बिन्दु, लक्षित समूह द्वारा चुने हुए इसके सचेत सदस्यों की कोर (मुख्य) टीम तैयार करता है।

97. आठवां बिन्दु, इसकी कोर टीम द्वारा क्षेत्र व व्यवसाय के आधार पर विभिन्न इकाइयों में सम्बन्धित लोगों को संगठित करना है। इस तरह की कमेटी सभी स्तरों पर गठित होनी चाहिए। इकाई सदस्यों के बीच ठोस समन्वय विकसित करना व निर्णयकारी प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक है।

98. नवाँ बिन्दु है कि सम्बन्धित लोग अपने आप सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के सहयोग व सुझाव से अपने निर्णय पूरा करे। बारम्बार कार्यक्रम के जरिये वे अपना आत्म-

निर्णय मजबूत करें। विभिन्न मुद्दों, भले ही समूह विशेष या सम्बन्धित क्षेत्र, देश या विश्व स्तर के हों, दूसरे जन आन्दोलनों से गठबंधन व उनकी संयुक्त कार्यवाही लोगों को अपनी मजबूती तथा उनमें बड़ी कार्यवाही कर सकने की चेतना प्रदान करती है।

99. दसवां लेकिन बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है कि प्रत्येक समूह विवेचन व क्रियाकलाप में यह जोर देना जरूरी है कि आज जो कुछ देश में या लोगों के साथ घटित हुआ है वह न तो ऊपर से आया है न ही बाहर से आया है। अपितु देश के गलत दृष्टिकोण कार्यक्रम तथा प्राथमिकताओं और प्रमुख राजनीतिक पार्टियों व उनके चोटी के राजनीतिज्ञों की भ्रष्ट व अनैतिक शैली का परिणाम है। तथापि यदि हम चीजों को ठीक करना चाहे तो हमें अपने पैरों पर खड़ा होना होगा तथा इन नकारात्मक ताकतों के विरुद्ध लगातार संघर्ष करना होगा।

100. संक्षेप में, हमारा प्रत्येक प्रयास धन, सत्ता, व्यक्तित्व, जाति व साम्प्रदायिकता द्वारा चलित परम्परागत जन मानसिकता को तर्कसंगत, शुद्ध व विश्वासपूर्ण मानसिकता में रूपान्तरित करने में होना चाहिए।

101. सार तत्त्व, सभी स्तरों पर चीजों को क्रम में लाने का एकमात्र तरीका जन जागृति, जन भागीदारी तथा जन संगठन में निहित है। (सितम्बर 2002)

***